


॥ श्रीः ॥

बृहद्वैद्यकग्रन्थ

धन्वन्तरि।

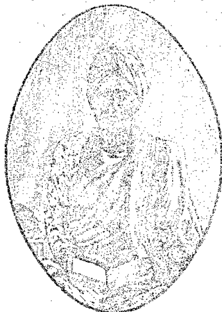
शालिग्रामौषधशब्दसागर, शालिग्रामनिघण्टुभूषण,
भारतभैषज्यभास्करादि वैद्यक ग्रन्थ रचयिता और
अनुवादक, माथुरवैश्यवंशावतंस कविकुलक-
मलदिवाकर मुरादाबादनिवासी लाला-
शालिग्रामजीकृत और हिन्दी
भाषानुवादविभूषित.

जिसको
वैद्यजनोंके हितार्थ
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासने
अपने "लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापेखानेमें
मुद्रित कर प्रकाशित किया.

संवत १९५७, शके १८२२.

कल्याण-मुम्बई.

श्रीयुत पं० लाला शालिग्रामजी वैश्य.



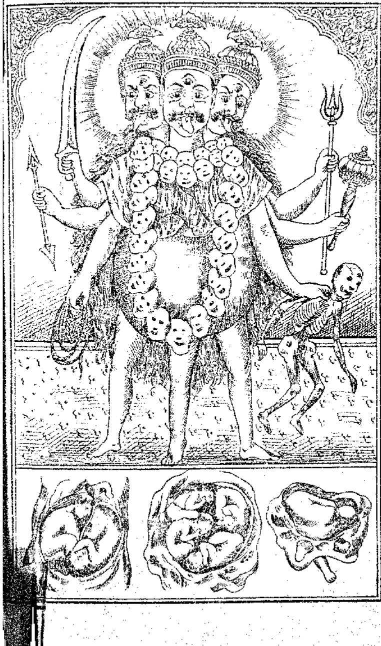
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' छापाखाना, कल्याण-(मुंबई)
GANGAVISHNU SHRIKRISHNADASS,
Laxmi-Venkateshwar Press,
KALYAN.(G.I.P.RY. Junction.)


गणेश
शारदा


अर्धनारी
नटेश्वर

धन्वतारमहाराजका दवाखाना.

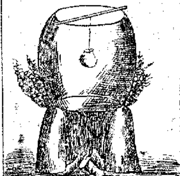




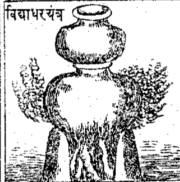
मूढगर्भ प्रदर्शक चित्र.




वालुकायंत्र-

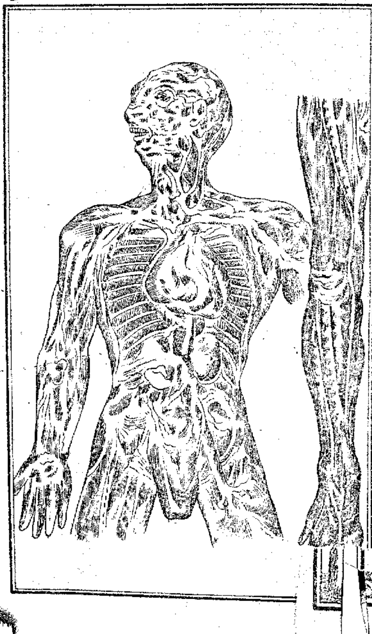

दोलायंत्र-

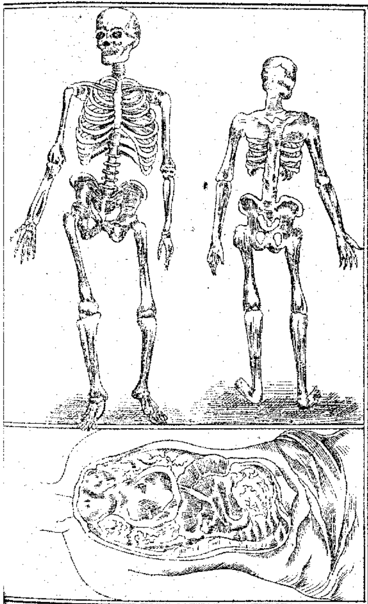

स्वेदनयंत्र.

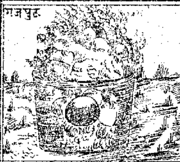

विद्याधरयंत्र


डमरु यंत्र.


भूधरयंत्र.






गजपुट


धोंकनी यंत्र.

बृहत्संहिता भाषाटीका.

यह श्रीवराहमिहिराचार्य कृत ज्योतिषका प्रामाणिक ग्रंथ है. इसको टीकाकारार्थ पं० बलदेवप्रसादमिश्रकृत भाषाटीकासहित छापके तैयार किया है इसमें पहले शास्त्रोपनयन, संवत्सरसूत्र, सूर्य, चन्द्र, राहु, मंगल, बुध, शुक्र, शनि, और केतु इन ग्रहोंका चार (भ्रमण), अगस्त्यचार, सप्तर्षिचार, कूर्मयोग, नक्षत्रोंका व्यूह, ग्रहभक्ति, ग्रहविमर्दन, ग्रहशशियोग, ग्रहवर्षफल, गृहशृङ्गाटक, मेघोंका गर्भ, गर्भधारण, वर्षण, रोहिणी, स्वाती, आषाढी और भाद्रपदयोग, क्षणवृष्टि, कुसुमलता, सन्ध्या, दिग्दाह, भूमिका कम्प, उल्का और परिवेषके लक्षण, इन्द्रायुध, गन्धर्वनगर, प्रतिसूर्य, निर्घात, सस्यकाण्ड, द्रव्यकाण्ड, अर्घ्यकाण्ड, इन्द्रध्वज, नीराजन, खञ्जनलक्षण, उत्पात, मयूरचित्रक, पुष्याभिषेक, पट्टप्रमाण, असिलक्षण, वास्तुलक्षण, उदगार्गल आराम, देवालयलक्षण, वज्रलेप, प्रतिमालक्षण, वनप्रवेश, देवता और देवालयोंकी प्रतिष्ठा, गौ, कुत्ते, कछुए, बकरे, पुरुष, पंचमहापुरुष, स्त्री, वस्त्रच्छेद, चामरदंड और भद्रका लक्षण, स्त्रीप्रशंसा, सुभगकरण, कान्दर्पिक अनुलेपन, स्त्री और पुरुषसंयोग, शय्यालक्षण, वज्रपरीक्षा, मौक्तिकलक्षण, पद्मरागलक्षण, मरकतलक्षण, दीपलक्षण, दन्तधावन, शाकुनमिश्रण, अन्तरचक्र, शिवाविरुत, कुक्कुटचेष्टित, मृगचरित, अश्वचरित, हस्तिचरित्र, वायसविद्या, उत्तरशाकुन, पाक, नक्षत्रगुण, तिथि और करणगुण, नक्षत्र जातक, ग्रहोंका गोचरफल और नक्षत्र-पुरुषव्रत; यह सब विषय इसमें कहे गये हैं. इस ग्रन्थमें एक शत अध्याय हैं, जो परिपाटीके क्रमसे लिखे हैं सब अध्यायोंमें क्रमसे सर्व (प्रायः-समेत) एक चौथाई कम चार हजार श्लोक लिखे हैं. घातचक्र रजोलक्षण आदि इस प्रकार छः अध्याय जो अनुक्रमणिकाके हैं सो उपरोक्त हिसाबमें नहीं लगाये हैं. इसकी एक २ कापी अवश्य विद्वानोंको पास रखना चाहिये, ग्लेज. की. ४ रु० रफ् ३॥ रु.

गहिरगम्भीरसुखागरग्रन्थ.

प्राणिमात्रका मुख्य कर्त्तव्य यह है कि, इस परब्रह्म परमेश्वरने नरदेहरूप यह अमूल्य रत्न देकर सबका परम उपकार किया है उसका भजन कीर्त्तन करें। ६० घडी घरकी तो एक घडी हरकी अर्थात, यदि शुद्धचित्तसे एक घडीभी परमेश्वरका भजन करा जाय तो मुक्तिका साधन हो सक्ता है। यद्यपि भक्तिमार्गप्रतिपादक अनेकानेक ग्रन्थ हैं, ऐसा कोई ग्रन्थ हमारे देखनेमें नहीं आया कि, बालकोंसे लेकर वृद्धपर्यन्त सभी पुरुष जिसका अवलोकन कर भक्तिमार्गपर चलसकें। इसी अभावको दूर करनेके लिये हमने उक्त ग्रन्थको श्रीस्वामी विष्णुदासजी यतिसे बनवाकर सुवाच्य स्थूल अक्षरोंमें छापके प्रसिद्ध किया है। इस ग्रन्थके विष्णुविलास १ ब्राह्मणत्वदर्पण २ भजनावली ३ और सेवकशब्दावली ४ यह चार भाग हैं। इसमें संस्कृत श्लोक तथा अनेक प्रकारके राग रागिनी भजन ठुमरी टप्पा चौबोले और दोहे कवित्तादिकोंमें ऐसी उत्तमतासे भक्तिभावका वर्णन किया है कि, एकबार थोडासाभी पाठ करनेसे हृदय भक्तिसे भरपूर होजाता है। सच तो यह है कि, जिन भक्तोंने इस ग्रन्थको नहीं देखा उनकी भक्तिमें एक प्रकारका अभाव है। सुन्दर विलायती कपडेकी कामदार जिल्दका मूल्य ५ रु०।

भूमिका.

धन्य है उस जगदाधार जगदीश्वर निर्विकारको ! जिसने इस संसारमें अपनी इच्छासे अनेक प्रकारके द्रव्योंको प्रगट किया और ब्रह्मादिक देवता तथा अग्निवेशादि ऋषि मुनियोंने सहस्रों वर्ष तप करके उनही औषधियोंके आश्रयसे अपने अपने नामकी संहिता निर्माण करके अपने शिष्योंको विधिपूर्वक अध्ययन कराई। वह आयुर्वेदशास्त्र भारतवासियोंको दूर करनेका और शरीरको स्वस्थ रखनेका एक महासागरकी समान विशद और विशाल महागम्भीर अमृतका भण्डार था। देवासुरसंग्राममें देवताओंने जो अमरत्वताको प्राप्त किया था वह इसी आयुर्वेदका प्रताप था, इसी सुधासागरका रसपान करके प्राचीन आर्य्यगण दीर्घायु और बलवान् होकर स्वास्थ्यमय जीवन सम्भोग करते थे। इस आयुर्वेदको पढनेसे तृणादिकसे लेकर शिरोभूषण मणिमाणिक्यादितक द्रव्योंको आश्चर्य्यगुण जानकर सृष्टिकर्त्ताका अपार माहात्म्य विस्मय होता है। यह आयुर्वेदीय चिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी मूल है और इसी चिकित्साका सब भारतखण्डमें प्रचार था। जो विचार कर देखा जाता है तो आयुर्वेदकी संहिताओंके अतिरिक्त और ग्रन्थोंकोभी साधारण पुरुषोंने नहीं रचा, वह ऐसे पूर्ण विद्वान् थे जो अपनी ज्ञानदृष्टिसे भूतभविष्यत्समयको वर्तमान समयके समान प्रत्यक्षरूपसे देखते थे और अपने योगबलसे जगत्के सम्पूर्ण विषयोंको भलीभांति जानते थे। उनही त्रिकालदर्शी जगदुपकारी महर्षियोंने संसारके उपकारके लिये उत्तमोत्तम आयुर्वेदके ग्रन्थ निर्माण किये और कोई विषय शेष नहीं छोडा। आठ मार्गोंमें विभक्त करके अलग अलग स्वतन्त्र ग्रन्थ बनाये। किसीने शस्त्रचिकित्सा, किसीने ऊर्ध्वजत्रु (कण्ठसे ऊपर नेत्रादिकी) चिकित्सा , किसीने ज्वरातिसार आदि कायचिकित्सा, किसीने बालचिकित्सा, किसीने ग्रहपीडित प्राणियोंकी चिकित्सा, किसीने विषचिकित्सा, किसीने रसायनचिकित्सा और किसीने वाजीकरणचिकित्साको मुख्य मानकर बडे बडे विलक्षण ग्रन्थ रचे। इसके सिवाय किसी किसीने और और रोगोंकी चिकित्साभी उत्तम रीतिसे अपने ग्रन्थोंमें लिखी। आयुर्वेदमें किसी प्रकारकी चिकित्साका अभाव नहीं है। जिस विषयकी आवश्यकता होती थी वही विषय मिलता था, इस कारण भारतवर्षके मनुष्य विदेशी चिकित्साका कभी आश्रय नहीं लेते थे, सदैव आयुर्वेदहीकी योगक्रियाओंसे सहजमें सब रोग छूट जाते थे। उस समय वैद्यलोग ऐसी वैसी औषधि अपने पास नहीं रखते थे। परीक्षित औषधियोंसे उनके भण्डार भरे रहते थे और उनकी चिकित्सामें एक बडी विशेषता थी कि जिस मनुष्यने एक बार रोगसे मुक्ति पाई फिर शीघ्रही वह मनुष्य रोगकी फांसीमें नहीं फसता

था। हम आयुर्वेदीय चिकित्साकी कहांतक प्रशंसा करें? यह रामवाणकी समान कार्य सिद्ध करनेवाली है। यह तो सबही छोटे बडोंको मुक्तकण्ठसे स्वीकार करना पडेगा कि हमारी आयुर्वेदीय चिकित्साही पुराने और कठिन महाभयानक रोगोंके समूहोंको शमन करे है, इसमें किंचिन्मात्रभी सन्देह नहीं। इस देशके मनुष्योंके स्वभावानुकूल इसी देशकी औषधि हैं दूसरे देशकी कदापि स्वभावानुकूल नहीं हो सक्ती। वरन भारतवासियोंके लिये इस देशकी औषधि कल्याणकारी और कष्टहारी हैंही परन्तु और देशोंके लियेभी परम हितकारी है और यह निश्चय जान लेना कि इस आयुर्वेदविद्याकी मूल भारतभूमिही है, पीछे और और देशोंमें प्रचार हुआ। जैसे कि ग्रीक, फारसीक, अरब प्रभृति।

हम वैद्यलोगोंको अपने आयुर्वेदकी प्राचीनता दिखाने और उनके चित्तमें विश्वास लानेके लिये यूनानियोंहीकी किताबोंका प्रमाण देते हैं। देखो! अयनुलअ-मल, कानुन, कैतुन और अतवा नामक किताबोंमें लिखा है कि अष्टम शताब्दि हिजरीमें भारतवर्ष (हिन्दोस्थान) के पण्डित बुगदादमें आते थे। यवनकुलभूषण महाबलशाली बुगदादके शाहनशाह हारूरसीद सर्वगुणग्राही उनको बडे आदर सत्कारसे अपने देशमें रखता था और अपनी सब राजधानीमें ज्योतिष और आ-युर्वेदकी शिक्षा दिलाता था। इस विद्याको श्रेष्ठ और सत्य जानकर अपनी राजस-भामें सत्य विचार और श्रेष्ठ उपचारके लिये चार वैद्योंको पास रखता था।

अबसे बारह सौ वर्ष पहिले विश्वविजयी ग्रीकदेशाधिपति महावीर प्रजामनर-ञ्जन महामाहिमान्वित अलिकजानडाल राजराजेश्वरने अपने देशमें कठिन कठिन रोगोंके शमन करनेके लिये भारतवर्षसे आयुर्वेदीय चिकित्सकोंको और ज्योतिषी पण्डितोंको बडे आदर सत्कारके साथ अपनी राजसभामें उपस्थित रखता था और आयुर्वेदीय चिकित्सापर उसका विश्वास था।

जालीनूस अपने रिसालेमें लिखता है कि प्रथम आयुर्वेद विद्या भारतवर्षसे मिश्रमें आई और मिश्रके लोगोंसे यूनान और आरबके लोगोंने पढी। मेरे गुरु अफलातूनने भारतवर्षमें जाकर कालज्ञानके छत्तीस लक्षण और बहुत ग्रन्थ पढे, परन्तु उनको इतना गुप्त रक्खा कि किसी अपने इष्टमित्रको उन पुस्तकोंके दर्शनतक न कराये। जहांतक बना छिपायेही रहा। उसमेंसे उत्तमोत्तम बातोंको छांट छांटकर एक काठकी तख्तीपर लिखकर जामेके नीचे दिनरात अपने गलेमें बांधे रहता और उसका भेद किसीसे न कहता। मैंने और मेरे सिवाय और उनके शिष्योंने उनसे बहुत कहा कि यह विद्या हमको सिखाओ, परन्तु उन्होंने कुछ ध्यान नहीं किया और उस विद्याको गुप्तही रक्खा और किसीको नहीं सिखाई। जब उनकी मृत्युका समय आया तो उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा कि जिस समय

मेरी मृत्यु हो जाय और मुझको कबरमें गाडो तो यह तख्ती मेरी समाधि (कबर) में मेरी छातीके ऊपर रख देना और इस तख्तीको कोई मनुष्य देखने न पावे। उनकी स्त्रीने पतिकी आज्ञानुसार वैसाही किया, परन्तु मुझको बडा शोक हुआ कि गुरुने कुछ न विचारा। आप तो मरेही परन्तु विद्याकोभी मारा, यह विचार कर मैंने दो चार दिनके उपरान्त रातके समय गुरुकी समाधिको खोदकर वह तख्ती और सब पुस्तकें वहांसे निकाल लीं, तब तो मेरे प्राणमें प्राण आया। जब इस परिश्रमसे वह तख्ती मैंने पाई तो मुझकोभी अत्यन्त ध्यान हुआ कि इस तख्ती और पुस्तकोंको बहुत सावधानीसे रखना चाहिये। मैंने उस विद्याकी मूलको बहुत गुप्त रक्खा, परन्तु सूर्यभी कहीं छिपायेसे छिप सक्ता है ? जब मेरी विद्याका चमत्कार फैला और हजारों रोगियोंको आराम होने लगा तो फिर अरस्तू आदि औरभी उनके शिष्य हिन्दुस्थानको गये और आयुर्वेद पढा और कई ग्रन्थोंका अनुवादभी किया।

और देखो! प्रोफेसर जे एफ रायल डी, आर, एल, एस, जी, सी, जो कि प्रथम बङ्गालेकी सेनाके डाक्टर थे और मेम्बर एसियाटिक व मेडीकल व फिजीकल सुसाइटी एडिंबर्गके और मेडीको सर्जीकल सुसाइटी लण्डनके मेम्बर थे। वह अपने व्याख्यानमें कहते हैं कि हिन्दुओंका आयुर्वेद बहुत प्राचीन है। अरब और यूनानवालोंसे करोडों वर्ष पहिला है और यथार्थ (असली) यही है। सब प्रकारसे निश्चय कर लिया है कि वैद्यकविद्याका किसी समय अरबमें बहुत व्यवहार हुआ। धतूरेका धुआं श्वासरोगमें और कौंचके बीज कृमिरोगमें अत्यन्त उपयोगी हैं। हिन्दुओंके आयुर्वेदकी और उनके औषधियोंकी हमने भलीभांति परीक्षा कर ली है कि पूर्व कालमें यही अरब देशमें प्रचलित हुई, इसमें किञ्चिन्मात्रभी सन्देह नहीं और इसीसे मैं उनको यथार्थ समझता हूं, क्योंकि मैं नहीं जानता कि वह किसके द्वारा इस स्थानमें आई ? इस कारण हिन्दुओंकी औषधि और तन्त्रविद्या अरबमें पहिलेहीसे प्रचलित थीं और ऐसाभी जान पडता है कि उन्होंने इनहीं पुस्तकोंसे यह विद्या ग्रहण की, क्यों कि प्रथम रोगोंका निश्चय हिन्दुस्थानी वैद्योंने किया। धातुओंका जारण मारण और रसोंका बनाना प्रथम भारतवर्षहीसे प्रकट हुआ। बहुत प्राचीन पुस्तकोंसे हमने निश्चय कर लिया कि भारतखण्डमें उनके बडे बडे औषधालय स्थापित थे और उन भैषज्यभवनोंमें सावधान और लवलीन रहना सदासे पाया जाता है और प्रत्येक औषधिका अनुसन्धान भलीभांति करते रहते थे, इनही कारणोंसे मैं हिन्दुस्थानकी औषधियोंको प्राचीन समझता हूं।

सुप्रसिद्ध संस्कृतशास्त्रके पूर्ण विद्वान् प्रोफेसर होरस हेमेन विलसन एम, ए, एफ, आर, एस प्रेसीडेण्ट (सभापति) मेडीकल सुसाइटी कलकत्ता और प्रोफेसर आफ संस्कृत युनीवर्सिटी कालिज आफ ऐक्सफोर्ड, जो कि अत्यन्त विख्यात

और संस्कृतविद्याके पूर्ण पारगामी माने जाते हैं। उन्होंनेभी भारतवर्षीय विद्याकी प्राचीनता और यथार्थता अपनी किताबोंमें दर्शाई है। आयुर्वेद, ज्योतिष, शिल्पविद्या और तन्त्रविद्यामें उन्होंने अत्यन्त योग्यता प्राप्त की। ऐसेही अश्वचिकित्सा और द्रव्यगुणमें वह विलक्षण थे। पुराने पुराने भारतवासियोंको आयुर्वेद और ज्योतिष विद्यामें इतनी योग्यता और निपुणता हो गई थी कि रोगीको देखतेही पूरा निदान और जीवन मरण बतला देते थे। जिस समय यूरोप देशमें शारीरक विद्या प्रचलित नहीं हुई थी उस समय हिन्दुस्थानी वैद्योंने अपनी चातुर्य्यता और योग्यता दिखलाकर उनको अपने वशीभूत कर लिया।

सुप्रसिद्ध पण्डित विद्वज्जन जगद्विख्यात डाक्टर ओआइजभी इस चिकित्साके विषयमें विशेष विवेचना करके और युक्ति दर्शाकर कहते हैं कि, यथार्थमें आदिचिकित्साकी खान हिन्दोस्थान पाई जाती है और सम्पूर्ण जगत् उसका ऋणी है। हम लोगोंके दुर्भाग्यसे और नानाप्रकारके कारणोंसे बहुत कालतक यह आयुर्वेदीय चिकित्सा एकाएकी लुप्तसी हो गई थी। हमारी यह सर्वैश्वर्य्यमयी भारतभूमि साहित्य वा गणित वा ज्योतिष वा दर्शन वा आयुर्वेदादि प्रायः सभी विषयोंमें परिपूर्ण थी। संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं थी जो कि भारतवर्षमें प्राप्त न हो। यह हमारी भारतभूमि सर्वविद्याभण्डार, सुन्दर सुन्दर गंगा आदि नदी और ऊंचे ऊंचे पर्वतोंसे परिपूर्ण, उसका कुछ कुछ अंश संग्रह करके अन्यान्य देशीजन अपने आपको ऐश्वर्य्यमान् और सभ्यताका मूल जानकर पृथ्वीमें शिरोभूषण होकर उलटा हमहीको दूषण लगाने लगे। हिन्दूराजाओंके राज्यके समय भारतवर्षमें सम्पूर्ण विद्याओंकी चर्चा थी, ज्ञान वैराग्यमें लोग लवलीन थे। विद्वानोंके यशकी उज्ज्वल उज्ज्वल पताका भवन भवनपर फहरा रहीं थीं। शरत् पूर्णमासीके चन्द्रमाकी समान सर्व विदेशियोंकी दृष्टि भारतवर्षपरही पडती थी। हमारे गुरुजन भारतभूषण महामहोपाध्याय सुविज्ञ वैद्योंके होनेसे कदापि रोगसंकट उपस्थित नहीं होता था। और देवयोगसे होभी जाता था तो इस रीतिसे उसकी चिकित्सा करते थे कि पुनर्वार फिर कभी बहुत कालतकभी वह मनुष्य उस महाविकराल भीषणमूर्तिको स्वप्नमेंभी नहीं देखता था, परंतु अब ऐसा कठिन समय आ गया है कि एक रोगसे निवृत्ति नहीं होती तो दूसरा उपस्थित हो जाता है, फिर वह बिचारे मनुष्य क्या कर सकें ? निदान तन क्षीण मन मलीन हो बल, वीर्य्य, सुख और स्वार्थको जलांजलि दे बैठते हैं। भारतभूमि तो बहुत उत्तम और सुखोपार्जन है फिर यह दशा क्यों हुई ?

प्रियवर ! जब क्षत्रियवंशावतंस विश्वविजयी महाबलशाली धीरवीर दिल्हीनगराधिपति महाराजराजेश्वर राजा पृथ्वीराज चौहानपर जब साहबुद्दीन गोरीने

चढाई की, कईवार तो राजा पृथ्वीराजने मार मारकर भगा दिया, परन्तु एक वार बादशाहने धोखा देकर राजा पृथ्वीराजको पकड लिया और हिन्दुस्थानपर अपना अधिकार किया। उस समयसे भारतके ऐसे बुरे दिन आये कि वह वृत्तान्त लिखते हुए लेखिनीका हृदय विदीर्ण होता है और रो रोकर आंसू बहाती है, फिर मनुष्योंकी क्या दशा होनी चाहिये ? सबके रंगढंग बिगड गये। मुसलमान लोग यहांतक तंग करने लगे कि जो वस्तु पाते वह उठा ले जाते। जिन पुस्तकोंको पण्डितोंने दिनरात परिश्रम करकरके बडे उत्साहसे लिखा था उन पुस्तकोंको आगमें जलाजलाकर यमुनाके जलमें बहा दिया। सहस्रों कष्ट सहसहाकर दिन पूरे करते थे और जो कुछ औषधि कण्ठाग्र थी उनहीके बलसे रोगियोंकी चिकित्सा करते थे। दैवयोगसे जब वह वैद्य वैकुण्ठवासी हो गये तो उनकी सन्तान ठेठ मूर्ख हुई, क्योंकि ग्रन्थ तो प्रथमही जला दिये गये लिखना पढना किस प्रकार हो सके ? इस कारणसे आयुर्वेद और कर्म्मकाण्डका आचारविचार सब छूट गया और जिनको किञ्चिन्मात्रभी चिकित्साका अंश स्मरण था वह अपने आपको धन्वन्तरिकी समान मानने लगे। धर्म्मकर्म्मका नाम न रहा यहांतक आलस्यने घेरा जो कुछ जानते थे वहभी भूल गये। जहां देखो वहां यूनानी हिकमतका चर्चा। कुछ परमेश्वरका ऐसा कोप हुआ कि आयुर्वेदीय चिकित्साका सम्पूर्ण लोप हो गया। अत्तारोंकी दूकानें खुल गईं, गुले, गावजुबां, तुख्मरिहा, वेखअंजवार, वारतंग, वर्गकासनी यह अदवियात बिमारोंको दी जाने लगीं। देखिये ! थोडेही दिनोंमें क्यासे क्या हो गया, परमेश्वरकी गति कुछ जानी नहीं जाती। जब मुसलमान लोग अधिक अन्याय करने लगे तो परमात्माने भारतसे उनका राज्य गारत किया।

जब भारतवासियोंके कुछ दिन फिरे और नारायणने अपनी दया की तो हमारी रक्षा करनेवाली, दुःखदारिद्र हरनेवाली, प्रजागणपालक, अरिकुलबलघालक, पूर्णप्रतापी गवरमेण्टका राज्य हुआ। जब व्याघ्र और बकरी एक घाटपर पानी पीने लगे और सबके हृदयका शोक सन्ताप मिट गया। उस समय उत्साह बढा तो कटिबद्ध होकर देशदेशान्तरोंको चले, जहां कि राजाओंके राज्यमें लूट मार नहीं हुई थी वहां कोई कोई ग्रन्थ बच रहे थे उनसे विनयपूर्वक मिलमिलाकर उन ग्रन्थोंकी नकल कर लाये और फिर अपने अपने देशोंमें चर्चा फैलाया और विद्यार्थी आयुर्वेदके ग्रन्थ पढने लगे। धीरे धीरे आयुर्वेदका प्रकाश भारतखण्डमें होने लगा, उधर बंगालियोंने अधिक परिश्रम करके बहुत ग्रन्थोंका प्रकाश किया। कलिकत्ते, बनारस आदि नगरोंमें बहुतसे औषधालय खोल दिये। औषधियें बिकने लगीं परन्तु मेरा मनोरथ अभी पूर्ण नहीं हुआ, क्योंकि जबतक इस हमारी भारतभूमिमें महर्षिगणप्रणीत आयुर्वेदग्रन्थोंका अच्छी रीतिसे प्रचार न होगा तबतक भार-

तवासियोंको अनेक रोग एकत्र होकर भूतकी भांति महाभयङ्कर संकटमें डालकर कालके पञ्जेमें देते रहेंगे। सन्निपात और जीर्णज्वरादिकके दूर करनेको आयुर्वेदीय चिकित्साके सिवाय अन्य उपाय नहीं है। भारतसन्तानको भारतवर्षमें उत्पन्न होनेवाली औषधियोंका मिलनाभी कुछ कठिन नहीं है। घाट, बाट, वन, उपवन, पुष्पोद्यान, जंगल और जलथलमें उत्कटसे रोगोंकी औषधि बाहुल्यतासे मिल सक्ती हैं, परन्तु आधुनिक लोगोंको द्रव्योंका किश्चिन्मात्रभी ज्ञान नहीं, वही कहावत है। "ब्याहे न बरात गया" न कभी गुरुके संग जंगल गये, न कुछ पंसारीकी दूकानसे औषधि लाये। हाय ! मुझको यही बडा भारी सन्देह है कि भारतवासी आलस्यमेंही डूब गये और डूबते चले जाते हैं। इतनेपरभी ज्ञान नहीं होता कि हम कैसे हैं और हमारे पिता परपिता कैसे थे ? जिनके यशकी ध्वजा भारतखण्डके देशदेशान्तरोंमें फहरा रही है, वह सदैव गुरुजनोंकी सेवा करते थे। प्रातःकाल उठकर उनके साथ वनको जाते थे, गुरु उनको औषधियोंकी पहिचान और उनके नाम बताते थे, फिर घर आकर निघण्टुमें उनके गुण और आकार दिखाते थे। इस रीतिप्रीतिसे जब वह वैद्य पदवीको पाकर राज्यवैद्य कहलाते थे। वह लोग सामान्य औषधियोंके द्वारा सन्निपातादिक महा कठिन रोगोंको सहजमें शान्त कर देते थे, परन्तु आजकलके तुच्छ वैद्य अपने आपको धन्वन्तरिसे बडा जान धनके लोभसे मनमानी औषधि दे देते हैं और दो चार रुपैये ले लेते हैं। वह धनलोलुपी रातदिन यही मनाते रहते हैं कि दश दिनके होते बीस रोजमें रोगी अच्छा हो अधिक दिन कष्ट रहे तो पचास चालीस रुपैये तो हाथ आवें। जब उस रोगीको सन्निपात और तन्द्रा हो जाती है तब उनके पेटमें पानी हो जाता है, और स्त्रीको नानी कहने लगते हैं, परन्तु ऊपरके मनसे यही कहे जाते हैं कि अब अच्छा हुआ कोई घबराओ मत। इस समय एक मासा चन्द्रोदयकी आवश्यकता है, तुम शीघ्रतासे सात रुपैये लाओ हम इसको अभी अच्छा करते हैं इसका अभी बिगडाही क्या है ? सब लक्षण अच्छे दिखाई देते हैं। वह तो सात रुपैये लेकर वहांसे चम्पत हुए और रोगी बैकुण्ठको सिधार दिये। ऐसे महापापी हत्यारे वैद्योंको क्या नरकवास न होगा ? मुझको आशा है कि एकवार तो सभी छोटे बडे मुक्तकण्ठसे कहेंगे कि अवश्य होगा, अवश्य होगा, अवश्य होगा।

मित्रगण ! कुछ औरभी उनका सुयश सुनो। उन कुवैद्योंने आयुर्वेदीय चिकित्साकोभी अत्यन्त कलंकित किया है। चन्द्रोदयके बदले सिंगरफ, सारके बदले लोहेका मैल और अभ्रकके बदले गेरु और सुफेदेकी टिकिया यह औषधियोंको कलंकित करना है या और कुछ है ?

पाठकगण ! इसी प्रकार आजकल झूठे विज्ञापनवालोंनेभी अनेक प्रकारके प्रप-

थ रचकर प्राचीन आयुर्वेदीय औषधि और चिकित्साकी दुर्नामता की है। इन लोगोंमें बहुतसे हैं कि जो वैद्यक शब्दका लिखना अथवा उसका अर्थतकभी नहीं जानते, परन्तु बडे बडे चटकीले भडकीले, लम्बे, चौडे, विज्ञापन समाचारपत्रोंमें छपवाकर अपने नामके साथ मिथ्या उपाधि लगाकर भोलेभाले मनुष्योंको ठग रहे हैं। ऊपरोक्त कुवैद्य और इन मिथ्या नामधारी झूंठे विज्ञापनवालोंने जैसी इस आयुर्वेदको हानि पहुँचाई है वह वृत्तान्त में लिख नहीं सक्ता, सरकार विचार करे तो इनकी परीक्षा ले।

मित्रवर! अब कुछ भारतवासियोंका भाग्य चेता क्योंकि हमारी भारतेश्वरी महारानी विक्टोरियाने हमपर मसन्न होकर देशदेशान्तरोंमें हिन्दी दफ्तर कर दिया। विद्याका ऐसा चर्चा फैला कि आयुर्वेदकेभी बहुतसे नवीन ग्रन्थ निर्माण करके छपवा दिये। जब बहुत ग्रन्थ छपने लगे तो मेरे परममित्र, वैश्यवंशउजागर, सर्वगुणआगर, गोब्राह्मणहितकारी, सत्यव्रतधारी, पूर्णसुखरासी, कल्याणनिवासी श्रेष्ठ **गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदासने** अत्यन्त उत्साहके साथ आयुर्वेदाभिलाषी चातकोंकी तृषा शान्त करनेके लिये, स्वातिवर्षारूपी आयुर्वेदीय ग्रन्थोंको सहस्रों रुपैये व्यय करके देशदेशांतरोंसे मँगामँगाकर और कवियोंसे उनके भाषानुवाद कराये, जिससे संसारका उपकार हो। फिर उनको अपने यन्त्रालयमें छापकर प्रकाशित किया। मैंनेभी उनको अपना परममित्र समझकर धन्वन्तरि नामक ग्रन्थ सर्वार्थसिद्धि टीकासहित छपनेके लिये भेजा। जिस परिश्रम और प्रेमके साथ मैंने निर्माण किया था उसी प्रेमरीतिसे उन्होंने निज यन्त्रालयमें छापकर प्रसिद्ध किया। मैं उनको कहांतक धन्यवाद दूं। मेरी सब सज्जनोंसे यह प्रार्थना है कि इस धन्वन्तरी ग्रन्थको पढकर मेरा परिश्रम सफल करें और जहां कहीं अशुद्धि देखें तो मुझपर अनुग्रह करके एक कृपापत्र भेज दें।

आपका दर्शनाभिलाषी–

शालिग्राम वैश्य.

मुहल्ला–दीन्दारपुरा.

मुरादाबाद सिटी.

॥ श्रीः ॥

अथ

धन्वन्तरिकी विषयानुक्रमणिका.

इति ज्वररोगनिदानम् ।

अथ ज्वररोगचिकित्सा ।

इति वातव्याधिरोगचिकित्सा समाप्ता ।

इति व्रणरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ व्रणरोगचिकित्सा।

इति व्रणरोगचिकित्सा समाप्ता।

अथ भग्नरोगनिदानम्।

इति भग्नरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ भग्नरोगचिकित्सा।

इति भग्नरोगचिकित्सा समाप्ता।

इति मुखरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ मुखरोगचिकित्सा।

इति बालरोगचिकित्सा समाप्ता।

अथ विषरोगनिदानम्।

इति धन्वंतरिविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

विज्ञापन.

धन्वन्तरि

(बृहद्वैद्यक ग्रंथ)

लाला शालिग्राम वैश्य मुरादाबादनिवासीकृत " सर्वार्थसिद्धि " नाम भाषाटीकासहित ।

पाठकगण ! यद्यपि आजकल आयुर्वेदीय चिकित्साके बडे बडे ग्रन्थ मूल और भाषाटीकासहित मुद्रित हो चुके हैं, परन्तु जो सर्वसाधारणको उपयोगी और सुलभ हो ऐसा कोई ग्रन्थ आजतक कहीं नहीं छपा, इस ग्रन्थकी चिकित्सा प्रणाली प्राचीन ऋषिप्रणीत सम्पूर्ण ग्रन्थोंसे निराली है, इसके प्रयोग बडे विलक्षण और रामबाणकी समान गुणकारी हैं, जो प्रयोग इस ग्रन्थमें लिखे हैं वह अन्य ग्रन्थोंमें नहीं हैं, इसमें ज्वरसे लेकर विषरोगपर्यंत सब रोगोंकी अत्यन्त विस्तारपूर्वक सरल रीतिसे निदान और चिकित्सा कही है, जो क्वाथ, चूर्ण, अवलेह, तैल, घृत, गुटिका, मोदक, रस, रसायन प्रभृति इस ग्रन्थमें लिखे हैं वह अन्य ग्रन्थोंकी अपेक्षा अत्यन्त सरल और तत्काल फलदायक हैं, इसमें चिकित्साके चार पाद, वैद्यके लक्षण, रोगीके लक्षण, परिचारकके लक्षण, औषधिके लक्षण, वैद्यके कर्म्म, वैद्यको शिक्षा, आयुर्वेदके लक्षण, आयुर्वेदकी प्रशंसा, दूतके लक्षण, शुभाशुभ शकुन और स्वप्नका वर्णन, नाडीपरीक्षा, मूत्रपरीक्षा, मलपरीक्षा, जिह्वापरीक्षा, शब्दपरीक्षा, स्पर्शपरीक्षा, रूपपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा आदि रोग निश्चय करनेके लिये रोगीकी अनेक परीक्षा, और ज्वरसे लेकर विषरोगपर्य्यंत सम्पूर्ण रोगोंकी चिकित्सा अत्यन्त विस्तृतरूपसे लिखी है, अन्तमें रसायन और वाजीकरण अधिकारभी भले प्रकार वर्णन किया है, बालचिकित्सा और वन्ध्याचिकित्सा तथा स्त्रीचिकित्साभी पृथक् पृथक् अनुपम रीतिसे कही है, यदि इसमेंसे प्रत्येक रोगकी चिकित्सा अलग अलग की जाय तो बहुत ग्रन्थ बन सकते हैं, विशेष कहनेसे क्या प्रयोजन ? ऐसा ग्रन्थ आजतक कहीं नहीं छपा.

आपका— गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " छापाखाना,
कल्याण-मुम्बई.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

भाषाटीकासहितः

धन्वन्तरिः ।

मङ्गलाचरणम् ।

गणेशः—विघ्नध्वान्तनिवारणैकतरणिर्विघ्नाटवीहव्यवाड्
विघ्नव्यालकुलाभिमानगरुडो विघ्नेभपञ्चाननः ।
विघ्नोत्तुङ्गगिरिप्रभेदनपविर्विघ्नाम्बुधौ वाडवो
विघ्नाघौघघनप्रचण्डपवनो विघ्नेश्वरः पातु वः ॥ १ ॥

सरस्वती—या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥ २ ॥

शिवः—कल्पान्तक्रूरकेलिः क्रतुकदनकरः कुन्दकर्पूरकान्तिः
क्रीडन्कैलासकूटे कलितकुमुदिनीकामुकः कान्तकायः ।
कंकालक्रीडनोत्कः कलितकलकलः कालकालीकरालः
कालिन्दीकालकण्ठः कलयतु कुशलं कोऽपि कापालिको नः॥३॥

श्रीकृष्णः—वृन्दारण्ये तपनतनयातीरवानीरकुञ्जे
गुञ्जन्मञ्जुभ्रमरपटलीकाकलीकेलिभाजि ।
आभीराणां मधुरमुरलीनादसंमोहितानां
मध्ये क्रीडन्नवतु नियतं नन्दगोपालबालः ॥
राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली-
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारक्षमः ।
स्वच्छन्दव्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरं
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः ॥ ४ ॥

अथ पादचतुष्टयम् ।

वैद्यो गदार्तपरिचारकभेषजानि पादान् वदन्ति चतुरश्चतुरा इहैतान् । सर्वे परस्परमिमे ग्रथिता विनैकं पादं भवेद्विकल-ताकलितं हि शास्त्रम् ॥ ५ ॥

भाषा-वैद्य, रोगी, परिचारक (रोगीका सेवक) और औषधि ये चिकित्साके चार चरण चतुर वैद्योंने कहे हैं । ये चारों चरण परस्पर मिले हुए हैं, इनमेंसे एकके विनाभी शास्त्रमें विकलता होती है, अर्थात् चारों चरणोंमेंसे जो एक चरणभी नहीं होय तो चिकित्सा ठीक नहीं होती ॥ ५ ॥

तत्रादौ वैद्यलक्षणम् ।

समाधीतशास्त्रः शुचिः कर्म्मदक्षः कुलीनो दयालुः सुपीयूषपाणिः । परस्येङ्गितज्ञः स्पृहाद्यैर्विहीनः स वैद्यो वरिष्ठः सुधीरः प्रबोध्यः ॥ ६ ॥

भाषा-भले प्रकार वैद्यकशास्त्रका जाननेवाला, पवित्र, वैद्यककर्म्ममें प्रवीण, उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ, दयावान्, जिसके अमृतकी समान हाथ, अन्य मनुष्योंके अंगकी पीडाका जाननेवाला, धनादिकी इच्छारहित, धैर्य्ययुक्त और बुद्धिमान् ऐसा वैद्य उत्तम होता है ॥ ६ ॥

अथ रोगिणो लक्षणम् ।

प्रसादमालामिव यःस्वमूर्ध्नि बिभर्ति वाचं भिषजो धनाढ्यः । नवामयः सत्त्वगुणोपपन्नो विज्ञापको यो गदवानवर्ज्यः ॥ ७ ॥

भाषा-जो रोगी प्रसन्न चेष्टावाला वैद्यके वचनोंको प्रसादमालाकी समान मंगल पदार्थ मानकर परमप्रीतिसे निःसन्देह मस्तकपर धारण करनेवाला और धनवान् हो जो प्रसादकी मालाकी समान वैद्यके वचनको अपने शिरपर धारण करनेवाला रोगी हो जिसके रोग उत्पन्न हुए थोडा समय हुआ हो, धैर्य्य क्षमा आदि सत्त्वगुणसंपन्न, अपने रोगका वृत्तान्त वैद्यके आगे अच्छे प्रकार ठीक ठीक कहनेवाला ऐसा रोगी उत्तम होता है ॥ ७ ॥ चिकित्साके योग्य है.

अथ परिचारकलक्षणम् ।

आर्तानुकूलोऽनलसः सुशुद्धः प्रज्ञाम्बुराशिर्भिषगुक्तकारी । योऽत्यन्तवृद्धः श्रुतिपण्डितश्च सल्लक्षणाढ्यः परिचारकश्च ॥ ८ ॥

भाषा-रोगीके अनुकूल, आलस्यरहित, पवित्र, बुद्धिवान्, वैद्यकी आज्ञानुसार चलनेवाला, अतिवृद्ध, वेदज्ञानमें पण्डित ऐसे शुभलक्षणोंवाला परिचारक होनाचाहिये ८

अथ औषधलक्षणम्।

कालादि संवीक्ष्य भिषग्वरेण दत्तं गुणाढ्यं बहुकल्पयुक्तम्।
यदल्पमात्रं बहुरोगहारि क्षमं तदेवौषधमार्तिनाशे ॥ ९ ॥

भाषा-जो औषधि देश काल आदिका विचार कर वैद्यद्वारा दी जाय जो गुणयुक्त, अधिक कल्पसंयुक्त हो, जिसकी अल्प मात्राही अनेक रोगोंको दूर करे ऐसी औषधि रोगोंके समुदायको नष्ट करती है उसीको लेना चाहिये ॥ ९ ॥

अथ प्रशस्तदूताः।

यः श्वेतवस्त्रावृतपूर्णपाणिः सम्पूर्णताम्बूलमुखः प्रशस्तः। द्विजस्तथा माणवकः सुशीलः प्रज्ञाधिकश्चाह्वयते सुखाय ॥ कुसुममुकुलवक्त्रं यस्य स्यात्सदापि शुभविकचसरोजपद्मकिञ्जल्कपुष्पम्। करतलवरवस्त्रं पुष्पपूरांगरागं करतलधृतमेतत् सौख्यकर्ता हि दूतः ॥ आगत्योदीच्यपूर्वामथ वरुणदिशमैशिमाश्रित्य शान्तो दृष्ट्वा वैद्यं प्रहस्य प्रवदति निपुणं नातिनीचं न चोच्चम्। उत्तिष्ठ त्वं प्रसादं कुरु सुखद इदं सौख्यवाक्यं तनोति प्राज्ञैः स्वार्थं प्रकृष्टं सुखमगदकरं रोगिणां वैद्यलाभः ॥ पूर्वां दिशं समासाद्य प्रशान्तः शान्तया गिरा। वैद्यं वदति लाभाय रोगिणाञ्च सुखावहम् ॥ यश्चात्युपनिविष्टोपि श्लोकं वाथ सुभाषितम्। वदते शान्तया वाचा सोऽपि लाभाय शान्तये ॥ अभिवाद्यस्य वैद्यस्य क्षेमं पृच्छति यः पुनः। फलं ददाति पुष्पं वा रोगिणां च सुखावहम् ॥ १० ॥

भाषा-जो श्वेत वस्त्र धारण कर रहा हो, दोनों हाथोंमें कोई उत्तम पदार्थ लिये हो, पानसे मुख पूर्ण होरहा हो, ब्राह्मणादि उत्तम जाति हो, वा थोडी अवस्थाका बालक हो, शान्त स्वभाव हो और अत्यन्त बुद्धिमान् हो ऐसा दूत वैद्यके बुलानेको भेजना चाहिये। जिसका मुख पुष्पकलीकी समान प्रसन्न रहे तथा प्रफुल्लित कमलकी सदृश विकसित हो और हाथमें सुन्दर वस्त्र, फूल, अंगराग लिये हो ऐसा दूत वैद्यके बुलानेमें श्रेष्ठ होता है। जो दूत आकर उत्तर वा पूर्व अथवा पश्चिम वा ईशानकोणकी ओर शान्तस्वभावसे बैठकर वैद्यको देख प्रसन्नचित्तसे दण्डवत् प्रणाम कर अत्यन्त मधुर वचनोंसे कहे कि हे वैद्यराज! मेरे साथ चलकर रोगीका चित्त प्रसन्न

कीजिये, इस प्रकार जो दूत रोगी और वैद्यके लिये हितकारक वचन बोलता है वह उत्तम दूत समझना चाहिये । जो पूर्वदिशाकी ओर बैठकर शान्तिके साथ शीलस्वभावसे वैद्यके सन्मुख बोलता है वह दूत वैद्य और रोगियोंको सुख देनेवाला है । जो दूत वैद्यके स्थानपर जाकर सुखसे बैठकर श्लोक मधुर वाक्य बोलता है वहभी परम श्रेष्ठ है । जो दूत प्रथम वैद्यको प्रणाम कर कुशल क्षेम बूझ पश्चात् फूल वा फल भेंट देता है वह दूत रोगीको अत्यन्त सुख देनेवाला है ॥ १० ॥

अथानिष्टदूताः ।

खञ्जान्धमूकबधिरं रुजपीडितं वा बालं स्त्रियं च विकलं तृषितं विजीर्णम् । श्रान्तं क्षुधातुरभ्रमितं च दीनं दूतं न शस्तमिह वेदविदो वदन्ति ॥ कषायकृष्णार्द्रकवाससा च तथैव वस्त्रावृतमस्तकेन । अश्रुप्लुतैर्वा नयनैश्च युक्ताः केशैस्तथा मुण्डितमस्तकश्च ॥ स मर्कटाक्षोर्ध्वशिरोरुहश्च खर्वस्तथा वामनकृत्तनासः । एतान्न शंसन्ति विदो मुनीन्द्रा दूतान्नराणां रुजनाशनाय ॥ यः कर्कशक्रोधनपाशपाणिर्भिषग्विदूषी तमसावृतश्च । एते न शस्ताः प्रवदन्ति धीरा दूता विकारं च प्रवर्द्धयन्ति ॥ यः काष्ठहस्तोद्धृतपाशपाणिस्तथातुरो दीनवचो हि रोदिति । प्रक्लिन्ननेत्रो गमनोत्सुकोऽपि वर्ज्यो रुगार्तोऽशुभकारि दूतः॥यो रज्जुहस्तोद्धृतपाशपाणिर्याम्यां दिशं च परिभूय तूर्णम् । यो वावदीति प्रबलं सरोषस्तथा समागम्य वदेच्च दूतः ॥ लगुडं हस्तेऽवष्टभ्य वक्रं पादेन तिष्ठति । तस्मादाकुलवादी यो न शस्तो वैद्यकर्म्मसु ॥यथा गच्छति शीघ्रेण आविश्योत्थाय मुह्यति । पादौ प्रसार्य्य विशति मस्तके विन्यसेत् करम् ॥ भिनत्ति लोहकाष्ठं च तृणं वा स्फोटते क्वचित् । एतानि स्पृशते नासां स्तनं वा स्पृशति पुनः ॥ भूमिं लिखति पादेन रेखां वापि करोति यः । निद्रां वा कुरुते यस्तु स दूतोऽनिष्टकारकः ॥ ११ ॥

भाषा–खञ्जा (लंगडा), अन्धा, गूंगा, बहिरा, रोगी, बालक, स्त्री, विकलशरीर, तृषासे पीडित, बहुत बूढा, थका हुआ, भूखसे व्याकुल, भ्रमयुक्त (वहमी)

और दीन ऐसा दूत अच्छा नहीं होता अर्थात् ऊपरोक्त लक्षणोंवाला दूत नहीं होना चाहिये। गेरुआ पहरे काले रंगमें रँगे हुए, तेलकी समान रंगवाले और भीगे कपडे धारण किये हुए, मस्तकसे वस्त्र बांधे हुए, जिसके नेत्रोंमें आंसू भर रहे हों, शिरपर जटाओंको धारण किये हों अथवा जिसका शिर मुड रहा हो, जिसकी आंखें बन्दरकी आंखकी समान हों, जिसके बाल बिखर रहे हों तथा बौना और नकटा हो इस प्रकारके दूत अशुभ हैं। जो कर्कश और क्रोधी हो अथवा जिसके हाथमें फांसी हो, वा वैद्यको दोष देनेवाला और तामसी हो ऐसे दूत शुभ नहीं होते वरन रोगको और अधिक बढानेवाले हैं। जो काठको हाथमें धारण कर रहा हो, अथवा ऊपरको हाथ किये जालको ले रहा हो, घबडाकर हो, दीन वचन कहे और रोवे, जिसके नेत्र जलसे डबडबा रहे हों और चलनेकी चेष्टा करता हो ऐसा अहितकारक दूत त्यागने योग्य है। जो ऊपरको हाथ उठाकर हाथमें रस्सी लिये हो वा फांसी लिये हो तथा वैद्यसे दक्षिण दिशाकी ओर बैठकर क्रोधसहित बोले ऐसा दूत वैद्यके पास कभी नहीं भेजना चाहिये। जो दूत लाठी हाथमें लेकर पैरको टेढा करके खडा होवे और व्याकुलताके वाक्य कहे ऐसे दूतको अवश्य त्यागना चाहिये। जो मार्गमें शीघ्रतासे चले और बैठने उठनेके समय बेसुधि हो जाय, पाओंको पसारकर चले, माथेपर हाथको मोर, लोहा, काठ, तृण इनमेंसे किसीको तोडे अथवा छुवे वा नासिका वा स्तनको स्पर्श करे तथा पांवकी उंगलीसे पृथ्वीमें लिखे अथवा रेखा खैंचे वा बैठाही बैठा सो जाय ऐसा दूत त्यागने योग्य है॥ ११॥

अथ प्रशस्तशकुनम्।

राजा गजो द्विजमयूरकखञ्जरीटाश्चापः शकुन्तरजकः सितवस्त्रयुक्तः। पुत्रान्विता च युवती गणिका च कन्या श्रेयःसुखाय यशसे प्रतिदर्शयन्ति॥ लट्वा श्येनो भासहारीतचक्रो भारद्वाजश्छिक्करश्छागसंज्ञः। एते श्रेष्ठा दक्षिणे सव्यवामे वैद्यावेशे निर्गमे श्रेयसे च॥ १२॥

भाषा-राजा, हाथी, ब्राह्मण, मोर, खञ्जन (ममोला), नीलकण्ठ, धोबी, सफेद वस्त्रोंवाला मनुष्य, पुत्रवती स्त्री, वेश्या, कन्या ये सब शकुन पहिलेही पहिल देखे हुए यश और सुखको प्राप्त करते हैं। चिडिया, सिकरा, गीध, हरियल, चकवा, भारद्वाजपक्षी, छिकर और बकरा ये सब शकुन वैद्यको कहीं जानेमें अथवा आनेमें बायें और दाहिने दोनों ओरके शुभदायक हैं॥ १२॥

अथानिष्टशकुनम् ।

सर्प्पोलूको वानरः सूकरश्च गोधा ऋक्षः कृकलासः शशश्च ।
एतेऽरिष्टा निर्गमे वा प्रवेशे कार्य्ये निर्घातोपकारेषु शस्ताः ॥ १३ ॥

भाषा–सांप, उल्लू, बन्दर, सुअर, गोह, रीछ, कैंचुआ और खरगोश ये सब शकुन वैद्यके आने जानेमें अशुभ हैं और घातकर्ममें उत्तम हैं ॥ १३ ॥

अथाष्टौ परीक्षाः ।

नाडी च मूत्रं च मलश्च जिह्वा शब्दश्च संस्पर्शनरूपदृष्टिः ।
येन प्रकारेण परीक्षणीयं समासतोऽसौ विधिरुच्यतेऽत्र ॥ १४ ॥

भाषा–नाडीपरीक्षा, मूत्रपरीक्षा, मलपरीक्षा, जिह्वापरीक्षा, शब्दपरीक्षा, स्पर्शपरीक्षा, रूपपरीक्षा और नेत्रपरीक्षा यह आठ परीक्षा जिस प्रकार करनी चाहिये उसकी विधि हम संक्षेपरीतिसे वर्णन करते हैं ॥ १४ ॥

तत्रादौ नाडीपरीक्षा ।

सव्येन रोगधृतिकूर्परभागभाजा पीड्याथ दक्षिणकराङ्गुलिकात्रयेण । अंगुष्ठमूलमधिपश्चिमभागमध्ये नाडीं प्रभातसमये प्रहरं परीक्षेत् ॥ वाताद्वक्रगता नाडी चपला पित्तवाहिनी । स्थिरा श्लेष्मवती ज्ञेया सर्वदोषा तु सर्वगा ॥ नाडी धत्ते मरुत्कोपे जलौकासर्प्पयोर्गतिम् । काकलावकमण्डूकगतिं पित्तप्रकोपतः ॥ राजहंसमयूराणां पारावतकपोतयोः । कुक्कुटस्य गतिं धत्ते धमनी कफसङ्गिनी ॥ मुहुः सर्पगतिर्नाडी मुहुर्भेकगतिस्तथा । वातपित्तद्वयोद्भूतां तां वदंति विचक्षणाः ॥ मण्डूकादिगतिस्थाने राजहंसगतिं धरा । पित्तश्लेष्मद्वयोद्भूतां विद्याद् वैद्यविशारदः ॥ राजहंसगतिस्थाने भुजंगादिगतिं धरा । वातश्लेष्मगतिस्येता स्यात्तयोर्मिश्रलक्षणम् ॥ उरगादिलावकादिहंसादीनां च बिभ्रती गमनम् । वातादीनां च समं धमनी सम्बन्धमाधत्ते ॥ लावतित्तिरवर्त्तिकगमनं सन्निपाततः । कदाचिन्मन्दगमना कदाचित् शीघ्रगा भवेत् ॥ त्रिदोषप्रभवे रोगे विज्ञेया हि भिषग्वरैः ॥ मन्दं मन्दं शिथिलशिथिलं व्याकुलं व्याकुलं वा स्थित्वा

स्थित्वा वहति धमनी याति नाशं च सूक्ष्मा। नित्यं स्कन्धे स्फुरति पुनरप्यंगुलीः संस्पृशेद्वा भावैरेवं बहुविधतरैः सन्निपातोपजुष्टा ॥ अङ्गग्रहेण नाडीनां जायन्ते मन्थराः प्लुवाः। प्लुवः प्रबलतां याति ज्वरदाहाभिभूतये ॥ सान्निपातिकरूपेण भवन्ति सर्ववेदनाः। ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥ उष्णं पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्युष्मणा विना। उष्णा वेगधरा नाडी ज्वरकोपे प्रजायते ॥ ज्वरे च वक्रा धावन्ती तथा च मारुतः प्लुवे। रमणान्ते निशि प्रातस्तथा दीपशिखा यथा ॥ सौम्या सूक्ष्मा स्थिरा मन्दा नाडी सहजवातजा। स्थूला च कठिना शीघ्रा स्पन्दते तीव्रमारुते ॥ वक्रा च चपला शीतस्पर्शा वातज्वरे भवेत्। द्रुता च सरला दीर्घा शीघ्रा पित्तज्वरे भवेत् ॥ शीघ्रमाहननं नाड्याः कठिन्याच्चलते तथा। नाडी तन्तुसमा मन्दा शीतला श्लेष्मदोषजा ॥ मलाजीर्णे नातितरां स्पन्दनं च प्रकीर्तितम्। चञ्चला तरला स्थूला कठिना वातपित्तजा ॥ ईषच्च दृश्यते तूर्णा मन्दा स्याच्छ्लेष्मवातजा। निरन्तरं खरं सूक्ष्मं मन्दश्लेष्मा विना बलम् ॥ रूक्षवाते भवेत्तस्य नाडी स्यात् पित्तसन्निभा। सूक्ष्मा शीता स्थिरा नाडी पित्तश्लेष्मसमुद्भवा ॥ मध्ये करे वहेन्नाडी यदि सन्तापिता ध्रुवम्। तदा नूनं मनुष्यस्य रुधिरापूरिता मलाः ॥ भूतज्वरे सेक इवातिवेगात् धावन्ति नाड्यो हि यथाब्धिगामाः। एकाहिकेन क्वचन प्रदूरे क्षणान्तगामा विषमज्वरेण ॥ द्वितीयके चाथ तृतीयतुर्ये गच्छन्ति तत्ता भ्रमिवत् क्रमेण ॥ उष्णा वेगधरा नाडी ज्वरकोपे प्रजायते। उद्वेगक्रोधकामेषु भयाच्चिन्ताश्रमेषु च। भवेत् क्षीणगतिर्नाडी ज्ञातव्या वैद्यसत्तकैः ॥ अजीर्णे तु भवेन्नाडी कठिनोपरितो जडा। प्रसन्ना च द्रुता

शुद्धा त्वरिता च प्रवर्तते ॥ पक्वाजीर्णे पुष्टिहीना मन्दं मन्दं वहेज्जडा। असृक्पूर्णा भवेत् कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥ लघ्वी भवति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती मता । मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मन्दतरा भवेत् ॥ मन्देऽग्नौ क्षीणतां याति नाडी हंसाकृतिस्तथा ॥ आमाश्रमे पुष्टिविवर्द्धनेन भवन्ति नाड्यो भुजगाग्रमानाः। आहारमांद्याद्युपवासतो वा तथैव नाड्योऽग्रभुजाभिवृत्ताः॥पादे च हंसगमना करे मण्डूकसंप्लवा । तस्याग्नेर्मन्दता देहे त्वथवा ग्रहणीगदे ॥ भेदेन शान्ता ग्रहणीगदेन निर्वीर्य्यरूपा त्वतिसारभेदे । विलम्बिकायां प्लवगा कदाचिदामातिसारे पृथुला जडा च ॥ निरोधे मूत्रशकृतोर्विड्ग्रहे त्वतिगुर्विणी । विषूचिकाभिभूते च भवन्ति भेकवत् क्रमाः॥ आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च भवेन्नाडी गरिष्ठता। वातेन शूलेन मरुत्प्लवेन सदैव वक्रा हि शिरा वहन्ती । ज्वालामयी पित्तविचेष्टितेन साध्या न शूले न च पुष्टिरूपा ॥ प्रमेहग्रन्थिरूपा सा सुतप्ता त्वामदूषणे ॥ उत्थितसुरूपा विषरिष्टकायां विष्टम्भगुल्मेन च वक्ररूपा। अत्यर्थवातेन अधः स्फुरन्ती उत्तानभेदिन्यसमाप्तकाले ॥ गुल्मेन कम्पाथ पराक्रमेण पारावतस्येव गतिं करोति ॥ व्रणार्थ कठिने देहे धावन्ती पैत्तिकं क्रमम्। भगन्दरानुरूपेण नाडी व्रणनिवेदने ॥ प्रयाति वातिकं रूपं नाडी पात्रकरूपिणी । वान्तस्य शल्याभिहतस्य जन्तोर्वेगावरोधाकुलितस्य भूयः। गतिं विधत्ते धमनी गजेन्द्रमरालमानेव कफोल्बणेन ॥ स्त्रीरोगादिकमपि रक्तादिज्ञानक्रमेण ज्ञातव्यम् ॥ पूर्वं पित्तगतिं प्रभंजनगतिं श्लेष्माणमाबिभ्रतीं स्वस्थानभ्रमणं मुहुर्विदधतीं चक्राधिरूढामिव । तीव्रत्वं दधतीं कलापिगतिकां सूक्ष्मत्वमातन्वतीं ते साध्यां धमनीं वदन्ति सुधियो नाडीगतिं

ज्ञानिनः ॥ या तूबा च स्थिरात्यन्ता या चेयं मांसवाहिनी। या च सूक्ष्मा च वक्रा च तामसाध्यां विदुर्बुधाः ॥ भारप्रवाहमूर्छाभयशोकप्रमुखकारणान्नाडी। संमूर्छितापि गाढं पुनरपि सा जीवनं धत्ते ॥ सद्यः स्नातस्य भुक्तस्य क्षुत्तृष्णातपसेविनाम्। व्यायामाक्रान्तदेहस्य सम्यङ् नाडी न बुध्यते ॥ तैलाभ्यक्ते रतेरन्ते भोजनान्ते तथैव च। उद्वेगादिषु नाडी च न सम्यगवबुध्यते ॥ १८ ॥

भाषा–नाडी देखनेकी विधि लिखते हैं। प्रातःकाल प्रथम प्रहरमें रोगको धारण करनेवाली हाथके पहुँचेमें जो तीन नाडी हैं, उनको दहिने हाथकी तीन अंगुलियोंसे दबाकर और दूसरे हाथसे रोगीके हाथकी कुहनीको भले प्रकार पकडकर उस अंगूठेकी मूलके नीचे नाडीकी परीक्षा करनी चाहिये। वातके कोपसे नाडी वक्र (टेढी) चलती है, पित्तके कोपसे चपल (तेज) चलती है, कफके कोपसे स्थिर (मन्द) चलती है और सब दोषोंके कुपित होनेसे तीनों लक्षणोंवाली होती है अर्थात् कभी टेढी कभी चञ्चल और कभी धीरे धीरे चलती है। वातके कोपसे नाडी जोंककी समान और सांपकी समान चलती है। पित्तके कोपसे कौए, चिडे, लवे और मेंडककी चाल चलती है। कफके कोपसे नाडी राजहंस, मोर, परेवा, कबूतर और मुर्गेकी चाल चलती है। जो नाडी कभी सांपकी चाल और कभी मेंडककी समान चले उसको वातपित्तके कोपसे उत्पन्न हुई जानना। जो नाडी हंस और मेंडककी गतिकी समान चले उसको पित्तकफके कोपसे उत्पन्न हुई जानना। जो नाडी हंस और सांपकी गतिकी समान चलती हो तो उसको वातकफकोपजन्य जानना। समान वातादि त्रिदोषके कुपित होनेसे नाडी सांप, लवा और हंसकी समान चाल चलती है। लवा, तीतर और बटेरकी समान नाडी सन्निपातसे चलती है। तथा जो कभी मन्द मन्द, कभी शिथिल शिथिल चले, कभी व्याकुलतासे, कभी थमथमके चले, कभी चलतीही न जान पडे, कभी बहुतही सूक्ष्म चलने लगे, कभी नित्य स्थानको छोडकर चले, फिर अपने स्थानपर आनकर चलने लगे और अंगुलियोंको स्पर्श करे इस प्रकार अनेक भावोंसे सन्निपातकी नाडी चलती है। ज्वर आनेसे पहिले शरीरमें पीडा होने लगती है और नाडी मन्दमन्द तेजीके साथ चलने लगती है। दाहज्वरकी पहिली अवस्थामें नाडी मेंडककी समान बडे वेगसे चलने लगती है और सन्निपातज्वरके पूर्वरूपमें अनेक प्रकारसे नानाभांतिकी वेदनायुक्त चलने लगती है। ज्वरके कोपमें नाडी गरम और अत्यंत

वेगसे चलती है। पित्तके विना गरमी नहीं होती और गरमीके बिना ज्वर नहीं होता, इस प्रकार ज्वरके कोपमें नाडी टेढी और वेगवती चलती है। इसी प्रकार वातके कोपमें चलती है। मैथुनके पश्चात् रात्रि और प्रातःकालके समय दीपककी ज्योतिके समान धीरे धीरे चलती है। स्वाभाविक वातकी नाडी सौम्य, स्थिर और मन्दमन्द चलती है। वातके कोपसे नाडी स्थूल, कठिन और शीघ्र चलती है। वातज्वरकी नाडी वक्र (टेढी) चञ्चल और शीतल चलती है और स्पर्श करनेसे शीतल मालूम होती है। पित्तज्वरकी नाडी शीघ्र, सरल, दीर्घ और कठिनतासे जल्दी जल्दी चलती है। कफज्वरमें नाडी तन्तुकी समान सूक्ष्म, मन्दवेगवाली और शीतल होती है। मलअजीर्णमें धीरे धीरे फडकती है। वातपित्तकी नाडी चपल, तरल, स्थूल और कठिन चाल चलती है। कफ और वातकी नाडी किञ्चित् गरम और मन्द-मन्द चलती है। किञ्चित् कफ और अधिक वातज्वरकी नाडी निरन्तर शीघ्र और रूखी चलती है। रूक्षवातकी नाडी पित्तकी समान चलती है। पित्तकफज्वरमें नाडी सूक्ष्म, शीतल और धीरे चलती है। त्रिदोषके कोपसे रुधिरकी नाडी हाथके मध्यभागमें सन्तापित होकर चलती है। भूतज्वरमें नाडी बहुत शीघ्र चलती है। जिस प्रकार समुद्रमें जानेवाली नदी वेगसे चलती है। एकाहिकज्वरमें नाडी सीधे मार्गको छोडकर क्षण क्षणमात्रमें टेढी तिरछी चलने लगती है और द्वितीय तृतीय तथा चातुर्थिक विषमज्वरमें गरम होकर इधर उधर टेढी चलती है। उष्ण और वेगवती नाडी ज्वरके कोपसे चलती है। उद्वेग, क्रोध, काम, भय, चिन्ता और श्रम इन ज्वरोंके वेगकी नाडी क्षीणगतिसे चलती है। व्यायाम (कसरत) कर-नेसे, भ्रमण करनेसे, चिन्ता करनेसे, श्रम और शोकादिकके करनेसे और विना ज्वरवाले मनुष्यकी नाडी अनेक प्रभावसे चलती है। अजीर्णरोगकी नाडी कठिन और भारी चलती है। तथा कभी प्रसन्न निर्दोष और शीघ्र गमन करती है। पक्वाजीर्णकी नाडी निर्बल, मन्दमन्द और भारी चलती है और रुधिरपूर्ण नाडी उष्ण और भारी होती है और आमाजीर्णकी नाडी हंसकी समान मन्दमन्द चलती है। दीपन अग्निवाले मनुष्यकी नाडी हलकी और शीघ्रगामी होती है। मन्दाग्निवाले मनुष्यकी नाडी और क्षीणधातुवालेकी मन्दमन्द चलती है। जो मनुष्य अग्निके मन्द होनेसे क्षीण हो जाते हैं उनकी नाडी हंसकी समान अत्यन्त मन्द चलती है। आमके होनेसे, परिश्रमके करनेसे और शरीरमें पुष्टताके होनेसे नाडी सर्पके अग्रभागकी समान चलती है और अल्प आहार करनेसे अथवा उपवास करनेसे नाडी भुजाके अग्रभागमें सांपके अग्रभागकी समान चलती है। पांवकी नाडी हंसकी समान और हाथकी नाडी मेंडककी सदृश चले तो जान लेना कि इस मनुष्यके शरीरमें मन्दाग्नि अथवा संग्रहणी रोग है। संग्रहणी रोगमें दस्त होनेके

पीछे नाडी शान्त हो जाती है अतीसारमें नाडी दस्त होनेके पीछे निर्बल हो जाती है। विलम्बिकारोगमें नाडी मेंडककी समान चलती है और आमातिसाररोगमें नाडी स्थूल तथा भारी चलती है। मल वा मूत्रके अवरोध (रोकनेमें) अथवा मलमूत्र दोनोंके अवरोधमें वा अपनी इच्छासे मलमूत्रके वेगको धारण करनेसे तथा विषूचिकारोगमें नाडी मेंडककी चाल चलती है। आनाह (कबज) और मूत्रकृच्छ्र (सोजाक) रोगकी नाडी भारी होती है। वातशूलमें और वातकी तीक्ष्णतामें नाडी सदा टेढी चलती है। पित्तके शूलमें नाडी अत्यन्त उष्ण (गरम) होती है और आमशूलमें नाडी पुष्ट होती है। प्रमेहरोगवालेकी नाडी गांठकी समान होती है और आमवातवालेकी नाडी सदैव उष्ण चलती है। विषभक्षण अथवा अरिष्टलक्षणोंके होनेसे पहिले तथा विष्टम्भ और गुल्मरोगमें नाडी वक्ररूपसे चलती है। इन रोगोंकी पीडाओंमें विशेष वायुके कोप होनेसे नाडी नीचे फडकती है और पूर्वरूपमें नाडी अत्यन्त ऊंची चलती है। गुल्मरोगकी नाडी कम्पयुक्त बलवान् होकर कबूतरकी समान चाल चलती है। व्रणकी कठिन अवस्थामें नाडी पित्तकी समान तेज चलती है। भगन्दररोगमें और व्रणरोगमें नाडी वातकी नाडीकी समान और गरम चलती है। जिस मनुष्यने वमन करी हो तथा जिस मनुष्यके शस्त्र आदिकी चोट लगी हो और मलमूत्रके धारण करनेवाले पुरुषकी नाडी तथा कफोल्वण (कफके प्रधान) वालेकी नाडी हाथी और हंसादिककी समान मन्दमन्द चलती है। इसी प्रकार प्रदरादि रोगोंवाली स्त्रियोंकी नाडीको वैद्यलोग रक्तादिकके ज्ञानसे जान लेते हैं। जिस मनुष्यकी नाडी प्रथम पित्तचालसे फिर वातचालसे चले पीछे कफकी चाल चले इस प्रकार जो नाडी वारंवार अपने क्रमको छोडकर चले, अथवा अपने स्थानको छोडकर वारंवार नाना प्रकारसे चक्र (चाक) की समान गमन करे और कभी शीघ्र गमन करे और कभी मोरकी चाल सदृश क्रमसे मन्द हो जाय ऐसी नाडीको नाडीकी गति जाननेवाले वैद्य साध्य नहीं कहते। जो नाडी अत्यन्त ऊंची हो अथवा अत्यन्त जड हो तथा मांसवाहिनीकी समान गमन करे, अत्यन्त सूक्ष्म अथवा अत्यन्त वक्र हो उस नाडीवालेको असाध्य कहते हैं। बहुत बोझके उठानेसे, मूर्छाके आनेसे, भय और धन पुत्रादिके शोकसे दबी हुई नाडीभी साध्य हो जाती है। जिसने तत्काल स्नान किया हो, तत्काल भोजन किया हो, क्षुधासे पीडित हो, तृषासे व्याकुल हो और कसरत करनेसे जिस मनुष्यका शरीर थक रहा हो ऐसे लोगोंकी नाडी ठीक ठीक नहीं जान पडती। जिसने शरीरपर तैल मला हो, मैथुनके अन्तमें, भोजनके अन्तमें और उद्वेगादिके समय नाडी ठीक ठीक नहीं मालूम होती इस कारण उस अवस्थामें नाडी नहीं देखनी चाहिये ॥ १९ ॥

अथ मूत्रपरीक्षा ।

पश्चिमे रजनीयामे घटिकायां चतुष्टये । उत्थयेत् रोगिणो वै- द्यैर्मूत्रोत्सर्गं तु कारयेत् ॥ आद्यधारां परित्यज्य मध्यधारा- समुद्भवम् । कारयेत् कांस्यपात्रे वा कुर्यात्पात्रं परावृतम् ॥ ततः सूर्योदये जाते प्रकाशे सति भाजने । स्थितं मूत्रं समा- लोक्य कुर्यात्तस्य परीक्षणम् ॥ वाते तोयसमं मूत्रं रूक्षं ब- हुतरं भवेत् । रक्तवर्णं भवेत्पित्ते पीतं वा स्वल्पमेव च ॥ कफे श्वेतं घनं मूत्रं स्निग्धं सञ्जायते तथा । द्विदोषे द्वन्द्वचिह्नं स्यात् सर्वलिंगं त्रिदोषजे ॥ सुलक्षितं गृहीतं यन्मूत्रं घर्मे निधाय तत् । तैलबिन्दुं क्षिपेत्तत्र निश्चले वैद्यसत्तमः ॥ जा- यन्ते बुद्बुदा यत्र विकारः सोऽस्ति पित्ततः । रूक्षं च श्यामल- च्छायं वाते मूत्रं प्रजायते ॥ मूत्रं श्लेष्मणि जायेत समं प- ल्वलवारिणा । मूत्रेण सार्द्धं मिलितस्तैलबिन्दुः प्रजायते ॥ सिद्धार्थतैलसदृशं मूत्रं वै पित्तमारुते । श्वेतधारा महाधारा पीतधारा तदा ज्वरः ॥ रक्तधारा ज्वरे दीर्घे कृष्णा च मरणाय वै । श्लेष्मवाते भवेन्मूत्रं काञ्जिकेन समं तथा॥ पाण्डुरं श्लेष्मपित्ते च पीतं चैव परीक्षयेत् । सन्निपाते च यन्मूत्रं कृष्णं तल्लक्षये- द्बुधः ॥ अधो बहुलमारक्तं मूत्रं तु यदि लोक्यते । वदन्ति त- च्चातिसारं लिंगं तु लिंगवेदिनः ॥ रक्तवातेन रक्तं स्यात् कौसुम्भं रक्तपित्ततः । तैलतुल्यं भवेन्मूत्रं नित्यं सहजपित्ततः ॥ कफ- प्रकृतितो मूत्रं तुल्यं पल्वलवारिणा । वातप्रकृतितो मूत्रं नीराभं बहुलं भवेत् ॥ जलोदरसमुद्भूतं मूत्रं घृतकणोपमम् । आमवात- वशान्मूत्रं तक्रतुल्यं प्रजायते ॥ मलेन पीतवर्णं च बहुलं च निगद्यते । पीतवर्णं यदा मूत्रं तैलतुल्यं सबुद्बुदम्॥ तदप्यसाध्य- मादिष्टं सद्भिर्वैद्यकवेदिभिः । अजीर्णेन भवं मूत्रं श्वेतं चापि तथारुणम् ॥ अजामूत्रसमं मूत्रमजीर्णत्वाच्च जायते । मूत्रं तु

कृष्णतां याति क्षयरोगे तथा किल। क्षयरोगे यदा श्वेतमसाध्यं तद् विनिर्दिशेत्॥ पीतमच्छं च जायेत मूत्रं पित्तोदये सति। समधातोः पुनः कूपजलतुल्यं च कथ्यते॥ ऊर्ध्वं नीलमधो रक्तं रुधिरेण प्रजायते। प्रवर्तते यदा मूत्रं स्निग्धं तैलसमप्रभम्॥ आहारादुदरं तस्य वृद्धिं याति तदा किल। ऊर्ध्वं पीतमधो रक्तं मूत्रं चेद्रोगिणस्तदा॥ पित्तप्रकृतिसम्भूतं सन्निपातं वदेद् भिषक्। यस्येक्षुरससंकाशं मूत्रं नेत्रे च पिञ्जरे॥ रसाधिक्यं विजानीयाल्लंघनं तस्य निर्दिशेत्। रक्तं स्वच्छं च यन्मूत्रं तज्ज्वराधिक्यलक्षणम्॥ धूम्रवर्णं यदा मूत्रं ज्वराधिक्यं तदादिशेत्। कृष्णमच्छं च जानीयात्सन्निपातज्वरोद्भवम्॥ उपरिष्टात्पीतवर्णमधः कृष्णं सबुद्बुदम्। मूत्रं प्रसूतदोषेण संशयो नात्र कश्चन॥ तैलबिन्दुर्यदा मूत्रे विकाशं कुरुते स्वयम्। स्वरूपं तत्र वक्ष्यामि शुभाशुभचिकित्सितम्॥ चिकित्सितैः कूर्मसमं सौरभाकृति जम्बुकम्। करभं मण्डलं ज्ञेयमसाध्यस्यैव लक्षणम्॥ चतुःपथं च त्रिपथं द्विपथं चैव दृश्यते। एकपथं यदा बिन्दुर्मृत्युस्तस्य न संशयः॥ शस्त्रं खड्गं धनुर्दण्डं मुसलं वज्रशूलकम्। लकुटीकारकं चैव तैलं भवति मूत्रणे॥ हंसकारण्डसम्पूर्णं तडागं दृश्यते यदा। पद्मरूपं फलाकारं तैलमूत्रं प्रजायते॥ सर्वदा सकलं गात्रं प्रसादगजचामरम्। छत्रं च चामरं चैव तैलबिन्दुश्चिरायुषि॥ तैलबिन्दुर्यदा मूत्रे चालनीछिद्रसन्निभः। शाकिन्या गोत्रदेव्याश्च द्वयोर्दोषसमुद्भवः॥ मूत्रमध्ये यदा तैलं नराकारं च दृश्यते। ग्रहदोषं च देव्याश्च विजानीयाद्विचक्षणः॥ मूत्रमध्ये यदा तैलं मण्डलं वर्धते ध्रुवम्। निर्दोषं हि ततो ज्ञात्वा औषधं चैव कारयेत्॥ मूत्रे च दृश्यते तैलं मस्तकं द्वयसंयुतम्। द्वयोर्वितरयोर्दोषं ध्रुवं ज्ञेयं विचक्षणैः॥

पूर्वस्यां वर्धतो बिन्दुस्तैलस्य प्रसरो यदि । न चिरं वर्धते रोगो रोगिणो नायकस्तुतिः ॥ दक्षिणे जायते बिन्दुर्ज्वरभावो यदा भवेत् । त्रिदिनात्तस्य भवति मृत्युरेव न संशयः ॥ उत्तरस्यां तैलबिन्दुर्जायते मूत्रणे यदा । आरोग्यं च तदा नूनं रोगिणो व्याधिनाशकः ॥ ईशान्यां चैव तैलस्य प्रसरो यदि जायते । जीवत्येकं मासमेव पश्चात् याति यमालये ॥ आग्नेय्यां तु यदा तैलबिन्दुप्रसरणं भवेत् । तस्यौषधं च नो कार्यं निश्चितं सोऽपि नेष्यति ॥ प्रसरो यदि तैलस्य नैर्ऋत्यां च दिशि श्रितः । सच्छिद्रं तु भवेत्तस्य मृत्युरेव न संशयः ॥ वायव्यां दिशि जायेत तैलबिन्दुर्यदा तदा । रोगिणो कालमाक्रान्तं चिरक्रीडां करोति हि ॥ नरं वा शिरहीनं वा गात्रं खण्डं समावृतम् । एतै रूपैर्विभेदैश्च ध्रुवं मृत्युर्न संशयः ॥ तैलमध्ये त्रिकोणं च मूत्रं संज्ञायते यदि । शाकिन्या गोत्रदेव्याश्च दोषद्वयसमुद्भवम् ॥ १६ ॥

भाषा–रात्रिके अन्तमें चार घडीके तडके वैद्य रोगीको उठाकर उससे मूत्र करावे। पहिली वार जो मूत्रकी धार निकले उसे पृथ्वीपर गिराकर मध्यकी धारको उत्तम स्वच्छ कांसीके अथवा कांचके पात्रमें लेकर उसे ढककर रख देवे। उसे फिर सूर्य्यकी धूपमें उघाडकर रक्खा रहने देवे फिर पात्रमें धरे हुए मूत्रकी परीक्षा करे। वातके दोषमें मूत्र जलकी समान रूखा और अधिकतर होता है। पित्तके दोषमें मूत्र लाल वा पीला और थोडा होता है। कफके कोपमें मूत्र सफेद, गाढा और चिकना होता है। दो दोषोंमें दो दोषोंके चिह्न समझ लेना और त्रिदोषमें तीनों दोषोंके लक्षण जानने चाहिये। अब अन्य प्रकारसे परीक्षा करनेकी विधि कहते हैं। मूत्रको उत्तम विधिसे लेकर चार घडीतक धूपमें धरे फिर उसमें चतुर वैद्य सींकसे तैलकी बूंद डालकर परीक्षा करे। उसमें तेलकी बूंद डालनेसे वह तेलकी बूंद बुद्बुदाकार (बबूलेकी समान) हो जाय तो पित्तका विकार जानना। जो वह तैलकी बूंद रूखाकी समान काली दीखे तो वातका विकार जानना। जो मूत्रमें वह तैलकी बूंद कीचकी समान दीखे तो कफका विकार जानिये। मूत्रमें आधा तैल मिलावे जो वह तैलकी बूंद सरसोंके तेलकी समान हो जाय तो पित्तविकार समझना। सफेद धार, मटाधार और पीतधार ज्वरमें होती है। लाल धारा महाज्वरमें होती

है और मूत्रकी काली धार मरनेके लिये होती है और कफवातमें मूत्र कांजीकी समान होता है। कफपित्तदोषमें मूत्र पाण्डुरंग और पीला होता है। सन्निपातज्वरमें मूत्र काले रंगका होता है। जो मूत्र नीचे बहुत लाल दीखे उसको अतीसारका रोग कहना चाहिये। वातरक्तका मूत्र लाल होता है। रक्तपित्तका मूत्र कसूमके रंगकी समान होता है और स्वाभाविक पित्तवालेका मूत्र सदैव तेलकी समान होता है। कफके स्वभाववालेका मूत्र कीचकी समान होता है, वातप्रकृतिवाले मनुष्यका मूत्र जलकी समान और बहुतसा होता है। जलोदररोगीका मूत्र घृतके कणोंकी समान होता है। आमवातरोगवालेका मूत्र तक्रकी समान होता है। मलविकारवालेका मूत्र पीला और अधिक होता है। जो रोगीका मूत्र पीले रंगका हो तथा तैलकी समान चिकना हो और बुद्बुदाकार हो तो उसको असाध्य जानना। अजीर्णदोषसे मूत्र सफेद और लाल होता है तथा बकरीके मूत्रकी समानभी होता है। क्षयरोगमें मूत्र काले रंगका होता है और क्षयरोगमें मूत्र सफेद रंगका हो तो उसको असाध्य जानना चाहिये। पित्तोदयमें मूत्र पीला और स्वच्छ होता है। समधातुके होनेसें मूत्र कुएके जलकी समान होता है। ऊपरसे नीला और नीचेसे लाल रंगका मूत्र रुधिरके कोपमें होता है। जो मूत्र स्निग्ध (चिकना) तैलकी समान आवे तो जान लेना कि अधिक भोजनके करनेसे उदरकी वृद्धि हुई है। जो मूत्र ऊपरसे पीला और नीचेसे लाल होय तो उसको पित्तानुबन्धी सन्निपात जानना। जिस रोगीका मूत्र ऊख (गन्ने) के रसकी समान और नेत्र लाल पीले रंगके होंय तो उसको रसाधिक्य दोष जानना। इस रोगमें रोगीको लंघन करना चाहिये। जिस रोगीका मूत्र लाल और निर्मल होय तो उसको ज्वराधिक्य जानना। सन्निपातज्वरमें मूत्र काला और स्वच्छ होता है। जिस रोगीका मूत्र ऊपरसे पीले रंगका और नीचे काले रंगका बुद्बुदेकी समान होय तो उसको प्रसूतिका रोग जानना चाहिये। तैलकी बूंद मूत्रमें डालनेसे जो रूप वह प्रकाश करती हैं उनके शुभाशुभ रूपोंका वर्णन करता हूं। वह तेल मूत्रमें कच्छपकी समान आकार, सौरमकी आकृति, जम्बुकका स्वरूप, ऊंटका स्वरूप और मण्डलकी समान दीखे तो उसको असाध्य जानना चाहिये। वह तेलकी बूंदें मूत्रमें चार पांच, तीन पांच, दो पांच अथवा एकही पांवसी दीखें तो उसकी मृत्यु कहनी। यदि मूत्रमें वह तैलकी बूंदें शख, खड्ग, धनुष, दंड, मूसल, वज्र, शूल और लाठीकी समान स्वरूपवाली हो जांय तथा वे तैलकी बूंदें मूत्रमें हंस कारण्डवादि सहित तालावरूपसे, कमलकी समान, फलाकार, सदैव प्रसन्न, सम्पूर्ण शरीर, हाथी, छत्र, और चमर आदि शुभ पदार्थ दीखें तो उसको चिरायु जानना। तैलकी बूंदें मूत्रमें जो चलनीके छिद्रकी समान दीखें तो शाकिनी आदि देवी, गोत्रदेवी और

हयका दोष जानना । जो तैलको बिन्दु मूत्रमें पुरुषके रूपसे दीखे तौ उसके ग्रहदोष और देवीका दोष जानना । जो मूत्रमें तेलकी बूंदें मंडलाकार दिखें तौ उसको निर्दोष समझकर उसकी औषधि करनी चाहिये । मूत्रमें तेलकी बूंदें घोडेके मस्तकरूपसे दीखें तौ उसको हयोवितर दोष जानना । जो तेलकी बूंदें मूत्रमें डालनेसे पूर्वकी ओर फैलें तौ जानना कि यह रोग बहुत दिनोंतक न रहेगा अर्थात् शीघ्र शांत हो जायगा । जो तेलकी बूंदें मूत्रमें दक्षिणकी ओर फैलें तौ उस मनुष्यकी ज्वरके भावसे तीन दिनमें अवश्य मृत्यु हो जायगी । जो तेलकी बूंदें मूत्रमें उत्तरकी ओर फैलें तौ जानना कि रोगी शीघ्र आरोग्य होगा और सर्व प्रकारके दुःखद्वन्द्व दूर होंगे । जो तेलकी बूंदें ईशान कोणकी ओर फैलें तौ जानना कि वह रोगी एक महीने जीकर पश्चात् यमराजके घर जायगा । जो तैलकी बूंदें ईशानकोणकी ओर फैलें तौ जानना कि यह असाध्य है, ऐसे रोगीको औषधि नहीं करनी चाहिये । जो तेलकी बूंदें नैर्ऋत्यकोणकी ओर फैलें और उसमें छेदसे दीखें तौ जानना कि इसकी निःसंदेह मृत्यु होगी । जो तैलके बिन्दु मूत्रमें वायव्य कोणकी ओरको फैलें तौ जानना कि उसको काल ग्रसित करके बहुत कालतक क्रीडा करता रहेगा । जो मूत्रमें तैलकी बूंदें मनुष्यका धड या शिर अथवा अन्यान्य खंडित अंग दीखें तौ उस मनुष्यकी निश्चय मृत्यु जाननी । मूत्रमें तैलके बिन्दु डालनेसे जो वह तेल त्रिकोणाकार हो जावे तौ उसको शाकिन्यादि गोत्रदेवियोंसे पीडित जानना ॥ १६ ॥

अथ मलपरीक्षा ।

त्रुटितं फेनिलं रूक्षं धूमलं वातकोपतः । वातश्लेष्मविकारे च जायते कपिशं मलम् ॥ बद्धं सुत्रुटितं पीतं श्यामं पित्तानिलाद्भवेत् । तदाजीर्णं मलं वैद्यैर्दोषजैः परिभाष्यते ॥ कपिलं ग्रंठियुक्तं च यदि वर्चोवलोक्यते । प्रक्षीणमलदोषेण दूषितः परिकथ्यते ॥ सितं महत् पूतिगंधं मलं ज्ञेयं जलोदरे । श्यामं क्षये त्वामवाते पीतं सकटिवेदनम् ॥ अतिकृष्णं चातिशुभ्रमतिपीतं तथारुणम् । मरणाय मतं किन्तु भृशोष्णं मृत्यवे ध्रुवम् ॥ वातस्य च मलं कृष्णं ततः पित्तस्य पीतविट् । रक्तवर्णं मलं किंचित् मलं श्वेतं कफोद्भवम् ॥ आमं वा श्वेतजं प्राहुर्मिश्रितं द्वन्द्वजं वदेत् । अपक्वं स्यादजीर्णे तु पक्वं स्वास्थमलं

भवेत् ॥ अत्यग्नौ पीडितं शुष्कं मन्दाग्नौ तु द्रवीकृतम् । दुर्गन्धं चन्द्रिकायुक्तमसाध्यं मललक्षणम् ॥ दुर्गन्धि श्यामवर्णं मलमरुणनिभं पाण्डुराभं विचित्रं मांसाभं मेचकं तत्प्रभवति मरणायैव रोगान्वितस्य। विस्रं शैथिल्ययुक्तं मुहुरतिनिपतत्तस्यादजीर्णाच्च वर्चो दिङ्मात्रं चैतदेवं निगदितममदैर्लक्षणं वर्चसोऽपि ॥ १७॥

भाषा-वातके कोपसे मल (विष्ठा) त्रुटित, झागोंयुक्त, रूखा और धूम्रवर्ण होता है । वातकफके कोपसे मल काला और पीला मिश्रित रंगका होता है । पित्तवातके कोपसे मल बद्ध, त्रुटित, पीला और काले रंगका होता है । जो मल कपिलवर्ण और गुंठियुक्त होय तो उसको अजीर्ण दोष जानना तथा क्षीण मल दोषसे उसको दूषित जानना । जलोदर रोगीका मल सफेद और अत्यन्त दुर्गन्धित होता है । क्षयरोगीका मल काला होता है । आमवातरोगीका मल पीला और उसकी कमरमें पीडा होती है । जिस रोगीका मल अत्यंत काला या अत्यंत सफेद हो अथवा अत्यन्त पीला हो किंवा अत्यन्त लाल हो तथा वारंवार गरम निर्गत हो वह निश्चय मृत्युको प्राप्त होगा । वातके कोपसे मल काला होता है । पित्तके कोपसे मल पीला और किंचित् लाल होता है । कफके कोपसे मल सफेद होता है । आमदोषका मल सफेद होता है । दो दोषोंका मल मिश्रित होता है । अजीर्णरोगीका मल अपक्क होता है । स्वस्थ मनुष्यका मल पक्क होता है । तीक्ष्णाग्निवाले मनुष्यका मल सूखा होता है । मन्दाग्निवाले मनुष्यका मल पतला होता है । दुर्गंधित और चन्द्रिकायुक्त मल असाध्य रोगीका होता है । दुर्गन्धित, श्यामरंग, लाल, पाण्डुवर्ण, चित्रविचित्रित, नानाप्रकारके रंगका, मांसकी समान लाल और मेचकी समान वर्णवाला ऐसा मल रोगीका मरनेके लियेही होता है । जिस मलमें आमकी समान गंध आवे और शिथिल हो तथा वारंवार पतित हो और त्यागते समय पीडा हो उसको अजीर्ण दोष जानना । ये मलके लक्षण दिग्दर्शनमात्र कहे हैं ॥ १७ ॥

अथ जिह्वापरीक्षा ।

वातकोपे प्रसुप्तेव स्फुटिता मधुरा भवेत् । स्तब्धा वर्णेन हरिता जिह्वा लालां प्रमुञ्चति ॥ पित्तकोपे तु रक्ताभा तिक्ता दग्धेन जायते । जिह्वा दाहान्विता विद्धा कण्टकैरिव सर्वतः ॥ कफोदये भवेज्जिह्वा स्थूला गुर्वी विलेपनी । सुस्थूलकण्टको-

पेता क्षारा बहुकफावहा ॥ दोषद्वये द्विदोषोक्तलक्षणा रसना भवेत् । सर्वजिह्वा त्रिदोषे स्याद्विकृतानेकलक्षणा ॥ १८ ॥

भाषा-वातके कोपमें जीभ जड, फटी, स्तब्ध (जकडीसी), हरितवर्ण और लारको गेरती है । पित्तके कोपमें जीभ रुधिरके समान लाल, कडवी, जलेकी समान, दाहयुक्त और कांटोंसे वेधीसी होती है । कफके कोपमें जीभ स्थूल (मोटी), भारी, लिबलिबी, मोटे कांटोंयुक्त, खारी और कफको वहानेवाली होती है । दो दोषोंके कोपमें दो दोषोंके मिश्रित लक्षणोंयुक्त होती है और त्रिदोषके कोपमें सर्व लक्षणोंयुक्त तथा अनेक प्रकारके विकृत लक्षणोंसहित होती है ॥ १८ ॥

अथ शब्दपरीक्षा ।

वातेन शब्दस्त्वतिसौक्ष्म्यमेति पित्तप्रकोपे स्फुटवक्त्रता च । श्लेष्मप्रकोपे गुरुता स्वरे स्याद्द्वये द्विलिंगं त्रितये त्रिलक्ष्म ॥ १९ ॥

भाषा-वातके कोपसे शब्द अत्यन्त सूक्ष्म होता है । पित्तके कोपसे शब्द फटा हुआ और टेढा होता है । कफके कोपसे शब्द भारी होता है । दो दोषोंके कोपमें दोनोंके लक्षण होते हैं और तीनों दोषोंके कोपमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हैं ॥ १९ ॥

अथ स्पर्शपरीक्षा ।

वाताच्छीतः कफाच्चार्द्रः शीतलश्च नरो भवेत् । पित्तादुष्णो रुजार्त्तः स्यात् मुनिभिः परिकीर्तितः ॥ द्वन्द्वेन मिश्रः सकलैस्त्रिलिंगं संस्पर्शचातुर्य्यचणैर्भिषग्भिः । क्षणेन शीतः क्षणतोतितप्तो वर्ज्यः स जन्तुर्गदपीडितांगः ॥ २० ॥

भाषा-वातके कोपसे शरीरका स्पर्श शीतल होता है । कफके कोपसे शरीरका स्पर्श गीला और शीतल होता है । पित्तके कोपसे शरीरका स्पर्श गरमीसे पीडित होता है । दो दोषोंके कोपमें शरीरका स्पर्श दो दो दोषोंके लक्षणोंयुक्त होता है और तीन दोषोंके कोपमें शरीरका स्पर्श तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त होता है । जिस मनुष्यका शरीर क्षणभरमें शीतल हो और क्षणभरमें गरम हो जाय उसको असाध्य समझकर त्याग देना चाहिये ॥ २० ॥

अथ रूपपरीक्षा ।

वातेन रूक्षगात्रः स्यात् श्यावः पिंगश्च वा भवेत् । पित्तेन पीतगात्रश्च तैलाभ्यक्त इवापि च ॥ कफात् स्निग्धश्च शुक्ल-

श्च वर्णतः सुविनिश्चयेत् । यत्र द्वयोर्लक्षणयोश्च भासस्तत्र द्विदोषाकलितं स्वरूपम् । त्रिलिंगरूपं सकलैश्च दोषैर्ज्ञेयं परीक्षाकुशलैर्भिषग्भिः ॥ २१ ॥

भाषा-वातके कोपसे शरीर रूखा, धूसर और कुछेक पीला होता है । पित्तके कोपसे शरीर पीला और तैलसे मालिस किये हुएकी समान होता है । कफके कोपसे शरीर चिकना और सफेद होता है । दो दोषोंके कोपमें दो दोषोंके लक्षणोंवाला होता है और त्रिदोषके कोपमें तीन दोषोंके लक्षणयुक्त होता है ॥ २१ ॥

अथ दृष्टिपरीक्षा ।

रौद्रा सहासा चपला च रूक्षा कण्डूमती वह्निसुहृत्प्रकोपात् । दृग् द्वेष्टि दीपं द्युमणिप्रकाशं कोष्णाश्रुपाताऽरुणभा च पित्तात् ॥ तेजोविहीना कलुषा जलाक्ता स्निग्धा भवेन्मन्दरुचिः कफेन । द्वन्द्वप्रकोपे भवति द्विलिंगजुष्टा हि दृष्टिर्गदिनो नरस्य ॥ त्रिदोषदूषितं नेत्रमन्तर्मग्नं भृशं भवेत् । त्रिलिंगसलिलप्राविप्रान्तेनोन्मीलयत्यपि ॥ २२ ॥

भाषा-वातके कोपसे दृष्टि भयानक, दाहयुक्त, चंचल, रूखी और खुजलीयुक्त होती है । पित्तके कोपसे दृष्टि दीपक और सूर्य्यके प्रकाश देखनेको असमर्थ, मंदोष्ण, आंसुओंसे परिपूर्ण और लाल रंगकी होती है । कफके कोपसे दृष्टि तेजहीन, कलुषित, जलयुक्त, चिकनी और मंद होती है । दो दोषोंके कोपसे दृष्टि दोषोंके लक्षणोंयुक्त होती है । त्रिदोषके कोपसे दृष्टि भीतरको घुसे हुए जलसे लिबलिबे और एक कोनेसे खुलती है ॥ २२ ॥

यतोऽष्टधा दोषपरीक्षणं विना न दीयते भेषजमार्त्तजन्तवे । अतो मयेदं लिखितं समासतः कुर्वन्तु वैद्या इह दृष्टिपातान् ॥२३॥

भाषा-इन आठ प्रकारोंसे रोगकी परीक्षा किये विना रोगीको कदापि औषधि नहीं देनी चाहिये । इस कारण मैंने संक्षेपसे अष्टविधपरीक्षा कही । वैद्योंको उचित है कि इस विधिसे रोगीकी परीक्षा करें ॥ २३ ॥

तत्रेष्टस्वप्नाः ।

दिनकरनिशिनाथं मण्डलं तारकस्य विकचकमलकुञ्जैः पूर्णपद्माकरं वा । तरति सलिलराशिं प्रौढनद्याश्च पारं घन-

सुखविभवातिव्याधिनां रोगमुक्तिः ॥ देवो द्विजो वा पितरो नृपो वा स्वप्नेषु वाक्यं वदते यथैव । तथैव नान्यच्च भवेन्मनुष्ये यद्यस्य सौख्यं विपदो रुजो वा ॥ गोवाजिकुञ्जरनृपाः सुमनः प्रशस्तं स्वप्नेषु पश्यति नरः सरुजः सुखाय । रोगान्वितश्च रुजनाशनसम्भवाय बद्धोऽपि वै सपदि बन्धविमोचनाय ॥ यो भूषणं पश्यति मन्दिरं वा कन्यां दधि मीनकुमारकं वा । सपुष्पवल्लीपतितं द्रुमं वा स्वस्थे धनाप्ति रुजनाशनाय ॥ स्वप्ने पयःपानमतिप्रशस्तं पानं सुराया अजभोजनं वा । घृतं यवागूः कृसरोदनं वा क्षैरेयिकं भोजनकं सुखाय ॥ सितो भुजंगो दशति कराग्रे नरस्य सुप्तस्य शरीरकेषु । पुत्रस्य लाभं वदते धनं वा नाशं विदध्यादचिराद्रुजं वा ॥ सश्वेतवस्त्रां रमणीं सुरम्यां स्वप्ने समालिंगति यो मनुष्यः । तस्य प्रकर्षेण सुखं श्रियः स्यात् सुपुत्रलाभश्च रुजां विनाशः ॥ यो धान्यपुंजं तिलतण्डुलानां गोधूमसिद्धार्थयवादिकानाम् । धान्यासिरस्यामयनाशहेतुः स्वप्नेषु शीघ्रं मनुजे सुखाय ॥ सफले धनसम्पत्तिर्दीप्ते रोगविनाशनम् । सुखं च पुष्पिते ज्ञेयं सम्पूर्णे वाञ्छितं फलम् ॥ २४ ॥

भाषा–जो स्वपनेमें सूर्य्य, चन्द्र और ताराओंके मण्डलको देखे, प्रफुल्लित कमलोंके समूहसे सुशोभित सरोवरोंको देखे, जलसे भरी हुई नदीको तिरकर पार हो जाय ऐसे सुपने स्वस्थ मनुष्य देखें तौ अत्यन्त आनंदकी प्राप्ति हो और रोगी देखे तौ रोगसे मुक्त हो । स्वपनेमें देवता, ब्राह्मण, पितर अथवा राजा जैसे वचन कहे उसीके अनुसार फल होता है वह कदापि असत्य नहीं होता चाहे सुख हो वा दुःख हो अथवा रोग हो । गौ, घोडा, हाथी, राजा और पुष्प यह पदार्थ स्वप्नमें रोगी देखें तौ रोगसे विमुक्त होता है और बद्ध मनुष्य बंधनसे छूट जाता है । जो मनुष्य स्वपनेमें भूषण, मंदिर, कन्या, दही, मछली, बालक तथा फूल और फलवाले वृक्ष और लताओंको देखें तौ स्वस्थ मनुष्यको धनकी प्राप्ति होती है और रोगी मनुष्य रोगसे विमुक्त हो जाता है । स्वप्नमें दूधका पीना अत्यन्त श्रेष्ठ

है तथा मदिराका पीनाभी अत्यन्त उत्तम है। तथा बकरेके मांसका भोजन, घृत, यवागू, खिचडी, चावल और दूधका भोजन अत्यन्त सुखकारक है। स्वपनेमें जो सफेद सांप दहिने हाथके अग्रभागको काटे तौ शीघ्रही पुत्र और धनकी प्राप्ति होती है और रोगका नाश होता है। जो मनुष्य स्वपनेमें श्वेतवस्त्रोंवाली स्त्रीसे आलिंगन करे तौ शीघ्रही लक्ष्मी और पुत्रकी प्राप्ति होती है और रोगोंका नाश होता है। जो मनुष्य स्वपनेमें तिल, चावल, गेहूं, सरसों और जौ आदि धानोंके पुंजको देखे तौ शीघ्रही सुखकी प्राप्ति होती है तथा धन धान्यका लाभ हो और सर्व रोगोंका नाश होता है। जो स्वप्नमें फलसहित वृक्षको देखे तौ धनकी प्राप्ति हो। दीप्त वृक्षको देखे तौ रोगका नाश होता है। पुष्पयुक्त देखे तौ सुखकी प्राप्ति होती है और फूल, फल, पत्ते, शाखा आदि सबसे परिपूर्ण देखे तौ सम्पूर्ण चिन्तचिंतित कार्य सिद्ध होता है ॥ २४ ॥

अथानिष्टस्वप्नाः।

काकैः कंकैः करभभुजगैः सूकरोलूकगृध्रैर्जम्बूकैर्वा वृकखरमहिषासातिरक्षैः श्वभिश्च। व्याघ्रैर्मोहैर्मकरकपिभिर्भक्ष्यमाणं स्वकायं पश्येत् योऽसौ भजति नितरां हानिमापद्रुजं वा ॥ यो भजितं स्वं मनुजः प्रपश्येत् सार्पिर्वसातैलविशेषणेन। शीघ्रं रुजातिर्भवतीह तस्य वदन्ति धीरा निपुणं विधेयम् ॥ व्याघ्रोष्ट्रखरसंयुक्ते रथे सौरभसंयुते। उह्यमानो दिशं याम्यां गच्छेच्च स मृतिं भजेत् ॥ रक्तवस्त्रां कृष्णवस्त्रां मुक्तकेशां विसर्पिणीम्। याम्यां स्थितां रुदन्तीं वा गायन्तीमथ पश्यति ॥ अथाह्वयति संक्रुद्धां समालिंगति चर्वति। यः पश्यति सुखी सः स्यात् व्याधितो मृतिमाप्नुयात् ॥ यस्य स्वप्ने च निष्कुष्टदन्तपातः प्रदृश्यते। शीर्यन्ते केशरोमाणि स सुखी चापदं व्रजेत् ॥ यस्य खड्गा प्रभंज्येत तोमरादिप्रहारतः। रक्तं च दृश्यते देहे स स्वस्थो व्याधिमृच्छति ॥ शून्यागारं पश्यति यो मनुष्यः प्रासादं वा देवहीनं च पश्येत्। तापश्चान्द्रे पुष्पितानां द्रुमाणां तस्यानिष्टं मृत्युमाशु प्रपद्येत् ॥ नरः पश्ये-

छिन्नदेवं घटं वा भग्नशाखं वरं मन्दिरं वा । विशीर्णं विपश्येत् सुखी व्याधिं प्रपद्येत रुजाग्रस्त आशु ॥ यस्याह्वयन्ति पितरो दिशि दक्षिणस्यामाश्रित्य चाशु तनुते मनुजस्य मृत्युम् । यस्यास्ति शूललकुटोद्यतपाशपाणिराह्वयति स मृतिमाशु तनोति कष्टम् ॥ कार्पासभस्मास्थिकपालशूलं चक्रं च पाशं स्वप्ने प्रपश्येत् । तस्यापदो रोगघनक्षयौ वा रोगी मृतिं वा तनुतेऽतिकष्टम् ॥ २८ ॥

भाषा—कौआ, कंक, ऊंट, सांप, सुअर, उल्लू, गिद्ध, गीदड, भेडिया, गधा, भैंस, तेंदुआ, कुत्ता, व्याघ्र, ग्राह, मगर और बन्दर इत्यादि दुष्ट जीवोंसे अपनेको खाता हुआ देखे तौ हानि, आपत्ति और रोगकी प्राप्ति होती है । जो मनुष्य स्वपनेमें अपने शरीरको तैल, घी, चरबी आदि चिकने पदार्थोंसे लिप्त देखे तौ उसके शीघ्रही रोगकी प्राप्ति होती है । जो मनुष्य व्याघ्र, ऊंट, गधा और बैल आदिके रथपै चढकर सुपनेमें दक्षिणकी ओर गमन करे तौ अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है । लाल कपडे पहिने या काले कपडे पहिने और बिखर रहे हैं बाल जिसके, दौडकर लौटती हुई, दक्षिण दिशामें खडी हुई, रोती हुई, अत्यन्त क्रोधित हुई ऐसी स्त्रीसे जो मनुष्य वार्तालाप करता अथवा आलिंगन करता है वह मनुष्य यदि स्वस्थ होय तौ रोगको प्राप्त होता है और रोगी हो तौ मृत्युको प्राप्त होता है । स्वप्नमें जो मनुष्य अपने दांत, बाल और रोमोंको पतित देखे तौ उसके रोगकी उत्पत्ति होगी । स्वप्नमें जिस मनुष्यकी शय्या टूट जावे और तोमरादिकके प्रहारसे शरीरमेंसे रुधिर बह निकले उसके रोगकी उत्पत्ति होती है । जो मनुष्य स्वप्नमें शून्य भवन अथवा प्रतिमारहित देवमंदिरको देखे तथा चन्द्रमा और फूलवाले वृक्षोंको संतापित देखे उस मनुष्यकी शीघ्र मृत्यु होगी । जो मनुष्य स्वपनेमें देवताकी टूटी प्रतिमाको देखे, टूटे या जलरहित घडेको देखे, वृक्षोंकी टूटी शाखा देखे और टूटे हुए मकानोंको देखे तौ स्वस्थ मनुष्य रोगको प्राप्त हो और रोगी मनुष्य शीघ्रही मृत्युको प्राप्त हो । जिस मनुष्यको सुपनेमें दक्षिणादिशामें खडे हुए पितर बुलावें उसकी शीघ्रही मृत्यु होगी ऐसा जानना । जिस मनुष्यको सुपनेमें शूल, लाठी और फांसीको धारण करनेवाला मनुष्य बुलावे उसकी शीघ्र मृत्यु होगी ऐसा जानना । जो मनुष्य स्वप्नमें कपास, राख, हड्डी, खोपडी, शूल, चक्र और फांसीको देखे तौ आपत्ति और धनका नाश होता है और रोगी देखे तौ मृत्यु हो अथवा घोर कष्ट हो ॥ २८ ॥

अथ कालज्ञानम्।

पुष्पं यथा पूर्वरूपं फलस्येह भविष्यतः। तथा लिंगमरिष्टाख्यं पूर्वरूपं मरिष्यतः॥ अप्येव तु भवेत्पुष्पं फलेनाननुबंधि यत्। फलं चापि भवेत् किंचित् यस्य पुष्पं न पूर्वजम्॥ न त्वरिष्टस्य जातस्य नाशोऽस्ति मरणादृते। मरणं चापि तन्नास्ति यन्नारिष्टं पुरःसरम्॥ मिथ्यादृष्टमरिष्टाभमनरिष्टमजानता। अरिष्टं चाप्यसम्बुद्धयमेतत्प्रज्ञापराधजम्॥ तानि सौक्ष्म्यात् प्रमादाद्वा तथैवाशु व्यतिक्रमात्। गृह्यन्ते नोद्गतान्युक्तैर्मुमूर्षोर्न त्वसम्भवात्॥ असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्वन् गतायुषः। अतोऽरिष्टानि यत्नेन लक्षयेत्कुशलो भिषक्॥ शरीरशीलयोर्यस्य प्रकृतिर्विकृतिर्भवेत्। तत्त्वरिष्टं समासेन व्यासतस्तु निबोधये॥ कमलिनीदलसंस्थिततोयवद्वपुषि यस्य जलं न विलेपदम्। अयनतोयममन्दिरमाश्रितो भवति जंतुरसाविति मन्यताम्॥ उरः पुरः शुष्यति यस्य चार्द्रे न भाति तिस्रोङ्कुलयश्च चक्रे। स्नातस्य मूर्द्धन्यपि धूमवल्ली निलीयते रिक्तमुखः खगो वा॥ यः पेलवांगः स भवेदकस्मात् तुंदोथ तुंदः परिपेलवांगः। गौरो घनाभो घनभश्च गौरो ज्ञेयः स मृत्योर्वशगो द्विमासात्॥ यः स्वस्थदेहः श्वसते सुखेन नेत्रेऽरुणे श्यावमथैव वक्रम्। जिह्वा विशीर्णा दशनाश्च कृष्णाः स्वस्थोऽपि शीघ्रं यमलोकगन्ता॥ यस्य प्रभाते च शिरोव्यथा स्यात् दीपे परीवेषमवेक्ष्यमाणः। विपश्यते यः पटलं च रेणोः स वै मृतिं याति न दीर्घमायुः॥ यः सूर्य्यबिम्बे शशिनं प्रपश्येत् विना परीवेषमवेक्ष्यमाणः। धूमावृतं वा रविमंडलं च प्रपश्यते शीघ्रमृतिं स गन्ता॥ स्वस्थे निरभ्रे गगने च पश्येत् यः शक्रचापं विदिशादिशासु। तथैव विद्युन्नयनाग्रतो यः स शीघ्रमेवं

यमलोकगन्ता ॥ यो नेत्रे मीलितेऽपि द्युतिमथ चपलां पश्यते यः पुरस्तात् कर्णे रन्ध्रं निरुन्धन्ध्वनिमथ मनुजो न शृणोति कथंचित् । तिक्तादीनां रसानां कथमपि रसना स्वादमात्रं न वेत्ति रौद्रं वैवस्वतस्य प्रतिगमनमथो पश्यते मानुषश्च ॥ यस्यात्युष्णं शरीरं शिरमथ मनुजस्यानिलं च प्रशीतं शीतं नोचेति यस्य हिमजलसिकते रोमहर्षो न यस्य । दण्डाघातेन राजा न भवति स पुनः श्राद्धदेवस्य लोके लोकानां दर्शनाय द्रुतमतिरुचिरां स्वस्थतां न प्रयाति ॥ तैले जले दर्पणके घृते वा परस्य नेत्रे प्रतिबिम्बमात्मनः । पश्येन्न योऽसौ यमलोकगन्ता जानीहि तं जीवविहीनमेव ॥ रोगं विना यस्य च रोमकूपतो रक्तं स्रवेद्वा पतनं तनूरुहाम् । मन्या शिरो धारयितुं न दक्षिणा स याति लोकं शमनस्य मासतः ॥ अभ्यंगहीना अपि मूर्द्धजा येऽभ्यक्ता इवालोकनगोचरास्ते । यस्यांगुलीनां स्फुटनं त्वहेतु जंतुः स गंता यमशासनं द्राक् ॥ यः शीलवान् क्रोधनतामुपैति यः क्रोधवान् शीलगुणं च धत्ते । द्वावेव मृत्युं तनोतु विधिज्ञः स्थूलो नरः शीघ्रतरं कृशांगः ॥ यो वा मयूरकंठाभं निर्धूमं वह्निमीक्षते । आतुरस्य भवेन्मृत्युः स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥ ह्रीश्रियौ नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभा । अकस्माद्यं भजंते वा स परासुरसंशयम् ॥ यस्याधरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं यथोत्तरः । उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतंति च । खंजनप्रतिमा वापि तं गतायुषमादिशेत् ॥ कृष्णा तथावलिप्ता वा जिह्वा शूना च यस्य वै । कर्कशा वा भवेत् यस्य सोचिराद्विजहात्यसून् ॥ कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका । अवस्फूर्जति मग्ना वा न स जीवति

मानवः ॥ संक्षिप्ते विषमे स्तब्धे रक्ते स्रस्ते च लोकने । स्यातां वा प्रस्रुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥ केशाः सीमन्तिनो यस्य संक्षिप्ते विनते भ्रुवौ । लुनंति चाक्षिपक्ष्माणि सोचिरात् याति मृत्यवे ॥ नाहरत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः । एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणान् जहाति सः ॥ बलवान् दुर्बलो वापि संमोहं योऽधिगच्छति । उत्थाप्यमानो बहुशस्तं धीरः परिवर्जयेत् ॥ शीतपादकरोच्छ्वासाछिन्नश्वासश्च यो भवेत् । काकोच्छ्वासश्च यो मर्त्यस्तं धीरं परिवर्जयेत् ॥ निद्रा न छिद्यते यस्य यो वा जागर्ति सर्वदा । मुह्येद्वा वक्तुकामस्तु प्रत्याख्येयः स जानतः ॥ यो धर्मशीलो भवतीह पापी पापात्मको धर्मरतो यदि स्यात् । स मृत्युभागी भवतीह शीघ्रं यश्च प्रकृत्या विकृतिं प्रयाति ॥ यो वैपरीतं श्रवणेऽपि शब्दं गृह्णाति वा न शृणुते स शीघ्रम् । स वै मृतिं पश्यति यो न पश्येत् छायां स्वकीयां धरणीप्रपन्नाम् ॥ मन्दाकिनीं वा ध्रुवमंडलं वा वशिष्ठपत्नीमपि यो न पश्येत् । विधोश्च भानोरपि चक्रवाले छिद्राणि पश्येत् स यमातिथिः स्यात् ॥ सुगंधं वेत्ति दुर्गन्धं दुर्गन्धस्य सुगंधिताम् । यो वा गंधान्न जानाति गतायुं तं विनिर्दिशेत् ॥ स्नानानुलिप्तं यश्चापि भजंते नीलमक्षिकाः । सुगंधिर्वा तयोऽकस्मात् तं वदन्ति गतायुषम् ॥ विपरीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोपयोजितान् । उपयुक्ताः क्रमात् यस्य रसा दोषाभिवृद्धये ॥ यस्य दोषाग्निसात्म्यं च कुर्युर्मिथ्योपयोजिताः । यो वा रसान्न संवेत्ति गतायुं तं प्रचक्षते ॥ द्वंद्वान्युष्णहिमादीनि कालावस्था दिशस्तथा । विपरीतेन गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः ॥ दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति । रात्रौ सूर्यं ज्वलंतं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम् ॥ अमेघोपप्लवेयश्च शक्रचापतडि

यमलोकगन्ता ॥ यो नेत्रे मीलितेऽपि द्युतिमथ चपलां पश्यते यः पुरस्तात् कर्णे रन्ध्रं निरुन्धन्ध्वनिमथ मनुजो न शृणोति कथंचित् । तिक्तादीनां रसानां कथमपि रसना स्वादमात्रं न वेत्ति रौद्रं वैवस्वतस्य प्रतिगमनमथो पश्यते मानुषश्च ॥ यस्यात्युष्णं शरीरं शिरमथ मनुजस्यानिलं च प्रशीतं शीतं नोचेति यस्य हिमजलसिकते रोमहर्षो न यस्य । दण्डाघातेन राजा न भवति स पुनः श्राद्धदेवस्य लोके लोकानां दर्शनाय द्रुतमतिरुचिरां स्वस्थतां न प्रयाति ॥ तैले जले दर्पणके घृते वा परस्य नेत्रे प्रतिबिम्बमात्मनः । पश्येन्न योऽसौ यमलोकगन्ता जानीहि तं जीवविहीनमेव ॥ रोगं विना यस्य च रोमकूपतो रक्तं स्रवेद्वा पतनं तनूरुहाम् । मन्या शिरो धारयितुं न दक्षिणा स याति लोकं शमनस्य मासतः ॥ अभ्यंगहीना अपि मूर्द्धजा येऽभ्यक्ता इवालोकनगोचरास्ते । यस्यांगुलीनां स्फुटनं त्वहेतु जंतुः स गंता यमशासनं द्राक् ॥ यः शीलवान् क्रोधनतामुपैति यः क्रोधवान् शीलगुणं च धत्ते । द्वावेव मृत्युं तनोतु विधिज्ञः स्थूलो नरः शीघ्रतरं कृशांगः ॥ यो वा मयूरकंठाभं निर्धूमं वह्निमीक्षते । आतुरस्य भवेन्मृत्युः स्वस्थो व्याधिमवाप्नुयात् ॥ ह्रीश्रियौ नश्यतो यस्य तेज ओजः स्मृतिः प्रभा । अकस्माद्यं भजंते वा स परासुरसंशयम् ॥ यस्याधरोष्ठः पतितः क्षिप्तश्चोर्ध्वं यथोत्तरः । उभौ वा जाम्बवाभासौ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ आरक्ता दशना यस्य श्यावा वा स्युः पतंति च । खंजनप्रतिमा वापि तं गतायुषमादिशेत् ॥ कृष्णा तथावलिप्ता वा जिह्वा शूना च यस्य वै । कर्कशा वा भवेत् यस्य सोचिराद्विजहात्यसून् ॥ कुटिला स्फुटिता वापि शुष्का वा यस्य नासिका । अवस्फूर्जति मग्ना वा न स जीवति

मानवः ॥ संक्षिते विषमे स्तब्धे रक्ते स्रस्ते च लोकने । स्यातां वा प्रस्नुते यस्य स गतायुर्नरो ध्रुवम् ॥ केशाः सीमन्तिनो यस्य संक्षिप्ते विनते भ्रुवौ । लुनंति चाक्षिपक्ष्माणि सोचिरात् याति मृत्यवे ॥ नाद्रियत्यन्नमास्यस्थं न धारयति यः शिरः । एकाग्रदृष्टिर्मूढात्मा सद्यः प्राणान् जहाति सः ॥ बलवान् दुर्बलो वापि संमोहं योऽधिगच्छति । उत्थाप्यमानो बहुशस्तं धीरः परिवर्जयेत् ॥ शीतपादकरोच्छ्वासश्छिन्नश्वासश्च यो भवेत् । काकोच्छ्वासश्च यो मर्त्यस्तं धीरं परिवर्जयेत् ॥ निद्रा न छिद्यते यस्य यो वा जागर्ति सर्वदा । मुह्येद्वा वक्तुकामस्तु प्रत्याख्येयः स जानतः ॥ यो धर्मशीलो भवतीह पापी पापात्मको धर्म्मरतो यदि स्यात् । स मृत्युभागी भवतीह शीघ्रं यश्च प्रकृत्या विकृतिं प्रयाति ॥ यो वैपरीतं श्रवणेऽपि शब्दं गृह्णाति वा न शृणुते स शीघ्रम् । स वै मृतिं पश्यति यो न पश्येत् छायां स्वकीयां धरणीप्रपन्नाम् ॥ मन्दाकिनीं वा ध्रुवमंडलं वा वशिष्ठपत्नीमपि यो न पश्येत् । विधोश्च भानोरपि चक्रवाले छिद्राणि पश्येत् स यमातिथिः स्यात् ॥ सुगंधं वेत्ति दुर्गन्धं दुर्गन्धस्य सुगंधिताम् । यो वा गंधान्न जानाति गतायुं तं विनिर्दिशेत् ॥ स्नानानुलिप्तं यश्चापि भजंते नीलमक्षिकाः । सुगंधिर्वा तयोऽकस्मात् तं वदन्ति गतायुषम् ॥ विपरीतेन गृह्णाति रसान् यश्चोपयोजितान् । उपयुक्ताः क्रमात् यस्य रसा दोषाभिवृद्धये ॥ यस्य दोषाग्निसात्म्यं च कुर्युर्मिथ्योपयोजिताः । यो वा रसान्न संवेत्ति गतायुं तं प्रचक्षते ॥ द्वंद्वान्युष्णहिमादीनि कालावस्था दिशस्तथा । विपरीतेन गृह्णाति भावानन्यांश्च यो नरः ॥ दिवा ज्योतींषि यश्चापि ज्वलितानीव पश्यति । रात्रौ सूर्यं ज्वलंतं वा दिवा वा चन्द्रवर्चसम् ॥ अमेध्योपप्लवेयश्च शक्रचापतडि

द्रुणान् । तडित्त्वतोऽसितान्यो वा निर्मले गगने घनान् ॥ अतिसारो ज्वरो हिक्का छर्दिः शूनांडमेढ्रता । श्वासितो कासितो वापि यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ स्वेदो दाहश्च बलवान् हिक्का श्वासश्च मानवम् । बलवंतमपि प्राणैर्वियुज्यंति न संशयः ॥ श्यामा जिह्वा भवेत् यस्य सव्यं चाक्षि निमज्जति । मुखं च जायते पूति यस्य तं वर्जयेत् ॥ वक्रमापूर्यतेऽश्रूणां स्विद्यतश्चरणावुभौ । चक्षुश्चाकुलतां याति यमराष्ट्रं गमिष्यतः ॥ अतिमात्रं लघूनि स्युर्गात्राणि गुरुकाणि च । यस्य कस्मात् स विज्ञेयो गतो वैवस्वतालयम् ॥ पङ्कमत्स्यवसातैलघृतगंधाश्च ये नराः । मृष्टगंधाश्च ये वांति गंतारस्ते यमालयम् ॥ यूका ललाटमायांति बलिं नाश्नन्ति वायसाः । येषां वापि रतिर्नास्ति यातारस्ते यमालयम् ॥ विषमेणोपचारेण कर्म्मभिश्च पुराकृतैः । अनित्यत्वाच्च जन्तूनां जीवितं निधनं व्रजेत् ॥ २६ ॥

भाषा–जिस प्रकार वृक्षमें फूलके आनेसे फल आनेकी सम्भावना होती है उसी प्रकार अरिष्टके लक्षण होनेसे मृत्युकी सम्भावना होती है। बिना फूलकेही बहुत वृक्षोंमें फल आता है और बहुत वृक्षोंमें फल नहीं आता। फूल आता है यह तो ठीक है परन्तु बिना अरिष्टके मृत्यु नहीं हो सक्ती। वह मृत्यु नहीं जिसमें अरिष्टके लक्षण प्रथम न हों। बहुत जगह ऐसा होता है कि अरिष्ट लक्षण तो हो जाते हैं परन्तु रोगीकी मृत्यु नहीं होती तथा कहीं मृत्यु तो हो गई परन्तु मृत्युसूचक अरिष्ट लक्षण न हुए। यह बात ठीक नहीं है अर्थात् अपना भ्रम है। जिसको वैद्यने अरिष्ट समझा था वह अरिष्ट चिन्ह नहीं था वह केवल वैद्यकी बुद्धिका अपराध था। कहीं मृत्युसे पूर्व अरिष्टके सम्पूर्ण लक्षण नहीं मालूम होते। वह यह बात है कि वे अरिष्टके लक्षण अत्यन्त सूक्ष्म होनेके कारण तथा प्रमादके कारण एवं बहुत शीघ्र शीघ्र एवं लक्षणके पश्चात् दूसरा लक्षण होनेसे उसका ज्ञान रोगीको ठीक ठीक नहीं होता। अतएव ये मृत्युके पूर्व अरिष्टके लक्षण अवश्य होते हैं। गतायु मनुष्यकी चिकित्सा करनेसे सिद्धि नहीं होती इस कारण वैद्यको उचित है अच्छे प्रकारसे अरिष्टके लक्षणोंको जानकर चिकित्सा करे। जिस मनुष्यके शरीर, शील और स्वभाव ये सब बदल जावें उसको अरिष्ट

मृत्युके लक्षण कहते हैं यह संक्षेपसे कहा अब विस्तारसे कहता हूं। जिस प्रकार कमलिनीके पत्ते जलमें पडे रहनेपरभी उनमें पानी नहीं लगता उसी प्रकार जिसके शरीरमें जलादिकका लेप करनेसेभी जल नहीं लगे वह मनुष्य छः महीनेमें यमराजके घर जाता है। जलादिकमें स्नान करनेके पश्चात् जिसका प्रथम वक्षःस्थल सूखे और सब अंग गीले रहें तथा जिसके मुखमें तीन अंगुली न जा सकें, एवं स्नान करे हुएके शिरमें धुंएकी शिखा निकले और जिसके शिरपै फल और धान्यरहित चोंचवाले पक्षी बैठे उसकी मृत्यु निकटही समझना चाहिये। जो मनुष्य दुर्बल और कृश हो वह अकस्मात् मोटा तथा पुष्ट हो जाय गौर मनुष्य अकस्मात् श्याम हो जाय और श्याम मनुष्य अकस्मात् गौर हो जाय तौ वह दो महीनेमें मृत्युको प्राप्त होगा। जो निरोगी मनुष्य मुखके द्वारा श्वास लेवे तथा नेत्र लाल हो जांय और दन्त कृष्ण हो जांय वह स्वस्थ होनेपरभी शीघ्रही यमलोकको जाता है। जिसके प्रातःसमय शिरमें पीडा हो तथा जो दीवेकी लौहमें मंडल देखे और आकाशपटल धूलसे व्याप्त देखे वह शीघ्रही मृत्युके वशमें होता है। जो सूर्यबिम्बमें चन्द्रमाको देखे बिनाही चंद्रमाके चन्द्रमण्डलको देखे और धुंएसे आच्छादित सूर्यके मंडलको देखे वह शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होता है। जो स्वस्थ मनुष्य बादलोंरहित आकाशमें तथा दिशा विदिशा सबमें इन्द्रधनुषको देखे तथा अपने नेत्रोंके आगे इन्द्रधनुषकी समान हरित, नील, रक्त, पीतवर्णके सूक्ष्म परमाणु देखे वह शीघ्रही यमलोकको जाता है। जो मनुष्य नेत्रोंको मींचनेपर नेत्रोंके आगे दीप्त पदार्थको देखे तथा कानोंको अंगुलियोंसे बन्द करनेपर कानके भीतरके स्वाभाविक शब्दको न सुने और तिक्त आदि रसवाले पदार्थोंको जिह्वासे खानेपरभी उनके स्वादको न जाने वह बहुत शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है। जिसका शरीर अत्यंत गरम हो और क्षणभरमें शीतल हो जाय तथा जिसको गरमी और सरदी नहीं जान पडे तथा जिसके शरीरसे शीतल जल या बरफ अथवा अत्यंत शीतल रेतेका स्पर्श होनेसे रोमांच हो आवें वह मनुष्य स्वस्थताको नहीं प्राप्त होता तथा बहुत शीघ्र मृत्युको प्राप्त होता है। जो मनुष्य अपने प्रतिबिम्बको तैल, जल, दर्पण, घृत और दूसरेके नेत्रोंकी पुतलियोंमें नहीं देखता है वह शीघ्र यमनगर जाता है। बिनाही रोगके जिसके रोमोंकी जडमेंसे रुधिर स्रवे अथवा रोम गिरने लगें तथा जिसकी गरदन शिरको धारण नहीं करे वह मनुष्य एक महीनेमें यमराजके घर जाता है। जिसके बिना बालोंमें तैलके लगाये तैल लगा प्रतीत होवे तथा जिसके बिना कारण अंगुलियोंमें स्फुटन हो वह मनुष्य शीघ्रही यमराजके घरको जाता है। जो क्षमावान् मनुष्य क्रोधी हो जाय

और क्रोधवान् मनुष्य क्षमावान् हो जाय तथा जो स्थूल मनुष्य कृश हो जाय और कृश मनुष्य स्थूल हो जाय तो शीघ्र मृत्युको प्राप्त होवे । जो मनुष्य निर्धूम अग्निको मोरके कंठकी समान नीलवर्ण देखता है वह यदि रोगी होय तौ गतायु जानना और स्वस्थ होय तौ रोगी हो जावेगा। जिस मनुष्यकी लज्जा, लक्ष्मी, तजे, ओज, स्मरणशक्ति और प्रभा अकस्मात् नष्ट हो जाय वह मनुष्य गतायु जानना । जिस मनुष्यका नीचेका होंठ लटक आवे और ऊपरका होंठ ऊपरको चिपट आवे या दोनों होंठ जामुनकी समान नीले हो जांय उसको गतायु जानना । जिस मनुष्यके दांत लाल या काले पड जांय अथवा टूटकर गिर पडें किंवा खंजन पक्षीकी समान वर्णवाले हो जांय उसको गतायु जानना । जिस मनुष्यकी जिह्वा काली, जड, लिबलिबी, सूजी हुई और कठोर हो जाय उसको गतायु जानना। जिस मनुष्यकी नाक टेढी, फटी, सूखी हो जाय तथा बोले एवं भीतरको बैठ जाय उसको गतायु जानना । जिस मनुष्यकी आंखें भीतरको घुस जांय, छोटी बडी हो जांय, जड, लाल और नीचेको गिर जांय तथा उनमेंसे पानी स्रवे उसको गतायु जानना । जिस मनुष्यके बालोंकी चोटीसी बंध जाय, दोनों भौं झुकझकर नीचेको लटक आवें और पलकोंको वारंवार खोलें बंद करें उसको गतायु जानना । जो मनुष्य मुखमें दिये हुए ग्रासको न निगल सके तथा सिरको गिराय देवे, एकही ओर टकटकी लगाकर देखता रहे और मूढ हो जाय वह तत्काल मृत्युको प्राप्त होगा । जो मनुष्य बलवान् हो या बलहीन हो वह बहुत उठानेपरमी न उठ सके किंतु मूर्च्छित हो जाय, उसकी धीर वैद्य चिकित्सा न करे । जिस मनुष्यके हाथ पांव और श्वास ठंडे हो जावें तथा श्वास रुकरुककर आवे अथवा जो कौएकी समान श्वास लेवे, उसकी तत्काल मृत्यु जाननी । जो मनुष्य निरंतर सोवे अथवा निरंतर जागे और बोलते समय बेहोश हो जाय उसको गतायु जानना । जो धर्मात्मा मनुष्य अकस्मात् पापी हो जाय और पापी मनुष्य अकस्मात् धर्मात्मा हो जावे तथा जिसकी प्रकृति बिगड जावे वह मनुष्य शीघ्रही मृत्युको प्राप्त हो । जो मनुष्य शब्दको विपरीततासे सुने अथवा सुने नहीं या बहुत कालमें कुछका कुछ समझे तथा जो मनुष्य पृथिवीमें विरद्दत अपनी छायाको न देखे तौ वह मनुष्य शीघ्रही मृत्युको प्राप्त होता है । जो आकाशमें स्वर्गगंगा, ध्रुवमंडल और वशिष्ठपत्नीको न देखे तथा सूर्य्य और चन्द्रमाके मंडलमें छिद्रोंको देखे वह यम- राजके घरको जावेगा । जो मनुष्य सुगंधिको दुर्गन्ध जाने और दुर्गन्धिको सुगंधि समझे अथवा जो दुर्गन्ध सुगन्ध दोनोंको बिलकुल नहीं समझे वह गतायु जानना। जिसने स्नानादिक करके चंदनादिका लेप किया हो उसके शरीरमें नीली मक्खी

आकर बैठे और जिसके शरीरमें अकस्मात् सुगंध आने लगे, उसको गतायु जानना। जो मनुष्य रसोंके स्वादको विपरीत समझे अर्थात् जिसको खट्टा रस मीठा लगे और मीठा रस खट्टा लगे तथा क्रमसे यथोचित रस सेवन किये हुएभी उलटे दोषोंकोही बढावे और विपरीत पदार्थ अग्निको दीपन और शमन करे एवं जिसको रसका ज्ञान न रहे वह गतायु जानना। जो मनुष्य गरमी, सरदी, कालकी अवस्था और दिशा इनको विपरीत भावसे समझे उसको गतायु जानना। जो मनुष्य दिनमें चन्द्रमा, तारे और सूर्यको अग्निकी समान प्रज्वलित देखे या रात्रिमें सूर्य्यको जलता हुआ देखे और दिनमें सूर्य्यको चन्द्रमाकी समान शीतल देखे उसको गतायु जानना। जिसको विना बादलोंके इन्द्रधनुष और बिजली दीखे तथा बिजलीवाले काले बादलोंको अनेक प्रकारसे चित्र विचित्रित देखे और निर्मल आकाशमें जिसको बादल दीखे उसको गतायु जानना। खांसी और श्वास रोगवाले मनुष्यके अतिसार ज्वर हिक्का और वमनादि उपद्रव हों तथा अंडकोष और लिंगपै सूजन हो उसको वैद्य त्याग देवे जिस बलवान् रोगीके पसीना और दाह अधिक हो उसको हिक्का और श्वास रोग नष्ट कर देत है। जिस रोगीकी जीभ काली और दाहिनी आंख गढ जाय और मुखमें दुर्गन्ध आने लगे उसको वैद्य त्याग देवे। जिस मनुष्यका मुख आंसुओंसे परिपूर्ण हो जावे, दोनों पांव पसीजने लगें और नेत्र व्याकुल हो जांय उसकी तत्काल मृत्यु होगी। जिस मनुष्यका भारी शरीर विना कारणही तत्काल हलका हो जावे वह रोगी यमराजके घर जावेगा। जिस मनुष्यके शरीरमें कीच, मछली, चर्वी, तैल और घीकी समान गंध आवे तथा जो रोगी दिव्य सुगंधित वमन करे वह यमपुरको जावेगे। जिस मनुष्यके मस्तकपै जूं फिरने लगे तथा जिसकी दी हुई बलिको कौए न खांय और जिसको कहीं चैन न पडे वह अवश्य यमालयको जावेगा। विषम उपचार करनेसे, पूर्वजन्मके कर्म्मोंसे और सर्व प्राणियोंके अनित्य होनेसे प्राणियोंका जीवन नाश होता है ॥ २६ ॥

अथ देशज्ञानम्।

देशस्त्रिधा निगदितश्चरकादिवैद्यैरानूपजांगलसमाभिधया प्रसिद्धः। तं ब्रूमहे ग्रथनविस्तरभीतिहेतोः संक्षेपतोऽत्र निजलक्षणलक्षितं च॥२७

भाषा-देश अनूप, जांगल और साधारण ऐसे तीन प्रकारका चरकादि वैद्योंने कहा है। उसीको मैं यहां ग्रंथ बढनेके भयसे विस्तारको छोडकर संक्षेपसे कहता हूं ॥ २७ ॥

तत्रानूपदेशलक्षणम् ।

बहुतरशुभनद्यश्चारुपानीयपुष्टाः सरससर उपेता शाद्वलासारभूमिः। हरितकुशजलानां शालिकेदाररम्या दिनकरकरदीप्तिं वाञ्छते यत्र लोकः॥ गुरुमधुररसाढ्या भाति चेक्षुः सदार्द्रां विविधजनितवर्णाः शालिगोधूमयूपाः । मधुररसविभुक्त्या मानवानां प्रकोपी भवति कफसमीरः स्यात्तदानूपदेशः ॥ २८ ॥

भाषा–जिसमें निर्म्मल और मनोहर जलवाली बहुतसी नदियें वहती हों तथा जिस देशकी पृथ्वी दूब और रसवाले वृक्षोंसे आच्छादित हो रही हो, हरी कुशा और जलसे भरे हुए हैं शालिधानोंके खेत उन खेतोंसे विभूषित हो रही भूमि जिसकी और जिस देशमें लोक सूर्य्यकी किरणोंकी अभिलाषा करते हैं, जहां भारी और मधुर रसान्वित निरंतर हरी ईख होती है, जहां नानाप्रकारके शालिधान और विविध प्रकारके गोधूमादि होते हैं और जहां मधुररसको भक्षण करनेसे कफ और वात कुपित होते हैं उस देशको अनूप देश कहते हैं ॥ २८ ॥

अथ जांगलदेशः ।

खरपरुषविशालाः पर्वताः कण्टकीर्णा दिशि दिशि मृगतृष्णाभूरुहाः शीर्णपर्णाः । अतिखररविरश्मिः पांशुसम्पूर्णभूमिः सरसि रसविहीनः कूपकारम्भकर्षः॥ तदनु विरससस्या हारिणो गोमहिष्यः प्रभवति रसमांशे रूक्षभावश्च सम्यक् । पुनरपि हिमवाहं शालिसस्यं न चेक्षुर्भवति रुधिरपित्तं कोपमाशु ह्युपैति॥२९॥

भाषा–जिसमें तीक्ष्ण और कठोर पहाड स्थित हैं तथा कंटकोंसे व्याप्त हो रही है दिशा जिसकी, जिसमें विनाही जलके मृगोंको जल प्रतीत होता है, जहां फटे हुए पत्तोंवाले वृक्ष अधिकतर होते हैं, जहां सूर्य्यकी किरणोंसे अत्यन्त संतप्त हुए वालूसे पृथ्वी परिपूर्ण हो रही है, जहां सरोवर और कुओंका पानी नीरस होकर सूख जाता है, जहां नीरस धान खानेसे हाथी, गाय, भैंस इत्यादि पशु अधिक प्रसन्न नहीं होते, जहां रस और मांसमें रूक्षता उत्पन्न होती है, जहां शीतल पवन, शालिधानोंके खेत और ईख नहीं होती है और जहां रक्त और पित्त कुपित होता है उसको जांगलदेश कहते हैं ॥ २९ ॥

अथ साधारणदेशः ।

उभयगुणयुतं वा नातिरूक्षं न स्निग्धं न च खरबहुलं चेत्

चाभितः कण्टकाढ्यम् । भवति च जलकीर्णे नातिशीतं न चोष्णं समप्रकृतिसमेतं विद्धि साधारणं च ॥ ३० ॥

भाषा-जहां अनूप और जांगल इन दोनों देशोंके लक्षण मिलते हों, जहां न तो अत्यन्त रूक्षता होवे और न अत्यंत स्निग्धता होवे, जहां तेज और कांटे अधिक न होवें, जो चारों ओर पानीसे व्याप्त हो, जिसमें न अत्यन्त शीत हो और न अत्यन्त गरमी होवे, समान प्रकृतिवाला होय उसको साधारण देश कहते हैं ॥३०॥

अथ क्षेत्रभेदाः ।

क्षेत्रभेदं प्रवक्ष्यामि शिवेनाख्यातमंजसा ।
ब्राह्मं क्षात्रं च वैश्यं च शौद्रं चेति यथाक्रमात् ॥ ३१ ॥

भाषा-अब महादेवके कहे हुए क्षेत्रभेदको कहता हूं । ब्राह्मक्षेत्र, क्षात्रक्षेत्र, वैश्यक्षेत्र और शौद्रक्षेत्र इन भेदोंसे क्षेत्र चार प्रकारका है सो यथाक्रमसे जानना ३१॥

ब्राह्मक्षेत्रम् ।

प्रायो दर्भपलाशवारिबहुलं यत्रार्जुना मृत्तिका ज्ञेयं तत्प्रथमं द्विजातिसुखदं द्रव्यं तदुक्तं भवेत् ॥ ३२ ॥

भाषा-जिसमें कुशा और पलाशके वृक्ष अधिक हों, जो क्षेत्र जलसे परिपूर्ण हो, जहांकी मृत्तिका पाण्डुवर्ण हो उस क्षेत्रको ब्राह्मक्षेत्र कहते हैं । ब्राह्मक्षेत्रके उत्पन्न हुए द्रव्य ब्राह्मणोंको सुख देनेवाले हैं ॥ ३२ ॥

क्षात्रक्षेत्रम् ।

ताम्रभूमिवलयं विभूधरं यन्मृगेन्द्रमुखसंकुलं कुलम् ।
घोरघोषिखदिरादिदुर्गमं क्षात्रमेतदुदितं पिनाकिना ॥ ३३ ॥

भाषा-जिसका रंग ताम्रवर्ण हो, पर्वत, सिंह और मृगादिकोंके समूहसे संयुक्त हो तथा भयंकर शब्द करनेवाले पशु पक्षी तथा खदिरादिकके वृक्षोंसे व्याप्त हो उसको शंकरने क्षात्रक्षेत्र कहा है ॥ ३३ ॥

वैश्यक्षेत्रम् ।

शातकुम्भनिभभूमि भास्वरं स्वर्णरेणुनिचितं निधानवत् ।
सिद्धकिन्नरसुपर्वसेवितं वैश्यभाक्यदिदमिन्दुशेखरः ॥ ३४ ॥

भाषा-जिसका रंग सुवर्णकी समान पीतवर्ण हो, जिसमें सुवर्णके कणसे मिले हों, एवं सिद्ध किन्नर और देवादिकोंकरके जो सेवित हो उसको शंकरने वैश्यक्षेत्र कहा है ॥ ३४ ॥

शूद्रक्षेत्रम् ।

श्यामस्थलाढ्यं बहुसस्यभूतिदं लसत्तृणैर्बब्बुलवृक्षवृद्धिदम् ।
धान्योद्भवैः कर्षकलोकहर्षदं जगाद शौद्रं जगतो वृषध्वजः ॥३५॥

भाषा-जिस पृथिवीका रंग श्यामवर्ण हो, जिसमें नानाप्रकारकी घास उत्पन्न होती हो, जहां तृण और बबूरके पेड बहुत हों तथा जो विविध प्रकारके धानोंके उत्पन्न होनेसे किसानोंको सुख देनेवाला है उस पृथिवीको शंकरने शूद्रक्षेत्र कहा है॥३५॥

चतुर्विधक्षेत्रोद्भवद्रव्यगुणाः ।

द्रव्यं क्षेत्रादुदितमनघं ब्राह्मतः सिद्धिदायि क्षात्रादुत्थं वलिपलि-
तजिद्विश्वरोगापहारि । वैश्याज्जातं प्रभवतितरां धातुलौहा-
दिसिद्धौ शौद्रादेतज्जनितमखिलव्याधिविद्रावकं द्राक् ॥ ३६ ॥

भाषा-तहां ब्राह्मणक्षेत्रसे उत्पन्न हुए द्रव्य सिद्धिदायक हैं । क्षत्रिय क्षेत्रसे उत्पन्न हुए द्रव्य वलि और पलित तथा सर्वसंसारके रोगोंको हरनेवाले हैं । वैश्यक्षेत्रसे उत्पन्न होनेवाले द्रव्य धातु और लोहादिककी सिद्धिमें लिये जाते हैं और शूद्रक्षेत्रसे उत्पन्न हुए द्रव्य सर्व प्रकारके रोगोंको हरनेवाले हैं ॥ ३६ ॥

ब्राह्मादि क्षेत्रोंकी देवता ।

ब्रह्मा शक्रः किन्नरेशस्तथा भूरित्येतेषां देवताः स्युः क्रमेण ।
प्रोक्तास्तत्र प्रागुमावल्लभेन प्रत्येकं ते पंचभूतानि वक्ष्ये ॥३७॥

भाषा-ब्रह्मा, इन्द्र, कुबेर और पृथिवी यह ऊपर कहे हुए ब्राह्मणादि क्षेत्रोंके क्रमसे देवता हैं ऐसा पहिले महादेवने कहा है । वह हरेक क्षेत्र पंचभूतोंसे पांच प्रकारका है अब उनको कहता हूं ॥ ३७ ॥

तत्रादौ पार्थिवक्षेत्रम् ।

पीतस्फुरद्दलयशर्करिलाश्मरम्यं पीतं यदुत्तममृगं चतुरस्रभूतम् ।
प्रायश्च पीतकुसुमान्वितवीरुधादि तत्पार्थिवं कठिनमुग्रदशेषतस्तु३८

भाषा-जो क्षेत्र पीले रंगके गोलकण और पाषाणोंसे शोभित हो तथा जिस क्षेत्रकी पृथिवीका रंगभी पीतवर्ण हो और जिस क्षेत्रमें वृक्ष लता पीले फूलवाली हों तथा जिसकी भूमि कठिन हो उसको पार्थिव क्षेत्र कहते हैं ॥ ३८ ॥

आप्य क्षेत्रम् ।

अर्द्धचन्द्राकृति श्वेतं कमलाभं दृषच्चितम् ।
नदीनदजलाकीर्णमाप्यं तत् क्षेत्रमुच्यते ॥ ३९ ॥

भाषा-जो क्षेत्र अर्द्धचन्द्राकार हो, जिसका वर्ण सफेद कमलकी समान पाषाणोंसे संयुक्त हो और जो नदी नदादि जलाशयोंसे व्याप्त हो उसको आप्य क्षेत्र जानना ॥ ३९ ॥

तैजसक्षेत्रम्।

खदिरादिद्रुमाकीर्णं भूरिचित्रकवेणुकम्।
त्रिकोणं रक्तपाषाणं क्षेत्रं तैजसमुत्तमम् ॥ ४० ॥

भाषा-जो क्षेत्र खदिरादिकके वृक्षोंसे परिपूर्ण हो, जिसमें अनेक चीतेके और बांसके वृक्ष हों, जिसका आकार त्रिकोणाकार हो और जिसमें लाल पाषाण हों उसको तैजस क्षेत्र कहते हैं ॥ ४० ॥

वायवीयक्षेत्रम्।

धूम्रस्थलं धूम्रदृषत्परीतं षट्कोणकं तूर्णमृगावकीर्णम्।
शाकैस्तृणैरंचितरूक्षवृक्षकं प्रकारयेत्तत्खलु वायवीयम् ॥ ४१ ॥

भाषा-जिस क्षेत्रका रंग धूसर हो तथा धुँएके रंगके पाषाणोंसे संयुक्त हो, जिसमें छः कोने हों, जिसमें मृगादि पशु, शाक और तृण अधिकतासे हों और जिसमें रूखे वृक्ष हों उस क्षेत्रको वायवीयक्षेत्र कहते हैं ॥ ४१ ॥

आन्तरिक्षक्षेत्रम्।

नानावर्णं वर्तुलं तत्प्रशस्तं प्रायः शुभ्रं पर्वताकीर्णमुच्चैः।
यत्र स्थानं पावनं देवतानां प्राह क्षेत्रं त्र्यम्बकस्त्वांतरिक्षम् ॥४२॥

भाषा-जिस क्षेत्रका रंग नानाप्रकारका हो, जो क्षेत्र गोल हो तथा जो श्वेत पर्वतोंसे आकीर्ण और ऊंचा होवे और जिसमें देवतादि वास करते हों उसको महादेवने अंतरिक्ष क्षेत्र कहा है ॥ ४२ ॥

पंचविधक्षेत्रोद्भवद्रव्यगुणाः।

द्रव्यं व्याधिहरं बलातिशयकृत् स्वादु स्थिरं पार्थिवं स्यादाप्यं कटुकं कषायमखिलं शीतं च पित्तापहम्। यत्तिक्तं लवणं च दीप्यमरुचि चोष्णं च तत्तैजसं वायव्यं तु हिमोष्णमम्लमबलं स्यान्नाभसं नीरसम् ॥ ४३ ॥

भाषा-पार्थिवक्षेत्रमें उत्पन्न होनेवाले द्रव्य रोगनाशक, अत्यंत बलकारक, स्वादिष्ठ और स्थिर होते हैं। आप्य क्षेत्रमें उत्पन्न होनेवाले द्रव्य चरपरे, कषैले, शीतल और पित्तनाशक होते हैं। तैजस क्षेत्रके उत्पन्न होनेवाले द्रव्य कडवे,

नमकीन, अग्निको दीपन करनेवाले, वातनाशक और गरम होते हैं। वायवीय क्षेत्रमें उत्पन्न होनेवाले द्रव्य शीतल, गरम, खट्टे और अबलकारक होते हैं और आंतरिक्ष क्षेत्रमें उत्पन्न होनेवाले सब द्रव्य नीरस होते हैं ॥ ४३ ॥

पंचविधक्षेत्रोंकी देवता।

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रः स्यादीश्वरोथ सदाशिवः।
इत्येताः क्रमतः पंच क्षेत्रभूतादिदेवताः ॥ ४४ ॥

भाषा–ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव ये क्रमसे पांच क्षेत्रोंके पांच देवता हैं ॥ ४४ ॥

अथ वृक्षोत्पत्तिः।

जित्वा जवादरिसुसैन्यमिहाजहार वीरः पुरा युधि सुधाकलशं गरुत्मान्। कीर्णैस्तदा भुवि सुधाशकलैः किलासीद्वृक्षादिकं सकलमस्य सुधांशुरीशः ॥ ४५ ॥

भाषा–पूर्वकालमें जिस समय बलवान् गरुडजीने सर्व देवसेनाको संग्राममें जीतकर अमृतके कलशको शीघ्रतासे छीना था उस समय जो अमृतकी बूंदें कलसेमेंसे पृथिवीके भागोंमें गिरीं उन्हीं बूंदोंसे यह सब वृक्षादिक उत्पन्न हुए और इन सबका स्वामी चन्द्रमा हुआ ॥ ४५ ॥

वृक्षादीनां ब्राह्मणादिकथनम्।

तत्रोत्पन्नास्तूत्तमे क्षेत्रभागे विप्रीयादौ विप्रियौ यत्र यत्र। क्षोणीजादिद्रव्यभूयं प्रपन्नास्तास्ताः संज्ञा बिभ्रते तत्र भूयः ॥ एवं क्षेत्रानुगुण्येन तज्ज्ञा विप्रादिवर्णिनः। यदि वा लक्षणं वक्ष्याम्यमोहाय मनीषिणाम् ॥ ४६ ॥

भाषा–ब्राह्मणादि क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुए द्रव्य ब्राह्मण, क्षत्रियक्षेत्रोंमें उत्पन्न होनेवाले द्रव्य क्षत्रिय, वैश्यक्षेत्रोंमें उत्पन्न होनेवाले द्रव्य वैश्य और शूद्रक्षेत्रोंमें उत्पन्न होनेवाले द्रव्य शूद्र कहलाते हैं। ऐसे हरेक क्षेत्रके अनुसार वृक्षोंके ब्राह्मणादि भेद हैं। उनमें कदाचित् वैद्यको भ्रम न हो जावे इस कारण उनके लक्षण कहते हैं ॥४६॥

ब्राह्मणादिवृक्षोंके लक्षण।

किसलये कुसुमे प्रकाण्डशाखादिषु विशदेषु वदन्ति विप्रमेतान्। नरपतिमतिलोहितेषु वैश्यं कनकनिभेषु सितेतरेषु

शूद्रम् ॥ विप्रादिजातिसम्भूतान् न विप्रेष्वेव योजयेत् । गुणाढ्यानपि वृक्षादीन् प्रातिलोम्यं न चाचरेत् ॥ ४७ ॥

भाषा-जिनके पत्र, पुष्प, दण्डी और शाखादि बडे हों उसको ब्राह्मणजातिका वृक्ष जानना । जिसके पत्र, पुष्प, मकाण्ड और शाखादि लाल होवें उसको क्षत्रियजातिका वृक्ष जानना और जिसके पत्र पुष्पादि पीले होवें उसको वैश्य तथा जिसके काले हों उसको शूद्रजातिका जानना। ब्राह्मणजातिके वृक्ष ब्राह्मणोंको देवे, क्षत्रियजातिके क्षत्रियको, वैश्यजातिके वैश्योंको और शूद्रजातिके शूद्रोंको देवे । अधिक गुणवाले वृक्षोंको प्रतिलोमन (उलटा) न करे अर्थात् ब्राह्मणजातिके वृक्षोंको क्षत्रियादिकको और क्षत्रियादिके वृक्षोंको ब्राह्मण वैश्यादिकोंको और वैश्यजातिके वृक्षोंको शूद्र ब्राह्मण और क्षत्रियको एवं शूद्रजातिके वृक्षोंको ब्राह्मणादिकोंको न देवे४७

अथौषधिनिर्णयस्त्रिविधः ।

किंचित् दोषप्रशमनं किंचित् धातुप्रदूषणम् ।
स्वस्थवृत्तौ हितं किंचित् त्रिविधं द्रव्यमुच्यते ॥ ४८ ॥

भाषा-कोई औषधि वातादिक दोषोंको शांत करनेवाली, कोई रसादिक धातुओंको दूषित करनेवाली और कोई औषधि नीरोग प्राणियोंको हितकारक है ऐसे इस संसारमें जितने द्रव्य हैं वे सब तीन प्रकारके जानने ॥ ४८ ॥

तत्त्रिविधं यथा ।

द्रव्यं तु त्रिविधं प्रोक्तं जाङ्गमौद्भिदपार्थिवम् ॥ ४९ ॥

भाषा-फिर वही द्रव्य जंगम, औद्भिद और पार्थिव इन भेदोंसे तीन प्रकारका है ॥ ४९ ॥

जङ्गम द्रव्य ।

मधूनि गोरसाः पित्तं वसा मज्जा मृगामिषम् । विण्मूत्रं चर्म्म रेतोऽस्थि स्नायुः शृंगखुरा नखाः । जंगमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशा लोमानि रोचनाः ॥ ५० ॥

भाषा-सहत, गोरस, पित्त, चरबी, मज्जा, रुधिर, मांस, विष्ठा, मूत्र, त्वचा, वीर्य, हड्डी, नसें, सींग, खुर, नख, केश, रोम और गोरोचन ये पशु पक्ष्यादि चलते हुए जीवोंसे उत्पन्न हुए द्रव्य व्यवहारमें आते हैं ॥ ५० ॥

पार्थिव द्रव्य ।

सुवर्णं समलाः पंच लोहाः ससिकता सुधामनःशिलाले ।
मणयो लवणं गैरिकांजने भौममौषधमुद्दिष्टम् ॥ ५१ ॥

भाषा-सोना, चांदी, तांबा, जस्त, रांग, सीसा, लोहा, शिलाजीत, वालू, सोनामाखी, खपरिया, मुर्दासिंग, मनशिल, हरिताल, हीरादि नव रत्न, उपरत्न, सैंधवादि लवण, गेरू, खडियामट्टी, कसीस, सुर्मा इत्यादि पार्थिव अर्थात् यह औषधि पृथ्वीकी खानोंमेंसे निकलती हैं इसकारण इनको भौम औषधि कहते हैं ॥ ५१ ॥

औद्भिदद्रव्यम् ।

वनस्पतिर्वीरुधश्च वानस्पत्यस्तथौषधिः । फलैर्वनस्पतिपुष्पैर्वानस्पत्यः फलैरपि । ओषध्यः फलपाकांताः प्रतानैर्वीरुधः स्मृताः ५२

भाषा-धरतीको फोडकर जो निकले उनको औद्भिद द्रव्य कहते हैं और उस औद्भिदकी चार जाति हैं । तहां वनस्पति १ वीरुध २ वानस्पत्य ३ और औषधि ४ जिनपै विना फूलकेही फल लगे उनको वनस्पति तथा पादप कहते हैं जैसे बड, पीपल इत्यादि । जिनपर फूल आकर फल आते हैं उनको वानस्पत्य तथा शाखी कहते हैं जैसे आम, जामुन इत्यादि । और जो फल आनेके बाद सूख जाते हैं उनको औषधि कहते हैं जैसे गेहूं, जौ आदि । और जिनकी वेल चलती है उनको वीरुध कहते हैं ॥ ५२ ॥

अथ वृक्षादीनां पुंस्त्वादिकथनम् ।

स्त्रीता पुंस्ता क्लीबता च द्रुमादौ ज्ञेया युक्त्या लक्षणं तद्वदामि । स्निग्धं दीर्घं पेलवं चित्तहारि पुष्पाद्यं चेत् स्त्री मता सा भिषग्भिः ॥ नो दीर्घा नातिह्रस्वाः किसलयसुमनःस्कन्धकाण्डादयश्चेत् स्थूलाः पारुष्यभाजस्त इह निगदिताः पूरुषा वैद्यवर्य्यैः । पुंसो वध्वाश्च लिंगं मिलति च यदि वा क्लीबता साभिधेया स्वं स्वं स्वे स्वे नियुक्तं गदिजनफलदं भेषजं तत्कुलं च ॥ द्रव्यं पुमान् स्यादखिलस्य जन्तोरारोग्यदं तद्बलवर्द्धनं च । स्त्री दुर्बला स्वल्पगुणा गुणाढ्याः स्त्रीष्वेव न क्वापि नपुंसकं स्यात् ॥ ५३ ॥

भाषा-वृक्षादिकोंमें स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये तीन भेद हैं । उनके लक्षण आगे अलग अलग कहता हूं । जिसके पुष्प फलादिक स्निग्ध, दीर्घ, कोमल और मनोहर होवें वे स्त्रीजातिके वृक्ष जानने । जिसके पल्लव, पुष्प, स्कन्ध, कांड न तौ अत्यंत दीर्घ हों और न अत्यंत ह्रस्व हों तथा स्थूल और दृढ होवें उनको पुरुषजातिके वृक्ष जानने । जिसमें पुरुष और स्त्री दोनोंके लक्षण मिलते हों उसको

नपुंसकजातिका वृक्ष जानना। स्त्री जातिके वृक्ष स्त्रियोंको, पुरुषजातिके पुरुषोंको और नपुंसकजातिके नपुंसकोंको देने चाहिये। इस प्रकार करनेसे रोगियोंको फलकी प्राप्ति होती है। सर्व पुरुषजातिकी औषधि आरोग्यताजनक और बलको बढानेवाली हैं। स्त्रीजातिकी औषधि दुर्बल और अल्पगुणवाली तथा स्त्रियोंको अधिक गुण करनेवाली हैं और नपुंसकजातिकी औषधि किसीकोभी हितकारी नहीं है ॥ ५३ ॥

वृक्षादीनां क्षुत्पिपासादिकथनम्।

क्षुत् पिपासा च निद्रा च वृक्षादिष्वपि लक्ष्यते।
मृज्जलादानस्तत्वाद्ये पर्णसंकोचतोंतिमा ॥ ५४ ॥

भाषा-भूख, पियास और निद्रा ये वृक्षादिकोंमेंभी पाये जाते हैं क्योंकि वृक्ष मिट्टी खाते, पानी पीते हैं जो उनको मिट्टी और पानी न मिले तौ वे मर जाते हैं अर्थात् सूख जाते हैं। रातको वृक्षके पत्ते सकुच जाते और फिर सबेरेको खिल जाते हैं। वृक्षोंमें इससे निद्रा पाई जाती है ॥ ५४ ॥

वृक्षादीनां पंचभूतात्मकत्वकथनम्।

यत्काठिन्यं सा क्षितिर्योंद्रवांभस्तेजस्तूष्मा वर्द्धते यत्स वातः।
यच्छिद्रं तन्नभः स्थावराणामित्येतेषां पंचभूतात्मकत्वम् ॥५५॥

भाषा-वृक्षोंमेंभी मनुष्योंकी तरह पंचभूत रहते हैं। वृक्षोंमें कठिनता पृथिवीका भाग है, गीलापन जलका भाग है, उष्णता अग्निका अंश है, वृक्षोंकी वृद्धि वायुका विभाग है और वृक्षोंमें जो छिद्र होते हैं वह आकाशका अंश है ॥ ५५ ॥

वृक्षादीनां परोपकारः।

मूलत्वक्सारनिर्यासनाडिस्वरसपल्लवाः।
क्षाराः क्षीरफलं पुष्पं भस्मतैलानि कंटकाः।
पत्राणि शुंगा कंदाश्च प्ररोहाश्चोपकारकाः ॥ ५६ ॥

भाषा-मूल, त्वक्, सार, निर्यास, नाड, स्वरस, पल्लव, क्षार, क्षीर, फल, पुष्प, भस्म, तैल, कंटक, पत्र, शुंगा और कंद ये सब वृक्षोंके अंग उपकार करनेवाले हैं। इस कारण वृक्षकी समान अन्य कौन जीव परोपकारी है ॥ ५६ ॥

अथ मानपरिमाणम्।

द्रव्याणामिह योजना न घटते मानं विना वैद्यके तद्द्वेधा गदितं हि मागधमथो कालिंगसंज्ञं परम्। तद्वक्ष्यामि समासतोऽ-

त्र भिषजा ज्ञेया प्रयोगार्थता कालिंगान्मगधोद्भवं बुधजनैः श्रेष्ठं मतं शास्त्रतः ॥ त्रिंशत्परमाणूनां त्रसरेणुः स्यात् स वंश्यपरनामा । षड् स्युस्तेत्र मरीचिस्ताभिः षड्भिश्च राजिका ताभिः॥ तिसृभिः सर्षपसंज्ञस्तैरष्टाभिर्भवेद्यवो मानम् । चत्वारस्ते गुंजा ताः षण्माषश्च हेमधानाख्यः ॥ ते वेदा धरणः स्याट्टंकः शाणस्तयोर्द्वयं कोलम् । क्षुद्रमवटकद्रंक्षणपर्य्यायैस्तं निगद्यते वैद्यैः ॥ ग्रासग्रहोदुम्बरहंसपादबिडालपादाक्षसुवर्णकर्षाः । किंचित्करस्तिन्दुकपाणिमध्ये पिचुस्तथा षोडशिका मता च ॥ सैवार्धशुक्तिः करमाणिका च प्रोक्तं तथा पाणितलं भिषग्भिः । कोलद्वयं नामभिरेभिरत्र ज्ञेयं हि मानं किल मानविद्भिः॥ कर्षद्वयं त्वर्द्धफलं च शुक्तिः सैवाष्टमी तद्युगतः पलं स्यात् । प्रकुंचबिल्वाम्रचतुर्थिकाश्च मुष्टिस्तथा षोडशिका भवेत्तत् ॥ पलद्वयेन प्रसृतिश्च तद्वयादिहांजलिः स्यात्कुडवोष्टमानकम् । ज्ञेयः शरावः कुडवद्वयादसौ सा मानिका तानि पलानि चाष्टौ॥ प्रस्थः शरावद्वयतश्चतुर्भिस्तैराढकं भाजनकांस्यपात्रे । द्रोणश्च तैर्वेदमितैः स राशिर्घटो मणो नल्वण उन्मितश्च॥ द्रोणद्वयेन कुम्भः शूर्पस्तद्युग्मतो भवेद्द्रोणी । वाहो गोणी सा स्यात् खारी द्रोण्यश्च-तस्रस्ताः ॥ तुलापलानां शतमत्र वेद्यं भारः सहस्रद्वयतः पलानाम् । अतो मया भेषजयोगहेतोर्मतेन चोक्तं खलु मागधेन ॥८७॥

भाषा-वैद्यकमें विना मान (तोल) के द्रव्योंकी योजना नहीं होती, इस कारण मैं मगध और कालिंग नामवाला ऐसे दो प्रकारका मान वैद्योंके हितके लिये संक्षेपसे कहता हूं । क्योंकि मागध और कलिंग येही दो मान शास्त्रमें उत्तम कहे हैं । तीस परमाणुओंका एक त्रसरेणु होता है उसको वंशीभी कहते हैं । (घरके आली, झरोखे, रोसनदान, धमाले आदिमें जो सूर्यकी किरणें पडती हैं उन किरणोंमें जो छोटे छोटे परमाणु तिलमिलेसे दिखाई देते हैं उसको वंशी कहते हैं), छः वंशीकी एक मरीचि होती है, छः मरीचिकी एक राई होती है, तीन राईकी एक

रसा होती है, आठ सरसोंका एक जौ होता है, चार जौकी एक गुंजा (रत्ती) होती है, छः गुंजाका एक मासा होता है उसको हेमधान्यकभी कहते हैं, चार मासेका एक शाण होता है जिसको धरण और टंकभी कहते हैं, दो शाणका एक कोल होता है जिसको क्षुद्रमवटक और द्रंक्षणभी कहते हैं, दो कोलका एक कर्ष होता है उसको ग्रासग्रह, उदुम्बर, हंसपाद, बिडालपाद, अक्ष, सुवर्ण, कर्ष, किंचित्कर, तिन्दुक, पाणिमध्य, पिचु, षोडशिका, अर्धशुक्ति, करमानिका और पाणितल कहते हैं। दो कर्षका अर्द्ध पल होता है उसको शुक्ति और अष्टमीभी कहते हैं। दो शुक्तिका एक पल होता है उसको मकुंच, बिल्व, आम्र, चतुर्थिका, मुष्टि और षोडशिकाभी कहते हैं। दो पलकी एक प्रसृति होती है, दो दो प्रसृतिकी एक अंजली होती है जिसको कुडव और अष्टमानकभी कहते हैं, दो कुडवका एक शराव होता है जिसको मानिका और अष्टपलभी कहते हैं, दो शरावका एक प्रस्थ होता है और चार प्रस्थका एक आढक होता है जिसको भाजन और कांसपात्रभी कहते हैं, चार आढकका एक द्रोण होता है जिसको राशि, घट, मण नल्वण और उन्मितभी कहते हैं, दो द्रोणका एक कुम्भ होता है जिसको शूर्पभी कहते हैं। दो शूर्पकी एक द्रोणी होती है जिसको वाह और गोणीभी कहते हैं। चार द्रोणीकी एक खारी होती है। सौ पलकी एक तुला होती है और दो सहस्र पलका एक भार होता है। यह मैंने औषधिकी योजनाके लिये मागध मान कहा ॥ ५७ ॥

अथ कालिंगमानम्।

स्वरवर्णबलाग्निशुक्रसत्त्वैः कलिकाले बहुशो नरा विहीनाः। नहि ते मगधोत्थमानयोग्या इति कालिंगमिति वयं वदामः ॥ गौरैर्द्वादशसर्षपैर्निगदितं मानं यवस्तद्द्वयं गुंजा तत्रितयं स वल्ल उदितो माषोऽष्टगुंजो भवेत्। गुंजासप्तकतोलितः कचिदपि ज्ञेयश्चतुर्भिश्च तैः शाणो निष्ककटंककौ स गदितो गद्याणकः सोऽर्द्धभाक् ॥ माषाणां दशकेन कर्ष उदितस्तैः स्याच्चतुर्भिः पलं वेदैस्तैः कुडवोऽखिलं निगदितं प्रस्थादिकं पूर्ववत् ॥ ५८ ॥

भाषा–कलियुगमें स्वर, वर्ण, बल, अग्नि, वीर्य और सामर्थ्यहीन मनुष्य होते हैं, वह मनुष्य मागधमानके योग्य नहीं है, इस कारण उनके लिये अब कालिंगमान कहता हूं। बारह सफेद सरसोंका एक जौ होता है। दो जौकी एक गुंजा (रत्ती) होती है। तीन गुंजाका एक वल्ल होता है। आठ गुंजाका एक मासा होता है, कहीं कहीं सात गुंजाकाभी मासा होता है। चार मासेका एक

शाण होता है उसके निष्क और टंक नामांतर हैं । छः मासेका गद्याणक होता है, दश मासेका एक कर्ष होता है और चार कर्षका एक पल होता है । चार पलका एक कुडव होता है । आगे प्रस्थादिक जो तोल हैं वह मागधमानके अनुसार जानना ॥ ५८ ॥

इति श्रीमदायुर्वेदोद्धारककविकुलकमलप्रभाकरलालाशालिग्रामजीवैश्यविरचिते धन्वन्तरिग्रन्थे प्रथमः प्रकाशः ॥ १ ॥

अथ ज्वररोगनिदानम् ।

क्रीडन्मन्दरकन्दरोदरवलन्मन्दारवृन्दावने क्रोधान्धान्धकदारयाशु हरणे जृम्भत्रिशूलोद्गमः । त्रैलोक्याखिलसंकटोत्कटभयोद्वेलान्धकारांशुमान् पायाद्वस्त्रिपुरप्रमाथनपटुर्देवो हि पञ्चाननः ॥

ज्वरकी उत्पत्ति और अष्टविध भेद ।

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिश्वाससम्भवः ।
ज्वरोऽष्टधा पृथग् द्वन्द्वसंघातागन्तुजः स्मृतः ॥ १ ॥

भाषा—जब दक्षप्रजापतिने विश्वनाथ भूतेश्वर पशुपति महादेवका अपने यज्ञमें महाअपमान किया अर्थात् भाग न दिया तब शिवने अत्यन्त कुपित हो गम्भीर श्वास ले (तीसरे नेत्रको खोल क्रोधाग्निसे तत्कालही कालरूप) ज्वरको उत्पन्न किया, वह ज्वर आठ प्रकारका है । वात १, पित्त २, कफ ३, वातपित्त ४, वातकफ ५, कफपित्त ६, सन्निपात ७ और आगन्तुक ८ ॥ १ ॥

अष्टविध ज्वरोंके पृथक् २ लक्षण ।

मिथ्याहारविहारस्य दोषा ह्यामाशयाश्रयाः ।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ २ ॥

भाषा—मिथ्या आहार (देश, काल, प्रकृति प्रभृतिके विरुद्ध और समयके विपरीत भोजन), मिथ्या विहार (शरीरके पराक्रमसे अधिक परिश्रम करना और ग्रीष्म, वर्षा, शीतकालमें कुसमय फिरना) करनेसे मनुष्यके आमाशयमें रहनेवाले जो दोष हैं (वात, पित्त, कफ) वह दुष्ट होकर नाभिस्तनके मध्य आमाशयमें प्राप्त हुआ जो आहार उससे उत्पन्न हुआ जो रस है उसको बिगाडकर उदरकी

को शरीरसे बाहर निकाल पुरुषके सब शरीरको अग्निकी समान तप्तायमान हैं ॥ २ ॥

ज्वरके लक्षण ।

स्वेदावरोधः संतापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा ।
युगपद्यत्र रोगे च स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ ३ ॥

भाषा–जिसमें पसीना न आवे, देहमें सन्ताप हो और सब अंगमें पीडा हो, साथही जब यह सब लक्षण हों तो उसको ज्वर कहते हैं ॥ ३ ॥

ज्वरका पूर्वरूप ।

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः । इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥जृम्भाङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः । अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पत्स्यति ज्वरे ॥ ४ ॥

भाषा–विनाही परिश्रम परिश्रमसा मालूम हो, किसी वस्तुमें मन न लगे, का रंग बदल जाय, मुखमें विरसता जान पडे, नेत्रोंमें आंसू भर भर आवें, , गरमी और पवनमें कभी प्रीति, कभी द्वेष, वारंवार जम्भाई आवें, सब में चोट लगनेकी समान पीडा, सब शरीरमें भारीपन, रोमांचोंका खडा हो , अन्नमें अरुचि, आंखोंके आगे अन्धेरासा दिखाई देना, चित्तमें उदासीनता वारंवार सरदीका लगना ये सब लक्षण ज्वरके पूर्वमें होते हैं ॥ ४ ॥

ज्वरके विशेष लक्षण ।

सामान्यतो विशेषेण जृम्भात्यर्थं समीरणात् । पित्तान्नयनयो- र्दाहः कफादन्नारुचिर्भवेत् ॥ रूपैरन्यतराभ्यां तु संसृष्टैर्द्वन्द्वजं विदुः । सर्वेषां समलिङ्गं च सर्वदोषप्रकोपजे ॥ ५ ॥

भाषा–विशेषकरके वातज्वरमें अधिक जम्भाई आती है, पित्तज्वरमें नेत्रोंके दाह अधिक होता है और कफज्वरके विषय अन्नमें अरुचि होती है, कोई वैद्य इस श्लोकको क्षेपक बतलाते हैं । परन्तु हमने प्राचीन पुस्तकोंमेंभी देखा । अन्य लक्षण होनेसे द्वन्द्वज जानना चाहिये अर्थात् जैसे जम्भाई और नेत्रोंमें दाह होनेसे वातपित्तज्वर जानना, जम्भाई और अन्नमें अरुचि वातकफज्वर समझना तथा नेत्रोंमें दाह और अन्नमें अरुचि होय तो कफज्वर कहना, सर्वदोषज ज्वरके पूर्वरूपमें तीनों दोषके मिले हुए लक्षण हैं ॥ ५ ॥

वातज्वरके लक्षण ।

वेपथुर्विषमो वेगः कंठोष्ठपरिशोषणम् । निद्रानाशः क्षवः स्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता । शूलाध्माने जृम्भणं च भवत्यनिलजे ज्वरे ॥ ६ ॥

भाषा–शरीरका कांपना, ज्वरका विषमवेग, कण्ठ, होठ और मुखका सूख जाना (शुष्क होना), नींदका न आना, छींकका अवरोध, शरीरमें रूखापन, मस्तक, हृदय और सम्पूर्ण अंगोंमें पीडा । शंका–किसीको सन्देह हो कि गात्रपदमें तो मस्तक हृदय आ गया, फिर मस्तक और हृदयपद क्यों रक्खा? समाधान–इन दोनों पदोंके रखनेसे यह दरशाया कि मस्तक और हृदयमें अधिक पीडा होय, मुखमें निरसता हो, मल बन्द हो जाय, शूल, अफरा और जम्भाइयोंका वारंवार आना ये सब वातज्वरके लक्षण जानना ॥ ६ ॥

पित्तज्वरके लक्षण ।

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राल्पत्वं तथा वमिः । कण्ठोष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छादाहौ मदस्तृषा । पीतविण्मूत्रनेत्रत्वं पैत्तिके भ्रम एव च ॥ ७ ॥

भाषा–ज्वरका अत्यन्त तीक्ष्ण वेग हो, अतिसार अर्थात् पित्तके वेगसे दस्त पतला हो परन्तु उसको अतिसाररोग समझना नहीं चाहिये । अल्पनिद्रा हो, पित्त कफके स्थानमें जानेसे वारंवार वमनका होना, कण्ठ, होठ, मुख और नासिकाका पक जाना और पसीनेका आना, बकवाद, मुखमें कडुवापन, मूर्छा, दाह, उन्माद, तृषा, विष्ठा, मूत्र, नेत्र और देहकी त्वचा पीली हो जाना और भ्रम ये सब लक्षण पित्तज्वरमें होते हैं ॥ ७ ॥

कफज्वरके लक्षण ।

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता । शुक्लमूत्रपुरीषत्वं स्तम्भस्तृप्तिरथापि च ॥ गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता । प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥ ८ ॥

भाषा–जैसे भीगे वस्त्रसे शरीरको ढकनेसे ठण्डा हो जाता है ऐसा मालूम हो, ज्वरका वेग कम, आलस्य, मुखमें मीठापन, मूत्र और विष्ठा सफेद, शरीर जकडा हुआ, भोजनमें अरुचि, शरीरमें भारीपन, सरदीका लगना, उबकाइयोंका आना, रोमांका खडा हो जाना, निद्राका अधिक आना, प्रतिश्याय (जुकाम) का होना, अरुचि, खांसी और नेत्रोंका सफेद होना ये सब लक्षण कफज्वरके हैं ॥ ८ ॥

वातपित्तज्वरके लक्षण ।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा ।
कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोरुचिस्तमः ।
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ ९ ॥

[भा]षा–तृषा, मूर्छा, भ्रम, दाह, निद्राका क्षय, शिरमें दर्द, कण्ठ और मुखका [सूख]ना, वमन, रोमोंका खडा होना, अरुचि, आखोंके आगे अन्धेरा, सन्धि सन्धिमें [पीडा] और वारंवार जम्भाइयोंका आना ये सब वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥ ९ ॥

वातकफज्वरके लक्षण ।

स्तैमित्यं पर्वणाम्भेदो निद्रा गौरवमेव च ।
शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्त्तनम् ।
सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ १० ॥

[भा]षा–मुख कफसे भरा रहे, पित्तके स्वभावसे मुख कडुवा हो, नेत्रोंमें तन्द्रा, [क्षु]धा नाश, शरीर भारी, मूर्छा, खांसी, अन्नमें अरुचि, शिरमें दर्द, तृषा अधिक, [औ]र दाह और वारंवार शीतका लगना, पसीनेका आना, सन्धिसन्धिमें हडफूटन, [प्रतिश्]याय (जुकाम) ये वातकफके लक्षण हैं ॥ १० ॥

कफपित्तज्वरके लक्षण ।

लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ।
मुहुर्दाहो मुहुः शीतं पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ११ ॥

[भा]षा–मुख कफसे भरा रहे, पित्तके स्वभावसे मुख कडुवा हो, नेत्रोंमें तन्द्रा [दिखा]ई दे, मोह, खांसी, अन्नमें अरुचि, तृषा अधिक, कभी दाह, कभी शीत, शरी-[र] जकड जाना, पसीनेका आना, कफका मुखसे निकलना, मूत्र श्वेत और लाल [ने]त्र मेंडकके रंगकी समान पीले और श्वेत हों जिस मनुष्यके ऐसे लक्षण हों [उस]के पित्तकफज्वर जानना ॥ ११ ॥

सन्निपातज्वरके लक्षण ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा । सास्रावे कलुषे [र]क्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूके-[णे]वावृतः । तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ [प]रिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्ताङ्गता परम् । ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य

कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ कृशत्वं नातिगात्राणां प्रततं कंठकूजनम् । कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम्॥ मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च। चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ १२ ॥

भाषा-अकस्मात् कभी दाह हो जाय, कभी शीत लगने लगे, हड्डियोंकी सन्धियोंमें दर्द, मस्तकमें पीडा, नेत्रोंमें जल भरा रहे और रंग लाल काला हो, फटेसे दृष्टि आवे, कानोंमें विना कारणही बाजेकेसा शब्द और पीडा हो, कण्ठमें कांटेसे हो जांय, तन्द्रा, मोह, वृथा बकवाद, खांसी, श्वास, अरुचि और भ्रम बना रहे जिव्हा परिदग्धकी समान काली और गायकी जीभके सदृश खरखरी तथा शिथिल अर्थात् लठराईसी हो जाय, पित्त और रक्तमिला हुआ कफ आवे, शिरको वारंवार इधर उधर डुलावे, तृषा अधिक हो, नींद आवे नहीं, हृदयमें पीडा हो, पसीना, मल मूत्र बहुत देरमें थोडा थोडा आवे, दोषोंके कारणसे शरीर कृश न हो, कण्ठमें कफ बोलता रहे, त्वचाके ऊपर नीले, काले, लाल मण्डलाकार चकत्तोंका उत्पन्न होना, मूकता अर्थात् गूंगेकी समान रहना, शरीरके स्रोतोंका अर्थात् नाक, कान, मुख आदि छिद्रोंका पक जाना, उदरमें भारीपन और त्रिदोषोंका बहुत देरमें पाक होना ये सब सन्निपातज्वरके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

सन्निपातज्वरके साध्यासाध्य लक्षण ।

दोषे विरुद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः ।
सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ १३ ॥

भाषा-जिस सन्निपातमें दोष (वात, पित्त, कफ) अधिकता पाकर और सम्पूर्ण लक्षण युक्त होकर मिल जाय और जठराग्नि नष्ट हो जाय वह सन्निपातज्वर असाध्य समझना और इसके विपरीत अर्थात् दोषोंकी वृद्धि नहीं हो किञ्चित् लक्षण हों और अग्निभी अल्प मात्रही दीप्त हो वह सन्निपातज्वर कृच्छ्रसाध्य है ॥१३॥

सन्निपातकी मर्यादा ।

सप्तमे दिवसे प्राप्ते दशमे द्वादशेऽपि वा । पुनर्घोरतरो भूत्वा प्रशमं याति हन्ति वा ॥ सप्तमी द्विगुणा चैव नवम्येकादशी तथा । एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ १४ ॥

भाषा-सन्निपातज्वरमें यदि सातवें, दशवें और बारहवें दिन या तो शान्त हो जावा

है या रोगीको मार कूद कर मुण्डा कर डालता है, अन्यमतोंसे सन्निपातरोग सातवे चौदहवे, नवमे, अठारहवे, ग्यारहवे और बाईसवे दिन या तो रोगीको छोड देता है या यमपुरीमें पहुँचाता है ॥ १४ ॥

धातुपाकलक्षण ।

निद्रानाशो हृदि स्तम्भो विष्टम्भगौरवारुचिः । विष्टम्भता यस्य किलारतिः स्यात्स धातुपाकी मुनिभिः प्रदिष्टः १५

भाषा-निद्रा, बल, तेज, रुचि, वीर्य इनका नष्ट हो जाना, हृदयमें पीडा, शरीर भारी, चेष्टाहीन, अफरा, चित्तमें खेद और उच्चाटन ये लक्षण जिस रोगीमें होंय उसको आचार्यलोग धातुपाकी कहते हैं ॥ १५ ॥

दोषपाकलक्षण ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता ज्वरदेहयोः । इन्द्रियाणां च वैमल्यं दोषाणां पाकलक्षणम् ॥ १६ ॥

भाषा-दोषोंका स्वभाव विपरीत हो जाय, ज्वर कम हो जाय, शरीरमें भारीपन रहे, इन्द्रियें अपने अपने कर्ममें सावधान हो जायँ ये मलपाकके लक्षण जानना । धातुपाक और मलपाक होना नारायणके आधीन है, इसमें और कोई कारण नहीं बन सक्ता ॥ १६ ॥

सन्निपातज्वरके विशेष लक्षण ।

सन्निपातज्वरस्यांते कर्णमूले सुदारुणः । शोथः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरांततो वा श्रुतिमूलशोथः । क्रमादसाध्यः खलु कष्टसाध्यः सुखेन साध्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ॥ १७ ॥

भाषा-जब सन्निपात ज्वर शान्त हो जाता है तब कानकी मूलमें कर्णमूल निकलता है, उसमें महादारुण सूजन होती है । उस सूजनसे किसी रोगीके प्राण बच जाते हैं नहीं तो वह रोगी मरही जाता है । यदि कर्णमूल ज्वरके आदिमें निकले तो असाध्य जानना, ज्वरके मध्यमें निकले तो कष्टसाध्य समझना और ज्वरके अन्तमें निकले तो उसे मुनिवर लोग सुखसाध्य कहते हैं ॥ १७ ॥

सन्निपातज्वरमें तंद्राका लक्षण ।

सन्निपातज्वरोत्पन्नां युक्त्या तंद्रां जयेद्भिषक् । उपद्रवः कष्टतमो ज्वराणां सविशेषतः । आचितामाशयकफे सन्निपातज्वरे

हृद्ये । शांते त्ववश्यं तस्याशु तंद्रा समुपजायते ॥ अभिद्रवरसक्षीरदिवास्वापनिषेवणात् । दुर्बलस्याल्पवातस्य जंतोः श्लेष्मा प्रकुप्यति ॥ वायुर्मार्गं समावृत्य धमनीरनुसृत्य सः । तंद्रां सुघोरां जनयेत्तस्या वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ उन्मीलितविनिर्भुग्ने परिवर्त्तिततारके । भवतस्तस्य नयने लुलिते चलपक्ष्मणी ॥ विवृताननदंतोष्ठं मुहुरुत्तानशायिनम् । पिच्छिलोच्छिन्नतंतुश्च कंठे श्लेष्मास्य गच्छति ॥ कंठमार्गविरोधश्च वैकृतं चोपजायते । सोत्रांक त्रिरात्रं साध्यः स्यादसाध्यस्तु ततः परम् ॥ १८ ॥

भाषा–जिस समय मनुष्यको ज्वर आता है उस समय आम और कफ इकठा होकर महाघोर सन्निपातको प्रगट करे है, शान्ति होनेपर रोगीके लिये तन्द्राको उत्पन्न करे है, गन्ने इत्यादिका पतला रस, बकरी प्रभृतिके दूध पीनेसे, दिनमें सोनेसे, दुर्बल अथवा वायुवाले रोगीके हृदयमें कफ कुपित होकर कफ और वायुके मार्गको रोक देता है, फिर धमनी नाडीमें प्रवेश करके घोर तन्द्राको उत्पन्न करे है। अब उसके लक्षण कहता हूं। तन्द्रामें रोगीके नेत्र कुछ कुछ खुले रहें और कुछ कुछ मिच जांय, भीतरको घुसेसे जावें, तारे इधर उधरको फिरें, वारंवार पलक मारे तथा लटकेसे जावें, मुख खुल जाय, ओष्ठ ऊपरको सिमट जाय, दांत दीखने लगें, वारंवार सीधा सोवे, उसके गलेमें चिपकता हुआ गाढा तंतुकी समान कफ आ जावे और उससे गला रुक जाय और अनेक प्रकारके विकार उत्पन्न होते हैं। यह तीन दिनके पूर्व साध्य है और तीन दिनके पश्चात् असाध्य हो जाता है ॥१८॥

सन्निपातप्रकोपकारण ।

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैः कटुमधुरसुरातापसेवाकषायैः कामक्रोधातिरूक्षैर्गुरुतरपिशिताहारसौहित्यशीतैः । शोकव्यायामचिंताग्रहगणवनितात्यंतसंगप्रसंगैः प्रायः कुप्यंति पुंसां मधुसमयशरद्वर्षणे सन्निपाताः ॥ १९ ॥

भाषा–अम्ल (खट्टे), स्निग्ध (चिकने), उष्ण (गरम), तीक्ष्ण (तेज पदार्थ), कटु (चरपरे), मधुर पदार्थ, मदिरा और अग्नि अथवा सूर्य्यके सन्तापको सेवन करनेसे तथा काम, क्रोध, अत्यंत रूखे पदार्थोंका सेवन, गुरु (भारी)

पदार्थोंका खूब पेट भरकर भोजन करनेसे, एवं मांसको खानेसे, शीतल पदार्थोंका सेवन करनेसे, शोक, परिश्रम, शोच, ग्रहबाधा, अतिशय स्त्रीप्रसंग करनेसे और विशेष करके चैत्र, वैशाख, क्वार, कार्तिक, श्रावण तथा भादोंके महीनेमें सन्निपात कुपित होता है ॥ १९ ॥

सन्निपातोंके नाम।

संधिकश्चांतकश्चैव रुग्दाहश्चित्तविभ्रमः । शीताङ्गस्तंद्रिकः प्रोक्तः कंठकुब्जश्च कर्णकः ॥ विख्यातो भुग्ननेत्रश्च रक्तष्ठीवी प्रलापकः । जिह्वकश्चेत्यभिन्यासः सन्निपातास्त्रयोदश ॥ २० ॥

भाषा-संधिक, अंतक, रुग्दाह, चित्तविभ्रम, शीतांग, तन्द्रिक, कंठकुब्ज, कर्णक, भुग्ननेत्र, रक्तष्ठीवी, प्रलापक, जिह्वक और अभिन्यास इस प्रकार ये १३ सन्निपात हैं ॥ २० ॥

सन्निपातोंकी मर्यादा।

संधिके वासराः सप्त चान्तके दश वासराः । रुग्दाहे विंशतिर्ज्ञेया चन्द्राष्टौ चित्तविभ्रमे ॥ पक्षमेकं तु शीतांगे तन्द्रिके पंचविंशतिः । विज्ञेया वासराश्चैव कंठकुब्जे त्रयोदश ॥ कर्णके च त्रयो मासा भुग्ननेत्रे दिनाष्टकम् । रक्तष्ठीवी दशाहानि चतुर्दश प्रलापके ॥ जिह्वके षोडशाहानि कलाभिन्यासलक्षणे । परमायुरिदं प्रोक्तं म्रियते तत्क्षणादपि ॥ २१ ॥

भाषा-तहां सन्धिक सन्निपात सात दिन, अन्तक सन्निपात दश दिन, रुग्दाह सन्निपात बीस दिन, चित्तविभ्रम सन्निपात चौबीस दिन, शीतांग सन्निपात पन्द्रह दिन, तन्द्रिक सन्निपात पचीस दिन, कंठकुब्ज तेरह दिन, कर्णक सन्निपात तीन महीने, भुग्ननेत्र आठ दिन, रक्तष्ठीवी दश दिन, प्रलापक चौदह दिन, जिह्वक सोलह दिन और अभिन्यास सन्निपातभी सोलह दिनतक रहता है । यह उत्कृष्टसे उत्कृष्ट मर्यादा है परंतु कनिष्ठसे कनिष्ठ तत्कालभी मार डालता है ॥२१॥

साध्यासाध्य।

सन्धिकस्तन्द्रिकश्चैव कर्णकः कंठकुब्जकः । जिह्वकश्चित्तविभ्रंशः षट् साध्याः सप्त मारकाः ॥ २२ ॥

भाषा-सन्धिक १, तन्द्रिक २, कर्णक ३, कण्ठकुब्ज ४, जिह्वक ५, चित्तवि-

भ्रंश ६ ये छः सन्निपात सुखसाध्य हैं। इनसे अधिक और जो सात शेष रहे अन्तक १, रुग्दाह २, शीतांग ३, भुग्ननेत्र ४, रक्तष्ठीवी ५, प्रलापक ६ और अभिन्यास ७ यह सात असाध्य हैं, ये रोगीको विना मारे नहीं छोडते ॥ २२ ॥

संधिक सन्निपात ।

पूर्वरूपकृतशूलसंभवं शोषवातबहुवेदनान्वितम् ।
श्लेष्मतापबलहानिजागरं सन्निपातमिति संधिकं वदेत् ॥ २३ ॥

भाषा–जिसके पूर्वरूपमें शूलकी पीडा हो तथा शोष (खुस्की), वायुकी अत्यंत वेदना हो, कफ और संताप हो, बलका नाश और निद्रा न आवे उसको सन्धिक सन्निपात कहते हैं ॥ २३ ॥

अंतकसन्निपात ।

दाहं करोति परितापनमातनोति मोहं ददाति विदधाति शिरःप्रकंपम् । हिक्कां करोति कसनं च समातनोति जानीहि तं विबुधवर्जितमंतकाख्यम् ॥ २४ ॥

भाषा–जिसमें सम्पूर्ण शरीरमें दाह हो, सन्ताप हो, मोह (बेहोसी) होवे, शिर कांपे, हुचकी आवे, अधिकतर खांसी हो उसको वैद्योंकरके त्यागने योग्य अंतक सन्निपात जानना ॥ २४ ॥

रुग्दाह सन्निपात ।

प्रलापपरितापनप्रबलमोहमांद्यश्रमः परिभ्रमणवेदनाव्यथितकंठमन्याहनुः । निरंतरतृषाकरः श्वसनकासहिक्काकुलः स कष्टतरसाधनो भवति हंति रुग्दाहकः ॥ २५ ॥

भाषा–जिसमें प्रलाप, आतप, अत्यंत मोह, आलस्य, परिश्रम, भ्रम तथा कण्ठ, मन्यानाडी और ठोडी इनमें अत्यंत पीडा हो, निरंतर तृषासे पीडित हो, श्वास, खांसी और हिचकीसे व्याकुल होवे उसके अत्यंत कष्टसाध्य रुग्दाह सन्निपात जानना वह मारमी देता है ॥ २५ ॥

चित्तभ्रमसन्निपात ।

यदि कथमपि पुंसां जायते कायपीडा भ्रममदपरितापो मोहवैकल्पभावः । विकलनयनहासोद्गीतनृत्यप्रलापी ह्यभिदधति न साध्यं केपि चित्तभ्रमाख्यम् ॥ २६ ॥

भाषा-जिसमें किसी प्रकारकी शरीरमें पीडा हो, भ्रम, मद (उन्मत्तता), आताप हो, मोह (बेहोसी), विकलता, नेत्रोंको वारंवार चलावे तथा हँसे, गावे और नाचे, प्रलाप (बकवाद) हो उसको चित्तभ्रम सन्निपात जानना । चित्तभ्रमसन्निपातको कोई वैद्य असाध्य कहते हैं ॥ २६ ॥

शीतांगसन्निपात ।

हिमसदृशशरीरो वेपथुः श्वासहिक्का शिथिलितसकलांगः स्विन्नानादोग्रतापः । क्लमथुदवथुकासच्छर्द्यतीसारयुक्तस्त्वरितमरणहेतुः शीतगात्रः प्रभावात् ॥ २७ ॥

भाषा-जिसमें सम्पूर्ण शरीर बर्फकी समान शीतल होवे, कंप होवे, श्वास और हिचकी हों, सर्व शरीरके अंग शिथिल हो जांय, स्वरहीन हो जाय, उग्र सन्ताप हो, शरीरमें अवसन्नता, नेत्रादिकोंमें दाह हो, खांसी हो, वमन और अतिसार हो वह तत्काल प्राणनाशक शीतांग सन्निपात है ॥ २७ ॥

तंद्रिकसन्निपात ।

प्रभूता तंद्रार्त्तिज्वरकफपिपासाकुलतरो भवेच्छ्यामा जिह्वा पृथुलकठिना कंटकवृता । अतीसारः श्वासः क्लमथुपरितापः श्रुतिरुजो भृशं कंठे जाड्यं शयनमनिशं तंद्रिकगदे ॥ २८ ॥

भाषा-जिसमें तन्द्रा, पीडा, ज्वर, कफका प्रकोप, तृषासे व्याकुल, जिव्हा काली पड जाय, कठिन और कांटेयुक्त हो तथा अतीसार, श्वास, क्लम, सन्ताप, कानोंमें दर्द, कंठमें जडता और निरन्तर निद्रा आवे उसको तन्द्रिक सन्निपात जानना ॥२८॥

कंठकुब्जसन्निपात ।

शिरोर्त्तिकंठग्रहदाहमोहकंपज्वरो रक्तसमीरणार्त्तिः ।
हनुग्रहस्तापविलापमूर्च्छाः स्यात्कंठकुब्जः खलु कष्टसाध्यः॥२९॥

भाषा-जिससे शिरमें पीडा, कंठका अवरोध, दाह, मोह, कम्प, ज्वर, रुधिरका प्रकोप, वातकी पीडा, ठोडीका जकडना, संताप, प्रलाप और मूर्छा हो उसको कष्टसाध्य कंठकुब्ज सन्निपात जानना ॥ २९ ॥

कर्णकसन्निपात ।

प्रलापश्रुतिह्रासकंठग्रहांगव्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावम् ।
ज्वरं तापकर्णीतयोर्गल्लपीडा बुधाः कर्णकं कष्टसाध्यं वदन्ति॥३०॥

भाषा-जिसमें प्रलाप, बधिरता, कंठका अवरोध, पीडा, श्वास और खांसी,

मुखनासिकादिसे पानीका गिरना, ज्वर, सन्ताप, कान और गालोंमें पीडा हो उसको विद्वान् कष्टसाध्य कर्णकसन्निपात कहते हैं ॥ ३० ॥

भुग्ननेत्रसन्निपात ।

ज्वरबलापचयस्मृतिशून्यता श्वसनभुग्नविलोचनमोहितः ।
प्रलपनभ्रमवेपथुशोथवान् त्यजति जीवितमाशु स भुग्नदृक् ॥३१॥

भाषा-जिसमें ज्वरसे बलकी क्षीणता होवे, स्मरणशक्तिका नाश, श्वास, नेत्र टेढे हो जांय, मोह (बेहोसी), प्रलाप, भ्रम, कंप और सूजन हो उसको मृत्युकारक भुग्ननेत्रसन्निपात जानना ॥ ३१ ॥

रक्तष्ठीवीसन्निपात ।

रक्तष्ठीवी ज्वरवमितृषामोहशूलातिसारहिक्काध्मानभ्रमणदवथुश्वाससंज्ञाप्रणाशः । श्यामा रक्ताधिकतररसना मंडलोत्थानरूपा रक्तष्ठीवी निगदितरिह प्राणहंता प्रसिद्धः ॥ ३२ ॥

भाषा-जिसमें रोगी रुधिरको थूके, ज्वर हो, वमन, तृषा, मोह, शूल, अतीसार, हिचकी, अफरा, भ्रम, संताप, श्वास, संज्ञाका नाश तथा जिव्हा काली अथवा लाल हो, उसके ऊपर लाल चकत्ते हो जांय उसको प्राणनाशक रक्तष्ठीवी सन्निपात जानना ॥ ३२ ॥

प्रलापकसन्निपात ।

कंपप्रलापपरितापनशीर्षपीडा प्रौढप्रभावपवमानपरोन्यचिंता ।
प्रज्ञाप्रणाशविकलप्रचुरप्रवादः क्षिप्रं प्रयाति पितृपालपदं प्रलापी ३३

भाषा-जिसमें कम्प, प्रलाप, आतप, शिरमें पीडा, अधिकतर तेज, शुद्ध विषयमें अभिलाषा, परपुरुषकी चिन्ता, बुद्धिका नाश, विकलता और बहुत बकबक करना ये सब लक्षण हों उसको प्रलापक सन्निपात जानना। यह शीघ्रही प्राणोंका नाश करता है ॥ ३३ ॥

जिह्वकसन्निपात ।

श्वसनकासपरितापविह्वलः कठिनकंटकवृतो हि जिह्वकः ।
बधिरमूकबलहीनलक्षणो भवति कष्टतरसाध्यजिह्वकः ॥ ३४ ॥

भाषा-जिसमें श्वास, खांसी, आतप, विव्हलता, जिव्हापे कठिन कांटेसे जम जांय, बधिरता, गूंगापन और बलका नाश ये सब लक्षण हों उसको कष्टसाध्य जिव्हकसन्निपात जानना ॥ ३४ ॥

अभिन्याससन्निपात ।

दोषत्रयस्निग्धमुखत्वनिद्रावैकल्यनिश्चेष्टनकष्टवाग्मी ।
बलप्रणाशः श्वसनादिनिग्रहोऽभिन्यास उक्तो ननु मृत्युकल्पः ३५॥

भाषा–जिसमें त्रिदोषके कोपसे मुखपै चिकनाई आ जावे, निद्रा हो, शरीरमें विकलता, चेष्टा बिगड जावे, बहुत कष्टसे बोले, बलका नाश और श्वासादिकका रुक जाना ये सब लक्षण हों उसको मृत्युरूप अभिन्यास सन्निपात जानना ॥३५॥

सन्निपातकी मर्यादा ।

सद्यस्त्रिपंचसप्ताहाद्दशाहाद् द्वादशादपि ।
एकविंशद्दिनैः शुद्धः सन्निपाती सुजीवति ॥ ३६ ॥

भाषा–सन्निपातके उत्पन्न होनेके पश्चात् तत्काल या ३–५–७–१० और १२ दिनके बीत जानेपर २१ दिनमें सन्निपाती रोगी अच्छे प्रकारसे आरोग्य हो जाता है ॥ ३६ ॥

त्रिदोषज्वरोंकी धारणमर्यादा ।

सप्तमी द्विगुणा यावन्नवम्येकादशी तथा । एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ पित्तकफानिलवृद्ध्या दशदिवसद्वादशाहसप्ताहात् । हंति विमुंचति पुरुषं त्रिदोषजो धातुमलपाकात्॥३७॥

भाषा–सन्निपातज्वरमें रोगी सात, चौदह या नौ किंवा अठारह अथवा ग्यारह या बाईस दिनमें या तो मर जाता है अथवा आरोग्य हो जाता है । तहां सात, वाताधिककी, दश पित्ताधिककी और बारह दिन कफाधिककी मर्य्यादा जाननी । इन दिनोंमें धातुपाक होनेसे रोगी मर जाता है और मलपाक होनेसे रोगी आरोग्य हो जाता है ॥ ३७ ॥

धातुपाकके लक्षण ।

निद्रानाशो हृदि स्तंभो विष्टंभो गौरवारुची ।
अरतिर्बलहानिश्च धातूनां पाकलक्षणम् ॥ ३८ ॥

भाषा–निद्राका न आना, हृदयका जकड जाना, मलमूत्रका अवरोध, भारीपन, अरुचि, बेचैनी, बलका नाश ये सब लक्षण हों उसको धातुपाक जानना ॥ ३८ ॥

मलपाकलक्षण ।

दोषप्रकृतिवैकृत्यं लघुता ज्वरदेहयोः ।
इन्द्रियाणां च वैमल्यं दोषाणां पाकलक्षणम् ॥ ३९ ॥

भाषा-पूर्वोक्त दोषोंकी विपरीतता, ज्वर और शरीरमें लघुता, इन्द्रियोंमें प्रसन्नता इन लक्षणोंसे दोषपाक जानना ॥ ३९ ॥

सन्निपातके असाध्यलक्षण ।

दोषे विवद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसम्पूर्णलक्षणः ।
सन्निपातज्वरो साध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ ४० ॥

भाषा-जिसमें वातादि दोष बढकर सम्पूर्ण लक्षण होवें और अग्नि नष्ट हो जाय तो सन्निपातज्वर असाध्य है और जो इससे विपरीत लक्षण हों अर्थात् दोष नहीं बढे हुए हों, कुछेक लक्षण हों, किंचित् अग्निदीपन हो तो सन्निपातज्वर साध्य है ४०।

आगंतुकज्वर ।

अभिचाराभिघाताभ्यामभिषंगाभिशापतः ।
आगंतुर्जायते दोषैर्यथास्वं तं विभावयेत् ॥ ४१ ॥

भाषा-अभिचार (मारण उच्चाटनादि प्रयोग), अभिघात (ताडन मारणादि), अभिषंग (भूतप्रेतादिका आवेश) और अभिशाप (अनिष्ट चिंतवन) इन कारणोंसे आगन्तुकज्वर उत्पन्न होता है । इसमें प्रथम कोई दोष नहीं जान पडता पश्चात् जो जो दोष कुपित होवे उसको बुद्धिसे विचारे ॥ ४१ ॥

अभिचाराभिघातज्वरनिदान ।

अभिचाराभिघाताभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ ४२ ॥

भाषा-अभिचार और अभिघात ज्वरमें मोह और तृषा होती है ॥ ४२ ॥

भूताभिषंगज्वरनिदान ।

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात् पित्तं त्रयो मलाः ।
भूताभिषंगात्कुप्यंति भूतसामान्यलक्षणम् ॥ ४३ ॥

भाषा-काम और शोकसे वायु कुपित होती है, क्रोधसे पित्त कुपित होता है और भूताभिषंगसे तीनों दोष कुपित होते हैं । इसके अतिरिक्त औरभी लक्षण होते हैं ॥ ४३ ॥

कामज्वर ।

कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनम् ।
हृदये वेदना चास्य गात्रं च परिशुष्यति ॥ ४४ ॥

भाषा-कामज्वरमें चित्तका कहीं नहीं लगना, तन्द्रा, आलस्य, भोजनमें अरुचि, हृदय और मुखमें पीडा और शरीरका सूखना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ४४ ॥

विषमज्वरकी संप्राप्ति ।

आतंकमुक्तेः कृशताश्रयाणां विमुक्तपथ्याद्युचितक्रियाणाम् ।
अल्पोपि दोषो विषमं विदध्यात् ज्वरं विवृद्धं प्रतिपक्षरुद्धम्॥४५॥

भाषा-ज्वरके मुक्त होनेके पश्चात् कृशता (कमजोरी) से अथवा अपथ्य सेवन करनेसे अल्प रहामी दोष फिर बढकर विरुद्ध विषमज्वरको उत्पन्न करता है ॥ ४५ ॥

विषमज्वरके नाम ।

संततः संततोन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥ ४६ ॥

भाषा-संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक इन भेदोंसे विषम ज्वर पांच प्रकारका है ॥ ४६ ॥

संततज्वरनिदान ।

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ।
संतत्यायो विसर्गी स्यात्संततः स निगद्यते ॥ ४७ ॥

भाषा-सात दिनतक अथवा दश दिनतक या बारह दिनतक जो ज्वर निरंतर एकसा रहे उसको संतत ज्वर कहते हैं ॥ ४७ ॥

चातुर्थिकज्वरनिदान ।

चातुर्थिको दर्शयति प्रभावं द्विविधं ज्वरः । जंघाभ्यां श्लैष्मिकः
पूर्वं शिरसोनिलसंभवः ॥ विषमज्वर एवान्यश्चातुर्थिकविपर्ययः ।
स मध्ये ज्वरयत्यह्नि आदावंते च मुंचति ॥ ४८ ॥

भाषा-चातुर्थिक ज्वर अपने प्रभावको दो प्रकारसे दिखाता है, तहां एक तो श्लैष्मिक ज्वर जंघासे चढता है और दूसरा वातज शिरसे उत्पन्न होकर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाता है । चातुर्थिकज्वरका एक यह भेद है कि आदि और अंतके दो दिनको छोडकर मध्यके दो दिनोंमें आता है ॥ ४८ ॥

विषमके सामान्य उपद्रव ।

विषमज्वर एव स्युः पंच साध्या उपद्रवाः ।
अधिशेते यथा भूमिं बीजं काले प्ररोहति ।
अधिशेते तथा धातौ दोषः काले प्रकुप्यति ॥ ४९ ॥

भाषा-विषमज्वरमें पूर्वोक्त पांच उपद्रव साध्य हैं। जिस प्रकार भूमिमें पडे हुए

बीज समयके आनेपर उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार वातादि दोष धातुमें सूक्ष्मरूपसे रहते हैं जब समय आता है तब कुपित होते हैं ॥ ४९ ॥

प्रलेपकलक्षण ।

प्रलिपन्निव गात्राणि श्लेष्मणा गौरवेण च ।
मंदज्वरो विलेपी च स शीतः स्यात्प्रलेपकः ॥ ५० ॥

भाषा–जिसमें सम्पूर्ण शरीर पसीनोंसे सदैव लिप्त रहे, कफके कोपसे भारी रहे, ज्वर मंद होय, शीत हो उसको प्रलेपकज्वर कहते हैं ॥ ५० ॥

शीतदाहपूर्वक विषमज्वर ।

करोत्यादौ तथा पित्तं त्वक्स्थं दाहमतीव च ।
तस्मिन्प्रशांते त्वितरौ कुरुतः शीतमंततः ॥ ५१ ॥

भाषा–प्रथम त्वचादिमें पित्त कुपित होकर दाहसहित ज्वरको उत्पन्न करे जब दाह शांत हो जाय तब वातकफ शीतको उत्पन्न करते हैं ॥ ५१ ॥

दूसरा प्रकार ।

द्वावेतौ दाहशीतादिज्वरौ संसर्गजौ स्मृतौ ।
दाहपूर्वस्तयोः कष्टः कृच्छ्रसाध्यस्तथेतरः ॥ ५२ ॥

भाषा–शीतपूर्वक और दाहपूर्वक यह दोनों ज्वर संसर्गज हैं । इनमें दाहपूर्वकज्वर दुश्चिकित्स्य है और शीतपूर्वकज्वर कृच्छ्रसाध्य है ॥ ५२ ॥

रसादिधातुगत ज्वरलक्षण ।

गुरुता हृदयोत्क्लेदः सदनं छर्द्यरोचकौ ।
रसस्थे तु ज्वरे लिंगं दैन्यं चास्योपजायते ॥ ५३ ॥

भाषा–जिससे शरीरमें भारीपन, हृदयमें ग्लानि, सर्व देहमें अवसन्नता, वमन, अरुचि और दीनता हो उसको रसगत ज्वर जानना ॥ ५३ ॥

मांसगत ज्वरलक्षण ।

पिंडिकोद्वेष्टनं तृष्णा सृष्टमूत्रपुरीषता ।
उष्मांतर्दाहविक्षेपौ ग्लानिः स्यान्मांसगे ज्वरे ॥ ५४ ॥

भाषा–जिसमें घुटनेके नीचे मांसकी गांठसी प्रतीत होवे, तृषा लगे, मल और मूत्रकी प्रवृत्ति हो, गरमी, भीतर दाह हो, हाथ पैरोंको इधर उधर पटके और ग्लानि हो उसको मांसगत ज्वर कहते हैं ॥ ५४

मेदगत ज्वरलक्षण ।

भृशं स्वेदस्तृषा मूर्छा प्रलापश्छर्दिरेव च ।
दौर्गन्ध्यारोचकौ ग्लानिर्मेदस्थे चासहिष्णुता ॥ ५५ ॥

भाषा-जिसमें सर्वशरीरमें अत्यंत पसीना आवे, तृषा हो, मूर्छा हो, प्रलाप हो, वमन हो, दुर्गंधि हो, अरुचि, ग्लानि और स्पर्शको न सह सके उसको मेदगत ज्वर जानना ॥ ५५ ॥

अस्थिगत ज्वरलक्षण ।

भेदोऽस्थ्नां कूजनं श्वासो विरेकश्छर्दिरेव च ।
विक्षेपणं च गात्राणां विद्यादस्थिगते ज्वरे ॥ ५६ ॥

भाषा-जिसमें हड्डियोंमें पीडा हो तथा हड्डी बोले, श्वास हो, अतीसार हो, वमन हो और हाथ पांव आदि अंगोंको इधर उधर पटके उसको अस्थिगत ज्वर जानना ॥ ५६ ॥

मज्जागत ज्वरलक्षण ।

तमप्रवेशनं हिक्का कासः शैत्यं वमिस्तथा ।
अंतर्दाहो महाश्वासो मर्मच्छेदश्च मज्जगे ॥ ५७ ॥

भाषा-जिसमें अंधकार दीखे अर्थात् नेत्रोंके आगे अंधेरी आवे, हिचकी, खांसी, शीत लगे, वमन हो, अन्तर्दाह हो, महाश्वास हो और मर्म्मस्थानोंमें पीडा हो उसको मज्जागत ज्वर जानना ॥ ५७ ॥

मज्जाशुक्रगत ज्वर ।

मज्जाशुक्रे क्रिया नोक्ता मरणं तत्र भाषितम् ॥ ५८ ॥

भाषा-मज्जागत और शुक्रगत ज्वरमें कोई चिकित्सा नहीं कही गई इस कारण मज्जा और शुक्रगत ज्वरमें अवश्य मृत्यु होती है ॥ ५८ ॥

शुक्रगत ज्वरलक्षण ।

शेफसः स्तब्धता मोक्षः शुक्रस्य तु विशेषतः ।
मरणं प्राप्नुयात्तत्र शुक्रस्थानगते ज्वरे ॥ ५९ ॥

भाषा-शुक्रगतज्वरमें लिंग स्तब्ध अर्थात् जकड जावे और वीर्य्य अधिक गिरे है इसमें रोगीकी अवश्य मृत्यु होती है ॥ ५९ ॥

रसादिधातुसंबंधसे साध्यासाध्य ।

रसरक्ताश्रितः साध्यो मांसमेदगतश्च यः ।
अस्थिमज्जागतस्थोऽपि शुक्रस्थोऽपि न जीवति ॥ ६० ॥

भाषा-रसगत ज्वर, रक्तगत ज्वर, मांसगत ज्वर और मज्जागत ज्वर ये साध्य हैं तथा अस्थिगत ज्वर, मज्जागत और शुक्रगत ज्वर ये असाध्य हैं ॥ ६० ॥

प्राकृत व वैकृतज्वर ।

वर्षाशरद्वसंतेषु वाताद्यैः प्राकृतैः क्रमात् ।
वैकृतोन्यः सुदुःसाध्यः प्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ ६१ ॥

भाषा-वर्षाऋतुमें वायु कुपित होती है। शरदऋतुमें पित्त कुपित होता है और वसन्तऋतुमें कफ कुपित होता है। अतएव वर्षाऋतुमें वातज्वर, शरत्ऋतुमें पित्तज्वर और वसन्तऋतुमें कफज्वर उत्पन्न होय तो उसको प्राकृतज्वर कहते हैं। इससे जो विपरीत होय तो उसको वैकृतज्वर जानना। वैकृतज्वर दुःसाध्य है और वातसे उत्पन्न हुआ प्राकृतज्वरभी दुःसाध्य है ॥ ६१ ॥

प्राकृतज्वरका उत्पत्तिक्रम कहते हैं।

वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् ।
कुर्याच्च पित्तं शरदि तस्य चानुबलः कफः ॥
तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् ।
कफो वसंते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥
काले यथास्वं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा ।
निदानोक्तोनुपशयो विपरीतोपशायिता ॥ ६२ ॥

भाषा-वर्षाऋतुमें वायु दुष्ट होकर पित्त कफको साथ लेकर ज्वरको उत्पन्न करे है एवं शरदऋतुमें पित्त कुपित होकर कफकी सहायतासे ज्वरको उत्पन्न करे है। इसमें प्रकृतिसे और विसर्गकालके होनेसे लंघन करानेमें कुछ भय नहीं है। इसी प्रकार वसन्तऋतुमें कफ कुपित होकर वातपित्तकी सहायतासे ज्वरको उत्पन्न करे है। जिस प्रकार अपने समयमें दोषोंकी प्रवृत्ति और वृद्धि होती है उसी प्रकार उपशय और अनुपशयका ज्ञान होता है अर्थात् निदानोक्त जो आहार विहार कहे हैं उनके सेवन करनेसे अनुपशय अर्थात् रोगकी वृद्धि होती है और दोषोंके विपरीत जो आहार विहार कहे हैं उनको सेवन करनेसे उपशय अर्थात् सुखकी उत्पत्ति होती है ॥ ६२ ॥

अंतर्वेगज्वरके लक्षण।

अंतर्दाहोधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः । संध्यस्थिशूलमस्वेदो
दोषवर्चोविनिग्रहः। अंतर्वेगस्य लिंगानि ज्वरस्यैतानि लक्षयेत् ॥ ६३ ॥

भाषा-जिसमें अन्तर्दाह हो, तृषा अधिक हो, प्रलाप हो, श्वास, भ्रम, संधि और हड्डियोंमें शूल हो, पसीनेका न आना, अधोवायु और मलका अच्छे प्रकारसे न त्यागना उसको अन्तर्वेगज्वर जानना ॥ ६३ ॥

बहिर्वेगज्वरलक्षण ।

संतापो ह्यधिको बाह्यस्तृष्णादीनां च मार्दवम् ।
बहिर्वेगस्य लिंगानि सुखसाध्यत्वमेव च ॥ ६४ ॥

भाषा-जिसमें ऊपर शरीरमें अत्यन्त सन्ताप हो, तृषादि उपद्रव कम हों उसको बहिर्वेगज्वर जानना यह सुखसाध्य है ॥ ६४ ॥

आमाशयगत ज्वरलक्षण ।

लालाप्रसेकहृल्लासहृदयाशुध्यरोचकाः । तन्द्रालस्याविपाका-स्यवैरस्यं गुरुगात्रता ॥ क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवान् ज्वरः । आमज्वरस्य चिह्नानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो जनयति ज्वरम् । शोधनं शमनीयं च करोति विषमज्वरम् ॥ ६५ ॥

भाषा-लारका गिरना, उबकाईका आना, हृदयमें जड़ता, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, अन्नका न पचना, मुखमें विरसता, शरीरमें भारीपन, क्षुधाका नाश, मूत्रका बहुत आना, शरीरका जकडना और ज्वरका वेग बलवान् हो इन लक्षणोंसे आमज्वर जानना । आमज्वरमें औषधि नहीं देनी चाहिये । आमज्वरमें औषधि देनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है । शोधन तथा शमन औषधि देनेसे विषमज्वरको करती है ॥ ६५ ॥

पच्यमानज्वरलक्षण ।

ज्वरवेगोऽधिका तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेदो पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ६६ ॥

भाषा-ज्वरका अधिक वेग, तृषा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, मलकी प्रवृत्ति और उत्क्लेद ये पच्यमान ज्वरके लक्षण हैं ॥ ६६ ॥

निरामज्वरलक्षण ।

क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम् ।
दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ ६७ ॥

भाषा–भूखका लगना, शरीरमें हलकापन, ज्वरकी मृदुता, दोषोंकी प्रवृत्ति और उत्साह ये निरामज्वरके लक्षण जानने ॥ ६७ ॥

ग्रंथान्तरोक्त जीर्णज्वरनिदान ।

त्रिःसप्ताहे व्यतीते तु ज्वरो यस्तनुतां गतः ।
प्लीहाग्निमांद्यं कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते ॥ ६८ ॥

भाषा–जो ज्वर तीन सप्ताह (२१ दिन) के पश्चात् सूक्ष्म (बारीक) पड जाय तथा प्लीहा और मंदाग्निको उत्पन्न करे उसको जीर्णज्वर कहते हैं ॥ ६८ ॥

ज्वरमुक्तलक्षण ।

प्रकाशो लाघवं ग्लानिः स्वस्थता सुप्रसन्नता ।
उपद्रवनिवृत्तिश्च सम्यक् लंघितलक्षणम् ॥ ६९ ॥

भाषा–सम्पूर्ण इन्द्रियें प्रसन्न हों, शरीरमें हलकापन, आरोग्यता, प्रसन्नता और सर्व उपद्रवोंकी शांति ये ज्वरमुक्तके लक्षण जानने ॥ ६९ ॥

साध्यज्वरलक्षण ।

बलवत्स्वल्पदोषे तु ज्वरः साध्योनुपद्रवः ॥ ७० ॥

भाषा–जिस ज्वरमें शरीरका बल कम न हो, दोषोंका कोप अल्प हो और उपद्रवभी न हो उसका साध्यज्वर जानना ॥ ७० ॥

असाध्यज्वरलक्षण ।

हेतुभिर्बहुभिर्जातो बलिभिर्बहुलक्षणः । ज्वरः प्राणांतकृद्यश्च शीघ्रमिंद्रियनाशनः ॥ ज्वरक्षीणस्य शूनस्य गंभीरो दैर्घ्यरात्रिकः । असाध्यो बलवान्यश्च केशसीमंतकृज्ज्वरः ॥ ७१ ॥

भाषा–जो महाबलवान् कारणोंसे उत्पन्न हुआ हो और जिसमें अनेक लक्षण मिलते हों वह ज्वर प्राणनाशक है। तथा जो उत्पन्न होतेही इन्द्रियोंकी सामर्थ्यको नष्ट कर दे उसकोभी प्राणनाशक जानना। जिस ज्वरमें रोगीका शरीर क्षीण हो गया हो और सूजन आ गई हो, गम्भीर हो, बहुत दिनोंतक स्थित रहनेवाला ऐसा ज्वर असाध्य होता है तथा जो बलवान् हो और जिसमें रोगी केशसीमन्तकेसी रचना करे उसकोभी असाध्य जानना ॥ ७१ ॥

गंभीरज्वरलक्षण ।

गंभीरश्च ज्वरो ज्ञेयो ह्यंतर्दाहेन तृष्णया ।
आनद्धत्वेन दोषाणां श्वासकासोद्गमेन च ॥ ७२ ॥

भाषा-जिसमें अन्तर्दाह हो, तृषा, दोषोंकी अधिकता, श्वास और खांसी हो उसको गम्भीरज्वर जानना ॥ ७२ ॥

असाध्यलक्षण ।

आरंभाद्विषमो यस्तु यस्य स्याद्दैर्घ्यरात्रिकः ।
क्षीणस्य चातिरूक्षस्य गंभीरो हंति मानवम् ॥ ७३ ॥

भाषा-जो ज्वर उत्पन्न होवेही विषम पड जाय तथा बहुत दिनोंतक स्थित रहनेवाला तथा क्षीण और अत्यंत रूखे मनुष्यके उत्पन्न हुआ गम्भीर ज्वर पुरुषको मृत्युकारक होता है यह असाध्य जानना ॥ ७३ ॥

दूसरा प्रकार ।

शंखस्वेदोतिबहुलं पिच्छिलो याति सर्वशः ।
देहिनः शीतगात्रस्य तदा मरणमादिशेत् ॥ ७४ ॥

भाषा-जिस मनुष्यके कनपटीमें प्रथम बहुतसा पसीना आकर पश्चात् सर्व शरीर पसीनोंसे चिपक जावे और रोगीका देह ठंडा हो जाय तो उसकी शीघ्र मृत्यु जाननी ॥ ७४ ॥

तीसरा प्रकार ।

विसंज्ञस्ताम्यते यस्तु शेते निपतितोपि वा ।
शीतार्दितोंतरुष्णश्च ज्वरेण म्रियते नरः ॥ ७५ ॥

भाषा-जो मनुष्य ज्वरसे बेहोस होकर बेसुध हो जाय अथवा गिरकर जिससे न उठा जाय या सोकर जिससे न बैठा जाय तथा शरीरमें ऊपरसे शीत हो और भीतरसे दाह हो उसको असाध्य जानना ॥ ७५ ॥

चौथा प्रकार ।

शीतस्वेदो ललाटस्य श्लथसंधानबंधनः ।
मुह्यत्युत्थाप्यमानस्तु स स्थूलोपि न जीवति ॥ ७६ ॥

भाषा-जिसके शिरमें शीतल पसीना आवे और सब शरीरके बंधन ढीले हो जांय तथा जो उठते समय बेहोस हो जाय वह स्थूल होनेपरभी मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ७६ ॥

पांचवा प्रकार ।

यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि संघातशूलवान् ।
वक्त्रेण चैवोच्छ्वसिति तं ज्वरो हंति मानवम् ॥ ७७ ॥

भाषा–जिस ज्वरमें रोगीके रोमांच खडे रहें, नेत्र लाल हों, हृदयमें चोट लगनेकीसी पीडा हो और मुखको ऊपरको उठाकर श्वास लेवे उस मनुष्यको ज्वर शीघ्र मार डालता है ॥ ७७ ॥

दूसरे प्रकारके असाध्यलक्षण ।

प्रेतैः सह पिबेन्मद्यं स्वप्ने यः कृष्यते शुना।स घोरं ज्वरमासाद्य न जीवेन्न च मुच्यते॥ज्वरः पूर्वाह्णिको यस्य शुष्ककासश्च दारुणः। बलमांसविहीनश्च यथा प्रेतस्तथैव सः ॥ ज्वरो यस्यापराह्णे तु श्लेष्मा कासश्च दारुणः । बलमांसविहीनश्च यथा प्रेतस्तथैव सः ॥ सहसा ज्वरसंतापस्तृष्णा मूर्च्छा बलक्षयः । विश्लेषणं च संधीनां मुमूर्षोरुपजायते ॥ गोसर्गे वेदना यस्य स्वेदः प्रच्यवते ध्रुवम् । लेपज्वरोपसृष्टस्य दुर्लभं तस्य जीवितम्॥ स्वेदो ललाटे हिमवान्नरस्य शीतार्दितस्यातिसपिच्छिलस्य। कंठस्थितो यस्य न याति वक्षो नूनं यमस्येति गृहं स मर्त्यः ॥ यस्य स्वेदोतिबहुलः पिच्छिलो याति सर्वतः । रोगिणः शीतगात्रस्य तदा मरणमादिशेत् ॥ ७८ ॥

भाषा–जो पुरुष स्वपनेमें प्रेतोंके साथ मदिराको पीवे और जिसको कुत्ते घसीटें वह अवश्य घोर ज्वरसे ग्रसित होकर मर जाता है । जिसको पूर्वाह्णके समय महा भयंकर ज्वर आवे और घोर सूखी खांसी हो तथा बल और मांस क्षीण हो गया हो उसको पूर्वोक्त प्रेतकी समान कहो । जिस मनुष्यको दुपहरके समय ज्वर आवे और उसके साथ कफ और दारुण खांसी हो तथा उस रोगीका बल और मांस क्षीण हो गया हो उसको पूर्वोक्तसे प्रेतकी समान असाध्य जानना । जिसको अचानक बडे वेगसे ज्वर चढ आवे, अत्यंत सन्ताप हो, तृषा, मूर्छा और बलका नाश हो तथा सन्धिबन्धन सब ढीले पड जांय उसकी तत्काल मृत्यु जाननी । जिसके मस्तकपै प्रातके समय पसीना आवे और अत्यन्त पीडा हो और लेपज्वरसे व्याप्त हो उसका जीवन दुर्लभ है, जिसके मस्तकपै शीतल पसीना आवे और अधिक शीत लगे, सम्पूर्ण अंग शीतल होकर चिपकसे जावें तथा जिसके पसीना कंठमें आनकर छातीमें न आ जाय वह मनुष्य शीघ्रही यमालयको जाता है । जिसके सर्व शरीरमें पसीना बहुत आवे और वह पसीना चिपके तथा रोगीका शरीर शीतल हो उसकी तत्काल मृत्यु कहो ॥ ७८ ॥

दूसरा प्रकार ।

हिक्काश्वासतृषायुक्तं मूढं विभ्रांतलोचनम् ।
सततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥ ७९ ॥

भाषा-जिस रोगीके हिचकी, श्वास और तृषा अधिक हो, मूढ हो जाय, नेत्र भयानक हो जांय, निरन्तर श्वास लेवे और क्षीण हो जाय उसको शीघ्रही ज्वर मार देता है ॥ ७९ ॥

असाध्यलक्षण ।

हतप्रभेंद्रियं क्षाममरोचकनिपीडितम् ।
गंभीरतीक्ष्णवेगार्त्तं ज्वरितं परिवर्जितम् ॥ ८० ॥

भाषा-जिस रोगीकी प्रभा, इन्द्रियोंकी शक्ति और सामर्थ्य नष्ट हो जावे तथा अरुचि हो जाय, ज्वरका तीक्ष्ण वेग हो और गम्भीर हो उस ज्वररोगीकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ८० ॥

ज्वरमोक्षके पूर्वरूप ।

दाहः स्वेदो भ्रमस्तृष्णा कंपो विड्भेदसंज्ञिता ।
कूजनं चातिवैगंध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे ॥ ८१ ॥

भाषा-दाह, पसीनेका आना, भ्रम, तृषा, कम्प, दस्तका आना, कूजना और शरीरमें पसीनेकी दुर्गंधका होना, ये ज्वरमोक्षके लक्षण जानने ॥ ८१ ॥

ज्वरमुक्तलक्षण ।

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् । स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगमनोन्नलिप्सा कंडूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥ ८२ ॥

भाषा-शरीरमें हलकापन, क्लम, मोह, संताप, मुखपाक, कान ठीक शब्द ग्रहण करने लगे, सर्वदेहकी वेदना मिट जावे, पसीने आवे, प्रकृतिके अनुसार छींकोंका आना, अन्नमें रुचि हो और शिरमें खुजली हो ये लक्षण ज्वरमोक्षके जानने ॥८२॥

मधुरज्वरलक्षण ।

ज्वरो दाहो भ्रमो मोहो ह्यतीसारो वमिस्तृषा । अनिद्रा च मुखं रक्तं तालुजिह्वा च शुष्यति ॥ ग्रीवायां परिदृश्यंते स्फोटकाः सर्षपोपमाः । घृताशनात् स्वेदरोधान्मंथरो जायते नृणाम् ॥८३॥

भाषा–ज्वर, दाह, भ्रम, मोह, अतीसार, वमन, तृषा, निद्राका न आना, मुखका लाल हो जाना, तालु और जिह्वाका सूखना, गरदनमें सरसोंके दानेकी समान फुंसियोंका उत्पन्न होना ये मंथरज्वरके लक्षण जानने। मंथरज्वर अधिक घृतपान करनेसे अथवा पसीनोंके रोकनेसे होता है ॥ ८३ ॥

कृष्णमधुरालक्षण ।

ज्वरं च चक्षुर्मोहं च दंतौष्ठौ चैव श्यामकौ । जिह्वाकंठमुखघ्राणरक्तता चाक्षिकर्बुरम् ॥ कंठे मुक्तावलीहारः सप्ताहाद्दृश्यते न वा । त्रिःसप्तकदिनादर्वाक् स्फोटाः स्युः सर्षपोपमाः ॥ ८४ ॥

भाषा–जिसमें ज्वर, नेत्र मिचेसे जावें, दांत और होंठ काले पड जांय, जीभ, कंठ, मुख और नासिका ये लाल पड जांय, नेत्र चित्रित हो जांय तथा जिस रोगीके कंठमें मुक्ताहार सात दिनके पर्य्यंत न पडे तो उसके इक्कीस दिनके भीतर सरसोंकी समान फुंसी उत्पन्न हो जांय उसको कृष्णमधुरज्वर जानना ॥ ८४ ॥

ज्वरमुक्तिलक्षण ।

संक्षोभणाच्च धातूनां दोषसंचालनादपि । भूयो भवति वेगस्तु मोक्षकाले ज्वरस्य तु ॥ त्रिदोषजे ज्वरे ह्येतदंतर्वेगे च धातुगे । लक्षणं मोक्षकाले स्यादन्यस्मिन् स्वेददर्शनम् ॥ ८५ ॥

भाषा–ज्वरके मुक्त होनेके समय धातुओंके संक्षोमसे अथवा दोषोंके चलनेसे ज्वरका अत्यंत वेग होता है। यह लक्षण त्रिदोषजज्वर, अन्तर्वेग और धातुगत ज्वरमें होते हैं और ज्वरोंके मोक्षकी समय केवल पसीनाही आता है ॥ ८५ ॥

तृतीयकज्वरनिदानम् ।

कफपित्तात् त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः ।
वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ ८६ ॥

भाषा–तृतीयकज्वर कफपित्त, वातकफ और वातपित्त इन भेदोंसे तीन प्रकारका है। तहां कफपित्तज तृतीयकज्वर प्रथम (पीठके मध्य) स्थानमें उत्पन्न होकर सब शरीरमें व्याप्त हो जाता है। वातकफज तृतीयकज्वर प्रथम पीठमें उत्पन्न होकर पश्चात् सर्व देहमें व्याप्त हो जाता है और वातपित्तज तृतीयकज्वर प्रथम शिरमें उत्पन्न होकर फिर सम्पूर्ण अंगोंमें फैल जाता है ॥ ८६ ॥

विषमज्वर विशेषभेद ।

विदग्धेन्नरसे देहे श्लेष्मपित्ते व्यवस्थिते । तेनार्द्धं शीतलं देह-

मर्धमुष्णं च जायते ॥ काये दुष्टे यदा पित्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः । तेनोष्णत्वं शरीरस्य शीतत्वं हस्तपादयोः ॥ ८७ ॥

भाषा-शरीरमें अन्नरसके दूषित होनेसे अथवा कफ और पित्तके दुष्ट होनेसे शरीरका आधा भाग शीतल और आधा भाग गरम हो जाता है। जब पित्त शरीरके भीतर कुपित होता है और कफ हाथ पांवोंमें व्यवस्थित होता है तब सब शरीर ज्वरसे गरम रहता है और हाथ पांव शीतल रहते हैं ॥ ८७ ॥

इनके विपरीत द्वितीयज्वर ।

काये श्लेष्मा यदा दुष्टः पित्तं चान्ते व्यवस्थितम् । शीतत्वं तेन गात्राणामुष्णत्वं हस्तपादयोः ॥ ऋतेनिलान्न विषमो ज्वरः समुपजायते । कफपित्ते हि नष्टे चेत् चेष्टयत्यनिलः सदा॥८८

भाषा-जब कफ शरीरके भीतर कुपित होता है और पित्त हाथ पावोंमें स्थित रहता तब सब शरीर गरम रहता और हाथ पांव शीतल रहते हैं, वातके बिना विषम ज्वर नहीं होता, कफ और पित्तके विनष्ट होनेपर वायु सदैव शरीरमें सञ्चार करती है ॥ ८८ ॥

शीतपूर्वज्वरके लक्षण ।

त्वक्स्थौ श्लेष्मानिलौ शीतमादौ जनयतो ज्वरम् । तयोः प्रशान्तयोः पित्तमन्ते दाहं करोति च ॥ ८९ ॥

भाषा-वात और कफ त्वचामें स्थित रहकर शीतज्वरको उत्पन्न करते हैं, जब वात और कफ शान्त हो जाता है तब अन्तमें पित्त दाहको उत्पन्न करता है॥८९॥

रक्तगत ज्वरलक्षण ।

रक्तनिष्ठीवनं दाहो मोहश्छर्दनविभ्रमः । प्रलापः पीटिका तृष्णा रक्तं प्राप्ते ज्वरे नृणाम् ॥ ९० ॥

भाषा-जिस रोगीके रुधिरसहित थूक आवे, दाह हो, मोह, वमन, भ्रम, प्रलाप, पीडिका, फुंसियोंका निकलना और तृषा अधिक हो, उसको रक्तगतज्वर समझना चाहिये ॥ ९० ॥

वातकफज्वरलक्षणम् ।

नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शूनकस्तेन सीदति । स्तब्धांगः श्लेष्मभूयिष्ठो नरो वातबलासकी ॥ ९१ ॥

भाषा-जिस समय मनुष्यको वातबलासक नाम ज्वर आता है तब वह पुरुष उस ज्वरसे पीडित हो शोषयुक्त हो जाता है और नित्यप्रति मन्दज्वर शरीरमें रहता है, सब देहमें रूखापन हो जाता है, सब अंग जकडेसे विदित होते हैं, कफ विशेष आता है, यह ज्वर कफ वात करके होता है, इस ज्वरका नाम वातबलासक है ॥ ९१ ॥

ज्वरके दश लक्षण ।

श्वासो मूर्च्छाऽरुचिस्तृष्णा छर्द्यतीसारविड्ग्रहाः ।
हिक्का कासाङ्गदाहश्च ज्वरस्योपद्रवा दश ॥ ९२ ॥

भाषा-श्वास, मूर्च्छा, अरुचि, तृष्णा, वमन, अतिसार, मलकी रुकावट, हिचकी, खांसी और सर्वांगमें दाह ये ज्वरके दश उपद्रव हैं ॥ ९२ ॥

विषजन्य आगन्तुकज्वरलक्षण ।

श्यावास्यता विषकृते दाहोतीसार एव च ।
भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥ ९३ ॥

भाषा-स्थावर, जंगम, विष खानेसे अथवा काटनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उससे मुखपर श्यामता आ जाती है और शरीरमें दाह हो जाता है, वारंवार दस्त होते हैं, भोजनमें अरुचि और तृष्णा, पेटमें सुइयोंकेसा चुभना और मूर्च्छा ये लक्षण विषजन्य आगन्तुकज्वरके जानना ॥ ९३ ॥

औषधगन्धजनित ज्वरलक्षण ।

औषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुः क्षवः ॥ ९४ ॥

भाषा-महातीव्र द्रव्योंकी गन्धसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसके यह लक्षण होते हैं । मूर्छा, मस्तकमें पीडा, वारंवार वमन और छींकोंका आना ॥ ९४ ॥

भय शोक और कोपज्वरलक्षणम् ।

भयात्प्रलापः शोकश्च भवेत्कोपश्च वेपथुः ॥ ९५ ॥

भाषा-भयसे और शोकसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसके ये लक्षण हैं मिथ्या बकवाद और क्रोधके ज्वरमें शरीर कांपता है ॥ ९५ ॥

इति ज्वरनिदानम् ।

अथ ज्वररोगचिकित्सा।

सर्वज्वरेषु प्रथमं सम्यक्कार्यं तु लंघनम् । कथितोदकपानं च तथा निर्वातसेवनम् ॥ अग्निस्वेदो ज्वरास्त्वेवं नाशमायान्ति हीश्वर । वातज्वरहरः काथो गुडूच्या मुस्तकेन च ॥ दुरालभायवकृतं पित्तज्वरहरं शृणु । शुण्ठीपर्पटमुस्तैश्च सुगंधोशीरचन्दनैः ॥ सद्यः काथः श्लेष्मजन्तु सशुंठिः सदुरालभः । सवालकः सर्वज्वरं सर्वशुंठिः सपर्पटः ॥ किराततिक्तकैर्वापि गुडूचीकाथमिश्रकैः । पित्तज्वरहरः स्याच्च शृण्वन्यं योगमुत्तमम् ॥ वालकोशीरपाठाभिः कण्टकारिकमुस्तकैः । सुदारुणं ज्वरं हन्ति काथश्च समभागतः ॥ धान्याकनिंबमुस्तानां समधुं च सशर्करम् । पटोलपत्रयुक्तश्च गुडूचीत्रिफलायुतः ॥ पीतोऽखिलज्वरहरः क्षुधाकृद्वातनुत्त्विदम् । हरीतकीपिप्पलीनामावलीचित्रकोद्भवम् ॥ चूर्णं जलं च कथितं धान्याकोशीरपर्पटैः । आमलक्या गुडूच्या च मधुयुक्तं सचन्दनम् ॥ समस्तज्वरनुत् स्याच्च सन्निपातहरं शृणु । हरिद्रानिम्बत्रिफलामुस्तकैर्देवदारुणा ॥ कषायं कटुरोहिण्या पटोलं पुष्करेण च । जग्ध्वा नागबलाचूर्णं श्वासकासादिनुद्भवेत् ॥ कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासिने । मंडं वा मुद्गपीयूषं शाल्यन्नं वाथ यूषवत् ॥ ज्वरार्त्तमानुषे देयं ज्वरहानिप्रदं भवेत् । शुण्ठीपर्पटकोशीरघनचन्दनसाधितम् ॥ दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् । बिल्वादिपंचमूलस्य काथः स्याद्वातिके ज्वरे ॥ पाचनं पिप्पलीमूलं गुडूची विश्वभेषजम् । वातज्वरे त्वयं काथो दत्तः शांतिकरः परः ॥ पित्तज्वरघ्नो समधुः काथः पर्पटनिम्बयोः । विधाने क्रियमाणेऽपि यस्य संज्ञा न जायते ॥ पादयोस्तु ल-

लाटे वा दहेल्लोहशलाकया । तिक्ता पाठा पटोलश्च विशाला त्रिफला त्रिवृत् ॥ सक्षीरो भेदनः क्वाथः सर्वज्वरविशोधनः । करंजपर्पटोशीरबृहतीकटुरोहिणी ॥ गोक्षुरं कथितं त्वेभिर्वारि पीतं श्रमापहम् । दाहपित्तज्वरं शोषं मूर्च्छां चैव क्षयं नयेत् ॥ मध्वाज्यपिप्पलीचूर्णं कथितं क्षीरसंयुतम् । पीतं हृद्रोगकासस्य विषमज्वरनुद्भवेत् ॥ क्वाथौषधीनां सर्वासां कर्षार्द्धं ग्राह्यमेव च । वयोऽनुपानतो ज्ञेयो विशेषो वृषभध्वज ॥ दुग्धं पीतं तु संयुक्तं गोपुरीषरसेन च । विषमज्वरनुत् स्याच्च काकजंघार-सस्तथा ॥ सशुण्ठीकथितं क्षीरं मज्जाज्वरहरं परम् । यष्टिमधु मुस्तकं च सैन्धवं बृहतीफलम् ॥ एतैर्नस्यप्रदानाच्च निद्रा स्यात् पुरुषस्य च । मरीचमधुशुण्ठीनां न स्यान्निद्रा भवे-च्छिव ॥ मूलं तु काकजंघाया निद्राकृत् स्यात् शिरःस्थि-तम् । सिद्धं तैलं कांजिकेन तथा सर्जरसेन च ॥ शीतोदक-समायुक्तं लेपात् संतापनाशनम् । शोणितज्वरदाहेभ्यो जातः संतापनुत्तथा ॥ सर्षपाश्च वचा चैव मदनस्य फलानि च । मार्जारविष्ठाधत्तूरस्त्रीकेशेन समन्वितः ॥ चातुर्थिकहरो धूपो डाकिनीज्वरनाशनः । सूत्रे बध्वा शंखपुष्पी ज्वरं मंत्रेण वै हरेत् ॥ ॐ जन्मनि जन्मनि विमोह्य सर्वव्याधीन् मे वज्रेण ठठ सर्वव्याधीन् मे वज्रेण फट् इति ॥ पुष्पमष्टशतं जप्त्वा हस्ते दत्त्वा च न स्पृशेत् । चातुर्थिको ज्वरो रुद्र अन्ये चैव ज्वरा-स्तथा ॥ जम्बूफलं हरिद्रां च सर्पस्यैव च कंचुकम् । सर्वज्व-राणां धूपोऽयं हरश्चातुर्थिकस्य च ॥ ॐ नमो भगवते छिंधि छिंधि ज्वरस्य शिरः । प्रज्वलितं परशुपाणिं पुरुषाय फट् ॥ करे बध्वा तु निर्गुण्ड्या मूलं ज्वरहरं कृतम् । गुग्गुलूलूकपुच्छाभ्यां धूपो ग्रहहरः कृतः ॥ चातुर्थिकज्वरैर्मुक्तः कृष्णवस्त्रावगुण्ठितः ।

हस्तबद्धं पलाशस्य अपामार्गस्य वा हर ॥ मूलं सर्वज्वरहरं भूतप्रेतादिसंभवम् । कुर्यात्सुदर्शनामूले आदित्ये तु समाहृतम् ॥ कण्ठबद्धं त्र्याहिकादियहभूतविनाशनम् । त्रिफलापिप्पलीचूर्णं भक्षितं मधुना युतम् ॥ भोजनादौ हि समधु पिपासां ज्वरितं हरेत् । अभयामलकं द्राक्षा पाठा चैव विभीतकम् ॥ शर्करा च समं चैव जग्धं ज्वरहरं भवेत् । कूर्ममत्स्याखुमहिषगोशृगालाश्च वानराः ॥ बिडालबर्हिकाकाश्च वराहोलूककुक्कुटाः। हंस एषां च विण्मूत्रं मांसं वा रोम शोणितम्॥ धूपं दद्याज्ज्वरार्तेभ्य उन्मादेभ्यश्च शान्तये । पुरा एतान्यौषधानि कथितानि महेश्वर ॥ निहन्ति यानि रोगाणि वृक्षमिद्राशनिर्यथा । औषधे भगवान् विष्णुः स्मृतोऽसौ रोगनुद्भवेत् ॥ ध्यातोऽर्चितः स्तुतो वापि नात्र कार्या विचारणा ॥ ९६ ॥

भाषा—सब प्रकारके ज्वरमें प्रथम लंघन करावे, पश्चात् पाचन औषधियोंसे पचावे, निर्वातस्थानमें रक्खे और अग्निसे तपाकर पसीना लिवावे इस उपायसे सब प्रकारके ज्वर शान्त होते हैं । गिलोय और मोथेका काथ पीनेसे वातज्वर नष्ट होता है । धमासा (जवासा) और जीका काथ पीनेसे पित्तज्वर दूर होता है। सोंठ, पित्तपापडा, नागरमोथा, सुगन्धवाला, खस और लालचन्दन इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर उत्तम रीतिसे काथ बनावे, पश्चात् इस काथमें सोंठ और जवासेको पीस उसमें डालकर पीनेसे तत्काल कफज्वर शान्त होता है । नेत्रबाला, सोंठ और पित्तपापडा इन औषधियोंका काथ बनाकर पीनेसे सब प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं । चिरायता, गिलोय और कुटकी इन तीनों औषधियोंका काथ बनाकर पीनेसे पितज्वर दूर होता है। सुगन्धवाला, खस, पाढ, कटेहरी और नागरमोथा इन सबोंको समभाग लेकर काथ बनाकर पीनेसे दारुण ज्वरभी दूर हो जाता है । धनिया, नीमके पत्ते, नागरमोथा, गिलोय, पटोलपत्र और त्रिफला इन सब औषधियोंका काथ बनाकर पीनेसे सब प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं; क्षुधा बढती है और कुपित हुआ वात तो इस काथके सन्मुख मुख करके बातभी नहीं करता । धनिया, खस और पित्तपापडा इन तीनों औषधियोंको कुछेक पीसकर जलमें औटाकर छान लेवे पश्चात् इस जलमें हरड, पीपल, चीता और आम-

लेका चूर्ण मिलाकर पीवे तो सब प्रकारके ज्वर दूर होवें। आमला, गिलोय और लाल चन्दन इन तीनों औषधियोंका क्वाथ सहत डालकर पीनेसे सब प्रकारके ज्वर और सन्निपातज्वर दूर होते हैं। हलदी, नीम, त्रिफला, नागरमोथा, देवदारु, कुटकी, पटोलपत्र और पुहकरमूल इन औषधियोंका क्वाथ सेवन करनेसे सब प्रकारके ज्वर विनष्ट होते हैं। केवल गंगेरनहीका चूर्ण सेवन करनेसे श्वास और खांसी युक्त ज्वर नष्ट होता है। वातकफज्वरमें रोगीको औटा जल पीनेको देवे; मांड वा मूंगका यूष अथवा शालिधानके चावलोंका भात यूषकी समान पकाकर ज्वररोगवाले मनुष्यको पीनेको देवे। सोंठ, पित्तपापडा, खस, नागरमोथा और लाल चन्दन ये सब औषधि छः छः मासे लेकर एक सेर जलमें औटावे जब पावभर रहे तो उतारकर छान लेवे; इस जलको शीतलकरके पीनेसे तृषा, वमन, ज्वर और दाह दूर होते हैं। बेल, सोनाक, कुम्भेर, पाढल और अरणी इन पांचों औषधियोंका क्वाथ बनाकर वातज्वरमें पिलावे तो वातज्वर तत्काल दूर हो; इसका नाम पंचमूल है। पीपलामूल, गिलोय और सोंठ इन औषधियोंका क्वाथ वातज्वरमें देनेसे रोग शान्त हो जाता है। पित्तपापडा और नीमकी छाल छः छः मासे लेकर आधसेर पानीमें औटावे; जब आधपाव शेष रहे तब उतारकर छान लेवे और उसमें सहत डालकर पिलावे तो पित्तज्वर नष्ट होवे। विधिपूर्वक चिकित्सा करनेपरभी रोगीको चैतन्यता न हो तो उसके दोनों पावोंमें और ललाटमें गरम लोहेका दाग देवे तो रोगीका चित्त आनन्द हो और रोग दूर होवे। कुटकी, पाढ, पटोलपत्र, इन्द्रजौ, त्रिफला, निसोत इन सब औषधियोंका क्वाथ बनाकर दूधमें मिलाकर पीनेसे सब ज्वर शान्त होकर उदर शुद्ध हो जाता है। करंज, पित्तपापडा, खस, कटेहरी, कुटकी और गोखरू इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर क्वाथ बनावे; उस क्वाथके पीनेसे दाह, पित्तज्वर, शोष, मूर्छा, क्षय और श्रम दूर होते हैं। सहत, घी और पीपलके चूर्णको समान भाग दूधमें औटाकर पीनेसे हृद्रोग, खांसी और विषमज्वर विनष्ट होते हैं। अवस्थाके क्रमसे विरेचनके लिये क्वाथ और अन्यऔषधि चार चार मासे लेकर अनुपानविशेषसे दूधके साथ वा गोबरके रसके साथ अथवा मसीके रसके साथ पीनेसे विषमज्वर शान्त होता है। दूधमें सोंठ औटाकर पीनेसे मज्जागत ज्वर दूर होता है। तथा मुलहठी, नागरमोथा, सेंधानोन, बृहतीके फल इन सबको एकत्र औटाकर नास लेनेसे ज्वरघटित अनिद्रा दोष दूर होता है। काली मिरच, सहत और सोंठ इनको एकत्र पीसकर नास लेनेसे ज्वरजनित अनिद्रारोग दूर होता है। काकजंघाकी जड (मिस्सीघास) शिरमें बांधनेसे ज्वरजनित अनिद्रा दूर होती है। तेल और कांजीमें रालको पकाकर फिर उसमें शीतल जल मिलाकर शरीरमें मलनेसे सन्ताप, रक्तगत ज्वर और दाह-

जात सन्निपात दूर होता है। सरसों, वच, मैनफल, बिलावकी विष्ठा, धतूरा और स्त्रियोंके बाल समानभाग लेकर धूनी देनेसे चातुर्थिक ज्वर और डाकिनी पैशाचिक ज्वर दूर होता है। "ॐ ह्रीं नमः।" इस मंत्रको पढकर शंखपुष्पीको लालसूतमें बांधकर धारण करनेसे ज्वर नष्ट होता है। तथा " ॐ जन्मनि जन्मनि विमोहय सर्वव्याधीन् मे वज्रेण ठठ सर्वव्याधीन् मे वज्रेण फट् " इस मंत्रसे किसी फूलको आठ सौ वार अभिमंत्रित करके हाथमें फूल दबा लेवे तो चातुर्थिकज्वर और अन्यान्यज्वर नष्ट होते हैं। जामुन, हलदी और सांपकी कैंचली इनकी धूप देनेसे सब प्रकारके ज्वर और चातुर्थिकज्वर दूर होते हैं। "ॐ नमो भगवते छिन्धि छिन्धि ज्वरस्य शिरः प्रज्वलितं परशुपाणि पुरुषाय फट्" इस मंत्रको पढकर संभालूकी जडको हाथमें बांधनेसे ज्वर नष्ट होता है। काले कपडेसे शरीरको ढककर गूगल और उल्लूकी पूछके पंखोंकी धूप देवे तो चौथिया ज्वर दूर होता है। ढाक अथवा चिरचिटेकी जडको लाल वस्त्रमें बांधकर हाथमें बांधनेसे भूत प्रेतादिकसे उत्पन्न हुआ ज्वर दूर होता है। सुदर्शनकी जडको रविवारके दिन लेकर कण्ठमें बांधे तो तिजारी, चौथिया ज्वर दूर होता है। त्रिफला (हरड, बहेडा, आमला) और पीपलका चूर्ण सहतमें मिलाकर किसी बर्त्तनमें रख लेवे; फिर भोजन करनेसे थोडासा खाय तो ज्वरकी प्यास दूर होय। हरड, आमले, दाख, पाठ, बहेडा इन सबको सफेद खांडमें मिलाकर सेवन करे तो ज्वर नष्ट होता है। कछुवा, मछली, चूहा, भैंस, गाय, गीदड, बिलाव, मोर, काक, वराह, उल्लू, मुरगा और हंस इन सबकी विष्ठा, मूत्र, मांस, रोम अथवा रुधिरकी धूप देनेसे ज्वररोग, उन्मादरोग, अपस्माररोग, भूत और नवग्रहादिकोंमें उन्माद हुए वज्रसे नष्ट किये हुए वृक्षकी समान नष्ट हो जाते हैं। औषधिसेवनके समय और कुछ विचार करे। केवल श्रीकृष्णभगवान्का स्मरण, ध्यान, पूजन, स्तवन करे। इससे शीघ्रही मनुष्य सब रोगोंसे छूट जाता है॥ ९६॥

विषमज्वरचिकित्सा–ज्वरान्तको रसः।

भास्करो गन्धकः सर्वो देवीविङ्गतीक्ष्णकम् । शोणितं गगणं चैव पुष्करं च महेश्वरम् ॥ भूनिम्बादिगणैर्भाव्यं मधुना गुटिका दृढा । चातुर्थिकं तृतीयं च ज्वरं संततकं तथा ॥ आमज्वरं भूतकृतं सर्वज्वरमपोहति ॥ ९७॥

भाषा–तांबेकी भस्म(तांबेश्वर), शुद्ध किया हुआ गन्धक, शुद्ध पारा, सोरठकी मट्टी, शुद्ध सोनामक्खी, लोहेकी भस्म (सार), शुद्ध हुआ सिंगरफ, अभ्रक, रसौत और सोनेकी भस्म इन सबको एकत्र पीसकर भूनिम्बादिगणके काथमें तीन दिन-

तक भावना देकर फिर सहत मिलाकर खरल करे । इस दिव्य औषधिको सेवन करनेसे चातुर्थिक, तृतीयक, सन्ततज्वर, आमज्वर, भूतज्वर और अनेक प्रकारके जो ज्वर हैं, वे सब दूर हो जाते हैं ॥ ९७ ॥

ज्वरारिरसः ।

दरदवलिरसानां शुल्बनागाभ्रकाणां सुभगविटशिलानां सर्वमेकत्र योज्यम् । विपिननृपदलोत्थैर्भावयेत् शोषयेत्तं दिवसदशसमाप्तौ वर्त्तिका कारणीया ॥ एकैकां भक्षयेदस्य आर्द्रकस्य रसैर्युताम् । दत्तमात्रं ज्वरं हन्ति ज्वरारिः स निगद्यते ॥ सर्वशूलविनाशी च कफपित्तविनाशनः । सर्वं आरग्वधपत्ररसेन दशदिनं भावयित्वा गुंजाप्रमाणमार्द्रकरसेन देयम् ॥ ९८ ॥

भाषा-शुद्ध किया हुआ सिंगरफ, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, तांबेकी भस्म, शीशा, अभ्रक, सुहागा, बिडिया, सोंचलनोन और मैनशिल इन सब औषधियोंको एकत्र करके खरलमें पीसे, फिर अमलतासके पत्तोंके रसमें दश दिन भावना देवे, जब सूख जाय तब इस औषधिको एक रत्ती अदरखके रसके साथ सेवन करे तो ज्वर और सब प्रकारके शूल तथा कफपित्तविकार नष्ट हो जाते हैं ॥ ९८ ॥

ज्वराशनिरसः ।

रसं गन्धं सैन्धवं च विषं ताम्रं समं भवेत् । सर्वचूर्णं समं लोहं तत्समं चूर्णमभ्रकम् ॥ लोहे च लोहदंडे च निर्गुंड्याः स्वरसेन च । मर्दयेद्यत्नतः पश्चान्मरिचं सूततुल्यकम् ॥ पर्णेन सह पातव्यो रसो रक्तिकसम्मितः । सर्वज्वरहरः श्रेष्ठो ज्वराशनिरुदाहृतः ॥ कासं श्वासं महाघोरं विषमाख्यज्वरं वमिम् । धातुस्थं प्रबलं दाहं ज्वरदोषं चिरोद्भवम् ॥ यकृद्गुल्मोदरप्लीहश्वयथुं च विनाशयेत् ॥ ९९ ॥

भाषा-शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारा, सैंधानोन, विष, तांबेश्वर ये सब समान भाग और इन सबकी बराबर लोहेका चूर्ण और लोहचूर्णकी समान अभ्रक लेवे, फिर इनको एकत्र लोहेके बासनमें संभालूके पत्तोंके रसमें लोहेके दंडसे खरल करे, फिर जितना पारा मिलाया हो उतनीही काली मिरचोंका चूर्ण मिला देवे, पश्चात् इस रसको

एक रत्तीभर पानके रसके साथ खाय तो सर्व प्रकारके ज्वर दूर होवें तथा खांसी, श्वास, विषमज्वर, धातुज्वर, प्रबलदाह, नानाप्रकारके ज्वर दोष, यकृत्, गुल्म, उदररोग, प्लीहा और सूजनको दूर करे है ॥ ९९ ॥

सन्निपातज्वरचिकित्सा–सूचिकाभरणो रसः।

रसगन्धकनागं च विषं स्थावरजंगमम्। मात्स्यवाराहमायूरछागपित्तैश्च भावयेत् ॥ सूचिकाभरणो नाम भैरवेण प्रकीर्त्तितः। सूचिकाग्रेण दातव्यः सन्निपातकुलान्तकः ॥ १०० ॥

भाषा–शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, सीसेकी भस्म, मीठा विष और काले सांपका विष इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर मत्स्य, वराह, मयूर और बकरीके पित्तमें भावना देवे। इसको सूचिकाभरण रस कहते हैं। यह भैरवजीने प्रकाशित किया है। इसकी सरसोंकी समान गोलियां बनाकर एक सान्निपातिक अथवा अतीसारयुक्त त्रिदोषज ज्वरमें देवे इससे निश्चय सन्निपातरोग नष्ट हो जाता है। इस औषधिके सेवनान्तमें शीतल क्रिया प्रयोग करे ॥ १०० ॥

द्वितीयः सूचिकाभरणो रसः।

अमृतं गरलं दारु सर्वतुल्यं च हिङ्गुलम्। पंचपित्तेन संमर्द्य सर्षपाभां वटीं चरेत् ॥ वटिका सूचिकाग्रेण सन्निपातकुलान्तकृत्। तिलं च तिलतैलं च भोजनं दधिभक्तकम् ॥ १०१ ॥

भाषा–मीठा विष, सांपका विष, दारुमोचा विष ये प्रत्येक एक २ भाग और सिंगरफ तीन भाग लेकर पंचपित्तमें भावना देवे पश्चात् सरसोंकी समान गोली बना लेवे, प्रतिदिन एक गोली खाय इसपै दहीसे भात खाय तथा रोगीके शरीरपै तिलके तेलका मालिश करे ॥ १०१ ॥

तृतीयः सूचिकाभरणो रसः।

विषं पलमितं सूतः शाणकश्चूर्णयेद्द्वयम्। तच्चूर्णं संपुटे कृत्वा काचलिप्तशरावयोः ॥ मुद्रां कृत्वाथ संशोष्य ततश्चुल्ल्यां निवेशयेत्। वह्निं शनैः शनैः कुर्यात् प्रहरद्वयसंख्यया ॥ तत उद्घाट्य तन्मुद्रा उपरिस्थशरावकात्। संलग्नो यो भवेद्धूमस्तं गृह्णीयाच्छनैः शनैः॥ वायुस्पर्शो यथा न स्यात्ततः कुप्यां निवेशयेत्। यावत् सूच्या मुखे लग्नं कुप्यान्निर्याति भेषजम् ॥ तावन्मात्रो

रसो देयो मूर्च्छिते सान्निपातिके । क्षुरेण च्छिन्ने तन्मूर्ध्नि तत्रांगुल्या च घर्षयेत् ॥ रक्तभेषजसम्पर्कात् मूर्च्छितोऽपि च जीवति । तथैव सर्पदष्टोऽपि मृतावस्थोऽपि जीवति ॥ यदा तापं भवेत्तस्य मधुरं तत्र दीयते । न स्वेदव्यतिरेकेण सन्निपातः प्रशाम्यति ॥ तस्मान्मुहुर्मुहुः कार्यं स्वेदं तु सन्निपातिनाम् । सन्निपाते जलमयो नराणां विग्रहो भवेत् ॥ विना वह्न्युपचारेण कस्तं शोषयितुं क्षमः । प्रयोगा बहवः सन्ति सविषा अविषा अपि ॥ वह्न्युष्माणं विना प्रायो न वीर्यं दर्शयन्ति ते । प्रतिक्रियाविधावेवं यस्य संज्ञा न जायते ॥ पादतले ललाटे वा दहेल्लोहशलाकया । पड्ग्रंथिसैन्धवकणाः समधूकसाराः पिष्टाः समेन मरिचेन जलैः कदुष्णैः ॥ नस्यं निवारयति शीघ्रमचेतनत्वं तन्द्राप्रलापसहितं शिरसो गुरुत्वम् । लशुनं मरिचं पिष्टं नस्यं स्यात् श्लेष्मनाशनम् ॥ सितकुक्कुटांडजलपानान्नस्यादप्यंजनाच्च । दुःसाधनः सन्निपातः प्रबलोऽप्याश्वेव समेति ॥ शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः । अंजनं स्यात् प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ असुराह्वपतंगस्य विट्चूर्णं मधुसंयुतम् । अंजनाद्बोधयेन्मुग्धं तन्त्रितं सन्निपातिनम् ॥१०२॥

भाषा–जंगम विष ८ तोले और पारा आधा तोला इन दोनोंको एकत्र पीसकर कांचके चूर्णसे लिप्त किये हुए शरावपुटमें स्थापन करके बन्दकर सुखा देवे। फिर उस यंत्रको चूल्हेपर चढाकर दो पहरतक क्रमसे मन्द, मध्य, विषम, तीक्ष्ण अग्निसे पकावे, पश्चात् उस यंत्रको चूल्हेपरसे उतार लेवे, फिर जो शरावमें धूंआ लग गया हो तो उसको पवन न लगने पावे, इस सावधानीसे कांचकी शीशीमें रक्खे, फिर सुईके अग्रभागकी समान औषधिको लेकर घोरतर सन्निपातिक रोगीके शिरके बालोंको खोलकर, वा क्षुरे (एक प्रकारके शस्त्र) से किंचित् चीरकरके उपरोक्त औषधिको अंगुलीसे रगडे। जब रगडते रगडते रुधिर बहने लगे और मूर्छित रोगी चैतन्य हो जाय तब रगडना बन्द करे। तथा सांपका डसा हुआ मनुष्यभी फिर जी जाता है। यदि रोगीके नेत्र लालीयुक्त हों अथवा

अन्यान्य गरमीके लक्षण हों तो उसको मिश्रीका शर्बत वा खांडका शर्बत पिलावे। बिना स्वेदकर्म्मके त्रिदोषवाले रोगीकी शान्ति नहीं होती, इसलिये सन्निपातज्वरमें वह उपाय करे जिससे वारंवार रोगीको पसीना आवे। सन्निपातमें मनुष्यका शरीर जलमय हो जाता है, अग्निक्रियाके बिना उसको कौन सुखा सक्ता है? सविष और निर्विष नानाप्रकारके प्रयोग हैं, परन्तु अग्निके सन्ताप बिना वे वीर्यकारक नहीं होते। जिस सन्निपातमें रोगीको अनेक क्रियाओंसे चैतन्यता न होवे, उसके पावोंके तलुओंमें अथवा मस्तकमें लोहेकी सलाईसे दग्ध करे। पीपल, पीपलामूल, सैंधानोन और महुएका सार इन सबका चूर्ण समान भाग लेकर और इसमें बराबर काली मिरचोंका चूर्ण मिलाकर किञ्चित् गरम पानीके साथ नास लेवे तो रोगी शीघ्र चैतन्य हो जाता है। लहसन और काली मिरचोंको समान भाग एकत्र पीसकर नास लेनेसे कफ नष्ट होता है। सफेद मुरगीके अण्डेका पानी पीनेसे वा नास लेनेसे अथवा अंजनमें प्रयोग करनेसे अत्यन्त दुःसाध्य सन्निपात दूर होता है। सिरसके बीज, पीपल, काली मिरच, सैंधानोन, लहसुन, मैनशिल और वच इन सबको गोमूत्रमें पीसकर आंखोंमें अंजन लगानेसे रोगी चैतन्य हो जाता है॥ १०२॥

दशमूलम्।

बिल्वश्योनाकगाम्भारीपाटलागणिकारिकाः। दीपनं कफवातघ्नं पंचमूलमिदं महत्॥ शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम्। वातपित्तहरं वृष्यं कनीयं पंचमूलकम्॥ उभयं दशमूलं हि सन्निपातज्वरापहम्। कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कंठहृद्ग्रहनाशनम्॥१०३॥

भाषा–बेल, श्योनाक, कुम्मेर, पाडल और अरणी इन पांच औषधियोंको बृहत्पंचमूल कहते हैं। इसका क्काथ पीनेसे कफवात नाश होते हैं और बलवीर्यकी वृद्धि होती है। शालिवन, पिठवन, बृहती, कटेरी और गोखरू इन पांच औषधियोंका नाम स्वल्प पंचमूल है। इस पंचमूलका क्काथ पान करनेसे वातपित्त नष्ट होते हैं। इन दोनों पंचमूलोंको एकत्र मिला लेवे तो दशमूल होता है। दशमूलके काढेमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे सन्निपातज्वर, कास, श्वास, तन्द्रा, पार्श्वशूल, कण्ठरोग और हृदयरोग दूर होते हैं॥ १०३॥

चतुर्दशाङ्गः।

चिरज्वरे वातकफोल्बणेन वा त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः। किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः शुद्ध्यर्थिने वा त्रिवृता विमिश्रः१०४

भाषा-दशमूल और किराततिक्तादि गण इन सब औषधियोंको दो तोले लेकर आधसेर जलमें औटावे जब आधपाव रह जाय तब उतार ले, इस काथको पीनेसे बहुत पुराना ज्वर और वातकफोल्वण सन्निपात दूर होता है और जो दस्त करानेकी इच्छा होय तो इसमें निसोतका चूर्ण मिलाकर पीवे ॥ १०४ ॥

अष्टादशाङ्गः ।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्दतिक्तेन्द्रबीजधनिकेभकणाकषायः । तंद्राप्रलापकसनारुचिदाहमोहश्वासादियुक्तमखिलं ज्वरमाशु हन्ति ॥ १०५ ॥

भाषा-चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रजो, धनियां और गजपीपल इन सबको दो तोले लेकर आधसेर जलमें पकावे जब आधपाव जल शेष रह जाय तब उतार लेवे, इस काथको पीनेसे तन्द्रा, प्रलाप, खांसी, अरुचि, दाह, मोह और श्वासादि उपद्रवयुक्त नानाप्रकारका ज्वर दूर होता है ॥ १०५ ॥

कारव्यादिः ।

कारवी पुष्करैरण्डत्रायन्ती नागरामृता । दशमूली शठी शृंगी वासा भार्ङ्गी पुनर्नवा ॥ तुल्यमूत्रेण निःक्काथ्य पीतः स्रोतोविशोधनः । अभिन्यासज्वरं घोरमाशु हन्ति समुद्धतम् ॥ १०६ ॥

भाषा-काला जीरा, कूठ (पोहकरमूल), अंडकी जड, त्रायमाण, सोंठ, गिलोय, दशमूल, कचूर, काकडासिंगी, अडूसा, भारंगी, पुनर्नवा इन सब औषधियोंको समान भाग ले काथ बनाकर पान करनेसे सम्पूर्ण शरीरके स्रोत शुद्ध हो जाते हैं और घोर अभिन्यास ज्वर दूर हो जाता है ॥ १०६ ॥

निदिग्धिकादिः ।

निदिग्धिकानागरकामृतानां क्काथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् । जीर्णज्वरारोचककासशूलश्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ हन्त्यूर्ध्वगामयं प्रायः सायं तेनोपयुज्यते । एतद्रात्रिज्वरे सायमन्यथा प्रातरिष्यते ॥ पित्तानुबन्धे संत्यज्य पिप्पलीं प्रक्षिपेन्मुहुः । निदिग्धिकागणः पथ्या तथा रोहितको मलः ॥ काथं कृत्वा क्षिपेत्तत्र यवक्षारं कणायुतम् ॥ १०७ ॥

भाषा-कटेरी, सोंठ और गिलोय ये सब दो २ तोले लेकर आधसेर जलमें

औटावे जब आधपाव जल शेष रहे तब उतार ले, पीछे इस काथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीवे तो जीर्णज्वर, अरुचि, खांसी, श्वास, मंदाग्नि, अर्दित और पीनस-रोग दूर होवे। इस काथको सन्ध्यासमय पीवे तो ऊर्ध्वग रोग दूर होवे और रात्रि-ज्वरमेंभी इसको सन्ध्यासमय पीवे और अन्यान्यज्वरोंमें प्रातःकाल पीवे, पित्तप्रधानज्वरमें पीपलके वदलेमें मधु डालना चाहिये। शालिवन, पिठवन, कटाई, कटेरी, गोखरू, हरड और रोहेडा इनके काथमें जवाखार और पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे प्लीहाज्वर नष्ट होता है ॥ १०७ ॥

सौभाग्यचिन्तामणिरसः।

सौभाग्यामृतसर्जीरपंचलवणव्योषाभयाक्षामलानिश्चन्द्राभ्रकशुद्धगन्धकरसानेकीकृतान् भावयेत्। निर्गुण्डीयुगभृंगराजकवृषापामार्गपत्रोल्लसत् प्रत्येकं स्वरसेन सिद्धवटिका हन्ति त्रिदोषोदयम् ॥ येषां शीतमतीव देहमखिलं स्वेदद्रवार्द्रीकृतं निद्रा घोरतरा समस्तकरणव्यामोहमूढं मनः। शूलश्वासबलासकाससहितं मूर्च्छारुचिं तृड्ज्वरं तेषां वै परिकृत्य जीवितमसौ गृह्णाति मृत्योर्मुखात् ॥ १०८ ॥

भाषा—सुहागेकी खीलें, विष, जीरा, विरिया संचरनोन, कचलोन, काला नोन, सामरनोन, सैंधानोन, मिरच, पीपल, सोंठ, हरड, बहेडा, आमला, अभ्रक, गंधक और पारा इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर संभालू, अदरख, भांगरा, अडूसा और चिरचिटा इनके पत्रोंके रसमें भावना देवे। पश्चात् गोलियें बनाकर सेवन करनेसे त्रिदोषजनक शरीरकी शीतलता, पसीना, अत्यन्त निद्रा, इन्द्रियोंकी अप्रसन्नता, मोह, शूल, श्वास, खांसी, कफ, मूर्छा, अरुचि, तृष्णा और ज्वर दूर होते हैं और इसके प्रभावसे मृत्युके मुखमें प्राप्त हुए मनुष्यभी बच जाते हैं॥१०८॥

जीर्णज्वरचिकित्सा—जयमंगलरसः।

हिंगुलसम्भवं सूतं गन्धकं टंकणं तथा। ताम्रं वङ्गं माक्षिकञ्च सैन्धवं मरिचं तथा॥ समं सर्वं समाहृत्य द्विगुणं स्वर्णभस्मकम्। तदर्द्धं कान्तलोहञ्च रौप्यभस्मापि तत्समम्॥ एतत् सर्वं विचूर्ण्याथ भावयेत् कनकद्रवैः। शेफालीदलजैश्चापि दशमूलीरसेन च॥ किराततिक्तककाथैस्त्रिवारं भावयेत्

सुधीः । भावयित्वा तु तत्कार्या गुंजाद्वयमिता वटी ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं जीरकं मधुसंयुतम् । जीर्णज्वरं महाघोरं चिरकालसमुद्भवम् ॥ ज्वरानष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा । पृथग्दोषांश्च विविधान् समस्तविषमज्वरान् ॥ मेदोगतं मांसगतमस्थिमज्जागतं तथा । अन्तर्गतं महाघोरं बहिःस्थं च विशेषतः ॥ नानादोषोद्भवं चैव ज्वरं शुक्रगतं तथा । निखिलं ज्वरनामानं हन्ति श्रीशिवशासनात् ॥ जयमङ्गलनामायं रसः श्रीशिवनिर्म्मितः । बलपुष्टिकरश्चैव सर्वरोगनिबर्हणः ॥ १०९ ॥

भाषा–सिंगरफसे निकाला हुआ पारा, गंधक, सुहागा, तांबा, वंग, सोनामक्खी, सैंधानोन, काली मिरच इन सबको समान भाग लेवे और सब औषधियोंसे दुगुणी सोनेकी भस्म लेवे और उससे आधा कान्तसार लेवे और पारेकी बराबर रूपेका भस्म लेवे इन सबका एकत्र चूर्ण करके हरसिंगारके पत्तोंके रसमें और धतूरेके पत्तोंके रसमें तथा दशमूलके क्वाथमें और चीतेके क्वाथमें तीन तीन भावना देके दो दो रत्तीकी गोलियें बना लेवे । प्रतिदिन १ गोली जीरेके चूर्ण और सहतके साथ खाय तो घोरतर बहुत पुराना जीर्णज्वर तथा साध्य असाध्य आठ प्रकारके ज्वर और वायु, पित्त, कफ, सन्निपातजन्य सकल विषमज्वर और मेद, मांस, अस्थि तथा मज्जागत ज्वर, आन्तरिक और बाह्यिकज्वर, नानादेशोद्भव ज्वर, शुक्रगत ज्वर और जितने पृथ्वीमंडलमें ज्वर हैं वे सब महादेवकी आज्ञासे नाशको प्राप्त होते हैं । यह जयमंगलरस श्रीशंकरदेवने निर्म्माण किया है । यह रस बल और पुष्टिकारक और सर्वप्रकारके रोगोंको दूर करे है ॥ १०९ ॥

संशमनयोगः ।

किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः । सस्थिराकलसीविश्वैः क्वाथो वातज्वरापहः ॥ एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः । किं पुनर्यदि युज्येत चंदनोदीच्यनागरैः ॥ क्षुपितं धान्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम् । अन्तर्दाहं शमयत्यचिरादूरप्ररूढमपि ॥ निम्बविश्वामृतादारुशठीभूनिम्बपौष्करम् । पिप्पल्यौ बृहती चेति क्वाथो हन्ति कफज्वरम् ॥ सिन्धुवारदलक्वाथं शोषणं कफजे ज्वरे । जंघायाश्च बले क्षीणे

कर्णे वा पिहितेऽपि वा ॥ विश्वामृताब्दभूनिम्बैः पंचमूलीसमन्वितैः। कृतः कषायो हन्त्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ दशमूलीरसः पेयः कणायुक्तः कफानिले। अविपाकेऽतितन्द्रायां पार्श्वरुक्श्वासकासके ॥ ११० ॥

भाषा-चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सुगंधवाला, कटाई, कटेरी, गोखरू, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी और सोंठ इन सब औषधियोंको दो तोले लेकर आधसेर जलमें औटावे जब औटकर आधपाव रहे तब उतारकर छान लेवे। इस क्वाथको पान करनेसे वातज्वर दूर होता है। एक केवल पित्तपापडेहीका क्वाथ पित्तज्वरको दूर कर देता है। पित्तपापडा, लाल चंदन, सुगंधवाला और सोंठ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे विशेष लाभ होता है। रात्रिमें धनियेको जलमें भिगो देवे प्रातःकाल उसमें बूरा (चीनी) डालकर पीवे तो अत्यन्त दुस्तर अन्तर्दाह दूर होता है। निमकी छाल, सोंठ, गिलोय, देवदारु, कचूर, चिरायता, पोहकरमूल, पीपल, गजपीपल और कटाई इनका क्वाथ पीनेसे कफज्वर दूर होता है। संभालूके पत्तोंका क्वाथ बनाकर काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पीनेसे कफज्वर, जांघोंकी दुर्बलता और श्रवणशक्तिकी अल्पता नष्ट होती है। सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता और पंचमूल इनका क्वाथ पीनेसे वातपित्तज्वर दूर होता है। दशमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे कफवातज्वर, अविपाक, तन्द्रा, पार्श्ववेदना, श्वास और खांसी दूर होते हैं ॥ ११० ॥

गुडूच्यादिः।

गुडूची चन्दनं पद्मनागरेन्द्रयवासकम्। अभयारग्वधोदीच्यपाठाधान्याब्दरोहिणी ॥ कषायं पाययेदेतं पिप्पलीचूर्णसंयुतम्। कासश्वासज्वरान् हन्ति पिपासादाहनाशनः ॥ १११ ॥

भाषा-गिलोय, लालचन्दन, कमल, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, हरड, अमलतास, सुगंधवाला, पाढ, धनिया, नागरमोथा और कुटकी इनके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे खांसी, श्वास, ज्वर, पियास और दाह दूर होते हैं ॥ १११ ॥

कंटकार्यादिः।

कंटकार्यमृताभार्ङ्गीनागरेन्द्रयवासकम्। भूनिम्बं चंदनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ कषायं पाययेदेतं पित्तश्लेष्मज्वरापहम्। दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ ११२ ॥

भाषा-कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, चिरायता, चंदन, नागरमोथा, पटोलपत्र और कुटकी इनका क्वथ पीनेसे पित्तकफज्वर, दाह, तृषा, अरुचि, वमन, खांसी, हृदयरोग और पार्श्वशूल दूर होवे ॥ ११२ ॥

पंचकोलः।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
दीपनीयः शृतो वर्गः कफानिलगदापहः॥ ११३ ॥

भाषा-पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे अग्निदीपन होती है कफ और वातज्वर दूर होता है ॥ ११३ ॥

आरग्वधादिः।

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ताहरीतकीभिः क्वथितः कषायः ।
सामे सशूले कफवातयुक्ते ज्वरे हितो दीपनः पाचनश्च ॥११४॥

भाषा-अमलतास, गठिवन (शंकरमते पीपलामूल), नागरमोथा, कुटकी और हरड इनका क्वाथ बनाकर पीवे तो आमशूल, कफवातज्वर दूर होवे यह क्वाथ दीपन और पाचक है परन्तु इस क्वाथमें अमलतासको और औषधियोंसे अलग रहने देवे जब अन्य औषधियें औट जांयें तब मिलावे ॥ ११४ ॥

भाङ्गर्यादिः।

भाङ्गर्यब्दपर्पटपुष्करशृंगवेरपथ्याकणाह्वदशमूलकृतः कषायः।सद्यो निहन्ति विषमज्वरसन्निपातजीर्णज्वरश्वयथुशीतकवह्निसादान्॥११५॥

भाषा-भारंगी, नागरमोथा, पित्तपापडा, पोहकरमूल, सोंठ, हरड, पीपल और दशमूल इन सब औषधियोंका क्वाथ बनाकर पीवे तो तत्काल विषमज्वर, सन्निपातज्वर, जीर्णज्वर, सूजन और मंदाग्नि आदि रोग दूर होते हैं ॥ ११५ ॥

दास्यादिः।

दासीदारुकलिङ्गलोहितलताश्यामाकपाठाशठीशुंठ्योशीरकिरातकुंजरकणात्रायन्तिकापद्मकैः । वज्रीधान्यकनागराब्दसरलैः शिग्रवम्बुसिंहीशिवाव्याघ्रीपर्पटदर्भमूलकटुकानन्तामृतापुष्करैः ॥ धातुस्थं विषमं त्रिदोषजनितं चैकाहिकं द्व्याहिकं कामैः शोकसमुद्भवं च विविधं यं छर्दियुक्तं नृणाम् । पीतो हन्ति क्षयोद्भवं सततकं चातुर्थिकं भूतजं योगोऽयं मुनिभिः पुराणगदितो जीर्णज्वरे दुस्तरे ॥ ११६ ॥

भाषा-नीले फूलका पियावासा, देवदारु, इन्द्रजव, मजीठ, कालीसर, पाढ, कचूर, सोंठ, खस, चिरायता, गजपीपल, त्रायमाण, पद्माख, थूहरके पत्ते, धनिया, नागरमोथा, सरल, सहजनेकी छाल, सुगंधवाला, कटेरी, पित्तपापडा, कुड़ाकी जड, कुटकी, अनन्तमूल, गिलोय और पोहकरमूल इन सब औषधियोंको दो तोले लेकर आधसेर जलमें औटावे जब आधपाव शेष रह जाय तब उतार ले इस क्वाथको पान करनेसे धातुस्थ विषमज्वर, सन्निपातज्वर, एकाहिक और द्व्याहिकज्वर, कामज्वर, शोकजनित ज्वर, क्षयजन्यज्वर, चातुर्थिकज्वर, भूतज्वर, सततज्वर और दुस्तर जीर्णज्वरादि दूर होते हैं ॥ ११६ ॥

स्नेहपाकस्य मूर्च्छाविधिः-तिलतैलकी मूर्च्छाविधिः।

कृत्वा तैलं कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलैस्तं तैलं निष्फेनभावं गतमिह च यदा शैत्ययुक्तं तदैव। मंजिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरसलिलैः सामलैः साक्षपथ्यैः सूचीपत्राग्निनीरैरुपहृतमथितैर्गन्धयोगं जहाति ॥ तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपि मूर्च्छाविधौ ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीह्रीबेरलोध्रान्विताः । सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्च पादांशिका दुर्गन्धं विनिहन्ति तैलमरुणं सौरभ्यमाकुर्वते ॥ ११७ ॥

भाषा-उत्तम दृढ कटाहमें तेलको चढाकर मंद मंद अग्निसे तेलको पकावे, जब तेल झागोंरहित हो जाय तब चूलहेपरसे उतार ले जब कुछ शीतल हो जाय तब हलदीको शीतलजलमें पीसकर क्रमक्रमसे तेलमें छोडता जाय, फिर मजीठको जलमें पीसकर तेलमें छोड देवे। पश्चात् लोध, नागरमोथा, नलिका, आमला, बहेडा, हरड, केवडेकी जड या वच इन द्रव्योंको जलमें पीस फिर जलमें घोलकर तेलमें छोड देवे। फिर इस तेलमें चौगुना जल डालकर पकावे, पश्चात् जब कुछ थोडासा जल शेष रहे तब उतार लेवे इन हरिद्रा और राजिकादि द्रव्योंको मूर्छा द्रव्य कहते हैं। इनके परिमाणका नियम इस प्रकार है, जितनी तेलकी तोल हो उससे सोलहवा, अंश मजीठ लेवे और अन्यान्य द्रव्य मजीठसे चौथा भाग लेवे अर्थात् तेल सोलह सेर होय तो मजीठ एक सेर लेवे, पदार्थ प्रत्येक पाव पाव भर लेवे, मूर्छापाकसे तेलकी दुर्गन्ध दूर होकर सुगन्ध उत्पन्न हो जाती है तथा तेलका रंग लाल हो जाता है तेलको पकानेसे मूर्छित द्रव्योंका क्वाथ छानकर डाले ॥ ११७ ॥

कटुतैलमूर्च्छाविधिः।

वयस्थारजनीमुस्तबिल्वदाडिमकेशरैः । कृष्णजीरकह्रीबेरन-

लिकैः सविभीतकैः ॥ एतैः समांशैः प्रस्थे च कर्षमात्रं प्रयोजयेत् । अरुणाद्विपलं तत्र तोयं चाढकसंमितम् ॥ कटुतैलं पचेत्तेन आमदोषहरं परम् ॥ ११८ ॥

भाषा-हरड, हलदी, नागरमोथा, बेलकी छाल, अनारकी छाल, नागकेशर, काला जीरा, सुगन्धवाला, नलिका और बहेडा ये सब कटुतेलका मूर्छाद्रव्य है । जब तेल पकते २ झागरहित हो जाय तब उतार ले, जब शीतल हो जाय तब प्रथम हलदी फिर मजीठ आदि अन्यान्य द्रव्य उसमें छोड देवै तेल चार सेर, मजीठ पावभर और प्रत्येक द्रव्य एक एक छटाक, तेलमें छोडकर सोलह सेर जलमें पकावे यह तेल आमदोषनाशक है ॥ ११८ ॥

एरण्डतैलमूर्च्छाविधिः ।

विकसा मुस्तकं धान्यं त्रिफला वैजयन्तिका । ह्रीवेरवनखर्जूरवटशुङ्गा निशायुगम् ॥ नलिकाभेषजं देयं केतकी च समं समम् । प्रस्थे देयं शाणमितं मूर्च्छने दधिकांजिकम् ॥ ११९ ॥

भाषा-मजीठ, नागरमोथा, धनिया, त्रिफला, जैतीके पत्ते, सुगन्धवाला, वनखजूर, बेडके अंकुर, हलदी, दारुहलदी, नलिका, केतकीकी जड, दही और कांजी, पाककी विधि पूर्ववत् जान लेनी चाहिये ॥ ११९ ॥

घृतमूर्च्छाविधिः ।

पथ्याधात्रीविभीतैर्जलधररजनीमातुलुङ्गद्रवैश्च द्रव्यैरेतैः समस्तैः पलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन । आज्यप्रस्थं विभेनः परिचपलगतं मूर्च्छयेद्वैद्यराजः तस्मादामोददोषं हरति च सकलं वीर्यवत्सौख्यदायी ॥ १२० ॥

भाषा-हरड, आमला, बहेडा, नागरमोथा, हलदी और बिजौरे नीबूका रस ये सब मूर्छापाकके द्रव्य हैं । प्रथम हलदी फिर नीबूका रस तदनन्तर अन्यान्यद्रव्य पूर्ववत् घृतमें छोड देवे । चार सेर घृतका मूर्छापाक करना हो तो मूर्छाद्रव्य आठ आठ तोले डाले और १६ सेर पानी होना चाहिये ॥ १२० ॥

स्नेहपाकस्य साधारणविधिः ।

काथ्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम् । स्नेहात्स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः ॥ चतुर्गुणन्त्वष्टगुणं द्रव्याद्द्वैगुण्यतो

भवेत्। पंचप्रभृति यत्र स्युर्द्रवानि स्नेहसंविधौ ॥ तत्र स्नेहस-मान्याहुरर्वाक् च स्याच्चतुर्गुणम् ॥ १२१ ॥

भाषा-स्नेहपाककी साधारण रीति यह है। काथद्रव्यको चौगुने जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल रह जाय तब उतार लेवे, जितना काथ हो, उससे चौथाई भाग स्नेह होना चाहिये। दूध स्नेहकी समान और कल्कद्रव्य स्नेहसे चौथाई भाग, काथद्रव्य सर्व चौगुने जलमें न पकावे, द्रव्यकी कठिनता तारतम्यके अनुसार जलका न्यूनाधिक होना चाहिये। कोमलद्रव्य चौगुने जलमें पकावे, कठिनद्रव्य अठगुने जलमें पकावे, अत्यन्त कठिन होय तो सोलहगुने जलमें पकाके काथ बनावे, सर्वत्र जलको चतुर्थांश रखना चाहिये। जहां पांचवा अधिक पदार्थोंके साथ स्नेहपाक करना होय तो वहां प्रत्येक द्रव्यकी समान स्नेह लेवे और जहां कम अर्थात् एकसे लेकर चारतक द्रवद्रव्यके साथ पाक करना हो वहां द्रवद्रव्यपदार्थसे चौगुना स्नेह होना चाहिये। कल्कपाकके पश्चात् प्रत्येक द्रवद्रव्यके साथ पृथक् पृथक् स्नेहपाक करै, कल्कपाक करनेके समय स्नेहमें चौगुना जल डाले, सबके अन्तमें चौगुना दान करना चाहिये ॥ १२१ ॥

षट्कट्वरतैलम्।

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाक्षानिशालोहितयष्टिकाभिः। तैलं ज्वरे षड्गुणतक्रसिद्धमभ्यंजनाच्छीतविदाहनु-त्स्यात् ॥ दध्नः ससारकस्यात्र तक्रं कट्वरमिष्यते ॥ १२२ ॥

भाषा-सज्जी, सोंठ, कूठ, मूर्वा, लाख, हलदी और मजीठ इन सबका कल्क बनाकर तेलसे छः गुना कट्वर (घृतसहित तक्र) मिलाकर तेलको पकावे, फिर उसको शरीरसे मले तो शीतज्वर और दाहयुक्त ज्वर दूर होता है ॥ १२२॥

अङ्गारकतैलम्।

मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मंजिष्ठा सेन्द्रवारुणी। बृहती सैन्धवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी ॥ आरनालाढकेनैव तैलप्रस्थं विपाच-येत्। तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरविनाशनम् ॥ १२३ ॥

भाषा-मूर्वा, लाख, हलदी, दारुहलदी, मजीठ, इन्द्रायन, कटाई, सेंधानोन, कूठ, रास्ना, बालछड और सतावर इन सबको एकत्र पीसकर १६ सेर कांजी और तिलका तेल ४ सेर मिलाय पकाकर शरीरमें मर्दन करनेसे सर्व प्रकारके ज्वर दूर होते हैं। इसको अंगारकतैल कहते हैं ॥ १२३ ॥

वासाद्यघृतम् ।

वासां गुडूचीं त्रिफलां त्रायमाणां यवासकम् । पक्त्वा तेन कषायेण पयसा द्विगुणेन च ॥ पिप्पलीमूलमृद्वीकाचन्दनोत्पलनागरैः । कल्कीकृतैश्च विपचेत् घृतं जीर्णज्वरापहम् ॥ १२४ ॥

भाषा—अडूसा, गिलोय, त्रिफला, त्रायमाण, जवासा इनका एकत्र क्वाथ बना लेवे, पश्चात् इस क्वाथके द्वारा और दुगुने दूधके द्वारा पीपलामूल, दाख, लालचंदन, नीलोत्पल और सोंठका कल्क करके घृत बनाकर सेवन करनेसे जीर्णज्वर नष्ट होता है ॥ १२४ ॥

लाक्षादितैलम् ।

लाक्षाहरिद्रामंजिष्ठाकल्कैस्तैलं विपाचितम् ।
षड्गुणेनारनालेन दाहशीतज्वरापहम् ॥ १२५ ॥

भाषा—तिलका तेल ४ सेर लेकर विधिपूर्वक मूर्छितकर पुरानी कांजी डालकर पकावे, कल्कके लिये लाख, हलदी और मजीठ सब मिले हुए १ सेर। इस तेलका मर्दन करनेसे ज्वर और उसकी दाह तथा शीत दूर होता है ॥१२५॥

महालाक्षादितैलम् ।

लाक्षारसाढके प्रस्थं तैलस्य विपचेद्भिषक् । मस्त्वाढकसमायुक्तं पिष्ट्वा चात्र समावपेत् ॥ शतपुष्पां हरिद्रां च मूर्वां कुष्ठं हरेणुकम् । कटुकां मधुकं रास्नामश्वगंधां च दारु च ॥ मुस्तकं चन्दनञ्चैव पृथगच्छसमानकैः । द्रव्यैरेतैस्तु तत् सिद्धमभ्यङ्गान्मारुतापहम् ॥ विषमाख्यान् ज्वरान् सर्वान् आश्वेव प्रशमं नयेत् । कासं श्वासं प्रतिश्यायं कण्डूदौर्गन्ध्यगौरवान् ॥ त्रिकपृष्ठकटीशूलं गात्राणां कुट्टनं तथा । पापालक्ष्मीप्रशमनं सर्वग्रहविनाशनम् ॥ अश्विभ्यां निर्म्मितं श्रेष्ठं तैलं लाक्षादिकं महत् । लाक्षायाः षड्गुणं तोयं दत्त्वैकविंशवारकम् ॥ परिस्राव्यजलं ग्राह्यं किंवा काथं यथोदितम् ॥ १२६ ॥

भाषा—मूर्छित तिलका तैल ४ सेर, प्रथम ८ सेर लाख लेकर एक मन चौबीस सेर जलके साथ पकावे जब १६ सेर शेष रह जाय तब उतार लेय और दहीका तोड १६ सेर, कल्कके लिये सोया, हलदी, मूर्वा, पेर, रेणुका, कुटकी, मुलहठी,

रायसन, असगंध, देवदारु, नागरमोथा और लालचंदन प्रत्येक दो दो तोले, पाकके अंतमें कपूर २ तोले, शिलारस २ तोले और नखद्रव्य २ तोले तैलमें मिला लेवे। इस तेलको शरीरादिकसे मर्दन करनेसे सर्व प्रकारके विषमज्वर, खांसी, श्वास, प्रतिश्याय, कण्डू, दुर्गंध, गुरुता, त्रिकशूल, पृष्ठशूल, कटिशूल, शरीरका टूटना, पाप, अलक्ष्मी और सर्वग्रह दूर होते हैं। यह महालाक्षादि तैल अश्विनीकुमारने निर्म्माण किया है। इस लाक्षादि तैलमें लाख १ भाग और जल छः भाग लेकर लाखको २१ वार जलमें भिगोकर वारंवार जो रंग स्रवे उसको ग्रहण करके तैलमें मिलाकर पकावे अथवा क्वाथही मिलाकर पकावे ॥ १२६ ॥

बृहत्पिप्पल्यादितैलम् ।

पिप्पली मुस्तकं धान्यं सैन्धवं त्रिफला वचा। यवानी चाजमोदा च चन्दनं पुष्कराह्वयम् ॥ शठी द्राक्षा गवाक्षी च शालिपर्णी त्रिकंटकम् । भूनिम्बारिष्टपत्राणि महानिम्बं निदिग्धिका॥ गुडूची पृश्निपर्णी च बृहती दन्तिचित्रकौ । दार्वी हरिद्रा वृक्षाम्लं पर्पटं गजपिप्पली ॥ एतेषां कार्षिकैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् । सिद्धमेतत् प्रयोक्तव्यं जीर्णज्वरमपोहति ॥ एकजं द्वन्द्वजं चैव दोषत्रयसमुद्भवम् । सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकान् ॥ मासजं पक्षजं चैव चिरकालानुबन्धिनम् । सर्वांस्तान्नाशयत्याशु पिप्पल्याद्यमिदं शुभम् ॥ १२७ ॥

भाषा-मूर्छित तिलका तैल ४ सेर, कल्कके लिये पीपल, नागरमोथा, धनिया, सैंधानोन, हरड, आमला, बहेडा, वच, अजवायन, अजमोद, लालचंदन, कूठ, कचूर, दाख, इन्द्रायनकी जड, शारिवन, गोखरू, चिरायता, नीमके पत्ते, बकायन, कटेरी, गिलोय, पिठवन, बृहती, दंतीकी जड, चीतेकी जड़, दारुहलदी, हलदी, विषांबिल, पित्तपापडा और गजपीपल प्रत्येक दो दो तोले ले कूटकर तैलमें डाल देवे और दहीका तोड़ ४ सेर, बिजौरे नीबूका रस ४ सेर इन सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक तैलको पकावे। पाकके अंतमें कुछ सुगंधित द्रव्य मिला लेय। इस तैलको मर्दन करनेसे जीर्णज्वर, एकज, द्वन्द्वज, त्रिदोषज, सन्तत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक, चातुर्थिक, मासज, पक्षज और बहुत पुराने ज्वरको यह पिप्पल्यादि तैल दूर करे है ॥१२७॥

नवज्वरे हिंगुलेश्वररसः ।

तुल्यांशं मर्दयेत् खल्वे पिप्पलीं हिंगुलं विषम् ।
द्विगुंजं मधुना देयं वातज्वरनिवृत्तये ॥ १२८ ॥

भाषा–पीपल, शुद्ध सिंगरफ और मीठा विष इन तीनोंको बराबर लेकर जलके योगसे खरलमें पीसकर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे । इसको सहतके साथ खानेसे वातज्वर दूर होता है ॥ १२८ ॥

शीतभञ्जी रसः ।

रसहिंगुलगन्धांश्च जेपालं मर्दितं त्रिभिः । दन्तीक्वाथेन संमर्द्य रसो ज्वरहरः परः ॥ आर्द्रकस्वरसेनाथ दापयेद्रक्तिकाद्वयम् । नवज्वरं महाघोरं नाशयेद्याममात्रतः ॥ शीततोयं पिवेच्चानु इक्षु-मुद्गरसो हितः । शीतभंजी रसो नाम्ना सर्वज्वरकुलांतकः ॥ १२९ ॥

भाषा–शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध सिंगरफ १ भाग, शुद्ध गंधक १ भाग, जमालगोटा ३ भाग इन सबोंको एकत्र दंतीकी जड़के काथमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोली बना लेवे । अदरखके रसके साथ इसको सेवन करनेसे अत्यन्त घोर नवीनज्वर एक प्रहरमें दूर होता है । अनुपान–शीतल जल, ईखका रस और मूंगका यूष पीना चाहिये । यह शीतभंजी रस सर्वप्रकारके ज्वरोंको नष्ट करनेवाला है ॥ १२९ ॥

तरुणज्वरारिरसः ।

जेपालगन्धौ विषपारदौ च तुल्यं कुमारीस्वरसेन मर्द्यम् ।
अस्य द्विगुंजा हि सितोदकेन ख्यातो रसोऽयं तरुणज्वरारिः ॥
दातव्य एषोऽहनि पञ्चमे वा षष्ठेऽथवा सप्तम एव वापि ।
जाते विरेके विगतज्वरः स्यात् पटोलमुद्गान्ननिषेवणेन ॥ १३० ॥

भाषा–शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध विष, शुद्ध गंधक और शुद्ध पारा ये सब समानभाग ले परन्तु पारे और गंधकको इनसे अलग लेकर दोनोंकी एकत्र कजली बना लेवे । पश्चात् अन्य सब औषधियोंको एकत्र घीगुवारके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे । एक गोली चीनीके सरबतके साथ खाय तो दस्त साफ आवेगा और तत्काल ज्वर दूर हो जायगा । यह औषधि ज्वरके पांचवें, छठे अथवा सातवें दिन सेवन करनी चाहिये ॥ १३० ॥

त्रिपुरभैरवो रसः ।

विषटङ्कणवलिम्लेच्छदन्तीबीजं क्रमाद्बहु । दन्त्यंबुमर्दितं यामं रसस्त्रिपुरभैरवः ॥ वल्लं व्योषेण चार्द्रस्य रसेन सितया तथा । पीते नवज्वरं हन्ति मन्दाग्न्यनिलशोथहा ॥ हन्ति शूलं सविष-

म्भमर्शांसि कृमिजान् गदान्। पथ्यं तक्रेण भोक्तव्यं रसेऽस्मिन् रोगहारिणि॥ १३१॥

भाषा-शुद्ध विष १ भाग, सुहागा२भाग, गंधक ३ भाग, तांबेकी भस्म ४ भाग, जमालगोटा ५ भाग इन सब द्रव्योंको एकत्र दंतीके रसमें एक प्रहर खरल करे तो त्रिपुरभैरवरस सिद्ध हो। अदरखका या चीनीका तथा सोंठ, पीपल, काली मिरच ये अनुपान हैं। इससे नवीनज्वर, मंदाग्नि, वातज शोथ, शूल, विष्टम्भ, बवासीर, कृमिरोग ये सब दूर होते हैं इसके ऊपर तक्रपान करना चाहिये॥ १३१॥

नवज्वरांकुशः।

क्रमेण वृद्धान् रसगन्धहिङ्गुलान् नैकुम्भबीजान्यथ दन्तिवारिणा। पिष्टास्य गुंजाभिनवज्वरापहा जलेन चाह्वा सितया प्रयोजिता॥ १३२॥

भाषा-शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गंधक २ भाग, शुद्ध सिंगरफ ३ भाग और जमालगोटा ४ भाग इन सबको एकत्र दंतीके काथमें खरल करके एक रत्तीभरकी गोली बना लेवे इसको चीनीके सरबतके साथ खानेसे नवीनज्वर दूर होता है॥ १३२॥

वैद्यनाथवटी।

शाणं गन्धमथो रसस्य च तथा कृत्वा द्वयोः कज्जलीं तिक्ताचूर्णमथाक्षमेव सकलं रौद्रे त्रिधा भावयेत्। पश्चात्तत्सुषवीरसेन नतु वा क्वाथेऽमले त्रैफले संशोष्या गुटिका कलायसदृशी कार्या बुधैर्यत्नतः॥ ज्ञात्वा दोषबलं रसेन सुषवीपत्रस्य पर्णस्य वा एकद्वित्रिचतुः क्रमेण वटिकां दद्यात् कदुष्णाम्बुना। हन्ति शूलनिचयं नवज्वरं पाण्डुतामरुचिशोथसंचयम्। रेचने च दधिभक्तभोजनं वैद्यनाथसुकुमाररेचनम्॥ भाव्यद्रव्यसमं क्वाथ्यं क्वाथश्चाष्टावशेषितः॥ १३३॥

भाषा-गंधक ४ मासे, पारा ४ मासे दोनोंकी एकत्र कजली बनावे फिर उसमें दो तोले कुटकीका चूर्ण मिला लेवे पश्चात् करेलेके रसमें या त्रिफलेके काथमें तीन बार भावना देकर धूपमें सुखाके उड़दकी बराबर गोली बना लेवे। करेलेके पत्तोंके रस या पानोंके रस एवं मंदोष्ण जलके अनुपानके साथ इस औषधिको सेवन करे। दोषोंके बलाबलको विचारकर १ से लेकर ४ तक गोली खावे। यह गोली शूल,

नवज्वर, पांडुता, अरुचि आदिको दूर करती है। इस गोलीके खानेसे रेचन अर्थात् जुल्लाब होता है। जुल्लाबके होनेसे ज्वर तत्काल नष्ट हो जाता है। इसपर दही और भातका भोजन करे। यह सुकुमार रेचन वैद्यनाथ इस नामसे प्रसिद्ध है ॥ १३३ ॥

अग्निकुमाररसः ।

मरिचोग्राकुष्ठमुस्तैः सर्वैरेव समं विषम् । पिष्ट्वा चार्द्ररसेनैव वटिका रक्तिका सिता ॥ आमज्वरे प्रथमतः शुंठ्या च मधुपिष्टया । आर्द्रकस्य रसेनापि निर्गुण्ड्याश्च कफज्वरे ॥ पीनसे च प्रतिश्याये आर्द्रकस्य च वारिणा । अग्निमान्द्ये लवङ्गेन शोथे सदशमूलकः ॥ ग्रहण्यां सह शुण्ठ्या च दशमूल्यातिसारके । सामे च धान्यशुण्ठीभ्यां पक्के च कुटजं मधु ॥ सन्निपातज्वरारम्भे पिप्पल्यार्द्रकवारिणा । कण्टकार्या रसैः कासे श्वासे तैलगुडान्वितम् ॥ पीत्वा वटीद्वयं रोगी स्वास्थ्यं समुपगच्छति । सर्वेषामेव रोगाणामामदोषप्रशान्तये ॥ अग्निवृद्धिकरो नाम्ना विख्यातोऽग्निकुमारकः ॥ १३४ ॥

भाषा–कालीमिरच २ मासे, वच २ मासे, कूठ २ मासे, नागरमोथा २ मासे, मीठा विष ८ मासे इन सब औषधियोंको अदरखके रसमें पीसकर एक एक रत्तीकी गोली बना लेवे। अनुपान–आमज्वरमें सोंठके चूर्णके साथ, कफज्वरमें अदरख या संभालूके पत्तोंके रसके साथ, पीनस और प्रतिश्यायरोगमें अदरखके रसके साथ, अग्निमांद्य रोगमें लौंगोंके चूर्णके साथ, शोथरोगमें दशमूलके काथके साथ, संग्रहणीरोगमें सोंठके चूर्णके साथ, अतिसार रोगमें दशमूलके काथके साथ, आमातिसाररोगमें धनिया और सोंठके काथके साथ, पक्कातीसाररोगमें कुडेके काथके और सहतके साथ, सन्निपातज्वरकी प्रथम अवस्थामें पीपलका चूर्ण और अदरखके रसके साथ, खांसीमें कटेरीके रसके साथ, श्वासरोगमें सरसोंके तेलके और पुराने गुडके साथ यह औषध सेवन करनी चाहिये। यह औषधि सर्वरोगोंमें आमदोषकी शांतिके लिये प्रयोग करनी चाहिये। इन दो गोलियोंको खानेसे अग्निकी वृद्धि होती है। इसलिये इसका नाम अग्निकुमार रस है ॥ १३४ ॥

चिन्तामणिरसः ।

रसविषगन्धकटंकणताम्रयवक्षारकं व्योषम् । तालफलत्रयकं च क्षौद्रं दत्त्वा शतवारान् ॥ संमर्द्य रक्तिकमिता वटिकाः कुर्या-

द्भिषक् प्राज्ञः। शुंठीपिष्टेन सममेका द्वौ वाथ वा तिस्रः॥ संप्राश्य नारिकेलजलमनुपेयं प्रयुञ्जीत। भेदान्तरमेव प्रक्षालितभक्तं तक्रमुपयोज्यम्॥ शेषात् सैन्धवजीरं तक्रभक्तं प्रयोक्तव्यम्। प्रशमयति सन्निपातज्वरं तथा जीर्णविषमश्च॥ प्लीहानां चाध्मानं कासं श्वासं च वह्निमांद्यम्। चिन्तामणिरसोऽयं किल नियतं तैरवेण निर्दिष्टः॥ १३५॥

भाषा-पारा, विष, गंधक, सुहागेकी खीलें, तांबा, जवाखार, त्रिकुटा, हरिताल, त्रिफला यह सब औषधि समान भाग ले सौवार सहत मिलाके खरल करे, फिर एक एक रत्तीकी गोलियां बना लेवे, सोंठके चूर्ण और सहतके साथ इस औषधीको सेवन करे। औषधीके सेवनके अंतमें नारियलका जल पीवे जब दस्त हो चुके तब भातको जलसे धोकर तक्रके साथ भोजन करे तथा सैंधानोन और जीरा मिलाकर भातका भोजन करे। इस चिन्तामणिरसको सेवन करनेसे सन्निपातज्वर, मंदाग्नि और प्लीहादि रोग शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं॥ १३५॥

मृत्युञ्जयरसः।

सूतं गन्धकटंकणं शुभविषं धत्तूरबीजं कटुं नीत्वा भागम्योत्तरं द्विगुणितं चोन्मत्तमूलाम्बुना। कुर्यान्माषवटीं सुखातिसुखदां सर्वान् ज्वरान्नाशयेत् एषो श्रीशिवशासनात् प्रजनितः सूतश्च मृत्युंजयः॥ नारिकेलसितायुक्तः वातपित्तज्वरं जयेत्। मधुना श्लेष्मपित्तोत्थं ज्वरं संनाशयेद्ध्रुवम्॥ सन्निपातज्वरं घोरं नाशयेदार्द्रनीरतः॥ १३६॥

भाषा-पारा १ मासा, गंधक २ मासे, सुहागेकी खीलें ४ मासे, विष ८ मासे, धतूरेके बीज १६ मासे, मरिच, पीपल, सोंठ, तीनों मिले हुए ३२ मासे इन सबको एकत्र करके धतूरेकी जडके रसमें पीसकर उडदकी समान गोली बना लेवे। वातपित्तज्वरमें नारियलके जल और चीनीके साथ, पित्तश्लेष्मज्वरमें सहतके साथ, सन्निपातज्वरमें अदरखके रसके साथ सेवन करे। यह मृत्युञ्जयरस सर्व प्रकारके ज्वरोंको दूर करता है॥ १३६॥

स्वल्पकस्तूरीभैरवो रसः।

हिङ्गुलं च विषं टंकं जातिकोषफलं तथा।

मरिचं पिप्पली चैव कस्तूरी च समांशिका ॥
रक्तिद्वयं ततः खादेत् सन्निपाते सुदारुणे ॥ १३७ ॥

भाषा-सिंगरफ, विष, सुहागा, जावित्री, जायफल, काली मिरच, पीपल और कस्तूरी ये सब औषधि समान भाग लेकर जलके साथ पीसकर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे। इस औषधिको सेवन करनेसे सन्निपातज्वर दूर होता है ॥१३७॥

मध्यमकस्तूरीभैरवरसः ।

मृतं वङ्गं खर्परं च हिरण्यं तारतालकम् । एतेषां समभागेन कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥ मृतं कान्तं पलं देयं हेमसारं द्विकार्षिकम्। रसभस्म लवङ्गं च जातिकाफलमेव च ॥ वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम् । द्रोणपुष्पीरसैर्वापि नागवल्या रसेन च ॥ द्विचंद्रो त्रिकटुर्देयो यत्नतो वटिकां चरेत् । वातात्मके सन्निपाते महाश्लेष्मगदेषु च ॥ त्रिदोषजनिते घोरे सन्निपातादिदारुणे । नष्टगर्भे नष्टशुक्रे प्रमेहे विषमज्वरे ॥ कासे श्वासे क्षये गुल्मे महाशोथे महागदे । स्त्रीणां शतं गच्छति च न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ एतान् सर्वान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १३८ ॥

भाषा-वंगकी भस्म, खपरिया, सोनेकी भस्म, चांदीकी भस्म और हरिताल प्रत्येक दो तोले, लोहेकी भस्म ८ तोले, तूतिया, रससिन्दूर, लौंग और जायफल प्रत्येक चार तोले इन सबको एकत्र खरल करके गूमाके पत्तोंके रसमें सात दिन और पानोंके रसमें सात दिन भावना देकर कपूर २ तोले और त्रिकुटा २ तोले मिलाकर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे । यह रस सर्वप्रकारके महाघोर सन्निपात, नष्टगर्भ, नष्टशुक्र, प्रमेह, विषमज्वर, खांसी, श्वास, क्षय, गुल्म, महाशोथ, महारोग इन सबको यह दूर कर देता है। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य सौ स्त्रियोंसे विषय करनेपरभी शुक्रक्षयको प्राप्त नहीं होता है॥ १३८ ॥

बृहत्कस्तूरीभैरवरसः ।

मृगमदशशिसूर्यो धातकी शूकशिम्बी रजतकनकमुक्ताविद्रुमलोहपाठाः । कृमिरिपुघनविश्वा वारितालाभ्रधात्री रविदलरसपिष्टं कस्तूरीभैरवोऽयम् ॥ कस्तूरीभैरवः ख्यातः सर्व-

ज्वरविनाशनः। आर्द्रकस्य रसैः पेयो विषमज्वरनाशनः॥ द्वन्द्व-
जान् भौतिकान् वापि ज्वरान् कामादिसंभवान्। अभिचार-
कृतांश्चैव तथा शत्रुकृतानपि॥ निहन्याद्भक्षणादेव डाकिन्या-
दिषु तांस्तथा। बिल्वचूर्णे नीरकाभ्यां मधुना सह पानतः॥
आमातिसारं ग्रहणीं ज्वरातीसारमेव च। अग्निदीप्तिकरः शान्तः
कासरोगनिकृन्तनः॥ क्षपयेद्भक्षणादेव मेहरोगं हलीमकम्।
जीर्णज्वरं नूतनं वा द्विकालीनं च सन्ततम्॥ प्रक्षिप्तं भौतिकं
वापि हन्ति सर्वान् विशेषतः। एकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं
चतुराहिकम्॥ पांचाहिकषष्ठसंस्थं पाक्षिकं मासिकं पुनः।
सर्वान् ज्वरान् निहन्त्याशु भक्षणादार्द्रकद्रवैः॥ १३९॥

भाषा-कस्तूरी, कपूर, तांबा, धायके फूल, कौंचके बीज, रूपा, सोना, मोती, मूंगा, लोहा, पाढ, वायविडंग, नागरमोथा, सोंठ, सुगंधवाला, हरिताल, अभ्रक और आमला इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर चूर्ण कर आकके पत्तोंके रसमें खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियां बना लेवे। इसको कस्तूरीभैरव रस कहते हैं। यह सब प्रकारके ज्वरोंको दूर करे है। इसको अदरखके रसके साथ पीनेसे विषमज्वर, द्वन्द्वज, भौतिक, कामादिज्वर, अभिचारकृत ज्वर, डाकिन्यादि दोष इन सबको दूर कर देता है। इसको बेलका चूर्ण, जल और सहतके साथ पीनेसे आमातिसार, संग्रहणी और ज्वरातिसार दूर होते हैं। अग्निदीपन होती है। तथा खांसी, प्रमेह, हलीमक, जीर्णज्वर, नूतनज्वर, द्विकालीन, सन्तत, भूतज ज्वर, एकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक, चातुर्थिक, पंचाहिक, षाष्ठिक, पाक्षिक, मासिक और सर्व प्रकारके ज्वरोंको यह रस अदरखके रसके साथ भक्षण करनेसे दूर कर देता है १३९

ज्वरकेसरिरसः।

शुद्धसूतं विषं व्योषं गन्धं त्रिफलमेव च। जयपालसमं कृत्वा
भृङ्गतोयेन मर्दयेत्॥ गुंजामात्रा वटी कार्या बालानां सर्षपा-
कृतिः। सितया च समं पीता पित्तज्वरविनाशिनी॥ मरिचेन
प्रयुक्ता सा सन्निपातज्वरापहा। पिप्पलीजीरकाभ्यां च दाहज्व-
रविनाशिनी॥ ज्वरकेसरिनामायं रसो ज्वरविनाशनः॥ १४०॥

भाषा-शुद्ध पारा, विष, त्रिकुटा, गंधक, त्रिफला और जमालगोटा इन सबको

समान भाग लेकर भांगरेके रसमें खरल करके एक एक रत्तीकी गोली बना लेवे बालकोंके लिये देनी होय तो सरसोंकी बराबर गोली बनावे। इस रसमें प्रथम पारे और गंधककी एकत्र खरल करके कजली बनावे फिर अन्यान्य द्रव्योंमें मिलाकर गोली बनावे। इस औषधिको चीनीके साथ सेवन करनेसे पित्तज्वर, मरिचोंके साथ सेवन करनेसे सन्निपातज्वर, पीपलके साथ सेवन करनेसे दाहज्वर और जीरेके साथ सेवन करनेसे अन्यान्य सर्व प्रकारके ज्वर दूर होते हैं ॥ १४० ॥

ज्वरभैरवो रसः ।

त्रिकटुत्रिफलाटंकविषगंधकपारदम् । जैपालं च समं मर्द्य द्रोणपुष्पिरसैर्दिनम् ॥ ताम्बूलेन समं चैव खादेद्गुंजामितां वटीम् । मुद्गयूषं शिखरिणीं पथ्यं देयं प्रयत्नतः ॥ नवज्वरं त्रिदोषोत्थं जीर्णं च विषमज्वरम् । दिनैकेन निहन्त्याशु रसोऽयं ज्वरभैरवः १४१

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला, सुहागेकी खीलें, विष, गंधक, पारा और जमालगोटा इन सबोंको समान भाग लेकर एक दिन गूमाके रसमें खरल करे, फिर एक एक रत्तीकी गोली बना लेवे। एक गोली पानमें रखकर खाय इसपर मूंगका यूष और शिखरन पथ्य देवे। यह ज्वरभैरवरस नवज्वर, त्रिदोषज्वर, जीर्णज्वर, विषमज्वर इन सबोंको एक दिनमें दूर कर देता है ॥ १४१ ॥

विद्याधरो रसः ।

रसो गन्धस्ताम्रं त्रिकटुकटुकाटंकणवरात्रिवृद्दन्तीहेमद्युतिमणिविषमेतत् समदिनम् । समस्तैस्तुल्यं स्याद्विमलजयपालोद्भवरजस्ततः स्नुक्क्षीरेण प्रगुणमृदितं दन्तिसलिलैः ॥ द्विगुंजास्य प्रौढं जयति वटिका साममण्डलं ज्वरं पाण्डुं गुल्मं ग्रहणिगुदकीलोद्भवरुजः । मरुच्छूलं जीर्णं प्रबलमपि सामं कृमिगदं विबद्धं प्लीहानां यकृतमपि विद्याधररसः ॥ १४२ ॥

भाषा-पारा, गंधक, तांबा, त्रिकुटा, कुटकी, सुहागेकी खीलें, त्रिफला, निसोथ, दंतीबीज, धतूरेके बीज, आककी जड और मीठा विष इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करले। जितना यह चूर्ण हो उतनाही इसमें जमालगोटेका चूर्ण मिलाकर थूहरका दूध और दंतीके क्राथमें उत्तम रीतिसे खरल करके दो दो रत्तीकी गोली बनावे। इस औषधिको सेवन करनेसे ज्वर, पाण्डु, गुल्म, संग्रहणी, गुदकीलरोग, वातशूल, प्रबल आम, कृमिरोग, विबन्ध, प्लीहा और यकृत् ये रोग दूर होते हैं॥१४२॥

लक्ष्मीविलासरसः।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धौ रसगंधकौ। तदर्द्धं चंद्रसंज्ञस्य जातीकोषफलं तथा॥ वृद्धदारुकबीजं च बीजं धत्तूरकस्य च। त्रैलोक्यविजयाबीजं विदारीमूलमेव च॥ नारायणी तथा नागबला चातिबला तथा। बीजं गोक्षुरकस्यापि नैचुलं बीजमेव च॥ एतेषां कार्षिकं चूर्णं पर्णपत्ररसैः पुनः। निष्पिष्य वटिका कार्य्या त्रिगुंजाफलमानतः॥ निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान् घोरान् चतुर्विधान्। वातोत्थान् पैत्तिकांश्चैव नास्त्यत्र नियमः क्वचित्॥ कुष्ठमष्टादशाख्यं च प्रमेहान् विंशतिस्तथा। नाडीव्रणं घोरतरं गुदामयभगन्दरम्॥ सर्वशूलं शिरःशूलं स्त्रीणां रोगानुसूदनम्। वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथाबलम्॥ अनुपानमिह प्रोक्तं मांसं पिष्टं पयो दधि। वारिभक्तसुरासीधु-सेवनात् कामरूपधृक्॥ वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी न च शुक्रस्य संक्षयः। नच लिंगस्य शैथिल्यं न केशा यान्ति पक्वताम्॥ नित्यं स्त्रीणां शतं गच्छन् मत्तवारणविक्रमः। द्विलक्षयोजनी दृष्टिर्जायते पौष्टिकः परः॥ प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना। रसो लक्ष्मीविलासस्तु वासुदेवे जगत्पतौ॥ अभ्यासाद्यस्य भगवान् लक्ष्मनारीषु वल्लभः॥ १४३॥

भाषा–कृष्णाभ्रक ४ तोले, पारा, गंधक, कपूर, जावित्री और जायफल, विधायरेके बीज, धतूरेके बीज, भांगके बीज, विदारीकंद, सतावर, गंगेरनकी जड, खिरैंटीकी जड, गोखरू और समुद्रफलके बीज प्रत्येक दो दो तोले लेवे, इन सबको एकत्र पानोंके रसमें खरल करके तीन तीन रत्तीकी गोलियां बना लेवे। यह गोली सर्वप्रकारके सन्निपात, अठारह प्रकारके कोढ, बीस प्रकारके प्रमेह, नाडीव्रण, घोर बवासीर, भगन्दर, सर्व प्रकारके शूल, शिरःशूल, सर्वप्रकारके स्त्रीरोग इन सबको दूर करे है। प्रतिदिन एक गोली बलाबलको विचारकर खावे। अनुपान–मांस, पिष्ट, दूध, दही, भातका मांड, सीधु नामवाली सुरा है। इसको सेवन करनेसे काम और रूपकी वृद्धि होती है, इसके प्रभावसे वृद्ध मनुष्यभी फिर तरुण-

पनेको प्राप्त होते हैं, कभीभी शुक्रका क्षय नहीं होता, न लिंगमें शिथिलता आवे, न बालपकता प्राप्त होवे, निरन्तर सौ स्त्रियोंसे मैथुन करनेको समर्थ होवे, विक्रम मत्त हाथीकी समान हो, दृष्टि दो लाख योजनतक पहुँचनेवाली हो जावे, पर पुष्टि उत्पन्न हो। यह प्रयोगराज महात्मा नारदजीने कहा है। इस लक्ष्मीविलासरसके अभ्याससे जगत्पति वासुदेव भगवान् लक्ष स्त्रियोंके वल्लभ हैं ॥ १४३ ॥

पुरातनज्वरे विषमज्वरांतकरसः ।

पारदं गंधकं तुल्यं सूतार्द्धं जीर्णताम्रकम् । ताम्रतुल्यं माक्षिकञ्च लोहं सर्वसमं नयेत् ॥ जयन्त्याः स्वरसेनैव कोकिलाक्षरसेन च । वासकार्द्रपर्णरसैः पंचधा च विमर्द्दयेत् ॥ पृथक् कलायमानां तु गुटिकां कारयेद्भिषक् । विषमज्वरान्तनामायं विषमज्वरनाशनः ॥ वह्निदीप्तिकरो हृद्यः प्लीहगुल्मविनाशनः । चक्षुष्यो बृंहणो वृष्यः श्रेष्ठः सर्वरुजापहः ॥ १४४ ॥

भाषा–पारा १ तोला, गंधक १ तोला, तांबा अर्धा तोला, सोनामक्खी अर्धा तोला और सर्वकी समान लोहा लेवे । सबको एकत्र जयंती, तालमखाना, अडूसा, अदरख और पानोंके रसमें भिन्न २ पांच भावना देकर मटरकी बराबर गोलियां बना लेवे । यह विषमज्वरान्तकरस विषमज्वरनाशक है । अग्निको दीपन करनेवाला, हृदयको हितकारी, प्लीहा और गुल्मनाशक है, नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिकारी, वीर्य्यवर्द्धक और सर्वरोगोंको हरनेवाला है ॥ १४४ ॥

विषमज्वरान्तकपुटपाकः ।

हिंगूलसम्भवं सूतं गन्धकेन सुकज्जलिम् । पर्पटीरसवत् पाच्यं सूतांघ्रि हेमभस्मकम् ॥ लौहं ताम्रमभ्रकं च रसस्य द्विगुणं तथा । वंगकं गैरिकं चैव प्रवालं च रसार्द्धकम् ॥ मुक्ताशंखं शुक्तिभस्म प्रदेयं रसपादिकम् । मुक्तागृहे च संस्थाप्य पुटपाकेन साधयेत् ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय द्विगुंजाफलमानतः । अनुपानं प्रयोक्तव्यं कणाहिंगु ससैन्धवम् ॥ ज्वरमष्टविधं हन्ति वातपित्तकफोद्भवम् । प्लीहानं यकृतं गुल्मं साध्यासाध्यमथापि वा ॥ सन्ततं सतताख्यञ्च विषमज्वरनाशनः । कामलां पाण्डुरोगञ्च शोथमेहमरोचकम् ॥ ग्रहणीमामदोषं च कासं श्वासञ्च

तत्र तत् । मूत्रकृच्छ्रातिसारं च नाशयेदपि कल्पतः ॥ अग्निञ्च कुरुते दीप्तं बलवर्णप्रसादतः । विषमज्वरान्तको नाम्ना धन्वन्तरिप्रकाशितः ॥ १४५ ॥

भाषा–सिंगरफसे निकाला हुआ पारा १ तोला और गंधक १ तोला इन दोनोंकी कजली बनाकर पर्पटीकी समान पाक करे, फिर उसमें २ मासे सोना, लोहा, तांबा, अभ्रक, प्रत्येक दो दो तोले; वंग, गेरू और मूंगा प्रत्येक अर्द्ध तोला; मोती, शंख और सीप प्रत्येकको भस्म दो दो मासे इन सबको एकत्र मिलाकर जलमें पीसकर गोलाकार बना लेवे, फिर उस गोलेको सीपके भीतर स्थापन करके ऊपरसे कपरमट्टी आदिका लेपकर १०।१५ अरनेउपलोंकी अग्निके द्वारा गजपुटमें रखकर फूंक देवे, फिर उसको तोडकर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर १ गोली खावे । अनुपान–पीपल, हींग, सैंधानोन । यह विषम ज्वरान्तक रस आठ प्रकारके ज्वर, वातपित्तकफोद्भव ज्वर, प्लीहा, यकृत, गुल्म, सन्तत, सतताख्य, विषमज्वर, कामला, पाण्डुरोग, सूजन, प्रमेह, अरुचि, संग्रहणी, आमदोष, खांसी, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार इन सबको दूर करे है । अग्निको दीपन करे, बल और वर्णको प्रसन्न करे यह विषमज्वरान्तक रस धन्वन्तरिजीने प्रकाशित किया है ॥ १४५ ॥

वसन्तमालिनीरसः ।

स्वर्णं मुक्तादरदमरिचं भागवृद्ध्या प्रविष्टं खर्पर्याष्टौ प्रथममखिलं मर्दयेन्नृक्षणेन । यावत् स्नेहं व्रजति विलयं निम्बुनीरेण तावत् गुंजाद्वन्द्वं समधुचपलं मालती प्राग्वसन्तः ॥ सेवितेयं हरेत्पूर्णं जीर्णञ्च विषमज्वरम् । व्याधीनन्यांश्च कासादीन् प्रदीप्तं कुरुतेऽनलम् ॥ १४६ ॥

भाषा–सोना १ भाग, मोती २ भाग, सिंगरफ ३ भाग, काली मिरच और खपरिया ८ भाग इन सबको प्रथम तो थोड़ेसे माखनमें पीस पश्चात् कागजी नींबूके रसमें तबतक खरल करे जबतक माखनकी चिकनाई न रहे । इस औषधिको २ रत्ती मधु और पीपलके चूर्णके साथ सेवन करे । इसको सेवन करनेसे जीर्णज्वर, विषमज्वर, उदररोग और कासादि रोग नष्ट होते हैं । अग्नि अत्यन्त दीपन होती है ॥ १४६ ॥

सर्वज्वरहरलोहः ।

चित्रकं त्रिफला व्योषं विडंगं मुस्तकं तथा । श्रेयसी पिप्पलीमूलमुशीरं देवदारु च ॥ किराततिक्तकं वालं कटुकी कंटकारिका । शोभांजनस्य बीजञ्च मधुकं वत्सकं समम् ॥ लोहतुल्यं गृहीत्वा तु वटिकां कारयेद्भिषक् । सर्वज्वरहरो लोहः सर्वज्वरकुलान्तकः॥वातिकं पैत्तिकं श्लेष्मं द्वन्द्वजं सान्निपातिकम् । जीर्णज्वरं च विषमं रोगसंकरमेव च ॥ प्लीहानमग्निमांद्यं च यकृतं च विनाशयेत् ॥ १४७ ॥

भाषा–चीता, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, नागरमोथा, गजपीपल, पीपरामूल, खस, देवदारु, चिरायता, सुगंधवाला, कुटकी, कटेरी, सहजनेके बीज, मुलहठी और इन्द्रजौ इन सबको समान भाग लेवे और सबकी बराबर लोहा लेवे । सबको जलमें पीस एक रत्तीकी गोलि बना लेवे प्रतिदिन एक गोली खाय। यह लोह आठों प्रकारके ज्वरोंको दूर करे है तथा प्लीहा, अग्निमांद्य और यकृत् रोगको दूर करे है ॥ १४७ ॥

बृहत्सर्वज्वरहरलोहः ।

द्विपलं जारितं लोहं रसं गन्धं द्वितोलकम् । तोलकं त्रिफला व्योषं विडंगं मुस्तकं तथा ॥ श्रेयसी पिप्पलीमूलं हरिद्रे द्वे च चित्रकम् । आर्द्रकस्य रसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ गुंजाद्वयीं वटीं कृत्वा भक्षयेदार्द्रकद्रवैः । सर्वज्वरहरो लोहः सर्वज्वरविनाशनः ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् । विषमज्वरभूतोत्थज्वरं विषममेव च ॥ मासजं पक्षजं चैव तथा संवत्सरोत्थितम् । सर्वान् ज्वरान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १४८ ॥

भाषा–जारण किया हुआ लोहा २ पल, पारा २ तोला, गंधक २ तोला, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, नागरमोथा, गजपीपल, पीपलामूल, हलदी, दारुहलदी और चीता प्रत्येक एक एक तोला सबको एकत्र अदरखके रसमें खरलकर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे । प्रति दिन एक गोली अदरखके रसके साथ खाय तो यह लोह वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सन्निपातिक, भूतोत्थ ज्वर, विषमज्वर, मासज,

पक्षज और संवत्सरके ज्वरकोभी दूर करे है। यह सर्वज्वरहर लोहा सर्व प्रकारके ज्वरोंको दूर करे है ॥ १४८ ॥

बृहत्सर्वज्वरहरलोहः।

पारदं गन्धकं शुद्धं ताम्रमभ्रञ्च माक्षिकम्। हिरण्यं तारतालञ्च कर्षमेकं पृथक् पृथक् ॥ मृतं कान्तं पलं देयं सर्वमेकीकृतं शुभम्। वक्ष्यमाणौषधैर्भाव्यं प्रत्येकं दिनसप्तकम् ॥ कारवेल्लरसेनापि दशमूलरसेन च। पर्पटस्य कषायेण क्राथेन त्रैफलेन च ॥ गुडूच्याः स्वरसेनापि नागवल्लीरसेन च। काकमाचीरसेनापि निर्गुण्ड्याः स्वरसेन च॥ पुनर्नवार्द्रकाम्भोभिर्भावनां परिकल्प्य च। रक्तिकादिक्रमेणैव वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ पिप्पलीगुडसंयुक्ता वटिका वीर्यवर्द्धिनी। ज्वरमष्टविधं हन्ति चिरकालसमुद्भवम्॥ विविधं वारिदोषोत्थं नानादोषोद्भवं तथा। सततादिज्वरं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा॥ क्षयोद्भवंच धातुस्थं कामशोकभवं तथा। भूतावेशज्वरं चैव ऋक्षदोषभवं तथा॥ अभिघातज्वरं चैवमभिचारसमुद्भवम्। अभिन्यासं महाघोरं विषमञ्च त्रिदोषजम्॥शीतपूर्वं विषमजं शीतलं ज्वरमेव च।प्रलेपकज्वरं घोरमर्द्धनारीश्वरं तथा॥ प्लीहाज्वरं तथा कासं चातुर्थिकविपर्य्ययम्। पाण्डुरोगगणान् सर्वानग्निमांद्यं महागदम्॥ एतान् सर्वान् निहन्त्याशु पक्षार्द्धे नात्र संशयः। शाल्यन्नं तक्रसहितं भोजयेद्द्विजसंयुतम्॥ ककारपूर्वकं सर्वं वर्जनीयं विशेषतः। मैथुनं वर्जयेत्तावद् यावन्न बलवान् भवेत्॥ सर्वज्वरहरं श्रेष्ठमनुपानं प्रकल्पयेत्॥ १४९॥

भाषा-शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, तांबेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, सोनामक्खी, सोनेकी भस्म, चांदीकी भस्म और शुद्ध हरिताल प्रत्येक एक एक कर्ष; कान्त लोह ४ तोले इन सबको एकत्र खरल करे पश्चात् करेला, दशमूल, पित्तपापडा, त्रिफला, गिलोय, पान, मकोय, निर्गुण्डी पुनर्नवा और अदरख प्रत्येकके रस या कायकी सात सात दिनतक भावना देकर एक एक रत्तीकी गोली बना लेवे।

प्रतिदिन एक गोली पीपल और गुड़के साथ खाय तो इससे वीर्य्यकी वृद्धि होती है तथा आठ प्रकारके ज्वर, बहुत पुराना ज्वर, नानाप्रकारके जलदोषोत्पन्न ज्वर, अनेक दोषोत्पन्न ज्वर, सततकादि ज्वर, साध्य असाध्य ज्वर, क्षयज ज्वर, धातुस्थज्वर, कामजज्वर, शोकजज्वर, भूतावेशज्वर, ऋक्षदोषज्वर, अभिघातज्वर, आभिचारज्वर, अभिन्यासज्वर, महाघोर विषमज्वर, त्रिदोषजज्वर, शीतजज्वर, विषमशीतल, प्रलेपकज्वर, अर्द्धनारीश्वर, प्लीहज्वर, खांसी, चातुर्थिकज्वर, सर्व प्रकारके पाण्डुरोग, मंदाग्नि, महारोग इन सबको यह एक सप्ताहमें दूर करे है। इसपर शालीधानोंके चावलोंका भात तक्रके साथ और सेंधानोनके साथ सेवन करे इसपर ककारादि नामवाले पदार्थ त्याग देवे। जबतक रोगी बलवान् न हो तबतक मैथुन न करे यह सर्वप्रकारके ज्वरोंका हरनेवाला अनुपान कहा है ॥ १४९ ॥

मकरध्वजः ।

स्वर्णदलं पलं चैव रसेन्द्रश्च पलाष्टकम् । रसस्य द्विगुणं गन्धं तेनैव कज्जलीकृतम् ॥ कुमारिकारसैर्भाव्यं काचपात्रे निधापयेत् । वालुयन्त्रे च संस्थाप्य क्रमाद्दिनत्रयं पचेत् ॥ स्वांगशीतं समादाय पुष्पारुणरजः समम् । यवमात्रं प्रदातव्यमहिवल्लीदलेन च ॥ एतदभ्यासतश्चैव जरामरणनाशनम् ।अनुपानविशेषेण करोति विविधान् गुणान् ॥ ज्वरं त्रिदोषजं घोरं मन्दाग्नित्वमरोचकम् । अन्यांश्च विविधान् रोगान् नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १५० ॥

भाषा-उत्तम सोनेके वारीक पत्र ४ तोले, पारा ८ पल, गंधक १६ पल प्रथम तो पारे और सोनेको एकत्र पीस फिर उसमें गन्धक मिलाकर कजली बना लेवे, फिर घीगुवारके रसमें भावना देवे, पश्चात् सुखाकर एक कांचकी शीशीमें स्थापन करे, फिर इस शीशीको वस्त्र और मृत्तिकादिसे लेप देवे, पश्चात् वालुकायंत्रमें ३ दिन पकावे, जब स्वयं शीतल हो जाय तब निकालकर चूर्ण कर ले। इसको एक जौभर नागरपानके रसके साथ खाय। इसके सेवन करनेसे जरा और मरण दूर होते हैं। यह अनेक प्रकारके अनुपानोंके साथ नानाप्रकारके गुणोंको करता है। सन्निपातज्वर, मंदाग्नि, अरुचि तथा अन्यान्य नानाप्रकारके रोगोंको यह मकरध्वजरस दूर कर देता है ॥ १५० ॥

किरातादितैलम् ।

मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मंजिष्ठा सेन्द्रवारुणी । ह्रीबेरं पुष्करं रास्ना

कपिवल्ली कटुत्रयम् ॥ पाठा चेन्द्रयवश्चैव लवणत्रयसंयुतम् । वासकार्कश्यामा दारु महाकालफलं तथा ॥ दधिमन्थारनालेन किरातेन च संपचेत् । प्रस्थं प्रस्थं समादाय तैलप्रस्थे विपाचयेत् ॥ पित्तयुक्तज्वरं चैव सन्ततं सततं तथा । धातुस्थमस्थिमज्जास्थं ज्वरं सर्वं व्यपोहति ॥ कामलां ग्रहणीश्चैव अतिसारं हलीमकम् । प्लीहापाण्डुश्वयथूंश्च नाशयेन्नात्र संशयः ॥ नास्ति तैलं वरं चास्मात् ज्वरदर्पकुलान्तकम् ॥ १५१ ॥

भाषा-प्रथम ४ सेर कडवा तेल लेकर यथाविधिसे मूर्छित कर उसमें दहीका तोड ४ सेर, कांजी ४ सेर, चिरायतेका काथ मिलावे। फिर मूर्वा, लाख, हलदी, दारुहलदी, मजीठ, इन्द्रायन, सुगंधवाला, कूठ, रास्ना, गजपीपल, त्रिकुटा, तीनों लवण, अडूसेकी छाल, सफेद आककी जड़, कालीसर, देवदारु और महाकाललता इन सबका कल्क १ सेर मिलाकर यथाविधिसे तैलको पकावे। इस तैलको शरीरादिकसे मर्दन करनेसे पित्तज्वर, सन्तत, सतत, धातुगत ज्वर, अस्थिगत ज्वर, मज्जागत ज्वर तथा सर्व प्रकारके ज्वर, कामला, संग्रहणी, अतीसार, हलीमक, प्लीहा, पाण्डु और सूजनको दूर करता है। इस तेलकी समान ज्वरके अभिमानको भंजन करनेवाला कोई तेल नहीं है ॥ १५१ ॥

बृहत्किरातादितैलम् ।

कैरातस्य तुलामानं जलद्रोणे विपाचयेत् । कटुतैलस्य पात्रार्द्धं तेनैव साधयेद्भिषक् ॥ मूर्वा लाक्षा द्वयोः क्वाथो कांजिकं दधिमस्तु च । एतानि तैलतुल्यानि कल्कानेतांश्च संपचेत् ॥ भूनिम्बः श्रेयसी रास्ना कुष्ठं लाक्षेन्द्रवारुणी । मंजिष्ठा च हरिद्रे द्वे मूर्वा मधुकमुस्तकम् ॥ वर्षाभूः सैन्धवं मांसी बृहती च तथा मिडम् । ह्रीबेरं शतमूली च चन्दनं कटुरोहिणी ॥ हयगन्धा शताह्वा च वेणुका सुरदारु च । उशीरं पद्मकं धान्यं पिप्पली च वचा शठी ॥ फलत्रिकं यवान्यौ द्वे शृङ्गी गोक्षुर एव च । पर्ण्यौ द्वे तरुणीमूलं विडङ्गं जीरकद्वयम् ॥ महानिम्बश्च हबुषा यवक्षारो महौषधम् । एषां कर्षद्वयं क्षिप्त्वा साधयेन्मृदुवह्निना ॥

यथाहिवर्गं विनिहन्ति तार्क्ष्यो यथा च भास्वांस्तिमिरस्य संघम् । तथैव सर्वं ज्वरवर्गमेतदभ्यङ्गमात्रेण निहन्ति तैलम् ॥ सन्ततं सततादींश्च निखिलान् विषमज्वरान् । प्लीहाश्रितान् सशोथान् वा प्रमेहज्वरमेव च ॥ अग्निञ्च कुरुते दीप्तं बलवर्णकरं परम् । पांड्वादीन् हन्ति रोगांश्च किराताद्यमिदं बृहत् ॥ १५२ ॥

भाषा-कडुवा तेल ८ सेर लेकर यथाविधि मूर्छित कर निम्नलिखित द्रव्य क्रमसे डालकर पकावे । काथके लिये चिरायता १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, मूर्वाकी जड ६। सेर, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, लाख ६। सेर, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, कांजी ८ सेर, दहीका तोड ८ सेर । कल्कके लिये चिरायता, गजपीपल, रास्ना, कूठ, लाख, इन्द्रायनकी जड, मजीठ, हलदी, दारुहलदी, मूर्वा, मुलहठी, नागरमोथा, पुनर्नवा, सैंधानोन, बालछड, कटाई, विरिया संचरनोन, सतावर, लालचंदन, कुटकी, असगंध, सोया, रेणुका, देवदारु, खस, पद्माख, धनिया, पीपल, वच, कचूर, त्रिफला, अजवायन, अजमोद, काकडासिंगी, गोखरू, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, दंती, वायविडंग, जीरा, काला जीरा, बकायन, हाऊबेर, जवाखार और सोंठ प्रत्येक दो दो कर्ष लेवे । सबको उत्तम रीतिसे मिलाकर तेलको सिद्ध करे । जिस प्रकार सर्पोंके समूहको गरुड नष्ट करता है और जिस प्रकार अंधकारके समूहको सूर्य्य दूर करता है, उसी प्रकार सर्व प्रकारके ज्वरोंके समूहको यह तैल अभ्यंगमात्रसे नष्ट कर देता है । सन्तत, सततकादि, विषमज्वर, प्लीहाज्वर, शोथज्वर और प्रमेहज्वरको दूर करे है । अग्निको दीपन करे, बल और वर्णको उत्तम करे और पाण्ड्वादि रोगोंको यह बृहत् किरातादि तैल दूर कर देता है ॥ १५२ ॥

अथ ज्वरातीसारकी चिकित्सा ।

ज्वरातिसारयोरुक्तमन्योन्यं भेषजं पृथक् । न तन्मिलितयोः कुर्यात् अन्योन्यं वर्जयेद्यतः ॥ प्रायो ज्वरहरं भेदि स्तम्भनं त्वतिसारनुत् । अतोऽन्योन्यविरुद्धत्वाद्वर्द्धनं तत् परस्परम् ॥ ज्वरातिसारिणामादौ कुर्याल्लंघनपाचने । प्रायस्तावामसम्बन्धं विना न भवतो यतः ॥ ज्वरातिसारे पेयादिक्रमः स्याल्लंघिते हितः।ज्वरातिसारी पेयां वा पिबेत् साम्लां शृतां नरः॥ ह्रीवेरातिविषामुस्तबिल्वनागरधान्यकैः । पिबेत् पिच्छाविबन्धघ्नं शूलदोषामपाचनम् ॥ सरक्तं हन्त्यतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥१५३॥

भाषा-ज्वर और अतीसारमें जो औषधि कही है, ज्वरातीसारमें वह सब औषधि एकत्र मिलाकर कदापि न देवे। कारण यह है कि उक्त दोनों प्रकारकी औषधि ज्वरातीसारको बढानेवाली है अर्थात् ज्वरनाशक औषधि प्रायः सम्पूर्णही भेदक होती है और अतिसारनाशक औषधि सब मलरोधक होती हैं। क्योंकि ज्वरनाशक औषधि सेवन करनेसे अतीसारकी वृद्धि होती है और अतीसारनाशक औषधिको सेवन करनेसे ज्वरकी वृद्धि होती है। ज्वरातीसाररोगमें प्रथम लंघन और पाचन करावे, कारण आमसम्बन्धके विना प्रायः ज्वर या अतीसार रोग उत्पन्न नहीं होता है, अतएव लंघन और पाचन इन दोनों क्रियाओंके द्वारा आम पककर रोगका बल कम हो जाता है। ज्वरातीसारमें दाडिम आदि अम्लद्रव्योंके साथ बनाई हुई पेया और यवागू आदि पथ्य देना चाहिये। सुगंधवाला, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी, धनिया, खैर, सोंठ ये सब मिले हुए दो तोले, जल ३२ तोले, शेष ८ तोले इस क्काथको पीनेसे मलकी पिच्छिलता, विबन्ध, शूल और आमदोष दूर होता है। तथा रक्तातीसार और ज्वरपूर्वक रक्तातीसार दूर होता है॥ १५३॥

उशीरादिः।

उशीरं वालकं मुस्तं धान्याकं विश्वभेषजम्। समङ्गा धातकी लोध्रं बिल्वं दीपनपाचनम्॥ हन्त्यरोचकपिच्छामं विबन्धं सातिवेदनम्। सशोणितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम्॥ १५४॥

भाषा-खस, सुगंधवाला, नागरमोथा, धनिया, सोंठ, लजावंती, धायके फूल, लोध और बेलगिरी इन सबको समान भाग लेकर काढा बना लेवे। इस काढेके पीनेसे अरुचि, गाढी आम, वेदनायुक्त विबन्ध, रक्तातीसार, ज्वरातीसार और अतिसार दूर होता है तथा यह काढा दीपन और पाचन है॥ १५४॥

गुडूच्यादिः।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुण्ठीबिल्वाब्दवालकैः। पाठाभूनिम्बकुटजचन्दनोशीरपद्मकैः॥ कषायः शीतलः पेयो ज्वरातीसारशान्तये। हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहशान्तिकृत्॥ १५५॥

भाषा-गिलोय, अतीस, धनिया, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा, सुगंधवाला, पाठ, चिरायता, कूडेकी छाल, लालचंदन, खस और पद्माख इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर काढा बना शीतल होनेपर पीवे तो ज्वरातीसार, हृल्लास, अरुचि, वमन, प्यास और दाह नष्ट हो जांय॥ १५५॥

पाठादिः ।

पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तपर्पटकामृताः।
जयन्त्याममतीसारं सज्वरं समहौषधाः ॥ १५६ ॥

भाषा-पाढ, इंद्रजौ, चिरायता, नागरमोथा, पित्तपापडा, गिलोय और सोंठ इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर काढा बना लेवे इस काढेका सेवन करनेसे आम और ज्वरातीसार दूर हो जाते हैं ॥ १५६ ॥

नागरादिः ।

नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवासकैः ।
सर्वज्वरहरः क्वाथः सर्वातीसारनाशनः ॥ १५७ ॥

भाषा-सोंठ, अतीस, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और इंद्रजौ इन सब औषधियोंका काढा बनाकर पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर और सर्व प्रकारके अतिसार नाश हो जाते हैं ॥ १५७ ॥

संशमनयोगः ।

पंचमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः । पाठाभूनिम्बह्रीबेरकुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥ हन्ति सर्वानतीसारान् ज्वरदोषं वमिं तथा । सशूलोपद्रवं श्वासं कासं हन्यात् सुदारुणम् ॥ कलिङ्गातिविषाशुण्ठीकिराताम्बुयवासकम् । ज्वरातीसारसन्तापं नाशयेदविकल्पितः ॥ वत्सकस्य फलं दारु रोहिणी गजपिप्पली । श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका ॥ द्वावप्येतौ सिद्धयोगौ श्लोकार्द्धेनाभिभाषितौ । ज्वरातीसारशमनौ विशेषाद्दाहनाशनौ ॥ नागरामृतभूनिम्बबिल्ववालकवत्सकैः । समुस्तातिविषोशीरैर्ज्वरातीसारहृज्जलम् ॥ मुस्तकबिल्वातिविषापाठाभूनिम्बवत्सकैः क्वाथः । मकरन्दगर्भयुक्तो ज्वरातिसारो जयेद् घोरौ ॥ घनजलपाठातिविषापथ्योत्पलधान्यरोहिणीविश्वैः । सेन्द्रयवैः कृतमम्भः सातीसारं ज्वरं जयति ॥ १५८ ॥

भाषा-पंचमूल अर्थात् शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कटाई, कटेरी और गोखरू इन सबकी जडकी तो छाल; खिरैंटी, बेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, पाढ, चिरायता, सुगंधवाला, कूडेकी छाल और इंद्रजौ इन सब औषधियोंको समानभाग लेकर

क्काथ बना लेवे । इस क्काथको शीतल कर पीनेसे सर्व प्रकारके अतिसार, ज्वर, वमन, उपद्रवयुक्त शूल, श्वास और दारुण खांसी नाश हो जाती है। इंद्रजौ, अतीस, सोंठ, चिरायता, सुगंधवाला और जवासा इन सबको बराबर ले काढा कर पीनेसे ज्वराती-सार और शरीरका सन्ताप नाशको प्राप्त होता है। इंद्रजौ, देवदारु, मजीठ और गज-पीपल तथा गोखरू, पीपल, धनियां, बेलगिरी, पाढ और अजवायन इन दोनों योगोंमें किसी एक योगकी औषधि समान भाग लेकर काढा बना लेवे। इस का-ढेको पीनेसे ज्वरातीसार और शरीरकी दाह दूर होती है। सोंठ, गिलोय, चिराय-ता, बेलगिरी, सुगंधवाला, इन्द्रजौ, नागरमोथा, अतीस और खस ये सब दो तोले लेकर ३२ तोले जलमें पकावे। जब ८ तोले जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। इसको पीनेसे ज्वरातीसार नष्ट होता है। नागरमोथा, बेलगिरी, अतीस, पाढ, चिरायता और इन्द्रजौ इनके क्काथमें सहत डालकर पीनेसे ज्वरातीसार दूर होता है। नागरमोथा, वाला, पाढ, अतीस, हरड, पद्माख, धनिया, मजीठ, सोंठ और इन्द्रजौ इन सबका यथाविधिसे क्काथ पान करनेसे ज्वरातीसार दूर होता है ॥ १५८ ॥

कलिंगाद्यगुटिका ।

कलिङ्गबिल्वजम्ब्वाम्रकपित्थं सरसाञ्जनम् । लाक्षा हरिद्रे ह्रीबेरं कट्फलं शुकनासिकाम् ॥ लोध्रं मोचरसं शंखं धातकीं वटशुङ्ग-कम् । पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्मितान् ॥ छायाशुष्कान् पिबेच्छीघ्रं ज्वरातीसारशान्तये । रक्तप्रसादनाश्चैते शूलाती-सारनाशनाः ॥ उत्पलं दाडिमं त्वक् च पद्मकेसरमेव च । पिबेत्तण्डुलतोयेन ज्वरातीसारनाशनम् ॥ १५९ ॥

भाषा-इन्द्रजौ, बेलगिरी, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, कैथ, रसोत, लाख, हलदी, दारुहलदी, सुगंधवाला, कायफल, श्योनाक, लोध, मोचरस, शंखकी भस्म, धायके फूल और बडके अंकुर इन सबको चावलोंके जलमें पीसकर छायामें सुखाकर एक एक तोलेकी गोली बना लेवे। इसको भक्षण करनेसे ज्वरातीसार दूर होता है, रुधिरमें प्रसन्नता उत्पन्न होती है, शूलपूर्वक अतीसार नाश होता है, बघूला, अनारके फलकी छाल, कमलकेशर इनको चावलोंके जलके साथ पीनेसे ज्वरातीसार दूर होता है ॥ १५९ ॥

व्योषाद्यचूर्णम् ।

व्योषं वत्सकबीजं च निम्बभूनिम्बमार्कवम् । चित्रकं रोहिणीं

पाठां दार्वीमतिविषां समाम् ॥ श्लक्ष्णचूर्णीकृतान् सर्वांस्तत्तुल्यां वत्सकत्वचम् । सर्वमेकत्र संयुज्य प्रपिबेत्तण्डुलाम्बुना ॥ सक्षौद्रं वा लिहेदेतत् पाचनं ग्राहि भेषजम् । तृष्णारुचिप्रशमनं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ कामलां ग्रहणीदोषान् गुल्मं प्लीहानमेव च । प्रमेहं पाण्डुरोगञ्च श्वयथुञ्च विनाशयेत् ॥ दशमूलीकषायेण विश्वमक्षसमं पिबेत् । ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे ॥ विडङ्गातिविषा मुस्तं दारु पाठा कलिङ्गकम् । मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ॥ किराताब्दामृताविश्वचन्दनोदीच्यवत्सकैः । शोथातिसारशमनं विशेषाज्ज्वरनाशनम् ॥ किराताब्दामृतोदीच्यमुस्तचन्दनधान्यकैः । शोथातीसारतृड्दाहशमनो ज्वरनाशनः ॥ १६० ॥

भाषा–सोंठ, मिरच, पीपल, इन्द्रजौ, नीम, चिरायता, भांगरा, चीता, कुटकी, दारुहलदी और अतीस इन सबको समान भाग लेकर बारीक पीस लेवे और सबकी बराबर कूडेकी छालका चूर्ण लेवे इन सब औषधियोंको एकत्र मिलाकर चावलोंके जलके साथ या सहतके साथ चाटनेसे तृषा, अरुचि, ज्वरातीसार, कामला, संग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, प्रमेह, पाण्डुरोग, सूजन इन सबको दूर करे है। दशमूलके काथमें एक तोले सोंठका चूर्ण डालकर पीनेसे ज्वर, अतीसार, सूजन और संग्रहणीरोग दूर होता है। वायविडंग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाढ, इन्द्रजौ इनके काथमें काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पीनेसे शोथातीसार दूर होता है। चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, चन्दन, सुगंधवाला और इन्द्रजौ इनका काथ पीनेसे शोथातीसार और विशेषकरके ज्वर दूर होता है। चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सुगंधवाला, मोथा, लालचंदन और धानिया इनका काथ बनाकर पीनेसे शोथातीसार, तृषा, दाह और ज्वर दूर होता है ॥ १६० ॥

इति ज्वररोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथातीसाररोगनिदानम् ।

गुर्वतिस्निग्धरूक्षोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः । विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चापि भोजनैः ॥ स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्च मिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः । शोकाद्दुष्टाम्बुमद्यातिपानैः सात्म्यर्तुपर्ययैः ॥ जलाभिरमणैर्वेगविघातैः कृमिदोषतः । नृणां भवत्यतीसारो लक्षणं तस्य वक्ष्यते ॥ १ ॥

भाषा–गुरु (मात्रागुरु, स्वभावगुरु, गुण और पाकमें गुरु), अत्यन्त स्निग्ध, अत्यन्त रूक्ष या अत्यन्त गरम, अत्यन्त स्थूल, अति शीतल वा विरुद्ध (संयोगविरुद्ध, देशविरुद्ध, समयविरुद्ध, मात्राविरुद्ध,), अध्यशन (पहिले दिनका किया हुआ भोजन न पचे उसके ऊपर और भोजन करले), अजीर्ण (खाया हुआ भोजन न पचनेसे अनुचित समयमें जो भोजन किया जाता है), विषम आहार (किसी दिन थोडा किसी दिन बहुत और अयोग्य समयमें जो भोजन किया जाता है) इन सब कारणोंसे तथा स्नेह, वमन और विरेचनादिके अत्यन्त योगसे, अयोग और मिथ्यायोग, विषभक्षण, भय और शोक, दूषित जलपान, अतिशय मद्यपान और स्वभावविपरीत, ऋतुविपरीत और जलक्रीडा करनेसे, मलमूत्रादिके वेगको रोकनेसे तथा कृमिदोषकरके इन सब कारणोंसे अतीसाररोग उत्पन्न होता है ॥ १॥

अतिसाररोगकी संप्राप्ति ।

संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धः शकृन्मिश्रो वायुनाधः प्रणुन्नः । सरत्यतीवातिसारं तमाहुर्व्याधिं घोरं षड्विधं तं वदन्ति ॥ एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ठ आमेन चोक्तः ॥२॥

भाषा–शरीरमें धातु अत्यन्त बढकर अग्निके बलको कमकरके और यही धातु वायुद्वारा अधोदेशमें प्राप्त होकर मलके साथ मिलकर अधिकतर निकलने लगे उसको अतीसाररोग कहते हैं । वह अतीसाररोग वातादि दोषोंसे छः प्रकारका है । जैसे वातज, पित्तज, श्लेष्मज, त्रिदोषज, शोकज और अपक्वान्नरसजा॥ २॥

अतिसारका पूर्वरूप।

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादाऽनिलसन्निरोधाः । विट्संग आध्मानमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥

भाषा-हृदय, नाभि, मलद्वार, उदर, कोख इन सब स्थानोंमें सुई चुभानेकीसी पीडा हो, शरीरमें बेकली, वायुका अवरोध, विष्ठाका संकोच, अफरा और भोजनका न पकना ये सब लक्षण अतीसारके पूर्वमें होते हैं ॥ ३ ॥

वातातिसारके लक्षण ।

अरुणं फेनिलं रूक्षमल्पमल्पं मुहुर्मुहुः ।
सकृदामं सरुक्शब्दं मारुतेनातिसार्यते ॥ ४ ॥

भाषा-वातज अतीसारवाले रोगीके अरुणवर्ण (किंचित् कालेपनसे लाल) झागोंयुक्त, रूखा, कचा ऐसा मल वारंवार थोडा थोडा उतरे और मलद्वारमें पीडा होती है ॥ ४ ॥

पित्तातिसारके लक्षण ।

पित्तात्पीतं हरितं लोहितं वा तृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम् ॥ ५ ॥

भाषा-पित्तज अतिसाररोगमें मल पीले रंगका होता है या हरे रंगका होता है अथवा लालरंगका होता है और मलद्वारमें ज्वलन तथा पाक होता है तथा रोगी पियास और मूर्छासे पीडित हो जाता है ॥ ५ ॥

कफातिसारके लक्षण ।

शुक्लं सान्द्रं सकफं श्लेष्मणा तु विस्रं शीतं हृष्टरोमा मनुष्यः ॥ ६ ॥

भाषा-कफज अतीसारमें मल सफेद रंगका होता है, गाढा होता है, कफ संयुक्त, आमगंधयुक्त और शीतल होता है और रोगीके शरीरमें रोमांच हो आते हैं ॥ ६ ॥

सन्निपातके अतिसारके लक्षण ।

वराहस्नेहमांसाम्बुसदृशं सर्वरूपिणम् ।
कृच्छ्रसाध्यमतीसारं विद्याद्दोषत्रयोद्भवम् ॥ ७ ॥

भाषा-एकसाथ वात, पित्त और कफ कुपित होकर जिस मनुष्यके अतीसार उत्पन्न करते हैं उसकेसब दोषोंके लक्षण मिलते हैं । तथा विशेषकरके सूअरकी चर्बी अथवा मांसके धुले हुए जलकी समान रंगवाला मल होता है । इसको त्रिदोषज अतीसार कहते हैं । यह कष्टसाध्य है ॥ ७ ॥

शोकातिसारके लक्षण ।

तैस्तैर्भावैः शोचतोऽल्पाशनस्य बाष्पोष्मा वै वह्निमाविश्य जन्तोः ।
कोष्ठं गत्वा क्षोभयेत्तस्य रक्तं तच्चाधस्तात् काकणन्ती प्रकाशम् ॥
निर्गन्छेद्वै विड्विविड्वा विमिश्रं निर्गन्धं वा गन्धवद्वातिसारः ॥८॥

भाषा—जो मनुष्य धन और बांधवादिके नाश होनेसे अत्यन्त शोकान्वित होकर अल्प आहार करते हैं उनकी बाष्पोष्मा (नेत्र, नासिका और कंठ आदिका पानी) वायुसे कोठेमें प्राप्त होकर अग्निके साथ मिल जाता है। पश्चात् रोगीके रुधिरको दूषित करता है, ऐसे जब रक्त दूषित हो जाता है तब घुंघचीकी समान लाल रुधिर मलद्वारा होकर विष्ठासे मिला हुआ या केवल रक्तही, निर्गंध वा गंधयुक्त निकलता है ॥ ८ ॥

शोकातिसारके कृच्छ्रसाध्यत्वलक्षण ।

शोकोत्पन्नो दुश्चिकित्स्योऽतिमात्रं रोगो वैद्यैः कष्ट एव प्रदिष्टः॥९॥

भाषा—उसको शोकातिसार कहते हैं। यह दुश्चिकित्स्य है इस कारण वैद्य इसको कष्टसाध्य कहते हैं ॥ ९ ॥

आमातिसारके लक्षण ।

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताः क्षोभयन्तः कोष्ठं दोषा धातुसंघान्मलांश्च ।
नानावर्णं नैकशः सारयन्ति शूलोपेतं षष्ठमेनं वदन्ति ॥ १० ॥

भाषा—अन्नाजीर्णके वशसे कुपित हुए वात, पित्त और कफ विपथगामी होकर कोष्ठ, रसादि धातु और मलको दूषित करके वारंवार जो अनेक प्रकारके मलको बाहर निकालते हैं उसको आमज अतिसार कहते हैं। इससे रोगीके उदरमें अत्यन्त पीडा होती है ॥ १० ॥

आमके लक्षण ।

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तु न्यस्तमप्स्ववसीदति ।
पुरीषं भृशदुर्गन्धि पिच्छिलञ्चामसंज्ञितम् ॥ ११ ॥

भाषा—जो मल पूर्वोक्त दोष और लिंगादियुक्त हो तथा जलमें डालनेसे डूब जाय तथा अतिशय दुर्गंधित और पिच्छिल हो उसको आम या अपक्वमल कहते हैं ॥ ११ ॥

पक्वलक्षण ।

एतान्येव तु लिङ्गानि विपरीतानि यस्य वै ।
लाघवञ्च विशेषेण तस्य पक्वं विनिर्दिशेत् ॥१२ ॥

भाषा—जो मल उससे विपरीत लक्षणोंवाला हो तथा अत्यन्त हलका हो उस मलको वैद्य पक्वमल कहते हैं ॥ १२ ॥

असाध्यलक्षण ।

पक्वजाम्बवसङ्काशं यकृत्पिण्डनिभं तनु । घृततैलवसामज्जवे-

शवारपयो दधि ॥ मांसधावनतोयाभं कृष्णनीलारुणप्रभम् ।
मेचकं स्निग्धकर्बुरं चंद्रकोपगतं घनम् ॥ कुणपं मस्तुलुङ्गाभं
सुगन्धं क्वथितं बहु । तृष्णादाहतमःश्वासहिक्कापार्श्वास्थिशूलि-
नम् ॥ संमूर्च्छारतिसंमोहयुक्तं पक्ववलीगुदम् । प्रलापयुक्तञ्च
भिषग्वर्जयेदतिसारिणम् ॥ असंवृतगुदं क्षीणं दूराध्मातमुपद्रु-
तम् । गुदे पक्के गतोष्माणमतीसारकिणं त्यजेत् ॥ १३ ॥

भाषा–जिस रोगीका पके जामुनकी समान काला, लोहित, साफ और घृत, तेल, चर्बी, मज्जा, वेशवार, दूध, दही और धुले हुए मांसके जलकी समान, कृष्ण, नील, लाल, मेचक, स्निग्ध और अनेक प्रकारके रंगवाला मोरके पूंछकी समान चित्रविचित्रित, भारी, लासकी गंधवाला और मस्तिष्ककी समान भमावाला, उत्तमगंध या दुर्गंधयुक्त अधिकतर मल निकले, तृषा, दाह, अंधेरी आवे, श्वास, हिचकी, पसलियोंमें पीडा, हड्डियोंमें दर्द, इन्द्रियोंमें मोह, सर्व चेष्टाओंमें अनिच्छा और मनमें मोह तथा जिसके मलद्वारकी वली पक जाय और प्रलाप हो इन सब लक्षणोंवाले रोगीको वैद्यगण त्याग देवे । जो रोगी मलद्वार धोनेको असमर्थ हो, बल और मांस जिसका क्षय हो जाय, अत्यन्त अफरा हो, अतीसारके उपद्रवयुक्त, विशेष पक मलद्वारयुक्त हो और शीतल जिसका शरीर पड जाय उसकोभी वैद्य लोग त्याग देवे ॥ १३ ॥

अतिसारके उपद्रव ।

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ।
छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत् ॥ १४ ॥

भाषा–सूजन, पेटमें शूलकी समान पीडा, ज्वर, पियास, श्वास, खांसी, अरुचि, वमन, मूर्छा और हिक्का ये उपद्रव जिस अतिसारमें दीखें उसको वैद्य अवश्य त्याग देवे ॥ १४ ॥

असाध्य लक्षण ।

श्वासशूलपिपासार्त्तं क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ।
विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत् ॥ १५ ॥

भाषा–जो मनुष्य श्वास, शूल और पियाससे पीडित हो, बलमांसहीन और ज्वररोगसे पीडित हो, विशेषकरके वृद्ध रोगीको अतीसार अवश्य नाश कर देता है ॥ १५ ॥

रक्तातिसारलक्षण ।

पित्तकृन्ति यदात्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके ।
तदोपजायतेऽभीक्ष्णं रक्तातीसार उल्वणः ॥ १६ ॥

भाषा–पित्तातिसारवाला रोगी अत्यन्त पित्तकारक द्रव्य भोजन करे तो उसके निश्चय रक्तातीसार रोग उत्पन्न होता है । रक्तातीसारके वातजादि विशेष लक्षण ऊपरोक्त अतीसारके लक्षणकी समान होते हैं ॥ १६ ॥

प्रवाहिकाकी संप्राप्ति ।

वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य ।
प्रवाहतोल्पं बहुशो मलाक्तं प्रवाहिकां तां प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१७॥

भाषा–अहित भोजन और मल त्यागनेके समय अत्यन्त कुन्थनसे अतिशय कुपित हुई वायु संचित हुए कफको अल्पमलके साथ निकाले उसको वैद्य प्रवाहिका रोग कहते हैं । इसको लोकमें आमाशयरोग कहते हैं ॥ १७ ॥

प्रवाहिकाके वातादि भेदकरके लक्षण ।

प्रवाहिका वातकृता सशूला पित्तात् सदाहा सकफा कफाच्च ।
सशोणिता शोणितसंभवा च ताः स्नेहरूक्षप्रभवा मतास्तु ॥
तासामतीसारवदादिशेच्च लिङ्गं क्रमञ्चामविपक्वताञ्च ॥ १८ ॥

भाषा–वातज प्रवाहिकारोगमें मल त्यागनेके समय पेटमें पीडा होती है, पित्तज प्रवाहिकारोगमें मल त्यागनेके समय मलद्वारमें ज्वाला होती है, कफज प्रवाहिकारोगमें कफसंयुक्त मल निकलता है, रक्तज प्रवाहिकारोगमें रुधिर-संयुक्त मल निकलता है, ऊपरोक्त चारों प्रवाहिकाओंमें स्निग्ध पदार्थोंसे कफज, रूक्ष द्रव्योंसे वातज, तीक्ष्ण पदार्थोंसे पित्तज और रक्तज प्रवाहिका उत्पन्न होती है । इसकी चिकित्साका क्रम और पक्वापक्वताका चिन्ह अतीसारकी समान है ॥ १८ ॥

अतिसारनिवृत्तिके लक्षण ।

यस्योच्चारं विना मूत्रं सम्यग्वायुश्च गच्छति ।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य स्थितस्तस्योदरामयः ॥ १९ ॥

भाषा–जिस मनुष्यके मलसे भिन्न मूत्र अच्छे प्रकारसे उतरे, उत्तम रीतिसे वायु निकले, जिसकी अग्नि दीपन हो जाय, कोठेमें हलकापन मालूम हो वह मनुष्य अतीसारसे मुक्त हुआ जानना ॥ १९ ॥

इति अतिसाररोगनिदानम् ।

अथातिसाररोगचिकित्सा ।

आमपक्कक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः ।
अतः सर्वातिसारेषु ज्ञेयं पक्कामलक्षणम् ॥ २० ॥

भाषा–प्रथम तो अतीसारमें आम और पक्कके लक्षण जानने चाहिये । कारण यह है कि यदि आमातीसारमें पक्कातीसारकी क्रिया (ग्राही औषधि) की जावे अथवा पक्कातीसारमें आमरहित क्रिया की जावे तो महाअनिष्ट होता है । इस कारण प्रथम आम और पक्कको जानकर पश्चात् चिकित्सा करे ॥ २० ॥

जातीफलरसः ।

पारदाभ्रकसिन्दूरं गन्धं जातीफलं समम् । कुटजस्य फलं चैव धूर्तबीजानि टङ्कणम् ॥ व्योषं मुस्ताभया चैव चूतबीजं तथैव च । बिल्वकं सर्जबीजं च दाडिमीवल्कजीरकम् ॥ एतानि समभागानि निःक्षिपेत् खल्वमध्यतः । विजयास्वरसेनैव मर्दयेत् श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ गुंजाफलप्रमाणां तु वटिकां कारयेद्भिषक् । एकां कुटजमूलत्वक्कषायेण प्रयोजयेत् ॥ आमातिसारं हरति कुरुते वह्निदीपनम् । मधुना बिल्वशुण्ठेन रक्तग्रहणिकां जयेत् ॥ शुंठीधान्यकयोगेन चातिसारं निहन्त्यसौ । जातीफलरसो ह्येष ग्रहणीगदहारकः ॥ २१ ॥

भाषा–पारा, अभ्रक, रससिंदूर, गंधक, जायफल, इंद्रजौ, धतूरेके बीज, सुहागेकी खीलें, त्रिकुटा, नागरमोथा, हरड, आमकी गुठली, बेलकी गिरी, तालके बीज, अनारकी छाल और जीरा ये सब औषधि समान भाग लेकर भांगके पत्तोंके रसमें खरलकर एक रत्तीकी बराबर गोली बनावे। इस गोलीको कूडेकी छालके काढेके साथ सेवन करनेसे आमातीसार दूर होता है और जठराग्नि दीपन होती है और इसको मधु और सोंठके साथ देनेसे रक्तग्रहणीरोग नष्ट होता है, तथा धनिये और सोंठके काढेके साथ अतिसारको दूर करता है । यह जातीफलरस संग्रहणीरोगको दूर करनेवाला है ॥ २१ ॥

अभयनृसिंहो रसः ।

दरदं च विषं व्योषं जीरकं टङ्कणं समम् । गन्धकं चाभ्रकश्चैव

भागैकं शुद्धसूतकम् ॥ माण्डूकं सर्वतुल्यं स्यान्मर्दयेन्निम्बुकद्रवैः । एकैकं भक्षयेच्चानु जीरकं मधुना सह ॥ त्रिदोषोत्थमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् । सर्वरूपमतीसारं संग्रहं ग्रहणीं जयेत् ॥ रसोऽभयनृसिंहोऽयमतीसारे सुपूजितः ॥ २२ ॥

भाषा-सिंगरफ, विष, त्रिकुटा, जीरा, सुहागेकी खीलें, गंधक, अभ्रक और पारा ये सब समान भाग लेवे तथा सबकी समान अफीम लेवे, फिर इन सबको एकत्र कर नींबूके रसमें खरल करे। एक गुंजाकी बराबर गोली बनावे इस गोलीको जीरा और सहतके साथ सेवन करे तो सर्व प्रकारके अतिसार और संग्रहणीरोग दूर हो जाते हैं । यह अभयनृसिंहरस अतिसाररोगमें अत्यंत हितकारी है ॥ २२ ॥

कुटजादिः ।

कुटजं दाडिमं मुस्तं धातकी बिल्वबालकम् । लोध्रचंदनपाठाश्च कषायं मधुना पिबेत् ॥ सामे शूले च रक्ते च पिच्छास्रावे च शस्यते । कुटजादिरिति ख्यातः सर्वातीसारनाशनः ॥ २३ ॥

भाषा-कूडेकी छाल, अनार, नागरमोथा, धायके फूल, बेलगिरी, सुगंधवाला, लोध, लाल चंदन और पाढ इन सब औषधियोंको दो दो तोले लेकर ३२ तोले जलमें डालकर काढा करे। जब जलकर आठ तोले शेष रह जाय तो उतार लेवे, फिर उसमें छः मासे मधु मिलाकर पीवे। इससे आमशूल, रक्तस्राव और मलकी पिच्छलता दूर होती है । यह अतिसाररोगकी अत्यंत उत्कृष्ट औषधि है ॥ २३ ॥

वत्सकादिः ।

सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः । सामे सशूले सहशोणिते च चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे ॥ २४ ॥

भाषा-इंद्रजौ, अतीस, बेलकी गिरी, सुगंधवाला और नागरमोथा इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर काढा करे । इस काढेको सेवन करनेसे आम, शूल और रक्तस्राव नष्ट होता है और यह बहुत पुराने अतिसाररोगमें अत्यंत हितकारी है ॥ २४ ॥

नारायणचूर्णम् ।

गुडूचीं वृद्धदारुं च कुटजस्य फलं तथा । बिल्वं चातिविषां चैव भृङ्गराजं च नागरम् ॥ शक्राशनस्य चूर्णं च सर्वमेकत्र मेलयेत् । चूर्णमेतत्समं ग्राह्यं कुटजस्य त्वचोऽपि च ॥ गुडेन

मधुना वापि लेहयेद्भिषजां वरः । शोथं रक्तमतीसारं चिरजं दुर्जयं तथा ॥ ज्वरं तृष्णां च कासं च पाण्डुरोगं हलीमकम् । मन्दानलं प्रमेहं च गुदजं च विनाशयेत् ॥ एतन्नारायणं चूर्णं श्रीनारायणभाषितम् ॥ २५ ॥

भाषा–गिलोय, विधायरेके बीज, इंद्रजौ, बेलगिरी, अतीस, भांगरा, सोंठ और भांगके पत्ते इन सब औषधियोंका चूर्ण कर लेवे और सब चूर्णकी समान कूडेकी छाल लेवे फिर सबको मिलाकर गुड और सहतके साथ सेवन करनेसे रक्तातीसार, सूजन, जीर्णज्वर, तृषा, खांसी, पाण्डुरोग, हलीमक, मंदाग्नि, प्रमेह और गुदजरोग नाश होता है । यह नारायणचूर्ण श्रीनारायणने कहा है ॥ २५ ॥

कुटजपुटपाकः ।

स्निग्धं घनं कुटजवल्कमजन्तुजग्धमादाय तत्क्षणमतीव च पोथयित्वा । जम्बूपलाशपुटतंडुलतोयसिक्तं बन्धं कुशेन च बहिर्घनपंकलिप्तम् ॥ सुस्विन्नमेतदवपीड्य रसं गृहीत्वा क्षौद्रेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात् । कृष्णात्रिपुत्रमतपूजित एष योगः सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा ॥ स्वरसस्य गुरुत्वेन पुटपाके पलं पिबेत् । पुटपाकस्य पाकोऽयं बहिरारुणवर्णता ॥ २६ ॥

भाषा–जो कीडे आदिकी खाई हुई न हो, चिकनी और वजनदार ऐसी कूडेकी छाल लेवे फिर उसको अच्छे प्रकारसे कूटकर चावलोंके जलमें भिगोयके जामुनके पत्तोंसे वेष्टित और कुशासे बांधकर ऊपरसे मिट्टीका लेपकर पुटपाक करे । बाहरका लेप जब लाल हो जाय तब आगमेंसे निकालकर रस निचोड लेवे । पश्चात् इसमें थोडासा सहत मिलाकर दो तोले प्रमाण रोगीको पिलावे, इससे सर्व प्रकारके अतिसार दूर होते हैं ॥ २६ ॥

कुटजलेहः ।

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयार्मणे पचेत् । क्वाथे पादावशेषेऽस्मिन् लेहं पूते पुनः पचेत् ॥ सौवर्चलयवक्षारबिडसैन्धवपिप्पलीः । धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णं दत्वा पलद्वयम् ॥ लिह्याद्बदरमात्रन्तु शीतं क्षौद्रेण संयुतम् । पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥ दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् । चूर्णं मिलि-

त्वा पलद्वयं ग्राह्यं घनीभूते प्रक्षेपः । बदरमात्रमष्टमाषकमात्रं-मधुना खाद्यमिति गोपालदासभानुदासप्रभृतयः ॥ २७॥

भाषा-साडे बारह सेर कूडेके जडकी छाल लेकर चौसठ सेर जलमें पकावे जब १६ सेर शेष रह जाय तब उतार लेय, फिर इस क्वाथको दुर्वार अग्निसे पकावे जब पकते पकते लेहकी समान गाढा हो जाय तब कालानोन, जवाखार, विरिया संचरनोन, सैंधानोन, पीपल, धायके फूल, इंद्रजौ और जीरा इनका मिला हुआ चूर्ण १६ तोले डाल आलोडन कर उतार लेवे। मात्रा १ तोला किंचित् सहतके साथ चाटे इससे सर्व प्रकारके अतीसार, संग्रहणी और प्रवाहिका रोग दूर होता है ॥ २७ ॥

कुटजाष्टकः ।

तुलामथार्द्रां गिरिमल्लिकायाः संक्षुद्य पक्त्वा रसमाददीत । तस्मिन् सुपूते पलसंमितानि श्लक्ष्णानि पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥ पाठां समंगातिविषां समुस्तां बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम् । प्रक्षिप्य भूयो विपचेत्तु तावद् दर्वीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ॥ पीतस्त्वसौ कालविदा जनेन मण्डेन वाजपयसाथ वापि। निहन्ति सर्वं त्वतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकं वा॥ दोषं ग्रहण्या विविधं च रक्तं पित्तं तथार्शांसि सशोणितानि । असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यतुला मता । मनाक् दर्वीप्रलेपावस्थायां शाल्मल्यादिचूर्णं प्रक्षेप्यं शाल्मल्यादीनां प्रत्येकं पलमानत्वम् । शाल्मलं शाल्मलिर्निर्यासः । अग्निमान्द्ये कोष्णजलेन शृतशीतेन इत्यन्ये । बस्तिदुष्टौ अन्नमण्डेन । रक्ते छागदुग्धेन इति भानुदासः ॥ २८ ॥

भाषा-कूडेकी कच्ची छाल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर इस क्वाथको छानकर फिर दूसरीवार पकावे जब लेहकी समान गाढा हो जाय तब निम्नलिखित औषधि डालकर उतार लेवे, वह औषधि यह हैं। मोचरस, पाढ, लज्जालु, अतीस, नागरमोथा, बेलगिरी और धायके फूल इन प्रत्येक औषधिका चूरन ८ तोले करके डाल देवे। जब करछीसे चिपकने लगे तब उतार लेवे। देश, काल और अवस्थाको विचारकर इसका सेवन करे इसको मांड अथवा बकरीके दूधके

साथ पीवे। यह सर्व प्रकारके घोर अतीसार, कृष्ण, सफेद, लाल और पीले रंगका अतीसार, अनेक प्रकारकी संग्रहणी, विविध प्रकारका रक्तपित्त, खूनी बवासीर और असाध्य प्रदररोगको दूर करे है ॥ २८ ॥

अमृतार्णवः ।

हिङ्गुलोत्थो रसो लोहं गन्धकं टङ्कणं शठी। धान्यकं वालकं मुस्तं पाठा जीरं घुणप्रिया ॥ प्रत्येकं तोलकं चूर्णं छागीक्षीरेण पेषितम्। माषैका वटिका कार्या रसोऽयममृतार्णवः ॥ वटिकां भक्षयेत् प्रातर्गहनानन्दभाविताम्। धान्यजीरकचूर्णेन विजया-शालबीजतः ॥ मधुना छागदुग्धेन मण्डेन शीतवारिणा। कदलीमोचकरसैः कंटकारीद्रवेण वा ॥ अतीसारं जयेदुग्रमेकजं द्वन्द्वजं तथा। दोषत्रयसमुद्भूतमुपसर्गसमन्वितम् ॥ शूलघ्नो वह्निजननो ग्रहण्यर्शोविकारनुत्। अम्लपित्तप्रशमनः कासघ्नो गुल्मनाशनः ॥ २९ ॥

भाषा-सिंगरफसे निकाला हुआ पारा, लोहा, गंधक, सुहागेकी खील, कचूर, धनिया, सुगंधवाला, नागरमोथा, पाढ, जीरा और अतीस इन प्रत्येकका चूर्ण १ तोला लेकर बकरीके दूधमें खरल करके एक एक मासेकी गोली बना लेवे एक गोली प्रतिदिन धनिया, जीरा, भांग, शालके बीजोंका चूर्ण, सहत, बकरीका दूध, मांड, शीतल जल, केलेकी जडका स्वरस, मोचरस अथवा कटेरीके रसके साथ प्रातःकाल सेवन करे। यह सर्व प्रकारके अतीसार, शूल, संग्रहणी, बवासीर, अम्लपित्त, खांसी और गुल्मको नष्ट करे तथा अग्निको दीपन करे है ॥ २९ ॥

अतिसारवारणो रसः ।

दरदं कृतकर्पूरं मुस्तेन्द्रयवसंयुतम्।
सर्वातीसारशमनं खाखसीक्षीरभावितम् ॥ ३० ॥

भाषा-सिंगरफ, भीमसेनी कपूर, नागरमोथा और इन्द्रजौ इन सबको समान भाग लेकर अफीमके जलमें भावना देकर दो दो रत्तीकी गोली बना लेवे एक गोली खाय तौ सर्व प्रकारके अतीसार दूर होवें ॥ ३० ॥

गुडबिल्वम् ।

गुडेन खादितं बिल्वं रक्तातीसारनाशनम्।
आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगविनाशनम् ॥ ३१ ॥

भाषा-बेलको गुडमें मिलाकर खानेसे रक्तातीसार दूर होता है । तथा आमशूल, विबन्ध और कुक्षिरोग दूर होता है ॥ ३१ ॥

संशमनयोगः ।

वटरोहाङ्कुरो रुद्र तण्डुलोदकघर्षितः । पीतः सतक्रोऽतीसारं क्षयं नयति शंकर ॥ अंकोठमूलं कर्षार्द्धं पिष्टं तण्डुलवारिणा । सर्वातिसारं ग्रहणीं पीतं हरति भूपते ॥ पिप्पलीं पिप्पलीमूलं मरिचं तगरं वचाम् । देवदारु रसं पाठां क्षीरेण सह पेषयेत् ॥ अनेनैव प्रयोगेन अतीसारो विनश्यति । शर्करामधुसंयुक्ता पीता तण्डुलवारिणा ॥ रक्तातीसारशमनं भवतीति वृषध्वज । बिल्वचूतास्थिनिर्यूहः पीतः सक्षौद्रशर्करः ॥ निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ ३२ ॥

भाषा-वडके अंकुरोंको चावलोंके जलमें पीसकर मठेके साथ पीनेसे अतीसार रोग दूर होता है । छः मासे अंकोलकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर पीनेसे सर्व प्रकारके अतीसार और संग्रहणी रोग दूर होता है । पीपल, पीपलामूल, काली मिरच, तगर, वच, देवदारु, मोचरस, पाढ इन सबको दूधमें पीसकर पीनेसे सर्व प्रकारके अतीसार दूर होते हैं । चावलोंके जलमें शर्करा और सहत डालकर पीनेसे रक्तातीसार दूर होता है । बेलगिरी और आमकी गुठली इनके निर्यूहमें सहत और मिश्री डालकर पीनेसे वमन और अतीसार रोग दूर होता है ॥ ३२ ॥

इति अतीसाररोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ ग्रहणीरोगनिदानम् ।

ग्रहणीकी संप्राप्ति ।

अतिसारे निवृत्तेऽपि मन्दाग्नेरहिताशिनः ।
भूयः संदूषितो वह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत् ॥ १ ॥

भाषा-जिन मनुष्योंके अतीसाररोग शांत हो गया है और अग्नि दीपन नहीं हुई है या अग्निका बल अच्छे प्रकारसे प्रगट नहीं हुआ है, उन मनुष्योंके अहित-

कारक सेवन करनेसे अग्नि अत्यन्त मन्द होकर ग्रहणी नामक नाडीको दूषित करे है ॥ १ ॥

ग्रहणीरोगके सामान्य लक्षण ।

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः । सा दुष्टा बहुशो भुक्त-मामभेव विमुंचति ॥ पक्वं वा सरुजं पूति मुहुर्बद्धं मुहुर्द्रवम् । ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदो जनाः ॥ २ ॥

भाषा-अत्यन्त बढे हुए वात, पित्त, कफ तथा येही तीनों दोष एकत्र मिले हुए ग्रहणी नाडीको अत्यन्त दूषित करके संग्रहणीरोगको उत्पन्न करते हैं । इस रोगमें अधिकतर पक्क या अपक्क भोजन किया हुआ द्रव्य वारंवार मलके द्वारा निकलता है । यह मल दुर्गंधित, पतला या गाढा होता है तथा दस्त होनेके समय पेटमें पीडा होती है । इन सब लक्षणोंवाले रोगको संग्रहणीरोग कहते हैं ॥ २ ॥

ग्रहणीरोगके पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं तु तस्येदं तृष्णालस्यं बलक्षयः ।
विदाहोऽन्नस्य पाकश्च चिरात्कायस्य गौरवम् ॥ ३ ॥

भाषा-संग्रहणीके उत्पन्न होनेसे पहिले प्यास, आलस्य, विदग्धाजीर्ण, शरीरमें दुर्बलता और रूक्षता होती है और भोजन किया हुआ द्रव्य बहुत देरमें पचता है ॥ ३ ॥

वातज ग्रहणीका निदान ।

कटुतिक्तकषायातिरूक्षसंदुष्टभोजनैः । प्रमितानशनात्यध्ववेग-निग्रहमैथुनैः ॥ मारुतः कुपितो वह्निं संछाद्य कुरुते गदान् ॥ ४ ॥

भाषा-जो मनुष्य चर्परे, कडवे, कषैले, अत्यन्त रूखे और संयोगविरुद्ध द्रव्य भोजन करता है तथा अल्पभोजन अथवा उपवास, अधिक मलमूत्रादिका वेग और अधिक मैथुन करता है उनकी कुपित हुई वायु कोष्ठाग्निको दूषित करके संग्रहणी रोगको उत्पन्न करे है ॥ ४ ॥

वातज संग्रहणीका पूर्वरूप ।

तस्यान्नं पच्यते दुःखं शुक्तपाकं खराङ्गता । कंठास्यशोषः क्षुत्तृ-ष्णा तिमिरं कर्णयोः स्वनः ॥ पार्श्वोरुवंक्षणग्रीवारुगभीक्ष्णं विषू-चिका । हृत्पीडा काश्यंदौर्बल्यं वैरस्यं परिकीर्तिता ॥ गृद्धिः स-र्वरसानां च मनसः सदनं तथा । जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते

स्वास्थ्यमुपैति च ॥ सा वातगुल्महृद्रोगप्लीहाशंकी च मानवः । चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् ॥ पुनः पुनः सृजेद्वर्चः कासश्वासार्दितोऽनिलात् ॥ ५ ॥

भाषा-इस संग्रहणीरोगवाले रोगीके अन्न अत्यन्त कठिनतासे पचता है या अम्लपाक होता है, भोजन किये हुए द्रव्यकी जीर्ण अवस्थामें अफरा हो तथा शरीरमें कर्कशता, कंठ और मुखशोष, अन्नमें अरुचि, प्यास, दृष्टि शक्तिकी हानि या अन्धकारदर्शन, कानोंमें अनेक प्रकारके शब्दोंका होना तथा निरंतर पसली, घुटनी, छाती और गरदनमें पीडा होती है । ऊर्ध्व और अधोदेशमें निरन्तर मल चलता रहता है । जैसे एक कलशेका जल दूसरे कलसेमें लौटा जाता है, इसके सिवाय हृदयमें पीडा, शरीरमें कृशता तथा दुर्बलता, मलके द्वारमें कतरनीकी समान पीडा, सर्व रसोंवाले पदार्थोंके खानेकी इच्छा, मनमें दुःख । इस अवस्थामें रोगी भोजन करे तो आराम मालूम हो । इस अवस्थामें वातगुल्म, हृदयरोग और प्लीहा उत्पन्न होती है । बहुत दिनमें, कभी पतला, कभी सूखा, शब्द और रागोंयुक्त वारंवार थोडा थोडा पतला दस्त होता है । यह रोगी खांसी और श्वाससे पीडित होता है ॥५॥

पित्तग्रहणीके लक्षण ।

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्बणम् । आप्लावयद्धन्त्यनलं जलं तप्तमिवानलम् ॥ सोऽजीर्णं नीलपीताभं पीताभः सार्यते द्रवम् । प्रत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दितः ॥ ६ ॥

भाषा-चरपरे द्रव्य, अजीर्णकारक द्रव्य और विदाही तथा अम्लद्रव्य, क्षारके जलसे बनाये हुए व्यंजनादि और जवाखारादि सेवन करनेसे कुपित हुआ पित्त गरम जलकी समान कोष्ठकी अग्निको नष्ट करे है इस संग्रहणी रोगवाला मनुष्य पीली कान्तिवाला होता है, नीले और पीले रंगका अजीर्ण द्रव्य मलत्याग करता है और उसके दुर्गन्धित खट्टी डकारें आती है तथा इस मनुष्यके हृदय और कोठेमें जलन पडती है, अरुचि और प्याससे रोगी पीडित होता है ॥ ६ ॥

कफसंग्रहणीका निदान ।

गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिभोजनात् । भुक्तमात्रस्य च स्वप्नादत्यग्निं कुपितं कफः ॥ तस्यान्नं पच्यते दुःखं हृल्लासछर्द्यरोचकाः । आस्योपदेहमाधुर्यं कासष्ठीवनपीनसाः ॥ हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु । दुष्टो मधुर उद्गारः सदनं

स्त्रीष्वहर्षणम् ॥ भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् । अकृश-स्यापि दौर्बल्यमालस्यं च कफात्मके ॥ ७ ॥

भाषा-गुरुपाकी द्रव्य और अत्यन्त स्निग्ध द्रव्य तथा शीतल पिच्छिल और मधुरादि द्रव्योंका भोजन एवं अतिशय भोजन, दिनमें भोजन करके सोना इन सब कारणोंसे कुपित हुआ कफ कोष्ठाग्निको नष्ट करता है। उसके खाया हुआ भोजन अत्यन्त कष्टसे पकता है। तथा उबकाई, वमन, अरुचि, मुखमें कफकी लिप्तता और मधुरता, खांसीके सबब मुखमें कुछ लारका निकलना और नासास्राव हो, हृदयमें बोल मालूम हो, उदरमें विबन्ध और भारीपन मालूम हो, दुष्ट या मधुर डकार आवे, शरीरमें अवसन्नता और स्त्रीसंसर्गमें अनिच्छा होती है। अपक्व और कफसे मिला हुआ, पतला दस्त हो यह रोगी आलस और दुर्बल होनेपरभी कृश नहीं होता है। कफज संग्रहणीमें ये सब लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

त्रिदोषकी संग्रहणीके लक्षण ।

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिङ्गसमागमे । त्रिदोषं निर्दिशेदेवं तेषां वक्ष्यामि भेषजम् ॥ अन्त्रकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं तथा । द्रवं घनं सितं स्निग्धं सकटीवेदनं शकृत् ॥ आमं बहु सपैच्छिल्यं सशब्दं मन्दवेदनम् । पक्षान्मासाद्दशाहाद्वा नित्यं वाप्यथ मुंचति ॥ दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शान्तिं व्रजेच्च सा । दुर्विज्ञेया दुश्चिकित्स्या चिरकालानुबन्धिनी ॥ सा भवेदामवातेन संग्रहग्रहणी मता ॥ ८ ॥

भाषा-वातज, पित्तज और कफज इन तीनों दोषोंको मिलकर जो ग्रहणी रोग होता है उसमें तीनों प्रकारके संग्रहणीके लक्षण होते हैं। जिस ग्रहणीरोगमें रोगी आलस्य, दुर्बलता और क्लान्तियुक्त हो तथा पेट और कमरमें पीड़ा हो, पेटमें गुड़गुड़ शब्द हो और स्निग्ध तथा पिच्छिल, सफेद, गाढ़ा वा पतला दस्त हो वह दस्त जो एक महीने वा एक पक्ष अथवा १२ दिन या दश दिनके अंतर या रोज होवे तौ उसको संग्रहणी रोग कहते हैं। यह रोग आम और वायुसे उत्पन्न होता है, परन्तु दिनमें इस रोगकी वृद्धि और रात्रिमें शांति होती है। यह रोग दुर्विज्ञेय और दुश्चिकित्स्य है इस कारण अधिक समयतक रहता है ॥ ८ ॥

इति संग्रहणीरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ संग्रहणीरोगचिकित्सा।

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत्। लंघनैर्दीपनीयैश्च सदातीसारभेषजैः॥ दोषं सामं निरामं च विद्यात्तत्रातिसारवत्। अतीसारोक्तविधिना तस्यामं च विपाचयेत्॥पेयादिपट्टलघ्वन्नपंचकोलादिभिर्युतम्॥दीपनानि च तक्रं च ग्रहण्यां योजयेद्भिषक्॥ कपित्थविल्वचांगेरीतक्रदाडिमसाधिता। यवागूः पाचयत्यामं शकृत्संवर्त्तयत्यपि॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च। व्योषं हिंग्वजमोदां च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत्॥ गुटिका मातुलुंगस्य दाडिमस्य रसेन वा। कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम्॥ ९॥

भाषा—जो दोष ग्रहणीके आधीन अर्थात् ग्रहणीमें पहुँच जाय तौ अजीर्णकी समान तथा लंघन, दीपन और सदैव अतीसारमें कही हुई औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करे। एवं अतीसारकी समान दोषोंको आमसहित या निराम समझना। जो दोष आमसंयुक्त होय तो उनको अतीसारोक्त विधिसे पचावे और पेयादि हलके अन्न तथा पंचकोलके द्वारा पाचन देवे। इस रोगमें अग्निको दीपन करनेवाले पदार्थ तक्र आदि देने चाहिये। कैथ, बेल, चूका, मट्ठा और अनारदाना इनके द्वारा सिद्ध की हुई यवागू आमको पचाती है तथा मलको गाढा करे है। चीता, पीपलामूल, जवाखार, सज्जी, पांचों नोन, त्रिकुटा, हिंग, अजमोद और चव्य इन सबको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर बिजौरे नीबूके रसमें अथवा खट्टे अनारके रसमें गोलियां बनाकर सेवन करे। यह गोली आमको पचाती है तथा अग्निको दीपन करे है॥९॥

तक्रसेवनम्।

ग्रहणीरोगिणां तक्रं संग्राहि लघु दीपनम्। सेवनीयं सदा गव्यं त्रिदोषशमनं हितम्॥ दुःसाध्यो ग्रहणीदोषो भेषजैर्नैव शाम्यति। सहस्रशोऽपि विहितैर्विना तक्रस्य सेवनात्॥ यथा तृणचयं वह्निस्तमांसि सविता यथा। निहन्ति ग्रहणीरोगं तथा तक्रस्य सेवनम्॥ संग्राह्या धेनवः श्रेष्ठास्तक्रपानाय रोगिणाम्। तासां

पयस्तत्र गुणा जायन्ते वर्णभेदतः ॥ पीताया मारुतं हन्ति श्वेतायाः पित्तजान् गदान् । रक्ताया गोः कफं हंति कृष्णाया गोस्त्रिदोषजित् ॥ अरण्ये नारयेद्धेनुं नातितृणलतान्विते । पीतोदकाभा विस्रम्भात् मंदं मंदं प्रचारयेत् ॥ तासां दुग्धं परिग्राह्यं तक्रार्थं भिषजां वरैः । दुग्धमक्वथितं वाते पित्ते त्वीषत्कृतं हितम् ॥ कफे त्रिदोषजे रोगे पादोनक्वथितं शृतम् । तदीषदम्लसंयोगात् कठिनं दधि शस्यते ॥ तदल्पजलसंयुक्तं मथनं मथितं भवेत् । तक्रमुद्धृतसारन्तु शुंठीचूर्णयुतं पिबेत् ॥ शनैः शनैर्हरेदन्नं तक्रन्तु परिवर्द्धयेत् । तक्रमेव यथाहारो भवेदन्नविवर्जितः॥तक्रं सात्म्यं यथा कुर्यान्नैवान्नं तत्र भक्षयेत्। बुभुक्षायां पिपासायां पिबेत्तक्रं सनागरम् ॥ श्रमं न कुर्य्याद्बहु-शो न कुर्याद्बहु भाषणम् । न कुर्यान्मैथुनं तक्रपाने क्रोधं विवर्ज-येत् ॥ एवं यः सेवते तक्रं ग्रहणी तस्य नश्यति । शीघ्रमेव न सन्देहः श्रीर्यथा द्यूतकारिणः॥ प्रशान्ते ग्रहणीरोगे अन्नं गृह्णाति योगतः । अन्नत्यागविधानेन गृहीयाच्च शनैः शनैः ॥ ग्रहणी-रोगिणां तक्रं हितं दोषत्रयापहम् । कालकूटविषं साक्षादन्यथा परिसेवितम् ॥ तस्माद्यत्नेन संसेव्यं तक्रं संग्रहणीगदे । शस्तं नातः परं किंचित् ग्रहणीरोगशान्तये ॥ न तक्रसेवी व्यथते कदाचिन्न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगाः । यथा सुराणाममृतं सुखाय तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः ॥ १० ॥

भाषा–संग्रहणीरोगमें तक्रका सेवन मलरोधक, हलका और अग्निको दीपन करे है इस कारण संग्रहणीरोगियोंको सदैव त्रिदोषनाशक गायका तक्र (मट्ठा) सेवन करना चाहिये । संग्रहणीरोग कष्टसाध्य है, सिवाय एक तक्रके हजारों औषधियोंसेभी शांत नहीं होता, इस कारण संग्रहणीरोगमें बलानुसार सदैव तक्र-पान करे । जिस प्रकार तृणोंके समूहको अग्नि भस्म कर देती है तथा जिस प्रकार अंधकारके समूहको सूर्य नष्ट कर देता है, उसी प्रकार संग्रहणीरोगको तक्रक

सेवन बहुत शीघ्र नष्ट कर देता है। संग्रहणीरोगवाले मनुष्योंको तक्र पीनेके लिये उत्तम उत्तम गायोंको संग्रह करे। उन गायोंके दूधके गुण उनके वर्णके भेदसे जानने। वहां पीली गायका दूध वातनाशक, सफेद गायका दूध पित्तनाशक, लाल गायका दूध कफनाशक और काली गायका दूध त्रिदोषनाशक है। उन गायोंको जहां बहुतसे तृण और लता न हों, ऐसे वनमें चरावे तथा उत्तम निर्मल सरोवरका जल पिलावे और मंद मंद विचरण करावे। ऐसी गायोंका दूध तक्रके लिये वैद्य ग्रहण करे। कचा दूध वात और पित्तरोगमें हितकारी है। कफरोग और त्रिदोषज रोगोंमें एक पादहीन अर्थात् सेरभरका तीन पाव दूध पीना चाहिये। उस उत्तम औटाये हुए दूधमें किंचित् खटाईके योगसे गाढा दही जमावे जब अच्छे प्रकारसे दही जम जाय तब उसको उत्तम रीतिसे रईसे मथकर घी अलग कर ले और तक्र (मट्ठा-छाछ) अलग कर ले फिर उस मट्ठेमें सोंठका चूर्ण डालकर पीवे इसपर शनैः शनैः क्रमक्रमसे अन्नको कम कम करता जाय और मट्ठेको बढाता जाय, इस प्रकार क्रमक्रमसे अन्नको सर्वथा त्याग देवे और केवल मट्ठाही पीवे, अर्थात् जब तक्र भले प्रकारसे माफिक आ जाय तब अन्नको कुल त्याग देवे। जब जब भूख और पियास लगे, तब तब सोंठका चूर्ण डालकर तक्र (मट्ठा) पीवे। इसपर बहुत परिश्रम और बहुत भाषण न करे तथा मैथुन और क्रोध यहभी त्याग देवे। इस प्रकार जो तक्रका सेवन करता है उसकी शीघ्रही निःसंदेह संग्रहणी नष्ट हो जाती है। जिस प्रकार जुवारी मनुष्योंकी लक्ष्मी नष्ट हो जाती है। जब संग्रहणीरोग शांत हो जाय फिर क्रमक्रमसे थोडा थोडा अन्नको ग्रहण करे, जिस प्रकार अन्नको पहिले क्रमक्रमसे घटाया है, उसी प्रकार क्रमक्रमसे बढाकर पूर्ण कर लेवे। संग्रहणीरोगवाले मनुष्योंको तक्रका सेवन त्रिदोषनाशक है। इसके विपरीत अर्थात् अन्यविधिसे तक्रका सेवन अथवा तक्रके सिवाय अन्य औषधियोंका सेवन साक्षात् कालकूटविषको भक्षण करना है। इस कारण विधिपूर्वक संग्रहणीरोगमें तक्रको सेवन करे, तक्रके सिवाय संग्रहणीरोगको शांत करनेवाली अन्य औषधि नहीं है। तक्रके सेवन करनेवाले मनुष्य कदापि रोगी नहीं होते तथा जो रोग तक्रके द्वारा जलाये गये हैं, फिर वे कदापि उत्पन्न नहीं होते। जिस प्रकार स्वर्गमें देवताओंके लिये अमृत सुखकारी है, उसी प्रकार इस पृथ्वीमें मनुष्योंके लिये तक्र हितकारी है ॥ १० ॥

पिप्पल्यादिचूर्णम्।

पिप्पली बृहती व्याघ्री यवक्षारकलिंगकाः। चित्रकं सारिवा पाठा शठी लवणपंचकम् ॥ तच्चूर्णं पाययेद्दध्ना सुरयोष्णांभसापि वा। मारुतग्रहणीदोषे शमनं परमं मतम् ॥ ११ ॥

भाषा–पीपल, कटाई, कटेरी, जवाखार, इंद्रजौ, चीता, अनन्तमूल, पाढा, कचूर और पांचों नोन इनको एकत्र पीसकर गायके दहीके साथ अथवा सुराके साथ अथवा गरम जलके साथ सेवन करे तो वातज संग्रहणीरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

चित्रकादिचूर्णम् ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च । व्योषं हिंग्वजमोदां च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ गुटिका मातुलुंगस्य दाडिमस्य रसेन वा। कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम्॥सौवर्चलं सैन्धवं च विडमौद्भिदमेव च। सामुद्रेण समं पंचलवणान्यत्र योजयेत्॥१२॥

भाषा–चीता, पीपलामूल, जवाखार, सज्जी, पांचों नोन, त्रिकुटा, हींग, अजमोद और चव्य इनको एकत्र पीसकर बिजौरे नीबूके रसमें अथवा अनारके रसमें गोली बना लेवे । यह गोली आमको पचाती है, अग्निको दीपन करे है और वातको नष्ट करे है । काला नोन, सैंधानोन, बिरिया संचरनोन, खारी नोन और सामुद्रनोन इन सबको पंचलवण कहते हैं इसमें यह सब समानभाग लेने चाहिये ॥ १२ ॥

रसांजनादिचूर्णम् ।

रसांजनमतिविषा वत्सकस्य फलत्वचम्।नागरं धातकी चैव सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना॥पित्तग्रहणिदोषार्शोरक्तपित्तातिसारनुत्॥१३॥

भाषा–रसौन, अतीस, इंद्रजौ, कुडेकी छाल, सोंठ और धायके फूल इन सबको एकत्र पीसकर सहत अथवा चावलोंके जलके साथ सेवन करनेसे पित्तज संग्रहणी, बवासीर, रक्तपित्त और अतीसार दूर होते हैं ॥ १३ ॥

नागराद्यं चूर्णम् ।

नागरातिविषा मुस्तं धातकी सरसाञ्जनम् । वत्सकत्वक्फलं बिल्वं पाठा तिक्तकरोहिणी ॥ पिबेत्समांशं तच्चूर्णं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना । पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥ अर्शांस्यथ गुदे शूलं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् । नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ॥ शुण्ठी मुस्तं विडङ्गं च सुरातकोष्णवारिणा । श्लेष्मिकं ग्रहणीदोषं पीतं हन्त्यग्निवर्द्धनम् ॥ समूलां पिप्पलीक्षारौ द्वौ पंचलवणानि च । मातुलुंगाभया रास्ना शठी मरिचनागरम् ॥

कृत्वा समांशं तच्चूर्णं पिबेत्प्रातः सुखाम्बुना। श्लैष्मिके ग्रहणी-दोषे बलमांसाग्निवर्द्धनम्॥ १४॥

भाषा-सोंठ, अतीस, नागरमोथा, धायके फूल, रसौत, इंद्रजौ, कुडेकी छाल, बेल, पाढ, कुटकी इन सबको समानभाग लेकर एकत्र पीसकर सहत अथवा चावलोंके जलके साथ सेवन करनेसे पित्तज संग्रहणीरोग तथा रक्तज ग्रहणीरोग दूर होता है। सोंठ, नागरमोथा, वायविडंग इनके चूर्णको मदिरा या तक्र अथवा गरमजलके साथ सेवन करनेसे कफज ग्रहणीरोग दूर होता है। पीपल, पीपलामूल, जवाखार, सज्जी, कालानोन, सैंधानोन, विरिया संचरनोन, खारीनोन, कचियानोन, विजौरा, हरड, रायसन, कचूर, काली मिरच और सोंठ इनका चूर्ण करके प्रातःकाल गरम जलके साथ सेवन करे तो कफज संग्रहणीरोग दूर होता है तथा बल, मांस और अग्निकी वृद्धि होती है॥ १४॥

नायिकाचूर्णम्।

चित्रकस्त्रिफला व्योषं विडंगं रजनीद्वयम्। भल्लातकं यवानी च हिंगु लवणपंचकम्॥ गृहधूमो वचा कुष्ठं घनमभ्रं च गंधकम्। क्षारत्रयं चाजमोदा पारदो गजपिप्पली॥ अमीषां गुडकं यावत् समं चूर्णं विमर्दितम्। शक्राशनस्य चूर्णन्तु तत्तुल्यं तत्र दापयेत्॥ बिडालपदमात्रं तु भक्षयेदस्य गुण्डकम्। अभ्यर्च्य नायिकां प्रातः योगिनीं कामरूपिणीम्॥ मन्दाग्निकासदुर्नामप्लीहपाण्डुरुचिज्वरान्। प्रमेहशोथविष्टम्भसंग्रहग्रहणीगदान्॥ उपयुक्तो विधानेन नाशयत्यचिरादिमान्। नानातीसारशमनः क्रमिकण्डूविनाशनः॥ आमवातमदच्छेदी सूतिकातंकनाशनः। काञ्जिकाम्लं सदा पथ्यं दग्धमीनं तथा दधि॥ तस्मादसौ सदा सेव्यो गुण्डको नायिका मतः। काष्ठमप्युदरे यस्य भक्षणाद्याति जीर्णताम्॥ न तेऽस्मिन् व्याधयः सन्ति वातपित्तकफोद्भवाः। सर्वास्तान् नाशयत्याशु गुण्डको नायिकाकृतः॥ वार्य्यन्नं च व्यवायं च मांसपिष्टकभक्षणम्॥ १५॥

भाषा-चीता, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी, भिलावा, अजवायन, हींग और सैंधानोन, कालानोन, बिडनोन, खारीनोन,

सांभरलौन, घरका धुआं, वच, कूठ, नागरमोथा, अभ्रक, गंधक, जवाखार, सज्जी सुहागा, अजमोद, पारा और पीपल इन सबको समानभाग लेकर बारीक चूर्ण कर ले और सब चूर्णकी बराबर भांगका चूर्ण मिलावे, इस नायिकानामवाले चूर्णकी कामरूपिणी योगिनीका पूजन करके दो तोले प्रमाण प्रातःकालमें भक्षण करे । यह चूर्ण मन्दाग्नि, खांसी, बवासीर, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि, ज्वर, प्रमेह, सूजन, विष्टम्भ, मलरोध और संग्रहणीको विधिपूर्वक सेवन करनेसे शीघ्रही दूर करे है तथा नानाप्रकारके अतीसारोंको शमन करे है तथा कृमि, कण्डू, आमवात और सूतिकारोगको नष्ट करे है । इसपर कांजी, भूनी हुई मछली और दही पथ्य है। इस चूर्णको भक्षण करनेसे जिसके पेटमें काठभी होय तो वहभी जीर्ण हो जाता है, इस कारण यह नायिकाचूर्ण सदैव सेवन करना चाहिये । वात, पित्त और कफसे उत्पन्न हुए रोगोंको यह नायिकानामक चूर्ण शीघ्रही नष्ट करे है ॥ १५ ॥

वैद्यनाथवटिका ।

रसस्य शाणं संगृह्य कांजिकेन तु शोषयेत् । चित्रकस्य रसे चापि त्रिफलायाश्च बुद्धिमान् ॥ रसार्द्धं गंधकं शुद्धं भृंगराजरसेन वै । द्वाभ्यां संमूर्च्छनं कृत्वा स्वरसैः शाणसम्मितैः ॥ खल्लयेच्च शिलाखल्वे क्रमशो वक्ष्यमाणजैः । निर्गुण्डीमण्डुकीश्वेताकुचेलाग्रीष्मसुन्दरैः ॥ भृंगराकेशराजस्य जयंतीन्द्राशनोत्कटैः । सर्षपाभां वटीं कृत्वा दद्यात्तां ग्रहणीगदे ॥ आमवाताग्निमांद्ये च ज्वरप्लीहोदरेषु च । वातश्लेष्मविकारेषु तथा श्लेष्मगदेषु च ॥ अम्लं तक्रादिसेवां च कुर्वीत स्वेच्छया बहु । क्रियते वैद्यनाथेन लोकानुग्रहकारिणा ॥ स्वप्नान्ते ब्राह्मणस्येयं भाषिता लिखिता न तु ॥ १६ ॥

भाषा—चार मासे पारेको कांजीमें और चीतेके रसमें तथा त्रिफलेके क्वाथमें भावना देकर शोषण करे, पश्चात् दो मासे गंधकको भांगरेके रसमें मर्दन करे, इस प्रकार शुद्ध किये हुए गंधकको मिलाकर कजली करे, फिर संभालू, मण्डूकपर्णी, सफेद कोयल, पाढ, भांगरा, कुकुरभांगरा, जयन्ती, भांग और दालचीनी इन प्रत्येकके चार चार मासे रसमें खरलकर सरसोंकी समान गोली बना लेवे । यह गोली संग्रहणीरोगमें, आमवातमें, मंदाग्निमें, ज्वरमें, प्लीहा और उदररोगमें, वातकफविकारोंमें और कफरोगमें देनी चाहिये। यह गोली वैद्यनाथने निर्म्माण करी है॥ १६॥

अभ्रकवटिका।

अथ सूतस्य शुद्धस्य गंधकस्याभ्रकस्य च। प्रत्येकं कर्षमेकन्तु ग्राह्यं रसगुणैषिणा॥ ततः कज्जलिकां कृत्वा व्योषचूर्णं प्रदापयेत्। केशराजस्य भृंगस्य निर्गुण्ड्याश्चित्रकस्य च॥ ग्रीष्मसुन्दरकस्याथ जयन्त्याः स्वरसं तथा। मण्डूकपर्ण्याः स्वरसं तथा शक्राशनस्य च॥ श्वेतापराजितायाश्च स्वरसं पर्णसम्भवम्। दापयेत्तत्र तुल्यं च विधिज्ञः कुशलो भिषक्॥ रसतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णं मरिचसम्भवम्। देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं टंकणसम्भवम्॥ शुभे शिलामये पात्रे घर्षणीयं प्रयत्नतः। शुष्कमातपसंयोगात् वटिकां कारयेद्भिषक्॥ कलायपरिमाणां तु खादेत्तां तु प्रयत्नतः। हन्ति कासं क्षयं श्वासं वातश्लेष्मभवं रुजम्॥ ज्वरे चैवातिसारे च सिद्ध एष प्रयोगराट्। नातः परतरं किंचित् विद्यतेऽभ्ररसायनात्॥ चातुर्थिकज्वरे श्रेष्ठं सूतिकातंकनाशनम्। भोजने शयने पाने नास्त्यत्र नियमः क्वचित्॥ दधि चावश्यकं भक्ष्यं प्राहुर्नागार्जुनो मुनिः॥ १७॥

भाषा—शुद्ध पारा २ तोले, गंधक दो तोले और अभ्रक २ तोले इन तीनोंकी कजली करे पश्चात् सोंठ, मिरच, पीपलका चूर्ण कजलीमें मिलाकर कुकुरमांगरा, भांगरा, सम्मालू, चीता, ग्रीष्मसुन्दर, अरनी, ब्रह्ममण्डूकी, भांग, सफेद कोयलेके पत्ते इन मत्यकके दो दो तोले रसमें पृथक् पृथक् भिगोवे फिर पारेकी बराबर मिरचोंका चूर्ण और पारेसे आधा सुहागेका चूर्ण मिला ले तत्पश्चात् पत्यरके खरलमें खरल कर धूपमें सुखाकर मटरकी समान गोली बना ले। यह गोली खांसी, क्षय, श्वास, वात, कफजरोग इनको दूर करे है। श्रेष्ठ वाजीकरण तथा बल, वर्ण और अग्निको दीपन करे है। ज्वर और अतीसार रोगमें यह प्रयोगराज सिद्ध है। इससे परे और कोई दूसरी अभ्रकरसायन नहीं है। यह चौथिया ज्वरमें हितकारी है और सूतिकारोगनाशक है। इसपर भोजनका, सोनेका और पीनेका कुछ नियम नहीं है परन्तु दही इसपर अवश्य खाना चाहिये। यह नागार्जुनमुनिने कहा है॥ १७॥

ताम्रयोगः ।

जयारुबूकाकमाचीशृंगवेररसैः पृथक् । सप्तधा मूर्छितः शैले रसो भवति निर्मलः ॥ सूक्ष्मपत्रीकृतं ताम्रं गंधं चूर्णेन योजितम् । पुटयित्वान्धमूषायां चूर्णं तक्रेण योजयेत् ॥ तच्चूर्णं त्रिकटुपेतं योजयेन्मधुसर्पिषा । ग्रहणीक्षयरोगेषु हितः सोपद्रवेषु च॥ अम्लपित्ते च कुष्ठे च ज्वरे मेहे च कामले ॥ १८ ॥

भाषा–अरणी, अरंड, मकोय और अदरखके रसमें सातवार मूर्च्छित किया हुआ पारा, तांबेके बारीक किये हुए पत्रे और गंधकका चूर्ण इन तीनोंको मिलाकर मूषामें धरे फिर गजपुटमें फूंक देवे, तत्पश्चात् तिसमें सोंठ, मिरच और पीपलका चूर्ण मिलाकर छांछके साथ अथवा मधु और घृतके साथ खानेसे उपद्रवयुक्त संग्रहणी, क्षय, अम्लपित्त, कोढ, ज्वर, प्रमेह और कामलारोग दूर होता है॥ १८॥

कल्याणगुडः ।

प्रस्थत्रयं चामलकीरसस्य शुद्धस्य दत्त्वार्द्धतुलां गुडस्य। चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्यव्योषेभकृष्णाहपुषाजमोदैः ॥ विडंगसिन्धुत्रिफलायवानीपाठाग्निधान्यैश्च पलप्रमाणैः । दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टावष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥ तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं यथेष्टचेष्टं त्रिसुगंधियुक्तम् । अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥ शाम्यन्ति चायं चिरमन्दवह्नेर्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः । स्त्रीणां च वंध्याभयमाशु हन्यात् कल्याणको नाम गुडः प्रदिष्टः ॥ त्रिवृतां भर्जयन्त्यत्र मनाक्केचिच्चिकित्सकाः । अत्रोक्तमानसा धर्मोस्त्रिसुगंधं पलं पृथक्॥१९॥

भाषा–अडतालीस पल आमलोंके रसमें पचास पल शुद्ध गुड मिलावे पश्चात् पीपरामूल, जीरा, चव्य, त्रिकुटा, गजपीपल, हाऊवेर, अजमोद, वायविडंग, सैंधानोन, त्रिफला, अजवायन, पाढ और धनियां इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिलावे । तदनंतर निसोतका चूर्ण बत्तीस तोले और तिलका तेल बत्तीस तोले लेकर सबको मिला गुड सिद्ध करे । सिद्ध होनेके पश्चात् त्रिसुगन्धका चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन बहेडेके फलकी समान भक्षण करे तो सर्व प्रकारके संग्रहणीरोग, श्वास, खांसी, स्वरभेद और सूजन दूर होय । तथा बहुत दिनोंकी मन्दाग्नि

दीपन होती है, पुंस्त्वता बढती है और स्त्रियोंका वंध्यापन नष्ट होता है। इस कल्याणगुडमें बहुतसे वैद्य निसोतको भूनकर डालते हैं। इस प्रयोगमें त्रिसुगंधि अर्थात् दालचीनी, इलायची और तेजपात इन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले अलग अलग मिलाना चाहिये॥ १९॥

लवंगादिचूर्णम्।

लवंगातिविषा मुस्तं विल्वं पाठाथ शाल्मली। जीरकं धातकीपुष्पं लोध्रेन्द्रयववालकम्॥ धान्याकं सर्जकं शृंगी पिप्पली विश्वभेषजम्। समंगा यावशूकं च सैन्धवं सरसाञ्जनम्॥ समभागानि चैतानि भक्षयेत्प्रातरुत्थितः। शमयेदग्निमांद्यं च संग्रहग्रहणीगदम्॥ नानावर्णमतीसारं सशोथं पाण्डुकामलम्। वातमष्ठीलिकां हन्ति कुष्टं कोष्ठगतं ज्वरम्॥ २०॥

भाषा-लौंग, अतीस, नागरमोथा, बेल, पाठ, सेमल, जीरा, धायके फूल, लोध, इन्द्रजौ, सुगंधवाला, धनिया, राल, काकड़ासिंगी, पीपल, सोंठ, लज्जावन्ती, जवाखार, सैंधानोन और रसौत ये सब समानभाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण कर ले। इस चूर्णको प्रातःकाल उठकर खावे। यह चूर्ण मन्दाग्नि, संग्रहणी, नाना वर्णका अतीसार, शोथातीसार, पाण्डुरोग, कामला, अष्ठीलिका वात, कुष्ठ और कोष्ठगत ज्वरको नष्ट करे है॥ २०॥

मृतसंजीवनचूर्णम्।

नागरातिविषा मुस्तं देवदारु कणा वचा। यवानी वालको धान्यं कुटजस्य त्वचाभया॥ धातकीन्द्रयवं विल्वं पाठा मोचरसं समम्। चूर्णं समधुना लेह्यमनुपानं सुखावहम्॥ २१॥

भाषा-सोंठ, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पीपल, वच, अजवायन, सुगंधवाला, धनिया, कुड़ेकी छाल, हरड, धायके फूल, इन्द्रजौ, बेल, पाठ और मोचरस ये समान भाग लेकर चूर्ण करके सहतके साथ सेवन करे तो संग्रहणीरोग दूर होता है॥ २१॥

ग्रहणीकपाटरसः।

टंकणक्षारगन्धाश्मरसजातीफलानि च। विल्वं खदिरसारं च जीरकं श्वेतधूनकम्॥ कपित्थस्तकबीजं च तथैवावाकपुष्पिका। एषां क्षणं समादाय श्लक्ष्णं चूर्णं च कारयेत्॥ बिल्वपत्रं च का-

पासफलं शालिंचदुग्धिके । शालिंचमूलं कुटजत्वक्च कंचटपत्रकम् ॥ सर्वेषां स्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक् । रक्तिकैकप्रमाणेन खादयेद्दिवसत्रयम् ॥ दधिमण्डस्ततः पेयः पलमात्रप्रमाणतः । अपि योगशताक्रान्तां ग्रहणीमुद्धतां जयेत् ॥ आमशूलं ज्वरं कासं श्वासं शोथं प्रवाहिकाम् । रक्तस्रावकरं द्रव्यं कार्यं नैवात्र युक्तितः ॥ कृष्णवार्ताकु मत्स्यं च दधि तैलं च शस्यते । ज्ञात्वा वायोर्गतिस्तत्र जलं तैलं प्रदापयेत् ॥ ग्रहणीकपाटनामाऽयं कपाटघटनादिव ॥ २२ ॥

भाषा–सुहागा, गंधक, शिलारस, जायफल, बेल, खैरसार, जीरा, सफेद राल, कौंचके बीज और सोंफ इन सब औषधियोंको चार चार मासे लेकर बारीक चूर्ण कर ले, पीछे इस चूर्णको बेलपत्र, कपासके फल, शालिंच, दुद्धी, कूडेकी छाल, और कंचनके पत्तोंके रसमें भावना देकर एक रत्तीभरकी गोली बना देवे। प्रतिदिन एक गोली खाय, इस प्रकार तीन दिनतक खावे और ऊपरसे चार तोले दहीका पानी पी लेवे। यह ग्रहणीकपाटरस जिसको सैकडों योगोंसे आराम न हुआ हो उसको, आमशूल, ज्वर, खांसी, श्वास, सूजन और प्रवाहिका रोगको दूर करे है। इसके ऊपर रक्तस्राव (रुधिरको गिरानेवाली) औषधि नहीं खानी चाहिये। काले बैंगन, मछली, दही और तेल इसपर पथ्य है। किन्तु वैद्यको चाहिये कि वायुकी गतिको जानकर तेल देवे जिस प्रकार मनुष्योंको किवाडें रोक देती हैं, उसी प्रकार यह ग्रहणीकपाटरस संग्रहणीरोगको रोक देता है ॥ २२ ॥

कञ्चटावलेहः ।

क्वाथे पचेत्कंचटतालमूल्योः शिलार्द्धप्रस्थः शृतपादशेषे। ततोक्षमानेन समं प्रदद्यात् चूर्णानि धीरो विधिवत्तथैषाम् ॥ समंगा धातकी पाठा बिल्वं मुस्ताथ पिप्पली । शक्राकातिविषा क्षारः सौवर्चलरसांजनम् ॥ शाल्मली वेष्टकं चैव सर्वसिद्धे निधापयेत् । शीते च मधुनश्चात्र कुडवार्द्धं क्षिपेत्ततः॥ अस्य मात्रां प्रयुञ्जीत यथाकालप्रमाणवित् । अम्लपित्तकृतं दोषमोदरं सर्वरूपिणम् ॥ सर्वातीसारशमनं संग्रहग्रहणीं जयेत् । एकजं द्वन्द्वजं चैव दोष-

त्र्यकृतं च यत् ॥ विकारं कोष्ठजं चैव हन्याच्छूलमरोचकम् । एष कंचटलेह्योयं विधेयो गुडपाकवत् ॥ २३ ॥

भाषा-कंचट (जलचौलाई) बत्तीस तोले, मुसली बत्तीस तोले इन दोनोंको २६ सेर जलमें पकावे जब जल चार सेर बाकी रहे तब उतार ले, पश्चात् इस क्वाथमें बत्तीस तोले मिश्री मिलावे, फिर मजीठ, धायके फूल, पाढ, बेलगिरी, नागरमोथा, पीपल, इन्द्रजौ, अतीस, जवाखार, कालानोन, रसौत और मोचरस इन प्रत्येकका दो दो तोले चूर्ण मिलावे, शीतल होनेपर आधसेर सहत मिलावे इस अवलेहको समय देखकर भक्षण करे, इसको सेवन करनेसे अम्लपित्तविकार, सर्वप्रकारके उदररोग, सर्वप्रकारके अतीसार, संग्रहणी, एक दोषसे उत्पन्न हुआ विकार, दो दोषोंके विकार, तीन दोषोंसे उत्पन्न हुए विकार, कोष्ठगतविकार, शूल और अरुचि दूर होती है। यह कंचटावलेह गुडपाककी तरह बनाना चाहिये॥२३॥

ग्रहणीमिहिरतैलम् ।

धान्यकं धातकी लोध्रसमंगातिविषाः शिवा।उशीरं मुस्तकं चैव जलमोचरसाञ्जनम् ॥ बिल्वं नीलोत्पलं पत्रं केशरं पद्मकेशरम् । गुडूचीन्द्रयवश्यामाः पद्मकं कटुरोहिणी ॥ तगरं जटिला भृंगकेशराजपुनर्नवाः। आम्रजम्बूकदम्बानां त्वचं कुटजवल्कलम् ॥ यवानी जीरकं चैव कार्षिकाणि प्रकल्पयेत् । तैलप्रस्थं पचेत्तेन तक्रेणान्यतमेन वा ॥ कुटजत्वक्कषायेण धान्याकं क्वथितं नवम् । बुध्द्वा दोषगतिं वैद्यो यथा स्वौषधवारिणा ॥ एतद्रसायनं तैलं वलीपलितनाशनम् । हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि ॥ ज्वरं तृष्णां तथा श्वासं तथा हिक्कां वमिं भ्रमिम् । सोपद्रवां कोष्ठरुजं नाशयेत्सद्य एव हि ॥ ग्रहणीमिहिरं नाम तैलं भुवनदुर्लभम् ॥ २४ ॥

भाषा-धनिया, धायके फूल, लोध, मजीठ, अतीस, हरड, खस, नागरमोथा, सुगंधवाला, मोचरस, रसौत, बेल, नीले कमलके पत्ते, नागकेशर, कमलकेशर, गिलोय, इन्द्रजौ, अनंतमूल, पद्माख, कुटकी, तगर, बालछड, भांगरा, कुकुरभांगरा, पुनर्नवा, आमकी छाल, जामुनकी छाल, कदम्बकी छाल, कूडेकी छाल, अजवायन और जीरा ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे, पीछे इन सबका कल्क करे। इस

कल्कको और चौसट तोले तेलको तक्रमें अथवा कांजीमें या कूडेकी छालके क्वाथमें अथवा धनियेके क्वाथमें मिलाके दोषोंका बलाबल विचारकर तेलको सिद्ध करे। यह ग्रहणीमिहिरतैल रसायन, वलीपलितनाशक तथा सर्व प्रकारके अतीसार, सर्व प्रकारकी संग्रहणी, ज्वर, तृषा, श्वास, हिचकी, वमन, भ्रम और उपद्रवयुक्त कोष्ठरोगको दूर करे है ॥ २४ ॥

चांगेरीघृतम् ।

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली । श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका॥चांगेरीस्वरसे सर्पिः कल्कैरेतैर्विपाचितम् । चतुर्गुणेन दध्ना च तद्घृतं कफवातनुत् ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् । गुदभ्रंशार्तिमानाहं घृतमेतद्व्यपोहति ॥ हन्ति पिप्पलीचव्यविकातन्त्रान्तरात् । दधिसाहचर्य्याचांगेरीस्वरसोपि चतुर्गुणः ॥ जम्बूदाडिमशृङ्गाटपाठाकञ्चटपल्लवैः । पक्वं पर्युषितं बालबिल्वं सगुडनागरम् ॥ हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीं चातिदुस्तराम् ॥ २५ ॥

भाषा-सोंठ, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, गोखरू, पीपल, धनिया, बेल, पाढ और अजवायन इन सबका चूर्ण चार चार तोले लेवे। घृत चौसट पल और चांगेरीका रस दोसौ छप्पन पल लेवे और दोसौ छप्पन पल दहीलेवे, फिर सबको यथाविधिसे मिलाकर घृतको सिद्ध करे। यह घृत वातकफ, सर्व प्रकारकी बवासीर, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंश और आनाहरोगको दूर करे है। जामुन, अनार, सिंघाडे, पाढ और कंचट इनके पत्तोंके द्वारा कचे बेलको वेष्टितकर आगमें भून लेवे फिर उसको दूसरे दिन तोडकर गुड और सोंठ मिलाके सेवन करे तो सर्व प्रकारके अतीसार और अत्यन्त दुस्तर संग्रहणीरोग दूर होता है ॥ २५ ॥

श्रीनृपतिवल्लभः ।

जातीफललवंगाब्दत्वगेलाटङ्करामठम् । जीरकं तेजपत्रं च यवानी विश्वसैन्धवम् ॥ लोहमभ्रं रसो गन्धस्ताम्रं प्रत्येकशः पलम् । मरिचं द्विपलं दत्वा छागीदुग्धेन पेषयेत् ॥ धात्रीरसेन वा पिष्ट्वा वटिकां कुरु यत्नतः । श्रीमद्गहननाथेन विचिन्त्य परिनिर्म्मितः ॥ सूर्यवत्तेजसा चायं रसो नृपतिवल्लभः । अष्टा-

दश वटीः खादेत् पवित्रः सूर्यदर्शकः ॥ प्लीहगुल्मोदराष्ठीलायकृत्पाण्डुहलीमकम्। हृच्छूलं पार्श्वशूलं च चक्षुःशूलं च कामलाम्॥ शिरःशूलं कटीशूलमानाहमष्टशूलकम्। कासं श्वासमवातं च श्लीपदं शोथमर्बुदम्॥ गलगंडं गंडमालाग्रहण्यर्शःप्रमेहकम्। दुर्वारं स्वरभेदं चाप्यम्लपित्तञ्च गर्दभीम्॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातमसृग्दरम्। ज्वरं जीर्णज्वरं कण्डूं ब्रध्नवृद्धिविसर्पकान्॥ ऊरुस्तंभं रक्तपित्तं गुदभ्रंशारुचिं तृषाम्। कर्णनासामुखोत्थांश्च दन्तरोगांश्च पीनसान्॥ स्थौल्यं च शीतपित्तं च स्थावराणि विषाणि च। वातपित्तकफोत्थांश्च द्वन्द्वजान् सान्निपातिकान्॥ बलवर्णकरो ह्येष आयुष्यो वीर्यवर्द्धनः। परं वाजीकरः श्रेष्ठः पटुतामंत्रसिद्धिदः॥ अरोगी दीर्घजीवी स्यात् रोगी रोगाद्विमुंचति। रसस्यास्य प्रसादेन सुबुद्धिर्जायते नरः॥ २६॥

भाषा–जायफल, लौंग, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, सुहागा, हींग, जीरा, तेजपात, अजवायन, सोंठ, सेंधानोन, लोहा, अभ्रक, पारा, गंधक और तांबा प्रत्येक चार चार तोले तथा काली मिरचोंका चूर्ण आठ तोले लेवे। सबको एकत्र करके बकरीके दूधमें पीसे अथवा आमलोंके रसमें पीसकर गोली बनालेवे। यह नृपतिवल्लभ रस श्रीमान् गहनानन्दनाथने विचारकर निर्म्माण किया है सूर्यकी समान इसका तेज है। इसकी अठारह गोली खानेसे पवित्र और सूर्यकी समान तीक्ष्ण दृष्टि हो जाती है। यह नृपतिवल्लभ प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अष्ठीला, यकृत, पाण्डुरोग, हलीमक, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कामला, नेत्रशूल, शिरःशूल, आनाह, अष्टशूल, खांसी, श्वास, आमवात, श्लीपद, सूजन, अर्बुद, गलगण्ड, गण्डमाला, संग्रहणी, बवासीर, प्रमेह, दुर्वार स्वरभेद, अम्लपित्त, गर्दभी, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, रक्तप्रदर, ज्वर, जीर्णज्वर, कण्डू, ब्रध्न, विसर्प, ऊरुस्तम्भ, रक्तपित्त, गुदभ्रंश, अरुचि, तृषा, कर्णरोग, नासारोग, दन्तरोग, पीनस, स्थूलता, शीतपित्त, स्थावरविष, वातपित्त, कफरोग, द्वन्द्वजरोग और सान्निपातिक रोगोंको दूर करे है। बलवर्णको सुन्दर करनेवाला, आयुको बढानेवाला, वीर्यवर्द्धक, परम वाजीकरण, दक्षतादायक और मंत्रकी सिद्धिको देनेवाला है। इसको निरोगी मनुष्य सेवन करे

तो बहुत दिनोंतक जीता रहे । रोगी मनुष्य सेवन करे तो रोगसे छूट जाय, इस रसके प्रभावसे मनुष्य महाबुद्धिमान् होता है॥ २६ ॥

बृहन्नृपतिवल्लभः ।

रसगन्धकलोहाभ्रं नागं चित्रं च मुस्तकम् । टङ्कं जातीफलं हिंगु त्वगेला वह्निवंगकम् ॥ तेजपत्रमजाजी च यवानी विश्वसैन्धवम् । प्रत्येकं तोलकं चूर्णं तथा मरिचताम्रयोः ॥ निरुत्थकमृतं हेम तथा माषचतुष्टयम् । आर्द्रकस्य रसेनैव धात्र्याश्च स्वरसैस्तथा ॥ भावयित्वा प्रदातव्यं चणमात्रं भिषग्वरैः । भक्षयेत्प्रातरुत्थाय पथ्यं भक्षेत् यथोचितम् ॥ अग्निमांद्यमजीर्णं च दुर्नामग्रहणीं जयेत् । आमाजीर्णप्रशमनं सर्वरोगनिषूदनम् ॥ नाशयेदोदरान् रोगान् विष्णुचक्रमिवासुरान् ॥ २७ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, लोहेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, सीसेकी भस्म, लाल चीतेकी जड, नागरमोथा, सुहागेकी खीलें, जायफल, हींग, दालचीनी, इलायची, शुद्ध भिलावे, वंगकी भस्म, तेजपात, काला जीरा, अजवायन, सोंठ, सैंधानोन, काली मिरच और तांबेकी भस्म प्रत्येक एक एक तोले, सोनेकी भस्म आधा तोला इन सबको एकत्र कर अदरख और आमलोंके रसमें खरल करके चनेकी बराबर गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक गोली खाय और यथोचित इसपर पथ्यसेवन करे यह महानृपतिवल्लभ रस मन्दाग्नि, अजीर्ण, बवासीर, संग्रहणी, आमाजीर्ण, सर्व प्रकारके उदररोग और विशेषकरके सर्व प्रकारकी संग्रहणीको दूर करे है ॥ २७ ॥

वार्ताकुगुटिका ।

चतुःपलं सुहीकाण्डात् त्रिफलं लवणत्रयात् । वार्ताकुकुडवश्चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले ॥ दग्ध्वा रसेन वार्ताकोर्गुटिका भोजनोत्तरा । भक्तं भुक्तं पचत्याशु कासश्वासार्शसां हिताः ॥ विषूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगघ्नाश्च नामतः ॥ २८ ॥

भाषा-थूहरके गांठकी छाल ४ पल, तीनों लवण तीन पल, बैंगन १६ तोले, आककी छाल ६४ तोले और चीतेकी जड आठ तोले इन सबको एकत्र भून बैंगनके रसमें खरल करके गोली बना लेवे । इसको सेवन करनेसे भोजन शीघ्र

पचता है, खांसी, श्वास, बवासीर, विषूचिका, प्रतिश्याय और हृदयरोग दूर होते हैं ॥ २८ ॥

इति संग्रहणीरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथार्शोरोगनिदानम् ।

संख्यारूप संप्राप्ति ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितात् सहजानि च ।
अर्शांसि षट्प्रकाराणि विद्याद्गुदवलित्रये ॥ १ ॥

भाषा—वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातिक, रक्तज और सहज इस प्रकार यह अर्शरोग छः प्रकारका है । यह रोग गुदाकी तीन वलियोंके भीतर होता है ॥ १ ॥

संप्राप्तिपूर्वक अर्शस्वरूप ।

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदूष्य विविधाकृतीन् ।
मांसांकुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि ता जगुः ॥ २ ॥

भाषा—वातादिदोष त्वक्, मांस और मेदाको दूषित कर गुदामें अनेक प्रकारके मांसांकुरों (मस्सों) को उत्पन्न करे, उसको अर्श (बवासीर) कहते हैं । "पानादौ" यहां आदिशब्दसे नासिका नेत्रादिमेंभी जानना ॥ २ ॥

वातबवासीरके कारण ।

कषायकटुतिक्तानि रूक्षशीतलघूनि च । प्रमिताल्पाशनं तीक्ष्णमद्यं मैथुनसेवनम् ॥ लंघनं देशकालौ च शीतौ व्यायामकर्म्म च । शोको वातातपस्पर्शौ हेतुर्वातार्शसां मतः ॥ ३ ॥

भाषा—कषैले, चरपरे, कडवे, रूखे, शीतल और अत्यन्त हलके पदार्थोंके सेवन करनेसे; अत्यन्त अल्प आहार करनेसे, लंघन करनेसे, तीव्रमदिराके पीनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, शीतऋतुमें शीतदेशमें रहनेसे, अत्यन्त कसरत करनेसे, शोकसे, पवन और धूपमें भ्रमण करनेसे वातज अर्शरोग उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

पित्तबवासीरके कारण ।

कट्वम्ललवणोष्णानि व्यायामाग्न्यातपश्रमाः । देशकालावशिशिरौ क्रोधो मद्यमसूयनम् ॥ विदाहि तीक्ष्णमुष्णं च सर्वं पानान्नभेषजम् । पित्तोल्बणानां विज्ञेयः प्रकोपे हेतुरर्शसाम् ॥ ४ ॥

भाषा—चरपरा, खट्टा, नमकीन और उष्णपदार्थोंके सेवन करनेसे, अग्निके पास या गरमीमें रहनेसे, श्रम, उष्ण देश और ग्रीष्मऋतु, क्रोध, मद्यपान, अदेखसका भाव, दाहकारक, तीक्ष्ण, गरम अन्न और गरम औषधि सेवन करनेसे पित्तज बवासीर उत्पन्न होती है ॥ ४ ॥

कफबवासीरके कारण ।

मधुरस्निग्धशीतानि लवणाम्लगुरूणि च । अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखे रतिः ॥ प्राग्वातसेवाशीतौ च देशकालावचिन्तनम् । श्लेष्मोल्बणानामुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥ ५ ॥

भाषा—मधुर, स्निग्ध, शीतल, खारी, खट्टे और भारी ऐसे भोजन करनेसे, कसरतके न करनेसे, दिनमें सोनेसे, शय्या, आसनके सेवन करनेसे, पूर्वकी पवनमें रहनेसे, शीत देश और शीतकालमें रहनेसे तथा चिन्ताके न होनेसे, कफज बवासीर उत्पन्न होती है ॥ ५ ॥

द्वंद्वज बवासीरके कारण ।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्वन्द्वोल्बणानि च ॥ ६ ॥

भाषा—दो दोषोंके कारण और लक्षण मिलें तो द्वन्द्वज बवासीर जाननी ॥ ६ ॥

त्रिदोषकी बवासीरके कारण ।

सर्वो हेतुस्त्रिदोषाणां लक्षणं सहजैः समम् ॥ ७ ॥

भाषा—भिन्न भिन्न वातादि बवासीरके जो कारण कहे हैं, वे सब एकत्रित हुए त्रिदोषज बवासीरके कारण जानने । सहज बवासीरके लक्षणभी इसीकी समान जानने ॥ ७ ॥

वातकी बवासीरके कारण ।

गुदांकुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमिचिमान्विताः । म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विशदाः परुषाः खराः ॥ मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुरिताननाः । बिम्बिकर्कन्धुखर्जूरकार्पासफलसन्निभाः ॥ केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित् सिद्धार्थकोपमाः । शिरःपार्श्वांसकटचूरुवंक्षणाभ्यधिकव्यथाः ॥ क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहारोचकप्रदाः। कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः॥ तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् । रुक्फेनापिच्छा-

नुगतं विबद्धमुपवेश्यते ॥ कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते । गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासम्भवस्तत एव च ॥ ८ ॥

भाषा-वातकी अधिकतासे गुदाके मस्से सूखे, चिनमिनानेवाले, कुमलाये हुए, काले, लाल, टेढे, विशद, कठोर, खरदरे, विषम, वक्र, तीक्ष्ण, मुहफटे, कन्दूर, बेर, खजूर और कपासके फलकी समान हों, कोई कदम्बके फूलकी समान गोल हों, कोई सरसोंकी समान हों, इस बवासीरके होनेसे मस्तक, पसली, कमर, घुटने, छाती इन सबोंमें पीडा हो तथा छींक, डकार, मलरोध, विष्टम्भ, हृदयग्रह, अरुचि, खांसी, श्वास, कभी अन्न पचे कभी नहीं पचे, कानोंमें शब्दका होना और भ्रम इस अर्शरोगग्रसित मनुष्यके गांठयुक्त, अल्पशब्दसंयुक्त और पीडासहित, झागोंवाला, चिकना और थोडा थोडा दस्त आवे तथा उस रोगीकी त्वचा, नख, मल, मूत्र, नेत्र और मुख कुछ काले हों और गुल्म, प्लीहा, उदररोग, अष्ठीलावात ये सब उपद्रव हों ये सब वातज बवासीरके लक्षण हैं ॥ ८ ॥

पित्तकी बवासीरके कारण ।

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतसितप्रभाः । तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ॥ शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकावक्त्रसन्निभाः । दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छारुचिमोहदाः ॥ सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः । यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ॥ ९ ॥

भाषा-पित्तोल्बण अर्शरोगमें मस्सोंका मुख नीला, लाल, पीला और सफेद हो तथा उनमेंसे रुधिर स्रवे, रुधिरकी गंध आवे, सूक्ष्म, मृदु और शिथिल हों और वे मस्से देखनेमें तोतेके जीभकी समान, कलेजेकी समान और जोंककी समान हों, शरीरमें दाह हो, गुदापाक, ज्वर, पसीना, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि और मोह हो तथा हाथके छूनेसे गरम जान पडे और नीला, पीला, लाल, गरम, आमसंयुक्त, पतला ऐसा दस्त हो, जौके समान बीचमें मोटे हों तथा रोगीके त्वचा, नख, नेत्र आदि हरे रंगके हों, हरतालके समान, पीले हलदीकी समान हों तो पित्तज बवासीर जाननी ॥ ९ ॥

कफके बवासीरके कारण ।

श्लेष्मोल्बणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः । उत्सन्नोपचिताः स्निग्धाः स्तब्धा वृत्तगुरुस्थिराः ॥ पिच्छिलाः स्तिमिताः

श्लक्ष्णाः कण्ड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः । करीरपनसास्थ्याभा-स्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥ वंक्षणानाहितः पायुबस्तिनाभिविकर्षिणः । सश्वासकासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ॥ मेहकृच्छ्र-शिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः । क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्राय-विकारदाः ॥ वसाभाः सकफप्रायपुरीषाः सप्रवाहिकाः । न स्रव-न्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥ १० ॥

भाषा–कफोल्वण बवासीरमें गुदाके अंकुर सर्व विस्तीर्ण मूल, दीर्घाकार और मंद पीडावाले हों। इनका स्वरूप वर्तुल, लम्बे और मोटे हों तथा कटहरके बीज, वंशांकुर, कोई गोस्तनकी समान हों। वे सफेद, चिकने, कठोर, स्तब्ध, पिच्छिल, स्तिमित, मसृण और स्थिर हों तथा हाथसे छूनेमें सुख मालूम हो, उनमें थोडी वेदना हो और खुजलीसंयुक्त हों। रोगीके वंक्षण देशमें बन्धनकी समान तथा मलद्वार बस्ति और नाभिमें आकर्षणकी समान मालूम हो, श्वास, कास, हृल्लास, प्रसेक, अरुचि और पीनस, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकमें भारीपन, शीतज्वर, नपुंसकता, मन्दाग्नि, वमन और आम हो, अतिसार, संग्रहणी आदि रोग हों, चर्बी और कफमिला दस्त होवे, प्रवाहिका हो, मस्सोंसे रुधिर न निकले, सक्त मल होनेसेभी मस्से न टूटें तथा शरीरका रंग पाण्डु और स्निग्ध हो। ये कफज बवासीरके लक्षण जानने ॥ १० ॥

सन्निपात और सहज बवासीरके कारण ।

सर्वैः सर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैः सहजानि च ॥ ११ ॥

भाषा–जो वातादि दोषोंकी बवासीरके लक्षण कहे हैं, वे सब एकत्र मिलते हों तौ सन्निपातकी बवासीर जानना और सहज बवासीरकेभी येही लक्षण हैं॥११॥

रक्तार्शके लक्षण ।

रक्तोल्वणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः । वटप्ररोहसदृशा गुंजाविद्रुमसन्निभाः ॥ तेत्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपी-डिताः । स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥ भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसंभवैः । हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः ॥ विट् श्यावं कठिनं रूक्षमधो वायुर्न गच्छति॥१२॥

भाषा–मस्सोंका रंग घुंघचीकी समान लाल हो अथवा बडके अंकुरकी समान हो तथा पित्तकी बवासीरके सम्पूर्ण लक्षण जिसमें मिलते हों, मूंगेकी समान हों,

सक्त दस्त कठिन आनेसे मस्से दबकर उनमेंसे दुष्ट और गरम रक्त निकले, अधिक रक्तके निकलनेसे वर्षातके मेंडककी समान पीला रंग हो जाय, रक्तके निकलनेसे वर्णहीन हो, बल उत्साह और पराक्रमका नाश हो, सर्व इन्द्रियोंमें व्याकुलता हो, कठिन काढा और रूखा मल होवे और अपानवायु अच्छे प्रकारसे न फिरे । ये सब खूनीबवासीरके लक्षण जानने ॥ १२ ॥

रक्तार्शका वातादि भेदकरके लक्षण ।

तनु चारुणवर्णं च फेनिलं चासृगर्शसाम् । कट्यूरुगुदशूलं च दौर्बल्यं यदि चाधिकम् ॥ तत्रानुबन्धो वातस्य हेतुर्यदि च रूक्षणम् ॥ १३ ॥

भाषा–जो रुधिरकी बवासीर रूक्ष द्रव्योंके सेवन करनेसे उत्पन्न हो, रुधिर अल्प निकले और अरुणवर्ण तथा झागोंयुक्त हो, कमर घुटने और मलद्वारमें पीडा हो और रोगी अत्यन्त दुबला हो जाय ॥ १३ ॥

कफसंबन्धके लक्षण ।

शिथिलं श्वेतपीतं च विट् स्निग्धं गुरु शीतलम् । यद्यर्शसां घनं चासृक् तन्तुमत् पाण्डु पिच्छिलम् ॥ गुदं सपिच्छं स्तिमितं गुदस्निग्धं च कारणम् । श्लेष्मानुबन्धो विज्ञेयस्तत्र रक्तार्शसां बुधैः ॥ १४ ॥

भाषा–उस रक्तजार्शरोगमें वातका अनुबंध जानना । जो यह रोग गुरु और स्निग्ध द्रव्योंके सेवनसे उत्पन्न हुआ हो, मल शिथिल, स्निग्ध, गुरु, शीतल तथा सफेद और पीला हो, रुधिर गाढा, पांडुतायुक्त, तन्तुयुक्त और पिच्छिलतायुक्त निकले तथा गुदा बबूलेसहित और गीली होवे तो उस रक्तार्शरोगको कफका अनुबंध जानना ॥ १४ ॥

बवासीरका पूर्वरूप ।

विष्टंभोऽन्नस्य दौर्बल्यं कुक्षेराटोप एव च । कार्श्यमुद्गारबाहुल्यं सक्थिसादोल्पविट्कता ॥ ग्रहणीदोषपाण्ड्वर्तेराशंका चोदरस्य च । पूर्वरूपाणि निर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥ १५ ॥

भाषा–अन्नका परिपाक अच्छी तरह होवे नहीं, अन्न कूखमें रहे, देहमें दुर्बलता, कूखमें अफरा, अग्नि मंद होवे, डकार बहुत आवे, जांघमें पीडा, दस्त थोडा उतरे, संग्रहणी और पांडुरोगकी भ्रांति होना, क्योंकि इनके लक्षण मिलते हैं और

उदररोगकी शंका होना ये लक्षण होवें तब जानना कि इस पुरुषके बवासीररोग होवेगा ॥ १५ ॥

शंका-केवल दोषोंके कोपसे गुदामें बवासीररोग होय फिर सब देहमें कृशत्व और काला हो जाना कैसे होता है ?

पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रयम् । सर्व एवं प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥ तस्मादर्शांसि दुःखानि बहुव्याधिकराणि च । सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥ १६ ॥

भाषा-अर्शरोगके उत्पन्न होनेपर शरीरकी पांच प्रकारकी वायु पित्त और कफ अपने अपने स्थानमें कुपित होकर अर्थात् वातादिके कुपित होनेके कारण तीनों बली स्वाभाविक प्रवहणादि कार्य्योंमें असमर्थ हो जाती हैं, इस कारण अर्शरोग अनेक प्रकारके क्लेशोंको करता है और सम्पूर्ण शरीरमें संतापजनक है । व्याधियोंका मूलस्वरूप और मंदाग्नि आदि रोगोंको उत्पन्न करता है । अर्शरोग प्रायः कृच्छ्रसाध्य जानना ॥ १६ ॥

सुखसाध्य लक्षण ।

बाह्यायान्तु वलौ जातान्येकदोषोल्वणानि च ।
अर्शांसि सुखसाध्यानि नचिरोत्पतितानि च ॥ १७ ॥

भाषा-जो बवासीर एक दोषसे उत्पन्न हुई हो, बहुत पुरानी न पडी हो, जिसके मस्से बाहरसे दीखते हों वह सुखसाध्य है ॥ १७ ॥

कृच्छ्रसाध्यके लक्षण ।

द्वन्द्वजानि द्वितीयायां वलौ यान्याश्रितानि च ।
कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ १८ ॥

भाषा-जो बवासीर दो दोषोंसे उत्पन्न हुई हो,दूसरी वलिमें स्थित हो और जिसको एक वर्षसे अधिक बीत गया हो वह कृच्छ्रसाध्य है ॥ १८ ॥

असाध्यके लक्षण ।

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यंतरां वलीम् ।
जायन्तेऽर्शांसि संश्रित्य तान्यसाध्यानि निर्दिशेत् ॥ १९ ॥

भाषा-जो गुदाके अंकुर सहजात या त्रिदोषसे उत्पन्न हुए हों और भीतरकी वलिमें स्थित हों वह असाध्य जाननी ॥ १९ ॥

याप्य लक्षण ।

शेषत्वादायुषस्तानि चतुष्पादसमन्विते । याप्यन्ते दीप्तकायाग्नेः प्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥ हस्ते पादे मुखे नाभ्यां गुदे वृषणयोस्तथा । शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्योऽर्शसो हि सः ॥२०॥

भाषा-असाध्य अर्शरोगमें यद्यपि अग्नि दीपन हो, चतुष्पादभी उत्तम हो और आयुभी शेष हो तौभी वह याप्य होती है। जो इससे विपरीत अर्थात् मन्दाग्नि, चतुष्पादहीन और आयु शेष न होय तौ रोगीकी मृत्यु जाननी । जिस अर्शरोगमें हाथ, पांव, मुख, नाभि, मलद्वार और अंडकोषोंमें सूजन उत्पन्न होय तथा वक्षस्थलमें और पसलियोंमें शूल हो तौ असाध्य जाननी ॥ २० ॥

अन्य असाध्य लक्षण ।

हृत्पार्श्वशूलः संमोहश्छर्दिरङ्गस्य रुग् ज्वरः । तृष्णा गुदस्य पाकश्च निहन्युर्गुदजातुरम् ॥ तृष्णारोचकशूलार्त्तमतिप्रस्तुतशोणितम् । शोथातिसारसंयुक्तमर्शांसि क्षपयन्ति हि ॥ मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजानि च । गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च ॥ २१ ॥

भाषा-जिस रोगीके हृदय और पसलियोंमें शूल, मूर्च्छा, वमन, अंगग्रह, ज्वर, तृषा और मलद्वार पकनेकी समान दीखे, उसको अर्शरोग नष्ट कर देता है । जिसके पियास, अरुचि, शूलके सिवाय रुधिरस्राव, सूजन और अतीसार हो उसकोमी अर्शरोग नष्ट कर देता है । मेढ़ (लिंग) और नासिकादिमेंभी अर्श होता है, तहां नाभिमें स्थित अर्श मृदु, पिच्छिल और गण्डूपद (केंचुवे) के मुखकी समान होता है ॥ २१ ॥

चर्मकीलकी संप्राप्ति ।

**व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः ।
कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तद्विदुः ॥ २२ ॥**

भाषा-चर्मकीलरोगके लक्षणादि निम्नप्रकार कहे हैं । जैसे व्यानवायु शरीरमें स्थित कफको ग्रहण करके चमडेके ऊपरभागमें स्थिर, कर्कश और कीलकी समान अर्शको उत्पन्न करती है उसको चर्म्मकीलरोग कहते हैं ॥ २२ ॥

चर्मकीलमें वातादिके लक्षण ।

वातेन तोदपारुष्यं पित्तादसितवक्त्रता ।
श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥ २३ ॥

भाषा-यह वातात्मक होनेपर सुई छेदनेकी समान पीडायुक्त और कर्कश होता है । पित्तात्मक होनेपर काले मुखका और कफात्मक होनेपर शरीरकी समान वर्णवाला, चिकना और ग्रंथिकी समान मालूम होती है ॥ २३ ॥

इति अर्शोरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथार्शोरोगचिकित्सा ।

दुर्नाम्नां साधनोपायश्चतुर्धा परिकीर्त्तितः । भेषजक्षारशस्त्राग्नि-साध्यत्वादाद्य उच्यते ॥ यद्वायोरनुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये । अनुपानौषधं द्रव्यं तत्सेव्यं नित्यमर्शसैः ॥ शालिषष्टिकगोधूमयवान्नं संस्कृतैर्घृतैः । दद्यात् क्षीरेण वा नित्यं पटोलानां रसेन वा ॥ मांसैर्मांसरसैर्वापि कन्दवार्ताकुमूलकैः । जीवन्त्युपोदिकाशाकैस्तण्डुलीयकवास्तुकैः ॥ क्षारचित्रकबिल्वानां तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् । यवकोलकुलित्थानां तक्राम्लनवनीतयोः ॥ शस्त्रैर्वाथ जलौकाभिस्तेषां रक्तं च निर्हरेत् । शुष्कार्शसां प्रलेपादिक्रिया तीक्ष्णा विधीयते ॥ स्राविणां रक्तमालोक्य क्रिया कार्य्यास्रपैत्तिकी । स्नुकक्षीररजनीयुक्तं लेपाद् दुर्नामनाशनम् ॥ अर्कक्षीरं स्नुहिक्षीरं तिक्ततुम्ब्याश्च पल्लवाः । करंजो बस्तमूत्रेण लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ॥ ज्योत्स्नामूलककल्केन लेपो वातार्शसां हितः । जम्बीरजमौद्भिदन्तु कांज्यां पिष्ट्वा गुटित्रयम् ॥ अर्शोहरं गुदस्थं स्याद्दधि माहिषमश्नतः । शिरीषस्य तु मूलानि लांगलक्यास्तथैव च ॥ एतेन नाभिलेपेन सर्वतश्चतुरंगुलात् । पतन्त्यर्शांसि सर्वाणि सप्तरात्रान्न संशयः ॥ नृकेशाः सर्पनिर्मोका वृषदं-

शस्य चर्म्म च। अर्कमूलं शमीपत्रं धूपोऽर्शःशूलशान्तये॥ बिडिबन्धे हिंगुतक्रं यवानीबिडसंयुतम्। वातश्लेष्मार्शसां तक्रात्परं नास्तीह भेषजम्॥ पित्तश्लेष्मप्रशमनी कण्डूकच्छूरुजापहा। गुदजान्नाशयत्याशु योजिता सगुडाभया॥ तिलभल्लातकं पथ्या गुडश्चेति समांशिकम्। दुर्नामश्वासकासघ्नं प्लीहपाण्डुरुजापहम्॥ २४॥

भाषा-औषधि, क्षार, शस्त्र और अग्नि इन चार प्रकारसे अर्शरोगकी चिकित्सा करनी कही है तहां साध्य और सरल होनेसे औषधिक्रमको कहते हैं। जो औषधि वायुको अनुलोमन करनेवाली तथा अग्निके बलको बढानेवाली है, वह अर्शरोगीको सेवन करनी चाहिये। शालिधान, साठीधान्य, गेहूं और जौ इनका भोजन घीके साथ, दूध, पटोलरस, मांस, मांसरस, जमीकन्द, बैंगन, मूली, जीवन्तीका शाक, पोईका शाक, चौलाईका शाक, बथुएका शाक, जवाखार, चीता, बेल, तेलसे पकाये हुए द्रव्य, जौ, बेर, कुलथी, तक्र और माखन ये सब अर्शरोगीके लिये हितकारक जानने। अर्शांकुर होनेपर शस्त्र अथवा जोंकके द्वारा रुधिर निकालना चाहिये। शुष्क अर्शरोगमें प्रलेपादि तीक्ष्ण क्रिया करनी चाहिये। रुधिर बहनेवाले अर्शरोगमें रक्तको विचारकर रक्तपित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये। थूहरके दूधमें हलदी मिलाकर लेप करनेसे बवासीर दूर होती है। आकका दूध, थूहरका दूध, कडवी तोंबीके पत्ते और करंजकी छाल इनको बकरीके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे अर्शरोग दूर होता है। तोरईकी जडको पीसकर लेप करनेसे बादीकी बवासीर दूर होती है। जम्भीरीनींबूको कांजीमें पीसकर तीन गोली बनावे एक गोली भैंसके दहीके साथ रोज खानेसे बवासीर दूर होती है। शिरसकी जड और कलिहारीकी जडको पीसकर नाभिपर चार अंगुल चारों ओर लेप करनेसे निःसंदेह सात दिनमें सर्वप्रकारकी बवासीरके मस्से गिर जाते हैं। मनुष्यके बाल, सांपकी कैंचली, बिलावकी खाल, आककी जड और छोंकरके पत्ते इन सबको एकत्र कर धूप देनेसे अर्शरोगका शूल शांत होता है। मलबद्ध अर्शरोगमें अजवायन, हींग, बिडनोन इनको तक्रमें मिलाकर पीना चाहिये। वात तथा कफकी बवासीरमें तक्रसे उत्तम कोई औषधि नहीं है। गुडके साथ हरडको भक्षण करनेसे पित्तकफार्श, कण्डू, कच्छू और वेदना नाश होती है। तिल, भिलावे, हरड और गुड इन सबको समान लेकर सेवन करनेसे बवासीर, श्वास, खांसी, ज्वर, प्लीहा और पांडुरोग दूर होता है॥ २४॥

व्योषादिचूर्णम् ।

व्योषाग्न्यरुष्करविडंगतिलाभयानां चूर्णं गुडेन सहितं तु सदोपयोज्यम् । दुर्नामशोथगरकुष्ठविकृद्धिबन्धानर्शो जयत्यचलतां कृमिपाण्डुतां च ॥ चूर्णं चूर्णसमो देयो मोदके द्विगुणो गुडः॥२५॥

भाषा—सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, भिलावे, वायविडंग, तिल और हरड इन सबका चूर्ण बनावे । उस चूर्णमें गुड मिलाकर खानेसे बवासीर, सूजन, विषविकार, कोढ, मलविबन्ध, बवासीर, निर्बलता, कृमि और पाण्डुरोग दूर होता है ॥ २५ ॥

श्रीबाहुशालो गुडः ।

त्रिवृत्तेजोवती दंती श्वदंष्ट्रा चित्रकं शठी। गवाक्षी मुस्तविश्वाब्दविडंगानि हरीतकी ॥ पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात् । षट्पलं वृद्धदारस्य सूरणस्य तु षोडश ॥ जले द्रोणद्वये क्वाथ्यं चतुर्भागावशेषितम् । सुपूतन्तु रसं भूयः क्वाथ्यं स्यात्त्रिगुणो गुडः ॥ पचेल्लेहन्तु तं तावत् यावत् दर्वीप्रलेपनम् । अवतार्य ततः पश्चात् चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान् द्विपलांशकान् । एला त्वङ् मरिचं चापि गजाह्वं चापि षट्पलम् ॥ द्वात्रिंशच्च पलान्येवं चूर्णं दत्त्वा निधापयेत् । ततो मात्रा प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशनः ॥ पंचगुल्मान् प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् । जयेदर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च ॥ दीपयेद्ग्रहणीं मन्दां यक्ष्माणं चापि कर्षति । पीनसे च प्रतिश्याये आढ्यवाते तथैव च॥ अयं सर्वगदेष्वेव कल्याणो लेह उत्तमः । दुर्नामारिरयं नाम्ना दृष्टो वारसहस्रतः ॥ भवत्येनं प्रयुञ्जानः शतवर्षं निरामयः । आयुष्यो दैर्घ्यजननो वलीपलितनाशनः ॥ रसायनवरश्चैव मेधाजनन उत्तमः । गुडः श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारिः प्रकीर्तितः ॥ २६ ॥

भाषा—निसोत, तेजबल, दंती, गोखरू, चीता, नरकचूर, इन्द्रायन, नागरमोथा, सोंठ, मोथा, वायविडंग और हरड ये सब चार चार तोले लेवे । भिलावे बत्तीस तोले, विधायरा चौबीस तोले और जमींकन्द चौसठ तोले, पीछे इन सबोंको

चौसठ सेर अर्थात् पांच सौ बारह पल जलमें पकावे। जब चौथा भाग अर्थात् १६ सेर (एक सौ अट्ठाईस पल) जलकर शेष रहे तब उतार लेवे। पश्चात् काथको वस्त्रमें छानकर रसको फिर चूल्हेपर चढा देवे और उसमें तिगुना गुड मिलाकर पकावे। जब लेहवत् अर्थात् करछीसे चिपटने लग जाय तब उतारकर निसोत, तेजबल, जमीकंद और चीता ये प्रत्येक आठ आठ तोले और इलायची, दालचीनी, काली मिरच और गजपीपल ये प्रत्येक चौबीस चौबीस तोले लेवे। पीछे इन सबका चूर्णकर मिला दे, इसको अनुपान माफिक भक्षण करे, औषधिके जीर्ण होनेपर दूध और मांसरसका भोजन करे। यह गुड पांच प्रकारके गुल्म, सर्वप्रकारके प्रमेह, पाण्डुरोग, हलीमक, सर्वप्रकारकी बवासीर, सर्वप्रकारके उदररोग, संग्रहणीरोग, राजयक्ष्मा, पीनस, प्रतिश्याय और आठचवातको नष्ट करे है यह सर्व प्रकारके रोगोंमें हितकारी है विशेषकरके बवासीरका विध्वंस करे है इसको हजारों बार अजमाया है, इसको सेवन करनेसे मनुष्य रोगोंसे छूटकर सौ वर्षतक जीता है। यह गुड आयुको बढानेवाला है, वलीपलितनाशक, अवस्थास्थापक, रसायनमें श्रेष्ठ रसायन, मेधाजनक और उत्तम है। इसको श्रीबाहुशाल गुड कहते हैं और इसका दूसरा नाम दुर्नामारिभी है॥ २६॥

कुटजलेहः।

कौटजं कल्कमादाय पिष्ट्वा तक्रेण बुद्धिमान्। पीत्वा रक्तार्शसो रक्तास्रुतिमाशु नियच्छति॥ कुटजत्वक् पलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्। अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत्॥ वस्त्रपूतं पुनः क्वाथ्यं पचेल्लेहत्वमागतम्। भल्लातकविडंगानि त्रिकटुत्रिफलास्तथा॥ रसांजनं चित्रकं च कुटजस्य फलानि च। वचामतिविषां बिल्वं प्रत्येकं च पलं पलम्॥ गुडात्पलानि त्रिंशच्च चूर्णीकृत्य निधापयेत्। मधुनः कुडवं दद्यात् घृतस्य कुडवं तथा॥ लेहोयं शमयत्यर्शो यस्य रक्तसमुद्भवम्। वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्॥ ये च दुर्नामजा रोगास्तान्सर्वान्नाशयत्यपि। अम्लपित्तमतीसारं पाण्डुरोगमरोचकम्॥ ग्रहणीं मार्दवं कार्श्यं श्वयथुं कामलामपि। अनुपानं घृतं दद्यान्मधु तक्रं जलं पयः॥ रोगानीकविनाशाय कौटजो लेह उच्यते॥ २७॥

भाषा–कूडेकी छालको पीसकर मट्ठेके साथ सेवन करनेसे रक्तार्श (खूनी बवासीर) दूर होती है। कूडेकी छाल सौ पल लेकर चौसठ सेर (५१२ तोले) जलमें पकावे। जब जलकर आठभाग अर्थात् सोलह सेर काथ शेष रहे तब उतार ले, पीछे वस्त्रमें छानकर फिर चूल्हेपर चढा देवे। जब पकते पकते लेहकी समान हो जाय तब मिलावा, वायविडंग, त्रिकुटा, त्रिफला, रसौत, चीता, इन्द्रजौ, वच, अतीस, बेलगिरी ये प्रत्येक चार चार तोले लेकर चूर्ण बनाकर मिला देवे, फिर गुड तीस पल, सहत बत्तीस तोले और घृत बत्तीस तोले इन सबको मिला देवे तो कुटज लेह सिद्ध हो जाता है यह कुटज लेह रुधिरकी बवासीर, वातज बवासीर, पित्तज बवासीर, कफज बवासीर, सन्निपातकी बवासीर, सर्वप्रकारकी बवासीर, अम्लपित्त, अतीसार, पाण्डुरोग, अरुचि, संग्रहणी, मृदुता, कृशता, सूजन और कामला रोगको दूर करे है। इसको घृत, मधु, तक्र, जल और दूधके साथ सेवन करना चाहिये। यह रोगोंको दूर करनेके अर्थ कुटज लेह कहा है ॥ २७ ॥

अर्शःकुठारको रसः।

शुद्धसूतं पलैकं तु द्विपलं शुद्धगंधकम्। मृतं ताम्रं मृतं लोहं प्रत्येकं च पलत्रयम्॥त्र्यूषणं लांगली दंती चित्रकं पुष्करं तथा। प्रत्येकं द्विपलं योज्यं यवक्षारं च टंकणम्॥उभौ पंचपलौ योज्यौ सैन्धवं पलपंचकम्। द्वात्रिंशत्पलगोमूत्रं स्नुहीक्षीरं च तत्समम्॥ मृद्वग्निना पचेत्सर्वं यावत्तच्च सुपिण्डितम्। मासद्वयं सदा खादेद्रसो योऽर्शःकुठारकः॥ २८॥

भाषा–शुद्ध पारा चार तोले, शुद्ध गंधक आठ तोले, तांबेकी भस्म बारह तोले, लोहेकी भस्म बारह तोले, त्रिकुटा, कलिहारी, दंती, चीता, पोहकरमूल, ये प्रत्येक आठ आठ तोले, जवाखार, सुहागा और सैंधानोन ये प्रत्येक बीस बीस तोले, गोमूत्र बत्तीस पल और थूहरका दूध बत्तीस पल इन सबको एकत्र कर मृदु अग्निसे पकावे, जब पकते पकते पिंडकी समान गाढा हो जाय तब दो मासे-भर सदैव सेवन करे, इससे सर्व प्रकारकी बवासीर नष्ट होती है ॥ २८ ॥

चव्यादिलोह।

चव्याः पलाष्टकं देयं खादिरं चार्द्धमेव च। चित्रकस्य पलं पंच तालमूली च तत्समा॥ त्रिफला प्रस्थसंयुक्ता जलद्रोणे विपाचयेत्।अष्टभागावशेषेण कषायमवतारयेत्॥आज्यात्पलाष्टकं देयं

रुक्मलोहस्य षोडश। पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारयेत् ॥ त्रिवृद्दन्तीविडंगानि पथ्या चामलकानि च । शुंठी विभीतकी कृष्णा एषां देयं पलार्द्धकम्॥शर्करा मधु चत्वारि स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्। गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसो हितः ॥ दुर्नाम-कुष्ठश्वयथुपाण्डुप्लीहोदरापहम् । हृच्छूले गुदशूले च परिणाम-कृते हितम्॥ बलवर्णकरं वृष्यमग्निसंदीपनं परम्।करीरं कांजिकं चैव काकमाचीं विवर्जयेत् ॥ २९ ॥

भाषा-चव्य बत्तीस तोले, खैर सोलह तोले, मुसली बीस तोले और त्रिफला चौसठ तोले लेवे, पश्चात् बत्तीस सेर जलमें पकावे, जब जलकर क्वाथ आठ सेर बाकी रहे तब उतार लेवे। फिर इस क्वाथको तांबेके बासनमें करले, इसमें बत्तीस तोले घी और चौसठ तोले तीक्ष्ण लोह मिलाकर पकावे। जब पककर शीतल हो जाय तब उतार ले पीछे निसोत, दन्ती, वायविडंग, हरड, वहेडा, आमला, सोंठ और पीपल इन प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले मिला देवे, पश्चात् चिकने बासनमें भरके रख देवे। इसके ऊपर भारी, वृष्य, भोजन, पान, दूध और मांसरस हितकारी है। यह लोह बवासीर, कोढ, सूजन, पाण्डु, प्लीहा, उदररोग, हृदयशूल, गुदशूल और परिणामशूलको निर्मूल करे है तथा बल, वर्ण और वीर्यको उत्पन्न करे है तथा अग्निको दीपन करे है। इसपर करीर, कांजी और काकमाची (मकोय) त्यागनी चाहिये ॥ २९ ॥

तीक्ष्णमुखरसः।

मृतसूताभ्रहेमाह्वतीक्ष्णमुण्डं च गंधकम्। मण्डूरस्य समं ताप्यं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम् ॥ अन्धमूषागतं पश्चात् त्रिदिनं तु तुषाग्निना। चूर्णितं सितया मासं खादेत् पित्तार्शसं जयेत् ॥ रसस्तीक्ष्णमुखो नामानुपानं मधुरत्रयम् ॥ ३० ॥

भाषा-पारेकी भस्म, अभ्रक, सोना, तीक्ष्ण लोहा, मुण्ड लोहा, गन्धक और मण्डूर तथा सोनामक्खी इन सबको समान लेकर घीगुवारके रसमें एक दिन मर्दन करे फिर अंधमूषापुटमें मूसीको आगसे तीन दिनपर्यन्त पकावे फिर चूर्ण करे, उसको एक मासे मिश्रीके साथ खावे तो पित्तकी बवासीर दूर हो इस तीक्ष्णरसका अनुपान मिश्री, घृत और सहत है ॥ ३० ॥

अर्शोहररसः ।

रसवैक्रान्तशुद्धाभ्रकान्तभस्म सगंधकम् । तुल्यांशं मर्दयेच्चार्द्रदाडिमोत्थै रसैस्ततः ॥ भक्षयेन्मासमेकं तु अर्शसां नाशनो रसः। अपामार्गस्य बीजानि वह्निः शुंठी हरीतकी॥मुस्ता भूनिम्बतुल्यांशं सर्वतुल्यं गुडं भवेत् । कर्षैकं भक्षयेच्चानु जीर्णान्नं भक्तभोजनम् ॥ ३१ ॥

भाषा-पारा, वैक्रान्तमणि, शुद्ध अभ्रक, कान्तलोहकी भस्म और गंधक ये प्रत्येक समानभाग लेकर अदरख और अनारके रसमें मर्दन करे । इसकी मात्रा एक मासेकी है । अनुपान चिरचिटेके बीज, चीता, सोंठ, हरड, नागरमोथा, चिरायता ये प्रत्येक समानभाग और सबकी बराबर गुड मिलाकर दो तोले प्रमाण देनेसे सर्वप्रकारकी बवासीर दूर होती है । पथ्य पुराना अन्न और भात है ॥ ३१ ॥

कनकावती वटी ।

शुद्धसूतं समं गन्धं तालसिन्धूत्थलांगली । फलं तुम्बीफलैकैकं लशुनं च चतुष्पलम्॥ कारवेल्या द्रवैर्मर्द्यं दिनैकं वटकीकृतम्। गुंजामात्रं सदा खादेद्गुदजं चापि नाशयेत् ॥ रक्तवातकफोत्थानि अर्शांसि नाशयेद् ध्रुवम्।वटी कनकावती नाम्नी अनुपानं च कथ्यते ॥ ३२ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, हरिताल, सैंधानोन, कलिहारी, कायफल और तुम्बी ये प्रत्येक एक एक पल लेवे और लशुन चार पल लेवे पीछे इन सबको करेलेके रसमें एक दिन खरल कर एक एक रत्तीभरकी गोली बनावे । एक गोली नित्य खानेसे गुदाके रोग, रुधिरकी बवासीर, वातकी बवासीर और कफकी बवासीर दूर होती है ॥ ३२ ॥

अनुपानम् ।

भल्लातत्रिफला दन्ती वह्निचूर्णं समं समम् ।
सैन्धवं सर्वतुल्यं स्याद्धर्जयेत्खर्परे चिरम् ॥
मृदग्निना भवेत् सिद्धं कर्षं तक्रं पिबेन्नरः ॥ ३३ ॥

भाषा-भिलावा, त्रिफला, दन्ती और चीता इन सबका चूर्ण समान भाग लेकर और सबकी बराबर सैंधानोन लेवे । पीछे सबको एकत्र कर खिपडेमें मृदु

अग्निसे बहुत समयतक भूनकर सिद्ध करे पश्चात् दो तोले प्रमाण इसको तक्रके साथ भक्षण करे यह अनुपान है ॥ ३३ ॥

पंचामृतरसः ।

शुद्धसूताभ्रलोहानां मृतगंधार्कसंयुताम् । सर्वेषां समभागं तु भल्लातं सर्वतुल्यकम् ॥ पलमेकं समादाय द्रवैः सूरणकन्दजैः । मर्दयेद्दिनयुग्मं च माषमात्रं दिने दिने ॥ भक्षणाद्धन्ति सर्वेषां अर्शांसि च न संशयः । असाध्यान्याशु सर्वाणि रसः पंचामृतात्मकः ॥ कुष्ठरोगं निहन्त्याशु मृत्युरोगकुलान्तकः । मरिचं पिप्पली शुण्ठी वह्निः क्रमगुणोत्तरम्॥ सर्वेषां द्विगुणं योज्यं सूरणं पेषयेद्दृढम् । सर्वतुल्यो गुडो योज्यः कर्षैकं भक्षयेदनु ॥ ३४ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, अभ्रक, लोहा, गन्धक और तांबा ये सब समानभाग लेवे और भिलावेके बीज सबके बराबर लेवे, पीछे सबको जमीकन्दके रसमें दो दिन खरल करे इसको एक मासेभर प्रतिदिन खानेसे सर्वप्रकारके अर्शरोग निःसन्देह दूर होते हैं तथा यह पंचामृत रस असाध्य बवासीर, कोढ और मृत्युरोगकोभी दूर करे है । इस औषधिके भक्षण करनेके बाद एक भाग काली मिरच, दो भाग पीपल, तीन भाग सोंठ, चार भाग चीता और बीस भाग जमीकन्द लेकर खूब मर्दन करे पीछे चालीस भाग गुड मिलाकर सेवन करे यह अनुपान है ॥३४॥

चंद्रप्रभा वटी ।

कृमिरिपुदहनव्योषत्रिफलामरदारुचव्यभूनिम्बम् । मागधिमूलं मुस्तं शठी वचा धातुमाक्षिकं चैव॥लवणक्षारनिशायुक् कुस्तुम्बुरुगजकणातिविषा ॥कार्षांशिकान्येव समानि कुर्यात् पलाष्टकं चाश्मजतोर्विदध्यात् । निष्पत्रशुद्धस्य पुरस्य धीमान् पलद्वयं लोहरजस्तथैव ॥ शिलाचतुष्कं पलमत्र वा स्यात्त्रिकुम्भकुम्भत्रिसुगंधियुक्तम् । चन्द्रप्रभेयं गुटिका प्रयोज्या अर्शांसि निर्णाशयति षडेव ॥ भगन्दरं पाण्डु च कामलां च निर्नष्टवह्नेः प्रकरोति दीप्तम् । हन्त्यामयान् पित्तकफानिलोत्थान् नाडीगते मर्म्मगते व्रणे च ॥ ग्रन्थ्यर्बुदे विद्रधिराजयक्ष्मणोर्मेहे भगा-

ण्ये प्रबले च योज्या । शुक्रक्षये चाश्मरिमूत्रकृच्छ्रे शुक्रप्रवाहे-ऽप्युदरामये च ॥ भक्तस्य पूर्वं सततं प्रयोज्या तक्रानुपानं त्वथ मस्तुपानम् । आजो रसो जांगलिको रसो वा पयोथ वा शीतजलानुपानम् ॥ बलेन नागस्तुरगो जवेन दृष्ट्या सुपर्णः श्रवणैर्वराहः । न पानभोज्ये परिहार्यमस्ति न शीतवातातपमैथुने च ॥ शम्भुं समभ्यर्च्य कृतप्रणामं प्राप्ता गुटी चन्द्रमसः प्रसादात् ॥ शुक्रदोषान्निहन्त्यष्टौ प्रमेहानपि विंशतिम् । वलीपलितनिर्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ३५ ॥

भाषा-वायविडंग, चीता, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आवला, देवदारु, चव्य, चिरायता, पीपरामूल, नागरमोथा, अमियाहलदी, वच, सोनामक्खी, सैंधानोन, जवाखार, हलदी, दारुहलदी, धनिया और अतीस ये प्रत्येक दो दो तोले, शिलाजीत बत्तीस तोले, शुद्ध गूगल आठ तोले, लोहेका चूर्ण आठ तोले, मिश्री सोलह तोले, वंशलोचन चार तोले, दन्ती, निसोत और त्रिसुगंधि ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे, पीछे सबको एकत्र कर गोली बनावें, इन गोलियोंको चन्द्रप्रभावटी कहते हैं । यह चंद्रप्रभावटी छः प्रकारकी बवासीर, भगंदर, पाण्डुकामला, मन्दाग्नि, पित्तरोग, कफरोग, वातरोग, नाडीव्रण, मर्म्मगत व्रण, ग्रंथिरोग, अर्बुदरोग, विद्रधि, राजयक्ष्मा, प्रमेह, योनिरोग, शुक्रक्षय, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रप्रवाह और उदररोगको दूर करे है । इसको भोजनके प्रथम भक्षण करे और भक्षण करनेके बाद ऊपरसे तक्र तथा दहीका पानी पीवे या बकरीका सोरुआ अथवा जांगल देशके जीवोंके मांसका रस या दूध अथवा शीतल जलका अनुपान करे । इसको सेवन करनेसे मनुष्य बलमें हाथीकी समान, वेगमें घोडेकी समान, दृष्टिमें गरुडकी समान और सुननेमें वराहकी समान हो जाता है । इसपर भोजन तथा पानका परहेज नहीं है तथा शीत, पवन, आतप और मैथुनकाभी कुछ परहेज नहीं है । यह गोलीआठ प्रकारके शुक्रदोष, वीस प्रकारके प्रमेह और वलीपलित रोगोंको दूर करे है, इसको सेवन करनेसे वृद्धमनुष्यभी तरुण हो जाता है ॥३५॥

सूरणमोदकः ।

चित्रकस्य पलं त्वेकं द्विपलं सूरणस्य च । पलार्द्धं नागरस्यापि मरिचं कोलमात्रकम् ॥ भल्लातककणामूलं विडंगं त्रिफला कणा । तालीससहितान्सर्वानक्षमात्रान्प्रयोजयेत् ॥ द्वे पले वृद्ध-

दारस्य तालमूलं पलं भवेत्। त्वगेला मरिचांशे च सर्वानेकत्र मर्द्दयेत्॥ गुडेन मर्दयित्वा तु द्विगुणेनेह बुद्धिमान्। मोदकः सूरणो नाम अक्षमात्रः प्रमाणतः॥ उपयुक्तो निहंत्याशु गुदकीलान्न संशयः। अग्निवृद्धिकरः पुंसां सेव्यमानो महागुणः॥ ३६॥

भाषा—चीतेकी छाल चार तोले, जमीकंद आठ तोले, सोंठ दो तोले, काली मिरच एक तोला, मिलावा, पीपलामूल, बायविडंग, त्रिफला, पीपल और तालीशपत्र यह प्रत्येक डेढ डेढ तोले, विधयरा आठ तोले, मुसली ४ तोले, दालचीनी और इलायची एक एक तोला लेवे, इन सबको एकत्र पीसकर चूर्ण कर ले. सब चूर्णसे दुगुना गुड लेवे. सबको एकत्र कर एक एक तोलेके लड्डू बनावे, प्रतिदिन एक २ लड्डू खाय तो बवासीर दूर होती है, एवं अग्नि दीपन होती है॥ ३६॥

कंकायनी वटी।

पथ्याफलस्य पलपंचकमेवमेकमेकं पलं च मरिचादपि जीरकस्य। कृष्णा तदुद्भवजटा चविकाग्निशुण्ठीकृष्णादिपंचकमिदं पलतः प्रवृद्धम्॥ पलाष्टभल्लातकसंप्रयुक्तं दारुकरुष्करपला द्विगुणं प्रकल्प्याः। स्याद्यावशूकर्कुडवार्द्धमतः समस्तो योज्यो गुडो द्विगुणितो वटकीकृतश्च॥ कंकायनेन मुनिना वटकः किलायमुक्तः प्रजाहिततमेन गुदामयघ्नः। क्षाराग्निशस्त्रपतनैरपि येन सिद्धः सिध्यंत्यनेन वटकेन गुदामयास्ते॥३७॥

भाषा—हरड बीस तोले, काली मिरच, जीरा, पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ प्रत्येक चार २ तोले, मिलावे ३२ तोले, देवदारु चौसठ तोले और जवाखार आठ तोले लेवे। सबको एकत्र पीसकर चूर्ण कर ले, सब चूर्णसे दुगुना गुड मिलाकर मोदक बना लेवे। यह वटी कांकायनमुनिने प्रजाके हितके लिये निर्म्माण की है। यह गोली गुदाके रोगों (बवासीर) को दूर करे है तथा जो बवासीर क्षार, अग्नि और शस्त्रकर्मसे आरोग्य नहीं होती वह इस कांकायनवटीसे निश्चय आरोग्य हो जाती है॥ ३७॥

विजयाचूर्णम्।

त्रिकत्रयं वचा हिंगु पाठाक्षारौ निशाद्वयम्। चव्यतिक्तकलिंगानि शताह्वा लवणानि च॥ग्रंथिबिल्वाजमोदा च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः।

एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्॥ चूर्णं बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा। एरंडतैलसंयुक्तं लिह्याच्चूर्णमिदं नरः॥ हन्यादर्शांसि सर्वाणि श्वासशोषभगन्दरान्। हृच्छूलं पार्श्वशूलं च वातगुल्मं तथोदरम्॥ हिक्कां श्वासं प्रमेहं च पाण्डुरोगं सकामलम्। आमवातमुदावर्तमंत्रवृद्धिं गुदक्रमीन्॥ हन्याच्च ग्रहणीरोगान् भिषग्भिर्यत्प्रकीर्तितः। विजयानाम चूर्णोयं सर्वव्याधिहरः परः॥ महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम्। अप्रजानां च नारीणां हितमेतद्धि भेषजम्॥ ३८॥

भाषा–हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, वच, हींग, पाढ, सज्जी, जवाखार, हलदी, चव्य, कुटकी, इन्द्रजौ, सतावर, पांचों नमक, पीपलामूल, बेलगिरी और अजमोद इन अट्ठाईस औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण कर ले। इस चूर्णको एक तोला प्रमाण गरम जलके साथ अथवा अण्डीके तेलके साथ भक्षण करे। इससे सर्वप्रकारकी बवासीर, श्वास, शोष, भगन्दर, हृदयशूल, पार्श्वशूल, वातगुल्म, उदररोग, हिचकी, श्वास, प्रमेह, पाण्डुरोग, कामलारोग, आमवात, उदावर्त्त, अंत्रवृद्धि, बवासीर, कृमि और संग्रहणीरोग दूर हो जाता है। यह विजयाचूर्ण सर्व प्रकारके रोग, महाघोर ज्वर और भूतको दूर करे है यह पुत्रहीन स्त्रियोंको अत्यंत हितकारी है॥ ३८॥

मरिचादिवटी।

मरिचं खादिरं सारं गैरिकं तार्क्ष्यजं तथा। समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णीकृतानि च॥ कुकुरमर्दकरसैस्त्रिदिनं मर्दयेत् दृढम्। त्रिमाषिका वटी कार्या रक्तजार्शोविनाशिनी॥ ३९॥

भाषा–काली मिरच, खैरसार, गेरू और रसौत ये सब समानभाग लेकर बारीक पीस चूर्ण करके कुकुरोंदेके रसमें खरल करके तीन तीन मासेकी गोली बना लेवे। यह गोली रुधिरकी बवासीरको दूर करे है॥ ३९॥

अथ लेपविधिः।

कोषातकीरजोघर्षान्निपतंति गुदोद्भवाः। निशाकोशातकीचूर्णं स्नुक्पयःसैन्धवान्वितम्॥ गोमूत्रेण समायुक्तो लेपो दुर्नामनाशनः। आर्के पयः सुधाकाण्डं कटुकालाम्बुपल्लवाः॥

करंजो बस्तमूत्रेण लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् । स्नुह्यग्निलांगलीदन्ती-मूलैर्लेपोर्शसां हितः॥कृष्णशिरीषबीजार्कक्षीरैः साम्बरसैन्धवैः। हरिद्राऋक्षविड्गुंजागोमूत्रैः पिप्पलीयुतैः॥ एतल्लेपत्रयं योज्यं शीघ्रमर्शोविनाशनम् । निम्बाश्वत्थस्य पत्राणां लेपो दुर्नाम-नाशनः ॥ गौरीपाषाणकर्षैकं स्नुहीकाण्डे विनिःक्षिपेत् । पाचयेत् पुटपाकेन तत उद्धृत्य यत्नतः॥ रेवट्चीनी च कुष्ठं च कल्कीकृत्य त्रयं समम् । लेपयेत्तेन अर्शांसि निवार्यन्ते न संशयः॥पिप्पलीं च हरिद्रां च गोमूत्रेण समन्विताम् । प्रक्षिपेच्च गुदद्वारे अर्शांसि विनिवारयेत् ॥ अभया नवनीतं च शर्करापि-प्पलीयुतम् । पानादर्शोहरं स्याच्च नात्र कार्या विचारणा ॥ अटरूषकपत्रेण घृतं मृद्वग्निना पचेत् । चूर्णं कृत्वा तु लेपोयं अर्शोरोगहरः परः॥ मूलञ्च श्वेतगुंजायाः कृत्वा तत्सप्तखंडकम्। हस्ते बद्धं नाशयेच्च अर्शांस्येव न संशयः॥घोषाफलं सैन्धवं च तद्घिसार्शः पतेत्तथा।गव्याजं साधितं पीतं पलाशक्षारवारिणा॥ द्विगुणेन त्रिकटुकमर्शांसि क्षपयेच्छिव। बिल्वस्य च फलं दुग्धं रक्तार्शसो विनाशनम्॥ यवानी चित्रकं धान्यं त्र्यूषणं जीरकं तथा। सौवर्चलं विडं रुच्यं पिप्पलीमूलराजिकाम् ॥ एभिः पचेत् घृतप्रस्थं जलप्रस्थाष्टसंयुतम् । मन्याशोगुल्मश्वयथुं हन्ति वह्निं करोति वै ॥ अपामार्गोद्भवान्मूलात् क्षारः सहरि-तालकः। लिंगार्शो लेपतो हन्ति चिरजातमसंशयम॥ ४०॥

भाषा-सूखी कडवी तूम्बीके चूर्णको बवासीरके मस्सोंपर घिसनेसे मस्से गिर जाते हैं। हलदी और कडवी तोरईके चूर्णको थूहरका दूध, सेंधानोन और गोमूत्रमें मिलाकर लेप करनेसे बवासीर दूर होती है। आकका दूध, सेंडकी लकडी, कटेरी, कडवी तूम्बीके पत्ते और करञ्ज इन सबोंको बकरीके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे बवासीरके मस्से दूर होते हैं। थूहर, चीता, कलिहारी और दंतीकी जड इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बवासीर दूर होती है। काली मिरच, सिरसके

एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ चूर्णं बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा । एरंडतैलसंयुक्तं लिह्याचूर्णमिदं नरः ॥ हन्यादर्शांसि सर्वाणि श्वासशोषभगन्दरान् । हृच्छूलं पार्श्वशूलं च वातगुल्मं तथोदरम्॥ हिक्कां श्वासं प्रमेहं च पाण्डुरोगं सकामलम् । आमवातमुदावर्तमंत्रवृद्धिं गुदक्रमीन् ॥ हन्याच्च ग्रहणीरोगान् भिषग्भिर्यत्प्रकीर्तितः॥विजयानाम चूर्णोयं सर्वव्याधिहरः परः ॥ महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् । अप्रजानां च नारीणां हितमेतद्धि भेषजम् ॥ ३८ ॥

भाषा-हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, वच, हींग, पाढ, सज्जी, जवाखार, हलदी, चव्य, कुटकी, इन्द्रजौ, सतावर, पांचों नमक, पीपलामूल, बेलगिरी और अजमोद इन अट्ठाईस औषधियोंको समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण कर ले। इस चूर्णको एक तोला प्रमाण गरम जलके साथ अथवा अण्डीके तेलके साथ भक्षण करे । इससे सर्वप्रकारकी बवासीर, श्वास, शोष, भगन्दर, हृदयशूल, पार्श्वशूल, वातगुल्म, उदररोग, हिचकी, श्वास, प्रमेह, पाण्डुरोग, कामलारोग, आमवात, उदावर्त, अंत्रवृद्धि, बवासीर, कृमि और संग्रहणीरोग दूर हो जाता है । यह विजयाचूर्ण सर्व प्रकारके रोग, महाघोर ज्वर और भूतको दूर करे है यह पुत्रहीन स्त्रियोंको अत्यंत हितकारी है ॥ ३८ ॥

मरिचादिवटी ।

मरिचं खादिरं सारं गैरिकं तार्क्ष्यजं तथा । समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णीकृतानि च ॥ कुकुरमर्दकरसैस्त्रिदिनं मर्दयेत् दृढम् । त्रिमाषिका वटी कार्या रक्तजार्शोविनाशिनी ॥ ३९ ॥

भाषा-काली मिरच, खैरसार, गेरू और रसोत ये सब समानभाग लेकर बारीक पीस चूर्ण करके कुकुरौंदेके रसमें खरल करके तीन तीन मासेकी गोली बना लेवे । यह गोली रुधिरकी बवासीरको दूर करे है ॥ ३९ ॥

अथ लेपविधिः ।

कोषातकीरजोघर्षान्निपतंति गुदोद्भवाः । निशाकोशातकीचूर्णं स्नुकपयःसैन्धवान्वितम् ॥ गोमूत्रेण समायुक्तो लेपो दुर्नामनाशनः । आर्कं पयः सुधाकाण्डं कंटकालाम्बुपल्लवाः ॥

करंजो वस्तमूत्रेण लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् । स्नुह्यम्लिकागलीदन्ती-मूलैर्लेपोर्शसां हितः॥कृष्णशिरीपर्वीजार्कक्षीरैः साम्बरसैन्धवैः । हरिद्राऋक्षविड्गुंजागोमूत्रैः पिप्पलीयुतैः ॥ एतल्लेपत्रयं योग्यं शीघ्रमर्शोविनाशनम् । निम्बाश्वत्थस्य पत्राणां लेपो दुर्नामनाशनः ॥ गौरीपाषाणकर्षैकं स्नुहीकाण्डे विनिःक्षिपेत् । पाचयेत् पुटपाकेन तत उद्धृत्य यत्नतः ॥ रेवद्चीनी च कुष्ठं च कल्कीकृत्य त्रयं समम् । लेपयेत्तेन अर्शांसि निवार्यन्ते न संशयः॥पिप्पलीं च हरिद्रां च गोमूत्रेण समन्विताम् । प्रक्षिपेच्च गुदद्वारे अर्शांसि विनिवारयेत् ॥ अभया नवनीतं च शर्करापिप्पलीयुतम् । पानादर्शोहरं स्याच्च नात्र कार्या विचारणा ॥ अटरूषकपत्रेण घृतं मृद्वग्निना पचेत् । चूर्णं कृत्वा तु लेपोयं अर्शोरोगहरः परः॥ मूलञ्च श्वेतगुंजायाः कृत्वा तत्सप्तखंडकम्। हस्ते बद्धं नाशयेच्च अर्शांस्येव न संशयः॥घोषाफलं सैन्धवं च तच्छिन्नाशैः पतेत्तथा।गव्याज्यं साधितं पीतं पलाशक्षारवारिणा ॥ द्विगुणेन त्रिकटुकमर्शांसि क्षपयेच्छिव। बिल्वस्य च फलं दुग्धं रक्तार्शसो विनाशनम् ॥ यवानी चित्रकं धान्यं त्र्यूषणं जीरकं तथा। सौवर्चलं विडं रुच्यं पिप्पलीमूलराजिकाम् ॥ एभिः पचेत् घृतप्रस्थं जलप्रस्थाष्टसंयुतम् । मन्याशोंगुल्मश्वयथुं हन्ति वह्निं करोति वै ॥ अपामार्गोद्भवान्मूलात् क्षारः सहरितालकः । लिंगार्शो लेपतो हन्ति चिरजातमसंशयम् ॥ ४० ॥

भाषा-सूखी कडवी तूम्बीके चूर्णको बवासीरके मस्सोंपर घिसनेसे मस्से गिर जाते हैं । हलदी और कडवी तोरईके चूर्णको थूहरका दूध, सेंधानोन और गोमूत्रमें मिलाकर लेप करनेसे बवासीर दूर होती है। आकका दूध, सेंडकी लकडी, कटेरी, कडवी तुम्बीके पत्ते और करञ्ज इन सबोंको बकरीके मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे बवासीरके मस्से दूर होते हैं। थूहर, चीता, कलिहारी और दंतीकी जड इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बवासीर दूर होती है । काली मिरच, सिरसके

बीज, सांभरनोन, सैंधानोन, हल्दी, रीछकी विष्ठा, घूंघची और पीपल इनको गोमूत्रमें पीसकर थूहरका दूध मिलाकर तीन वार लेप करनेसे शीघ्रही बवासीर दूर होती है। नीम और पीपलके पत्तोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बवासीर दूर होती है। प्रथम एक सेंडके डंडेको लेकर उसका गूदा निकाल डाले फिर उसमें दो तोले संखिया भरकर मुख बंदकर ऊपरसे कपडमिट्टी कर पुटपाकविधिसे पकावे जब स्वांगशीतल हो जाय, तब निकालकर रेवटचीनी और कूठ समान भाग ले सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बवासीरके मस्से निश्चय दूर होकर बवासीर जडसे नष्ट हो जाती है। पीपल और हलदीको गोमूत्रमें पीसकर गुदद्वारपर प्रलेप करनेसे बवासीर दूर होती है। हरड, नैनीघी, चीनी और पीपलका चूर्ण समानभाग ले एकत्र कर आधा तोला या एक तोला भक्षण करनेसे निश्चय बवासीर दूर होती है। अडूसेके पत्तोंको मन्दाग्निके द्वारा किंचित् घृतमें भूनकर चूर्ण कर ले, इससे बवासीरपर लेप करनेसे बवासीर दूर होती है, सफेद चोंटलीके जडके सात टुकडे करके लाल सूतसे बांधकर शनि या मंगलवारको हाथमें बांधनेसे बवासीर दूर होती है। तोरई और सेंधेनोनको एकत्र पीसकर बवासीरके मस्सोंपर लेप करनेसे अर्शके मस्से गिर पडते हैं। ढाककी जडको जलाकर जलमें बुझावे फिर वह जल तीन भाग, गायका घी एक भाग, काली मिरच, पीपल और सोंठका कल्क बनाकर पाक करे फिर इस घृतको सेवन करे तो अर्शरोग दूर होय। पके बेलके साथ दूध मिलाकर पीनेसे खूनी बवासीर दूर होती है। अजवायन, लाल चीतेकी जड, काली मिरच, पीपल, सोंठ, धनिया, जीरा, कालानोन, बिरिया संचरनोन, काचियानोन, पीपलामूल और सरसों ये सब औषधि समानभाग और सब मिली हुई सेरभर लेकर कूट लेवे, फिर चार शेर घीमें मिलाकर सोलह सेर जलके साथ पकाकर ऊपरोक्त मात्रानुसार सेवन करनेसे बवासीर, गुल्म और सूजन दूर होती है तथा अग्निकी वृद्धि होती है। हरितालके साथ चिरचिटेकी जडका खार लेकर बवासीरके स्थानमें प्रलेप करनेसे थोडे दिनोंमें बहुत दिनोंका छिंगार्श आराम हो जाता है॥ ४०॥

इत्यर्शोरोगचिकित्सा समाप्ता।

अथाग्निमान्द्याजीर्णविषूचिकालसकाविलंबिकानिदानम् ।

अथाग्नेर्दोषभेदेन विकल्पमाह ।

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः ।
कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः ॥ १ ॥

भाषा-मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम इन भेदोंसे जठराग्नि चार प्रकारकी है। तहां कफकी अधिकतासे मन्दाग्नि, पित्तकी अधिकतासे तीक्ष्णाग्नि, वातकी अधिकतासे विषमाग्नि और तीनोंकी समतासे समाग्नि होती है ॥ १ ॥

अजीर्णरोग ।

विषमो वातजान् रोगान् तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान् ।
करोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान् कफसंभवान् ॥ २ ॥

भाषा-विषमाग्नि वातज रोगोंको, तीक्ष्णाग्नि पित्तज रोगोंको और मंदाग्नि कफज रोगोंको उत्पन्न करे है ॥ २ ॥

अथ तेषां लक्षणान्याह ।

समा समाग्नेरसिता मात्रा सम्यग्विपच्यते । स्वल्पापि नैव मन्दस्य विषमाग्नेस्तु देहिनः ॥ कदाचित् पच्यते सम्यक्कदाचिन्न विपच्यते । मात्रातिमात्राप्यशिता सुखं यस्य विपच्यते॥ तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात् समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते ॥ भुक्तं क्षणात् भस्म करोति यस्मात् तस्मादयं भस्मकसंज्ञकोऽभूत्।तृट्कासमूर्च्छाभ्रमदाहचोषविट्शोषमोहश्रमघर्मकारी ॥ ३ ॥

भाषा-जिसके द्वारा मनुष्योंके यथोचित आहारके पदार्थ भले प्रकारसे पच जावें उसको समाग्नि कहते हैं। जिसके द्वारा मनुष्योंके आहारके द्रव्य थोडेसेभी भोजन किये हुए भले प्रकारसे नहीं पचें उसको मन्दाग्नि कहते हैं। जिसके द्वारा मनुष्योंके भोजनके पदार्थ किसी दिन अच्छे पच जांय और किसी दिन नहीं पचें उसको विषमाग्नि कहते हैं। जिस अग्निके द्वारा बहुत भोजन कियाहुआभी बहुत शीघ्र सुखसहित पच जाय उसको तीक्ष्णाग्नि कहते हैं। इन चारों प्रकारकी अग्नियोंमें समाग्नि श्रेष्ठ है। कोई कोई ग्रंथकार तीक्ष्णाग्निको भस्माग्नि कहते हैं। जो

बीज, सांभरनोन, सेंधानोन, हल्दी, रीछकी विष्ठा, घूंघची और पीपल इनको गोमूत्रमें पीसकर थूहरका दूध मिलाकर तीन बार लेप करनेसे शीघ्रही बवासीर दूर होती है । नीम और पीपलके पत्तोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बवासीर दूर होती है । प्रथम एक सेंडके डंडेको लेकर उसका गूदा निकाल डाले फिर उसमें दो तोले संखिया भरकर मुख बंदकर ऊपरसे कपडमिट्टी कर पुटपाकविधिसे पकावे जब स्वांगशीतल हो जाय, तब निकालकर रेवद्चीनी और कूठ समान भाग ले सबको एकत्र पीसकर लेप करनेसे बवासीरके मस्से निश्चय दूर होकर बवासीर जडसे नष्ट हो जाती है । पीपल और हल्दीको गोमूत्रमें पीसकर गुदद्वारपर प्रलेप करनेसे बवासीर दूर होती है । हरड, नैनीधी, चीनी और पीपलका चूर्ण समानभाग ले एकत्र कर आधा तोला या एक तोला भक्षण करनेसे निश्चय बवासीर दूर होती है । अडूसेके पत्तोंको मन्दाग्निके द्वारा किंचित् घृतमें भूनकर चूर्ण कर ले, इससे बवासीरपर लेप करनेसे बवासीर दूर होती है, सफेद चोंटलीके जडके सात टुकडे करके लाल सूतसे बांधकर शनि या मंगलवारको हाथमें बांधनेसे बवासीर दूर होती है । तोरई और सेंधेनोनको एकत्र पीसकर बवासीरके मस्सोंपर लेप करनेसे अर्शके मस्से गिर पडते हैं । ढाककी जडको जलाकर जलमें बुझावे फिर वह जल तीन भाग, गायका घी एक भाग, काली मिरच, पीपल और सोंठका कल्क बनाकर पाक करे फिर इस घृतको सेवन करे तो अर्शरोग दूर होय । पके बेलके साथ दूध मिलाकर पीनेसे खूनी बवासीर दूर होती है । अजवायन, लाल चीतेकी जड, काली मिरच, पीपल, सोंठ, धनिया, जीरा, कालानोन, बिरिया संचरनोन, काचियानोन, पीपलामूल और सरसों ये सब औषधि समानभाग और सब मिली हुई सेरभर लेकर कूट लेवे, फिर चार शेर घीमें मिलाकर सोलह सेर जलके साथ पकाकर ऊपरोक्त मात्रानुसार सेवन करनेसे बवासीर, गुल्म और सूजन दूर होती है तथा अग्निकी वृद्धि होती है । हरितालके साथ चिरचिटेकी जडका खार लेकर बवासीरके स्थानमें प्रलेप करनेसे थोडे दिनोंमें बहुत दिनोंका लिंगार्श आराम हो जाता है ॥ ४० ॥

इत्यर्शोरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथाग्निमान्द्याजीर्णविषूचिकालसकाविलंबिकानिदानम् ।

अथाग्नेर्दोषभेदेन विकल्पमाह ।

मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधः ।
कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः ॥ १ ॥

भाषा-मन्द, तीक्ष्ण, विषम और सम इन भेदोंसे जठराग्नि चार प्रकारकी है। तहां कफकी अधिकतासे मन्दाग्नि, पित्तकी अधिकतासे तीक्ष्णाग्नि, वातकी अधिकतासे विषमाग्नि और तीनोंकी समतासे समाग्नि होती है ॥ १ ॥

अजीर्णरोग ।

विषमो वातजान् रोगान् तीक्ष्णः पित्तनिमित्तजान् ।
करोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान् कफसंभवान् ॥ २ ॥

भाषा-विषमाग्नि वातज रोगोंको, तीक्ष्णाग्नि पित्तज रोगोंको और मंदाग्नि कफज रोगोंको उत्पन्न करे है ॥ २ ॥

अथ तेषां लक्षणान्याह ।

समा समाग्नेरसिता मात्रा सम्यग्विपच्यते । स्वल्पापि नैव मन्दाग्नेर्विषमाग्नेस्तु देहिनः ॥ कदाचित् पच्यते सम्यक्कदाचिन्न विपच्यते । मात्रातिमात्राप्यशिता सुखं यस्य विपच्यते॥ तीक्ष्णाग्निरिति तं विद्यात् समाग्निः श्रेष्ठ उच्यते ॥ भुक्तं क्षणात् भस्म करोति यस्मात् तस्मादयं भस्मकसंज्ञकोऽभूत्।तृट्कासमूर्च्छाभ्रमदाहचोषविट्शोषमोहश्रमघर्मकारी ॥ ३ ॥

भाषा-जिसके द्वारा मनुष्योंके यथोचित आहारके पदार्थ भले प्रकारसे पच जावें उसको समाग्नि कहते हैं । जिसके द्वारा मनुष्योंके आहारके द्रव्य थोडेसेभी भोजन किये हुए भले प्रकारसे नहीं पचें उसको मन्दाग्नि कहते हैं । जिसके द्वारा मनुष्योंके भोजनके पदार्थ किसी दिन अच्छे पच जांय और किसी दिन नहीं पचें उसको विषमाग्नि कहते हैं । जिस अग्निके द्वारा बहुत भोजन कियां हुआभी बहुत शीघ्र सुखसहित पच जाय उसको तीक्ष्णाग्नि कहते हैं । इन चारों प्रकारकी अग्नियोंमें समाग्नि श्रेष्ठ है । कोई कोई ग्रंथकार तीक्ष्णाग्निको भस्माग्नि कहते हैं । जो

मनुष्य चरपरे, खट्टे और रूखे द्रव्य भोजन करता है उनके कफ अत्यन्त क्षीण और वायु अत्यन्त बढ जाती है, अत एव वातके लक्षणोंसे लक्षित अग्नि अत्यन्त बढकर मनुष्योंके शरीरको शोषण करती है तथा भुक्तपदार्थ थोडे समयमेंही भस्म हो जाते हैं, इस कारण इसको भस्माग्नि कहते हैं। इस भस्माग्निमें पियास, खांसी, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, सूषण, मलका सूखना, मोह, श्रम और घर्म होता है ॥३॥

अजीर्णनिदानम् ।

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः । अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः ॥ अजीर्णं पंचमं केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च । वदन्ति षष्ठं चाजीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥ ४ ॥

भाषा–कफसे आमाजीर्ण, पित्तसे विदग्धाजीर्ण और वातसे विष्टब्धाजीर्ण ऐसे मनुष्योंके तीन प्रकारका अजीर्णरोग होता है। कोई कोई वैद्य कहते हैं कि रसशेष होनेसे चौथे प्रकारका अजीर्ण होता है और कोई वैद्य ऐसा कहते हैं कि रात्रिदिनमें जो आहार पचे तथा जिसमें अफरा आदि दोष न होंय वह पांचवां अजीर्ण है और जो सदैव स्वाभाविक अजीर्ण रहे उसको अजीर्ण कहते हैं ॥ ४ ॥

अजीर्णके कारण ।

ईर्ष्याभयक्रोधपरीक्षितेन लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन । प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक्परिपाकमेति ॥ ५ ॥

भाषा–अत्यन्त जल पीनेसे, विषम भोजन (किसी दिन अधिक और किसी दिन कम भोजन) करनेसे, मलमूत्रादिके वेगको धारण करनेसे, दिनमें सोनेसे, रात्रिमें जागनेसे और भोजनके समय लघु और शीतल पदार्थ सेवन करनेसे मनुष्योंके भोजन किया हुआ द्रव्य अच्छे प्रकार नहीं पचे उसको अजीर्ण कहते हैं। ये शरीरसंबन्धीय कारण कहे, अब मानसिक कारण कहते हैं। ईर्षा (पराये धन धान्यादिको देखकर जलना), भय, क्रोध, लोभ, शोक, क्षोभ, दीनता और मत्सरता करनेसे मनुष्योंका किया हुआ भोजन अच्छे प्रकार नहीं पचता है; शरीरमें ग्लानि, भारीपन, विवर्णता, भ्रम और उदरमें अफरा, अतीसार, कभी कभी दस्त बंद ये सब लक्षण होंय तो सामान्य अजीर्ण जानना ॥ ५ ॥

आमाजीर्णके लक्षण ।

अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च संधारणात् स्वप्नविपर्ययाच्च । कालेऽपि सात्म्यं लघु चापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ॥ तत्रामे

गुरुतोत्क्लेदः शोथो गंडाक्षिकूटगः । उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धः प्रवर्त्तते ॥ ६ ॥

भाषा-आमाजीर्णमें देह भारी, उबकाई, कपोल और अक्षिकूटमें सूजन तथा आहारके अनुसार मधुरादि डकार आवे तो आमाजीर्ण जानना ॥ ६ ॥

विष्टब्धाजीर्णके लक्षण ।

विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः ।
मलवाताप्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहाङ्गपीडनम् ॥ ७ ॥

भाषा-विष्टब्धाजीर्णमें रोगीको शूलकी समान पीडा, अफरा, नाना प्रकारकी वातज पीडा, मल और वायुका न निकलना, उदरकी स्तब्धता, इंद्रियोंमें मोह और शरीरमें पीडा ये सब लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

विदग्धाजीर्णके लक्षण ।

विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा रुजः ।
उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते ॥ ८ ॥

भाषा-विदग्धाजीर्णमें भ्रम, पियास, मूर्च्छा, अनेक प्रकारकी पित्तज पीडा, धूंएके साथ खट्टी डकार आवें, पसीना आवे और दाह हो ॥ ८ ॥

रसशेषाजीर्णके लक्षण ।

रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धिगौरवे ॥ ९ ॥

भाषा-रसशेषअजीर्णमें अन्नसे द्वेष, हृदयमें जडता और भारीपन हो ॥ ९ ॥

अजीर्णके उपद्रव ।

मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः ।
उपद्रवा भवन्त्येते मरणं वाप्यजीर्णतः ॥ १० ॥

भाषा-अजीर्णरोगीके मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, लारका गिरना, दुर्बलता और भ्रम ये सब उपद्रव होते हैं । अजीर्ण अत्यन्त बढ जाय तो मरनेतककी नौबत पहुँचती है ॥ १० ॥

बहुत भोजन किये हुए अजीर्णका हेतु ।

अनात्मवन्तः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः ।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ॥ ११ ॥

भाषा-जो लोभी मनुष्य जिह्वाके वश होकर पशुकी समान बेप्रमाण भोजन करते हैं उनके सर्व रोगोंका कारण अजीर्ण रोग शीघ्र उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥

अथ विषूचिका।

अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम्।
विषूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका ॥ १२ ॥

भाषा-ऊपरोक्त आम, विष्टब्ध और विदग्धाजीर्णसे विषूची, अलसक और विलम्बिकाकी उत्पत्ति होती है ॥ १२ ॥

विषूचिकाकी निरुक्ति।

सूचीभिरिव गात्राणि तुदन् सन्तिष्ठतेऽनिलः।
यस्याजीर्णेन सा वैद्यैर्विषूचीति निगद्यते ॥ १३ ॥

भाषा-जिस रोगमें अजीर्णके कारण वायु सुईके चुभानेकी समान पीड़ा देवे अर्थात् सुईसी चुभे उसको विषूचिका कहते हैं। जो मनुष्य प्रमाणके माफिक भोजन करते हैं और वैद्यशास्त्रके अनुसार चलते हैं, उनको यह भयंकर विषूचिका रोग कदापि उत्पन्न नहीं होता है ॥ १३ ॥

न तां परिमिताहारा लभन्ते विदितागमाः।
मूढास्तामजितात्मानो लभन्तेऽशनलोलुपाः ॥ १४ ॥

भाषा-जिनको अज्ञानी (भक्षाभक्षका ज्ञान नहीं) अजितेन्द्रिय और जो आहारके लोभी हैं, ऐसे मनुष्योंके यह विषूचिका रोग अवश्य उत्पन्न होता है ॥१४॥

विषूचिकाके लक्षण।

मूर्च्छातिसारो वमथुः पिपासा शूलो भ्रमोद्वेष्टनजृम्भदाहाः।
वैवर्ण्यकम्पौ हृदये रुजश्च भवन्ति तस्यां शिरसश्च भेदः ॥ १५ ॥

भाषा-विषूचिकारोगमें पेटमें दर्द होकर अत्यन्त मल, रेचन और वमन होती है। रोगीके दाह, पियास, छाती और माथेमें पीड़ा, भ्रम, मूर्च्छा, कम्प और जम्भाई होती है तथा शरीर विवर्ण हो जाता है ॥ १५ ॥

अलसके लक्षण।

कुक्षिरानह्यतेऽत्यर्थं प्रताम्येत्परिकूजति। निरुद्धो मारुतश्चैव
कुक्षावुपरि धावति ॥ वातवर्चोनिरोधश्च यस्यात्यर्थं भवेदपि।
तस्यालसकमाचष्टे तृष्णोद्गारौ च यस्य तु ॥ १६ ॥

भाषा-अलसक रोगमें अत्यन्त कोष्ठ बद्ध हो, वात रुककर अफरेकी उत्पत्ति करे तथा वायु ऊर्ध्वगत होकर कोखके ऊपर कंठतक गमन करे, रोगी तृषा और डकारोंसे पीड़ित हो तथा अत्यन्त कष्ट होनेके कारण रोगी आर्तनाद करे ॥ १६ ॥

विलंबिकाके लक्षण ।

दुष्टं तु भुक्तं कफमारुताभ्यां प्रवर्त्तते नोर्द्ध्वमधश्च यस्य । विलम्बिकां तां भृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षते शास्त्रविदः पुराणाः ॥ यत्रस्थमामं विरुजेत्तमेव देशं विशेषेण विकारजातैः । दोषेण येनावततं शरीरं तल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ॥ १७ ॥

भाषा–जिस रोगमें कफ और वायु करके आहार दूषित होकर ऊर्द्ध्व और अधोद्वारा निर्गत अर्थात् न वमन हो और विरेचन हो बीचमें रुक जाय उसको प्राचीनवैद्य विलम्बिका कहते हैं । यह रोग दुश्चिकित्स्य है । आम (अपक्वरस) शरीरके जिस स्थानमें रहता है, उस स्थानमें विशेषरूपसे वेदना होती है । फिर जो दोष जायकर आक्रमण करता है उसके लक्षण और आमसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण विकारोंके लक्षण होते हैं ॥ १७ ॥

विषूचिका और अलसक इनके असाध्य लक्षण ।

यः श्यावदंतौष्ठनखोऽल्पसंज्ञो वम्यर्दितोऽभ्यन्तरयातनेत्रः । क्षामः स्वरः सर्वविमुक्तसन्धिर्यायान्नरोऽसौ पुनरागमाय ॥ १८ ॥

भाषा–जिस विषूचिका या अलसकग्रस्त रोगीके दांत, होंठ और नखून श्याम हो जांय मूर्च्छा, मोह, वमन, क्षीण स्वर और सम्पूर्ण संधि शिथिल हो जांय और दोनों आंखें भीतर घुस जांय उस मनुष्यकी मृत्यु होती है ॥ १८ ॥

जीर्णाहारलक्षणम् ।

उद्गारशुद्धिरुत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः ।
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ १९ ॥

भाषा–शरीर और मनमें उत्साह हो, डकार शुद्ध आवे, शरीर हलका हो क्षुधा और पियास हो तथा मल मूत्रका अच्छे प्रकारसे प्रवर्त्तन हो ये सब अजीर्ण जीर्ण होनेके लक्षण हैं ॥ १९ ॥

इति अग्निमान्द्याजीर्णादिरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथाग्निमान्द्याजीर्णादिरोगचिकित्सा।

अजीर्णान्तकर अभयामोदकः।

अभया सैन्धवं शुण्ठीरेतत् पिष्टोदकेन तु। भक्षयित्वा त्वजीर्णस्य नाशो भवति शंकर॥ हरीतकी समगुड़ा मधुना सह योजिता। विरेचनकरी रुद्र भवतीति न संशयः॥ जातीमूलं तक्रपीतं कोलीमूलन्तु जीविकाम्। श्वेतापराजितामूलं हरिद्रा सिक्थतंडुलम्॥ अपामार्गस्त्रिकटुकमेषान्तु वटिका शिव। विषूचिकां महाव्याधिं हरत्येव न संशयः॥ जग्ध्वा कृष्णतिलान्येव नवनीतयुतानि च। यवक्षारं शुंठीचूर्णं भुक्तं तुल्यं घृतान्वितम्॥ लीढमग्निं करोत्येष प्रत्यूषे वृषभध्वज। शुण्ठ्या च क्वथितं वारि पीतं चाग्निं करोति च॥ हरीतकी सैन्धवं च चित्रकं रुद्र पिप्पली। चूर्णमुष्णोदकेनैषां पीतं चातिक्षुधाकरम्॥ साज्यं शूकरमांसं वै पीतं चातिक्षुधाकरम्। चित्रकस्याष्टभागानि शूरणस्य च षोडश॥ शुण्ठ्याश्चत्वारि भागानि मरिचानां द्वयं तथा। पिप्पली पिप्पलीमूलं विडंगानां चतुष्टयम्॥ अष्टौ मूसलिभागाश्च त्रिफलायाश्चतुष्टयम्। द्विगुणेन गुडेनैषां मोदकानि हि कारयेत्॥ तद्भक्षणमजीर्णं हि पांडुरोगं च कामलाम्। अतिशोणितमन्दाग्निप्लीहाद्याश्च निवारयेत्॥ २०॥

भाषा—हरड, सेंधानोन और सोंठ इन सबको समान भाग लेकर जलमें पीसकर सेवन करनेसे अजीर्णरोग नष्ट होता है। हरड और गुड समानभाग लेकर सहतके साथ सेवन करनेसे दस्त खुलकर आता है। चमेलीकी जड अथवा चिढाटीकी जडको पीसकर मट्ठेके साथ पीनेसे अजीर्णरोग दूर होता है। सफेद अपराजिताकी जड, हलदी, मोम, चावल, चिरचिरा, काली मिरच, पीपल और सोंठ इन सबको एकत्र पीसकर वटिका बना लेवे इन गोलियोंको सेवन करनेसे महाभयंकर विषूचिका रोग दूर होता है। काले तिल, नवनीत, जवाखार और सोंठका चूर्ण समानभाग एकत्रित पीसे और समानभाग घृत मिलाकर प्रतिदिन प्रातःकाल चाटकर

सेवन करे तो अग्नि दीपन होती है। दो तोले सोंठको आध सेर जलमें औटावे जब आध पाव जल शेष रह जाय तब उतार लेय, पश्चात् इस जलको सेवन करे तो अग्नि अत्यन्त दीपन हो। हरड, सैंधानोन, चीता और पीपल इनका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे अत्यन्त क्षुधा लगती है। घीके साथ सूकरके मांसको सेवन करनेसे अत्यन्त भूक लगती है। चीता ८ भाग, जमीकंद १६ भाग, सोंठ ४ भाग, काली मिरच २ भाग, पीपल ४ भाग, पीपरामूल ४ भाग, वायविडंग ४ भाग, मूसली ८ भाग, त्रिफला ४ भाग और सब औषधियोंकी समान गुड लेवे, सबको मिलाकर मोदक बनावे। इन मोदकोंको भक्षण करनेसे अजीर्ण, पाण्डुरोग, कामला, रुधिरविकार, अत्यन्त मंदाग्नि और प्लीहादि रोग दूर होते हैं ॥ २० ॥

श्रीरामबाणो रसः।

पारदामृतलवङ्गगंधकं भागयुग्मं मरिचेन मिश्रितम्। जातीफलमर्द्धभागिकं तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम् ॥ वह्निमांद्यदशवक्रनाशनो रामबाण इति विश्रुतो रसः। संग्रहग्रहणिकुम्भकर्णकं सामवातखरदूषणं जयेत् ॥ दीयते तु चणकानुमानतः श्वासकासवमिजन्तुनाशनः ॥ हरीतकी तथा शुण्ठी भक्ष्यमाणा गुडेन वा। सैन्धवेन युता वा स्यात् सातत्येनाग्निदीपनी ॥ २१ ॥

भाषा-पारेकी भस्म १ भाग, लौंग १ भाग, गंधक १ भाग, काली मिरच २ भाग और जायफल आधा भाग, सबको एकत्र मिलाकर इमलीके रसमें खरल करे तो श्रीरामबाण रस तैयार हो। यह श्रीरामबाणरूपी रस, मंदाग्निरूपी दशानन, संग्रहणीरूपी कुम्भकर्ण और आमवातरूपी खरदूषणको नष्ट करे है। इसको चनेकी बराबर देना चाहिये। श्वास, खांसी, वमन और कृमिको दूर करे है। हरड या सोंठको गुड व सैंधानोनके साथ सेवन करनेसे अग्नि दीपन होती है ॥ २१ ॥

अग्निसन्दीपनचूर्णम्।

एलात्वङ्नागपुष्पाणां मात्रोत्तरविवर्द्धितम्। मरिचं पिप्पली शुण्ठी चतुः पञ्च षडुत्तरम् ॥ द्रव्याण्येतानि यावन्ति तावन्ति शीतशर्करा। चूर्णमेतत् प्रयोक्तव्यमग्निसंदीपनं परम् ॥ २२ ॥

भाषा-इलायची १ भाग, दालचीनी २ भाग, नागकेशर ३ भाग, काली मिरच ४ भाग, पीपल ५ भाग और सोंठ ६ भाग और सब औषधियोंकी समान शर्करा, सबको एकत्र पीसकर चूर्ण कर लेवे। इस चूर्णको सेवन करनेसे अग्नि अत्यन्त दीपन होती है ॥ २२ ॥

अमृतवटिका ।

अमृतवराटकमरिचैर्द्विपंचनवभागिकैः क्रमशः ।
वटिका क्षुद्रसमाना कफपित्ताग्निमान्द्यहारिणी ॥ २३ ॥

भाषा-विष २ भाग, कौडी ५ भाग और काली मिरच ८ भाग सबको एकत्र पीसकर मूंगकी बराबर गोली बना लेवे। इन गोलियोंको सेवन करनेसे कफ, पित्त, मंदाग्नि दूर होती है ॥ २३ ॥

क्षुधासागररसः ।

त्रिकटु त्रिफला चैव तथा लवणपंचकम् । क्षारत्रयं रसं गन्धं भागेकं पूर्ववद्विषम् ॥ गुंजामात्रां वटीं कुर्यात् लवङ्गैः पंचभिः सह । क्षुधासागरनामायं रसः सूर्येण निर्मितः ॥ २४ ॥

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला, पांचों नोन (कालानोन, सैंधानोन, सामरनोन, बिडनोन, कचियानोन), तीनों क्षार (जवाखार, सोरा, सज्जी), पारा और गंधक प्रत्येक एक भाग, विष २ भाग और लौंग ५ भाग इन सबको एकत्र पीसकर एक एक गुंजाकी गोलियां बना लेवे। इसको क्षुधासागर रस कहते हैं। यह अत्यन्त क्षुधाको बढाता है यह सूर्यदेवने निर्माण किया है ॥ २४ ॥

जीरकगुणाः ।

जीरकं रुचिकृत् शौर्य्यं गंधाढ्यं कफवातनुत् । विपाके कटु तीक्ष्णोष्णं लघुपित्ताग्निवर्द्धनम् ॥ अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणार्द्रकभक्षणम् ॥ २५ ॥

भाषा-जीरा रुचिकारक, बलकारक, सुगंधित, कफवातनाशक, पचनेमें कटु और तीक्ष्ण, गरम, हलका, पित्त और अग्निको बढानेवाला है। लवणके साथ अदरखका सेवन करे तो अग्निको दीपन करनेवाला और हृदयको हितकारी है ॥ २५ ॥

इत्यग्निमान्द्याजीर्णादिरोगचिकित्सा समाप्ता ।

---

१ पूर्वोक्तिक्रमेणामृतकंचुकंरूपं गन्धकं, तेषामत्र विषस्य भागद्वयम् ।

अथ कृमिरोगनिदानम् ।

अथ कृमीणां निर्णयं कुर्वन्नाह ।

कृमयश्च द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः । बहिर्मलकफासृग्विट्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ॥ नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः । तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः ॥ बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूकालिक्षादिनामतः । द्विधा ते कुष्ठपिटिकाकंडूगंडान् प्रकुर्वते ॥ १ ॥

भाषा-कृमिरोग बाह्य और अभ्यन्तर इन भेदोंसे दो प्रकारका है । तहां बाह्यकृमिरोग मल, कफ, रुधिर और पुरीषसे उत्पन्न होनेके भेदसे चार प्रकारका है और नामभेदसे वह वीस प्रकारका है । तहां बाह्य शरीरके स्वेदादि मलसे उत्पन्न हुई कृमिकी आकृति और रंग तिलकी समान होता है वह केश और वस्त्रोंमें रहती है तथा उनमें बहुत पांववाली कृमिको जूं और सूक्ष्म कृमिको लीख कहते हैं । इन जूं और लीखोंसे कोढ, पिडिका, कण्डू और स्फोटकादि रोगोंकी उत्पत्ति होती है ॥ १ ॥

अथ तेषां निदानमाह ।

अजीर्णभोजी मधुराम्लनित्यो द्रवप्रियः पिष्टगुडोपभोक्ता ।
व्यायामवर्ज्जी च दिवाशयानो विरुद्धभुक्स लभते कृमींस्तु ॥ २ ॥

भाषा-आभ्यन्तरिक कृमि अजीर्ण मधुर और सदैव खट्टे पदार्थोंके सेवन करनेसे होती है तथा अधिकतर पतले पदार्थ सेवन करनेसे, पिष्टकादि पदार्थोंको भक्षण करनेसे, विरुद्ध आहार करनेसे तथा कसरत नहीं करनेसे और दिनमें सोनेसे कृमिरोग उत्पन्न होता है ॥ २ ॥

अथ कृमिविशेषे निदानविशेषमाह ।

माषपिष्टान्नलवणगुडशाकैः पुरीषजाः ।
मांसमत्स्यगुडक्षीरदधिशुक्तैः कफोद्भवाः ॥
विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैः शोणितोत्था भवन्ति हि ॥ ३ ॥

भाषा-उडद, पिष्टकादि, नमकीन, गुडके बने पदार्थ और शाकादिके सेवन करनेसे मलकी कृमि उत्पन्न होती है । मांस, उडद, गुड, दूध, दही और कांजीके

सेवन करनेसे कफकी कृमि उत्पन्न होती है। विरुद्ध पदार्थ और कच्चे तथा पक्के शाक आदि पदार्थ सेवन करनेसे रक्तज कृमिरोग उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

अथाभ्यन्तरकृमिलक्षणमाह ।

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ।
भक्तद्वेषोतिसारश्च सञ्जातकृमिलक्षणम् ॥ ४ ॥

भाषा–जिस मनुष्यके पेटमें कृमि उत्पन्न होती हैं उसके ज्वर, शरीरमें विवर्णता, उदरमें शूलकी समान पीडा, हृदयरोग, वमनकी तरह इच्छा होना, भ्रम, अरुचि और अतीसार ये सब लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

अथ कफजकृमिलक्षणमाह ।

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः । पृथुब्रध्ननिभाः केचित्केचिद्गण्डूपदोपमाः ॥ रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाणवः । श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते ॥ ५ ॥

भाषा–कफसे आमाशयमें कृमि बढ जाते हैं तब वे शरीरके सर्व स्थानोंमें गमन करते हैं इनमें कितनी एक तो विस्तृत और सूर्यमण्डलकी समान गोलाकार वा चमडेकी समान चिपटी और लम्बी, कितनी एक केंचुवेकी समान, कितनी एक धान्यकी अंकुरकी समान, लम्बी और वारीक इनमें कोई सफेद प्रभावाली और कोई तांबेकी समान लाल, यह नामभेदसे सात प्रकारकी हैं ॥ ५ ॥

अथ अस्य सप्त नामानि उपद्रवांश्च विवृणोति ।

अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुदाः । चुरवो दर्भकुसुमाः सुगंधास्ते च कुर्वते ॥ हृल्लासमास्यश्रवणमविपाकमरोचकम् । मूर्च्छाछर्दिज्वरानाहकार्श्यक्षवथुपीनसान् ॥ ६ ॥

भाषा–अंत्राद १,उदरावेष्ट २,हृदयाद ३,महागुद ४, चुरु ५,दर्भकुसुम ६, सुगंध ७। इनके होनेसे वमनकेसी इच्छा होय, मुखमें पानी भर आवे, अन्न अच्छे प्रकारसे नहीं पचे, अरुचि, मूर्छा, वमन, तृषा, अफरा, कृशता, सूजन और पीनस इत्यादि विकार होते हैं ॥ ६ ॥

अथ रक्तजानाह ।

रक्तवाहिशिरास्थानरक्तजा जन्तवोणवः । अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥ केशादा रोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः । षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमातरः ॥ ७ ॥

भाषा–शाकादि और विरुद्ध तथा अजीर्णकारक द्रव्योंके भोजन करनेसे रक्तज कृमिरोग उत्पन्न होता है। यह कृमि रक्तवाहक शिराओंमें स्थित जो रक्त है उससे उत्पन्न होता है। ये कृमि अत्यन्त सूक्ष्म, पांवरहित, गोल और तांबेकी समान रंगवाली होती हैं। इनमें बहुतसी अत्यन्त बारीक होनेके कारण दीखती नहीं हैं। ये नामभेदोंसे छः प्रकारके हैं। जैसे केशाद १, रोमविध्वंस २, रोमद्वीप ३, उडुम्बर ४, सौरस ५ और मातृ ६ यह कुष्ठको उत्पन्न करती है। उडद, पिष्टक, खटाई, नमक, गुड और शाकादि भक्षण करनेसे पुरीषज कृमिकी उत्पत्ति होती है ॥ ७ ॥

अथ पुरीषजानाह।

पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधो विसर्पिणः। वृद्धास्ते स्युर्भवेयुश्च ते यदामाशयोन्मुखाः॥ तदास्योद्गारनिःश्वासा विड्गंधानुविधायिनः। पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः॥ ते पंच नाम्ना कृमयः ककेरुकमकेरुकाः। सौसुरादा मलूनाख्या लेलिहा जनयन्ति हि॥ विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः। रोमहर्षाग्निसदनं गुदकण्डूर्विमार्गगाः॥ ८॥

भाषा– पुरीषज कृमि पक्वाशयमें उत्पन्न होकर अधोमार्गसे निकलती हैं। जब यह बढकर आमाशयमें गमन करती हैं तब रोगी विष्ठाकी समान गंधवाली डकार और श्वासको छोडता है। ये कृमि बडी, छोटी, गोल, मोटी, काली, पीली, नीली और सफेद होती हैं। इनके पांच नामभेद हैं। जैसे ककेरुक १, मकेरुक २, सौसुराद ३, मलून ४ और लेलिह ५। ये कृमि विमार्गगामी होकर विरेचन, शूल, विष्टम्भ, शरीरमें कृशता, कर्कशता, पाण्डुता, रोमहर्ष, मंदाग्नि और गुदामें खुजली उत्पन्न करते हैं॥ ८॥

इति कृमिरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ कृमिरोगचिकित्सा।

अथ पानम्।

बदरीकारवीमूलं गुडाज्येन समन्वितम्।
अग्निना साधितं जग्ध्वा कृमीन् सर्वान् व्यपोहति॥ ९॥

भाषा–बेरकी जड, चिरचिटेकी जड और गुड इन सबको समान भाग ले-

कर जलमें पीस लेवे फिर उसमें घृत मिलाकर पीनेसे सर्व प्रकारके कृमिरोग दूर होते हैं ॥ ९ ॥

मुस्तादि काढा ।

मुस्ताखुपर्णीफलदारुशिग्रुक्काथः सकृष्णकृमिशत्रुकल्कः ।
मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान् कृमीन् निहन्यात् कृमिजांश्च रोगान् ॥ १० ॥

भाषा—नागरमोथा, मूषाकानी, त्रिफला, देवदारु और सहजना इनके काथमें पीपल और वायविडंगका चूर्ण डालकर पीनेसे उर्ध्वगामी और अधोगामी कृमि और कृमिजन्यरोग दूर होते हैं ॥ १० ॥

कीटमर्दो रसः ।

शुद्धसूतं तथा गन्धमजमोदा विडंगकम् । विषमुष्टिर्ब्रह्मबीजं क्रमाद्विगुणं भवेत् ॥ चूर्णयेन्मधुना लेह्यमुष्णतोयं पिबेदनु । कीटमर्दो रसो नाम सर्वकीटकुलान्तकः ॥ ११ ॥

भाषा—शुद्ध पारा, गंधक और अजमोद सब समानभाग, कुचिला २ भाग और ढांकके बीज तीन भाग इन सबका एकत्रित चूर्ण करके गोली बना लेवे। इन गोलियोंको सहत और गरम जलके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कृमिरोग दूर होते हैं । इसको कीटमर्द रस कहते हैं ॥ ११ ॥

कालानलरसः ।

विडङ्गं द्विपलं चैव विषचूर्णं तदर्द्धकम् । लोहचूर्णं तदर्द्धं च तदर्द्धं शुद्धपारदम् ॥ रसतुल्यं शुद्धगन्धं छागीदुग्धेन पेषयेत् । छायाशुष्कां वटीं कृत्वा खादेत् षोडशरक्तिकाम् ॥ धान्यजीरानुपानेन नाम्ना कालानलो रसः। उदरस्थं कृमिं हन्याद्ग्रहण्यर्शःसमन्वितम् ॥ अग्निदः शोथशमनो गुल्मप्लीहोदरा[illegible] । गहनानन्दनाथेन भाषितो विश्वसम्पदे ॥ १२ ॥

भाषा—वायविडंग १६ तोले, मीठा विष ८ तोले, लोहेका चूर्ण ४ तोले, शुद्ध गंधक और शुद्ध पारा प्रत्येक दो दो तोले लेकर बकरीके दूधमें पीस लेवे, फिर छायामें सुखाकर सोलह सोलह रत्तीकी गोलियां बना लेवे । अनुपान धनिया और जीरा । इसका नाम कृमिकालानल रस है । इस औषधिको सेवन करनेसे उदरमें स्थित सर्व कृमि नष्ट हो जाते हैं। तथा संग्रहणी, बवासीर, सूजन, प्लीहा और उदर-

रोग दूर होते हैं । श्रीमान् गहनानन्दनाथने जगत्के उपकारके लिये यह औषधि कही है ॥ १२ ॥

कृमिविनाशो रसः ।

शुद्धसूतं समं गन्धमभ्रं लोहं मनःशिलाम् । धातकीं त्रिफलां लोध्रं विडंगं रजनीद्वयम् ॥ भावयेत् सप्तधा सर्वं शृङ्गवेरभवे रसैः। चणमात्रां वटीं कृत्वा त्रिफलारससंयुताम् ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय कृमिरोगोपशान्तये । वातिकं पैत्तिकं हन्ति श्लैष्मिकं च त्रिदोषजम् ॥ कृमिविनाशनामायं कृमिरोगकुलान्तकः ॥ १३ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, अभ्रक, लोहा, मैनशिल, धायके फूल, त्रिफला, लोध, वायविडंग, हलदी और दारुहलदी ये सब समान भाग लेकर अदरखके रसकी सात भावना देवे, फिर चनेकी समान गोली बनाकर त्रिफलेके रसके साथ प्रातःकाल मुख धोकर भक्षण करे । इससे वातिक, श्लैष्मिक, त्रिदोषज और सर्व प्रकारके कृमिरोग दूर होते हैं । यह कृमिरोग दूर करनेके लिये और कृमिकुलान्तके लिये कृमिविनाशक रस कहा है ॥ १३ ॥

कृमिरोगारिरसः ।

सूतं गन्धं मृतं लोहं मरिचं विषमेव च । धातकीं त्रिफलां शुण्ठीं मुस्तकं सरसांजनम् ॥ त्रिकटुं मुस्तकं पाठां वालकं बिल्वमेव च । भावयेत्सर्वमेकत्र स्वरसैर्भृङ्गजैस्ततः ॥ वराटिकाप्रमाणेन भक्षणीयो विशेषतः । कृमिरोगविनाशाय रसोऽयं कृमिनाशनः ॥ १४ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, लोहेकी भस्म, काली मिरच, विष, धायके फूल, त्रिफला, सोंठ, नागरमोथा, रसौत, त्रिकुटा, मोथा, पाठ, सुगंधवाला और बेलगिरी इन सबोंको समान भाग लेकर भांगरेके रसमें भावना देवे । प्रतिदिन कौडीकी बराबर इसको भक्षण करे। यह कृमिरोगनाश करनेके लिये कृमिनाशनरस कहा है ॥ १४ ॥

कृमिघ्नो रसः ।

**कृमिघ्नं किंशुकारिष्टबीजं सुरसभस्मकम् ।
वल्लद्वयं चाखुपर्णीरसैः कृमिविनाशनम् ॥ १५ ॥**

कर जलमें पीस लेवे फिर उसमें घृत मिलाकर पीनेसे सर्व प्रकारके कृमिरोग दूर होते हैं ॥ ९ ॥

मुस्तादि काढा ।

मुस्ताखुपर्णीफलदारुशिग्रुक्वाथः सकृष्णकृमिशत्रुकल्कः ।
मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान् कृमीन् निहन्यात् कृमिजांश्च रोगान् १०

भाषा–नागरमोथा, मूषाकानी, त्रिफला, देवदारु और सहजना इनके काथमें पीपल और वायविडंगका चूर्ण डालकर पीनेसे उर्ध्वगामी और अधोगामी कृमि और कृमिजन्यरोग दूर होते हैं ॥ १० ॥

कीटमर्दो रसः ।

शुद्धसूतं तथा गन्धमजमोदा विडंगकम् । विषमुष्टिब्रह्मबीजं क्रमाद्वित्रिगुणं भवेत् ॥ चूर्णयेन्मधुना लेह्यमुष्णतोयं पिबेदनु । कीटमर्दो रसो नाम सर्वकीटकुलान्तकः ॥ ११ ॥

भाषा–शुद्ध पारा, गंधक और अजमोद सब समानभाग, कुचिला २ भाग और ढांकके बीज तीन भाग इन सबका एकत्रित चूर्ण करके गोली बना लेवे। इन गोलियोंको सहत और गरम जलके साथ सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कृमिरोग दूर होते हैं । इसको कीटमर्द रस कहते हैं ॥ ११ ॥

कालानलरसः ।

विडङ्गं द्विपलं चैव विषचूर्णं तदर्द्धकम् । लोहचूर्णं तदर्द्धं च तदर्द्धं शुद्धपारदम् ॥ रसतुल्यं शुद्धगन्धं छागीदुग्धेन पेषयेत् । छायाशुष्कां वटीं कृत्वा खादेत् षोडशरक्तिकाम् ॥ धान्यजीरानुपानेन नाम्ना कालानलो रसः। उदरस्थं कृमिं हन्याद्ग्रहण्यर्शः-समन्वितम् ॥ अग्निदः शोथशमनो गुल्मप्लीहोदरान् जयेत् । गहनानन्दनाथेन भाषितो विश्वसम्पदे ॥ १२ ॥

भाषा–वायविडंग १६ तोले, मीठा विष ८ तोले, लोहेका चूर्ण ४ तोले, शुद्ध गंधक और शुद्ध पारा प्रत्येक दो दो तोले लेकर बकरीके दूधमें घोट लेवे, फिर छायामें सुखाकर सोलह सोलह रत्तीकी गोलियां बना लेवे। अनुपान धनिया और जीरा । इसका नाम कृमिकालानल रस है । इस औषधिको सेवन करनेसे उदरमें स्थित सर्व कृमि नष्ट हो जाते हैं। तथा संग्रहणी, बवासीर, सूजन, तिल्ली और उदर-

रोग दूर होते हैं। श्रीमान् गहनानन्दनाथने जगत्के उपकारके लिये यह औषधि कही है॥ १२॥

कृमिविनाशो रसः।

शुद्धसूतं समं गन्धमभ्रं लोहं मनःशिलाम्। धातकीं त्रिफलां लोध्रं विडंगं रजनीद्वयम्॥ भावयेत् सप्तधा सर्वं शृङ्गवेरभवै रसैः। चणमात्रां वटीं कृत्वा त्रिफलारससंयुताम्॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय कृमिरोगोपशान्तये। वातिकं पैत्तिकं हन्ति श्लैष्मिकं च त्रिदोषजम्॥ कृमिविनाशनामायं कृमिरोगकुलान्तकः॥ १३॥

भाषा-शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, अभ्रक, लोहा, मैनशिल, धायके फूल, त्रिफला, लोध, वायविडंग, हलदी और दारुहलदी ये सब समान भाग लेकर अदरखके रसकी सात भावना देवे, फिर चनेकी समान गोली बनाकर त्रिफलेके रसके साथ प्रातःकाल मुख धोकर भक्षण करे। इससे वातिक, श्लैष्मिक, त्रिदोषज और सर्व प्रकारके कृमिरोग दूर होते हैं। यह कृमिरोग दूर करनेके लिये और कृमिकुलान्तके लिये कृमिविनाशक रस कहा है॥ १३॥

कृमिरोगारिरसः।

सूतं गन्धं मृतं लोहं मरिचं विषमेव च। धातकीं त्रिफलां शुण्ठीं मुस्तकं सरसांजनम्॥ त्रिकटुं मुस्तकं पाठां वालकं बिल्वमेव च। भावयेत्सर्वमेकत्र स्वरसैर्भृङ्गजैस्ततः॥ वराटिकाप्रमाणेन भक्षणीयो विशेषतः। कृमिरोगविनाशाय रसोऽयं कृमिनाशनः॥ १४॥

भाषा-शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, लोहेकी भस्म, काली मिरच, विष, धायके फूल, त्रिफला, सोंठ, नागरमोथा, रसौत, त्रिकुटा, मोथा, पाढ, सुगंधवाला और बेलगिरी इन सबोंको समान भाग लेकर भांगरेके रसमें भावना देवे। प्रतिदिन कौडीकी बराबर इसको भक्षण करे। यह कृमिरोगनाश करनेके लिये कृमिनाशनरस कहा है॥ १४॥

कृमिघ्नो रसः।

कृमिघ्नं किंशुकारिष्टबीजं सुरसभस्मकम्।
वल्लद्वयं चाखुपर्णीरसैः कृमिविनाशनम्॥ १५॥

भाषा-वायविडंग, ढाकके बीज, नीमके बीज, तुलसीके पत्तोंकी भस्म ये सब द्रव्य समान भाग लेकर मूषाकर्णीके रसमें खरल करे। इसको छः रत्ती प्रमाण सेवन करनेसे कृमिरोग दूर होता है ॥ १५ ॥

कृमिमुद्गररसः ।

क्रमेण वृद्धं रसगन्धकाजमोदा विडंगं विषमुष्टिका च। पलाशबीजं च विचूर्णमस्य निष्कप्रमाणं मधुनावलीढम् ॥ पिबेत् कषायं धनजं तदूर्द्ध्वं रसोयमुक्तः कृमिमुद्गराख्यः। कृमिं निहन्यात् कृमिजांश्च रोगान् सन्दीपयत्यग्निमयं त्रिरात्रात् ॥ १६ ॥

भाषा- पारा १ भाग, गंधक २ भाग, अजवायन ३ भाग, वायविडंग ४ भाग, कुचिला ५ भाग, ढाकके बीज ६ भाग इन सबोंको एकत्र पीसकर चूर्ण कर लेवे। चार मासे इस चूर्णको सहतके साथ चाटे, ऊपरसे मोथेका काथ पीवे । इसका नाम कृमिमुद्गर रस है । यह औषधि सर्वप्रकारके कृमियोंको नष्ट करके तीन दिनमें अग्निको दीपन करती है ॥ १६ ॥

कृमिधूलिजलप्लवो रसः ।

पारदं गन्धकं शुद्धं वंगं शंखं समं समम्। चतुर्णां योजयेत्तुल्यं पथ्याचूर्णं भिषग्वरः ॥ दण्डयन्त्रेण निर्म्मथ्य पटोलस्वरसं क्षिपेत्। कार्पासबीजसदृशीं वटिकां कुरु यत्नतः ॥ त्रिवटीं भक्षयेत्प्रातः शीततोऽयं पिबेदनु। केवलं पैत्तिके योज्यः कदाचिद्वातपैत्तिके ॥ श्रीमद्गहननाथोक्तः कृमिधूलिजलप्लवः ॥ १७ ॥

भाषा-पारा, गंधक, वंग और शंखकी भस्म प्रत्येक एक तोला, हरड़का चूर्ण ४ तोले, सबोंको एकत्र पीसकर पटोलका रस डालकर उत्तम विधि दंडयंत्रसे मर्दन करे, फिर कपासके बीज अर्थात् बिनोलेकी बराबर गोलियां बना लेवे। प्रातःकाल यह तीन गोली खाकर ऊपरसे शीतल जलपान करे। पैत्तिक कृमिरोगमें यह औषधिप्रयोग और वातपैत्तिकमें कभी कभी। इसको कृमिधूलिप्लव रस कहते हैं, यह श्रीमान् गहननाथने निर्म्माण की है ॥ १७ ॥

कृमिकाष्ठानलो रसः ।

विशुद्धं पारदं गन्धं वंगं तालं वराटकम्। मनःशिलां कृष्णकाचं सोमराजीं विडंगकम् ॥ दन्तीबीजं च जेपालं शिलाटंगणचित्रकम्।

कर्षमात्रं तु प्रत्येकं वज्रीक्षीरेण मर्दयेत् ॥ कलायसदृशीं कृत्वा वटिकां भक्षयेत्ततः । कृमिकाष्ठानलो नाम रसोऽयं परिनिर्मितः ॥ श्लैष्मिके श्लेष्मपित्ते च श्लेष्मवाते च शस्यते ॥ १८ ॥

भाषा-पारा, गंधक, वंग, हरिताल, कौडीकी भस्म, मैनशिल, कृष्णकांच, बावची, वायविडंग, दंतीके बीज, जमालगोटा, मैनशिल, सुहागा और चीता ये सब दो तोले लेकर थूहरके दूधमें एक दिन खरल करे, फिर मटरकी समान गोली बनाकर भक्षण करे इसको कृमिकाष्ठानल रस कहते हैं। कफज, कफपित्तज अथवा वातश्लेष्मज कृमिरोगमें यह औषधि हितकारी है ॥ १८ ॥

विडङ्गलोहम् ।

रसं गन्धं च मरिचं जातीफललवंगकम् । कणां तालं शुण्ठीं टंकं प्रत्येकं भागसम्मितम्॥ सर्वचूर्णसमं लोहं विडंगं सर्वतुल्यकम्॥लोहं विडङ्गकं नाम कोष्ठस्थकृमिनाशनम् ॥ दुर्नाममरुचिं चैव मन्दाग्निं च विषूचिकाम्। शोथं शूलं ज्वरं हिक्कां श्वासं कासं विनाशयेत् ॥ यवानीं लवणोपेतां भक्षयेत् कल्य उत्थितः । अजीर्णमामवातं च कृमिजांश्च जयेद्ध्रुवम् ॥ १९ ॥

भाषा-पारा, गंधक, काली मिरच, जायफल, लौंग, पीपल, हरिताल, सोंठ और सुहागा प्रत्येक एक भाग, लोहेका चूर्ण सबकी समान और वायविडंगका चूर्ण सबके बराबर इन सबोंको एकत्र उत्तम विधिसे खरल करके गोली बना लेवे । इन गोलियोंको भक्षण करनेसे कोष्ठस्थ कृमि नष्ट हों तथा बवासीर, अरुचि, मंदाग्नि, विषूचिका, शोथ, शूल, ज्वर, हिक्का, श्वास और खांसी दूर होती है इसका नाम विडंगलोह है । अजवायन सैंधानोनके साथ प्रातःकाल सेवन करनेसे अजीर्ण, आमवात और कृमिजरोग दूर होते हैं ॥ १९ ॥

लेपः ।

पेषयेदारनालेन नाडीचस्य फलानि च ।
यूकालिक्षाप्रशान्त्यर्थं दद्याल्लेपस्तु मस्तके ॥ २० ॥

भाषा-नाडीके शाकके बीजोंको कांजीमें पीसकर मस्तकपर प्रलेप करनेसे शिरकी लीख जूं मर जाती हैं ॥ २० ॥

इति कृमिरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ पाण्डुकामलाकुम्भकामला-हलीमकरोगनिदानम् ।

अथ पाण्डुरोगभेदमाह ।

पाण्डुरोगाः स्मृताः पंच वातपित्तकफैस्त्रयः ।
चतुर्थः सन्निपातेन पंचमो भक्षणान्मृदः ॥ १ ॥

भाषा-वात, पित्त, कफ, सन्निपात और मृत्तिकाभक्षणोद्भव इस प्रकार पांडुरोग पांच प्रकारका है ॥ १ ॥

अथ तस्य निदानपूर्वकं सामान्यरूपमाह ।

व्यवायमम्लं लवणानि मद्यं मृदं दिवा स्वप्नमतीवतीक्ष्णम् ।
निषेव्यमानस्य प्रदूष्य रक्तं दोषास्त्वचं पाण्डुरतां नयन्ति ॥ २ ॥

भाषा-अत्यन्त मैथुन करनेसे तथा खट्टे, नमकीन, अतिशय तीक्ष्ण, मद्य और मृत्तिका भक्षण करनेसे तथा अत्यन्त दिनमें सोनेसे वायु, पित्त और कफ कुपित होकर शरीरकी त्वचाको पाण्डुवर्ण करते हैं ॥ २ ॥

अथ तस्य पूर्वरूपमाह ।

त्वक्स्फोटनष्ठीवनगात्रसादमृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः ।
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाको भविष्यतस्तस्य पुरःसराणि ॥ ३ ॥

भाषा-त्वचाका फट जाना, मुखसे वारंवार थूकना, अंगोंका जकडना, मृत्तिका खानेकी इच्छा होना, नेत्रोंका सूजना, मल और मूत्र पीले हों, अन्न न पचे ये लक्षण पाण्डुरोगके उत्पन्न होनेसे पूर्व होते हैं ॥ ३ ॥

अथ वातजपाण्डुलक्षणमाह ।

त्वङ्मूत्रनयनादीनां रूक्षकृष्णारुणात्मता ।
वातपांड्वामये तोदकम्पानाहभ्रमादयः ॥ ४ ॥

भाषा-वातज पाण्डुरोगमें त्वचा, मूत्र और नेत्रोंमें रूक्षता, कालापन और लाली होती है । कंप, सुई चुभानेकीसी पीडा और भ्रमादि उपद्रव होते हैं ॥ ४ ॥

पित्तपांडुरोगके लक्षण ।

पीतमूत्रशकृन्नेत्रो दाहतृष्णाज्वरान्वितः ।
भिन्नविट्कोतिपीताभः पित्तपाण्ड्वामयी नरः ॥ ५ ॥

भाषा-पित्तज पाण्डुरोगमें मनुष्यका मूत्र, विष्ठा और नेत्र पीले हो जाते हैं तथा दाह, पियास, ज्वर, पतला दस्त और शरीर पीली कान्तियुक्त हो जाता है ॥ ५ ॥

कफपांडुरोगके लक्षण ।

कफप्रसेकश्वयथुतन्द्रालस्यातिगौरवैः ।
पाण्डुरोगी कफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनाननैः ॥ ६ ॥

भाषा-कफजपाण्डुरोगमें रोगीके कफप्रसेक, शोथ, निद्राकी समान क्लान्ति और शरीरमें आलस्य और अत्यन्त भारीपन तथा चर्म, मुख और नेत्रादि सफेद होते हैं ॥ ६ ॥

संनिपातयुक्त पांडुरोगके असाध्य लक्षण ।

ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः ।
पाण्डुरोगी त्रिभिर्दोषैस्त्याज्यः क्षीणो हतेन्द्रियः ॥ ७ ॥

भाषा-ज्वर, अरुचि, हृल्लास, वमन, पियास, क्षीण और हतेन्द्रिय होता है । वैद्य उस त्रिदोषज पाण्डुरोगीको त्याग देवे ॥ ७ ॥

मृत्तिका भक्षणसे प्रगट पांडुरोगके लक्षण ।

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मलः । काषाया मारुतं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ॥ कोपयेन्मृद्रसादींश्च रौक्ष्याद्भुक्तं च रूक्षयेत् । पूरयत्यविपक्कैव स्रोतांसि निरुणद्ध्यपि॥ इन्द्रियाणां बलं हत्वा तेजोवीर्यौजसी तथा । पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥ ८ ॥

भाषा-मृत्तिका भक्षण करनेवाले मनुष्यके वातादि दोष कुपित होवे, कषैली मृत्तिकासे वात कुपित होती है, खारी मिट्टीसे पित्त कुपित होता है और मधुर मट्टीसे कफ कुपित होता है । फिर वही मट्टी पेटमें जाकर रसादि धातुओंको रूखी करे, फिर वही मृत्तिका पेटमें अपक्व रसको रसके वहनेवाली नसोंमें प्राप्त करे उनके मार्गको रोक दे, रसके वहनेवाली नसोंका जब मार्ग रुक जाय तब इन्द्रियोंका बल अर्थात् अपने अपने विषय ग्रहण करनेकी शक्ति नष्ट होय, शरीरकी कांति, तेज और ओज आदि क्षीण होकर पाण्डुरोगको उत्पन्न कर उसमें बल, वर्ण और अग्निका नाश होता है ॥ ८ ॥

न्वितः । नष्टाग्निसंज्ञं क्षिप्रं हि कामलादान् विपद्यते ॥ १४ ॥

भाषा-जिस कामलारोगीका मल कृष्णवर्ण, पीला और अत्यन्त सूजनयुक्त हो अथवा नेत्र, मुख, मल, मूत्र और वमन रक्तवर्ण हों, एवं मूर्च्छा हो वह रोगी मर जाता है। जिस कामलारोगीके दाह, पियास, अरुचि, अफरा, तन्द्रा, मोह, जठराग्निका नाश और बेहोशी हो वह रोगी अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १४ ॥

कुंभकामलाके असाध्य लक्षण ।

छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः ।
नश्यति श्वासकासार्तो विड्भेदी कुंभकामली ॥ १५ ॥

भाषा-जिस कुम्भकामला रोगीके वमन, अरुचि, हल्लास, कातरता, ज्वर, श्वास, खांसी और अत्यन्त रेचन हो उसको वैद्य त्याग देवे ॥ १५ ॥

हलीमकरोगके लक्षण ।

यदा तु पांडोर्वर्णः स्याद्धरितः श्यावपीतकः । बलोत्साहक्षयस्तन्द्रा मन्दाग्नित्वं मृदुज्वरः॥ स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णारुचिर्भ्रमः । हलीमकं तदा तस्य विद्यादनिलपित्ततः ॥ १६ ॥

भाषा-जब पाण्डुरोगीका रंग हरा, काला, पीला होय; बल और उत्साहका नाश होय, तंद्रा, मंदाग्नि, मृदुज्वर, मैथुनकी इच्छाका नाश, अंगोंका टूटना, दाह, तृषा, अन्नमें अरुचि और भ्रम हो तब हलीमकरोग जानना। यह रोग वातपित्तसे उत्पन्न होता है ॥ १६ ॥

इति पाण्डुकामलादिरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ पांडुकामलाकुम्भकामलाहलीमकरोगचिकित्सा ।

शर्करां मध्वजाक्षीरं तिलं गोक्षुरकं समम् । पांडुत्वं नाशयेद्रुद्र आस्वादितमिदं हर ॥ लोहचूर्णं तक्रपीतं पाण्डुरोगहरं तथा । तंडुलीयकगोक्षूरमूलं पीतं पयोन्वितम् ॥ कामलादिहरं प्रोक्तं मुखरोगहरं तथा । यष्टी मधु शर्करा च वासकस्य रसो मधु ॥ एतत्पीतं रक्तपित्तकामलापाण्डुरोगनुत् । रौप्यताम्रसुवर्णानां

हस्तघृष्टं शलाकया ॥ घृतं तद्वमनं रुद्र कामलाव्याधिनाश-
नम् । घोषाफलमथाघ्रातं निपीतं कामलापहम् ॥ १७ ॥

भाषा–शर्करा, मधु, तिल और गोखरू इनको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर पीनेसे पाण्डुरोग दूर होता है । लोहेके चूर्णको तक्रके साथ पीनेसे पाण्डुरोग दूर होता है। चौलाईकी जड और गोखरूकी जडको दूधमें मिलाकर पीनेसे कामलादि रोग और मुखरोग दूर होता है । मुलहठी, शर्करा, अडूसेका रस और मधु इनको एकत्र मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त, कामला और पाण्डुरोग दूर होता है । चांदी, तांबा और सोनेकी सलाईसे हथेलीपर घृत घिसनेसे वमन होकर कामलारोग दूर होता है। तोरईका नास लेनेसे अथवा पीनेसे कामलारोग दूर होता है॥१७॥

निशालोह ।

लोहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफलारोहिणीयुतम् ।
प्रलिह्यान्मधुसर्पिर्भ्यां कामलापाण्डुशान्तये ॥ १८ ॥

भाषा–लोहचूर्ण, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला और कुटकी इनको एकत्र पीसकर सहत और घृतमें मिलाकर चाटनेसे कामला और पाण्डुरोग दूर होता है॥१८॥

धात्रीलोह ।

धात्री लोहरजो व्योषा सक्षौद्रा च सशर्करा ।
भक्षणात् विनिहन्त्याशु कामलां च हलीमकम् ॥ १९ ॥

भाषा–आमला, त्रिकुटा, मधु और शर्करा ये सब समान भाग और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण, सबको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे कामला और हलीमकरोग दूर होता है ॥ १९ ॥

पंचाननवटी ।

शुद्धं सूतं तथा गन्धं मृतताम्राभ्रगुग्गुलुः । जैपालबीजं तुल्यांशं
घृतेन वटकीकृतम् ॥ भक्षयेद्बदरास्थ्याभं शोथपाण्डुप्रशान्तये ।
पंचाननवटी ख्याता पांडुरोगकुलान्तका ॥ २० ॥

भाषा–शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, तांबेकी भस्म, अभ्रक, गूगल और जमालगोटा इन सबोंको एकत्र पीसकर घृतमें मिलाकर बेरकी गुठलीकी समान गोली बना लेवे । इन गोलियोंको सेवन करनेसे शोथ और पाण्ड्वादि रोग दूर होते हैं । इसको पंचाननवटी कहते हैं ॥ २० ॥

प्राणवल्लभो रसः ।

हिंगूलसम्भवं सूतं गंधकं काश्मिरोद्भवम् । लोहं ताम्रं वराटं च तुल्यं हिंगु फलत्रिकम् ॥ स्नुहिक्षीरं यवक्षारं जैपालं दन्तिकं त्रिवृत् । प्रत्येकं शाणभागं तु छागीक्षीरेण पेषयेत् ॥ चतुर्गुंजां वटीं खादेद्वारिणा मधुना सह । प्राणवल्लभनामायं गहनानन्दभाषितः ॥ श्लेष्मदोषं समालोक्य युक्त्या च वृद्धिवर्द्धनम् । निहन्ति कामलां पाण्डुमानाहं श्लीपदं तथा ॥ गलगंडं गंडमालां व्रणानि च हलीमकम् । शोथं शूलमुरुस्तंभं संग्रहग्रहणीं जयेत् ॥ वान्ति मूर्च्छां भ्रमिं दाहं कासं श्वासं गलग्रहम् । असाध्यं सन्निपातं च जीर्णज्वरमरोचकम् ॥ वातरक्तं तथा शोषं कण्डुं विस्फोटकारुचिम् । नातः परतरं किंचित् कामलार्त्तिरुजापहम् ॥ २१ ॥

भाषा-सिंगरफसे निकाला हुआ पारा, गंधक, केशर, लोहा, तांबा, कौडी, हींग, त्रिफला, थूहरका दूध, जवाखार, जमालगोटा, दंती और निसोत प्रत्येक चार चार मासे लेकर बकरीके दूधमें पीसे। पश्चात् चार चार गुंजाकी गोलियां बना लेवे, प्रतिदिन एक गोली जल और सहतके साथ खा जावे। यह प्राणवल्लभरस श्रीमान् गहनानन्दनाथने निर्माण किया है। श्लेष्मदोषको देखकर इसकी क्रमसे मात्रा बढावे। यह प्राणवल्लभरस कामला, पाण्डु, आनाह, श्लीपद, गलगंड, गण्डमाला, व्रण, हलीमक, शोथ, शूल, ऊरुस्तम्भ, संग्रहणी, वमन, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, खांसी, श्वास, गलग्रह, असाध्य सन्निपात, जीर्णज्वर, अरुचि, वातरक्त, शोष, कण्डु, विस्फोटक और अरुचिको दूर करे है। कामलारोगको हरनेवाली इससे अन्य औषधि नहीं है ॥ २१ ॥

त्रिकत्रयाद्यलोह ।

पलं लोहस्य किट्टस्य पलं गव्यस्य सर्पिषः । सितायाश्च पलं चैकं क्षौद्रस्यापि पलं तथा ॥ तालैकं कान्तलोहस्य त्रिकत्रयसुभावितम् । ततः पात्रे विधातव्यं लोहे च मृण्मये तथा ॥ हविषा भावितं चापि रौद्रे च शिशिरे तथा । भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चापि प्रदापयेत् ॥ अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोष-

बलाबलम् । कामलां पाण्डुरोगं च दारुणं तु हलीमकम् ॥
निहन्ति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २२ ॥

भाषा-मण्डूर, गायका घी, शर्करा और मधु प्रत्येक आठ आठ तोले, कान्तिसार एक तोला, इन सब द्रव्योंको मट्टीके बासनमें अथवा लोहेके बासनमें रखकर त्रिकत्रय (त्रिकुटा, त्रिफला, त्रिजातक) के क्वाथमें भावना देवे, फिर घृतकी भावना देकर धूपमें और छायामें सुखावे, भोजनकी आदिमें, मध्यमें अथवा अन्तमें इस औषधिको सेवन करे । दोषका बलाबल विचारकर योग्य अनुपानके साथ देवे, इस औषधिको सेवन करनेसे कामला, पाण्डु और हलीमकादि रोग दूर हो जाते हैं, इसको त्रिकत्रयाद्यलोह कहते हैं ॥ २२ ॥

विडंगादि लोह ।

विडङ्गमुस्तत्रिफलादेवदारुषडूषणैः । तुल्यमात्रमयश्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ तैरक्षमात्रां गुटिकां कृत्वा खादेद्दिने दिने । कामलापांडुरोगार्तः सुखमाप्यतेऽचिरात् ॥ २३ ॥

भाषा-वायविडंग, नागरमोथा, त्रिफला और देवदारु ये सब एक भाग, त्रिकुटा दो भाग, सब द्रव्योंकी समान लोहेका चूर्ण और लोहेके चूर्णसे आठ गुने गोमूत्रमें इन सब द्रव्योंको एकत्र पकाकर दो दो तोलेकी गोलियां बना लेवे, रोगका बलाबल विचारकर औषधि भक्षण करे । इस औषधिको सेवन करनेसे कामला और पाण्डुरोग आराम होता है इसको विडंगादि लोह कहते हैं ॥ २३ ॥

अपर विडंगादि लोह ।

विडङ्गं त्रिफलां व्योषं शुद्धलोहं तु तत्समम् । पुरातनगुडेनाथ लेहयेद्दिनसप्तकम्॥श्वयथुं नाशयेच्छीघ्रं पांडुरोगं हलीमकम्॥२४॥

भाषा-वायविडंग, त्रिफला, त्रिकुटा ये सब समान भाग और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण लेवे सबको एकत्र पुराने गुडमें मिलाकर सेवन करनेसे सूजन पाण्डु और हलीमकरोग शीघ्रही नष्ट हो जाता है । इसको विडंगादि लोह कहते हैं॥२४॥

चंद्रसूर्यात्मको रसः ।

सूतकं गन्धकं लोहमभ्रकं च पलं पलम् । शंखं वराटकं चैव प्रत्येकार्द्धपलं हरेत् ॥ गोक्षुरबीजचूर्णानि पलैकं तत्र दीयते । सर्वमेकीकृतं चूर्णं बाष्पयन्त्रे विभावयेत् ॥ पटोलं पर्पटं भार्गीं विदारीं शतपुष्पिकाम्।दन्तीं च कुंडलीं वासां काकमाच्येन्द्रवा-

रुणीः ॥ वर्षाभूं केशराजं च शालिंचं द्रोणपुष्पिकाम् । प्रत्ये-
कार्द्धपलैर्द्रावैर्भावयित्वा वटीं कुरु ॥ चतुर्दशवटीं खादेच्छागीदु-
ग्धानुपानतः । गहनानन्दनाथोक्तश्चन्द्रसूर्यात्मको रसः ॥ हली-
मकं निहन्त्याशु पांडुरोगं सकामलम् । जीर्णज्वरं रक्तपित्तमम्ल
पित्तमरोचकम् ॥ शूलं प्लीहोदरानाहमष्ठीलागुल्मविद्रधीन् ।
शोथं मन्दानलं नाम कासं श्वासं वमिं भ्रमिम् ॥ भगन्दरोपदंशं
तु दद्रुकच्छ्वूव्रणानि च । दाहतृष्णाग्रुरुस्तम्भमामवातं कटिग्र-
हम् ॥ युक्त्या मंडनमद्येन मुद्गयूषेण वारिणा । गुडूचीं त्रिफलां
वासां क्वाथनीरेण वा क्वचित् ॥ २५ ॥

भाषा—पारा, गंधक, लोहा और अभ्रक प्रत्येक ४ तोले, शंख और कौडी प्रत्येक दो तोले तथा गोखरूके बीजोंका चूर्ण ४ तोले इन सबको एकत्र पीसकर बाष्पयंत्रमें भावना देवे । पश्चात् पटोल, पित्तपापडा, भारंगी, विदारीकंद, सोया, दंती, गिलोय, अडूसा, मकोय, इन्द्रायन, पुनर्नवा, कुकुरभांगरा, शालिंचशाक और द्रोणपुष्पी (गूमा) प्रत्येकका स्वरस अर्ध पल प्रमाण लेकर पृथक् भावना देकर गोलियां बना लेवे । बकरीके दूधके अनुपानसे इन चौदह गोलियोंको भक्षण करे । गहनानन्दनाथने यह औषधि कही है इसका नाम चन्द्रसूर्यात्मक रस है । इस औषधिको सेवन करनेसे हलीमक, पाण्डु, कामला, जीर्णज्वर, अम्लपित्त, रक्तपित्त, अरुचि, शूल, प्लीहा, उदर, आनाह, अष्ठीला गुल्म, विद्रधि, सूजन, मंदाग्नि, खांसी, श्वास, वमन, श्रम, भगन्दर, उपदंश, दद्रु, कच्छु, व्रण, दाह, तृष्णा, ऊरुस्तम्भ, आमवात और कटिग्रह ये सब रोग दूर हो जाते हैं । अनुपान मण्ड, मद्य, मुद्गयूष या गिलोय, त्रिफला और अडूसेके क्वाथके साथ इस औषधिको सेवन करे ॥ २५ ॥

पांडुसूदनरसः ।

रसं गन्धं मृतं ताम्रं जयपालं च गुग्गुलुम् । समांशमाज्यसं-
युक्तां गुटिकां कारयेन्मिताम् ॥ एकैकां खादयेन्नित्यं पांडुशो-
थोपशान्तये । शीतलं च जलं चाम्लं वर्जयेत् पांडुसूदने ॥ २६ ॥

भाषा—पारा, गंधक, तांबा, जमालगोटा और गूगल इन सबोंको समान भाग लेकर घृतके साथ गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली सेवन करे तो पाण्डु और

शोथरोग दूर होवे । इसको पाण्डुसूदन रस कहते हैं इस औषधिको सेवन करनेपर शीतल जल और खटाई छोड देवे ॥ २६ ॥

मंडूरवज्रवटकः ।

पंचकोलं समरिचं देवदारुं फलत्रिकम् । विडंगं मुस्तसंयुक्तं भागांश्च त्रिपलोन्मितान् ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं ततः । पक्त्वा चाष्टगुणे मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत् ॥ ततोऽक्षमात्रान् वटकान् पिबेत्तक्रेण तक्रभुक् । पांडुरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषमूरुस्तम्भमथापि वा । कृमिं प्लीहानमानाहं गलरोगं च नाशयेत् ॥ वज्रमंडूरनामायं रोगानीकप्रशातनः ॥ २७ ॥

भाषा–पंचकोल, (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ) काली मिरच, देवदारु, त्रिफला, वायविडंग और नागरमोथा प्रत्येक तीन पल सर्वद्रव्योंसे दुगुना मण्डूर (लोहेका मल), मण्डूरसे आठ गुना गोमूत्र, मण्डूर और गोमूत्रको एकत्र रकावे और ऊपरसे पंचकोलादिका चूर्ण डाल देवे जब गाढा हो जाय तब उतारकर एक तोलेके बडे बनाकर तक्रके साथ सेवन करे। यह औषधि पाण्डुरोग, मंदाग्नि, अरुचि, बवासीर, संग्रहणी, ऊरुस्तम्भ, कृमि, प्लीहा, आनाह और गलरोगको दूर करे है इसको मण्डूरवज्रवटक कहते हैं ॥ २७ ॥

सम्मोहकोह ।

पलं लोहस्य किट्टस्य पलं गव्यस्य सर्पिषः । सितायाश्च पलं चैकं क्षौद्रस्य च पलं तथा ॥ तोलकं कान्तिलोहस्य त्रिकत्रयसुभावितम् । ततः पात्रे विधातव्यं लोहे च मृण्मये तथा ॥ हविषा भावितं देयं रौद्रे वा शिशिरेऽथवा । भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चैव प्रदापयेत् ॥ अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषानुसारतः । कामलां पांडुरोगं च हलीमकमथापि वा ॥ अम्लपित्तं तथा शूलं शूलं च परिणामजम् । कासं पंचविधं श्वासं ज्वरं प्लीहानमेव च ॥ अपस्मारं तथोन्मादमुदरं गुल्ममेव च । अग्निमान्द्यमजीर्णं च श्वयथुं च सुदारुणम् ॥ निहन्ति नात्र संदेहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २८ ॥

रुणीः ॥ वर्षाभूं केशराजं च शालिंचं द्रोणपुष्पिकाम् । प्रत्ये-
कार्द्धपलैर्द्रावैर्भावयित्वा वटीं कुरु ॥ चतुर्दशवटीं खादेच्छागीदु-
ग्धानुपानतः । गहनानन्दनाथोक्त … हली-
मकं नि … म्ल
पित्तम … न् ।
शोथं म … दंश
तु दद्रुव … ल्म-
हम् ॥ शु … लां
वार्ता का …

भाषा—पार … कौडी
प्रत्येक दो तोले … एकत्र
पीसकर बाष्पयं … विदारी-
कंद, सोया, दंवी … मांगरा,
शालिंचशाक की … लेकर
पृथक् भावना दे … चौदह
गोलियोंको भक्षण … न्द्रसु-
र्यात्मक रस है । … जीर्ण-
ज्वर, अम्लपित्त, … गुल्म,
विद्रधि, सूजन, मंद … च्छ्रु,
व्रण, दाह, तृष्णा, … जाते
हैं । अनुपान मण्ड, … साथ
इस औषधिको सेवन …

रसं गन्धं मृतं ताम्रं जयपालं च गुग्गुलुम् । समांशमाज्यसं-
युक्तां गुटिकां कारयेन्मिताम् ॥ एकैकां खादयेन्नित्यं पांडुशो-
थोपशान्तये । शीतलं च जलं चाम्लं वर्जयेत् पांडुसूदने ॥ २६ ॥

भाषा—पारा, गंधक, तांबा, जमालगोटा और गूगल इन सबोंको समान भाग लेकर घृतके साथ गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली सेवन करे तो पाण्डु और

शोथरोग दूर होवे। इसको पाण्डुसूदन रस कहते हैं इस औषधिको सेवन करनेपर शीतल जल और खटाई छोड देवे ॥ २६ ॥

मंडूरवज्रवटकः।

पंचकोलं समरिचं देवदारुं फलत्रिकम्। विडंगं मुस्तसंयुक्तं भागांश्च त्रिपलोन्मितान् ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं ततः। पक्त्वा चाष्टगुणे मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत् ॥ ततोऽक्षमात्रान् वटकान् पिबेत्तक्रेण तक्रभुक्। पांडुरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषमूरुस्तम्भमथापि वा। कृमिं प्लीहानमानाहं गलरोगं च नाशयेत् ॥ वज्रमंडूरनामायं रोगानीकप्रशातनः॥ २७ ॥

भाषा-पंचकोल, (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ) काली मिरच, देवदारु, त्रिफला, वायविडंग और नागरमोथा प्रत्येक तीन पल सर्वद्रव्योंसे दुगुना मण्डूर (लोहेका मल), मण्डूरसे आठ गुना गोमूत्र, मण्डूर और गोमूत्रको एकत्र पकावे और ऊपरसे पंचकोलादिका चूर्ण डाल देवे जब गाढा हो जाय तब उतारकर एक तोलेके बडे बनाकर तक्रके साथ सेवन करे। यह औषधि पाण्डुरोग, मंदाग्नि, अरुचि, बवासीर, संग्रहणी, ऊरुस्तम्भ, कृमि, प्लीहा, आनाह और गलरोगको दूर करे है इसको मण्डूरवज्रवटक कहते हैं ॥ २७ ॥

सम्मोहलोह।

पलं लोहस्य किट्टस्य पलं गव्यस्य सर्पिषः। सितायाश्च पलं चैकं क्षौद्रस्य च पलं तथा ॥ तोलकं कान्तिलोहस्य त्रिकत्रयसुभावितम्। ततः पात्रे विधातव्यं लोहे च मृण्मये तथा ॥ हविषा भावितं देयं रौद्रे वा शिशिरेऽथवा। भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चैव प्रदापयेत् ॥ अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषानुसारतः। कामलां पांडुरोगं च हलीमकमथापि वा ॥ अम्लपित्तं तथा शूलं शूलं च परिणामजम्। कासं पंचविधं श्वासं ज्वरं प्लीहानमेव च ॥ अपस्मारं तथोन्मादमुदरं गुल्ममेव च। अग्निमान्द्यमजीर्णं च श्वयथुं च सुदारुणम् ॥ निहन्ति नात्र संदेहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ २८ ॥

भाषा—लोहेका मैल, गायका घी, मिश्री और सहत ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले, कान्तलोह एक तोला इन सब द्रव्योंको त्रिकत्रय (त्रिफला, त्रिकुटा, त्रिजातक) के रसके द्वारा भावना देकर लोह अथवा मट्टीके पात्रमें स्थापन करे। फिर घृतकी भावना देकर धूपमें और छायामें सुखा लेवे। यह औषधि भोजनकी आदि, मध्य और अंतमें सेवन करे। रोगीके दोष और बलाबल विचारकर अनुपानके साथ देवे इस औषधिको सेवन करनेसे कामला, पाण्डु, हलीमक, अम्लपित्त, शूल, परिणामशूल, पांचों प्रकारकी खांसी, श्वास, ज्वर, प्लीहा, अपस्मार, उन्माद, उदर, गुल्म, मंदाग्नि, अजीर्ण और दारुणशोथ नाश होता है, जिस प्रकार सूर्यसे अंधकारराशि नष्ट होती है उसी प्रकार इस औषधिको सेवन करनेसे सर्व रोग दूर होते हैं इसको संमोह लोह कहते हैं ॥ २८ ॥

लघ्वानन्दो रसः ।

पारदं गन्धकं लोहमभ्रं च विषमेव च । समांशं मरिचं चाष्टौ टङ्कणं च चतुर्गुणम् ॥ भृङ्गराजरसेनैव दातव्याः सप्त भावनाः । तथा दाडिमतोयेन वटीं कुर्यात् समाहितः ॥ निहन्ति वातजान् रोगान् भ्रमदाहपुरःसरान् ॥ २९ ॥

भाषा—पारा, गंधक, लोहा, विष और अभ्रक प्रत्येक एक एक भाग, काली मिरच आठ भाग, सुहागा चार भाग इन सबको एकत्र पीसकर भांगरेके रसकी सात भावना देवे, फिर अनारके बीजोंके स्वरसकी भावना देकर गोली बना लेवे, इसको लघ्वानन्दरस कहते हैं। यह औषधि भ्रम, दाह और सकल वातजरोगोंको दूर करे है ॥ २९ ॥

त्र्यूषणादि मण्डूर।

त्र्यूषणं त्रिफलां मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ। दार्वीं त्वङ् माक्षिको धातुग्रन्थिकं देवदारु च ॥ एषां द्विपलिकान् भागांश्चूर्णं कृत्वा पृथक् पृथक् । मण्डूरं द्विगुणं चूर्णात् शुद्धमंजनसन्निभम् ॥ गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तु प्रक्षिपेत्ततः । उदुम्बरसमां कुर्यात् वटकांस्तान् यथाग्नि तु ॥ उपयुञ्जीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम् । मण्डूरवटका ह्येते प्राणदाः पांडुरोगिणाम् ॥ कुष्ठा-न्यजीर्णकं शोथमूरुस्तम्भकफामयान् । अर्शांसि कामलामेहान् प्लीहानं शमयन्ति च ॥ निर्वाप्य बहुशो मूत्रैर्मण्डूरं ग्राह्यमिष्यते।

ग्राहयन्त्यष्टगुणितं मूत्रं मण्डूरचूर्णितः ॥ त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसः । प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितो कामलापहः ॥ ३० ॥

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चव्य, चीता, दारुहलदी, सोनामक्खी, दालचीनी, पीपलामूल और देवदारु प्रत्येक दो दो पल तथा शुद्ध अंजनकी समान मण्डूर सब औषधियोंसे दुगुना लेवे । प्रथम मण्डूरके चूर्णको आठ गुने गोमूत्रमें पकावे और त्रिकुटा आदि औषधियोंका चूर्ण ऊपरसे छोड देवे । जब पकते २ गाढा हो जाय तब गूलरकी समान गोलियां बनाकर तक्रके साथ सेवन करे, औषधिके जीर्ण होनेपर सात्म्य (जो अपनेको हितकारी हो)सो भोजन करे। यह मण्डूरवटक पाण्डुरोगियोंको अत्यन्त हितकारी है । इससे कुष्ठ, अजीर्ण, कफरोग, बवासीर, कामला, प्रमेह और प्लीहारोग दूर होता है । औषधिमें मण्डूरको वारंवार गोमूत्रमें शुद्ध करके डालना चाहिये । इसको त्र्यूषणादि मण्डूर कहते हैं । त्रिफला, गिलोय, देवदारु अथवा नीम आदिका रस प्रातःकाल सहतके साथ पीनेसे कामलारोग नष्ट होता है ॥ ३० ॥

इति पाण्डुकामलादिरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ रक्तपित्तरोगनिदानम्।

अथ रक्तपित्तस्य निदानपूर्वकसंप्राप्तिमाह ।

घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः । तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैः कटुभिरेव च ॥ पित्तं विदग्धं स्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम् । ततः प्रवर्त्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधापि वा ॥ ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः । कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत् प्रवर्त्तते ॥ १ ॥

भाषा-अत्यन्त धूपमें फिरनेसे, अधिकतर परिश्रम करनेसे, शोकसे, अत्यन्त मार्ग चलनेसे, अधिकतर मैथुन करनेसे, तीक्ष्ण पदार्थोंका सेवन करनेसे, उष्ण (अग्निताप) सेवन करनेसे, खारी द्रव्योंका सेवन करनेसे, अत्यन्त खटाई सेवन करनेसे, चरपरे पदार्थोंको सेवन करनेसे पित्त विदग्ध होकर अपने गुणोंसे शीघ्र शरीरस्थ रुधिरको दूषित करता है । वह रुधिर ऊर्ध्व और अधो अथवा ऊर्ध्व

अधो दोनों मार्गोंसे निकले । ऊर्द्धद्वारा अर्थात् नासिका, नेत्र, कर्ण और मुख, अधोद्वारा अर्थात् लिंग, योनि और मलद्वारसे निकले, कभी कभी रुधिर अत्यन्त दूषित होकर समस्त रोमकूपोंके द्वारा निर्गत होता है ॥ १ ॥

पूर्वरूप ।

सदनं शीतकामित्वं कण्ठधूमायनं वमिः ।
लोहगन्धिश्च निश्वासो भवत्यस्मिन् भविष्यति ॥ २ ॥

भाषा–ग्लानि, शीतकी इच्छा, गलेमें धुंएका निकलना और श्वास लेनेके समय लोहेकी समान गंधका आना ये सब रक्तपित्तके पूर्वमें होते हैं ॥ २ ॥

कफयुक्त रक्तपित्तके लक्षण ।

सांद्रं सपांडु सस्नेहं पिच्छिलं च कफान्वितम् ॥ ३ ॥

भाषा–श्लैष्मिक रक्तपित्तमें रुधिर गाढा, किंचित् पीला, चिकना और पिच्छिल होता है ॥ ३ ॥

वातिक रक्तपित्तके लक्षण ।

श्यावारुणं सफेनं च तनु रूक्षं च वातिकम् ॥ ४ ॥

भाषा–वातोत्थ रक्तपित्तमें रुधिर नीला, ललाईयुक्त, फेनयुक्त, पतला और रूखा होता है ॥ ४ ॥

पैत्तिक रक्तपित्तके लक्षण ।

रक्तपित्तं कषायाभं कृष्णं गोमूत्रसन्निभम् ।
मेचकागारधूमाभमंजनाभं च पैत्तिकम् ॥ ५ ॥

भाषा–पैत्तिक रक्तपित्तमें रक्त कृष्ण, गोमूत्रकी समान रंगवाला, चिकना, मोरकी चांदकी समान, घरके धुंएकी समान या अंजनकी समान होता है ॥ ५ ॥

द्वन्द्वज रक्तपित्तके लक्षण ।

संसृष्टलिङ्गं संसर्गात्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् ।
ऊर्द्ध्वगं कफसंसृष्टमधोगं पवनानुगम् ॥
द्विमार्गं कफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्तते ॥ ६ ॥

भाषा–दो दोषोंके मिलनेसे जो रक्तपित्त होय उसको द्वन्द्वज और तीनों दोषोंके मिलनेसे जो रक्तपित्त हो उसको सान्निपातिक जानना ॥ ६ ॥

ऊर्द्ध्वाधोगत रक्तपित्तका साध्यासाध्यविचार ।

ऊर्द्ध्वं साध्यमधो याप्यमसाध्यं युगपद्गतम् ॥ ७ ॥

भाषा-ऊर्ध्व निर्गत रक्तपित्तको श्लैष्मिक, अधोगत रक्तपित्तको वातानुबन्ध और एक साथ ऊर्ध्व और अधो निर्गत रक्तपित्त दोनों दोषोंके अनुबंध जानना। ऊर्ध्वगत रक्तपित्तरोग साध्य, अधोगत याप्य और दोनों मार्गोंसे निकलनेवाला रक्तपित्त असाध्य है ॥ ७ ॥

साध्य होनेके कारण ।

एकमार्गं बलवतो नातिवेगं नवोत्थितम् ।
रक्तपित्तं सुखे काले साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥ ८ ॥

भाषा-एक मार्गसे निर्गत होता हो, अधिक वेग न हो, थोडे दिनोंका उत्पन्न हुआ हो और कोई उपद्रव उसके साथ न हो तथा बलवान् हो वह रक्तपित्त रोग हेमन्त और शिशिर ऋतुमें सुखसाध्य है ॥ ८ ॥

दोषादिभेदसे साध्यासाध्यलक्षण ।

एकदोषानुगं साध्यं द्विदोषं याप्यमुच्यते ।
यत्रिदोषमसाध्यं स्यान्मन्दाग्नेरतिवेगितम् ॥
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यानश्नतश्च यत् ॥ ९ ॥

भाषा-एक दोषोद्भव रक्तपित्त साध्य, द्विदोषज याप्य और मंदाग्निवाले मनुष्यके त्रिदोषज रक्तपित्त असाध्य है। तथा अन्य व्याधिसे क्षीण देहवाले मनुष्यके अतिवेगवान् रक्तपित्त असाध्य है। वार्द्धक्य और अरुच्यादि द्वारा पीडित मनुष्यके तथा अनाहारी (जो भोजन न करता हो) मनुष्यके रक्तपित्त असाध्य है ॥ ९ ॥

रक्तपित्तके लक्षण ।

दौर्बल्यं श्वासकासज्वरवमथुमदाः पांडुता दाहमूर्च्छा भुक्ते घोरो विदाहस्त्वधृतिरपि सदा हृद्यतुल्या च पीडा । तृष्णा कोष्ठस्य भेदः शिरसि च तपनं पूतिनिष्ठीवनत्वं भक्तद्वेषाविपाकौ विकृतिरपि भवेत् रक्तपित्तोपसर्गाः ॥ १० ॥

भाषा-शरीरमें दुर्बलता, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, मद, देहमें पाण्डुरता, दाह, मूर्च्छा और भोजन करनेसे शरीरमें दाहका होना, सदैव अधीरजपना, हृदयमें अत्यन्त पीडा, पियास, मलभेद, शिरमें उष्णता, दुर्गंधयुक्त थूकना, आहारमें अरुचि, भोजनका नहीं पचना ये सब रक्तपित्तके उपसर्ग हैं ॥ १० ॥

असाध्यलक्षण ।

मांसप्रक्षालनाभं क्वथितमिव च यत् कर्दमाम्भोनिभं वा मेदःपूयास्रकल्पं यकृदिव यदि वा पक्वजंबूफलाभम् । यत् कृष्णं

यच्च नीलं भृशमतिकुणपं यत्र चोक्ता विकारास्तद्वर्ज्यं रक्तपित्तं सुरपतिधनुषा यच्च तुल्यं विभाति ॥ येन चोपहतो रक्तं रक्तपित्तेन मानवः । पश्येद्दृश्यं वियच्चैव तच्चासाध्यमसंशयम् ॥ लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लोहितेक्षणः । लोहितोद्गारदर्शी च म्रियते रक्तपैत्तिकः ॥ ११ ॥

भाषा–जो रक्तपित्त जिससे मांस धोया गया हो ऐसे जलकी समान हो अथवा औटाये हुए जलकी समान हो, या कांचकी समान अथवा जलकी समान तथा मेद, राध और रुधिरकी समान हो या कलेजेके टुकडेकी समान हो या पके जामुनके फलकी समान हो, काला अथवा नीला या अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त हो एवं पूर्वमें जो विकार कहे हैं उन सब विकारोंसे युक्त हो तथा इन्द्रधनुषकी दीप्तिवाला हो ऐसा रक्तपित्त त्याज्य अर्थात् इस रक्तपित्तकी चिकित्सा न करे। जो रक्तपित्तग्रसित रोगी आकाश और समस्त संसारके पदार्थोंको अरुण वर्ण देखे वह निश्चय असाध्य है। जो मनुष्य वारंवार रुधिरकी वमन करे, नेत्र लाल हो जांय, डकारभी लाल आवे और सम्पूर्ण पदार्थोंमें ललाई दीखे वह रक्तपित्तग्रसित रोगी अवश्य मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

इति रक्तपित्तरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ रक्तपित्तरोगचिकित्सा ।

नीलोत्पलं शर्करां च मधुकं पद्मकं समम् । तण्डुलोदकसंमिश्रं प्रशमेत् रक्तविक्रियाम् ॥ अश्वगंधाभये चैव उदकेन समं पिबेत् । रक्तपित्तं विनश्येत नात्र कार्या विचारणा ॥ रक्तपित्तं हरेत्पीतो वासकस्य रसो मधुः । क्षपाकाले तोयपानात् पीनसं प्रहितं हरेत् ॥ १२ ॥

भाषा–नीलोत्पल (नीलोफर फार्सी); चीनी, मुलहठी और पद्माख इन सबोंको समान भाग लेकर चावलोंके जलमें पीसकर पीनेसे रक्तदोष नष्ट होता है। असगंध और हरडको जलमें पीसकर भक्षण करनेसे रक्तपित्त दूर होता है। अडूसेके रसको सहतके साथ पीनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है। रात्रिके समय जलपान करनेसे पीनस रोग दूर होता है ॥ १२ ॥

अर्केश्वरो रसः ।

मृतार्कसूतं वंगं च मृताभ्रं च समाक्षिकम् । अमृतास्वरसैर्भाव्यं त्रिसप्तकपुटे भिषक् ॥ वासाक्षीरविदारीभ्यां देयं गुञ्जाचतुष्टयम् । रक्तपित्तं निहन्त्याशु सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ १३ ॥

भाषा–तांबा, पारा, वंग, अभ्रक और सोनामक्खी ये समान भाग लेकर गिलोयके रसमें इक्कीसवार भावना देवे, पश्चात् पुटपाकमें पकाकर चार चार रत्तीकी गोलियां बना लेवे । इस औषधिको अडूसे और बिदारीकंदके साथ भक्षण करनेसे दारुण रक्तपित्तरोग नाश होता है ॥ १३ ॥

सुधानिधिरसः ।

सूतं गन्धं माक्षिकं चैव लोहं सर्वं घृष्टं त्रैफलस्योदकेन । लोहे पात्रे गोमयैः पाचयित्वा रात्रौ दद्यात् रक्तपित्तप्रशांत्यै ॥ १४ ॥

भाषा–पारा, गंधक, सोनामक्खी और लोहा इन सबोंको समान भाग लेकर त्रिफलेके काथके द्वारा लोहेके पात्रमें उपलोंकी आंचसे पकावे इस औषधिको रात्रिके समय सेवन करनेसे रक्तपित्तरोग शांत होते हैं ॥ १४ ॥

आमलाद्यलोहम् ।

आमलापिप्पलीचूर्णं तुल्यया सितया सह । रक्तपित्तहरं लोहं योगराजमिति स्मृतम् ॥ वृष्याग्निदीपनं वल्यमम्लपित्तविनाशनम् । पित्तोत्थानपि वातोत्थान् निहन्ति विविधान् गदान् ॥ १५ ॥

भाषा–आमले और पीपलका चूर्ण समान भाग लेवे और दोनोंकी बराबर लोहेको मिलावे फिर सबकी समान चीनी मिलाकर सेवन करे तो रक्तपित्तरोग दूर होता है । यह लोहा वृष्य, अग्निको दीपन करनेवाला, बलकारक, अम्लपित्तनाशक तथा सर्व प्रकारके पित्तोत्पन्न और वातोत्पन्न रोगोंको दूर करे है ॥ १५ ॥

शतमूलाद्यलोहः ।

शतमूलीसिताधान्यनागकेशरचंदनैः । त्रिकत्रयतिलैर्युक्तं लोहं सर्वगदापहम् ॥ तृष्णादाहज्वरच्छर्दिरक्तपित्तविनाशनम् । रक्तपित्ते पिवेद्यामसहितं पर्पटीरसम् ॥ वासाद्राक्षाभयानां च क्वाथं वा शर्करान्वितम् । योगवाहिरसान् सर्वान् रक्तपित्ते प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

भाषा—शतावर, शर्करा, धनिया, नागकेशर, चन्दन, त्रिकुटा, त्रिफला, त्रिजात और तिल ये प्रत्येक एक एक भाग और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण सबको एकत्र करके गोलियां बना लेवे। इस औषधिको सेवन करनेसे तृषा, दाह, ज्वर, वमन और रक्तपित्तादि सम्पूर्ण रोग नाश होते हैं। इसको शतमूलाद्यलोह कहते हैं। रक्तपित्तरोगमें पित्तपापडेके रसके साथ अभ्रककी भस्म अथवा अडूसा, दाख और हरड इन सबका क्वाथ बनाकर शर्कराके साथ पान करे तथा सर्व प्रकारके योगवाही प्रयोग करे ॥ १६ ॥

रक्तपित्तान्तको रसः।

मृताभ्रं मुण्डतीक्ष्णं च माक्षिकं रसतालकम् । गंधकं च भवेत्तुल्यं यष्टिद्राक्षामृताद्रवैः॥ दिनैकं मर्दयेत् खल्वे सिताक्षौद्रसमन्वितम् । माषमात्रं निहन्त्याशु रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥ ज्वरं दाहं क्षतक्षीणं तृष्णाशोषमरोचकम् ॥ १७ ॥

भाषा—अभ्रक, लोहा, सोनामक्खी, पारा, हरिताल और गंधक इन सबोंको समान भाग लेकर भारंगी, दाख और गिलोयके क्वाथमें एक दिन मर्दन करे। इस औषधिको एक मासे लेकर शर्करा और सहतके साथ सेवन करे इससे शीघ्रही दारुण रक्तपित्त, ज्वर, दाह, क्षतक्षीणता, तृषा, शोष और अरुचि दूर होती है ॥ १७ ॥

रसामृतरसः।

रसस्य द्विगुणं गंधं माक्षिकं च शिलाजतु। चंदनं गुडुचीं द्राक्षां मधुपुष्पं च धान्यकम्॥कुटजस्य त्वचं बीजं धातकीं निम्बपत्रकम् । यष्टिमधुसमायुक्तं मधुशर्करयान्वितम् ॥ विधिना मर्दयित्वा तु कर्षमात्रं तु भक्षयेत् । धारोष्णपयसा युक्तं प्रातरेव समुत्थितः ॥ पित्तं तथाम्लपित्तं च रक्तपित्तं विशेषतः । निहन्ति सर्वदोषं च ज्वरं सर्वं न संशयः ॥ रसामृतरसो नाम गहनानन्दभाषितः ॥ १८ ॥

भाषा—पारा एक भाग, गंधक, सोनामक्खी, शिलाजीत, लालचन्दन, गिलोय, दाख, महुएके फूल, धनिया, इन्द्रजौ, कूडेकी छाल, धायके फूल, नीमके पत्र, मुलहठी, सहत और शर्करा ये प्रत्येक दो दो भाग इन सबोंको एकत्र उत्तमरीतिसे खरल कर प्रातःकाल मुख धोकर दो तोले धारोष्ण दूधके साथ सेवन

करै। इससे पित्तरोग, अम्लपित्त, रक्तपित्त और ज्वर नष्ट होता है। इसको रसामृत रस कहते हैं। यह औषधि स्वयं गहनानन्दनाथने निर्म्माण की है॥ १८॥

खण्डकुष्माण्डकः।

कुष्माण्डकात् पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम्। पचेत्तते घृतप्रस्थे शनैस्ताम्रमये दृढे॥ यदा मधुनिभः पाकस्तदा खण्डशतं न्यसेत्। पिप्पलीशृङ्गवेराभ्यां द्वे पले जीरकस्य च॥ त्वगेलापत्रमरिचधान्यकानां पलार्द्धकम्। न्यसेचूर्णीकृतं तत्र दर्व्या संघट्टयेत् पुनः॥ तत् पक्कं स्थापयेद्भाण्डे दत्त्वा क्षौद्रं घृतार्द्धकम्। तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तपित्तक्षतक्षयी॥ १९॥

भाषा-प्रथम उत्तम पेठेको लेकर उसके बीज और छिलकोंको अलग कर फिर उसमें किंचित् जल डालकर सिद्ध करे पश्चात् उसको कपडेमें डालकर निचोड लेवे, फिर उसको धूपमें सुखाकर और पीसकर उसको १०० पल लेवे पश्चात् एक उत्तम तांबेके पात्रमें चार सेर घी गरम करके उसमें यह १०० पल पेठेका चूर्स डालकर पकावे। जब पकते पकते मधुकी समान हो जाय तब उसमें शर्करा एक सौ पल और पूर्व निचोडा हुआ पेठेका रस डाल देवे। पश्चात् फिरसे पकावे जब लेहकी समान हो जाय तब उसमें पीपल, सोंठ और जीरेका चूर्ण सोलह तोले डाल देवे तथा दालचीनी, इलायची, तेजपात, काली मिरच और धनिया इन प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले डाल देवे। फिर करछीसे चलावे जब पाक समाप्त हो जाय तब उतार लेवे। शीतल होनेपर घृतसे आधा सहत मिला लेवे यह औषधि रोगीकी अग्नि और बल विचारकर प्रमाणानुसार भक्षण करनेको देवे। इससे रक्तपित्त और क्षतक्षय नाश होते हैं॥ १९॥

शर्करादयलोह।

शर्करातिलसंयुक्तं त्रिकत्रययुतन्त्वयः।
रक्तपित्तं निहन्त्याशु चाम्लपित्तहरं परम्॥ २०॥

भाषा-शर्करा, तिल, त्रिकुटा, त्रिफला और त्रिजातक ये सब समान भाग लेवे और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण मिलावे इस औषधिको सेवन करनेसे अम्लपित्त और रक्तपित्त नाश होता है॥ २०॥

समशर्करलोहः।

लोहाच्चतुर्गुणं क्षीरमाज्यं द्विगुणमुत्तमम्। चूर्णं पादं तु वैडंगं

दद्यान्मधुसिते समे ॥ ताम्रपात्रे दृढे पक्त्वा स्थापयेद् घृतभाजने । माषकादिक्रमेणैव भक्षयेद्विधिपूर्वकम् ॥ अनुपानं प्रयुंजीत नारिकेलोदकादिकम् । रक्तपित्तं जयेत्तीव्रमम्लपित्तक्षतक्षयम् ॥ प्रहृष्टकान्तिजननमायुष्यमुत्तमोत्तमम् ॥ २१ ॥

भाषा-लोहा एक पल, दूध चार पल और घी दो पल इन सबोंको एकत्र करके तांबेके पात्रमें पकावे, जब यह पक जाय तब वायविडंगका चूर्ण दो तोले देवे फिर एक पल शर्करा डालकर पाकको समाप्त करे । शीतल होनेपर एक पल सहत डालकर घृतके भांडमें रक्खे । इसको एक मासेके क्रमसे बढाता हुआ खाय । अनुपान नारियलका जल है, इसके सेवन करनेसे रक्तपित्त, अम्लपित्त और क्षतक्षय नष्ट होता है । शरीरकी कान्ति बढती है और आयु बढती है ॥ २१ ॥

कपर्दको रसः ।

मृतं वा मूर्च्छितं सूतं कार्पासकुसुमद्रवैः । मर्दयेद्दिनमेकं तु तेन पूर्या वराटिका ॥ निरुध्य चान्धमूषायां भाण्डे रुद्धा पुटे पचेत् । उद्धृत्य चूर्णयेत् श्लक्ष्णं मरिचैर्द्विगुणैः सह ॥ गुंजामात्रं घृतेनैव भक्षयेत् प्रातरुत्थितः । उदुम्बरं घृतं चैव अनुपानं प्रयोजयेत् ॥ कपर्दको रसो नाम रक्तपित्तविनाशनः । नीलोत्पलसिताक्षौद्रसंयुक्तं पद्मकेशरम् ॥ तण्डुलोदकपानेन रक्तपित्तं नियच्छति ॥ २२ ॥

भाषा-रससिंदूरको कपासके फूलोंके रसमें एक दिन खरल कर शुद्ध कर लेवे, फिर उसको कौडीमें रख बंदकर अंधामूषामें स्थापन कर पुटपाक करे । फिर उसको निकाल कर दुगुने काली मिरचोंके चूर्णके साथ उत्तमविधिसे खरल करे । प्रातःकाल मुख धोकर एक रत्ती इस औषधिको घृतके साथ भक्षण करे । अनुपान गूलर और घी है । यह कपर्दक रस रक्तपित्तको दूर करे है । नीलोत्पल, शर्करा, मधु और कमलकेशर इन सबोंको समान भाग लेकर चावलोंके जलके साथ पीनेसे रक्तपित्तरोग नष्ट होता है ॥ २२ ॥

इति रक्तपित्तरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ राजयक्ष्मक्षतक्षीणरोगनिदानम् ।

वेगरोधात्क्षयाच्चैव साहसाद्विषमाशनात् ।
त्रिदोषो जायते यक्ष्मा गदो हेतुचतुष्टयात् ॥ १ ॥

भाषा-मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे, धातुके क्षय होनेसे जो उत्पन्न हुई क्षीणता उससे, अत्यन्त साहससे और विषम भोजन करनेसे त्रिदोषजनित यक्ष्मारोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

अथ तस्य विशिष्टसंप्राप्तिमाह ।

कफप्रधानैर्दोषैस्तु रुद्धेषु रसवर्त्मसु ।
अतिव्यवायिनो वापि क्षीणे रेतस्यनन्तराः ॥
क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ॥ २ ॥

भाषा-मनुष्योंके कफप्रधानदोषद्वारा रसवाहिनी सकल धमनी रुकनेसे तथा अत्यन्त मैथुन करनेवाले मनुष्योंके शुक्रक्षय होनेसे सम्पूर्ण धातु क्षय होती है । तब वह मनुष्य शुष्क होने लगता अर्थात् सूख जाता है ॥ २ ॥

अथ तस्यैव पूर्वरूपमाह ।

श्वासाङ्गमर्दकफसंस्रवतालुशोषवम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः । शोषे भविष्यति भवन्ति स चापि जन्तुः शुक्लेक्षणो भवति मांसपरो रिरंसुः ॥ स्वप्नेषु काकशुकशल्लकिनीलकण्ठगृध्रास्तथैव कपयः कृकलासकाश्च । तं वाहयन्ति स नदीर्विजलाश्च पश्येच्छुष्कांस्तरून् पवनधूमदवार्दितांश्च ॥ ३ ॥

भाषा-क्षयरोग उत्पन्न होनेसे पूर्व श्वास, अंगमें पीडा, मुखके द्वारा कफस्राव, तालुशोष, वमन, मत्तता, नासास्राव, खांसी, निद्रा और नेत्रोंमें सफेदी हो और उस मनुष्यकी मांस खाने और मैथुन करनेकी इच्छा होती है तथा रोगी कौआ, तोता, शल्लकी, मोर, गीध, वानर और कृकलासादि जीवोंपर अपनेको चढा हुआ देखे तथा जलरहित नदी देखे, वायु, धूम और दावाग्निसे पीडित वृक्ष देखे ॥ ३ ॥

अथ तस्य सामान्यलक्षणमाह ।

अंशपार्श्वाभितापश्च सन्तापः करपादयोः ।
ज्वरः सर्वाङ्गगश्चेति लक्षणं राजयक्ष्मणः ॥ ४ ॥

भाषा–कंधे और पसलियोंमें पीड़ा हो, हाथ और पांवोंमें दाह हो तथा सर्वशरीरमें ज्वर हो ये सब राजयक्ष्माके साधारण लक्षण हैं परन्तु भोजके मतसे खांसी, ज्वर और रक्तपित्त ये लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

अथ तस्य वातादिभेदेन लक्षणमाह ।

स्वरभेदोनिलाच्छूलं संकोचश्चांसपार्श्वयोः । ज्वरो दाहोतिसारश्च पित्ताद्रक्तस्य चागमः ॥ शिरसः परिपूर्णत्वमभक्तच्छन्द एव च । कासः कण्ठस्य चोध्वंसो विज्ञेयः कफकोपतः ॥ ५ ॥

भाषा–यह रोग त्रिदोषजन्य है इसमें दोषोंके अलग अलग लक्षण मिलाकर ग्यारह होते हैं तहां वातके कोपसे स्वरभेद, शूल, स्कन्ध और पसलियोंमें संकोच ये सब लक्षण होते हैं। पित्तके कोपसे ज्वर, दाह, अतीसार और रक्तस्राव होता है। कफके कोपसे मस्तकका भारी होना, अरुचि, खांसी और कंठभेद होता है ॥ ५ ॥

अथ तस्य प्रत्याख्येयतामाह ।

एकादशभिरेभिर्वा षड्भिर्वापि समन्वितम् । जह्याच्छोषार्दितं जन्तुमिच्छन् सुविमलं यशः ॥ कासातिसारपार्श्वार्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः । त्रिभिर्वा पीडितं लिङ्गैः कासश्वासासृगामयैः ॥ ६ ॥

भाषा–ऊपरोक्त वात, पित्त और कफजन्य ११ लक्षण अथवा खांसी, अतीसार, पसलियोंमें पीडा, स्वरभेद, अरुचि और ज्वर ये छः लक्षण अथवा खांसी, श्वास और रुधिरविकार इन तीन लक्षणोंसे युक्त होकर जिनका बल और मांस क्षीण हो गया हो ऐसे रोगीको यशको चाहनेवाले वैद्य त्याग देवे ॥ ६ ॥

साध्यासाध्यविचारः ।

सर्वैरर्द्धैस्त्रिभिर्वापि लिङ्गैर्मांसबलक्षये ।
युक्तो वर्ज्यः चिकित्स्यस्तु सर्वरूपोप्यतोन्यथा ॥ ७ ॥

भाषा–ऊपरोक्त सर्व लक्षणोंसे युक्त हो परन्तु रोगीका बल और मांस क्षय न हुआ हो तो साध्य है ॥ ७ ॥

असाध्यलक्षण ।

महाशनं क्षीयमाणमतीसारनिपीडितम् ।
शूनमुष्कोदरं चैव यक्ष्मिणं परिवर्जयेत् ॥ ८ ॥

भाषा-जो मनुष्य बहुत भोजन करने लगे और दिन प्रतिदिन क्षीण होता जाय यह रोगी अथवा जो अतीसार करके पीडित हो वह रोगी तथा जिसके अंडकोष और उदर सूज गया हो वह क्षयरोगी असाध्य है ॥ ८ ॥

अथ तस्य चिकित्सोपयोगित्वं दर्शयन्नाह ।

ज्वरानुबन्धरहितं बलवन्तं क्रियासहम् ।
उपक्रमेदात्मवन्तं दीप्ताग्निमकृशं नरम् ॥ ९ ॥

भाषा-जिस क्षयरोगसे पीडित मनुष्यके ज्वरका अनुबन्धन हो, बलवान् हो, दुःसह क्रियोंको सहनेवाला, जिसकी सम्पूर्ण इन्द्रियें वशमें हों, दीप्ताग्नियुक्त और अकृश ऐसा रोगी साध्य अर्थात् चिकित्सा करने योग्य है ॥ ९ ॥

अथ अपरअसाध्यलक्षणमाह ।

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ।
कृच्छ्रेण बहु मेहन्तं यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥ १० ॥

भाषा-जिस रोगीके नेत्र सफेद हो जांय, जिसको अन्न बुरा मालूम होने लगे, ऊर्ध्व श्वाससे पीडित और कष्टसे बहुत मूते उसको राजयक्ष्मा नष्ट कर देता है॥१०॥

अथ व्यवायादिजनितधातुशोषमाह ।

व्यवायशोकवार्द्धक्यव्यायामाध्वप्रशोषितान् ।
व्रणोरःक्षतसंज्ञौ च शोषिणो लक्षणं शृणु ॥ ११ ॥

भाषा-अत्यन्त रतिप्रसंग करनेसे उत्पन्न हुआ शोष, शोकसे उत्पन्न हुआ शोष, वार्द्धक्यशोष, व्यायामशोषी, मार्गशोषी, व्रणशोषी और उरःक्षतशोषी इनके पृथक् पृथक् लक्षण कहता हूं ॥ ११ ॥

अथ व्यवायशोषलक्षणमाह ।

व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिंगैरुपद्रुतः ।
पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥ १२ ॥

भाषा-जिस मनुष्यके अत्यन्त मैथुन करनेसे शोष उत्पन्न हो वह मनुष्य शुक्रक्षयजनित लक्षणोंसे आक्रान्त होता है अर्थात् उसके लिंग और अंडकोषोंमें पीडा हो, मैथुन करनेमें असमर्थ हो, मैथुन करे तो बहुत देरमें शुक्रस्राव हो तथ

शुक्रमें किंचित् रुधिर मिला हुआ हो और उसका शरीर पाण्डुवर्ण हो एवं शुक्रादिधातु उत्तरोत्तर क्षय हो ॥ १२ ॥

अथ शोकजशोषलक्षणमाह।

प्रध्यानशीलः स्रस्ताङ्गः शोकशोष्यपि तादृशः ॥ १३ ॥

भाषा-शोकसे जिसके शोष होय वह रोगी अत्यन्त चिन्तामें मग्न हो, अंग शिथिल हो जांय तथा शुक्रक्षयके भिन्न शुक्रक्षयजनित सम्पूर्ण लक्षण हों ॥ १३ ॥

अथ वार्द्धक्यशोषलक्षणमाह।

जराशोषी कृशो मन्दः स्वप्नबुद्धिबलेन्द्रियः। कम्पनोऽरुचिमान् भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः ॥ ष्ठीवति श्लेष्मणा हीनं गौरवारतिपीडितः। संप्रस्रुतास्यनासाक्षः शुष्करूक्षमलच्छविः ॥ १४ ॥

भाषा-जिसके जरासम्बन्धी शोष होता है वह दुर्बल हो जांय तथा उसके वीर्य, बुद्धि, बल और इन्द्रिय मंद हो जांय, कम्प हो, अन्नमें अरुचि हो, जैसे फूटे कांसेके बासनको बजानेसे शब्द होता है ऐसा स्वर हो, वारंवार खांसी आवे और थूकनेको करे परन्तु कफ नहीं निकले, शरीर भारी रहे, अरुचिसे पीडित, मुख नाक और नेत्रोंसे जलस्राव हो, मल सूख जाय और शरीर रूखा अर्थात् शोभारहित हो जाय ॥ १४ ॥

अथाध्वशोषलक्षणमाह।

अध्वशोषी च स्रस्ताङ्गः संभृष्टपरुषच्छविः।
प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ॥ १५ ॥

भाषा-जिसके अत्यन्त मार्ग चलनेसे शोष हुआ हो, उस रोगीके हाथ पांव शिथिल हो जांय, शरीर रूखा हो, शरीरके अवयवोंको स्पर्श करनेसे ज्ञान न हो तथा क्लोम पियासका स्थान, मल और मुख सूख जाय ॥ १५ ॥

अथ व्यायामशोषलक्षणमाह।

व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः।
लिङ्गैरुरःक्षतकृतैः संयुक्तश्च क्षतं विना ॥ १६ ॥

भाषा-व्यायामशोषीके अध्वशोषके सम्पूर्ण लक्षण बलवान् रूपसे प्रकाशित होते हैं इसके विनाही उरःक्षतके लक्षण होते हैं ॥ १६ ॥

अथ कारणत्रयेण शोषलक्षणमाह।

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयन्त्रणात्।
व्रणितस्य भवेच्छोषः स चासाध्यतमो मतः ॥ १७ ॥

भाषा-व्रणरोगीके शोष होय सो रुधिरके क्षय होनेसे, व्रणकी पीड़ासे और आहारके घटनेसे अत्यन्त असाध्य होता है ॥ १७ ॥

अथ सनिदानमुरःक्षतमाह ।

धनुषा यास्यतोऽत्यर्थं भारमुद्वहतो गुरुम्। युध्यमानस्य बलिभिः पततो विषमोच्चतः॥ वृषं हयं वा धावन्तं दम्यं वान्यं निगृह्णतः। शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान् क्षिपतो निघ्नतः परान्॥ अधीयानस्य वात्युच्चैर्दूरं वा व्रजतो द्रुतम्। महानदीर्वा तरतो हयैर्वा सह धावतः॥ सहसोत्पततो दूरं तूर्णं चाति प्रनृत्यतः। तथान्यैः कर्मभिः क्रूरैर्भृशमभ्याहतस्य वा॥ वीक्ष्यते वक्षसि व्याधिर्बलवान् समुदीर्यते। स्त्रीषु चातिप्रसक्तस्य रूक्षाल्पप्रमिताशिनः॥१८॥

भाषा-अधिकतर धनुष चलानेसे, अत्यन्त बोझके ढोनेसे, बलवान् पुरुषके साथ युद्ध करनेसे, ऊंचेसे गिरनेसे, दौड़ते हुए बैल, घोडा, हाथी, ऊंट इत्यादिको रोकनेसे; शिला, काठ, पत्थर और निर्घात, शस्त्रको फेंकनेसे, शत्रुको मारनेसे, अत्यन्त ऊंचे स्वरसे अध्ययन करनेसे, बहुत दूर स्थानको दौड़नेसे, अत्यन्त विस्तीर्ण नदियोंको तरनेसे, घोडेके साथ दौडनेसे, अकस्मात् कला खाकर जानेसे, अत्यन्त शीघ्र नृत्य करनेसे अथवा मल्लयुद्धादि क्रूरकर्म करनेसे वक्षःस्थलमें बलवान् व्याधि अर्थात् क्षतरोग उत्पन्न होता है। विशेष करके जो मनुष्य स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त है, रूखा, थोडा और प्रमाणका भोजन करते हैं ॥ १८ ॥

उरो विरुज्यतेऽत्यर्थं भिद्यतेऽथ विभज्यते। प्रपीड्यते ततः पार्श्वे शुष्यत्यङ्गं प्रवेपते॥ क्रमाद्वीर्यं बलं वर्णो रुचिरग्निश्च हीयते। ज्वरो व्यथा मनोदैन्यं विड्भेदाग्निवधावपि॥ दुष्टः श्यावः सुदुर्गन्धः पीतोऽतिग्रथितो बहुः। कासमानस्य चाभीक्ष्णं कफः सासृक् प्रवर्त्तते॥ सक्षतः क्षीयतेऽत्यर्थं तथा शुक्रौजसोः क्षयात्१९

भाषा-उनका हृदय फट जावे अथवा हृदयके दो टूक कर दिये ऐसा प्रतीत होवे, हृदयमें वेदना होवे, पसलियोंमें अधिक पीड़ा हो, सम्पूर्ण अंग सूखने लगे, थर थर कांपे, बल, मांस, वर्ण, रुचि और अग्नि ये सब क्रमसे घट जांय, ज्वर हो, पीड़ा हो, मनमें सन्ताप हो, दीन हो जाय, मंदाग्निके कारण दस्त होने लगे, वारंवार खांसते २ दुष्ट अत्यन्त दुर्गंधयुक्त काला पीला गांठकी समान बहुत और

रक्तमिश्रित कफ निकले, वह क्षतरोगी शुक्र और ओजके क्षय होनेसे अत्यन्त क्षीण हो जाता है ॥ १९ ॥

अथ तस्य पूर्वरूपमाह ।

अव्यक्तलक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ २० ॥

भाषा-उस उरःक्षतके किंचित् प्रकाशित लक्षणोंको पूर्वरूप कहते हैं ॥ २० ॥

अथ क्षतक्षीणशोषयोरसाधारणमाह ।

उरोरुक् शोणितच्छर्दिः कासो वैशेषिकः क्षते ।
क्षीणे सरक्तमूत्रत्वं पार्श्वपृष्ठकटीग्रहः ॥ २१ ॥

भाषा-क्षतक्षीण रोगीके हृदयमें वेदना हो, रुधिरकी वमन करे और अत्यन्त खांसी हो, रुधिरसहित मूत्र उतरे तथा पसली, पृष्ठ और कटिमें पीडा हो ॥ २१ ॥

अथ तस्य साध्यादिलक्षणमाह ।

अल्पलिङ्गस्य दीप्ताग्नेः साध्यो बलवतो नवः ।
परिसंवत्सरो याप्यः सर्वलिङ्गं तु वर्जयेत् ॥ २२ ॥

भाषा-जिसमें अल्प लक्षण हों तथा अग्नि दीपन हो, रोगी बलवान् हो, रोग नवीन हो ऐसा रोगी साध्य होता है । जिसको एक वर्ष बीत गया हो वह याप्य और जिसमें सर्वलक्षण मिलते हों उसको असाध्य कहते हैं ॥ २२ ॥

इति राजयक्ष्मक्षतक्षीणरोगनिदानं समाप्तम् ।

राजयक्ष्मक्षतक्षीणरोगचिकित्सा ।

कुलीरचूर्णं सक्षीरं पीतं च क्षयरोगनुत् । श्वेतकोकिलाक्षमूलं छागीक्षीरेण संयुतम् ॥ त्रिसप्ताहेन वै पीतं क्षयरोगं क्षयं नयेत् । मनःशिलां बलामूलं काकपर्णं च गुग्गुलुम् ॥ कोलिपत्रं जातिपत्रं तथा चैव मनःशिलाम् । एभिश्चैव कृता वर्त्तिर्वराग्नौ महेश्वर ॥ धूम्रपानं कासहरं नात्र कार्या विचारणा । अभयामलकं द्राक्षा पिप्पली कंटकारिका ॥ शृङ्गं पुनर्नवा शुण्ठी जग्ध्वा कासं निहन्ति वै ॥ २३ ॥

भाषा-कांकडाशिंगीके चूर्णको दूधके साथ पीनेसे क्षयकी खांसी दूर होती

है। सफेद तालमखानेकी जडको बकरीके दूधके साथ तीन सप्ताह पर्यंत पीनेसे क्षयरोग नष्ट होता है। मैनशिल, खिरेटीकी जड, काकपर्णी, गूगल, बेरीके पत्ते, चमेलीके पत्ते और मैनशिल इन सबको समान ले एकत्र पीसकर गोलियां बना लेवे बेरीके कोयलोंकी आगसे इन गोलियोंके द्वारा धूमपान करे तो निश्चय क्षयरोग नष्ट होता है। हरड, आमला, दाख, पीपल, कटेरी, कांकडासिंगी, पुनर्नवा और सोंठ इन सबका एकत्र क्वाथ बनाकर पान करनेसे खांसी दूर होती है॥ २३॥

मृगाङ्कः।

रसस्य भस्म हेमेन पिष्टीकृत्य प्रयोजयेत्। गुंजाचतुष्टयं चाज्यमरिचैर्भक्षयेन्नरः॥ पिप्पलीदशकैर्वापि मधुना लेहयेत्पुनः। पथ्यं सुलघुमांसेन प्रायशोऽस्य प्रयोजयेत्॥ व्यञ्जनैर्घृतपक्वैश्च नातिक्षीरैरहिङ्गुभिः। वृन्ताकं तैलपक्वानि ककारादीनि वर्जयेत्॥ असाध्यं राजयक्ष्माणं कासं पंचविधं तथा। श्वासं सुदारुणं हन्ति स्वरभेदं क्षतक्षयम्॥ २४॥

भाषा-रससिंदूर और सुवर्णकी भस्म समान भाग पीसकर चार रत्ती प्रमाण घृत और मरिचोंके चूर्णके साथ अथवा दश पीपलोंके साथ या सहतके साथ सेवन करे इस औषधिपर प्रायः मांसयूष पथ्य है तथा घृतयुक्त व्यंजन और अल्पप्रमाण दूध देवे। हींग, तेलमें पके हुए बैंगन और सर्व ककारादि पदार्थ छोड़ देवे। यह मृगांकरस असाध्य राजयक्ष्मा, पांच प्रकारकी खांसी, दारुण श्वास, स्वरभेद और क्षतक्षयको दूर करे है॥ २४॥

पाराशरघृत।

यष्टिवत्साग्रुडूच्यल्पपंचमूलीं तुलां पचेत्। सूर्येऽपामष्टभागस्थे तत्र पात्रे पचेद् घृतम्॥ धात्रीविदारीक्षुरसे त्रिपात्रे पयसोर्मणे। सुपिष्टैर्जीवनीयैश्च पाराशरमिदं घृतम्॥ ससैन्यं राजयक्ष्माणं उन्मूलयति शीलितम्॥ २५॥

भाषा-मुलहठी, खिरेटी, गिलोय, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, कटाई, कटेरी और गोखरू ये सब १२॥ सेर लेकर एक सौ अट्ठाईस सेर जलमें पकावे, जब पकते पकते गाढा हो जाय तब उतार ले, फिर घी सोलह सेर, आमलोंका रस सोलह सेर, विदारीकंदका स्वरस सोलह सेर, ईखका स्वरस सोलह सेर, दूध बत्तीस सेर तथा उक्त क्वाथ सोलह सेर सबको एकत्र मिलाकर विधिपूर्वक पकावे और जीवक,

ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, सुगवन, मगवन, जीवन्ती और मुलहठी इन सबका कल्क बनाकर ऊपरोक्तमें मिलाकर पकावे, इस पाराशर घृतको सेवन करनेसे उपद्रवसहित राजयक्ष्मा रोग दूर होता है ॥ २५ ॥

दशमूलघृतम् ।

दशमूलाढके प्रस्थे घृतस्याक्षसमैः पचेत् । पुष्कराह्वशठीबिल्व-सुरसव्योषहिंगुभिः ॥ पेयानुपानं तत्पेयं कासवातकफाधिके । श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ २६ ॥

भाषा—बेलकी छाल, श्योनाक, कुम्मेर, पाढल, अरणी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी कटाई, कटेरी और गोखरू ये सब आठ सेर लेकर चौगुने जलमें पकावे । कूठ, कचूर, बेलकी छाल, तुलसी, काली मिरच, पीपल, सोंठ और हींग इन सबका दो तोले प्रमाण कल्क कर ८सेर घृतमें पकावे, इस घृतको सेवन करनेसे वातकफाधिक्य खांसी और श्वास दूर होता है ॥ २६ ॥

काञ्चनाभ्ररसः ।

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लोहमभ्रकम् । विद्रुममभयातारं कस्तूरीं च मनःशिलाम् ॥ प्रत्येकं बिन्दुमात्रं च सर्वं संमर्द्य यत्नतः । अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः ॥ नानारोगप्रशमनं सर्वोपद्रवसंयुतम् । क्षयं हन्ति तथा कासं श्लेष्मपित्तसमुद्भवम् ॥ प्रमेहान् विंशतिं चैव दोषत्रयसमन्वितान् । अशीतिं वातजान् रोगान् नाशयेत् सद्य एव हि ॥ बलवृद्धिं वीर्यवृद्धिं लिङ्गदार्ढ्यं करोति च । कांचनस्य समा कान्तिर्मदनस्य समं वपुः ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय रसोऽयं कांचनाभ्रकः ॥ २७ ॥

भाषा—सुवर्ण, रससिन्दूर, मोती, लोहा, अभ्रक, मूंगा, हरड, चांदी, कस्तूरी, और मेनशिल इन सबोंको समान लेकर जलके साथ मर्दन कर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे । इसको सेवन करनेसे क्षयरोग दूर होता है, किन्तु दोषानुसार वैद्य अनुपानकी कल्पना करे यह नानाप्रकारके उपद्रवोंसहित क्षयरोग, खांसी, कफपित्तोद्भव बीस प्रकारके प्रमेह, त्रिदोषजन्य रोग, अस्सी प्रकारके वातरोग तथा अन्यान्य सर्व प्रकारके रोगोंको दूर करे है । बलको बढानेवाला, लिंगको दृढ करने वाला, शरीरमें कंचनकी समान कांतिजनक मदनकी समान शरीरको करने वाला, इसको प्रातःकाल उठकर भक्षण करे तो सर्व रोग दूर होते हैं ॥ २७ ॥

रास्नादिलोहम् ।

रास्नाश्वगन्धाकर्पूरभेकपर्णीशिलाह्वयैः । त्रिकत्रयसमायुक्तैर्लोहं यक्ष्मान्तकृन्मतम् ॥ सर्वोपद्रवसंयुक्तमपि वैद्यविवर्जितम् । हन्ति कासं स्वराघातं राजयक्ष्मक्षतक्षयम् ॥ बलवर्णाग्निपुष्टीनां वर्द्धनं दोषनाशनम् ॥ २८ ॥

भाषा–रास्ना, असगंध, कपूर, शिलाजीत, त्रिफला, त्रिकुटा और त्रिजातक ये सब समान भाग और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण मिला लेवे । इस औषधिको सेवन करनेसे वैद्यका त्यागा हुआ और सर्व उपद्रवसहित राजयक्ष्मा रोग, खांसी, स्वरभंग, क्षतक्षय ये सब दूर होते हैं तथा बल, वर्ण, अग्नि और पुष्टिको बढावे है ॥ २८ ॥

राजमृगांको रसः ।

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् । मृततारस्य भागैकं शिलागंधकतालकम् ॥ प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् । वराटिका तेन पूर्या चाजाक्षीरेण टंकणम् ॥ पिष्ट्वा तेन मुखं रुध्वा मृद्भाण्डे तां निरोधयेत् । शुद्धं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत् स्वांगशीतलम् ॥ दशपिप्पलिकैः क्षौद्रैर्मरिचैर्वा घृतान्वितैः । गुंजाचतुष्टयं चास्य क्षयरोगप्रशान्तये ॥ सघृतैर्दापयेद्वाथ वातश्लेष्मभवे क्षये । रसो राजमृगाङ्कोऽयं नानारोगनिषूदनः ॥ २९ ॥

भाषा–पारेकी भस्म ३ भाग, सोनेकी भस्म १ भाग, चांदीकी भस्म १ भाग, शुद्ध मैनशिल २८ भाग, शुद्ध गंधक २ भाग और शुद्ध हरिताल २ भाग सबोंको एकत्र पीसकर कौडियोंमें भर देवे और बकरीके दूधमें सुहागेको पीसकर कौडीके मुखको बंदकर मट्टीके पात्रमें स्थापन करे, फिर उस मट्टीके बासनका मुख बंदकर गजपुटमें पकावे, शीतल होनेपर निकाल कर उत्तम रीतिसे चूर्ण कर ले इस औषधिको चार रत्तीप्रमाण लेकर दश पीपल और सहत अथवा दश मरिच और घृतके साथ सेवन करनेसे दूर होता है । वातश्लेष्मजन्य क्षयरोगमें इस औषधिको घृतके साथ प्रयोग करे इसको राजमृगांक कहते हैं । यह सर्व प्रकारके क्षयरोगोंका क्षय करे है ॥ २९ ॥

लोकेश्वररत्नगर्भपोटलीरसः ।

रसं वज्रं हेम तारं नागं लोहं च ताम्रकम् । तुल्यांशं मरिचं देयं

मुक्ता विद्रुममाक्षिकम् ॥ शंखं तुत्थं च तुल्यांशं सप्ताहं चित्रक-द्रवैः । मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेन पूर्या वराटिका ॥ टंकणं रवि-दुग्धेन मुखं लिप्त्वा निरोधयेत् । मृद्भाण्डे तां निरुध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ आदाय चूर्णयेत् सर्वं निर्गुण्ड्या सप्त भाव-येत् । आर्द्रकस्य रसैः सप्त चित्रकस्य च विंशतिः ॥ द्रवैर्भाव्यं ततश्चास्य देयं गुञ्जाचतुष्टयम् । क्षयरोगं निहन्त्याशु साध्या-साध्यं न संशयः ॥ योजयेत् पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मरिचैस्तथा । महारोगाष्टके कासे श्वासे चैवातिसारके ॥ पोटलीरत्नगर्भोयं सर्वरोगकुलान्तकः ॥ ३० ॥

भाषा-पारा, हीरा, सोना, रूपा, सीसा, लोहा, तांबा, काली मिरच, मोती, मूंगा, सोनामक्खी, शंख और तूतिया इन सबोंको समान भाग लेकर सात दिनतक चीतेकी जडके रसमें खरल करे फिर चूर्ण करके कौडीके भीतर भर देवे और आकके दूधमें सुहागेको पीसकर कौडीके मुखको बंदकर देवे फिर उस कौडीको मृत्तिकाके पात्रमें स्थापन कर पात्रके मुखको बंदकर गजपुटमें उत्तम रीतिसे पकावे, फिर उसको निकालकर चूर्ण कर ले, तथा संभालूके रसमें सात बार, अद-रखके रसमें सात बार और चीतेके रसमें बीस बार भावना देकर सुखा लेवे । इस औषधिको चार रत्ती प्रमाण सेवन करे तो साध्य और असाध्य क्षयरोग निः-संदेह नष्ट हो । पीपलका चूर्ण और घीके साथ औषधिका सेवन करे। आठ प्रकारके महारोग, श्वास, खांसी और अतीसाररोगमें यह औषधि विशेष हितकारी है । इसको रत्नगर्भपोटली रस कहते हैं । यह औषधि सर्वरोगनाशक है ॥ ३० ॥

लोकेश्वरपोटलीरसः ।

भस्म सूतात् चतुर्थांशं मृतस्वर्णं प्रदापयेत् । द्विगुणं गंधकं दत्त्वा मर्दयेत् चित्रकाम्बुना ॥ पूर्या वराटिका तेन टङ्कणेन निरुध्य च । भाण्डे चूर्णप्रलिप्तेऽथ क्षिप्त्वा रुध्वा च मृण्मये ॥ शोषयित्वा गजपुटे पुटेत्तु चापराह्णिके । स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य चूर्णयित्वा तु विन्यसेत् ॥ एष लोकेश्वरो नाम वीर्यपुष्टिविव-र्द्धनः । गुंजाचतुष्टयं चास्य पिप्पलीमधुसंयुतम् ॥ मरिचैर्घृ-तयुक्तैश्च भक्षयेद्दिवसत्रयम् । अङ्गकार्श्येऽग्निमान्द्ये च कासे

पित्ते क्षयेपि च ॥ लवणं वर्जयेत्तत्र साज्यं दधि च योजयेत् । एकविंशद्दिनं यावत् सघृतं मरिचं पिबेत् ॥ पथ्यं मृगाङ्कवद्देयं शयीतोत्तानपादतः ॥ ये शुष्का विषमाशनैः क्षयरुजा व्याप्ताश्च येऽष्ठीलया पाण्डुत्वेन हताश्च वैद्यविधिना येस्वाधिना दुर्भगाः । ये तप्ता विविधैर्ज्वरैः श्रममदोन्मादैः प्रमादं गतास्ते सर्वे विगतामया हतरुजाः स्युः पोटलीसेवनात् ॥ ३१ ॥

भाषा-पारेकी भस्म चार भाग, सोनेकी भस्म एक भाग और गंधक दो भाग इन सबोंको एकत्र चीतेके रसमें खरल करके कौडीके भीतर भर देवे । कौडीके मुखको पिसे हुए सुहागेसे बंद कर देवे फिर उस कौडीको एक मट्टीके पात्रमें रख मुख बंदकर अपराह्नके समय गजपुटमें पकावे, स्वांगशीतल होनेपर निकालकर चूर्ण कर ले इसको लोकेश्वरपोटली रस कहते हैं । यह वीर्य और पुष्टिको करनेवाला है । इस औषधिको चार रत्तीप्रमाण पीपल और सहतके साथ अथवा मिरच और घीके साथ तीन दिन भक्षण करे । शरीरकी कृशता, मंदाग्नि, खांसी, पित्तरोग और क्षयरोगमें इस औषधिको सेवन करे तो लवण त्याग देवे । घी और दही सेवन करे । फिर इक्कीस दिनतक मिरचोंके साथ घृत पीवे इसपर पथ्य मृगांककी समान है और पैरोंको फैलाकर सोवे । जो मनुष्य विषम भोजन करनेसे सूख गये हैं, अष्ठीलारोगसे पीडित, पाण्डुरोगसे सताये हुए, नानाप्रकारके ज्वरोंसे पीडित, भ्रम मद और उन्मादसे दुःखित ऐसे रोगियोंको यह लोकेश्वरपोटली रस निःसंदेह दूर कर देता है ॥ ३१ ॥

कनकसुन्दरो रसः ।

रसस्य तुर्यभागेन हेमभस्म प्रयोजयेत् । मनःशिला गन्धकश्च तुत्थं माक्षिकतालकम् ॥ विषं टंकणकं सर्वं रसतुल्यं प्रदापयेत् । मर्द्दयेत् सर्वमेकत्र खल्वपात्रे च निर्म्मले ॥ जयन्तीभृङ्गराजोत्थैः पाठाया वासकस्य च । अगस्तिलाङ्गलाम्नीनां स्वरसैश्च पृथक् पृथक् ॥ भावयित्वा विशोष्याथ पुनश्चार्द्रकवारिणा । सप्तधा भावयित्वा च रसः कनकसुन्दरः ॥ गुंजाद्वयं त्रयं वास्य राजयक्ष्मप्रशान्तये । मधुना पिप्पलीभिर्वा मरिचैर्वा घृतान्वितम् ॥ सन्निपाते प्रदातव्यमार्द्रकस्य रसेन वै । जयपालरजोभिर्वा

गुल्मिने शूलरोगिणे ॥ अम्लवर्ज्यं चरेत्पथ्यं बल्यं हृद्यं रसायनम् । वर्जयेल्लवणं हिङ्गु तक्रं दधि विदाहि यत् ॥ ३२ ॥

भाषा–सोनेकी भस्म १ भाग, पारा, मैनशिल, गंधक, तूतिया, शुद्ध सोनामक्खी, हारिताल, विष और सुहागा यह प्रत्येक चार भाग, सबोंको एकत्र कर खरलमें डालकर उत्तम रीतिसे खरल करे फिर जयन्ती, भांगरा, पाढ, अडूसा, अगथिया, कलिहारी और चीतेके स्वरसमें पृथक् पृथक् भावना देकर पीस ले फिर अदरखके रसमें सात भावना देवे । इसको कनकसुन्दर रस कहते हैं । यह औषधि दो या तीन रत्ती प्रमाण सेवन करे इसमें राजयक्ष्मरोग शांत होता है । सहत और पीपलका चूर्ण अथवा घृत और मारिचोंके चूर्णके साथ इसको सेवन करे, सन्निपातमें अदरखके रसके साथ, गुल्म और शूलमें जमालगोटेके बीजोंके चूर्णके साथ प्रयोग करे । इसपर खटाई, निमक, हींग, छाछ, दही और दाहकारक पदार्थ त्याग कर बलकारक वस्तु सेवन करे ॥ ३२ ॥

हेमगर्भपोटलीरसः ।

रसभस्म त्रयोभागा भागैकं हेमभस्मकम् । मृतताम्रस्य भागैकं भागैकं गंधकस्य च ॥ मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्द्वियामान्ते समुद्धरेत् । पूर्या वराटिका तेन टङ्कणेन विलेपयेत् ॥ वराटिं पूरयेद्भाण्डे रुध्वा गजपुटे पचेत् । विचूर्णयेत् स्वाङ्गशीते पोटली हेमगर्भिकाम् ॥ मृगाङ्कवच्चतुर्गुञ्जाभक्षणाद्राजयक्ष्मनुत् ॥ ३३ ॥

भाषा–पारेकी भस्म ३ भाग, सुवर्णकी भस्म १ भाग, तांबेकी भस्म १ भाग, शुद्ध गंधक १ भाग ये सब द्रव्य चीतेके रसमें दो प्रहर खरल करे, फिर उसको कौडीके भीतर रखकर कौडीके मुखको सुहागेसे बंद कर देवे, फिर इस कौडीको मट्टीके बासनमें स्थापनकर गजपुटमें पकावे, जब स्वांगशीतल हो जाय तब निकालकर चूर्ण कर लेवे । इसको हेमगर्भपोटलीरस कहते हैं । इसको चार रत्ती प्रमाण मृगांकरसकी तरह सेवन करे तो राजयक्ष्म रोग दूर होता है ॥ ३३ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरो रसः ।

रसं गन्धं च तुल्यांशं द्वौ भागौ टंकणस्य च । मौक्तिकं विद्रुमं शंखभस्म देयं समांशिकम् ॥ हेमभस्मार्द्धभागं च सर्वं खल्वे विमर्दयेत् । निम्बुद्रवेण संपिष्य पिण्डिकां कारयेत्ततः ॥ पश्चाद्गजपुटं दत्त्वा सुशीतं च समुद्धरेत् । हेमभस्म समं तीक्ष्णं

तीक्ष्णार्द्धं दरदं मतम् ॥ एकीकृत्य समस्तानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । ततः पूजां प्रकुर्वीत रसस्य दिवसे शुभे ॥ सर्वाङ्गसुन्दरो ह्येष राजयक्ष्मनिकृन्तनः । वातपित्तज्वरे घोरे सन्निपाते सुदारुणे ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषे मेहे गुल्मे भगन्दरे । निहन्ति वातजान् रोगान् श्लैष्मिकांश्च विशेषतः ॥ पिप्पलीमधुसंयुक्तं घृतयुक्तमथापि वा । भक्षयेत् पर्णखण्डेन सितया चार्द्रकेण वा ३४

भाषा-पारा १ भाग, गंधक १ भाग, सुहागा दो भाग, मोती, मूंगा और शंखकी भस्म प्रत्येक आधा भाग, सुवर्णकी भस्म एक भाग इन सबोंको खरलमें मर्दन करके नीबूके रसमें पीसकर पिण्डाकार बना लेवे फिर इसको गजपुटमें पकाकर शीतल होनेपर सुवर्णसे आधा लोहा और लोहेसे आधा सिंगरफ मिलाकर फिर चूर्ण कर लेवे । पश्चात् शुभ दिनमें रसकी पूजा करके औषधिको सेवन करे । यह सर्वांगसुन्दररस राजयक्ष्म रोगको दूर करे है तथा वातपित्तज्वर, घोर सन्निपात, दारुण बवासीर, संग्रहणी, प्रमेह, गुल्म, भगन्दर, सर्व प्रकारके वातरोग, सर्व प्रकारके कफरोग इन सब रोगोंको दूर करे है । पीपलके चूर्णको सहतके साथ या घीके साथ या पानका टुकडा, शर्करा और अदरखके साथ इस औषधिका सेवन करे ॥ ३४ ॥

लोकेश्वरो रसः ।

पलं कपर्दचूर्णस्य पलं पारदगन्धयोः । माषश्च टङ्कणस्यैव जम्बीराद्भिर्विमर्दयेत् ॥ पुटेल्लोकेश्वरो नाम्ना लोकनाथरसोत्तमः । ऋते कुष्ठं रक्तपित्तजन्यान् रोगान् बलाज्जयेत् ॥ पुष्टिवीर्यप्रसादौजःकान्तिलावण्यदः परः । कोऽस्ति लोकेश्वरादन्यो नृणां शम्भुमुखोद्गतः ॥ ३५ ॥

भाषा-कौडीकी भस्म एक पल, पारा दो तोले, गंधक दो तोले, सुहागा एकमासा इन सब द्रव्योंको एकत्र जम्भीरी नीबूके रसमें खरल करके गजपुटमें पकावे । इसको लोकेश्वररस कहते हैं । यह औषधि कुष्ठको छोडकर रक्तपित्तजन्य अन्यान्य सम्पूर्ण रोगोंको बलपूर्वक दूर करता है । यह पुष्टि, वीर्य्य, कान्ति और लावण्यताको देनेवाला है । इस लोकेश्वररससे परे अन्य औषधि नहीं है । यह अपने आप शम्भुने कहा है ॥ ३५ ॥

अस्य पथ्यम् ।

पथ्यं शाल्योदनं सर्पिर्दधि शाकं सहिंगुकम् । नित्यं यामद्वया-

दूर्ध्वं कार्यं वारत्रयं दिवा ॥ त्र्यहान्तेऽरुचिवान्ते वा लग्नः सूतो न चेत् पुनः। अष्टमेऽह्नि प्रदातव्यं पूर्ववत् कार्यसिद्धये ॥ प्रथमे सप्तमे देया लावसूरणमुद्गकाः। द्वितीये माषगोधूमं भक्ष्यं पूर्वोदितं च यत् ॥ देयानि मत्स्यमांसानि तृतीये मर्द्दनादिकम्। तैलबिल्वारनालानि कोपस्त्रीस्वप्नजागरान् ॥ त्यजेत् कादीनि द्रव्याणि हृद्यं स्वादु च शीलयेत्। वायौ सेव्यं पयः कोष्णं पित्ते तु ससितं हितम् ॥ अत्यग्नौ चोरबीजानि तिलेक्षुकदलीफलम्। खर्जूरमांसमृद्वीकासितादि सकलं भजेत् ॥ वीर्यच्युतौ नारिकेलजलं तालफलानि च। आनाहारुचिमूर्च्छार्त्तिधूमोद्गारविषूचिकाः ॥ एतेषु लघुशाल्यन्नं केवलं सघृतं हितम्। अतिवान्तौ पिबेच्छिन्नारसं क्षौद्रेण संयुतम् ॥ सक्षौद्रं वासकं रक्तपित्तेऽरुचिविपर्यये। भृष्टधान्यं सितायुक्तमथवा क्षौद्रसंयुतम् ॥ यवान्नं मधुसंयुक्तं पिबेद्वा माहिषं दधि। यवान्नं भक्षयेन्नित्यं सुखोष्णेन च वारिणा ॥ छिन्नाम्बुसहितं देयं दाहेऽजीर्णे सुधाजलम्। आर्द्रकं सर्षपं रम्भाफलं भृंगं कफोल्वणे ॥ अन्येऽप्युपद्रवा ये स्युस्तत्तच्छान्त्यै यथोपधम्। द्वात्रिंशद्दिवसे कार्यं स्नानमामलकैस्तिलैः ॥ युक्तं सेव्यं बले जाते शनैरग्निबलादनु ॥ ३६ ॥

भाषा–इसपर शालिधानके चावल, घी, दही, शाक और हींग पथ्य है। प्रतिदिन दो दो प्रहरमें इस औषधिको तीन वारमें सेवन करे तीन दिनमें अरुचि अथवा वमन न होय तो फिर आठ दिनतक कार्य्यकी सिद्धिके लिये इसको सेवन करें। प्रथम सप्ताहमें लवाका मांस, जमीकंद और मूंगपथ्य देवे। दूसरे सप्ताहमें उड़द, गेहूं और पूर्वोक्त भक्ष्य द्रव्य पथ्य देवे। तीसरे सप्ताहमें मत्स्य और मांसका आहार करे। इस औषधिको सेवन करनेपर तैल, बेल, कांजी, क्रोध, स्त्रीप्रसंग, अधिक निद्रा, अत्यन्त जागना और ककारादि नामवाले सम्पूर्ण द्रव्य त्याग देवे। सुस्वादु और मनोहर सर्व द्रव्य सेवन करे। वायुरोगमें किंचित् गरम, पैत्तिकरोगमें शर्करा और अग्नि अत्यन्त दीपन होय तो शिवलिंगीके बीज, तिल, ईख, खजूर, केलेकी फली, मांस और द्राक्षादि पदार्थ सेव-

न करने चाहिये। विर्य्यहीन होय तो नारियलका जल और ताडके फल भक्षण करे। आनाह, अरुचि, मूर्छा, धूमोद्गार और विषूचिका रोगमें लघुशालिधानोंका भात घीके साथ पथ्य है। अधिक वमन होय तो गिलोयका रस सहतके साथ पीवे। रक्तपित्तरोगमें रुचिकी हानि होय तो सहतके साथ अडूसेका रसपान करे अथवा सहत और चीनीके साथ खीलोंका चूर्ण भक्षण करे या सहतके साथ यवाम्ल और भैंसका दही पीवे। यह औषधि सेवन करनेपर प्रतिदिन किंचित् गरम जलके साथ घृताम्र भक्षण करे। देह जीर्ण होनेपर गिलोयके काथमें थूहरका दूध डालकर पीवे। कफाधिक्यमें अदरख, सरसों, कदलीफल और भांगरा भक्षण करे। अन्यान्य उपद्रवशांतिके लिये यथोक्त औषधि सेवन करके ३२ दिनतक आमले और तिलोंको पीसकर शरीरमें मलकर स्नान करे॥ ३६॥

स्वल्पमृगाङ्कः।

रसभस्म हेमभस्म तुल्यं गुंजाद्वयं भजेत्।
दोषं बुध्द्वानुपानेन मृगांकोऽयं क्षयापहः॥ ३७॥

भाषा-रससिन्दूर एक रत्ती और सोनेकी भस्म एक रत्ती इन दोनों द्रव्योंको एकत्र कर रोगका बलाबल विचार अनुपानपूर्वक औषधिको सेवन करे। इसको स्वल्पमृगांक कहते हैं। यह सर्वप्रकारके क्षयरोगोंको दूर करे है॥ ३७॥

काञ्चनाभ्रकम्।

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लोहमभ्रकम्। विद्रुमं चाभया तारं कस्तूरी च मनःशिला॥ प्रत्येकं बिन्दुमात्रं तु सर्वं संमर्द्य यत्नतः। वारिणा वटिका कार्या द्विगुंजफलमानतः॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः। क्षयं हन्ति तथा कासं श्लेष्मपित्तसमुद्भवम्॥ प्रमेहं विविधं चैव दोषत्रयसमुत्थितम्। कफजान् वातजान् रोगान् नाशयेत् सद्य एव हि॥ बलवृद्धिं वीर्यवृद्धिं लिंगदार्ढ्यं करोति च। श्रीकरः पुष्टिजननो नानारोगनिषूदनः॥ गहनानन्दनाथोक्तो रसोऽयं कांचनाभ्रकः॥ ३८॥

भाषा-सोनेकी भस्म, रससिन्दूर, मोती, लोहा, अभ्रक, मूंगा, हरड, चांदी, कस्तूरी और मैनशिल ये प्रत्येक औषधि दो दो तोले लेकर एकत्र उत्तम विधिसे पीस लेवे फिर दो रत्तीकी गोलियां बनाकर रोगीके दोषानुसार अनुपान निरूपणपूर्वक सेवन करे यह औषधि क्षयरोग, खांसी, कफपित्तज रोग, प्रमेह, कफज

और वातज विविध प्रकारके रोग तत्काल दूर हो जाते हैं तथा बल वीर्य लिंगकी दृढता, श्री और पुष्टिकी वृद्धि होती है। यह काञ्चनाभ्रक गहनानन्दनाथने निर्म्माण किया है ॥ ३८ ॥

बृहत्काञ्चनाभ्ररसः ।

काञ्चनं रससिन्दूरं मौक्तिकं लोहमभ्रकम् । विद्रुमं मृतवैक्रान्तं तारं ताम्रं च वंगकम् ॥ कस्तूरिकां लवंगं च जातीकोषैलवालुकम् । प्रत्येकं बिन्दुमात्रं च सर्वं मर्द्यं प्रयत्नतः ॥ कन्यानीरेण संमर्द्य केशराजरसेन च । अजाक्षीरेण संभाव्यं प्रत्येकं दिवसत्रयम् ॥ चतुर्गुंजाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् । अनुपानं प्रयोक्तव्यं यथादोषानुसारतः ॥ क्षयं हन्ति तथा कासं यक्ष्माणं श्वासमेव च । प्रमेहान् विंशतिं चैव दोषत्रयसमुद्भवान्॥ सर्वरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३९ ॥

भाषा–सुवर्णकी भस्म, रससिन्दूर, मोती, लोहा, अभ्रक, मूंगा, वैक्रान्त, चांदी, तांबा, वंग, कस्तूरी, लौंग, जावित्री और एलुवा ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर एकत्र घीगुवारके रसमें उत्तम विधिसे खरल करे पश्चात् कुकुरभांगरा और बकरीके दूधमें तीन तीन दिन भावना देकर चार चार रत्तीकी गोलियां बना लेवे। प्रति दिन एक गोली खाय दोषोंके अनुसार अनुपान देवे। यह बृहत्काञ्चनाभ्रक क्षय, खांसी, राजयक्ष्मा, श्वास, वीस प्रकारके प्रमेह और अन्यान्य सर्वप्रकारके रोगोंको इस प्रकार दूर करता है जैसे अंधकारको सूर्य दूर कर देता है ॥ ३९ ॥

शिलाजत्वादिलोहम् ।

शिलाजतु मधु व्योषं ताप्यं लोहरजस्तथा ।
क्षीरेण लोहितस्याशु क्षयः क्षयमवाप्नुयात् ॥ ४० ॥

भाषा–शिलाजीत, मुलहटी, त्रिकुटा और सोनामक्खी ये सब समान भाग और लोहेका चूर्ण सबकी बराबर लेवे । सबको एकत्र उत्तम रीतिसे खरलकर दूधके साथ सेवन करे इससे सर्व प्रकारके क्षयरोग दूर होते हैं । इसको शिलाजित्वादिलोह कहते हैं ॥ ४० ॥

कुमुदेश्वरो रसः ।

हेमभस्म रसभस्म गन्धकं मौक्तिकं तु रसटंकणं तथा । तारकं गरुडसर्वतुल्यकं काञ्जिकेन परिमर्द्य गोलकम् ॥ मृत्स्नया च

परिवेष्टय शोषितं भाण्डके लवणगेथ पाचयेत्। एकरात्रमृदुसंपुटेन वा सिद्धिमेति कुमुदेश्वरो रसः॥ वल्लमस्य मरिचैर्घृताप्लुतै राजयक्ष्मपरिशान्तये पिबेत्॥ ४१॥

भाषा-सोना, रससिन्दूर, गंधक, मोती, पारा, सुहागा, चांदी और सोनामक्खी ये सब द्रव्य समान भाग लेकर कांजीमें खरल करके गोलाकार बना लेवे फिर इस गोलेको मृत्तिकासे वेष्टित कर सुखा लेवे फिर नमकसे भरे वासनमें रख मुख बंदकर एक दिन पुटपाक करे इस औषधिको तीन रत्ती मरिचोंके चूर्ण और घृतके साथ सेवन करनेसे सर्वप्रकारके क्षयरोग दूर होते हैं। इसको कुमुदेश्वररस कहते हैं॥ ४१॥

यक्ष्मकेसरी रसः।

त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवंगकैः।
नवभागोन्मितैस्तुल्यं लोहपारदसिन्दुरम्॥
मधुना क्षयरोगांश्च हन्त्ययं यक्ष्मकेशरी॥ ४२॥

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला, इलायची, जायफल और लौंग ये प्रत्येक औषधि एक भाग तथा लोहा, पारा और रससिन्दूर प्रत्येक तीन भाग, सबोंको एकत्र मिलाकर सहतके साथ सेवन करे इससे क्षयरोग दूर होता है। इसको यक्ष्मकेशरी रस कहते हैं॥ ४२॥

वृहच्चन्द्रामृतो रसः।

रसगन्धकयोर्ग्राह्यं कर्षमेकं सुशोधितम्। अभ्रं निश्चन्द्रकं दद्यात् पलार्द्धं च विचक्षणः॥ कर्पूरं शाणकं दद्याद्विशुद्धं मारितं भिषक्। लोहं कर्षं क्षिपेत्तत्र वृद्धदारकजीरकम्॥ विदारी शतमूली च क्षुरकं च बला तथा। मर्कव्यतिबला चैव जातीकोषफले तथा॥ लवङ्गं विजयाबीजं श्वेतसर्जरसं तथा। शाणभागं समादाय चैकीकृत्य प्रयत्नतः॥ मधुना मर्दयेत्तावत् यावदेकत्वमागतम्। चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः॥ भक्षयेद्वटिकामेकां पिप्पलीमधुना सह॥ ४३॥

भाषा-पारा और गंधक प्रत्येक दो तोले, अभ्रक चार तोले, कपूर अधा तोला, स्वर्ण और तांबा एक तोला, लोहा दो तोले, विधायरेके बीज, जीरा, विदारीकं,

द, सतावर, तालमखाना, खिरेटी, कौंछ, गंगेरन, जायफल, जावित्री, लौंग, भांगरेके बीज और सफेद राल प्रत्येक अर्धा तोला सबको एकत्र मिलाकर सहतके साथ सेवन करे फिर चार चार रत्तीकी गोलियां बनाकर पीपलके चूर्ण और सहतके साथ सेवन करे इसको वृहचन्द्रामृतरस कहते हैं ॥ ४३ ॥

इति राजयक्ष्मक्षतक्षीणरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ कासरोगनिदानम् ।

अथ कारण संप्राप्ति और निरुक्ति ।

धूमोपघाताद्रजसस्तथैव व्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च ।
विमार्गगत्वाच्च हि भोजनस्य वेगावरोधात् क्षवथोस्तथैव ॥
प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः संभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः ।
निरेति वक्रात् सहसा सदोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥१॥

भाषा-मुख और नासिकामें धूंआ या धूलिके प्रवेश होनेसे, दंड कसरत करनेसे, रूखा अन्न भक्षण करनेसे, भोजनके कुपथ्यसे, मलमूत्रके वेगको रोकनेसे तथा छींकके रोकनेसे प्राणवायु अत्यंत दुष्ट होकर दूषित उदान वायुसे मिलकर फूटे कांसेके समान शब्द करती हुई कफपित्तके साथ निकले उसको वैद्य खांसी कहते हैं। कांसेकी समान जो इसमें शब्द होता है इसलिये इसको कास कहते हैं ॥ १ ॥

अथ तस्य संख्यामाह ।

पंच कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ।
क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ २ ॥

भाषा-यह कासरोग पांच प्रकारका है। जैसे वातज, पित्तज, कफज, क्षतज और क्षयज इनकी औषधि नहीं की जाय तो सर्व खांसी क्षयरूप हो जाती हैं और यह उत्तरोत्तर बलवान् हैं ॥ २ ॥

पूर्वरूप ।

पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णगलास्यता ।
कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ॥ ३ ॥

भाषा-सर्व प्रकारकी खांसीमें प्रथम मनुष्यके गले और मुखमें कांटेसे हो जांय, कंठमें खुजली हो और भोजन नहीं कर सके यह खांसीके पूर्वलक्षण हैं ॥ ३ ॥

वातकासके लक्षण ।

हृच्छंखमूर्द्धोदरपार्श्वशूली क्षामाननः क्षीणबलस्वरौजाः ।
प्रसक्तवेगस्तु समीरणेन भिन्नस्वरः कासति शुष्कमेव ॥ ४ ॥

भाषा–हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर और पसलियोंमें वेदना हो, मुख शुष्क रहे, बल स्वर और पराक्रम क्षीण हो जाय, वारंवार खांसीकी धसकका होना, स्वरभंग और खांसी सूखी हो ये वातज खांसीके लक्षण जानने ॥ ४ ॥

पैत्तिककासके लक्षण ।

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्त्तः ।
पित्तेन पीतानि वमेत् कटूनि कासेत् सपाण्डुः परिदह्यमानः॥ ५ ॥

भाषा–वक्षस्थलमें दाह, ज्वर, मुखका सूखना, मुखका स्वाद कडवा हो, तृषासे पीडित हो, पीले रंगकी और कडवी वमन करे, रोगीका शरीर पीला हो जाय और सर्वशरीरमें दाह हो ये पित्तज खांसीके लक्षण हैं ॥ ५ ॥

कफजकासके लक्षण।

प्रलिप्यमानेन मुखेन सीदन् शिरोरुजार्त्तः कफपूर्णदेहः ।
अभक्तरुग्गौरवकण्डुयुक्तः कासे भृशं सांद्रकफः कफेन ॥ ६ ॥

भाषा–कफकी खांसीमें मुख कफसे लिपटा रहे, शरीरमें अवसन्नता, शिरमें पीडा, शरीरमें कफकी अधिकता, अरुचि, शरीरमें भारीपन, खुजली और खांसते समय अत्यन्त गाढा कफ निकले ॥ ६ ॥

क्षतजकासके लक्षण ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहैः । रूक्षस्योरक्षतं वायुर्गृहीत्वा कासमाचरेत्॥ स पूर्वं कासते शुष्कं ततः ष्ठीवेत् सशोणितम् । कण्ठेन रुजतात्यर्थं विरुग्णेनेव चोरसा ॥ सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना । दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीडाभितापिना ॥ पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्यपीड़ितः । पारावत इवाकूजन् कासवेगात् क्षतोद्भवात् ॥ ७ ॥

भाषा–अत्यन्त मैथुन करनेसे, भारके ढोनेसे, अत्यन्त मार्ग चलनेसे, मल्लयुद्धादिक करनेसे, दौडते हुए हाथी घोडे बैल आदिके रोकनेसे; कुपित हुई वायु वक्षस्थलको विदारण कर खांसीको उत्पन्न करे । वह रोगी प्रथम सूखा खांसे फिर रुधिरमिश्रित थूके, कंठमें पीडा हो, छाती फटीसी मालूम हो और तीक्ष्ण सूईकी

समान चमके चले, हृदयको स्पर्श अच्छा नहीं मालूम हो, दोनों पसलियोंमें दर्द हो, दाह हो, गांठ, गांठमें पीडा हो, ज्वर, श्वास, तृषा और स्वरभंगसे पीडित हो, खांसनेके समय वारंवार कबूतरकी तरह घूंघूं शब्द करे। ये क्षतोत्पन्न खांसीके लक्षण जानने ॥ ७ ॥

क्षयकासके लक्षण ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् । घृणिनां शोचतां नृणां व्यापन्नेऽग्नौ त्रयो मलाः ॥ कुपिताः क्षयजं कासं कुर्युर्देहक्षयप्रदम् । स गात्रशूलज्वरदाहमोहान्प्राणक्षयं चोपलभेत कासी ॥ शुष्यन् विनिष्ठीवति दुर्बलस्तु प्रक्षीणमांसो रुधिरं सपूयम् । तं सर्वलिङ्गं भृशदुश्चिकित्स्यं चिकित्सितज्ञाः क्षयजं वदन्ति ॥ ८ ॥

भाषा–विषम भोजन और अत्यन्त आहार करनेसे, अत्यन्त मैथुन और मलमूत्रादिके वेगको धारण करनेसे, घृणी और शोकसे सन्तप्त मनुष्यके अग्नि मंद हो जाय तब तीनों दोष कुपित होकर क्षयज कासरोगको उत्पन्न करे। वह खांसी शरीरको क्षीण करे, शूल, ज्वर, दाह और मोह हो, तब यह प्राणोंका नाश करे, खांसी शुष्क हो, रुधिर मांस और शरीर सूख जाय, रक्त और राध थूके इन सब लक्षणोंसे युक्त और दुश्चिकित्स्य ऐसी खांसीको क्षयज कहते हैं ॥ ८ ॥

साध्यासाध्य ।

इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः । साध्यो बलवतां वा स्याद्याप्यस्त्वेवं क्षतोत्थितः ॥ नवौ कदाचित् सिध्येतामपि पादगुणान्वितौ । स्थविराणां जराकासः सर्वो याप्यः प्रकीर्तितः ॥ त्रीन् पूर्वान् साधयेत् साध्यान् पथ्यैर्याप्यांस्तु यापयेत् ॥ ९ ॥

भाषा–यह क्षयज खांसी क्षीण मनुष्यकी प्राणनाशक है तथा बलवान् मनुष्योंके साध्य अथवा याप्य है। क्षतज खांसीभी इसी प्रकार जाननी। यदि वैद्यादिक पादचतुष्टययुक्त हो और यह दोनों प्रकारका कासरोग नवीन हो तो कदाचित् साध्य है और वृद्ध अवस्थामें उत्पन्न हुई यह दोनों प्रकारकी खांसी याप्य है तथा सब इन्द्रियनके अन्तर्गत जाननी। वात, पित्त और कफज ये तीन खांसी तो साध्य हैं और शेष याप्य हैं। वे पथ्य सेवन करनेसे साध्य हो जाती हैं ॥ ९ ॥

इति कासरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ कासरोगचिकित्सा ।

शाक यूष लेहादिकथन ।

वास्तुको वायसीशाकं मूलकं सुनिषण्णकम् । स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ दध्यारनालाम्लफलं प्रसन्नापनमेव च। शस्यते वातकासे तु स्वाद्वम्ललवणानि च॥ ग्राम्यानूपौदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् । रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धि तान् ॥ शठीशृङ्गीकणाभार्गीगुडवारिदवासकैः । सतैलैर्वातकासघ्नो लेहोयमपराजितः ॥ पित्तकासे तनुकफे त्रिवृतां मधुरैर्युताम् । दद्याद् घनकफे तिक्तैर्विरेकार्थं युतां भिषक् ॥ मधुरैर्जाङ्गलरसैः श्यामाकयवकोद्रवाः । मुद्गादियूषैः शाकैश्च तिक्तकैर्मात्रया हिताः ॥ द्राक्षा मधुकखर्जूरं पिप्पलीमरिचान्वितम् । पित्तकासहरं ह्येतल्लिह्यान्माक्षिकसर्पिषा ॥ बलिनं वामनेनादौ शोधितं कफकासिनम् । यवान्नैः कटुरूक्षोष्णैः कफघ्नैश्चाप्युपाचरेत् ॥ पार्श्वशूले ज्वरे श्वासे कासे श्लेष्मसमुद्भवे । पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥ स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम् । पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ कण्टकारिकृतः क्वाथः सकृष्णः सर्वकासहा । बिभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत्परिवेष्टितम् ॥ स्विन्नमग्नौ हरेत् कासं ध्रुवमास्ये विधारितम् । वासकस्वरसः पेयो मधुयुक्तो हिताशिना ॥ पित्तश्लेष्मकृते कासे रक्तपित्ते विशेषतः । वासायाः स्वरसं पूतं स्वर्णमाक्षिकसंयुतम् ॥ अभ्यासान्मुच्यते पीत्वाप्यसाध्यान् कासरोगतः । समूलं चित्रकं चैव पिप्पलीचूर्णकं हरेत् ॥ कासं श्वासं च हिक्कां च मधुयुक्तं द्विजोत्तमम् ।

१ पुटपाकेन उत्स्विन्न वासकस्य रसो ग्राह्यः अत्र क्वाथं व्यवहरन्ति वृद्धाः ।

तद्वत्क्रव्यादजं मांसं कौलिंगं मांसमेव च ॥ असाध्यान्मुच्यते भुक्त्वा कासादभ्यासयोगतः । मुस्तकं पिप्पली द्राक्षा सुपक्वं बृहतीफलम् ॥ घृतक्षौद्रयुतो लेहः क्षयकासनिबर्हणः ॥ १० ॥

भाषा–वातकी खांसीमें बथुवेका शाक, मकोय, मूली, शिरिआरीका शाक, घृत तैलादि स्नेह पदार्थ, दूध, ईखका रस, गुडके बने पदार्थ, दही, कांजी, खट्टे फल, सुरामण्ड तथा स्वादिष्ठ, खट्टे और नमकीन पदार्थ भोजन करने चाहिये। ग्राम्य (बकरी आदि), आनूप (वराहादि) और औदक (कच्छपादि) जीवोंके मांसके यूषके साथ जव, गेहूं, साठी और शालिधानोंके चावल भोजन करे। अथवा उडद और कौंछके बीजोंका यूषादि सेवन करे। कचूर, कांकडाशिंगी, पीपल, भारंगी, पुराना गुड, नागरमोथा और धमासा इन सबोंको कडवे तेलमें मिलाकर अवलेह करनेसे वातकी खांसी दूर होती है । पित्तकी खांसीमें जो कफ क्षीण हो गया हो तो निसोतका क्काथ मधुर रसके साथ विरेचनके लिये प्रयोग करे जो कफ प्रबल हो तो कडवे रसोंके साथ प्रयोग करे । पित्तकी खांसीमें सामा, जौ और कोदों धान, जांगल पशुओंके मांसके यूषके साथ देवे, मूंगादिका यूष देवे या तिक्तशाकोंके साथ भोजन करे । दाख, मुलहठी, पिण्डखजूर, पीपल और मरिच इनका घृत और सहतके साथ अवलेह बनाकर सेवन करनेसे पित्तज खांसी दूर होती है । कफज खांसीमें पार्श्वपीडा, ज्वर और श्वास होय तो पीपलके चूर्णके साथ दशमूलका क्काथ पीवे । अदरखके रसको सहतके साथ पीनेसे श्वास, खांसी और प्रतिश्याय रोग दूर होता है । दो तोले कटेरीको आधसेर जलमें पकावे जब आधपाव रह जाय तब उतार लेय फिर इसमें चार मासे पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे सर्व प्रकारकी खांसी दूर होती है । बहेडेको घृतसे या गोबरसे वेष्टित कर अग्निमें भूनकर मुखमें धारण करनेसे निश्चय खांसी दूर हो जाती है। अडूसेके पत्तोंका स्वरस सहतके साथ सेवन करे और पथ्य भोजन करे तो पित्तश्लेष्मखांसी और रक्तपित्त दूर होवे पुटपाकविधिसे अडूसेका रस निकालकर पीपलके चूर्ण और सहतके साथ प्रतिदिन पीवे तो अत्यन्त दुःसाध्य कासरोगसे निरोगी होवे। इस प्रयोगमें प्राचीन वैद्य अडूसेका क्काथ मिलाते हैं । सूखी मूली, चीतेकी जड और पीपलका चूर्ण समान भाग मिलाकर सहतके साथ सेवन करे तो खांसी, श्वास और हिक्कारोग दूर होवे क्रव्य और कुलिंगादिकके मांसका प्रतिदिन भोजन करनेसे असाध्य कासरोग दूर होता है । नागरमोथा, पीपल, दाख और पके हुए कटाईके फल इन सबोंको घृत सहतमें मिलाकर चाटनेसे क्षयज खांसी दूर होती है ॥१०॥

बृहद्रसेन्द्रगुटिका।

कर्षं शुद्धरसेन्द्रस्य गन्धकस्याभ्रकस्य च। ताम्रस्य हरिता-
लस्य लोहस्य च विषस्य च ॥ मनःशिलायाः क्षाराणां बीजं
धत्तूरकस्य च। मरिचस्य च सर्वेषां समं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥
जयन्ती चित्रकं माणं खण्डकर्णोथ मण्डुकी। शक्राशनं भृङ्गराजं
केशराजार्द्रसिन्धुकम् ॥ एतेषां स्वरसेनापि कर्षमात्रेण मर्दयेत्।
कलायपरिमाणां तु वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ आर्द्रकस्वरसेनैव
पंचकासं व्यपोहति। हन्ति कासं तथा श्वासं यक्ष्माणं सभग-
न्दरम् ॥ अग्निमान्द्यारुचिं शोथमुदरं पाण्डुकामलाम्। रसा-
यनी च वृष्या च बलवर्णप्रसादनी ॥ ११ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, अभ्रककी भस्म, तांबेकी भस्म, शुद्ध हरिताल, लोहेकी भस्म, शुद्ध विष, शुद्ध मैनशिल, सज्जी, सुहागा, जवाखार, धतूरेके बीज और काली मिरच प्रत्येक एक एक तोले लेकर सबोंको एकत्र पीसकर चूर्ण कर ले, फिर जयन्ती, चीता, मानकंद, खण्डकर्णआलू, ब्रह्ममण्डूकी, भांग, भांगरा, कुकुरभांगरा, अदरख और संभालू प्रत्येकका स्वरस एक एक तोला ऊपरोक्त चूर्णमें मिलाकर मटरकी समान गोलियां बना लेवे। अदरखके रसके साथ इस औषधिको सेवन करनेसे पांचों प्रकारकी खांसी नष्ट होती है। तथा श्वास, कास, राजयक्ष्मा, भग-न्दर, मंदाग्नि, अरुचि, सूजन, उदररोग, पाण्डु और कामलारोग दूर होता है। यह शरीरके बल और वर्णको बढाता है इसको बृहद्रसेन्द्रगुटिका कहते हैं ॥ ११ ॥

अमृतार्णवो रसः।

पारदं गंधकं शुद्धं मृतलोहं च टंकणम्। रास्नां विडंगं त्रिफलां
देवदारुं च चित्रकम् ॥ अमृतां पद्मकं क्षौद्रं विषं चैव विमर्द-
येत्। द्विगुंजं वातकासार्त्तः सेवयेदमृतार्णवम् ॥ १२ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, गंधक, लोहेकी भस्म, सुहागा, रास्ना, वायविडंग, त्रिफला, देवदारु, चीता, गिलोय, पद्माख, मुलहठी और विष इन सबोंको समान भाग लेकर एकत्र खरल करे, इसको अमृतार्णव रस कहते हैं। इसको दो गुंजाप्रमाण सेवन करनेवालेकी खांसी दूर होती है ॥ १२ ॥

पित्तकासान्तको रसः।

भस्म ताम्राभ्रकान्तानां कासमर्द्दत्वचो रसैः। मणिजैर्वेतसाम्लैश्च

दिनं मर्द्यं सुपिण्डितम् ॥ निष्कार्द्धं पित्तकासार्त्तो भक्षयेच्च दिन-त्रयम् । कासश्वासाग्निमांद्यं च क्षयं चापि निहन्त्यलम् ॥ १३ ॥

भाषा–तांबेकी भस्म, अभ्रककी भस्म और कान्तलोहेकी भस्म, समान भाग लेकर कसौंदीकी छालके स्वरसमें, अगथियाफूलोंके रसमें और अमलवेतके रसमें एक दिन खरल करे । इसको अर्द्धनिष्क भक्षण करनेसे पित्तकी खांसी तीन दिनमें दूर हो जाती है तथा खांसी, श्वास, मंदाग्नि और क्षयरोगको दूर करे है ॥ १३ ॥

कासमंहारभैरवरसः ।

रसगन्धकताम्राभ्रशंखटंकणलोहकम् । मरिचं कुष्ठतालीशं जातीफललवङ्गकम् ॥ कार्षिकं चूर्णमादाय दण्डेनामर्द्य भावयेत् । भेकपर्णी केशराजो निर्गुण्डी काकमाचिका ॥ द्रोणपुष्पी शालिपर्णी ग्रीष्मसुन्दरकं तथा । भार्ङ्गी हरीतकी वासा कार्षिकैः पत्रजै रसैः ॥ वटिकां कारयेद्वैद्यः पंचगुंजाप्रमाणतः । वातजं पैत्तिकं कासं श्लैष्मिकं चिरजं तथा ॥ श्रीमद्गहननाथेन कासमंहारभैरवः । रसोयं निर्मितो यत्नाल्लोकरक्षणहेतवे ॥ वासाशुण्ठी-कंटकारीक्वाथेन पाययेद्बुधः । कासं नानाविधं हन्ति श्वासमुग्रमरोचकम् ॥ बलवर्णकरः श्रीदः पुष्टिदः कान्तिवर्द्धनः ॥ १४ ॥

भाषा–पारा, गंधक, तांबा, अभ्रक, शंख, सुहागा, लोहा, काली मिरच, कूठ, तालीसपत्र, जायफल और लौंग प्रत्येकका चूर्ण एक एक कर्ष लेकर मण्डूकपर्णी, कुकुरभांगरा, संभालू, मकोय, गूमा, शालिपर्णी, ग्रीष्मसुन्दर, भारंगी, हरड और अडूसा प्रत्येकके एक एक कर्ष रसमें खरल करके पांच पांच रत्तीकी गोलियां बना लेवे । इन गोलियोंको सेवन करनेसे वातज, पित्तज, कफज और बहुत पुरानी खांसी दूर होती है । श्रीमान् गहनानन्दनाथने यह कासमंहारभैरव रस संसारकी रक्षाके लिये निर्म्माण किया है । अनुपान अडूसा, सोंठ और कटेरीका क्वाथ है । यह नानाप्रकारकी खांसी, उग्र श्वास और अरुचिको दूर करे है । बल और वर्णको करनेवाला, लक्ष्मीजनक, पुष्टिकारक और कांतिजनक है ॥ १४ ॥

लक्ष्मीविलासो रसः ।

शुद्धसूतं सतालं च तालार्द्धं रसखर्परम् । वङ्गं ताम्रं घनं कान्तं कांस्यं गंधं पलं पलम् ॥ केशराजरसेनैव भावयेद्दिवसत्रयम् ।

कुलत्थस्य रसेनैव भावयेच्च पुनः पुनः ॥ एलाजातीफलाख्यं च तेजपत्रं लवंगकम् । यवानी जीरकं चैव त्रिकटु त्रिफला समम् ॥ भावयेच्च रसेनैव गोलयेत् सर्वमौषधम्। छायाशुष्का वटी कार्या चणकप्रमिता शुभा ॥ शीताम्बुना पिबेद्धीमान् सर्वकासनिवृत्तये । मत्स्यं मांसं तथा क्षीरं पथ्यं स्यात् स्निग्धभोजनम् ॥ क्षयं कासं तथा श्वासं सज्वरं वाथ विज्वरम् । हलीमकं पाण्डुरोगं शोथं शूलं प्रमेहकम् ॥ अर्शोनाशं करोत्येव बलवृद्धिं च कारयेत् । वर्जयेच्छाकमम्लं च भृष्टद्रव्यं हुताशनम् ॥ १८ ॥

भाषा-शुद्ध पारा २ पल, हरिताल २ पल, खपरिया, बंग, तांबा, अभ्रक, कान्तलोहा, कांसा और गंधक ये प्रत्येक एक एक पल इन सबोंको एकत्र करके कुकुरमांगरेके रसमें तीन दिन भावना देकर कुलथीके काथमें सात बार भावना देवे फिर इसमें इलायची, जायफल, तेजपात, लौंग, अजवायन, जीरा, त्रिकुटा और त्रिफला इन प्रत्येक औषधिका चूर्ण चार चार तोले मिलाकर चनेकी बराबर गोलियां बना लेवे।इन गोलियोंको छायामें सुखाकर शीतल जलके साथ सेवन करे इससे सर्व प्रकारकी खांसी दूर होती है।इस औषधिको सेवन करनेपर मत्स्य मांस और दूध आदि स्निग्धद्रव्य पथ्य हैं।इससे ज्वरसहित या ज्वररहित क्षय, खांसी, श्वास, हलीमक, पाण्डु, सूजन, शूल, प्रमेह और बवासीर दूर होती है। बलकी वृद्धि होती है। इस औषधिपर शाक, खटाई, भृष्ट द्रव्य और अग्निसेवन छोड देवे । इसको लक्ष्मीविलास रस कहते हैं ॥ १८ ॥

सर्वेश्वरो रसः ।

रसगन्धकयोश्चूर्णमेकीकृत्याभ्रकं तथा । हेममिश्रं समं कृत्वा मर्दयेद्यामकद्वयम् ॥ त्र्यूषणानि लवंगैला टंकणं हेम तुल्यकम् । कंटकार्या रसैर्भाव्यमेकविंशतिवारकम् ॥ शिग्रुबीजार्द्रकरसैः सप्तधा भावयेत्पृथक् । रसः सर्वेश्वरो नाम कासश्वासक्षयापहः ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं बिभीतकफलत्वचम् ॥ १६ ॥

भाषा-पारा, गंधक, अभ्रक और सोना ये सब समान भाग लेकर दो प्रहरतक खरल करे फिर इसमें त्रिकुटा, कलिहारी, इलायची और सुहागा ये प्रत्येक एक एक भाग मिला लेवे । फिर कटेरीके रसमें २१ वार भावना देकर सहजनेके

रसमें सात वार और अदरखके रसमें सात वार भावना देकर गोलियां बनावे इसको सर्वेश्वर रस कहते हैं। इस औषधिको सेवन करनेसे खांसी, श्वास और क्षयरोग दूर होता है। अनुपान बहेडेकी फलकी छाल है ॥ १६ ॥

शृङ्गाराभ्रः ।

शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं द्विपलपरिमितं शाणमानं यदन्यत्कर्पूरं जातिकोषं सजलमिभकणा तेजपत्रं लवंगम् । मांसीतालीसचोचनागकुसुममदं धातकी चेति तुल्यं पथ्या धात्री विभीतं त्रिकटुस्य पृथगर्द्धशाणं द्विशाणम् ॥ एला जातीफलाख्यं क्षितितलविधिना शुद्धगन्धाश्मकोलं कोलार्द्धं पारदस्य प्रतिपदविहितं सर्वमेकत्र मिश्रम् । पानीयेनैव कार्य्याः परिणतचणकस्विन्नतुल्याश्च वट्यः प्रातः खाद्याश्चतस्रस्तदनु च कियत् शृंगवेरं सपर्णम् ॥ पानीयं पीतमन्ते ध्रुवमपहरति क्षिप्रमेतान् विकारान् कोष्ठे दुष्टाग्निजातान् ज्वरमुदररुजो राजयक्ष्म क्षयं च । कासं श्वासं सशोथं नयनपरिभवं मेहमेदोविकारान् छर्दिं शूलाम्लपित्तं तृषमपि महतीं गुल्मजालं विशालम् ॥ पाण्डुत्वं रक्तपित्तं गरलभवगदान् पीनसं प्लीहरोगान् हन्यादामाशयोत्थान् कफपवनकृतान् पित्तरोगानशेषान् । बल्यो वृष्यश्च योगस्तरुणतरकरः सर्वरोगे प्रशस्तः पथ्यं मांसैश्च यूषैर्घृतपरिलुलितैर्गव्यदुग्धैश्च भूयः ॥ भोज्यं योज्यं यथेष्टं ललितललनया दीयमानं मुदा यत् शृंगाराभ्रेण कामी युवतिजनशताभोगयोगादतुष्टः । वर्ज्यं शाकाम्लमादौ दिनकतिपयचित् स्वेच्छया भोज्यमन्यत् दीर्घायुः काममूर्त्तिर्गतवलिपलितो मानवोऽस्य प्रसादात् ॥ १७ ॥

भाषा-शुद्ध कृष्णाभ्रकका चूर्ण २ पल; कपूर, जावित्री, सुगंधवाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, बालछड, तालीसपत्र, दालचीनी, नागकेशर, कूठ और धायके फूल ये प्रत्येक चार चार मासे; हरड, आमला, बहेडा, सोंठ, मिरच, पीपल ये प्रत्येक औषधि दो दो मासे; इलायची, जायफल और गंधक ये प्रत्येक

एक एक तोला; पारा अर्धा तोला इन सर्वोको एकत्र जलके साथ खरल करे, पश्चात् उसीजे हुए चनेकी समान गोलियां बना लेवे। प्रातःकाल यह चार गोली खाकर अदरख और पान चावे फिर शीतल जल पीवे इससे कोष्ठगत मंदाग्निजनक रोग, ज्वर, उदरकी पीडा, राजयक्ष्मा, क्षयरोग, खांसी, श्वास, शोथ, प्रमेह, मेदोरोग, वमन, शूल, अम्लपित्त, तृषा, गुल्म, पाण्डु, रक्तपित्त, विषजरोग, पीनस, प्लीहा, आमाशयोत्थित वातिक, पैत्तिक और श्लैष्मिक सर्व रोग दूर होते हैं। बलकारक और वीर्यवर्धक है। इस औषधिको सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्यभी तरुणकी समान हो जाता है। यह सर्वरोगोंमें हितकारी है। इस औषधिको सेवन करनेपर घृतसे भूना हुआ मांसका यूष और गायका दूध सेवन करे। इस औषधिके प्रभावसे कामी मनुष्य सौ स्त्रियोंसे विषय कर सक्ता है इसपर शाक और खटाई छोड देवे इससे रोगी मनुष्यभी वलीपलितरहित होकर कामदेवकी समान दिव्य कांतियुक्त बहुत दिनोंतक जीता रहता है इसको शृंगाभ्र कहते हैं॥ १९॥

सार्वभौमो रसः।

जीर्णे सुवर्णे लोहं वा यद्यत्रैव प्रदीयते।
तदायं सर्वरोगाणां सार्वभौमो न संशयः॥ १८॥

भाषा-शृंगाराभ्रकमें सुवर्णकी भस्म अथवा जारितलोहा मिला लेवे तो सार्वभौम रस होता है। यह सार्वभौम रस शृंगाराभ्रककी समान गुणवाला और सर्वप्रकारके रोगोंको हरनेवाला है॥ १८॥

तरुणानन्दरसः।

कर्षद्वयं रसेन्द्रस्य शुद्धस्य गंधकस्य च। कज्जलीकृत्य यत्नेन शिलातलदृढे शुभे॥ बिल्वाग्निमन्थः श्योनाकः काश्मरी पाटला बला। मुस्तं पुनर्नवा धात्री बृहती वृषपत्रकम्॥ विदारी शतमूली च कर्षैरेषां पृथग्रसैः। मर्दयित्वा पुनर्वासास्वरसैर्दशतोलकैः॥ मर्दयेत्तत्र शुद्धाभ्रं रसस्य द्विगुणं क्षिपेत्। रसस्यार्द्धं च कर्पूरं तत्रैव दापयेद्भिषक्॥ जातीकोषफले मांसी तालीसैलालवंगकम्। चूर्णं कृत्वा प्रयत्नेन माषमात्रं क्षिपेत्पृथक्॥ विदारीस्वरसेनैव वटिकां कारयेद्भिषक्। राजयक्ष्माणमत्युग्रं क्षयं चोग्रमुरक्षतम्॥ कासं पंचविधं श्वासं स्वरभङ्गमरोचकम्। कामलां पाण्डुरोगं च प्लीहानं सहलीमकम्॥

जीर्णज्वरं तृषां गुल्मं ग्रहणीमामसम्भवाम् । अतीसारं च शोथं च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥ नाशयेदेव विख्यातस्तरुणानन्दसंज्ञितः । रसायनवरो वृष्यश्चक्षुष्यः पुष्टिवर्द्धनः ॥ सहस्रं याति नारीणां भक्षणादस्य मानवः । क्षीणता न च शुक्रस्य न च बुद्धिबलक्षयः ॥ द्विमासमुपयोगेन निहन्ति कामलान् गदान् । शुक्रसंदीपनं कृत्वा ज्वरं हन्ति न संशयः ॥ नारिकेलजलेनैव भक्ष्योऽयं च रसायनः । क्षीरानुपानाद्वृष्योऽयं न क्वचित् प्रतिहन्यते ॥ १९ ॥

भाषा—शुद्ध पारा चार तोले और शुद्ध गंधक चार तोले दोनोंको एकत्र खरलमें डालकर उत्तम रीतिसे पीसकर कजली बना लेवे । फिर उसमें बेल, अरणी, श्योनाक, कुम्मेर, पाढल, खिरेटी, नागरमोथा, पुनर्नवा, आमला, कटाई, अडूसेके पत्ते, विदारीकंद और सतावर प्रत्येकका रस दो दो तोले डालकर सुखा लेवे; फिर अडूसेके पत्तोंका रस दश तोले डालकर खरल करे। जब सूख जाय तब अभ्रक आठ तोले, कपूर दो तोले, तथा जावित्री, जायफल, बालछड, तालीसपत्र, लौंग और इलायची इन प्रत्येकका चूर्ण एक तोला मिलाकर विदारीकंदके रसमें खरल करे। फिर गोलियां बनाकर सेवन करे तो अत्यन्त उग्र राजयक्ष्मा रोग, क्षयरोग, उरक्षत, पांचों प्रकारकी खांसी, श्वास, स्वरभंग, अरुचि, कामला, पाण्डु, प्लीहा, हलीमक, जीर्णज्वर, तृषा, गुल्म, आमजन्य संग्रहणी, अतीसार, शोथ, कुष्ठ और भगन्दर ये सब रोग दूर हो जाते हैं । इसको तरुणानन्द रस कहते हैं । यह उत्तमरसायन, वीर्यवर्द्धक, नेत्रोंको हितकारी, पुष्टिकारक, इसको भक्षण करके मनुष्य सहस्रों स्त्रियोंसे विषय करे तोभी शुक्रका क्षय न हो और बल तथा बुद्धिकी हानि न हो। दो महीने इस औषधिको सेवन करनेसे कामलारोग नष्ट हो जाता है, शुक्रकी वृद्धि होती है और ज्वरका नाश होता है । इस औषधिको नारियलके जलके साथ सेवन करे तो रसायनके गुणोंको करे है तथा दूधके अनुपानसे इसको सेवन करे तो वीर्य्यको बढाती है यह औषधि कभीभी निष्फल नहीं होती ॥ १९ ॥

स्वच्छन्दभैरवः ।

रसमेकं द्विधा गन्धं गंधतुल्यं च सैन्धवम् । ज्वालामुखीरसैः पंच दिनानि परिमर्द्दयेत् ॥ मूषकायां निरुध्याथ पुटेद्यामौ च मध्यमम् । सर्वं भस्म यदा याति वल्लमेनं प्रयच्छति ॥ ग्रहण्यां

संग्रहण्यां च कासे श्वासे विशेषतः। उग्रासु ज्वरतन्द्रासु निद्रा-
स्वल्पासु योजयेत् ॥ अन्यरोगेषु तं दद्याद्रसं स्वच्छन्दभैरवम्।
तुष्टिं पुष्टिमसौ कुर्यात् सौकुमार्यं च कारयेत् ॥ २० ॥

भाषा-पारा १ भाग, गंधक २ भाग और सेंधानोन ३ भाग इन सबद्रव्योंको एकत्र करके मिलाएके रसमें पांच दिन भावना देवे, फिर उत्तमरीतिसे खरल करके मूषामें स्थापन कर एक रात पुटपाक करे, फिर जब यह औषधि भस्म हो जाय तब उसको लेकर दो रत्ती सेवन करे। यह स्वच्छन्दभैरव रस संग्रह, ग्रहणी, खांसी, श्वास, जड़ता और तन्द्रादि रोगोंको दूर करे है। तथा अन्यान्यरोगभी इस औषधिको सेवन करनेसे निश्चय नष्ट हो जाते हैं इसको सेवन करनेसे मनमें सन्तोष होता है, शरीरमें पुष्टि और सुकुमारता बढती है ॥ २० ॥

रसगुटिका।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो भवेत्। त्रिभागा पिप्पली पथ्या चतुर्भागो बिभीतकः ॥ पंचभागस्त्वामला च षड्गुणा सप्तभागिका। भार्ङ्गीचूर्णं सर्वमिदं भाव्यं बब्बुलजैर्द्रवैः ॥ एकविंशतिवारं च मधुना गुटिका कृता। बिभीतकप्रमाणेन प्रातरेकां तु भक्षयेत्॥ कासं श्वासं हरेत् क्षुद्राकाथस्तदनुकृण्णया॥२१॥

भाषा-पारा १ भाग, गंधक २ भाग, पीपल ३भाग, हरड ४भाग, बहेडा५भाग, आमले ६ भाग और भारंगीका चूर्ण ७ भाग सबोंको एकत्र पीसकर बबूरके क्वाथमें २१ वार भावना देकर सुखा लेवे, फिर सहतमें एक एक तोलेकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली खाय तो सर्व प्रकारकी खांसी और श्वास दूर होवे। इसको रसगुटिका कहते हैं ॥ २१ ॥

रसेन्द्रगुटिका।

माक्षिकं च शिखिग्रीवमभ्रकं तालकं तथा। एतांस्तु मिलितान् सर्वान् भावयेदार्द्रकद्रवैः ॥ रक्तिद्वयप्रमाणां तु कल्पयेद् गुटिकां भिषक्। जीर्णान्ने भक्षयेदेकां क्षीरमांसरसायनः ॥ पंचकासं क्षयं श्वासं रक्तपित्तं विनाशयेत्। पाण्डुकृमिज्वरहरी कृशानां पुष्टिवर्द्धिनी ॥ शुक्रवृद्धिकरी चैषा अम्लपित्तविनाशिनी। वह्निसंदीपनी श्रेष्ठा त्वरोचकविनाशिनी ॥ २२ ॥

भाषा-सोनामक्खी, तूतिया, अभ्रक और हरितालकी भस्म इन सबोंको समान भाग ले एकत्र पीसकर अदरखके रसकी भावना देवे। फिर दो दो रत्तीकी गोलियां बनाकर एक गोली प्रतिदिन भोजनके जीर्ण होनेपर भक्षण करे। इसपर दूध और मांसका यूप पथ्य है। इससे पांचों प्रकारकी खांसी, क्षयरोग, श्वास, रक्तपित्त, पाण्डु, ज्वर और कृमिरोग दूर होता है। कृश मनुष्योंको पुष्ट करनेवाली, शुक्रको बढानेवाली, अम्लपित्तका नाश करनेवाली, अग्निको दीपन करनेवाली और अरुचिको नष्ट करनेवाली है॥ २२॥

पुरन्दरवटी ।

सूतकाद्विगुणं गन्धमेकधा कज्जलीकृतम् । त्रिकटु त्रिफलाचूर्णं प्रत्येकं सूतसम्मितम् ॥ अजाक्षीरेण संभाव्यं वटिकां कारयेत्ततः। आर्द्रकस्य रसैः सेव्या शीततोयं पिबेदनु ॥ कासश्वासप्रशमनी विशेषादग्निवर्द्धनी। इयं यदि सदा सेव्या तदा स्याद्योगवाहिका॥ वृद्धोऽपि तरुणः शक्तः स्त्रीशतेषु वृषायते ॥ २३ ॥

भाषा-पारा १ भाग और गंधक दो भाग, दोनोंको एकत्र खरल करके कजली बना लेवे फिर इस कजलीमें त्रिफला और त्रिकुटा प्रत्येक एक एक भाग मिलाकर बकरीके दूधमें भावना देकर गोलियां बना लेवे, इन गोलियोंको अदरखके रसके साथ सेवन करके पश्चात् शीतल जल पीवे। यह गोली खांसी और श्वास रोग शांत करके जठराग्निको बढाती है इसको प्रतिदिन सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्यभी सौ स्त्रियोंसे विषय कर सक्ता है इसको पुरन्दर वटी कहते हैं॥ २३॥

कासान्तको रसः ।

सूतं गन्धं विषं चैव शालिपर्णीं च धान्यकम् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं मरीचकम् ॥
गुञ्जाचतुष्टयं खादेन्मधुना कासशान्तये ॥ २४ ॥

भाषा-पारा, गंधक, विष, शालिपर्णी और धनिया ये सब औषधि प्रत्येक एक भाग और सर्व चूर्णकी बराबर मिरचोंका चूर्ण इन सबोंको एकत्र मिलाकर उत्तम विधिसे खरल करे यह चूर्ण चार रत्ती सहतके साथ खानेसे खांसी दूर होती है॥२४॥

कासकुठारः ।

हिङ्गुलं मरिचं गन्धं सव्योषं टङ्कणं तथा ।
द्विगुंजमार्द्रकद्रावैः सन्निपातं सुदारुणम्॥

कासं नानाविधं हन्ति शिरोरोगं विनाशयेत् ॥ २५ ॥

भाषा-सिंगरफ, काली मिरच, गंधक, त्रिकुटा और सुहागा इन सबोंको समान भाग लेकर अदरखके रसमें खरल कर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवें। इसको सेवन करनेसे सुदारुण सन्निपात, अनेक प्रकारकी खांसी और शिरोरोग दूर होता है। इसको कासकुठार रस कहते हैं ॥ २५ ॥

श्रीचन्द्रामृतलोहः।

त्रिकटु त्रिफला धान्यं चव्यं जीरकसैन्धवम्। दिव्यौषधिहृतस्यापि तत्तुल्यमयसो रजः ॥ नवगुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक्। प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा चिन्तयित्वाऽमृतेश्वरीम् ॥ एकैकां वटिकां खादेद्रक्तोत्पलरसाप्लुताम्। नीलोत्पलरसेनैव कुलित्थस्वरसेन च ॥ निहन्ति विविधं कासं दोषत्रयसमुद्भवम्। वातिकं पैत्तिकं चैव गरदोषसमुद्भवम् ॥ सरक्तमथ नीरक्तं ज्वरं श्वाससमन्वितम्। भ्रमदाहतृट्शूलघ्नं रुच्यं वह्निप्रदीपनम् ॥ बलवर्णकरं वृष्यं जीर्णज्वरविनाशनम्। इदं चन्द्रामृतं लोहं चन्द्रनाथेन निर्मितम् ॥ २६ ॥

भाषा-त्रिकुटा, धनिया, चव्य, जीरा और सेंधानोन ये सब समान भाग लेकर चूर्ण कर ले फिर इस चूर्णकी बराबर मैनशिलसे मारा हुआ लोहेका चूर्ण मिला लेवे। पश्चात् नव रत्ती प्रमाणकी गोलियां बनाकर प्रातःकाल दिशामैदानसे निवटकर अमृतेश्वरीका चिन्तवन कर एक गोली रक्तोत्पल, नीलोत्फल अथवा कुलथीके स्वरसके साथ प्रतिदिन सेवन करे इससे नाना प्रकारकी खांसी, त्रिदोषज, वातिक, पैत्तिक, विषदोषोत्पन्न, रक्तसहित रक्तरहित ज्वर, श्वासयुक्त, भ्रम, दाह, तृषा और शूल दूर होता है। रुचिकारक, अग्निप्रदीपक, बल और वर्णको करनेवाला, वृष्य, जीर्णज्वरनाशक यह चन्द्रामृतलोह श्रीचन्द्रनाथने निर्माण किया है ॥ २६ ॥

श्रीचन्द्रामृतो रसः।

रसगन्धकलोहानां प्रत्येकं कार्षिकं क्षिपेत्। टंकणस्य पलं दत्त्वा मरिचस्य पलार्द्धकम् ॥ त्रिकटु त्रिफला चव्यं धान्यजीरकसैन्धवम्। प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं छागीदुग्धेन पेषयेत् ॥ नवगुंजाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक्। प्रातःकाले शुचिर्भूत्वा

चिन्तयित्वामृतेश्वरीम् ॥ एकैकां वटिकां खादेद्रक्तोत्पलरसेन च । नीलोत्पलरसेनापि कुलित्थस्वरसेन च॥ छागीक्षीरेण मण्डेन केशराजरसेन च । निहन्ति विविधं कासं वातरक्तसमुद्भवम् ॥ वातश्लेष्मज्वरं कासं पित्तश्लेष्मज्वरं तथा । वातिकं पैत्तिकं वापि गरदोषसमन्वितम् ॥ वासा गुडूचिका भार्ङ्गी मुस्तकं कण्टकारिका । समभागकृतं क्वाथं प्रत्यहं भक्षयेदनु ॥ २७ ॥

भाषा–पारा, गंधक और लोहा ये प्रत्येक दो तोले, सुहागा १ पल, मिरच चार तोले, त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, धनियां, जीरा और सेंधानोन ये प्रत्येक एक तोला, सबको एकत्र मिलाकर बकरीके दूधमें पीस लेवे । फिर नौ नौ रत्तीकी गोलियां बनाकर प्रातःकाल दिशामैदानसे निवटकर अमृतेश्वरीका चिन्तवनकरके एक एक भक्षण करे । रक्तोत्पल, नीलोत्पल या कुलथीका रस, बकरीका दूध, माड और कुकुरमांगरेका रस ये सब इसके अनुपान हैं । इसको सेवन करनेसे अनेक प्रकारकी खांसी, वातरक्त, वातकफज्वर, पित्तकफज्वर, वातिक और पैत्तिक नानाप्रकारके रोग और विषदोष दूर हो जाते हैं । यह औषधि सेवन करके प्रतिदिन अडूसा, गिलोय, भारंगी, नागरमोथा और कटेरी इनका क्वाथ बनाकर पीवे, इसको श्रीचन्द्रामृत रस कहते हैं ॥ २७ ॥

अमृतमञ्जरी ।

हिंगुलं च विषं चैव कणामरिचटंकणम् । जातीकोषं समं सर्वं जम्बीररसमर्दितम् ॥ रक्तिमानां वटीं कुर्यादार्द्रकरससंयुताम् । वटीद्वयं त्रयं खादेत् सन्निपातं सुदारुणम् ॥ अग्निमान्द्यमजीर्णं च सामवातं सुदारुणम् । उष्णतोयानुपानेन सर्वं व्याधिं नियच्छति ॥ कासं पंचविधं श्वासं सर्वाङ्गग्रहमेव च । जीर्णज्वरं क्षयं कासं हन्यादमृतमंजरी ॥ २८ ॥

भाषा–सिंगरफ, विष, पीपल, काली मिरच, सुहागा और जावित्री ये सब समान भाग लेकर जम्मीरीनीबूके रसमें खरल करे फिर एक एक रत्तीकी गोली बनाकर अदरखके रसके साथ एक या दो गोली भक्षण करे इससे दारुण सन्निपात, मंदाग्नि, अजीर्ण और आमवातरोग नष्ट होता है । इसको गरम जलके साथ सेवन करनेसे सर्वरोग दूर हो जाते हैं । यह अमृतमंजरी रससे पांच प्रकारकी खांसी, श्वास, अंगग्रह, जीर्णज्वर और क्षयरोग दूर होता है ॥ २८ ॥

कासान्तकः।

त्रिफला व्योषचूर्णं च समभागं प्रकल्पयेत्।
मधुना सह पानात्तु दुष्टकासं नियच्छति ॥ २९ ॥

भाषा-त्रिफला और त्रिकुटा ये समान लेकर चूर्ण कर लेवे, फिर उस चूर्ण-को सहतके साथ भक्षण करनेसे दुष्ट कासरोग दूर होता है ॥ २९ ॥

बृहच्छृंगाराभ्रम्।

पारदं गंधकं चैव टंकणं नागकेशरम्। कर्पूरं जातिकोषं च लवङ्गं तेजपत्रकम्॥ सुवर्णं चापि प्रत्येकं कर्षमात्रं प्रकल्पयेत्। शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं तु चतुःकर्षं प्रयोजयेत्॥ तालीशं घनकुष्ठं च मांसीत्वक् धात्रिपुष्पिका। एलाबीजं त्रिकटुकं त्रिफला करिपिप्पली॥ कर्षद्वयं च चैतेषां पिप्पलीक्वाथमर्दितम्। अनुपानं प्रयोक्तव्यं चोचं क्षौद्रसमायुतम्॥ अग्निमान्द्यादिकान् रोगानरुचिं पांडुकामलाम्। उदराणि तथा शोथमानाहं ज्वरमेव च॥ ग्रहणीं श्वासकासं च हन्त्याद्यक्ष्माणमेव च। नानारोगप्रशमनं बलवर्णाग्निकारकम्॥ बृहच्छृङ्गाराभ्रनाम विष्णुना परिकीर्तितम्। एतस्याभ्यासमात्रेण निर्व्याधिर्जायते नरः॥ ३० ॥

भाषा-पारा, गंधक, सुहागा, नागकेशर, कपूर, जावित्री, लौंग, तेजपत्र और धतूरेके बीज ये प्रत्येक दो दो तोले लेवे, शुद्ध कृष्णाभ्रका चूर्ण आठ तोले, तालीशपत्र, नागरमोथा, बालछड, दालचीनी, धायके फूल, इलायची, त्रिकुटा, त्रिफला और गजपीपल ये प्रत्येक चार चार तोले, सबोंको एकत्र पीसकर पीपलके क्वथमें खरल करे फिर गोलियां बनाकर दालचीनीका चूर्ण और सहतके साथ सेवन करे। इसको सेवन करनेसे मंदाग्नि,नानाप्रकारके रोग, अरुचि, पाण्डुरोग, कामला, उदर, शोथ, आनाह, ज्वर, संग्रहणी, श्वास, खांसी और राजयक्ष्मा रोग दूर होता है तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है। इसको बृहत्शृंगाराभ्र कहते हैं। इसको स्वयं विष्णुने कहा है। इसका अभ्यास करनेसे मनुष्य नीरोग होते हैं ॥ ३० ॥

नित्योदयरसः।

सुशुद्धं पारदं गन्धं प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम्। ततः कज्जलिकां

कृत्वा मर्दयेच्च पृथक् पृथक् ॥ बिल्वाग्निमन्थश्योनाकं काश्मरी पाटला बला। मुस्तं पुनर्नवा धात्री बृहती वृषपत्रकम् ॥ विदारी बहुपुत्री च एषां कर्षं रसैर्भिषक् । सुवर्णं रजतं ताप्यं प्रत्येकं शाणमात्रकम् ॥ पलमात्रं तु कृष्णाभ्रं तदर्द्धं तु सिताभ्रकम् । जातीकोषफले मांसी तालीशैला लवंगकम् ॥ प्रत्येकं कोलमात्रं तु वासानीरैर्विमर्दयेत् । शोषयित्वातपे पश्चात् विदार्याः पेषयेद्रसैः ॥ द्विगुञ्जां वटिकां कृत्वा पिप्पलीमधुना भजेत् । नाम्ना नित्योदयश्चायं रसो विष्णुविनिर्मितः॥ पंच कासान् निहन्त्याशु चिरकालोद्भवानपि । राजयक्ष्माणमप्युग्रं जीर्णज्वरमरोचकम् ॥ धातुस्थं विषमाख्यं च तृतीयकचतुर्थकम् । अर्शांसि कामलां पाण्डुमग्निमान्द्यं प्रमेहकम् ॥ सेवनादस्य कन्दर्परूपो भवति मानवः ॥ ३१ ॥

भाषा-शुद्ध पारा २ तोले और गंधक दो तोले इन दोनोंको एकत्र खरल करके कजली बना लेवे फिर इस कजलीको बेल, अरणी, श्योनाक, कुम्भेर, पाढल, खिरेटी, नागरमोथा, पुनर्नवा, धायके फूल, कटाई, अडूसेके पत्ते, विदारीकंद और सतावर इन प्रत्येकके दो दो तोले स्वरसमें अलग अलग भावना देवे, फिर सोना, चांदी और सोनामक्खी प्रत्येक चूर्ण चार चार मासे, कृष्णाभ्रकका चूर्ण एक पल, सिताभ्रकका चूर्ण अर्ध पल, जावित्री, जायफल, बालछड, तालीशपत्र, इलायची और लौंग, प्रत्येकका दो तोले चूर्ण मिला लेवे, फिर अडूसेके पत्तोंके रसमें खरल करके धूपमें सुखा लेवे पश्चात् विदारीकंदके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे इस औषधिको पीपलके चूर्णके साथ और सहतके साथ भक्षण करे इसको नित्योदित रस कहते हैं । यह विष्णुभगवान्ने स्वयं निर्म्माण किया है । इस औषधिको सेवन करनेसे बहुत दिनोंकी पांच प्रकारकी खांसी, राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर, अरुचि, धातुगत ज्वर, विषमज्वर, तृतीयकज्वर, चातुर्थिकज्वर, बवासीर, कामला, पाण्डु, मंदाग्नि और प्रमेहरोग दूर होता है तथा वह मनुष्य कामदेवकी समान सुन्दर स्वरूपवान् हो जाता है ॥ ३१ ॥

इति कासरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ हिक्काश्वासरोगनिदानम् ।

विदाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षाभिष्यन्दिभोजनैः। शीतपानाशनस्नान-
रजोधूमातपानिलैः ॥ व्यायामकर्म्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः ।
हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ १ ॥

भाषा–दाहक, भारी, विष्टंभकारक, रूखे और क्लेदकारक ऐसे भोजन करनेसे; शीतल जलादिक पीनेसे, शीतल भोजन करनेसे, शीतल जलसे स्नान करनेसे तथा नासिका और मुखमें धूलि और धूंएके प्रवेश होनेसे, अत्यन्त पवन और आतपके सेवन करनेसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, बोझके ढोनेसे, अधिकतर मार्गके चलनेसे, मलमूत्रादिके वेगको रोकनेसे और उपवासादि करनेसे मनुष्योंके हिक्का, श्वास और खांसी उत्पन्न होती है ॥ १ ॥

हिक्काका स्वरूप और निरुक्ति ।

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेति सस्वनो यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादि वा क्षिपन् ।
स घोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः ॥ २ ॥

भाषा–उदानवायुके साथ जब प्राणवायु मिलकर यकृत्, प्लीहा और सब आंतोंको मुखपर्यंत खींच लावे तब ' हिक ' ऐसा शब्द मनुष्य करे और वारंवार ऊपरको उठे इसमें हिक शब्द होता है इसलिये इसको हिक्का कहते हैं ॥ २ ॥

हिक्काके भेद और संप्राप्ति ।

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ।
वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति हि ॥ ३ ॥

भाषा–हिकशब्दवान् वायु शीघ्र प्राणनाशक है । वायु कफके साथ मिलकर अन्नजा १, यमला २, क्षुद्रिका ३, गम्भीरा ४ और महती ५ इन पांच प्रकारकी हिक्काओंको उत्पन्न करती है ॥ ३ ॥

पूर्वरूप ।

कण्ठोरसोर्गुरुत्वं च वदनस्य कषायता ।
हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ ४ ॥

भाषा–कंठ और हृदयमें भारीपन, मुखमें कषैलापन, पेटमें गुड गुड शब्द हो, यह हिक्काका पूर्वरूप है ॥ ४ ॥

अन्नजाके लक्षण ।

पानान्नैरतिसंयुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः ।
हिक्कयत्यूर्द्धगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ५ ॥

भाषा–अन्न और पानीके बहुत सेवन करनेसे अत्यन्त कुपित हुई वात ऊर्ध्वगत होकर अन्नजा हिचकीको उत्पन्न करती है ॥ ५ ॥

यमलाके लक्षण ।

चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्त्तते ।
कम्पयन्ती शिरोग्रीवं यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥ ६ ॥

भाषा–दो दो हिचकी रुक रुक कर आवे, वेगके समय मस्तक और ग्रीवा कांपे उसको यमला हिक्का कहते हैं ॥ ६ ॥

क्षुद्रिकाके लक्षण ।

विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्त्तते ।
क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जत्रुमूलात् प्रधाविता ॥ ७ ॥

भाषा–जो हिचकी कंठ और वक्षस्थलके सन्धिस्थानोंसे उठकर बहुत देरमें मंद मंद चले उसको क्षुद्रा कहते हैं ॥ ७ ॥

गम्भीराके लक्षण ।

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी ।
अनेकोपद्रववती गम्भीरा नाम सा स्मृता ॥ ८ ॥

भाषा–अनेक उपद्रवसहित नाभिस्थानसे भयानक और गम्भीर शब्द करती हुई जो हिचकी उत्पन्न हो उसको गम्भीरा कहते हैं ॥ ८ ॥

महाहिक्का लक्षण ।

मर्माण्युत्पीडयन्तीव सततं या प्रवर्त्तते ।
महाहिक्केति सा ज्ञेया सर्वगात्रविकम्पिनी ॥ ९ ॥

भाषा–सम्पूर्ण शरीरको कम्पित करती हुई, बस्ति, हृदय और मस्तकमें अत्यन्त वेदना करती हुई, जो हिक्का निरन्तर उठे उसको महाहिक्का कहते हैं ॥ ९ ॥

असाध्य लक्षण ।

आयम्यते हिक्कतो यस्य देहो दृष्टिश्चोर्द्ध्वं ताम्यते यस्य नित्यम् ।
क्षीणोऽन्नद्विट् क्षौति यश्चातिमात्रं तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्धिक्कमानौ ॥ १० ॥

भाषा-हिक्का उठनेके समय शरीर संकोचित हो जाय और दृष्टि ऊपरको फैल जाय वह हिक्कारोग असाध्य है। तथा जिनका शरीर दुर्बल हो गया हो, अन्नमें अरुचि हो तथा सदैव हिक्काका वेग हो वह हिक्का तथा गम्भीरा और महाहिक्का रोग असाध्य है ॥ १० ॥

कारणविशेषसे असाध्य लक्षण ।

अतिसंचितदोषस्य भक्तच्छेदकृशस्य च ।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य वृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥
आसां या सा समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम् ॥ ११ ॥

भाषा-जिनके अत्यन्त दोष संचित हो गये हों, अन्नमें अरुचि हो, अत्यन्त कृश हो गया हो, अनेक रोगोंसे शरीर क्षीण हो गया हो, जो वृद्ध है और अधिकतर मैथुन करनेवाले ऐसे मनुष्योंके साध्य तीनों प्रकारकी हिक्काओंमें कोईसी हिक्का उत्पन्न होय वह शीघ्रही प्राणोंका नाश करती है ॥ ११ ॥

यमिकायाः साध्यासाध्यलक्षणम् ।

यमिका च प्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता ।
अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः ॥
तस्य साधयितुं शक्या यमिका हन्त्यतोऽन्यथा ॥ १२ ॥

भाषा-यमिकाहिक्कारोगमें प्रलाप, वेदना, मोह और तृष्णा ये लक्षण हों तो असाध्य है। परन्तु अक्षीण (बलवान्) प्रसन्नचित्त समधातु और प्रसन्नइन्द्रियवाले मनुष्योंके यमिकाहिक्का साध्य और अन्यथा असाध्य है ॥ १२ ॥

अथ श्वासानाह ।

महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा । भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ वाताधिको भवेत् क्षुद्रस्तमकस्तु कफोद्भवः । कफवाताधिकात् पित्तसंसृष्टश्छिन्नसंज्ञकः ॥ श्वासो मारुतसंसृष्टो महानूर्ध्वस्ततो मतः ॥ १३ ॥

भाषा-महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास इन भेदोंसे श्वासरोग पांच प्रकारका है। तहां वाताधिक्यतासे क्षुद्र, कफाधिक्यसे तमक, कफवाताधिक्य और पित्तयुक्तसे छिन्न, महाश्वास और ऊर्ध्वश्वास वातसे उत्पन्न होते हैं ॥ १३ ॥

अथ तेषां पूर्वरूपमाह ।

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च ।
आनाहो वक्त्रवैरस्यं शंखनिस्तोद एव च ॥ १४ ॥

भाषा-हृदयमें पीड़ा हो, शूल हो, अफरा हो, पेट फूल जाय, मुखमें विरसता, कनपटीमें वेदना हो, यह श्वासका पूर्वरूप है ॥ १४ ॥

श्वासरोगकी संप्राप्ति ।

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः ।
विष्वग्व्रजति संरुद्धस्तदा श्वासान् करोति सः ॥ १५ ॥

भाषा-सर्वशरीरमें विचरण करनेवाली वायु कफसे मिलकर प्राण, अन्न, उदक बहनेवाली सब नसोंको रोक देवे तब श्वासरोग उत्पन्न हो ॥ १५ ॥

महाश्वासके लक्षण ।

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः । उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः । विवृताक्ष्याननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥ दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते भृशम् । महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ १६ ॥

भाषा-जिसकी वायु ऊर्ध्व जायकर प्राप्त हो वह मनुष्य दुःखित होकर मुखसे शब्दसहित ऊंचे स्वरसे या मत्त बैलकी समान शब्दको छोडे, रातदिन श्वाससे पीडित हो, उसका ज्ञान विज्ञान लुप्त हो जाय, नेत्र चंचल हो जांय, श्वास लेनेमें नेत्र और मुह फट जाय, मलमूत्रका रोध हो, बोला नहीं जाय और कदाचित् बोलेभी तो बहुत हौले हौले, मन खेदखिन्न हो तथा जिसका श्वास दूरसे सुनाई देवे, यह महाश्वास जिस मनुष्यके होय वह शीघ्रही कालके वश हो ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वश्वासके लक्षण ।

ऊर्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः । श्लेष्मावृतमुखस्रोतः क्रुद्धगन्धवहार्दितः ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंस्तु विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः । प्रमुह्यन् वेदनार्त्तश्च शुष्कास्योऽतिप्रपीडितः ॥ ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधःश्वासो निरुध्यते । मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून् ॥ १७ ॥

भाषा-बहुत देरतक रोगी ऊर्द्ध श्वास लेय नीचे नहीं आवे, कफसे मुख भरा रहे एवं और सब नाडियोंके मुख कफसे बंद हो जांय, कुपितवायुसे पीडित हो, ऊपरको नेत्रकर चंचल दृष्टिसे चारों ओर देखे, मूर्छाकी पीडासे पीडित हो, मुख सूख जाय और बेहोशी होय ये ऊर्द्धश्वासके लक्षण हैं । ऊर्द्धश्वासके कुपित होनेसे नीचेका श्वास रुक जाय तब वह मनुष्य बेहोश हो जाय, ग्लानि हो ऐसे मनुष्यके ऊर्द्ध श्वास शीघ्र प्राणोंको नष्ट करता है ॥ १७ ॥

अथ छिन्नश्वासके लक्षण ।

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः । न वा श्वसिति दुःखार्त्तो मर्मच्छेदरुगर्दितः ॥ आनाहस्वेदमूर्च्छार्त्तो दह्यमानेन बस्तिना । विप्लुताक्षः परिक्षीणं श्वसन् रक्तैकलोचनः॥विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः । छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥ १८ ॥

भाषा-जो मनुष्य अपने सम्पूर्ण बलसे रुक रुककर श्वासको छोडे, अत्यन्त दुःखसे पीडित हो, कभी कभी श्वासको नहीं छोडे, मर्म्मस्थानोंमें छेदनकी समान पीडा हो, अफरा, पसीना आवे, मूर्छा हो, बस्ती (पेडू) में जलन हो, नेत्र चंचल हों या नेत्र आंसुओंसे परिपूर्ण हों, बहुत देरतक श्वास लेनेसे थक जाय, एवं श्वास लेनेसे एक नेत्र लाल हो जाय, चित्त व्याकुल हो जाय, मुख सूख जांय, शरीरका रंग बदल जाय, प्रलाप करे, सन्धिके सम्पूर्ण बंधन शिथिल हो जाय इस छिन्नश्वाससे मनुष्य शीघ्र प्राणोंको त्यागता है ॥ १८ ॥

तमकश्वासके लक्षण ।

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते । ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा । अतीव तीव्रवेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ प्रताम्यति स वेगेन तृष्यते सन्निरुध्यते । प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ श्लेष्मण्यमुच्यमाने तु भृशं भवति दुःखितः । तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्त्तं लभते सुखम् ॥ तथास्योध्द्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्नोति भाषितुम् । न चापि लभते निद्रां शयानः श्वासपीडितः ॥ पार्श्वे तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः । आसीनो

लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति ॥ उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्त्तिमान् । विशुष्कास्यो मुहुः श्वासो मुहुश्चैवावधम्यते ॥ मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते । स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ १९ ॥

भाषा–जिस समय वायु विपरीत गतिसे स्रोतोंमें प्राप्त होकर मस्तक और ग्रीवाके आश्रित होकर कफको कुपित करके पीनसरोगको उत्पन्न करती है तब कफ संयुक्त होकर अत्यन्तवेग और घुर्घुर शब्दयुक्त हृदय विदारक श्वासको उत्पन्न करे है उस श्वासके वेगसे मूर्छित हो, त्रास हो, चेष्टा जाती रहे, श्वासते श्वासते मोहको प्राप्त हो, जब कफ निकले तब पीडा हो, कफ निकलनेके पश्चात् दो घडीतक चैन पावे, कंठमें खुजली हो, बडे कष्टसे बोले, श्वासकी पीडासे नींद नहीं आवे, सोते समय वायुसे पसलियोंमें पीडा हो, बैठनेसेही सुख हो, गरम पदार्थ अच्छे मालूम हों, नेत्र सूज जांय, ललाटमें पसीना आवे, अत्यन्त वेदना हो, मुख सूख जाय, वारंवार श्वासका वेग हो और वारंवार हाथीपर बैठनेकी समान सर्व शरीर चलायमान हो, यह श्वास मेघके वर्षनेसे, शीतसे, पुरवाई हवाके चलनेसे और कफकारक पदार्थोंको सेवन करनेसे वृद्धिको प्राप्त होता है, इसको तमकश्वास कहते हैं यह याप्य है और जो नवीन होय तो साध्य है ॥ १९ ॥

ज्वरादि योग होनेसे प्रतमक होय है उसको कहते हैं ।

ज्वरमूर्च्छापरीतस्य विद्यात् प्रतमकं तु तम् ॥ २० ॥

भाषा–तमकश्वासमें ज्वर और मूर्छा ये दोनों लक्षण होंय तो इसको प्रतमक श्वास कहते हैं ॥ २० ॥

प्रतमकके कारण और लक्षण ।

उदावर्त्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ।
तमसा वर्द्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाशु प्रशाम्यति ॥
मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात् प्रतमकं तु तम् ॥ २१ ॥

भाषा–नासिकादिमें धूलिके प्रवेश होनेसे, अजीर्ण रोगसे, वार्द्धक्य और मलमूत्रादिके वेगको धारण करनेसे तमकश्वास उत्पन्न होता है तथा अंधकारमें श्वासका अत्यन्त वेग हो और शीतक्रियाओंसे कम हो जाय, इस कारण इसका दूसरा नाम प्रतमक श्वास है ॥ २१ ॥

क्षुद्रश्वासके लक्षण ।

रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वात उदीरयन् । क्षुद्रश्वासो

नसोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रबाधकः ॥ हिनस्ति नसगात्राणि नच दुःखो यथेतरे। नच भोजनपानानां निरुणद्ध्युचितां गतिम् ॥ नेन्द्रियाणां व्यथां नापि काञ्चिदापादयेद्रुजम्। स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे चाव्यक्तलक्षणाः ॥ क्षुद्रः साध्यमतस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यतेऽत्रयः श्वासा न सिद्ध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च२२॥

भाषा–रूक्ष द्रव्योंके सेवन करनेसे और अत्यन्त परिश्रम करनेसे कोष्ठस्थित वायु दूषित होकर ऊपरको जाकर अप्रगट लक्षणोंयुक्त जिस श्वासको उत्पन्न करता है उसको क्षुद्रश्वास कहते हैं। जिस प्रकार शरीरको अन्य श्वास पीडित करते हैं उस प्रकार यह श्वास कष्टदायक नहीं है क्योंकि उसमें भोजनादिककी बाधा और शरीरमें किसी प्रकारकी ग्लानि तथा पीडा नहीं होती है। यह क्षुद्रश्वास साध्य है। बलवान् मनुष्योंके अल्पलक्षणयुक्त सर्व श्वास साध्य हैं। क्षुद्रश्वास साध्य, तमकश्वास कृच्छ्रसाध्य तथा महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास और छिन्नश्वास असाध्य हैं। दुर्बल मनुष्योंके तमकश्वासभी असाध्य हैं ॥ २२ ॥

असाध्य लक्षण।

कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा।
यथा हिक्का च श्वासश्च हरतः प्राणमाशु च ॥ २३ ॥

भाषा–प्राणोंका नाश करनेवाले अनेक रोग हैं परन्तु हिक्का और श्वासकी समान शीघ्र प्राणनाशक कोईभी नहीं ॥ २३ ॥

इति हिक्काश्वासरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ हिक्काश्वासरोगचिकित्सा।

अथ चूर्णक्वाथादिवर्गः।

विडङ्गं सैन्धवं कुष्ठं व्योषं हिङ्गु मनःशिलाम्। कासे श्वासे च हिक्कायां लिह्यात् क्षौद्रघृताप्लुतम् ॥ पिप्पली त्रिफलाचूर्णं मधुना लेहयेन्नरः। नश्यते पीनसः कासः श्वासश्च बलवत्तरः॥ समूलचित्रकं भस्म पिप्पलीचूर्णकं हरेत्। कासं श्वासं च हिक्कां च मधुमिश्रं वृषध्वज ॥ आज्यं पुनर्नवाबिल्वैः पिप्पलीभिश्च साधितम्। हरेत्

हिक्काश्वासकासं पीतं स्त्रीणां च गर्भकृत् ॥ बिभीतकस्य वै चूर्णं समधु श्वासनाशनम् । पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं मधुसैन्धवसंयुतम् ॥ सर्वरोगज्वरश्वासशोथपीनसहृद्भवेत् । पीतं गोधालिकामूलं तिलदध्याज्यसंयुतम् ॥ निरुद्धमूत्रं कथितं प्रवर्त्तयति शङ्कर । तथा हिक्का हरेत् पीता सौवर्चलयुता सुरा ॥ २४ ॥

भाषा-वायविडंग, सैंधानोन, कूठ, काली मिरच, पीपल, सोंठ, हींग और मैनशिल, प्रत्येकको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर चूर्ण कर लेवे, दो आने या चार आने प्रमाण इस चूर्णको किंचित् सहत और घीके साथ चाटे तो खांसी, श्वास और हिक्का रोग दूर होवे। पीपल, आमला, हरड और बहेडा ये सब समान भाग लेकर एकत्र पीस लेवे, दो आने या चार आने भर इस चूर्णको सहतके साथ सेवन करनेसे पीनस (जुकाम), खांसी और बलवान् श्वास दूर होता है। जडसहित चीतेकी भस्म बना लेवे, फिर उस भस्ममें पीपलका चूर्ण मिलाकर सहतके साथ चाटनेसे खांसी, श्वास और हिक्कारोग दूर होता है। पुनर्नवा, बेलगिरी और पीपल इन तीनों औषधियोंके साथ घृतको पकाकर सेवन करनेसे हिक्का, श्वास और कास रोग नष्ट होता है। इस घृतको वन्ध्या स्त्री सेवन करे तो गर्भको धारण करती है। बहेडेके चूर्णको सहतके साथ चाटनेसे श्वासरोग नष्ट होता है। पीपल, आमला, हरड और बहेडा ये सब समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवे इस चूर्णको सहत और सैंधानोनके साथ सेवन करनेसे ज्वर, श्वास, शोथ और पीनसादि रोग दूर होवें। कठपाडरकी जडका क्वाथ, तिल, दही और घृतके साथ सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है। इसी औषधिमें काला नोन और कपूरकचरी मिलाकर पीवे तो हिक्का रोग दूर होवे ॥ २४ ॥

श्वासकुठारो रसः ।

रसो गन्धविषश्चापि टङ्कणं च मनःशिला । एतानि कर्षमात्राणि मरिचं चाष्टकर्षकम् ॥ कटुत्रयं कर्षयुग्मं पृथगत्र विनिःक्षिपेत् । रसः श्वासकुठारोऽयं सर्वश्वासनिवारणः ॥ २५ ॥

भाषा-पारा, गंधक, विष, सुहागा और मैनशिल ये प्रत्येक दो दो तोले; काली मिरच २६ तोले, त्रिकुटा २ कर्ष इन सबोंको एकत्र जलमें पीसकर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे, इनको सेवन करनेसे श्वासरोग दूर होता है ॥ २५ ॥

तेजोवत्याद्यं घृतम् ।

तेजोवत्यभया कुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी । भूतिकं पौष्करं मूलं

पालाशं चित्रकं शठी ॥ सौवर्चलं तामलकीं सैन्धवं बिल्वपेषिका । तालीशपत्रं जीवन्ती वचा तैरक्षसम्मितैः ॥ हिङ्गुपादैर्घृतं प्रस्थं पचेत्तोये चतुर्गुणे । एतद्यथाबलं पीत्वा हिक्काश्वासो जयेन्नरः ॥ शोथानिलार्शोग्रहणीहृत्पार्श्वरुज एव च ॥ २६ ॥

भाषा-तेजबल, हरड, कूठ, पीपल, कुटकी, अजवायन, ढांकके बीज, चीता, कचूर, काला नोन, भुई आमला, सैंधानोन, बेल, सोंठ, तालीशपत्र, जीवन्ती और वच ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर पीस लेवे, फिर इसमें चार सेर घी और १२ सेर जल डालकर यथा विधिसे पकावे इसको मात्रानुसार पान करनेसे हिक्का, श्वास,शोथ, वातज बवासीर, संग्रहणी, हृदयरोग और पसलियोंकी पीडा दूर होती है ॥ २६ ॥

सूर्यावर्त्तो रसः ।

सूतकं गन्धकं मर्द्यं यामैकं कन्यकाद्रवैः । द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं पूर्वकल्केन लेपयेत् ॥ दिनैकं हण्डिकायन्त्रे पचेच्छीतं समुद्धरेत् । सूर्यावर्त्तरसो नाम द्विगुञ्जः श्वासकासनुत् ॥ इन्द्रवारुणिकामूलं देवदारु कटुत्रयम् । शर्करासहितं खादेदूर्द्ध्वश्वासनिवृत्तये ॥ २७ ॥

भाषा-पारा और गंधक समान भाग लेकर एक प्रहरतक घीगुवारके रसमें खरल करे, फिर दोनोंकी समान तांबेके पत्र लेकर खरल किये पारे और गंधकसे लिपे, फिर उनको एक दिन वालुकायन्त्रमें पकावे, जब स्वांगशीतल हो जाय तब चूर्ण कर ले, इसको सूर्य्यावर्त्त रस कहते हैं । इस औषधिको दो रत्तीप्रमाण सेवन करनेसे श्वास और खांसी दूर होती है । इन्द्रायनकी जड, देवदारु, त्रिकुटा इनके चूर्णमें चीनी मिलाकर सेवन करनेसे ऊर्ध्वश्वासरोग दूर होता है ॥ २७ ॥

विजयवटी ।

सूतकं गंधकं लोहं विषमभ्रकमेव च । विडंगं रेणुकं मुस्तमेलाग्रन्थिककेशरम् ॥ त्रिकटुं त्रिफलां ताम्रं शुल्बं जैपालचित्रकम् । एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः ॥ कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे । सूतायां ग्रहणीदोषे शूले पांड्वामये तथा ॥ हस्तपादादिदाहेषु वटिकेयं प्रशस्यते ।

घृतेन पाचयेन्मूलं पत्रं च वासकस्य च ॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय कासे श्वासे क्षये तथा । पिप्पली देवदारु च शुण्ठीचूर्णं समं तथा ॥ ऊर्ध्वश्वासं सदा हन्ति पिबेदुष्णजलेन च ॥ २८ ॥

भाषा–पारा, गंधक, लोहा, विष, अभ्रक, वायविडंग, रेणुका, नागरमोथा, इलायची, पीपलामूल, नागकेशर, त्रिकुटा, त्रिफला, तांबा, जमालगोटा और चीता ये सब समान भाग लेकर सबसे दुगुने गुडमें मिलाकर वटक बना लेवे। श्वास, खांसी, क्षयरोग, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, संग्रहणी, शूल और हाथ पावोंका दाह इन सब रोगोंमें यह वटक हितकारी है । इनको विजयवटी कहते हैं। अडूसेकी जड और पत्तोंको घृतमें भूनकर प्रातःकाल दो या तीन मासे भक्षण करनेसे खांसी, श्वास और क्षयरोग दूर होता है । पीपल, देवदारु और सोंठका चूर्ण गरम जलके साथ भक्षण करनेसे ऊर्ध्वश्वास दूर होता है ॥ २८ ॥

लोहपर्पटी रसः ।

भागौ रसस्य गन्धस्य द्वावेको लोहभस्मतः । एतद् घृष्टं द्रवीभूतं मृद्वग्नौ कदलीदले ॥ पातयेद्गोमयगते तथैवोपरि योजयेत् । ततः पिष्ट्वा द्रवैरेभिः सप्तधा भावयेत् पृथक् ॥ भार्ङ्गी मुण्डी मुनिवरा जया निर्गुण्डिका तथा । व्योषवासककन्यार्द्रद्रवैस्तस्मात् पुटे पचेत् ॥ आगन्धं खर्परे ताम्रे पर्पटाख्यो रसो भवेत् । सर्वरोगहरस्तैस्तैरनुपानैर्हि मापकैः ॥ ताम्बूलीपत्रसहितः श्वासकासहरः परः । सकणः सुरसाक्वाथोनुपानं वासकाञ्जलम् ॥ अम्लिकातैलवार्त्ताकुकुष्माण्डं कदलीफलम् । वर्ज्यं मांसरसं सर्वं पथ्यं दद्याद्विचक्षणः ॥ वर्जयेच्च विशेषेण कफकृत् स्त्रीसुखादिकम् ॥ २९ ॥

भाषा–पारा दो भाग, गंधक दो भाग और लोहा एक भाग इन सबोंको एकत्र खरल करके मन्द मन्द अग्निसे पकावे, जब यह गल जाय तब गोबरके ऊपर केलेका पत्ता रखकर उसपर यह औषधि डाल देवे फिर उसके ऊपर दूसरा केलेका पत्ता ढकाकर गोबरसे जोड देवे, इसको पर्पटी कहते हैं। फिर इस पर्पटीको पीसकर भारंगी, गोरखमुण्डी, त्रिफला, अगस्तिया, जयंती, संभालू, त्रिकुटा, अडूसा और घीगुवार इनके रसमें पृथक् पृथक् सात भावना देवे। तदनंतर सूखनेपर

जबतक गंध न निकले तबतक पुटपाक करे, शीतल होने-, इसको लोह पर्पटी रस कहते हैं। इसको नाना प्रकारके न करनेसे अनेक प्रकारके रोगोंको दूर करे है। ताम्बूलके साथ और खांसी दूर होती है। कनेरका क्वाथ और पीपलके चूर्णके नेक रोग दूर होते हैं। खटाई, तेल, बैंगन और केलेकी फली धिपर भक्षण करने छोड देवे। इसपर सर्वप्रकारके मांस- करके कफकारक पदार्थ और स्त्रीसेवन त्याग देवे ॥ २९ ॥

ताम्रपर्पटी।

ताम्रयोगात्ताम्रपर्पटिका भवेत् ॥ ३० ॥

में लोहेके स्थानमें तांबा डालनेसे ताम्रपर्पटी होती है। इसके ान जानने ॥ ३० ॥

पिप्पल्याद्यं लोहम्।

लकी द्राक्षा कोलास्थि मधुशर्करा।
कैर्युक्तं लोहं हन्ति सुदारुणम् ॥
तथा तृष्णां त्रिरात्रेण न संशयः ॥ ३१ ॥

ामला, दाख, बेरकी गुठली, मुलहठी, शर्करा, वायविडंग और ाग लेकर सबकी बराबर लोहेका चूर्ण मिलावे, इसको तीन नेसे दारुण छर्दि, हिक्का और तृषा दूर होती है। इसको ते हैं ॥ ३१ ॥

श्वासकुठारः।

न्धं विषं शिलां कटुत्रिकम्। निष्पिष्य वटिका ाप्रमाणतः॥ उष्णोदकं पिबेच्चानु क्षुद्राक्वाथमथा- पंचविधं हन्ति श्वासं श्लेष्मसमुद्भवम् ॥ शिरोरोगं क्षमिंद्राशनिर्यथा ॥ ३२ ॥

ारा, गंधक, विष, मैनशिल और त्रिकुटा इन सबोंको समान भाग पांच पांच रत्तीकी गोलियां बना लेवे, गरम जल या कटेरीके भक्षण करे। इससे पांचों प्रकारकी खांसी, कफज श्वास और । जिस प्रकार इंद्रके वज्रसे वृक्ष नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार ष्ट होते हैं इसको श्वासकुठार कहते हैं ॥ ३२ ॥

श्वासकासचिन्तामणिः ।

पारदं माक्षिकं स्वर्णं समांशं परिकल्पयेत् । पारदार्द्धं मौक्तिकं तु सूताद्द्विगुणगन्धकम् ॥ अभ्रं चैव तथा योज्यं व्योम्नो द्विगुणलोहकम् । कण्टकारीरसेनैव छागीदुग्धेन च पृथक् ॥ यष्टीमधुरसेनैव पर्णपत्ररसेन च । भावयेत् सप्तवारं च द्विगुंजां वटिकां भजेत् ॥ पिप्पलीमधुसंयुक्तां श्वासकासविमर्दिनीम् ॥ ३३ ॥

भाषा—पारा, सोनामक्खी और सोना ये प्रत्येक एक भाग; मोती अर्धभाग, गंधक दो भाग, अभ्रक दो भाग और लोहा चार भाग इन सबोंको एकत्र करके कटेरीके रसमें, बकरीके दूधमें, मुलहठीके रसमें और पानोंके रसमें सात सात वार अलग भावना देवे, फिर दो दो रत्तीकी गोलियां बनाकर पीपलके चूर्णके और सहतके साथ सेवन करनेसे श्वास और खांसी दूर होती है, इसको श्वासकासचिंतामणि रस कहते हैं ॥ ३३ ॥

श्वासकुठारः ।

रसं गन्धं विषं टंकं शिलोषणकटुत्रयम् ।
सर्वं समर्थं दातव्यो रसः श्वासकुठारकः ॥
वातश्लेष्मसमुद्भूतं श्वासं कासं क्षयं जयेत् ॥ ३४ ॥

भाषा—पारा, गंधक, विष, सुहागा, मैनशिल, मिरच और त्रिकुटा ये सब समान भाग लेकर, एकत्र खरल करे, इसको श्वासकुठार कहते हैं । इस औषधिसे वातकफजन्य श्वास, खांसी और क्षयरोग दूर होता है ॥ ३४ ॥

श्वासकुठारः ।

रसं गन्धं विषं चैव टंकणं समनःशिलम् । एतानि समभागानि मरिचं तच्चतुर्गुणम् ॥ त्रिभागं त्र्यूषणं ज्ञेयं खल्वे सर्वं विचूर्णयेत् । रसः श्वासकुठारोऽयं द्विगुञ्जः श्वासकासजित् ॥ गता संज्ञा यदा पुंसां तदा नस्यं प्रदापयेत् । प्रापयेन्नासिकारन्ध्रे संज्ञाजननमुत्तमम् ॥ प्रतिश्यायः क्षतक्षीणं एकादशविधं क्षयम् । हृद्रोगं श्वासशूलं च स्वरभेदं सुदारुणम् ॥ सन्निपातं तथा घोरं तन्द्रामोहान्वितं जयेत् ॥ ३५ ॥

भाषा-पारा, गंधक, विष, सुहागा और मैनशिल ये प्रत्येक एक एक भाग, मिरच चार भाग और त्रिकुटा तीन भाग सबोंको खरलमें पीसकर चूर्ण कर लेवे इसको दो रत्ती प्रमाण सेवन करे तो श्वास और खांसी दूर हो । जब रोगी बेहोश हो जाय और बोले नहीं तब इसकी नास देवे तो तत्काल चैतन्य हो जाता है । इसको सेवन करनेसे प्रतिश्याय, क्षतक्षीण, एकादश प्रकारके क्षयरोग, हृदयरोग, श्वास, शूल, स्वरभेद, सन्निपात, तन्द्रा और मोहरोग नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

इति हिक्काश्वासरोगचिकित्सासमाप्ता ।

अथ स्वरभेदरोगनिदानम् ।

स्वरभेदस्य निदानपूर्वकसंप्राप्तिमाह ।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातसंदूषणैः प्रकुपिताः पवनाद्-यस्तु । स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः॥वातादिभिः पृथक् सर्वैर्मेदसा च क्षयेण च॥१॥

भाषा-बहुत ऊंचेसे भाषण करनेसे, विषको भक्षण करनेसे, ऊंचे स्वरसे स्तोत्रादिके पढनेसे और कंठमें मुद्गरादिककी चोट लगनेसे, वात, पित्त और कफ कुपित होकर स्वरके वहनेवाले स्रोतोंमें प्रवेश करके स्वरभेद रोगको उत्पन्न करे हैं वह स्वरभेद वातज, पित्तज, कफज त्रिदोषज, मेदज और क्षयज, इन भेदोंसे छः प्रकारका है ॥ १ ॥

वातजस्वरभेदके लक्षण ।

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा
भिन्नं स्वरं वदति गर्दभवत् स्वरं च ॥ २ ॥

भाषा-वातजस्वरभेदमें नेत्र, मुख, मल और मूत्र कृष्णवर्ण हों और गधेकी समान स्वर कर्कश हो ॥ २ ॥

पित्तजस्वरभेदके लक्षण ।

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा
ब्रूयाद्गलेन स च दाहसमन्वितेन ॥ ३ ॥

भाषा-पित्तजस्वरभेदमें मुख, मल और मूत्र पीतवर्ण हों तथा बोलते समय कंठमें दाह हो ॥ ३ ॥

कफजस्वरभेदके लक्षण ।

ब्रूयात् कफेन सततं कफरुद्धकंठः
स्वल्पं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात् ॥ ४ ॥

भाषा—कफके स्वरभेदमें सदैव कफसे कंठ रुका रहे, दिनमें कफकी अल्पताके हेतु बहुत बोले, रात्रिमें स्वरभेद मालूम हो ॥ ४ ॥

त्रिदोषजस्वरभेदके लक्षण ।

सर्वात्मके भवति सर्वविकारसम्पत्
तं चाप्यसाध्यमृषयः स्वरभेदमाहुः ॥ ५ ॥

भाषा—त्रिदोषके स्वरभेदमें पूर्वोक्त वातादि दोषोंके सम्पूर्ण लक्षण मिलते हैं। यह स्वरभेद असाध्य है ॥ ५ ॥

क्षयकृतस्वरभेदके लक्षण ।

धूप्येत वाक्क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च
वागेष चापि हतवाक् परिवर्जनीयः ॥ ६ ॥

भाषा—धातुक्षयजनित स्वरभेदमें बोलनेके समय कण्ठमें अत्यंत पीडा हो तथा कण्ठमेंसे धूंआसा निकले, थोडा बोला जाय सोभी स्पष्ट नहीं, जो इसमें बोला नहीं जाय तो यह स्वरभेद असाध्य है ॥ ६ ॥

मेदजस्वरभेदके लक्षण ।

अन्तर्गतं स्वरमलक्ष्यपदं चिरेण
मेदोऽन्वयाद्वदति दिग्धगलस्तृषार्त्तः ॥ ७ ॥

भाषा—मेदजस्वरभेदमें रोगीके वचन कण्ठमें रुक जाय अर्थात् साफ साफ न बोला जाय, कफ या मेदसे कण्ठ जकड जाय और पियास हो ॥ ७ ॥

साध्यलक्षण ।

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यश्च सहोपजातः ।
मेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥ ८ ॥

भाषा—दुर्बल, वृद्ध और कृश मनुष्योंको बहुत दिनोंका स्वरभेद तथा जन्मसे उत्पन्न हुआ असाध्य है। जिसका शरीर मेदसे स्थूल हो गया है उसके यह स्वरभेद और त्रिदोषोत्पन्न स्वरभेद असाध्य है ॥ ८ ॥

इति स्वरभेदरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ स्वरभेदरोगचिकित्सा।

शुण्ठी च शर्करा चैव तथा क्षौद्रेण संयुता। कोकिलस्वर एव स्यात् गुटिकाभक्षमात्रतः॥ बिभीतकस्य वै चूर्णं पिप्पलीसैन्धवस्य च। पीतं सकांजिकं हन्ति स्वरभेदं महेश्वर॥ अग्निजिह्वा वचा वासा पिप्पली मधु सैन्धवम्। सप्तरात्रप्रयोगेन किन्नरैः सह गीयते॥ ९॥

भाषा-सोंठ और शर्करा समान भाग लेकर सहतके साथ गोलियां बनाकर सेवन करनेसे कोकिलकी समान स्वर होता है। बहेडेका चूर्ण, पीपलका चूर्ण और सेंधानोनको कांजीके साथ सेवन करनेसे स्वरभेद नष्ट होता है। कलिहारी, वच, अडूसा, पीपल, सहत और सेंधानोन ये सब औषधि समान भाग लेकर जलके साथ पीसकर दो दो रत्तीकी गोलियां बनाकर सात दिनतक सेवन करनेसे किन्नरकी समान स्वर हो जाता है॥ ९॥

भृङ्गराजाद्यं घृतम्।

भृंगराजामृतावल्लीवासकदशमूलकासमर्दरसैः।
सर्पिः सपिप्पलीकं सिद्धं स्वरभेदकासजिन्मधुना॥ १०॥

भाषा-भांगरा, गिलोय, अडूसा, दशमूल और कसौंदी इन सबोंका काथ बनाकर पीपलके कल्कके साथ चार सेर घृतको पकाकर सहत मिलाके सेवन करनेसे स्वरभेद और खांसी दूर होती है॥ १०॥

भैरवो रसः।

रसं गंधं विषं टंकं मरिचं चव्यचित्रकम्। आर्द्रकस्य रसेनैव संमर्द्य वटिकां ततः॥ गुंजात्रयप्रमाणेन खादेत्तोयानुपानतः। स्वरभेदं निहन्त्याशु श्वासं कासं सुदुस्तरम्॥ चव्याम्लवेतसकटुत्रयतिन्तिडीकतालीशजीरकतुगादहनैः समांशैः। चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम्॥ अनेनैवानुपानेन भस्म सूतं प्रयोजयेत्। योगवाहिरसं चापि योजयन्ति भिषग्वराः॥ सशर्करं शुण्ठिचूर्णं क्षौद्रेण सह

योजितम् । कोकिलस्वर एव स्याद्गुटिकाभुक्तमात्रतः ॥ ११ ॥

भाषा-पारा, गंधक, विष, सुहागा, काली मिरच, चव्य और चीता ये सब समान भाग लेकर अदरखके रसमें खरल करके तीन तीन रत्तीकी गोलियां बना लेवे, इन गोलियोंको जलके साथ भक्षण करनेसे स्वरभेद और दुस्तर श्वास, खांसी दूर होती है। इसको भैरवरस कहते हैं। चव्य, अमलवेत, त्रिकुटा, विषांविल, तालीसपत्र, जीरा, वंशलोचन, चीता और त्रिजातक ये सब समान भाग लेवे और सबकी बराबर गुड लेवे, सबको मिलाकर सेवन करनेसे स्वरभेद, पीनस, कफ और अरुचि दूर होती है इसी अनुपानके साथ पारेकी भस्म अथवा योगवाही सर्व रस सेवन करने चाहिये। शर्करा और सोंठको समान भाग लेकर सहतके साथ सेवन करनेसे कोकिलकी समान स्वर होता है ॥ ११ ॥

इति स्वरभेदरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथारोचकरोगनिदानम् ।

वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनघ्नाशनरूपगन्धैः ।
अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तकषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन ॥१॥

भाषा-वात, पित्त, कफ, शोक, भय, अत्यन्त लोभ, क्रोध और अप्रिय भोजन तथा बुरे रूपका दर्शन और दुर्गंध इन सब कारणोंसे मनुष्योंके अरुचि रोग उत्पन्न होता है वातकी अरुचिमें रोगीके दांत खट्टे और मुख कषैला रहता है ॥ १ ॥

पित्तजादि अरोचकके लक्षण ।

कट्वम्लमुष्णं विरसं च पूति पित्तेन विद्याल्लवणं च वक्त्रम् ।
माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविबद्धसंबद्धयुतं कफेन ॥ २ ॥

भाषा-पित्तकी अरुचिमें रोगीका मुख कडवा, खट्टा, उष्ण, विरस और दुर्गंधयुक्त होता है। कफकी अरुचिमें रोगीका मुख नमकीन, मीठा, पिच्छिल, भारी और शीतल होता है। कंठ कफसे लिप्त रहे तथा आंतें कफसे चिपटी रहें ॥ २ ॥

शोकादि अरोचकके लक्षण ।

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशुचिगंधजे स्यात् ।
स्वाभाविकं चास्यमथारुचिश्च त्रिदोषजेनैकरसं भवेत्तु ॥ ३ ॥

भाषा-शोक, भय, अत्यन्त लोभ और क्रोध तथा अप्रियगंधसे उत्पन्न हुई

अरुचिमें मुख स्वाभाविक रहता है अर्थात् किसी प्रकारके लक्षण न हों केवल आहारमेंही अरुचि हो। त्रिदोषज अरुचिमें रोगीका मुख वातादिजनित तिक्त, अम्ल और लवणादिरस युक्त होता है ॥ ३ ॥

वातजादि भेदकरके मुखकी विकृतिको कहकर अन्य ठिकानेपर जो विकृति होती है उसे कहते हैं।

हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्तात् तृड्दाहशोषबहुलं सकफप्रसेकम्। श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च विद्याद्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरं च ॥ ४ ॥

भाषा-वातज अरुचिमें शूलकी समान वक्षस्थलमें पीडा होती है। पित्तजन्य अरुचिमें शरीरमें पीडा, दाह और तृष्णा होती है। कफज अरुचिमें कफस्राव होता है। त्रिदोषज अरुचिमें अनेक प्रकारकी पीडा और मनमें व्याकुलता, मोह, जडता तथा शोक और भयादिजन्य आगन्तुक अरुचिके सर्व लक्षण होते हैं॥४॥

इति अरोचकरोगनिदानं समाप्तम्।

अथारोचकरोगचिकित्सा।

अम्लिकागुडतोयं च त्वगेलामरिचान्वितम्। अभक्तच्छन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणम् ॥ कारव्यजाजीमरिचं द्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम्। सौवर्चलं गुडं क्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम् ॥ कुष्ठसौवर्चलाजाजीशर्करा मरिचं बिडम्। धात्र्येला पद्मकोशीरपिप्पली चन्दनोत्पलम् ॥ लोध्रतेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सहयाग्रजम्। आर्द्रदाडिमनिर्यासश्चाजीशर्करया युतः ॥ सतैलमाक्षिकाश्चैते चत्वारः कवलग्रहाः। चतुरोऽरोचकान् हन्युर्वाताद्येकजसर्वजान् ॥ ५ ॥

भाषा-गुडके सरबतमें इमलीको मलकर दालचीनी, इलायची और काली मिरच इनको मिलाकर मुखमें धारण करना चाहिये, अर्थात् अरुचिरोगमें इमलीके पत्तोंको मुखमें धारण करना। काला जीरा, जीरा, काली मिरच, दाख, विषांबिल, अनार, काला नोन, गुड और सहत सबको मिलाकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारकी अरुचि दूर होती है। कूठ, काला नोन, काला जीरा, शर्करा, काली मिरच और बिरिया संचरनोन, आमला, इलायची, पद्माख, खस, पीपल, चन्दन, कुमुद, लोध, तेजबल,

इरड, त्रिकुटा और जवाखार, अदरख, अनारदाना, काला जीरा और चीनी इन चार योगोंको तेल और सहतके साथ मिलाकर कवल धारण करनेसे वात, पित्त, कफ और सन्निपातजन्य अरुचि दूर होती है ॥ ५ ॥

सुधानिधिरसः ।

रसगंधौ समौ शुद्धौ दन्तीकाथेन भावयेत् । जम्बीरस्य रसेनैव आर्द्रकस्य रसेन च ॥ मातुलुंगस्य तोयेन तस्य मज्जरसेन च । पश्चाद्विशोष्यान् सर्वास्तान् टंकणं चावचारयेत् ॥ देवपुष्पं बाणमितं रसपादं मृतामृतम् । माषमात्रं च तत् सर्वं नागरेण गुडेन वा ॥ सर्वारोचकशूलार्तिसामवातं सुदारुणम् । विषूचीं चाग्निमांद्यं च भक्तद्वेषं च दारुणम् ॥ रसोयं वारयत्याशु केसरी करिणं यथा ६॥

भाषा–पारा एक तोला और गंधक एक तोला दोनोंको एकत्र मिलाकर दंतीके क्वाथमें खरल करे, फिर अदरखका रस, बिजौरे नींबूके रस और बिजौरे नींबूकी मींगीके क्वाथमें अलग अलग सात सात वार भावना देवे । फिर जब सूख जाय तब सब चूर्णकी बराबर सुहागा और पांच तोले तथा विष दो तोले इन सबोंको एकत्र मिलाकर खरल करे, इसको एक मासे सोंठके चूर्णके साथ और गुडके साथ सेवन करे । इससे सर्व प्रकारकी अरुचि, शूल, आमवात, विषूचिका, मंदाग्नि और अन्नद्वेष ये सब रोग दूर हो जाते हैं । इसको सुधानिधिरस कहते हैं । जिस प्रकार सिंह हाथीको नष्ट करते है उसी प्रकार यह सुधानिधि रस सर्व रोगोंको नष्ट करे है ॥ ६ ॥

सुलोचनाभ्रकः ।

पलं सुजीर्णं गगणन्तु वज्रकं तेजोवतीकोलमुशीरदाडिमम् ।
धात्र्यम्लरोलीरुचकं पृथग्दश पलोन्मितं मर्दितमेव सेवितम् ॥
अरोचकं वातकफत्रिदोषजं पित्तोद्भवं गन्धसमुद्भवं नृणाम् ।
कासं स्वराघातमुरुग्रहं रुजं श्वासं वलासं यकृतं भगन्दरम् ॥
प्लीहाग्निमान्द्यं श्वयथुं समीरणं मेहं भृशं कुष्ठमसृग्दरं कृमिम् ।
शूलाम्लपित्तक्षयरोगमुद्धतं सरक्तपित्तं वमिदाहमश्मरीम् ॥
निहन्ति चार्शांसि सुलोचनाभ्रकं बलप्रदं वृष्यतमं रसायनम् ।
ससूतमरुचिघ्नं स्यात्तिन्तिडीकगुडोषणम् ॥ मृद्वीका जीरकं कृष्णा मातुलुंगाम्लवेतसम् ॥ ७ ॥

भाषा–अभ्रककी भस्म १ पल, हीरा १ पल, तेजबल, बेरकी मींगी, खस, अनार, आमला, अम्ललौनी और बिजोरा ये प्रत्येक १० पल, इन सबोंका एकत्र खरल करके रोगीकी अवस्थानुसार मात्राका निश्चयकर सेवन करावे। इससे अरुचि, वात, कफ और त्रिदोषजात, पित्तभव और गन्धोद्भव, खांसी, स्वरभंग, ऊरुग्रह, श्वास, कास, भगन्दर, प्लीहा, मंदाग्नि, शोथ, वायुरोग, प्रमेह, कुष्ठ, प्रदर, कृमि, शूल, अम्लपित्त, क्षय, रक्तपित्त, वमन, दाह, पथरी और बवासीर दूर होती है। इसको सुलोचनाभ्रक कहते हैं। तथा बलकारक, अत्यन्त वृष्य और रसायन है। पारेकी भस्म, गुड, इमली, त्रिकुटा, दारु, जीरा, पीपल, बिजोरा नीबू और अमलवेत इन सबोंको एकत्र मिलाकर मुखमें धारण करनेसे सर्व प्रकारकी अरुचि दूर होती है ॥ ७ ॥

इति अरुचिरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ छर्दिरोगनिदानम् ।

दुष्टैर्दोषैः पृथक् सर्वैर्बीभत्सालोचनादिभिः । छर्दयः पंच विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि । अकाले चातिमात्रैश्च तथा सात्म्यैश्च भोजनैः॥श्रमाद्भयात्तथोद्वेगादजीर्णात् कृमिदोषतः । नार्याश्चापन्नसत्वायास्तथातिद्रुतमश्नतः ॥ बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् । छादयन्याननं वेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ॥ निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रं प्रधावितः ॥ १ ॥

भाषा–दूषित वात, पित्त और कफसे तथा दुष्ट वस्तुओंके दर्शन करनेसे और दुष्ट भोजन करनेसे छर्दि (वमन) रोग उत्पन्न होता है। वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोष और दुष्टद्रव्यादि दर्शनजनित तथा दुर्गंधद्रव्योंका भोजन करनेसे उत्पन्न ऐसे वमन पांच प्रकारका उत्पन्न होता है। अत्यन्त पतले, अत्यन्त चिकने और अप्रिय, अत्यन्त नमकीन, अकालमें अधिकतर भोजन तथा अहितकारक भोजन करनेसे, श्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण, कृमिदोष, गर्भकी पीडा और बहुत जल्दी जल्दी भोजन इसी प्रकार इन सब कारणोंसे तथा घृणाजनक अन्यान्य कारणोंसे दूषित वायु, पित्त और कफ बलपूर्वक रोगीके मुखको आच्छादित करके रोगीको पीडित करें, उसको छर्दि कहते हैं ॥ १ ॥

छर्दीका पूर्वरूप ।

हृल्लासोद्गाररोधौ च प्रसेको लवणस्ततनुः ।
द्वेषाऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ २ ॥

भाषा-वमनका उद्वेग हो, डकारका न आना, मुखसे खारे पानीका निकलना, अन्न और पानीय द्रव्योंसे अरुचि हो, ये सब लक्षण वमन रोगके पूर्वमें उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

वातछर्दीके लक्षण ।

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्षनाभ्यर्त्तिकासस्वरभेदतोदैः ।
उद्गारशब्दप्रबलं सफेनं विच्छिन्नमुष्णं तनुकं कषायम् ॥
कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनार्त्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम् ॥ ३ ॥

भाषा-वायुजनित वमनमें वक्षःस्थल और पसलियोंमें पीडा हो, मुखका सूखना, मस्तक और नाभिमें पीडा, खांसी तथा अन्यान्य अंगोंमें पीडा, स्वरभंग, डकारका शब्द जोरसे हो, फेनयुक्त वमन हो, रुकरुक कर वमन हो, थोडी वमन हो, वमनका रंग कृष्ण हो, पतली और कषैली वमन हो, वमनका वेग बहुत हो और वमनके वेगसे पीडा होती है ॥ ३ ॥

पित्तछर्दीके लक्षण ।

मूर्च्छापिपासामुखशोषमूर्द्धताल्वक्षिसन्तापतमो भ्रमार्त्तः ।
पीतं भृशोष्णं हरितं सतिक्तं धूम्रं च पित्तेन वमेत् सदाहम् ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तजछर्दिमें मूर्च्छा, पियास, मुखशोष, मस्तक, तालु अथवा नेत्रोंमें सन्ताप हो; गलेमें जलन हो, अंधकार दीखे, भ्रम और दाह होय तथा पीली, हरी, अत्यन्त गरम, कडवी, धूंएके रंगकी और लोहित रंगकी वमन होती है॥ ४॥

कफछर्दीके लक्षण ।

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकसन्तोषनिद्रारुचिगौरवार्त्तः ।
स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्विशुद्धं सरोमहर्षोऽल्परुजं वमेत्तु ॥ ५ ॥

भाषा-तन्द्रा, मुखमें मधुरता, मुखसे कफका निकलना, सन्तोष, निद्रा, अरुचि, शरीरमें भारीपन, रोमहर्ष तथा चिकना, गाढा, मधुर और अत्यन्त सफेद कफको वमनके द्वारा डाले ये कफज छर्दिके लक्षण हैं ॥ ५ ॥

त्रिदोषजछर्दीके लक्षण ।

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबलाप्रसक्तम् ।
छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ॥ ६ ॥

भाषा-जिसमें शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, तृषा, श्वास और मोह ये सब लक्षण प्रबल हों तथा खट्टी नीली या लाल घन और गरम ऐसी वमन हो उसको सन्निपातकी वमन जानना ॥ ६ ॥

असाध्यछर्दीके लक्षण ।

विट्स्वेदमूत्राम्बुवहानि वायुः स्रोतांसि संरुध्य यदोर्द्धमेति।उत्सन्नदोषस्य समाचितं तं दोषं समुद्धूय नरस्य कोष्ठात् ॥ विण्मूत्रयोस्तत्समगन्धवर्णतृट्श्वासहिक्कार्तियुतं प्रसक्तम् । प्रच्छर्दयेद्दुष्टमिहातिवेगात्तयार्दितश्चाशु विनाशमेति ॥ ७ ॥

भाषा-जिस समय वायु पुरीष, पसीना, मूत्र और जलके वहनेवाली नाडियों-के मार्गके रोककर ऊपरको गमन करती है तब संचित हुए वात, कफ और स्वेदादि दोष कोठेसे बाहर निकाल वमन करावे उस वमनमें मल मूत्रकेसी दुर्गंध आवे और वर्णभी मलमूत्रके समान हो, तृषा, श्वास, खांसी और शूल हो वह वमन वारंवार बडे जोरसे हो उस वमनका वेग जोरसे हो इन सब लक्षणोंसे पीडित मनुष्य थोडे दिनोंमेंही नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

आगंतुकछर्दीके लक्षण ।

बीभत्सजा दौर्हृदजामजा च असात्म्यजा च कृमिजा च या हि ।
सा पंचमी तां च विभावयेच्च दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥ ८ ॥

भाषा-बीभत्सज (रुधिर, राध, विष्ठा आदि बुरे पदार्थोंको देखनेसे उत्पन्न हुई) १, दौर्हृदज (गर्भजनित) २, असात्म्यज (जो अपनेको नुकसान करे ऐसे पदार्थों-को भक्षण करनेसे) ३, कृमिज ४ और अजीर्णजात यह पांच प्रकारकी आगन्तुक छर्दि है । इनके लक्षण पूर्वोक्त वातादिजन्य छर्दिके लक्षणकी समान हैं ॥ ८ ॥

कृमिके छर्दीके लक्षण ।

शूलहृल्लासबहुला कृमिजा च विशेषतः ।
कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ ९ ॥

भाषा-कृमिजात छर्दिमें शूल और वमनकी इच्छा अधिकतर होती है विशेष करके कृमिजनित हृदयरोगकी समान लक्षण होते हैं ॥ ९ ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

क्षीणस्य या छर्दिरतिप्रसक्ता सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता । सचन्द्रिकां तां प्रवदेदसाध्यां भिषक् चिकित्सेन्निरुपद्रवां च ॥ १० ॥

भाषा-क्षीणमनुष्यके या बारंबार एकसी होनेवाली, कासादि उपद्रवसहित, रुधिरराधमिश्रित मोरके पूंछके चांदकी समान ऐसी छर्दि असाध्य है ॥ १० ॥

उपद्रव।

कासश्वासौ ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्यमेव च।
हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥ ११ ॥

भाषा-जो उपद्रवरहित हो उसको साध्य जानकर चिकित्सा करे। खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, प्यास, बेचैन, हृदयरोग, अंधेरा आना ये छर्दीरोगके उपद्रव हैं॥११॥

इति छर्दिरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ छर्दिरोगचिकित्सा।

हरीतकी कुष्ठचूर्णं कृत्वा आस्यं च पाययेत्। शीतं पीत्वाथ पानीयं सर्वछर्दिनिवारणम्॥ बिल्वमूलं च समधु गुडूचीक्वथितं जलम्। पीतं हरेच्च त्रिविधं छर्दिं वै नात्र संशयः॥ पीता दूर्वा छर्दिनुत्स्यात् पिष्टा तण्डुलवारिणा। क्वाथः पर्पटजः पीतः सक्षौद्रश्छर्दिनाशनः॥ गुडूचीत्रिफलापिचुमन्दपटोलैः क्वथितं पिबेत्। क्षौद्रयुक्तं निहन्त्याशु छर्दिंपित्ताम्लसंभवाम्॥ यष्ट्याह्वचन्दनोपेतं सम्यक् क्षीरेण पेषितम्। तेनैवालोड्य पातव्यं रुधिरछर्दिनाशनम्॥ अजाजीधान्यपथ्याभिः सक्षुद्राभिः कटुत्रिकैः। एभिः सार्द्धं भस्म सूतं सेव्यं वान्तिप्रशान्तये॥ हिक्काधिकारोक्तपिप्पल्यादिलौहमत्र विधेयम्॥ १२॥

भाषा-हरड और कूठके चूर्णका कवल मुखमें धारण करे और ऊपरसे शीतल जल पीवे तो सर्व प्रकारकी वमन दूर होवे। बेलगिरी और गिलोयका काथ बनाकर सहत मिलाके पीनेसे वातादि तीनों प्रकारकी वमन दूर होती है। दूबको चावलोंके जलमें पीसकर पीनेसे वमन दूर होती है। पित्तपापडेका काथ सहतके साथ पीनेसे वमन रोग दूर होता है। गिलोय, त्रिफला, नीमकी छाल और पटोलका काथ सहतके साथ पीनेसे अम्लपित्तजनित वमन दूर होती है। मुलहठी और लाल चन्दनको गायके दूधमें पीसकर और गायके दूधमें मिलाकर सेवन करनेसे रक्तज

वमन दूर होती है । जीरा, धनियां, इरड, कटेरी, त्रिकुटा और परेकी भस्म इन सबोंको सेवन करनेसे वमनरोग दूर होता है और हिकाश्वासाधिकारोक्त पिप्पल्यादि लोहभी इसमें हितकारी है ॥ १२ ॥

इति छर्दिरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ तृष्णारोगनिदानम् ।

भयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वा ऊर्द्ध चितं पित्तविवर्द्धनैश्च ।
पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रपन्नं जनयेत् पिपासाम् ॥ १ ॥

भाषा-कटु अम्लादि पदार्थोंके भक्षण करनेसे या क्रोध उपवासादिके करनेसे अपने स्थानमें बढे हुए वात और पित्त भय, श्रम और बलके क्षय होनेसे कुपित होकर ऊर्द्ध जाकर तालु और क्लोमादिकमें प्राप्त होकर तृष्णाको उत्पन्न करते हैं॥१॥

अन्नजादि तृष्णाकी संप्राप्ति ।

स्रोतःस्वपां वाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृट् संभवतीह जन्तोः ।
तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथा ह्यामसमुद्भवा च ॥
भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निबोध लिंगान्यनुपूर्वशस्तु ॥ २ ॥

भाषा-एवं भिन्न भिन्न कफ और आमरस जलकी वहनेवाली धमनियोंको दूषित करके तृष्णाको उत्पन्न करते हैं। यह तृष्णा सात प्रकारकी है। जैसे वातज १, पित्तज २, कफज ३, क्षतज ४, क्षयज ५, आमज ६ और अन्नज ७ इन सातों प्रकारकी तृष्णाके लक्षण अब क्रमसे कहते हैं ॥ २ ॥

वातकी तृषाके लक्षण ।

क्षामास्यता मारुतसम्भवायां तोदस्तथा शंखशिरःसु चापि ।
स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्रं शीताभिरद्भिश्च विवृद्धिमेति ॥ ३ ॥

भाषा-वातकी तृष्णामें मुख सूख जाय या मलीन हो जाय, कनपटी और मस्तकमें पीडा हो, रस और जलके वहनेवाले स्रोतोंका निरोध हो, मुखमें विरसता हो और शीतल जलके पीनेसे तृषा अधिक बढे ॥ ३ ॥

पित्तकी तृषाके लक्षण ।

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहा रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः ।
शीताभिनन्दो मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिदूयनं च ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तकी तृषामें मूर्छा, अरुचि, बकवाद, दाह, नेत्रोंमें लाली, अत्यन्त शोष, शीतल पदार्थोंकी इच्छा, मुखमें कडुआपन और सन्ताप ये सब लक्षण हों तथा विष्ठा और मूत्रादि पीतवर्ण हों ॥ ४ ॥

कफकी तृषाके लक्षण ।

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णा बलासेन भवेत्तथा तु ।
निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तृष्णार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ॥५॥

भाषा-अपने कारणोंसे बढे हुए कफसे अग्नि आच्छादित होकर पसीनेके रुकनेसे कफजन्यतृष्णा उत्पन्न होती है । इसमें रोगीके निद्रा, शरीरमें भारीपन और मुखमें मधुरता ये सब लक्षण होते हैं तथा रोगी अत्यन्त कृश हो जाता है ॥ ५ ॥

क्षतज तृष्णाके लक्षण ।

क्षतस्य रुक् शोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थी क्षतजा मता तु ॥६॥

भाषा-शस्त्रादिके लगनेसे जो घाव हो जाय तब उस मनुष्यके पीडा और रुधिरके निकलनेसे जो तृषा हो उसको क्षतज तृषा कहते हैं ॥ ६ ॥

क्षयज तृष्णाके लक्षण ।

रसक्षयात् या क्षयसम्भवा सा तयाभिभूतश्च निशादिनेषु ।
पेपीयतेऽम्भः स सुखं न याति तां सन्निपातादिति केचिदाहुः ॥७॥

भाषा-रसके क्षय होनेसे जो तृष्णा हो उसमें जो लक्षण होते हैं वे सब क्षयज तृष्णामें होते हैं इससे पीडित मनुष्य रातदिन वारंवार पानी पीवे और संतोष न हो । कोई कोई आचार्य्य इसको सन्निपातोद्भव कहते हैं ॥ ७ ॥

आमज तृष्णाके लक्षण ।

रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत् ।
त्रिदोषलिंगामसमुद्भवा च हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री ॥ ८ ॥

भाषा-आमज तृषामें रसक्षयके लक्षण विशेष मालूम पडते हैं और त्रिदोषके लक्षणोंसहित होती है । हृदयमें अत्यन्त पीडा, मुखसे कफका निकलना और शरीरमें अप्रसन्नता ये सब लक्षण होते हैं ॥ ८ ॥

अन्नज तृष्णाके लक्षण ।

स्निग्धं तथाम्लं लवणं च भुक्तं गुर्वन्नमेवाशु तृषां करोति ॥ ९ ॥

भाषा-चिकने, खट्टे, नमकीन, भारी अन्न और चरपरे पदार्थोंका भोजन करनेसे जो तृषा उत्पन्न होती है उसको वैद्य अन्नजतृषा कहते हैं । यह आहारके पश्चात् उत्पन्न होती है ॥ ९ ॥

उपसर्गज तृष्णाके लक्षण।

दीनस्वरः प्रताम्यन् दीनः संशुष्कवक्त्रगलतालुः।
भवति खलु सोपसर्गा तृष्णा सा शोषिणी कष्टा॥
ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसंसृष्टदेहानाम्॥ १०॥

भाषा-जिस तृषामें रोगीका स्वर क्षीण हो जाय, मोह, क्लांति तथा मुख, कंठ और तालु सूख जाय उसको उपसर्गज तृषा कहते हैं। यह तृषा कष्टसाध्य है॥ १०॥

असाध्यतृष्णाके लक्षण।

सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रयुक्तानाम्।
घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णा मरणाय विज्ञेयाः॥ ११॥

भाषा-जो तृषित रोगी अत्यन्त कृश हो जाय, ज्वर, मोह, धातुक्षय, खांसी और श्वासादिसे पीडित हो तथा अत्यन्त वमन और घोर उपद्रवयुक्त हो वह अवश्य मृत्युके मुखमें पतित हो जाता है॥ ११॥

इति तृष्णारोगनिदानं समाप्तम्।

अथ तृष्णारोगचिकित्सा।

काश्मर्यशर्करायुक्तं चन्दनोशीरपद्मकम्। द्राक्षामधुकसंयुक्तं पित्ततर्षे जलं पिबेत्॥ गोस्तनेक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधूत्पलैः। नियतं नस्यतः पानैस्तृष्णा शाम्यति दारुणा॥ वारि शीतं मधुयुतं आकण्ठं वा पिपासितम्। पाययेत् वामयेच्चापि तेन तृष्णा नियच्छति॥ १२॥

भाषा-कुम्मेर, चन्दन, खस, पद्माख, दाख और मुलहटी इनके काथमें सहत डालकर पीनेसे पित्तकी तृषा दूर होती है। दाखका रस, ईखका रस, दूध और मुलहटीका क्वाथ, सहत या कुमुदका रस नासिकाके द्वारा पान करनेसे तृषारोग दूर होता है। तृषितरोगी शीतल जलमें किंचित् सहत डालकर कंठतक भर लेवे फिर वमन कर देवे तो तृषारोग दूर हो जाता है॥ १२॥

महोदधिरसः।

ताम्रचक्रिकया वंगं सूतं तालं सतुत्थकम्। वटांकुररसैर्भाव्यं

तृष्णाहृद्वल्लमात्रतः ॥ सक्षौद्रमाम्रजम्बूत्थं पिबेत्क्वाथं पलोन्मितम् । सकृष्णमधुना कुर्यात् गण्डूषं शीतले स्थितः ॥ १३ ॥

भाषा–तांबा, वंग, पारा, हरताल और तूतिया इन सबोंकी समान भाग लेकर वडके अंकुरोंके रसमें भावना देवे फिर तीन तीन रत्तीकी गोलियां बनाकर सेवन करनेसे तृषारोग दूर होता है। आम और जामुनका क्वाथ बनाकर एक पल सहतके साथ सेवन करनेसे तृषारोग दूर होता है। जो यह रोग शीतल अनूपादि देशोंमें होय तो पीपलके चूर्णका सहतके साथ गण्डूष धारण करे ॥ १३ ॥

कुमुदेश्वरो रसः ।

मृतताम्रस्य भागौ द्वौ भागैकं वंगभस्मकम् । यष्टीमधुरसैर्भाव्यं शुष्कं माषार्द्धकं शुभम् ॥ सेव्यं चैवानुपानेन वक्ष्यमाणेन बुद्धिमान् । चन्दनं शारिवा मुस्तं क्षुद्रैलानागकेशरम्॥सर्वतुल्या तथा लाजा पचेत् षोडशिकैर्जलैः । अर्द्धशेषं हरेत्क्वाथं सिताक्षौद्रयुतं तु तत्॥छर्दिं तृष्णां निहन्त्याशु रसोऽयं कुमुदेश्वरः॥१४॥

भाषा–तांबेकी भस्म २ भाग, वंगकी भस्म १ भाग दोनोंको मुलहटीके क्वाथमें सातवार भावना देकर अर्द्धमासेकी गोलियां बना लेवे। निम्नलिखित अनुपानके साथ इसको सेवन करे। चन्दन, अनन्तमूल, नागरमोथा, छोटी इलायची और नागकेशर ये सब समान भाग लेवे और सबकी बराबर खीलें लेवे। सबोंको सोलह गुने जलमें पकावे जब आधा भाग शेष रह जाय तब शर्करा और सहत डालकर पीवे यह अनुपान है। यह कुमुदेश्वर रस वमन और तृषाको दूर करे है ॥ १४ ॥

इति तृष्णारोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ मूर्च्छाभ्रमसंन्यासरोगनिदानम् ।

मूर्च्छासंप्राप्ति ।

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः । वेगाघातादभीघाताद्धीनसत्वस्य वा पुनः ॥ करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च । निविशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः । तमोऽभ्युपैति सहसा

सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ सुखदुःखव्यपोहाच नरः पतति काष्ठ-वत् । मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च । षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ १ ॥

भाषा-बहुत दोषयुक्त क्षीण मनुष्योंके विरुद्ध भोजन करनेसे, मलमूत्रादि वेगको धारण करनेसे, चोटके लगनेसे और सत्वके हीन होनेसे जिस समय दोष मनुष्योंकी नेत्रादि इन्द्रियोंमें तथा मनोवह सर्वस्रोतोंमें प्रवेश करते हैं, उस समय मूर्छा रोग उत्पन्न होता है अर्थात् जब संज्ञाके वहानेवाली नाडियोंमें वातादि दोष आच्छादित होते हैं तब सुखदुःखका ज्ञान नष्ट हो जाता है उस समय मनुष्य पृथ्वीपर काष्ठकी समान गिरता है उस रोगको मूर्छा या मोह कहते हैं । यह रोग वातज, पित्तज, कफज, शोणितज, मद्यपानज और विषभक्षणज इन भेदोंसे छः प्रकारका है सर्व मूर्छाओंमें पित्त प्रधान है ॥ १ ॥

मूर्च्छापूर्वरूप ।

हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव च ।
सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वं ता विभावयेत् ॥ २ ॥

भाषा-मूर्छाके पूर्वमें हृदयमें पीडा, जम्भाई, ग्लानि, शरीरमें जडता और भ्रम ये लक्षण प्रकाशित होते हैं ॥ २ ॥

वातमूर्च्छालक्षण ।

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथ वारुणम् । पश्यंस्तमः प्रविशति शीघ्रं च प्रतिबुध्यते ॥ वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च । कार्श्यं श्यावारुणा च्छाया मूर्च्छा ये वातसंभवे ॥ ३ ॥

भाषा-वातजनित मूर्च्छामें रोगी आकाशमंडलको नीलवर्ण कृष्णवर्ण या रक्तवर्ण देखते २ बेहोश हो जाय और शीघ्र होशमें हो जाय, शरीरमें कम्प, देहमें पीडा, हृदयमें अत्यन्त पीडा, कृशता, देहका रंग काला लाल हो जाय उसको वातकी मूर्छा कहते हैं ॥ ३ ॥

पित्तमूर्च्छालक्षण ।

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा । पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदश्च प्रबुध्यते ॥ सपिपासः ससन्तापो रक्तपीतारुणेक्षणः । संभिन्नवर्चा पीताभो मूर्च्छा ये वातसंभवे ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तजनित मूर्छामें रोगी आकाशमण्डल रक्तवर्ण या हरितवर्ण अथवा पीतवर्ण देखते देखते बेहोश हो जाय और चैतन्य होते समय पसीना आवे तथा पियास, सन्ताप, नेत्र लाल और पीले हों, दस्त पतला हो, शरीरका रंग पीला हो जाय ये पित्तकी मूर्छाके लक्षण हैं ॥ ४ ॥

कफमूर्च्छालक्षण ।

मेघसंकाशमाकाशमावृतं वा तमोघनैः । पश्यंस्तमः प्रविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ॥ गुरुभिः प्रावृतैरंगैर्यथैवार्द्रेण चर्म्मणा । समसेकः सहृल्लासो मूर्च्छा ये वातसम्भवे ॥ ५ ॥

भाषा-कफज मूर्छामें मनुष्य आकाशमण्डलको मेघकी समान अथवा अंधकार और मेघसे ढका हुआ देखते देखते मूर्छित हो जाय तथा देरमें होश हो तथा शरीर गीले चमडेकी समान ढकासा मालूम हो, भारी बोझासा लदे हुए ज्ञात हों, मुखसे लार निकले और वमनकेसी इच्छा होय ॥ ५ ॥

सन्निपातमूर्च्छालक्षण ।

सर्वाकृतिः सन्निपातादपस्मार इवागतः ।
स जन्तुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ॥ ६ ॥

भाषा-सन्निपातकी मूर्छामें सर्वदोषोंके लक्षण मिलते हैं यहभी एक प्रकारका अपस्मार रोग है । अपस्मार और मूर्च्छामें केवल इतनाही अंतर है कि इसमें अपस्मारकी तरह मुखसे झागोंका गिरना और दंतघर्षणआदि भयानक लक्षण नहीं होते ॥ ६ ॥

रक्तमूर्च्छालक्षण ।

पृथिव्यापस्तमोरूपं रक्तगन्धस्तदन्वयः ।
तस्माद्रक्तस्य गंधेन मूर्च्छन्ति भुवि मानवाः ॥
द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ॥ ७ ॥

भाषा-पृथिवी और जलमें तमोगुण अधिक है एवं रुधिरकी गंधभी पृथ्वी और जलसे उत्पन्न है अतएव रुधिरकी गंधभी तमोगुणयुक्त हुई इस कारण जो तामसी मनुष्य है वह रुधिरकी गंधसे मूर्छित होता है । कोई कोई वैद्य कहते हैं वस्तुका स्वभावही ऐसा है कि जिसके देखनेसे मूर्च्छा आती है ॥ ७ ॥

विषमद्यसे उत्पन्न मूर्छाके लक्षण ।

गुणास्तीव्रतरं तेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ।
त एव तस्मात्ताभ्यां तु मोहो स्यातां यथेरितौ ॥ ८ ॥

भाषा-लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण इत्यादि दशगुण तैलादिक पदार्थोंमें होते हैं वेही दश गुण विष और मदिरामें तीव्रतासे होते हैं अतएव विष और मदिरासे मनुष्य मूर्छित होते हैं किन्तु तैलादिकसे मूर्छित नहीं होते मद्यकी मूर्छासे विषकी मूर्छा अत्यन्त उग्र है ॥ ८॥

रक्तजादि मूर्च्छाओंके लक्षण ।

स्तब्धाङ्गदृष्टिस्त्वसृजा गूढोच्छ्वासश्च मूर्च्छितः । मद्येन विलपन् शेते नष्टविभ्रान्तमानसः ॥ गात्राणि विक्षिपन् भूमौ जरां यावन्न याति तत् । वेपथुस्वप्नतृष्णाः स्युस्तमश्च विषमूर्च्छिते ॥ वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ॥ ९ ॥

भाषा-रक्तजनित मूर्छामें अंग और नेत्र बंधसे जावें और श्वास बहुत हौले २ आता है। मद्यजनित मूर्छामें बकबक करे, सो जावे, उसका अंतःकरण नष्ट हो जाय या भ्रम हो, जबतक मदिरा न पचे तबतक पृथ्वीमें वारंवार हाथ पांव दे दे मारे, विषजनित मूर्छामें कांपे, सोवे, तृषा हो, अंधकार मालूम हो, विशेषकरके मूल, पत्र, दूध इनके भेदसे जो विषके भक्षणमें लक्षण होते हैं वे सब लक्षण होते हैं ॥ ९ ॥

मूर्च्छा, भ्रम, तंद्रा और निद्रा इनका भेद कहते हैं ।

मूर्च्छा पित्ततमःप्राया रजःपित्तानिलाद् भ्रमः । चक्रवद् भ्रमतो गात्रं भूमौ पतति सर्वदा ॥ भ्रमरोग इति ज्ञेयो रजःपित्तानिलात्मकः । तमोवातकफात् तंद्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ॥ १० ॥

भाषा-पित्त और तमोगुणकी अधिकतासे मूर्छारोग उत्पन्न होता है । वात, पित्त और रजोगुणकी अधिकतासे भ्रमरोग उत्पन्न होता है । भ्रमरोगमें रोगी चक्रकी समान चक्रित होकर पृथ्वीमें गिर पडता है । वात कफ और तमोगुणकी अधिकतासे तन्द्रा एवं कफ और तमोगुणकी अधिकतासे निद्रा उत्पन्न होती है १०॥

तंद्रालक्षण ।

इन्द्रियार्थेष्वसंवृत्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः ।
निद्रार्त्तस्येव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ॥ ११ ॥

भाषा-तन्द्रामें मनुष्यकी बाह्येन्द्रियें (नेत्र नासिकादि) कार्यरहित हो जाय, शरीर भारी हो जाय, जम्भाई और क्लम हो, निद्रार्त्त मनुष्यकी समान ये लक्षण जिसमें हों उसको वैद्य तन्द्रा कहते हैं ॥ ११ ॥

संन्यासके भेद ।

दोषेषु मदमूर्च्छाया हृतवेगेषु देहिनाम् ।
स्वयमेवोपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना ॥ १२ ॥

भाषा–दोषोंके वेगोंके नष्ट होनेसे मद मूर्छादिक रोग अपने आप शांत हो जाते हैं परंतु संन्यास रोग विना औषधिके आराम नहीं होता ॥ १२ ॥

संन्यासके लक्षण ।

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः । संन्यस्यंत्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः ॥ स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः । प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम् ॥१३॥

भाषा–दोष अत्यन्त बलवान् होकर वाणी देह और मनकी चेष्टाको बंद करके हृदयमें प्राप्त होकर निर्बल मनुष्यको मूर्छित करे है इस संन्याससे पीडित रोगी काष्ठकी तरह मृतककी समान पृथ्वीपर गिर पडे, इस रोगकी तत्काल फलदायक (सुई चुभाना, तीक्ष्ण अंजन लगाना इत्यादि) क्रिया न करे तो वह रोगी शीघ्र मरणको प्राप्त होता है ॥ १३ ॥

इति मूर्छाभ्रमसंन्यासरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ मूर्च्छाभ्रमसंन्यासरोगचिकित्सा ।

कोलमज्जोषणोशीरकेशरं शीतवारिणा । पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढं तृष्णां वा मधुसंयुतम् ॥ महौषधामृताक्षौद्रापौष्करग्रन्थिकोद्भवम् । पिबेत्कणायुतं क्वाथं मूर्च्छायेषु मदेषु च ॥ शतावरीबलामूलद्राक्षासिद्धं पयः पिबेत् । सशीतं भ्रमनाशाय बीजं वाट्यालकस्य च ॥ पिबेद्दुरालभाक्वाथं सघृतं भ्रमशान्तये ॥ १४ ॥

भाषा–बेरकी मींगी, पीपल, खस और नागकेशरको शीतल जलमें पीसकर पीनेसे मूर्छारोग दूर होता है और इसी योगमें सहत मिलाकर चाटनेसे तृषारोग दूर होता है । सोंठ, गिलोय, कटेरी, कूठ और पीपलामूल इनके क्वाथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे मूर्छा और मदात्यय रोग दूर होता है । सतावर, खिरेटीकी जड और दाख इनको दूधमें पकाकर शीतल कर पीनेसे भ्रमरोग दूर होता है । धमासेका क्वाथ घृतके साथ पीनेसे भ्रमरोग दूर होता है ॥ १४ ॥

सुधानिधिरसः ।

कणामधुयुतं सूतं मूर्च्छायामनुशीलयेत् ।
शीतसेकावगाहादि सर्वं वा शीतलं भजेत् ॥
सुधानिधिरसो नाम मदमूर्च्छाविनाशनः ॥ १५ ॥

भाषा-मूर्छारोगमें पीपलका चूर्ण, रससिन्दूर और सहत तीनोंको एकत्र मिलाकर सेवन करे। इसमें शीतल जलसेवन, शीतल जलमें घुसकर स्नान तथा अन्यान्य शीतल द्रव्योंका सेवन करे। इसको सुधानिधिरस कहते हैं। यह औषधि शीघ्रही मूर्छारोगको दूर करे है ॥ १५ ॥

इति मूर्छाभ्रमसंन्यासरोगचिकित्सा समाप्ता।

अथ पानात्ययपरमदपानाजीर्णविभ्रमरोगनिदानम्।

ये विषस्य गुणाः प्रोक्तास्तेऽपि मद्ये प्रतिष्ठिताः। तेन मिथ्योपयुक्तेन भवत्युग्रो मदात्ययः॥ किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् । अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथामृतम् ॥ प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या हिनस्त्यसून्। विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ १ ॥

भाषा-मूर्छारोगमें जो गुण विषके कहे हैं वेही गुण मदमेंभी रहते हैं इसकारण अविधिसे सेवन की हुई मदिरा भयानक मदात्यय रोगको उत्पन्न करती है। मनुष्योंको जिस प्रकार अन्नपानादि हितकारी है मदिरा उसी प्रकार हितकारी है। जो हितकारीभी हो किन्तु विधिपूर्वक सेवन न की जाय तो रोगोंको उत्पन्न करती है और विधिपूर्वक सेवन की हुई अमृतकी समान गुण करती है। विष प्राणनाशक है यह तो सभी जानते हैं परन्तु अवस्थानुसार और योग्यमात्रानुसार सेवन किया जाय तो रोगोंको दूर करके पुष्टिको प्रगट करता है ॥ १ ॥

विधिसे मद्य पीनेका फल ।

विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् । प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतोपमम् ॥ स्निग्धैस्तदन्नैर्मांसैश्च भक्ष्यैश्च

सह सेवितम्। भवेदायुःप्रकर्षाय बलायोपचयाय च॥ काम्यता मनसस्तुष्टिस्तेजो विक्रम एव च। विधिवत् सेव्यमाने तु मद्ये सन्निहिता गुणाः॥ २॥

भाषा-यद्यपि अन्न प्राणियोंका जीवन है परन्तु इसकोभी अधिक भक्षण किया जाय तो जीवनका नाश करता है। यथासमय परिमाणके अनुसार विधिपूर्वक और हितकारक पदार्थोंके साथ प्रसन्न चित्तसे मदिराको सेवन करे तो अत्यन्त गुणदायक होती है। स्निग्ध द्रव्य और मांसके साथ सेवन की हुई मदिरा आयु और बलको बढाती है, स्वरूप सुन्दर करती है, तेज, पराक्रम और सन्तोष उत्पन्न करती है। इसके अतिरिक्त मद्यके औरभी अनेक गुण दोष हैं उनको क्रमसे प्रकाशित करेंगे। अविधिसे सेवन की हुई मदिरा मदात्ययरोगको उत्पन्न करती है वह मदात्ययरोग चार प्रकारका है॥ २॥

पूर्वमदके लक्षण।

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्द्धनश्च।
संपाठगीतस्वरवर्द्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि॥ ३॥

भाषा-प्रथम मदात्ययमें बुद्धि, स्मरणशक्ति, सन्तोष, क्षुधा, निद्रा और रतिशक्ति बढती है तथा पढने और गानेकी शक्ति उत्पन्न होती है॥ ३॥

द्वितीयमदके लक्षण।

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्तः।
आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मद्येन मत्तः पुरुषो मदेन॥ ४॥

भाषा-द्वितीय मदात्ययमें बुद्धि, स्मरण और वाक्शक्ति कम हो जाय, विपरीत चेष्टा करे, उन्मत्तकी समान आचरण करे तथा वारंवार आलस्य और निद्रासे पीडित हो॥ ४॥

तृतीयमदके लक्षण।

गच्छेदगम्यां न गुरूंश्च मन्येत् खादेदभक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः।
ब्रूयाच्च गुह्यानि हृदिस्थितानि मदे तृतीये पुरुषो स्वतंत्रः॥ ५॥

भाषा-तृतीय मदात्ययमें अगम्यस्त्रीसे गमन करे, गुरुजनोंका तिरस्कार करे, अभक्ष्य भक्षण करे, ज्ञानरहित हो जाय और गुप्तकथाओंको प्रकाशित करने लगे॥५॥

चतुर्थमदके लक्षण।

चतुर्थे तु मदे मूढो भग्नदार्विव निष्क्रियः। कार्याकार्यविभा-

गाढो मृतादप्यपरो मृतः ॥ को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम् । बहुदोषमिवामूढः कान्तारं स्ववशः कृती ॥ ६ ॥

भाषा-चतुर्थ मदात्ययमें मद्य पीनेवाला मनुष्य ज्ञानहीन होकर मृतक मनुष्य-की समान धरतीमें गिर जाय, क्रियारहित हो जावे, कार्य और अकार्यको नहीं समझे और वह मनुष्य मरेसेभी ज्यादह मारा हो जावे अतएव आयुर्वेदविद् वैद्य उपदेश करते हैं कि ऐसी अनिष्टकारक मदिरा बुद्धिवान् मनुष्योंको कदापि नहीं सेवन करनी चाहिये क्योंकि मनुष्योंके सर्वमें प्रधान शरीरही है और जिससे शरीरका नाश होय उस कार्यको अवश्य त्याग देवे ॥ ६ ॥

विधिहीन मद्य सेवनसे विकार कहते हैं ।

निर्भक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमानं मनुजेन नित्यम् । आपादयेत् कष्टतमान् विकारानापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन । व्यायामभाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन वापि ॥ अत्यम्बुभक्ष्यावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथा बलेन । उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान् विकारान् ॥ ७ ॥

भाषा-जिस मनुष्यने स्निग्ध द्रव्य और मांसादिरहित केवल निरंतर मद्यपान किया हो उसके अत्यन्त कष्टदायक पानात्ययादिक विकार उत्पन्न होते हैं और वह शरीरको नष्ट करते हैं । क्रोधित, भयभीत, तृषायुक्त, शोकान्वित, क्षुधासे व्याकुल, कसरत करने और बोझके ढोनेसे जो थक गये हैं, मलमूत्रके वेगोंको रोकनेवाले जिनके लाठी आदिकी चोट लगी हो, अत्यन्त जल पीनेसे जिनका पेट भर रहा है, अजीर्णमें भोजन करनेवाले, निर्बल, गरमीसे सन्तापित ऐसा मनुष्य मदिराको सेवन करे तो सर्व प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होती है ॥ ७ ॥

उन विकारोंको कहते हैं ।

पानात्ययं परमदं पानाजीर्णमथापि वा ।
पानविभ्रममुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ८ ॥

भाषा-उनके पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम आदि अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ८ ॥

वातमदात्ययके लक्षण ।

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः ।

विद्याद्धृद्गुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ॥ ९ ॥

भाषा- वातजनित मदात्ययरोगमें हिचकी, श्वास, पसलियोंमें पीडा, मस्तकमें कम्प, अत्यन्त बकवाद और निद्राका नाश ये सब होते हैं ॥ ९ ॥

पित्तमदात्ययके लक्षण ।

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः ।

विद्याद्धरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ॥ १० ॥

भाषा-पित्तजनित मदात्ययरोगमें पियास, दाह, पसीना, मोह, अतीसार, भ्रम और शरीर हरे रंगका होता है ॥ १० ॥

कफमदात्ययके लक्षण ।

छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ।

विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम् ॥ ११ ॥

भाषा-कफजनित मदात्ययरोगमें कभी उबकाई, कभी वमन, अन्नमें अरुचि, तन्द्रा, शरीर भारी और गीला और सरदी लगे ये सब लक्षण होते हैं ॥ ११ ॥

सन्निपातमदात्ययके लक्षण ।

ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वलिंगैर्मदात्ययः ॥ १२ ॥

भाषा-त्रिदोषजन्य मदात्ययमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ १२ ॥

परमदके लक्षण ।

श्लेष्माच्छ्रयोऽङ्गगुरुता विरसास्यता च विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रि-रोचकश्च । लिंगं परस्य च मदस्य वदन्ति तज्ज्ञास्तृष्णा रुजा शिरसि संधिषु चापि भेदः ॥ १३ ॥

भाषा-परमदरोगमें रोगीके नासिकासे कफका निकलना, शरीरमें भारीपन, मुखमें मधुरता, मल और मूत्रका रोध, तन्द्रा, अरुचि, पियास, मस्तकमें पीडा और सकल संधिस्थानोंमें तोडनेकीसी पीडा हो ॥ १३ ॥

पानाजीर्णके लक्षण ।

आध्मानमुग्रमथ चोद्गिरणं विदाहः

पानेऽजरां समुपगच्छति लक्षणानि ॥ १४ ॥

भाषा-पानाजीर्णरोगमें अत्यन्त पेटका फूलना, दाह, डकार वा वमन होती है और वमनमें मदका अंश अधिक मालूम होता है ॥ १४ ॥

पानविभ्रमके लक्षण।

हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकण्ठधूमा मूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजनप्रदेहाः। द्वेषः सुरान्नविकृतेष्वपि तेषु तेषु तं पानविभ्रममुशन्त्यखिलेन धीराः॥ १५॥

भाषा-पानविभ्रमरोगमें जैसी सुई चुभानेसे पीडा होती है वैसी रोगीके वक्षःस्थल और गात्रमें पीडा होती है। नासिकासे कफका स्राव होना, कंठमेंसे धूंएकी समान निकलना, मूर्छा, वमन, ज्वर, मस्तकमें पीडा और शरीरमें दाह होता है तथा सर्व प्रकारकी सुरा और सुराविकृतियोंसे अरुचि हो इसको वैद्य पानविभ्रम रोग कहते हैं॥ १५॥

असाध्यलक्षण।

हीनोत्तरोष्ठमतिशीतममन्ददाहं तैलप्रभास्यमपि पानहतं त्यजेत्तु। जिह्वोष्ठदन्तमसितं त्वथवापि नीलं पीतं च यस्य नयने रुधिरप्रभे वा॥ १६॥

भाषा-पानात्यय और परमद आदि रोगोंमें जो रोगीका नीचेका होंठ लटक जाय, शरीरके बाहर शीत मालूम हो, भीतर अत्यन्त दाह हो तथा मुख तेलसे चिकटासा जान पडे तो असाध्य जानना तथा जिह्वा, कंठ और दांत काले हो जांय, या नीले अथवा पीले पड जांय और नेत्र लाल हो जांय तोभी यह रोग असाध्य जानना॥ १६॥

उपद्रव।

हिक्काज्वरौ वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः
कासभ्रमावपि च पानहतं भजन्ते॥ १७॥

भाषा-पानात्ययप्रभृति रोगोंमें हिक्का, ज्वर, वमन, कंप, पसलियोंमें पीडा, खांसी और भ्रम ये सम्पूर्ण उपद्रव होते हैं॥ १७॥

इति पानात्ययपरमदपानाजीर्णविभ्रमरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ पानात्ययपरमदपानाजीर्णविभ्रमरोगचिकित्सा।

घृतपान।

घृतं सशर्करं पीतं मद्यपाने मदे च वै। चव्यं सौवर्चलं हिङ्गु पूरकं विश्वदीप्यकम्॥ चूर्णं मद्येन पातव्यं पानात्ययरुजापहम्।

पथ्याक्वाथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन वा ॥ सर्पिः कल्याणकं वापि मदमूर्च्छाहरं पिबेत् ॥ १८ ॥

भाषा–घृतके साथ शर्कराको पीनेसे मदिराका नसा दूर होता है । चव्य, काला नोन, हींग, बिजोरा नींबू, सोंठ और अजवायन इन सबोंको चूर्ण मदिराके साथ पीनेसे पानात्ययरोग दूर होता है। हरडके क्वाथके द्वारा या आमलेके रस द्वारा घृतको पकाकर पीनेसे अथवा कल्याणघृतको पीनेसे मदरोग और मूर्छारोग दूर होता है ॥ १८ ॥

अष्टाङ्गलवणम् ।

सौवर्चलमजाज्यश्च वृक्षाम्लं साम्लवेतसम् । त्वगेलामरिचार्द्धांशं शर्कराभागयोजितम् ॥ हितं लवणमष्टाङ्गमग्निसंदीपनं परम् । मदात्यये कफप्राये दद्यात् स्रोतोविशोधनम् ॥ सचव्यहिंगुरुचकं धन्याकं विश्वदीप्यकम् । चूर्णं ससूतं मद्येन पीतं पानात्ययं जयेत् ॥ १९ ॥

भाषा–काला नोन, काला जीरा, विषांबिल, अमलबेत, दालचीनी, इलायची, काली मिरच ये सब अर्द्धभाग और चीनी एक भाग, सबोंको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे अग्निदीपन होती है। कफोल्वण मदात्यय रोग दूर होवे और नाडी शुद्ध होती है। चव्य, हींग, काला नोन, धनिया, सोंठ, अजवायन और रससिन्दूर इन सबोंको समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवे, इस चूर्णको मदिराके साथ सेवन करनेसे मदात्यय रोग दूर होता है। काला नोन, जीरा, विषांबिल, अमलबेत, दालचीनी, इलायची और काली मिरच ये सब समान भाग लेवे, सहत और शर्करा आधा भाग लेवे सबको मिलाकर सेवन करनेसे श्लेष्मजन्य मदात्ययरोग दूर होता है। इसको अष्टांगलवण कहते हैं। इसको सेवन करनेसे रोग दूर होकर अग्नि दीपन होती है और सम्पूर्ण शरीरके रुधिरके स्रोत शुद्ध होते हैं ॥ १९ ॥

इति पानात्ययपरमदपानाजीर्णविभ्रमरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ दाहरोगनिदानम् ।

त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः । दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥

भाषा-मद्यपान करनेसे दूषित हुआ पित्त उस पित्तकी तेजी पित्त और रक्तको बढाकर त्वचामें दाहको उत्पन्न करती है, उस दाहको मद्यपानजनित कहते हैं। इसमें पित्तकी समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

रक्तज और पित्तज दाहके लक्षण।

कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम्। स उष्यते तृष्यते वा
ताम्राभस्ताम्रलोचनः ॥ लोहगंधांगवदनो वह्निनेवावकीर्यते।
पित्तज्वरसमः पित्तात् स चाप्यस्य विधिः स्मृतः ॥ २ ॥

भाषा-सम्पूर्ण शरीरका रुधिर दूषित होकर दाहरोगको उत्पन्न करता है उस दाहसे पीडित मनुष्यका शरीर गरम हो, नेत्र तांबेकी समान लाल हों, पियास हो, गात्र और मुखमें लोहेकी समान गंध आवे तथा रोगी अग्निसे जलाए हुएकी समान अत्यन्त दाहयुक्त हो, पित्तजनित दाहरोगमें समस्त पित्तज्वरके लक्षण होते हैं, अतएव जो चिकित्सा पित्तज्वरमें कही है वही चिकित्सा इसमें करे ॥ २॥

प्यास रोकनेके दाहके लक्षण।

तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम्।
स बाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेतसः ॥
संशुद्धगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य वेपते ॥ ३ ॥

भाषा-पियासके समय जल न पीनेसे शरीरकी जलधातु क्षय होकर शरीरमें स्थित गरमी शरीरके बाहर आवे और अभ्यन्तर (भीतर) दाहको उत्पन्न करे, इससे गला, तालू और ओंठ सूख जांय, रोगी जीभको बाहर निकाल देवे और सुध न रहे ॥ ३ ॥

शस्त्राघातजन्य दाहके लक्षण।

असृजः पूर्णकोष्ठस्य दाहोऽन्यः स्यात् सुदुस्तरः ॥ ४ ॥

भाषा-शस्त्रके लगनेसे रुधिर निकलकर कोष्ठमें भर जाय तब अत्यन्त दुस्तर दाहरोग उत्पन्न हो ॥ ४ ॥

धातुक्षयजन्य दाहके लक्षण।

धातुक्षयोक्तो यो दाहस्तेन मूर्च्छातृडर्दितः।
क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्भृशपीडितः ॥ ५ ॥

भाषा-रसादि धातुक्षयजनित दाहरोगमें मूर्च्छा, पियास, स्वरभंग और रोगी चेष्टारहित हो जाता है। इस दाहसे पीडित रोगी उत्तम चिकित्सा न करावे तो मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

क्षतजदाहके लक्षण ।

क्षतजोऽनश्नतश्चान्यः शोचतो वाप्यनेकधा ।
तेनांतर्दह्यतेत्यर्थं तृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥ ६ ॥

भाषा-क्षत (घाव) के होनेसें जो दाह होय उससे आहार थोडा रह जावे और अनेक प्रकारके शोककर दाह होय और इस दाह करके अभ्यन्तर दाह होय तथा प्यास, मूर्च्छा और प्रलाप (बकवाद) ये लक्षण होंय ॥ ६ ॥

मर्माभिघातज दाहके लक्षण ।

मर्म्माभिघातजोऽप्यस्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः ।
सर्वे एव च वर्ज्याः स्युः शीतगात्रेषु देहिनः ॥ ७ ॥

भाषा-मर्मस्थानोंमें चोट लगनेसे दाह उत्पन्न होती है, वह सातवीं दाह असाध्य है । सब दाहोंमें शीतल शरीरवाला रोगी असाध्य है ॥ ७ ॥

इति दाहरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ दाहरोगचिकित्सा ।

व्युषितं धन्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम् ।
अन्तर्दाहं शमयत्यचिराद्दूरप्ररूढमपि ॥
लामज्जेनाथ शुक्तेन चन्दनेनानुलेपयेत् ॥ ८ ॥

भाषा-धनियेका जल बांसी करके चीनीके साथ पीनेसे शीघ्रही अत्यन्त दुस्तर अंतर्दाह दूर होता है। खस, शुक्त (एक प्रकारकी कांजी) और चंदनका शरीरपर लेप करनेसे दाहरोग दूर होता है ॥ ८ ॥

कुशाद्यं तैलघृतम् ।

कुशादिशालिपर्णीभिर्जीवकाद्येन साधितम् ।
तैलं घृतं वा दाहघ्नं वातपित्तविनाशनम् ॥ ९ ॥

भाषा-कुशा, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, कटाई और गोखरू इन सबोंका क्वाथ बनाकर जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि इन सबोंका कल्क बनाकर तेल या घृतको पकाकर सेवन करनेसे दाह और वातपित्त नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

दाहान्तको रसः ।

सूतात्पंचार्कतश्चैकं कृत्वा पिण्डं सुशोभनम् । जम्बीरस्वरसैर्मर्द्य सूततुल्यं च गंधकम् ॥ नागवल्लीदलैः पिष्ट्वा ताम्रपत्रीं प्रलेपयेत् । प्रपुटेद्भूधरे यन्त्रे यावद्भस्मत्वमाप्नुयात् ॥ द्विगुंजमार्द्रकद्रावैस्त्र्यूषणेन च योजयेत् । निहन्ति दाहसन्तापं मूर्च्छां पित्तसमुद्भवाम् ॥ १० ॥

भाषा-पारा पांच भाग और तांबा एक भाग दोनोंको जम्भीरी नीबूके रसमें खरल कर पिण्डाकार कर लेवे, फिर इसमें पांच भाग गंधक मिला लेवे, फिर इसको पानोंके स्वरसमें भावना देकर तांबेके पत्रोंपर लेप कर देवे, पश्चात् भूधरयंत्रमें पकाकर भस्म कर लेवे दो रत्तीभर इस औषधिको अदरखके रसके त्रिकूटेके चूर्णके साथ सेवन करनेसे दाहजनित सन्ताप और पित्तोद्भवमूर्छा रोग दूर होता है ॥१०॥

इति दाहरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ उन्मादभूतोन्मादरोगनिदानम् ।

मदयन्त्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमागताः । मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्त्तितः ॥ एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः । मानसेन च दुःखेन स च पंचविधो मतः ॥ विषाद्भवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र भेषजम् । स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां बिभर्त्ति च ॥ १ ॥

भाषा-वातपित्तादि दोष अत्यन्त बढ़कर विषयगामी होकर मनोवह धमनियोंमें प्रवेश करके मनमें भ्रांति उत्पन्न करते हैं इसको उन्मादरोग कहते हैं । उन्मादरोग तरुण अवस्थामें मदनामसे कहा जाता है । यह उन्मादरोग छः प्रकारका है । जैसे वातज १, पित्तज २, कफज ३, त्रिदोषज ४, शोकज ५ और विषज ६ ॥ १ ॥

उन्मादके सामान्य कारण और संप्राप्ति ।

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम् । उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोऽभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ॥

तैरल्पसत्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य ।
स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥ २ ॥

भाषा–संयोगविरुद्ध द्रव्य, विषयुक्त द्रव्य और अपवित्र द्रव्योंका भोजन करनेसे, देवता और गुरुजन आदिका अपमान करनेसे, भय और हर्षके कारण मनमें आकुलित भाव होनेसे तथा बलवान् मनुष्यके साथ संग्राम करनेसे उन्मादरोग उत्पन्न होता है । पूर्वोक्त कारणोंसे दूषित वात, पित्त और कफ अल्पसत्व (हीनशक्ति)-वाले मनुष्यके बुद्धिस्थान और हृदयको दूषित करके और मनोवह स्रोतोंमें प्रवेश कर अन्तःकरणमें विकार उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

उन्मादका स्वरूप ।

धीविभ्रमः सत्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च ।
अबद्धवाक्त्वं हृदयं च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिंगम् ॥ ३ ॥

भाषा–बुद्धिमें भ्रम, चित्तमें चंचलता, कायरता, इधर उधर दृष्टिको चलाना, अधैर्यता, हृदयमें शून्यता और वृथा बकवाद करना ये उन्मादरोगके सामान्य लक्षण हैं ॥ ३ ॥

विशेष लक्षण ।

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ।
चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रदूष्य बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम् ॥
अस्थानहास्यस्मितनृत्यगीतवागंगविक्षेपणरोदनानि ।
पारुष्यकार्श्यारुणवर्णता च जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम् ॥ ४ ॥

भाषा–रूक्ष, शीतल और अल्प भोजन करनेसे, विरेक (दस्त और कय), धातुक्षय और उपवास इन कारणोंसे वृद्धिको प्राप्त हुई वायु चिन्ताशोकादिसे आकुलित अन्तःकरणको दूषित करके बुद्धि और स्मरणशक्तिका नाश करके उन्मादरोगको उत्पन्न करती है । इसमें रोगी विनाकारणही हँसे, मंद मंद मुसकावे, विना समयके नृत्य और गान करे, अधिक बोले, अंगको फेंके, रोवे, शरीर कर्कश कृश और लाल हो जाय और भोजनके पचनेपर रोगका अधिक बल हो ये वातज उन्मादके लक्षण हैं ॥ ४ ॥

पित्तज उन्मादके कारण और लक्षण ।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम् ।
उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात् ॥

अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः सन्तर्जनाभिद्रवणोष्णरोषाः।
प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषाः पीता च भा पित्तकृतस्य लिंगम् ५॥

भाषा–अजीर्ण, कटु, अम्ल, दाहकारक और उष्ण ऐसे भोजन करनेसे पित्त वृद्धिको प्राप्त होकर अजितेन्द्रिय मनुष्योंके मनोवह धमनियोंमें प्रवेश होकर अन्तःकरणको दूषित करके उन्मादरोगको उत्पन्न करता है। इस रोगमें असहनशीलता, हाथ पांवोंका पटकना, नंगा हो जाय, भयभीत हो, भागने लगे, शरीर गरम हो, क्रोधित हो जाय, छायामें जानेकी इच्छा हो, शीतल अन्न और शीतल जल पीनेकी अभिलाषा हो, मुख पीला पड जाय ये पित्तज उन्मादके लक्षण हैं॥ ५॥

कफज उन्मादके कारण और लक्षण।

संपूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो मर्मणि संप्रवृद्धः।
बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन् संजनयेद्विकारान्॥
वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकश्च नारी विविक्तप्रियता च निद्रा।
छर्दिश्च लाला च बलं च भुंक्ते नखादिशौक्ल्यं च कफात्मके स्यात्६

भाषा–कम भूखमें पेटभर भोजन करके परिश्रम न करे ऐसे मनुष्योंके पित्तसहित कफ हृदयमें अत्यन्त बढकर बुद्धि और स्मरणशक्तिको नष्ट करके और चित्तको विकृत करके उन्मादरोगको उत्पन्न करता है। इस उन्मादरोगीको सदैव एकान्तमें रहना अच्छा मालूम होता है, थोडा बोले, स्त्रीमें आसक्त हो, अधिकतर निद्रामें मग्न रहे, त्वचा, मूत्र, नेत्र और नखादि शुक्लवर्ण हों; अरुचि हो, वमन करे, लारको गेरे और आहार करनेपर रोगका अधिक जोर हो जावे ये कफज उन्मादके लक्षण हैं॥ ६॥

सन्निपातज उन्मादके लक्षण।

यः सन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैः समस्तैः स च हेतुभिः स्यात्।
सर्वाणि रूपाणि बिभर्त्ति तादृक् विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः॥ ७॥

भाषा–सान्निपातिक उन्मादरोग सर्व प्रकारके मिले हुए कारणोंसे उत्पन्न होता है, इस कारण सब लक्षणोंयुक्त होता है। इस महाभयंकर विरुद्ध चिकित्सनीय सान्निपातिक उन्मादरोगीको वैद्य त्याग देवे॥ ७॥

शोकज उन्मादके लक्षण।

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्य धनबान्धवसंक्षयाद्वा। गाढं क्षते मनसि च प्रियया रिरंसोर्जायेत चोत्कटतरो मनसो

विकारः ॥ चित्रं ब्रवीति च मनोऽनुगतं विसंज्ञो गायत्यहं हसति रोदिति चापि मूढः ॥ ८ ॥

भाषा–चोर, राजपुरुष, शत्रु अथवा अन्य किसीके त्राससे तथा धन और बंधुके नाश होनेसे, अथवा इष्टप्रियजनोंके न मिलनेसे मनुष्योंका अन्तःकरण अत्यन्त क्षोभित होकर घोर मानसिक विकार अर्थात् शोकज उन्मादको उत्पन्न करता है। यह रोगाक्रान्त मनुष्य ज्ञानशून्य होकर नानाप्रकारकी गुप्त कथाओंको प्रकाशित करे है तथा गीत, हास्य और रोवे तथा मूर्ख हो जाय ॥ ८ ॥

विषज उन्मादक लक्षण ।

रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः
श्यावाननो विषकृतेऽथ भवेद्विसंज्ञः ॥ ९ ॥

भाषा–विषजन्य उन्मादरोगीके नेत्र लाल हो जांय, मुख काला पड जाय, बल, इन्द्रिय और शरीरकी कान्ति जाती रहे तथा दीनता और ज्ञानशून्यता हो ॥ ९ ॥

असाध्य लक्षण ।

अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः ।
जागरूको ह्यसंदेहमुन्मादेन विनश्यति ॥ १० ॥

भाषा–जिस उन्मादमें रोगी निरन्तर नीचेको अथवा ऊपरको मुख कर रहे, मांस और बलका क्षय होगया हो, निद्रा न आती हो, उसको असाध्य जानना ॥ १० ॥

भूतज उन्मादके लक्षण ।

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ।
उन्मादकालोऽनियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥ ११ ॥

भाषा–जिसमें वाणी, पराक्रम, शक्ति, शारीरिक चेष्टा, तत्त्वज्ञान और शिल्पादि ज्ञान मनुष्यकी समान नहीं दीखे तथा रोगकी वृद्धि और शांतिका समय निश्चय नहीं हो उसको भूतोन्माद कहते हैं। वह भूतोन्माद आठ प्रकारका है। जैसे देवग्रह, असुरग्रह, गन्धर्वग्रह, यक्षग्रह, पितृग्रह, भुजंगग्रह, पिशाचग्रह और राक्षसग्रह ॥ ११ ॥

देवग्रहके लक्षण ।

संतुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो निस्तन्द्रीरवितथसंस्कृतप्रभाषी । तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता ब्रह्मण्यो भवति नरः स देवजुष्टः ॥ १२ ॥

भाषा-देवग्रहपीडित उन्मादरोगमें रोगीका चित्त अत्यन्त संतुष्ट हो और शुद्ध आचरण करे, सुगंधित पुष्पोंकी मालासे अपने शरीरको सुशोभित करे, शुद्ध संस्कृत भाषा बोले, तेजस्वी, स्थिरदृष्टि हो, अपने निकटके मनुष्योंको वर देवे, ब्राह्मणोंमें भक्ति करे ॥ १२ ॥

अमुरपीडितके लक्षण।

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्ता जिह्माक्षो विगतभयो विमार्गदृष्टिः । संतुष्टो न भवति चान्नपानजातैर्दुष्टात्मा भवति स देवशत्रुजुष्टः १३

भाषा-असुरग्रहपीडित उन्मादरोगमें रोगीका शरीर अत्यन्त पसीनेयुक्त हो, दृष्टि टेढी हो, नेत्र उज्ज्वल और रोगी भयरहित हो तथा ब्राह्मण, देवता और गुरुजनोंकी निंदा अथवा दोषोंकी व्याख्या करे, अन्नपानादिकसे संतुष्ट न हो और सदैव पापक्रियामें रत रहे ॥ १३ ॥

गंधर्वग्रहके लक्षण।

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमाल्यः । नृत्यन् वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः १४

भाषा-गन्धर्वग्रहपीडित उन्मादरोगमें रोगीका चित्त सदैव प्रफुल्लित रहे, गीत, सुगंध और पुष्पादिकोंमें अनुराग करे, मनोहर रीतिसे नाचे और मन्द स्वरसे हँसे १४

यक्षग्रहके लक्षण।

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक् सहिष्णुः। तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै यो यक्षग्रहपीडितो मनुष्यः १५

भाषा-यक्षग्रहपीडित बारीक शोभायमान और लाल वस्त्र पहरे, थोडा बोले, नेत्र तांबेकी समान लाल हों, तेजस्वी, गम्भीर, सहनशील, शीघ्र वेगसे गमन करनेवाला और मैं किसको क्या दूं ऐसा सदैव कहे ॥ १५ ॥

पितृग्रहके लक्षण।

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिंडान् शान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः । मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकामस्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः ॥ १६ ॥

भाषा-पिता, माता अथवा अन्य किसी पितरग्रहद्वारा पीडित मनुष्य शान्तचित्त होकर और वामोसरीयवस्त्रको ग्रहण करके उसको कुशाकी शय्यापर जल और पिंड देवे तथा पितरोंमें अत्यन्त भक्ति करे एवं मांस, तिल, मिष्टान्न और खीर खानेकी इच्छा करे ॥ १६ ॥

सर्पग्रहके लक्षण ।

यस्तूर्व्यां प्रसरति सर्पवत् कदाचित् सृक्किण्यौ विलिहति जिह्वया तथैव । क्रोधालुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सुर्ज्ञातव्यो भवति भुजंगमेन जुष्टः ॥ १७ ॥

भाषा-भुजंगजुष्ट भौतिक उन्मादरोगमें रोगी पृथ्वीमें छातीके बलसे सांपकी समान चले, कभी कभी जिह्वासे दोनों होठोंको चाटे, सदैव क्रोधयुक्त रहे तथा गुड, मधु, दूध और खीर खानेकी इच्छा करे ॥ १७ ॥

राक्षसग्रहके लक्षण ।

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जो भृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः । क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविहारी शौचद्विड् भवति स राक्षसैर्गृहीतः ॥ १८ ॥

भाषा-राक्षसग्रहपीडित रोगी मांस, रुधिर और अनेक प्रकारके मदिराके विकारोंका भक्षण करनेकी इच्छा करे, अत्यन्त निर्लज्ज आचरण और निष्ठुर व्यवहार करे, अतिशय साहसी, बलवान् और क्रोधयुक्त हो, रात्रिमें भ्रमण करे और शुद्ध आचरणोंका द्वेषी हो ॥ १८ ॥

पिशाचयुक्तके लक्षण ।

उद्धस्तः कृशपरुषोऽचिरप्रलापी दुर्गन्धो भृशमशुचिस्तथातिलोलः । बह्वाशी विजनवनान्तरोपसेवी व्याचेष्टन् भ्रमति रुदन् पिशाचजुष्टः ॥ १९ ॥

भाषा-पिशाचग्रहपीडित रोगी दोनों हाथोंको ऊपरको करे, शरीर कृश कर्कश और दुर्गंधयुक्त हो जाय, नाना प्रकारके प्रलापके वचनोंको कहे, भयानक और अशुचि व्यवहार करे तथा सर्व प्रकारके अन्न और पानका लोभी हो, जो भोजन मिले तो परिमाणसे अधिक खावे, निर्जनवनमें रहे और विरुद्धाचारी होकर रोता हुआ भ्रमण करे ॥ १९ ॥

भूतोन्मादके लक्षण ।

महापराक्रमो यस्य दिव्यं ज्ञानं च भाषते ।
उन्मादकालो नैश्चित्यो भूतोन्मादी स उच्यते ॥ २० ॥

भाषा-महापराक्रमी जिसको श्रेष्ठ ज्ञान कहे और जो भूतोन्मादकालका निश्चय न होय उसको भूतोन्मादी कहते हैं ॥ २० ॥

भूतोन्मादके असाध्य लक्षण ।

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः सफेनलेही निद्रालुः पतति कम्पते च यो हि । यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतः स्यात् सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशाब्दे ॥ २१ ॥

भाषा-जिस रोगीके नेत्र भयानक हों, जिह्वासे झांगोंयुक्त दोनों होठोंको चाटे, बहुत शीघ्र चले और निद्रायुक्त होकर कांपे, भूमिपर गिर जाय, उस रोगीका रोग असाध्य है । जो रोगी पर्वत या वृक्षादिसे गिर जाय वह अवश्य मृत्युके वश हो, तेरह वर्षके बाद सर्व प्रकारके उन्मादरोग असाध्य हो जाते हैं ॥ २१ ॥

देवादिकोंका आवेशसमय ।

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः सन्ध्ययोरपि । गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यथ ॥ पित्र्याः कृष्णक्षये हि स्युःपंचम्यामपि चोरगाः । रक्षांसि रात्रौ पिशाचाश्चतुर्दश्यां विशन्ति हि ॥ दर्पणादीन् यथा च्छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा । स्वमणिं भास्करार्चिश्च यथा देहं च देहधृक् ॥ विशन्ति च न दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणः ॥ २२ ॥

भाषा-देवग्रह पूर्णमासीको प्रवेश करते हैं, असुरग्रह संध्यासमय और पूर्णमासीमेंभी प्रवेश करते हैं, गन्धर्वग्रह प्रायः अष्टमीको प्रवेश करते हैं, यक्षग्रह प्रतिपदाको आवेश करते हैं, पितृग्रह अमावास्याको, सर्पग्रह पंचमीको, राक्षसग्रह रात्रिको और पिशाचग्रह मनुष्योंके शरीरमें चतुर्दशीको प्रवेश करते हैं। कोई शंका करे कि जब मनुष्यके शरीरमें ग्रह प्रवेश करते हैं तब क्यों नहीं दीखते ? इसका समाधान इस प्रकार है। जैसे कि दर्पणादिकमें मनुष्य प्रवेश करते हैं अर्थात् प्रतिबिंब पडता है जैसे मनुष्यके शरीरमें शीत, उष्ण प्रवेश करते हैं, जैसे सूर्यकी किरण सूर्यकान्तमणिमें प्रवेश करती हैं और जैसे आत्मा देहमें अदृश्यभावसे प्रवेश करता है उसी प्रकार सर्वग्रह मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करते नहीं दीखते हैं ॥ २२ ॥

इति उन्मादभूतोन्मादरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथोन्मादभूतोन्मादरोगचिकित्सा ।

पायसम् ।

श्वेतोन्मत्तस्योत्तरादिङ्मूलं सिद्धस्तु पायसः ।
गुडाज्यसंयुतो हन्ति सर्वोन्मादांस्तु दोषजान् ॥ २३ ॥

भाषा–सफेत धतूरेकी उत्तर दिशाकी जड़का चूर्ण ४ तोले, चावल ४ तोले और दूध २ सेर सबको मिलाके खीर बनावे इस खीरमें किंचित् गुड और घी मिलाकर सेवन करे तो सर्वदोषजनित उन्मादरोग दूर होता है ॥ २३ ॥

पानविधि ।

अपक्कचटकीक्षीरपीतोन्मादविनाशिनी ॥ २४ ॥

भाषा–चटकपक्षीके बच्चेके मांसको दूधमें पकाकर पीनेसे उन्मादरोग दूर होता है ॥ २४ ॥

अथांजनम् ।

कृष्णामरिचसिन्धूत्थमधुगोपित्तनिर्मितम् ।
अंजनं सर्वभूतोत्थमिहोन्मादविनाशनम् ॥ २५ ॥

भाषा–पीपल, मरिच, सैंधानोन और सहत इन सबोंको गोपित्तमें पीसकर नेत्रोंमें अंजन लगानेसे सर्व प्रकारका भूतोन्मादरोग दूर होता है ॥ २५ ॥

धूपः ।

निम्बपत्रवचाहिंगुसर्पनिर्मोकसर्षपैः ।
डाकिन्यादिहरो धूपो भूतोन्मादविनाशनः ॥ २६ ॥

भाषा–नीमके पत्ते, वच, हींग, घृत, सांपकी कैंचली और सरसों इनको अग्निके द्वारा जलाकर धुंआ देनेसे डाकिन्यादि ग्रह और भूतोन्माद रोग दूर होता है ॥ २६ ॥

भूतभैरवो रसः ।

हिंगु सौवर्चलं त्र्यूषं नरमूत्रेण सर्पिषा ।
कर्षमात्रं पिबेच्चानु रसोऽयं भूतभैरवः ॥ २७ ॥

भाषा–हींग, काला नोन और त्रिकुटेको मनुष्यके मूत्रमें पीसकर घृतके साथ एक कर्ष पीवे तो उन्माद दूर होवे । इसको भूतभैरव रस कहते हैं ॥ २७ ॥

हिंग्वाद्यं घृतम्।

हिंगुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम्।
चतुर्गुणेर्गवां मूत्रैः सिद्धमुन्मादनाशनम्॥ २८॥

भाषा—हींग, काला नोन, त्रिकुटा ये प्रत्येक दो पल, घृत एक आढक, गोमूत्र सबसे चौगुना, सबको एकत्र कर यथाविधिसे घृतको पकावे। इस घृतको सेवन करनेसे उन्मादरोग दूर होता है॥ २८॥

महापैशाचिकं घृतम्।

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा। त्रायमाणा जया वीरा चोरकं कटुरोहिणी॥ वयस्था शूकरी छत्रा सातिछत्रा पलंकषा। महापुरुषदंत्या च कायस्था लाङ्गलीद्वयम्॥ कटम्भरा वृश्चिकाली स्थिरा चैव च तैर्घृतम्। सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम्॥ महापैशाचिकं नाम घृतमेतद् यथामृतम्। मेधाबुद्धिस्मृतिकरं बालानां चाङ्गवर्द्धनम्॥ २९॥

भाषा—बालछड, हरड, भूतकेशी, भारंगी, कौंच, बच, त्रायमाण, जयंती, क्षीरकाकोली, चोरक, कटुकी, ब्राह्मी, वाराहीकंद, सौंफ, गूगल, सतावर, छोटी इलायची, रास्ना, गंधप्रसरन, वृश्चिकाली और शालिपर्णी इन सब द्रव्योंका कल्क बनाकर घृतको पकाकर पान करनेसे उन्माद और अपस्माररोग दूर होता है तथा मेधा, बुद्धि, स्मरणशक्ति और बालकोंके अंगकी वृद्धि होती है॥ २९॥

विष्णुतैलम्।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बला च बहुपुत्रिका। एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च॥ गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च। एतेषां पलिकैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥ आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम्। अस्य तैलस्य पक्वस्य शृणु वीर्यमतः परम्॥ अश्वानां वातभग्नानां कुंजराणां गवां तथा। आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत्॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलं च तथैवार्द्धावभेदकम्। अर्दितं गलगंडं च वातशोणितमेव च॥ क्षयं चैव महाव्याधिः शर्करामश्मरीं तथा।

क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा जरया जर्जरीकृताः ॥ येषां चैव क्षयो व्याधिरंत्रवृद्धिश्च दारुणा । स्त्रियो या न प्रसूयन्ते तासां चैव प्रयोजयेत् ॥ गर्भमश्वतरीं विन्देत् किं पुनर्मानुषी तथा । एतत्तैलवरं चैव विष्णुना परिकीर्त्तितम् ॥ ३० ॥

भाषा-शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, खिरेटी, सतावर, अंडकी जड, कटाई, कटैया, कटेरी, गरहेडकी जड, गंगेरन और पियावासा ये प्रत्येक एक एक पल लेकर कल्क कर, तेल २ सेर, गायका दूध ४ सेर या बकरीका दूध सबको यथाविधिसे पकाकर तेलको सिद्ध करे । इस तेलको शरीर और मस्तकसे मालिश करे । यह तेल घोडा, हाथी, गाय, बैल और मनुष्योंके वातजन्यभग्नरोगोंको दूर करे है । इस तेलको पान करनेसे आयुकी वृद्धि और बल बढता है । इस तेलको मलनेसे हृदयशूल, पार्श्वशूल, अर्द्धावभेदक, अर्दित, गलगण्ड, वातरक्त, क्षय, कास, महारोग, शर्करा, अश्मरी, क्षीणेन्द्रिय, नष्टशुक्र, वृद्धावस्था और भयानक अन्त्रवृद्धि रोग दूर होता है । जो स्त्री प्रसव न होय वह स्त्री इसको सेवन करनेसे प्रसव होती है । इस तेलके प्रभावसे घोडियोंकेभी गर्भ रह जाता है स्त्रियोंका तो कहनाही क्या है ? यह तैल विष्णुने निर्माण किया है ॥ ३० ॥

स्वल्पहिमसागरतैलम् ।

शाल्मलीत्वक् प्रशस्तं च विम्बिप्रसारणी तथा । इल्वलस्य च बीजानि जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ पादशेषे च पूते च तैलं च प्रस्थमिष्यते । एषां कल्केन संयुक्तं दधिक्षीरे च दापयेत् ॥ क्षयोन्मादमपस्मारं सर्ववातविकारनुत् ॥ ३१ ॥

भाषा-सेमलकी छाल, कन्दूरी, प्रसारणी और समुद्रफलके बीज ये सब १२॥ सेर लेकर कूटके ६४ सेर जलमें पकावे जब १६ सेर जल शेष रह जाय तब उतार ले, पश्चात् तेल ४ सेर पूर्वोक्त कल्क की हुई औषधि और क्वाथ, दही तथा दूधके साथ पकावे, इस तैलको मर्दन करनेसे क्षय, उन्माद, अपस्मार और सर्व प्रकारके वातरोग दूर होते हैं ॥ ३१ ॥

उन्मादगजांकुशो रसः ।

त्रिदिनं कनकद्रावैर्महाराष्ट्रीद्रवैः पुनः । विषमुष्टिजलैः सूतं समुत्थाप्यार्कचक्रिकाम् ॥ कृत्वा ततां समन्धां तां युक्त्या बंधनमाचरेत् । तत्समं कानकं बीजमभ्रकं गंधकं विषम् ॥ मर्द्दये-

त्रिदिनं सर्वं वल्लमात्रं प्रयोजयेत् । दोषोन्मादं द्रुतं हन्ति भूतोन्मादं विशेषतः ॥ ३२ ॥

भाषा-पारेको तीन दिन धतूरेके रसमें, तीन दिन मरेठीके रसमें और तीन दिन कुचलेके रसमें भावना देकर उसके साथ समानभाग गंधक मिलावे, फिर इसकी चाक्रिका बनाकर कपरोटी कर बंद कर देवे। यथाविधिसे पकाकर चूर्ण कर लेवे, फिर इसमें धतूरेके बीज, अभ्रक, गंधक और विष सबको समानभाग मिलाकर तीन दिन खरल करके तीन तीन रत्तीकी गोलियां बना लेवे, इस औषधिको सेवन करनेसे दोषज और भूतज उन्मादरोग दूर होता है ॥ ३२ ॥

भूतांकुशो रसः ।

सूतायस्ताम्रमभ्रं च मुक्तां चापि समं समम् । सूतपादोत्तमं वज्रं शिलागंधकतालकम् ॥ तुत्थं रसांजनं शुद्धमब्धिफेनं शिलांजनम् । पंचानां लवणानां च प्रतिभागं रसोन्मितम् ॥ भृंगराजचित्रवर्चीदुग्धेनापि विमर्दयेत् । दिनान्ते पिण्डिकां कृत्वा रुध्वा गजपुटे पचेत् ॥ भूतांकुशरसो नाम नित्यं गुंजाद्वयं लिहेत् । आर्द्रकस्य रसेनापि भूतोन्मादनिवारणम् ॥ पिप्पल्यार्कं पिबेच्चानु दशमूलकषायकम् । स्वेदयेत् कटुतुम्ब्या च तीक्ष्णं रूक्षं च वर्जयेत् ॥ माहिषं च घृतं क्षीरं गुर्वन्नमपि भक्षयेत् । अभ्यङ्गः कटुतैलेन हितो भूतांकुशे रसे ॥ ३३ ॥

भाषा-पारा, लोहा, तांबा और मोती ये प्रत्येक एक एक तोला, हीरा दो मासे, मैनशिल, गंधक, हरिताल, तूतिया, रसौन, समुद्रफेन, सौवीरांजन और पांचों नोन ये प्रत्येक एक एक तोला, सबको एकत्र पीसकर भांगरेके रसमें, चीतेके रसमें और थूहरके दूधमें एक दिन खरल कर संध्यासमय पिण्डिका बनाकर गजपुटमें पकावे। इसको भूतांकुश रस कहते हैं। इस औषधिको प्रति दिन दो रत्ती प्रमाण चाटे, अदरखके रसके साथ इसको सेवन करनेसे भूतोन्माद रोग दूर होता है, इसको सेवन करके पीपलके चूर्णके साथ दशमूलका काथ पीवे और कडवी तुम्बीसे स्वेद देवे, परन्तु तीक्ष्ण और रूक्ष पदार्थ त्याग देवे तथा भैंसका दूध और भैंसका घी भक्षण करे तथा कडवा तेल शरीरसे मर्दन करे ॥ ३३ ॥

उन्मादभञ्जिनी वटिका ।

शुद्धं मनःशिलाचूर्णं सैन्धवं कटुरोहिणीम् । वचां शिरीषबीजं

च हिंगु च श्वेतसर्षपम् ॥ करंजबीजं त्रिकटुं मलं पारावतस्य च । एतानि समभागानि गोमूत्रैर्वटिकां कुरु ॥ गिरिमल्लीबीजसमां छायाशुष्कां च कारयेत् । प्रातःसंध्यानिशाकाले चक्षुषोरंजनं हितम् ॥ मधुरादिरसे चाज्यं रात्रावपि जलेन च । वटिकैका समाख्याता नाम्ना चोन्मादभञ्जिनी ॥ चातुर्थिकमपस्मारमुन्मादस्य विनाशिनी ॥ ३४ ॥

भाषा-मैनशिल, सेंधानोन, कुटकी, वच, सिरसके बीज, हींग, सफेद सरसों, करंजके बीज, त्रिकुटा और परेवाकी विष्ठा ये सब द्रव्य समान भाग लेकर गोमूत्रमें खरल करके गोलियां बना लेवे । यह गोली छायामें सुखाकर प्रातःकाल, संध्यासमय और रात्रिमें नेत्रोंमें घिसकर लगावे, प्रातःकाल सहतके साथ, संध्यासमय घृतके साथ और रात्रिमें जलके साथ घिसकर आखोंमें लगावे, इसको उन्मादभंजिनी वटी कहते हैं। इसको सेवन करनेसे चातुर्थिक, अपस्मार और उन्मादरोग दूर होता है ॥ ३४ ॥

त्रिकत्रयादिलोहः ।

त्रिकत्रयसमायुक्तं जीवनीययुतन्त्वयः ।
इन्त्यपस्मारमुन्मादं वातव्याधिं सुदुस्तरम् ॥ ३५ ॥

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला और त्रिजातक ये सब समान भाग लेवे और सबकी समान लोहा लेवे, सबको मिलाकर चूर्ण कर लेवे इस त्रिकत्रयाद्य लोहको सेवन करनेसे दुस्तर वातव्याधि, अपस्मार और उन्माद रोग दूर होता है ॥ ३५ ॥

उन्मादभंजनरसः ।

त्रिकटुं त्रिफलां चैव गजपिप्पलिकां तथा । विडंगं च देवदारु किरातं कटुकीं तथा ॥ कंटकारीं च यष्टीन्द्रयवं चित्रकमेव च । बलां च पिप्पलीमूलं मूलं च वीरणस्य च ॥ शोभांजनस्य बीजानि त्रिवृतां चेन्द्रवारुणीम् । वंगं रूप्यमभ्रकं च प्रवालं समभागिकम् ॥ सर्वचूर्णं समं लोहं सलिलेन विमर्दयेत् । उन्मादमपि भूतोत्थमुन्मादं वातजं तथा ॥ अपस्मारं तथा कार्श्यं रक्तपित्तं सुदारुणम् । नाशयेदविकल्पेन रसश्चोन्मादभंजनः ॥ ३६ ॥

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला, गजपीपल, वायविडंग, देवदारु, चिरायता, कुटकी,

कटेरी, मुलहटी, इन्द्रजौ, चीतेकी जड, सिरेटी, पीपलामूल, खस, सहजनेके बीज, निसोत, इन्द्रायन, बंग, रूपा, तांबा और मूंगा ये सब समान भाग लेवे और सबकी बराबर लोहेका चूर्ण मिलावे, फिर सबको जलमें खरल करे फिर गोलियां बनाकर सेवन करे तो उन्माद, अपस्मार, कृशता, दारुण रक्तपित्त ये सब रोग दूर होते हैं। इसको उन्मादमञ्जन रस कहते हैं ॥ ३६ ॥

चतुर्भुजरसः।

मृतसूतस्य भागौ द्वौ भागैकं हेमभस्मकम्। शिलां कस्तूरिकां तालं प्रत्येकं हेमतुल्यकम् ॥ सर्वं खल्वतले क्षिप्त्वा कन्यया मर्दयेद्दिनम् । एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यगर्भे दिनत्रयम् ॥ संस्थाप्य च तदुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् । एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुमर्दितम् ॥ तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम्। अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मंदानले क्षये ॥ हस्तकम्पे शिरःकंपे गात्रकंपे विशेषतः। वातपित्तसमुत्थांश्च कफजान् नाशयेद्ध्रुवम् ॥ सर्वौषधिप्रयोगैर्ये व्याधयो न प्रसाधिताः । कर्मभिः पञ्चभिश्चैव मंत्रौषधिप्रयोगतः ॥ सर्वास्तान् नाशयत्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा। चतुर्भुजरसो नाम महेशेन प्रकाशितः ॥ ३७ ॥

भाषा–पारेकी भस्म २ भाग, सोनेकी भस्म १ भाग, मैनशिल २ भाग, कस्तूरी १ भाग, हरिताल १ भाग सबोंको एकत्र करके घीकुवारके रसमें खरल करे। फिर अंडके पत्तोंसे वेष्टित कर तीन दिन धानोंके ढेरमें स्थापन करे। तीन दिनके बाद इस औषधिको निकालकर सर्वरोगोंमें प्रयोग करे। यह उत्तम रसायन है। इसको त्रिफलेके क्वाथमें और सहतके साथ खरलमें पीसकर रोगीकी अग्निका बलाबल विचारकर यथायोग्य मात्रानुसार सेवन करे। इसको सेवन करनेसे वली और पलितरोग दूर होते हैं। अपस्मार, ज्वर, खांसी, श्वास, शोष, मंदाग्नि, क्षय, हाथपांवोंका कांपना, शिरःकम्प और गात्रकम्प आदि रोगोंमें इस औषधिको सेवन करना चाहिये। इसको सेवन करनेसे वात, पित्त और कफजनित सर्व प्रकारके रोग दूर होते हैं। जो रोग किसी प्रकारकी औषधिसे शांत नहीं होते वे सब इस औषधिसे शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं जैसे वज्रसे वृक्ष नष्ट हो जाते हैं ॥ ३७ ॥

उन्मादपर्पटीरसः।

कृष्णधत्तूरजैर्बीजैः पंचभिः पर्पटीरसः।

संप्रयोज्यः प्रशान्त्यर्थमुन्मादं भूतसंभवम् ॥ ३८ ॥

भाषा-धतूरेके पांच बीजोंको पित्तपापडेके रसमें खरल करके सेवन करनेसे भूतोन्मादरोग दूर होता है । इसको उन्मादपर्पटी रस कहते हैं ॥ ३८ ॥

इत्युन्मादभूतोन्मादरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथापस्माररोगनिदानम् ।

अपस्मारके सामान्य लक्षण ।

तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतिः ।
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ १ ॥

भाषा-अपस्माररोगमें दुष्ट दोषोंके द्वारा ज्ञान और स्मरणशक्तिका नाश होता है, इस कारण इसको अपस्मार रोग कहते हैं । इस रोगवाला मनुष्य ज्ञानरहित और विकृतनेत्र होकर हाथपांवोंके सत्वको त्याग देता है । यह अपस्मार भयंकर रोग वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातिक इन भेदोंसे चार प्रकारका है ॥ १ ॥

पूर्वरूप ।

हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्छा प्रमूढता ।
निद्रानाशश्च तस्मिंश्च भविष्यति भवत्यथ ॥ २ ॥

भाषा-हृदय कांपे, शून्य हो जाय, अत्यन्त पसीनेका आना, चिंता, ध्यान लग जाय, मूर्छा, निद्राका नाश तथा मन और इन्द्रियोंमें मोह हो ये सब लक्षण अपस्मारके पूर्वरूपमें होते हैं ॥ २ ॥

वातजअपस्मारके लक्षण ।

कम्पते प्रदशेद्दन्तान् फेनोद्वामी श्वसित्यपि ।
परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ ३ ॥

भाषा-वातज अपस्मारके रोगीको अरुण या कृष्ण वर्ण स्वरूप दीखे अर्थात् मेरे पास कोई लाल या काले रंगका मनुष्य दौडा आता है । तथा कांपे, दांतोंको चबावे, मुखसे झाग डाले और खरखर श्वास आवे ॥ ३ ॥

पित्तज अपस्मारके लक्षण ।

पीतफेनाङ्गवक्त्राक्षः पीतासृक्रूपदर्शकः ।
सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तवाला रोगी पीत या लोहित रंगके स्वरूपको देखकर मूर्छित हो जाता है अर्थात् मेरे पास कोई पीले या लोहितरंगका मनुष्य दौडा आता है। शरीर, मुख, मुखका झाग और नेत्र पीले रंगके होते हैं, अत्यन्त तृषा और सम्पूर्ण जगत् अग्निके द्वारा व्याप्त और उष्ण दीख पडता है ॥ ४ ॥

कफजअपस्मारके लक्षण ।

शुक्लफेनाङ्गवक्त्राक्षः शीतहृष्टाङ्गजो गुरुः ।
पश्यन् शुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिको मुच्यतेचिरात् ॥ ५ ॥

भाषा-कफकी मृगीवाला रोगी सफेद रंगके स्वरूपको देखकर मूर्छित हो जाता है अर्थात् मेरे पास कोई सफेद रंगका मनुष्य दौडा आता है रोगीका मुख और मुखका झाग, नेत्र और अंग सफेद हों, शरीर शीतल हो, रोमांच हो आवें, शरीरमें भारीपन आ जाय, श्लैष्मिक अपस्मारवाला रोगी अन्यान्य अपस्मारोंकी अपेक्षा देरमें चैतन्य होता है ॥ ५ ॥

सान्निपातिकअपस्मारके लक्षण ।

सर्वैरेतैः समस्तैश्च लिङ्गैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः ।
अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः ॥ ६ ॥

भाषा-जिस अपस्मार रोगमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सान्निपातिक अपस्मार कहते हैं । दुर्बल मनुष्योंके उत्पन्न हुआ सान्निपातिक अपस्मार असाध्य है । यह रोग बहुत दिनोंका ही जानेपरभी असाध्य हो जाता है ॥ ६ ॥

असाध्यलक्षण ।

प्रस्फुरन्तं सुबहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम् ।
नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ॥ ७ ॥

भाषा-जो अत्यन्त कांपे, दोनों भौओंको चलावे, नेत्रोंको टेढा करे और जिसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया हो ऐसा अपस्मारका रोगी नहीं जीता है ॥७॥

अपस्माररोगकी वेला ।

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः।अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किंचिदथान्तरम् ॥ देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित् । शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयाः ॥ ८ ॥

भाषा-१२ दिन १५ दिन अथवा एक महीनेमें वातादिक दोष कुपित होकर अपस्मारके वेगको करते हैं । इनमें वातका वेग १२ दिनमें, पित्तका १५ दिनमें

संप्रयोज्यः प्रशान्त्यर्थमुन्मादं भूतसंभवम् ॥ ३८ ॥

भाषा-धतूरेके पांच बीजोंको पित्तपापडेके रसमें खरल करके सेवन करनेसे भूतोन्मादरोग दूर होता है। इसको उन्मादपर्पटी रस कहते हैं ॥ ३८ ॥

इत्युन्मादभूतोन्मादरोगचिकित्सा समाप्ता।

अथापस्माररोगनिदानम्।

अपस्मारके सामान्य लक्षण।

तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतिः।
अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ १ ॥

भाषा-अपस्माररोगमें दुष्ट दोषोंके द्वारा ज्ञान और स्मरणशक्तिका नाश होता है, इस कारण इसको अपस्मार रोग कहते हैं। इस रोगवाला मनुष्य ज्ञानरहित और विकृतनेत्र होकर हाथपांवोंके सत्वको त्याग देता है। यह अपस्मार भयंकर रोग वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातिक इन भेदोंसे चार प्रकारका है ॥ १ ॥

पूर्वरूप।

हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्छा प्रमूढता।
निद्रानाशश्च तस्मिंश्च भविष्यति भवंत्यथ ॥ २ ॥

भाषा-हृदय कांपे, शून्य हो जाय, अत्यन्त पसीनेका आना, चिंता, ध्यान लग जाय, मूर्छा, निद्राका नाश तथा मन और इन्द्रियोंमें मोह हो ये सब लक्षण अपस्मारके पूर्वरूपमें होते हैं ॥ २ ॥

वातजअपस्मारके लक्षण।

कम्पते प्रदशेद्दन्तान् फेनोद्वामी श्वसित्यपि।
परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ॥ ३ ॥

भाषा-वातज अपस्मारके रोगीको अरुण या कृष्ण वर्ण स्वरूप दीखे अर्थात् मेरे पास कोई लाल या काले रंगका मनुष्य दौडा आता है। तथा कांपे, दांतोंको चबावे, मुखसे झाग डाले और खरखर श्वास आवे ॥ ३ ॥

पित्तज अपस्मारके लक्षण।

पीतफेनाङ्गवक्त्राक्षः पीतासृक्रूपदर्शकः।
सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तवाला रोगी पीत या लोहित रंगके स्वरूपको देखकर मूर्छित हो जाता है अर्थात् मेरे पास कोई पीले या लोहितरंगका मनुष्य दौडा आता है। शरीर, मुख, मुखका झाग और नेत्र पीले रंगके होते हैं, अत्यन्त तृषा और सम्पूर्ण जगत् अग्निके द्वारा व्याप्त और उष्ण दीख पडता है ॥ ४ ॥

कफजअपस्मारके लक्षण ।

शुक्लफेनाङ्गवक्त्राक्षः शीतहृष्टाङ्गजो गुरुः ।
पश्यन् शुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिको मुच्यतेचिरात् ॥ ५ ॥

भाषा-कफकी मृगीवाला रोगी सफेद रंगके स्वरूपको देखकर मूर्छित हो जाता है अर्थात् मेरे पास कोई सफेद रंगका मनुष्य दौडा आता है रोगीका मुख और मुखका झाग, नेत्र और अंग सफेद हों, शरीर शीतल हो, रोमांच हो आवें, शरीरमें भारीपन आ जाय, श्लैष्मिक अपस्मारवाला रोगी अन्यान्य अपस्मारोंकी अपेक्षा देरमें चैतन्य होता है ॥ ५ ॥

सान्निपातिकअपस्मारके लक्षण ।

सर्वैरेतैः समस्तैश्च लिंगैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः ।
अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च यः ॥ ६ ॥

भाषा-जिस अपस्मार रोगमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सान्निपातिक अपस्मार कहते हैं । दुर्बल मनुष्योंके उत्पन्न हुआ सान्निपातिक अपस्मार असाध्य है । यह रोग बहुत दिनोंका हो जानेपरभी असाध्य हो जाता है ॥ ६ ॥

असाध्यलक्षण ।

प्रस्फुरन्तं सुबहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम् ।
नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारैर्विनाशयेत् ॥ ७ ॥

भाषा-जो अत्यन्त कांपे, दोनों भौओंको चलावे, नेत्रोंको वेढा करे और जिसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया हो ऐसा अपस्मारका रोगी नहीं जीता है ॥७॥

अपस्माररोगकी वेला ।

पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः।अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किंचिदथान्तरम् ॥ देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित् । शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुच्छ्रयाः ॥ ८ ॥

भाषा-१२ दिन १५ दिन अथवा एक महीनेमें वातादिक दोष कुपित होकर अपस्मारके वेगको करते हैं । इनमें वातका वेग १२ दिनमें, पित्तका १५ दिनमें

और कफका वेग एक महीनेमें होता है और कमी कमी ऊपरोक्त अवधिको छोड-कर अधिक कमती दिनोंमेंभी होता है। इसमें दृष्टांत कहते हैं कि बहुत प्रकारके बीज पृथ्वीपर वर्षाव होनेपरमी नहीं उत्पन्न होते हैं और शरदऋतुमें जमते हैं इसी प्रकार रोगकी अवधिभी जानना ॥ ८ ॥

इति अपस्माररोगनिदानं समाप्तम्।

अथापस्माररोगचिकित्सा।

शंखपुष्पीं तु पुष्येण समुद्धृत्य सपत्रिकाम्।
समूलीं छागदुग्धेन अपस्मारहरां पिबेत् ॥ ९ ॥

भाषा–शंखपुष्पीको पुष्यनक्षत्रमें जड और पत्तोंसमेत उखाडकर बकरीके दूधमें पीसकर सेवन करनेसे अपस्माररोग दूर होता है ॥ ९ ॥

नस्यस्नानादिक्रिया।

सिद्धार्थकवचा हिंगु करंजं देवदारु च। मंजिष्ठा त्रिफला श्वेता शिरीषो रजनीद्वयम् ॥ प्रियंगु निंबत्रिकटु गोमूत्रेणावघर्षितम्। नस्यमालेपनं चैव स्नानमुद्वर्त्तनं तथा ॥ अपस्मारविषोन्माद-शोषालक्ष्मीज्वरापहम्। भूतोत्थं च भयं हन्ति राजद्वारे च शासनम् ॥ १० ॥

भाषा–सरसों, वच, हींग, करंज, देवदारु, मजीठ, हरड, आमला, बहेडा, सफेद कोयल, सिरस, हलदी, दारुहलदी, प्रियंगु, नीमकी छाल और त्रिकुटा इन सबोंको समान भाग लेकर गोमूत्रमें पीसकर नास, प्रलेप अथवा मर्दन करके स्नान करनेसे विषजन्य उन्माद, शोष, अलक्ष्मी, ज्वर और भूतबाधा दूर होती है और राजभयभी दूर हो जाता है ॥ १० ॥

अथांजनम्।

पुष्योद्धृत्यं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमंजनम् ॥ ११ ॥

भाषा–पुष्यनक्षत्रमें कुत्तेके पित्तका अंजन लगानेसे अपस्मार रोग दूर होता है ॥ ११ ॥

भस्मपानम्।

उद्धम्बितनरग्रीवापाशं दग्ध्वा कृता मसी।

शीतांबुना च संपीता हन्त्यपस्मारमुद्धतम् ॥ १२ ॥

भाषा-जिस रस्सीको मनुष्यके गलेमें डालकर फांसी देते हैं उस रस्सीको जलाकर भस्म करके शीतल जलके साथ पीनेसे अपस्मार रोग दूर हो जाता है॥१२॥

धूपविधिः ।

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः ।
तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्भिषक् ॥ १३ ॥

भाषा-नवला, उल्लू, बिलाव, गीध, कीडे, सांपकी कैंचली और कौवा इन सबोंकी चोंच, पक्ष और विष्ठाकी धूप देवे तो अपस्मार रोग दूर होवे ॥ १३ ॥

चण्डभैरवरसः ।

मृतो सूतार्कौ लोहं च तालं गन्धं मनःशिलाम् । रसांजनं च तुल्यांशं गोमूत्रेणापि मर्दयेत् ॥ तं गोलं द्विगुणं गंधं लोहपात्रे क्षणं पचेत् । पंचगुञ्जामितं भक्ष्यमपस्मारहरं परम् ॥ हिंगु सौवर्चलं कुष्ठं गवां मूत्रेण सर्पिषा । कर्षमात्रं पिबेच्चानु रसेऽस्मिंश्चण्डभैरवे ॥ १४ ॥

भाषा-पारा, तांबा, लोहा, हरिताल, गंधक, मैनशील और रसोन ये सब समान भाग लेकर गोमूत्रमें पीसकर फिर दुगुने गंधकके साथ मिलाकर थोडी देर लोहेके पात्रमें पकावे इसकी मात्रा ५ रत्ती प्रमाण बनावे । इसको चंडभैरव रस कहते हैं । हींग, काला नोन और कूठका चूर्ण, गोमूत्र या घी इस अनुपानके साथ एक कर्षप्रमाण पीवे । यह अपस्मार रोगको दूर करे है ॥ १४ ॥

कूष्माण्डघृतम् ।

कुष्माण्डस्वरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत् ।
यष्ट्याह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम् ॥ १५ ॥

भाषा-गायका घी ४ सेर, पेठेका स्वरस ३ सेर, कल्कके लिये मुलहठी १ सेर, सबको मिलाके यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । इस घृतका पान करनेसे अपस्मार-रोग दूर होता है ॥ १५ ॥

स्वल्पपंचगव्यघृतम् ।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम् ।
सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ १६ ॥

भाषा-गोबर, दही, मठा, दूध और गोमूत्र इन सबोंको समान भाग लेकर इनके साथ घृतको पकाकर सेवन करनेसे चातुर्थिक ज्वर, उन्माद और अपस्माररोग दूर होता है ॥ १६ ॥

पलंकषाद्यं तैलम् ।

पलंकषा च पथ्या च वृश्चिकान्यर्कसर्षपैः । जटिलापूतना-केशीलांगलीहिंगुचोरकैः ॥ लशुनातिरसाचित्राकुष्ठैर्विड्भिश्च पक्षिणाम् । मांसाशिनां यथालाभं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे ॥ सिद्ध-मभ्यञ्जनं तैलमपस्मारविनाशनम् ॥ १७ ॥

भाषा-गूगल, वच, हरड, वृश्चिकाली, आक, सरसों, बालछड, भूतकेशी, कलिहारीकी जड़, हींग, भटेउर, लहसन, मूर्वा, चीता और मांसाशी पक्षीकी विष्ठा इन सबोंका कल्क १ सेर, बकरीका मूत्र १६ सेर, तेल ४ सेर सबोंको डाल-कर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे, इस तेलको मर्दन करनेसे अपस्माररोग दूर होता है ॥ १७ ॥

भूतभैरवरसः ।

मृतसूतार्कलोहानां शिलागंधकतालकम् । रसांजनं च तुल्यांशं नरमूत्रेण मर्दयेत् ॥ तद्गोलं द्विगुणं गंधं लोहपात्रे क्षणं पचेत् । पंचगुंजामितं खादेदपस्मारहरं परम् ॥ हिंगु सौवर्चलं व्योषं नरमूत्रेण सर्पिषा । कर्षमात्रं पिबेच्चानु रसोऽयं भूतभैरवः ॥ १८ ॥

भाषा-पारेकी भस्म, तांबा, लोहा, मैनशिल, गंधक, हरिताल और रसोन इन सबोंको समान भाग लेकर मनुष्यके मूत्रमें पीसे फिर इसमें दुगुना गंधक मिलाकर गोला बना लेवे, पश्चात् इस गोलेको लोहेके पात्रमें कुछ देरतक पकावे। इस औषधि-को पांच रत्ती प्रमाण भक्षण करनेसे अपस्मार रोग दूर हो जाता है । अनुपान हींग, काला नोन और त्रिकुटा इनको मनुष्यके मूत्रमें पीसकर दो तोले घीके साथ पीवे इसको भूतभैरव रस कहते हैं ॥ १८ ॥

सूतभस्मप्रयोगः ।

शंखपुष्पीवचाब्राह्मीकुष्ठमेलारसैः सह ।
सूतभस्मप्रयोगोऽयं रक्तिकाद्वयमानतः ॥
सर्वापस्मारनाशाय महादेवेन भाषितः ॥ १९ ॥

भाषा-शंखपुष्पी, वच, ब्राह्मी, कूठ और इलायची इनके क्राथके साथ दो

रत्ती पारेकी भस्म सेवन करे तो सर्व प्रकारके अपस्माररोग दूर होवें। यह महादेवने निर्माण किया है ॥ १९ ॥

इन्द्रब्रह्मवटी।

मृतसूताभ्रकं तीक्ष्णं तारं ताप्यं विषं समम्। पद्मकेशरसंयुक्तं दिनैकं मर्दयेद्द्रवैः ॥ स्नुह्यग्निविजयैरण्डचानिष्पावकशूरणैः। निर्गुंड्याश्च द्रवैर्मर्द्यं तद्गोलं पाचयेत् पुनः ॥ कंगुलीसर्षपोत्थेन तैलेन गंधसंयुतम्। ततः पक्त्वा समुद्धृत्य चणमात्रा वटी कृता ॥ इन्द्रब्रह्मवटी नाम भक्षयेदार्द्रकद्रवैः। दशमूलकषायं च कणायुक्तं पिबेदनु ॥ अपस्मारं जयत्याशु यथा सूर्योदये तमः ॥ २० ॥

भाषा-पारेकी भस्म, अभ्रक, लोहा, रूपा, सोनामक्खी, विष और कमलकेसर ये सब समान भाग लेकर थूहर, चीता, भांग, अंड, वच, सेम, जमींकंद और निर्गुण्डी इनके रसमें एक दिन भावना देवे, पश्चात् इनका गोला बनाकर पुटमें पकावे फिर इसमें बराबरका गंधक मिलाकर कंगुनी और सरसोंके तेलके साथ दुबारा पकावे फिर चनेकी बराबर गोलियां बनाकर अदरखके रसके साथ भक्षण करे। इस औषधिको भक्षण करके दशमूलके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करे, इसको इन्द्रवटी कहते हैं। जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेसे अंधकार दूर होता है उसी प्रकार इस औषधिके सेवन करनेसे अपस्मार रोग दूर होता है ॥२०॥

वातकुलान्तकः।

मृगनाभिः शिवा नागकेशरं कलिवृक्षजम्। पारदं गंधकं जातीफलमेलालवंगकम् ॥ प्रत्येकं कार्षिकं चैव श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्। जलेन मर्दयित्वा तु वटीं कुर्याद्द्विरक्तिकाम् ॥ तथा व्याध्यनुपानेन योजयेच्च चिकित्सकः। अपस्मारे महाघोरे मूर्च्छारोगे च शस्यते ॥ वातजान् सर्वरोगांश्च हन्यादचिरसेवनात्। नातः परतरं श्रेष्ठमपस्मारेषु वर्त्तते ॥ ब्रह्मणा निर्म्मितः पूर्वं नाम्ना वातकुलान्तकः ॥ २१ ॥

भाषा-कस्तूरी, हरड, मैनशिल, नागकेशर, बहेडा, पारा, गंधक, जायफल, इलायची और लौंग ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर उत्तम रीतिसे पीस लेवे, फिर जलके साथ मर्दन करके दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे। रोगीका बलाबल विचार अनुपान निरूपण करके इस औषधिका सेवन करे। यह औषधि अपस्मार

और मूर्छारोगमें हितकारी है। इसको बहुत दिनोंतक सेवन करनेसे सर्व प्रकारके वातरोग दूर होते हैं। इससे उत्तम अपस्माररोगकी पृथ्वीमें अन्य औषधि नहीं है। यह वातकुलान्तकरस स्वयं ब्रह्माजीने निर्म्माण किया है ॥ २१ ॥

इति अपस्माररोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ वातव्याधिरोगनिदानम् ।

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः । विषमादुपचाराच्च दोषासृक्स्रावणादपि ॥ लंघनप्लवनात्यध्वव्यायामादिविचेष्टितैः। धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात् ॥ वेगसन्धारणादामादभिघातादभोजनात् । मर्म्माबाधाद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानादिसेवनात् ॥ देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली। करोति विविधान् व्याधीन् सर्वांगैकांगसंश्रयान् ॥ १ ॥

भाषा–रूखा, शीतल, थोडा और हलका ऐसे अन्नका भोजन करनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, अत्यन्त जागनेसे, विषम उपचारोंसे वातपित्तादि और मलमूत्रादि दोष तथा रुधिरके निकलनेसे अर्थात् वमन विरेचन और फस्तके खुलवानेसे, अत्यन्त लंघन करनेसे, पानीमें तैरनेसे, अत्यन्त मार्ग चलनेसे, अत्यन्त परिश्रम करनेसे, अतिशय विरुद्ध चेष्टा करनेसे, रसरक्तादि धातुओंके क्षय होनेसे, चिन्ता शोक और रोगद्वारा शरीरका क्षय होनेसे, मलमूत्रादिकोंके वेगको रोकनेसे, आमसे, उपवास करनेसे चोटके लगनेसे या मर्म्मस्थानोंमें चोटके लगनेसे, हाथी, घोडा, ऊंट आदि शीघ्र चलनेवाली सवारियोंसे पतित होनेसे कुपित हुई जो बलवान् वायु सो शरीरमें खाली नस उनमें भरकर अनेक प्रकारके सर्वांगव्यापी या एकांगव्यापी रोगोंको उत्पन्न करती है ॥ १ ॥

पूर्वरूप ।

अव्यक्तं लक्षणं तेषां पूर्वरूपमिति स्मृतम् । आत्मरूपं तु यद्व्यक्तमपायो लघुता पुनः॥ संकोचः पर्वणां स्तम्भो भंगोऽस्थ्नां पर्वणामपि। रोमहर्षः प्रलापश्च पाणिपृष्ठशिरोग्रहः॥ खांज्यपांगुल्यकुब्जत्वं शोषोऽङ्गानामनिद्रता । गर्भशुक्ररजोनाशः स्पन्दनं गात्रसुप्तता॥ शिरोनासाक्षिजत्रूणां ग्रीवायाश्चापि हुण्ड-

नम् । भेदस्तोदोऽर्त्तिराक्षेपो मुहुश्चायास एव च ॥ एवंविधानि रूपाणि करोति कुपितोऽनिलः । हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत् ॥ २ ॥

भाषा–जो जो वातव्याधि आगे कही जावेंगी उनके जो अप्रगट (किंचित् प्रकाशित) लक्षण हैं उसको पूर्वरूप कहते हैं और वही प्रगट होनेपर लक्षण कहे जाते हैं और जो वायुकी लघुता अर्थात् न्यूनता है सोही अपाय अर्थात् रोगोत्पत्तिका कारण है। संधियोंमें संकोच और जकडना, अस्थी और संधिस्थानोंमें टूटने फूटनेकेसी पीडा, रोमांच हो आना, व्यर्थ बकवाद; हाथ, पीठ और मस्तकमें पीडाका होना, खंजत्व (लंगडापन), पंगुत्व (लूलापन), कुब्जत्व (कुबडापन), अंगोंका सूखना, निद्राका नाश; गर्भ, शुक्र और रजका नाश, शरीरका कांपना, शरीरमें शून्यता, मस्तक, नाक, नेत्र हँसियें और गरदन इनका भीतरको चले जाना अथवा टेढे हो जाना, छेदन और भेदनकीसी पीडा, शूल, आक्षेप, मोह, श्रम ये सब लक्षण कुपित हुई वायु करती है । इसके अतिरिक्त वायु कफावृत होकर मन्यास्तम्भरोगको उत्पन्न करती है । यह हेतुविशेष स्थानविशेषसे विशिष्ट रोगोंको उत्पन्न करती है । जैसे पक्वाशयमें स्थित होकर आंतोंको कुंजाती है इत्यादि औरभी हेतु स्थानविशेष सम्बन्धी रोग जानना ॥ २ ॥

कोष्ठाश्रित वायुके कार्य ।

तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः ।
ब्रध्नहृद्रोगगुल्मार्शः पार्श्वशूलं च मारुते ॥ ३ ॥

भाषा–अब स्थानके विशेषसे कार्य्य कहे जाते हैं । कोठेमें स्थित वायु दुष्ट होनेसे मलमूत्रका अवरोध करे, बद, हृदयरोग, गुल्म, बवासीर और पसलियोंमें पीडा करती है ॥ ३ ॥

सर्वांगकुपित वायुके कार्य ।

सर्वांगकुपिते वाते गात्रस्फुरणभंजनम् ।
वेदनाभिः परीतश्च स्फुटन्तीवास्य संधयः ॥ ४ ॥

भाषा–सब अंगोंमें वायु कुपित होनेसे अङ्गोंका फडकना, भंग होना और पीडाके होनेसे संधियोंमें फूटनसी हो ॥ ४ ॥

गुदामें स्थित वायुके कार्य ।

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः ।
जंघोरुत्रिकपात्पृष्ठरोगशोषो गुदे स्थिते ॥ ५ ॥

भाषा-गुदस्थ (पक्वाशयस्थ) वायुके कुपित होनेसे मल, मूत्र और अधोवायु ये सब रुक जाते हैं। शूल, पेटका फूलना, अश्मरी और शर्करारोगकी पीडा, जंघा, ऊरु, त्रिक, हृदय और पीठमें पीडा और सूखना ये सब होते हैं ॥ ५ ॥

आमाशयस्थित वायुके कार्य ।

रुक्पार्श्वोदरहृन्नाभेस्तृष्णोद्गारविषूचिकाः ।
कासः कंठास्यशोषश्च श्वासश्चामाशयस्थिते ॥ ६ ॥

भाषा-आमाशयमें स्थित दूषित वायु पसलियोंमें पीडा, हृदयमें शूल, नाभि और पेटमें पीडा, पियास, डकार, विषूचिका (हैजा), खांसी, मुख और कंठका सूखना और श्वासरोगको उत्पन्न करती है ॥ ६ ॥

पक्वाशयस्थवायुके कार्य ।

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च ।
कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनम् ॥ ७ ॥

भाषा-पक्वाशयमें स्थित दूषित वायु आंतोंका कूंजना, शूल, पेटमें गुडगुडाहट, मलमूत्र कठिनतासे उतरे, अफरा और त्रिकस्थानमें पीडा ये लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

इन्द्रियोंमें स्थित वायुके कार्य ।

श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्याद्दुष्टसमीरणः ॥ ८ ॥

भाषा-कर्ण आदि इंद्रियोंमें स्थित दूषित वायु इंद्रियोंका नाश करती है ॥८॥

रसधातुगत वायुके कारण ।

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते ।
आतन्यते सरागा च पर्वरुक्त्वग्गतेऽनिले ॥ ९ ॥

भाषा-चर्मगत वायुके दूषित होनेसे त्वचा रूखी, फटीसी, सुन्न, कृश, काली, फलीसी और कुछ लाली लिये हो, त्वचामें पीडा हो और रोगोंके संधिस्थानोंमें पीडा हो ॥ ९ ॥

रक्तगत वायुके लक्षण ।

रुजास्तीव्राः ससन्तापा वैवर्ण्यं कृशता रुचिः ।
गात्रे चारूंषि भुक्तस्य स्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले ॥ १० ॥

भाषा-रक्तस्थित दूषित वायु, सन्तापसहित तीक्ष्ण पीडा करे, शरीरका रंग बदल जाय, कृशता, अरुचि, शरीरमें फोडे और भोजन करनेके पश्चात् देह बंधसी जावे ॥ १० ॥

मांसमेदोगतवायुके लक्षण ।

गुर्वंगं तुद्यतेऽत्यर्थं दण्डमुष्टिहतं यथा।
सरुक्श्रमितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले ॥ ११ ॥

भाषा-मांस और मेदस्थित वायु, शरीरमें भारीपन, विना परिश्रमके श्रम मालूम हो, लठिया या मुक्का मारनेकीसी पीडा हो और चुभके चलें ॥ ११ ॥

मज्जास्थिगत वायुके लक्षण ।

मेदोऽस्थिपर्वणां सन्धिशूलं मांसबलक्षयः ।
अस्वप्नः सन्तता रुक् च मज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ १२ ॥

भाषा-मज्जा और अस्थिगत दूषित वायु अस्थि और संधिस्थानोंमें पीडा, कृशता, निर्बलता, अनिद्रा और निरंतर पीडा हो ॥ १२ ॥

शुक्रगत वायुके लक्षण ।

क्षिप्रं मुंचति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा ।
विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥ १३ ॥

भाषा-शुक्रस्थित दूषित वायु वीर्य्यको शीघ्र छोडे अथवा गर्भको शीघ्र छोडे तथा सुखाकर पतन कर देवे या वीर्य्य और गर्भको विकृत कर देती है ॥ १३ ॥

शिरागत वायुके लक्षण ।

कुर्याच्छिरागतः शूलं शिराकुंचनपूरणम् ।
स बाह्याभ्यन्तरायामं खल्वीं कौब्जमथापि वा ॥ १४ ॥

भाषा-शिरास्थित दूषित वायु शरीरमें शूल, शिराओंमें संकोच और शिराओंमें स्थूलता करे । बाह्यायाम, आभ्यन्तरायाम, खल्ली और कुबडापन इन विकारोंको उत्पन्न करे है ॥ १४ ॥

स्नायुगत और संधिगत वायुके लक्षण ।

सर्वांङ्गैकाङ्गरोगांश्च कुर्यात् स्नायुगतोऽनिलः । हन्ति संधिगतः सन्धीन् शूलाटोपौ करोति च ॥ प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते । दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैरस्यं च कफावृते ॥ उदाने पित्तयुक्ते तु दाहो मूर्च्छा भ्रमः क्लमः । अस्वेदहर्षौ मन्दोऽग्निः शीतता च कफावृते ॥ स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छाः स्युः समाने पित्तसंवृते । कफेन संगे विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥

अपाने पित्तयुक्ते तु दाहौष्ण्यं रक्तमूत्रता । अधःकाये गुरुत्वं च शीतता च कफावृते ॥ व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः । स्तम्भनो दण्डकश्चापि शूलशोथौ कफावृते ॥ १५ ॥

भाषा–स्नायुगत दूषित वायु सर्वांगव्यापी और एकांगव्यापी रोगोंको उत्पन्न करे है । सन्धिस्थित वायु सन्धिस्थानोंमें शिथिलता, स्तम्भता और शूलको उत्पन्न करे है तथा गुडगुडाहट शब्दको करे है । पित्तमिश्रित प्राणवायु वमन और दाहको उत्पन्न करे है । कफमिश्रित प्राणवायु दुर्बलता, तन्द्रा, ग्लानि और मुखमें विरसताको उत्पन्न करे है । पित्तमिश्रित उदान वायु दाह, मूर्छा, भ्रम और क्लान्तिको उत्पन्न करे है । कफमिश्रित उदानवायु पसीनेका नहीं आना, रोमांच हो आवें, मंदाग्नि हो और सरदी लगे इन लक्षणोंको करे है । पित्तमिश्रित समान वायु पसीना, दाह, उष्णता और मूर्छाको उत्पन्न करे है । कफमिश्रित समानवायु मलमूत्रका रोध और रोमांच हो आवें इनको करती है । पित्तमिश्रित अपानवायु दाह, गरमी और मूत्रमें लाली प्रगट करती है । कफमिश्रित अपानवायु शरीरके नीचेके भागमें भारीपन और शीत उत्पन्न करती है । पित्तमिश्रित व्यानवायु दाह, शरीरको इधर उधर फेंकना और क्लान्तिको उत्पन्न करे है और कफमिश्रित व्यानवायु स्तम्भन (हनुस्तम्भादि), दण्डक (दण्डापतानक), शूल और सूजनको उत्पन्न करे है॥१५॥

आक्षेपवातके सामान्य लक्षण ।

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः ।
तदा क्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्देहं मुहुश्चरः ॥
मुहुर्मुहुश्चाक्षेपणादाक्षेपक इति स्मृतः ॥ १६ ॥

भाषा–जब वायु कुपित होकर सब धमनियोंमें प्रवेश करती है तब वह वारंवार संचार करके शरीरको वारंवार चलायमान करके जैसे हाथीपर बैठनेसे झकोले लगते हैं ऐसे वारंवार हिलाती है।वारंवार आक्षेप करनेसे इसको आक्षेपक रोग कहते हैं॥१६॥

आक्षेप वायुके अपतंत्र और अपतानकभेद इन दोनोंका अवस्थाविशेष ।

क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रपद्यते । पीडयन् हृदयं गत्वा शिरःशंखौ च पीडयन् ॥ धनुर्वन्नमयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोहये-त्तदा॥स कृच्छ्रादुच्छ्वसेचापि स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः ॥ कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोपतंत्रकः । दृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा

कंठेन कूजति ॥ हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः ।
वायुना दारुणं प्राहुरेके तदपतानकम् ॥ १७ ॥

भाषा-पूर्वोक्त रूक्षादि कारणोंसे कुपित हुई जो वायु सो अपने निजस्थानको छोडकर ऊपर जायकर प्राप्त हुई हृदयमें जाकर पीडा करे, फिर मस्तक और कनपटियोंमें पीडा करे, शरीरको धनुष्यकी समान नवा देवे, चक्षु तो बेहोश कर दे, बडे कष्टसे श्वास ले, नेत्र स्थिर हो जावें या मिच जावें और अचैत होकर कबूतरकी समान कूंजे इसको अपतंत्रक रोग कहते हैं। दृष्टि बंध जाय, संज्ञा जाती रहे, कंठसे कूजे, जब हृदयको वायु छोडे तब सुख हो और जब पकड ले तो फिर बेहोसी हो जाय इस दारुण रोगको अपतानक कहते हैं ॥ १७ ॥

दंडापतानक लक्षण ।

कफान्वितो भृशं वायुस्तास्वेव यदि तिष्ठति ।
दण्डवत् स्तम्भयेद्देहं स तु दण्डापतानकः ॥ १८ ॥

भाषा-कफयुक्त वायु सब धमनी नाडियोंमें प्राप्त होकर शरीरको दंडेकी समान नकड देवे, इसको दण्डापतानक कहते हैं ॥ १८ ॥

धनुस्तंभ लक्षण ।

धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुस्तम्भसंज्ञकः ॥ १९ ॥

भाषा-दूषितवायु नसोंको संकुचित करके शरीरको धनुषकी समान नवाय देती है इस कारण इसको धनुस्तम्भरोग कहते हैं ॥ १९ ॥

अंतरायामके लक्षण ।

अंगुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः । स्नायुप्रतानमनिलो यदा क्षिपति वेगवान् ॥ विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन् । अभ्यन्तरं धनुरिव यदा नमति मानवम् ॥ तदास्याभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ॥ २० ॥

भाषा-अंगुली, गुल्क (पांवकी गांठ), पेट, हृदय, वक्षःस्थल और गलेमें रहनेवाली वायु वेगवान् होकर नसोंके समूहको सुखाकर बाहर निकाल दे तब उस मनुष्यके नेत्र स्थिर हो जावें, ठोडी जकड जाय, पसलियोंमें पीडा हो, मुखसे कफ गिरने लगे और जब मनुष्य आगेकी ओरको नव जाता है तब वह बलवान् वायु अंतरायामको उत्पन्न करती है ॥ २० ॥

बाह्यायामलक्षण ।

बाह्यः स्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च ।
तमसाध्यं बुधाः प्राहुर्वक्षःकट्यूरुभंजनम् ॥ २१ ॥

भाषा-जिस प्रकार अंतरायाममें वायु आगे नसोंमें रहकर अंतरायामको करता है वैसेही पीछेकी नसोंमें रहनेवाली वायु पीछेके भागको नवाकर बाह्यायाम करती है। अर्थात् वक्षःस्थल, कमर और जंघाओंको मोड देती है, इसको असाध्य जानना २१

पित्तकफान्वित आक्षेपकके लक्षण ।

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ।
कुर्यादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ॥ २२ ॥

भाषा-आक्षेपकवायु चार प्रकारकी है । एक कफान्वित, दूसरी पित्तान्वित, तीसरी केवल वायुजनक और चौथी अभिघातज ॥ २२ ॥

असाध्यत्वको कहते हैं ।

गर्भपातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः ।
अभिघातनिमित्तश्च न सिध्यत्यपतानकः ॥ २३ ॥

भाषा-गर्भके पतित होनेसे, अत्यंत रक्तके निकलनेसेऔर चोटके लगनेसे जो अपतानक रोग हो सो असाध्य है ॥ २३ ॥

गृहीत्वार्द्धं तनोर्वायुः शिरास्नायू विशोष्य च । पक्षमन्यतमं हन्ति सन्धिबन्धान् विमोक्षयन् ॥ कृत्स्नार्द्धकायस्तस्य स्याद-कर्मण्यो विचेतनः । एकांगरोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ॥२४॥

भाषा-जिस रोगमें वायु आधे शरीरको पकडकर शिरा और स्नायुको सुखाकर संधिबंधनोंको ढीलाकर एक ओरके पक्ष अर्थात् एकतरफकी नाक, कान, नेत्र, हाथ, पांव आदि आधे अंगको शिथिल कर देती है, तब उस मनुष्यका आधा या सब अंग कार्य करनेको असमर्थ हो तथा अचेत हो जावे,इसको कितनेक वैद्य एकांग रोग कहते हैं और कितनेक वैद्य पक्षवध कहते हैं । संसारमें यह पक्षाघात नामसे विख्यात है । जिस प्रकार आधे अंगके शिथिल होनेसे पक्षवध रोग होता है॥२४॥

सर्वांगरोगके लक्षण ।

सर्वाङ्गरोगस्तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले ॥ २५ ॥

भाषा-उसी प्रकार सब अंगके शिथिल होनेसे सर्वांग रोग होता है ॥ २५ ॥

साध्यासाध्यज्ञानार्थ अन्य दोषोंका संबंध कथन ।

दाहसंतापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते । शैत्यशोथगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफान्विते ॥ शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः । साध्यमन्येन संयुक्तमसाध्यं क्षयहेतुकम् ॥ उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि वा । हसतो जृम्भतो वापि भाराद्विषमशायिनः ॥ अर्द्दयत्यनिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यतः । वक्रीभवति वक्त्रार्द्धं ग्रीवा चाप्यपवर्त्तते ॥ शिरश्चलति वाक्संगो नेत्रादीनां च वैकृतम् । ग्रीवाचिबुकदन्तानां यस्मिन् पार्श्वे च वेदना ॥ तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविचक्षणाः ॥ २६ ॥

भाषा-वातपित्तजन्य पक्षाघातरोगमें दाह, सन्ताप और मूर्च्छा होती है। और वातकफजन्य पक्षाघातरोगमें शरीरमें शीतलता और सूजन होती है। वातजन्य पक्षाघात कष्टसाध्य, वातपित्तजन्य और वातकफजन्य पक्षाघात साध्य और क्षयसे उत्पन्न हुआ पक्षाघातरोग असाध्य है। अत्यन्त ऊँचे स्वरसे बोलना, अत्यन्त कठिन पदार्थोंके भक्षण करनेसे, बहुत जोरसे हँसना वारंवार जम्भाईके लेनेसे, बोझको ढोनेसे और विषमस्थानमें सोनेसे इन सब कारणोंसे कुपित हुई वायु मस्तक, नासिका, होठ, ठोडी, ललाट और नेत्रोंकी संधियोंमें प्राप्त होकर एक ओरके मुखको टेढा करके अर्दितरोगको उत्पन्न करती है। इसमें आधा मुख टेढा हो जाता है, गरदन नहीं मुडती, शिर हिलने लगता है, बोला नहीं जाता, नेत्रादि वैकृत (विगड) जाते हैं। जिस अंगकी ओर टेढा होता है उसी ओरकी गरदन टेढी और दांतोंमें दर्द होता है उस रोगको अर्दित रोग कहते हैं ॥ २६ ॥

अर्दितरोगके असाध्यलक्षण ।

क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ।
न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ २७ ॥

भाषा-जो मनुष्य अत्यन्त क्षीण हो गया हो, जो स्पष्ट रूपसे नहीं बोल सके, जिसके आंखोंके पलक नहीं लगे, रोगको उत्पन्न हुए तीन वर्ष बीत चुके हों अथवा नाक, मुख और नेत्रोंमेंसे पानी स्रवे और कांपे वह अर्दित रोगी असाध्य है॥२७॥

आक्षेपकमें अर्दितपर्यंत वेगकथन ।

गते वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपकादिषु ॥ २८ ॥

भाषा-सम्पूर्ण आक्षेपादि वातरोगोंमें वेगके शांत होनेपर पीडा कम हो जाती है ॥ २८ ॥

हनुग्रहके लक्षण ।

जिह्वानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः । कुपितो हनुमूलस्थः स्रंसयित्वानिलो हनुम् ॥ करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् । हनुग्रहः स तेन स्यात् कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥ २९ ॥

भाषा-जिव्हाको घिसनेसे, सूखे पदार्थोंका भक्षण करनेसे, हनु अर्थात् ठोडीमें चोटके लगनेसे, हनुमूलस्थित वायु कुपित होकर मुखको खोल दे अथवा बंद कर दे, यह रोगी अत्यन्त कष्टसे खावे और बोले इस रोगको हनुस्तम्भ कहते हैं ॥ २९ ॥

मन्यास्तंभके लक्षण ।

दिवास्वप्नासमस्थानविवृतोर्द्धनिरीक्षणैः ।
मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणावृतः ॥ ३० ॥

भाषा-दिनमें सोनेसे, नीचे ऊंचे स्थानपर बैठनेसे, विवृतभावसे ऊपरको देखनेसे वायु कुपित होकर कफके साथ मिलकर मन्यानाडीको स्तंभित करे उस रोगको मन्यास्तम्भ कहते हैं ॥ ३० ॥

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः ।
जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥ ३१ ॥

भाषा-वायु शब्दवाहिनी शिराओंको बांधकर जिह्वाको स्तंमन कर दे उस रोगको जिह्वास्तम्भ कहते हैं । इसमें रोगी भोजन करनेको और बोलनेको असमर्थ हो जाय ॥ ३१ ॥

शिराग्रहके लक्षण ।

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्द्धधराः शिराः ।
रूक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्यात् शिराग्रहः ॥ ३२ ॥

भाषा-वायु रक्तके साथ मिलकर गलेकी शिराओंको रूखी, पीडायुक्त और काली कर दे उसको शिराग्रह कहते हैं । यह असाध्य है ॥ ३२ ॥

गृध्रसीके लक्षण ।

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरुजानुजंघापदं क्रमात् ।
गृध्रसीस्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ॥
वाताद्वातकफात्तन्द्रा गौरवारोचकान्विता ॥ ३३ ॥

भाषा-प्रथम कूलेको जकड कर फिर क्रमसे कमर, पीठ, ऊरु, जानु, जंघा और पांवोंको जकड देवे या पीडित कर दे, नोचनेकेसी पीडा हो और वारंवार कांपे इसको गृध्रसी रोग कहते हैं। यह वायुजनित होता है और जो यह वातकफजनित होय तो तन्द्रा, भारीपन और अरुचि हो ॥ ३३ ॥

विश्वाचीके लक्षण ।

तलं प्रत्यंगुलीनां याः कंडरा बाहुपृष्ठतः ।
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची चेति सोच्यते ॥ ३४ ॥

भाषा-बाहुके पीछेसे लेकर हाथके ऊपरके भागतक प्रत्येक अंगुलीके नीचे स्थूल नस है उसको दूषितकर हाथके कार्यों (सकोडना फैलाना) का नाश करनेवाला जो रोग होय उसको विश्वाची रोग कहते हैं ॥ ३४ ॥

क्रोष्टुशीर्षके लक्षण ।

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये महारुजः ।
ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ ३५ ॥

भाषा-वायु और रक्तसे दोनों जानु (घुटने) ओंकी संधियोंमें अत्यन्त व्यथायुक्त सूजन उत्पन्न हो और वह सूजन क्रोष्टु अर्थात् स्यारके मस्तककी समान बडी होय उसको क्रोष्टुशीर्ष कहते हैं ॥ ३५ ॥

खंज और पांगुरेके लक्षण ।

वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद्यदा ।
खञ्जस्तदा भवेज्जन्तुः पंगुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ ३६ ॥

भाषा-कमरमें रहनेवाली वायु जंघाकी नसोंको ग्रहणकर एक पांवको जकड देवे उसको खंज कहते हैं और जिसमें दोनों जांघोंकी नसोंको पकडकर दोनों पांवोंको जकड देवे उसको पंगु कहते हैं ॥ ३६ ॥

कलायखंजके लक्षण ।

प्रक्रामन् वेपते यस्तु खंजन्निव च गच्छति ।
कलायखञ्जं तं विद्यात् मुक्तसन्धिप्रबन्धनम् ॥ ३७ ॥

भाषा-कलायखंजमें रोगी चलते समय थरथर कंपित होकर विकल भावसे गमन करे तथा उसके संधिबंधन शिथिल हो जांय उस रोगको कलायखंज कहते हैं ॥ ३७ ॥

वातकंटकके लक्षण ।

रुक् पादे विषमन्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा ।

वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम् ॥ ३८ ॥

भाषा-ऊंचे नीचे स्थानमें पांव पडनेसे अथवा मार्ग चलनेके श्रमसे वायु कुपित होकर गुल्फस्थान (टकनोंमें) पीडा उत्पन्न करे उसको वातकण्टक कहते हैं॥३८॥

पाददाहके लक्षण ।

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः ।
विशेषतश्चंक्रमतः पाददाहं तमादिशेत् ॥ ३९ ॥

भाषा-जिस रोगमें वायु पित्त और रक्तके साथ मिलकर पांवोंमें दाह उत्पन्न करे और चलते समय कुछ कम पड जाय उसको पाददाह कहते हैं ॥ ३९ ॥

पादहर्षके लक्षण ।

रुष्येते चरणौ यस्य भवेताञ्चापि सुप्तकौ ।
पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपतः ॥ ४० ॥

भाषा-पादहर्षरोगमें वायु कफसे मिलकर दोनों पांवोंको असार अर्थात् सुन्न कर देती है तथा पांवोंमें झनझनाहट होती है ॥ ४० ॥

अंसशोष और अपबाहुकके लक्षण ।

अंसदेशस्थितो वायुः शोषयेदंशबंधनम् ।
शिराश्चाकुंच्य तत्रस्थो जनयेदपबाहुकम् ॥ ४१ ॥

भाषा-स्कन्धमें रहनेवाली वायु दूषित होकर स्कंधके बंधनको सुखा देवे तब उसको स्कन्धशोष कहते हैं और जिस रोगमें स्कन्धस्थित वायु स्कन्धदेशकी शिराओंको संकोचित कर दे उसको अपबाहुक रोग कहते हैं ॥ ४१ ॥

मूकादिक तीन रोगोंके लक्षण ।

आवृत्य वायुः सकफो धमनीः शब्दवाहिनीः ।
नरान् करोत्यक्रियकान् मूकमिन्मिणगद्गदान् ॥ ४२ ॥

भाषा-वायु कफके साथ मिलकर शब्दवाहिनी शिराओंको रोककर मूकत्व (गूंगापन अर्थात् बोलनेकी शक्तिका नाश) मिनमिनत्व (मिनमिनापन अर्थात् नाकमें बोलना) और गद्गदत्व (शब्दोंका ठीक २ उच्चारण नहीं होना अर्थात् टूटे फूटे शब्दोंका बोलना) उत्पन्न करती है ॥ ४२ ॥

तूनीरोगके लक्षण ।

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता ।
भिन्दन्तीव गुदोपस्थं सा तूनीनाम नामतः ॥ ४३ ॥

भाषा-जिस रोगमें मूत्राशय अथवा पक्वाशयमें पीडा उत्पन्न होकर अत्यंत जोरसे मलद्वार या लिंग योनिमें प्रवेश करे उस रोगको तूनी कहते हैं ॥ ४३ ॥

प्रतूनीके लक्षण।

गुदोपस्थोत्थिता या तु प्रतिलोमं प्रधाविता।
वेगैः पक्वाशयं याति प्रतितूनीति सोच्यते ॥ ४४ ॥

भाषा-जिस रोगमें मलद्वार अथवा उपस्थदेशसे पीडा उत्पन्न होकर अत्यन्त जोरसे पक्वाशयमें प्रवेश करे उस रोगको प्रतूनी कहते हैं ॥ ४४ ॥

आध्मानके लक्षण।

आटोपमत्युग्ररुजमाध्मातमुदरं भृशम्।
आध्मानमिति तं विद्याद्घोरं वातनिरोधजम् ॥ ४५ ॥

भाषा-वायुसे पक्वाशय अत्यन्त फूल जाय तथा पक्वाशयमें गुडगुड शब्द और अत्यन्त पीडा हो उसको आध्मान रोग कहते हैं ॥ ४५ ॥

प्रत्याध्मानके लक्षण।

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवामाशयोत्थितम्।
प्रत्याध्मानं विजानीयात् कफव्याकुलितानिलम् ॥ ४६ ॥

भाषा-वायु कफसे मिलकर आमाशयमें गुडगुडाहट शब्द करे तथा आमाशय फूल जावे, पसली और हृदयमें पीडा होवे, व्याकुलता हो उसको प्रत्याध्मान रोग कहते हैं ॥ ४६ ॥

वाताष्ठीलाके लक्षण।

नाभेरधस्तात् संजातः संचारी यदि वाचलः।
अष्ठीलावद् घनो ग्रन्थिरूर्ध्वमायात उन्नतः ॥
वाताष्ठीलां विजानीयात् बहिर्मार्गावरोधिनीम् ॥ ४७ ॥

भाषा-नाभीके नीचे चलायमान अथवा स्थिर, गोलाकार, कठिन, ऊपरसे कुछ लम्बी, आडी, किंचित् ऊंची ऐसी गांठ उत्पन्न हो, मल मूत्र और अधोवायुका रोध हो उसको वाताष्ठीला कहते हैं ॥ ४७ ॥

प्रत्यष्ठीलाके लक्षण।

एतामेव रुजोपेतां वातविण्मूत्ररोधिनीम्।
प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्य्यगुत्थिताम् ॥ ४८ ॥

भाषा-पूर्वोक्त वाताष्ठीलाकी गांठ यदि उदर (नाभि) के ऊपर उत्पन्न हो, पीडा हो और मलमूत्रका रोध हो तो उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं ॥ ४८ ॥

मूत्रावरोधके लक्षण ।

मारुते विगुणे बस्तौ मूत्रं सम्यक् प्रवर्त्तते ।
विकारा विविधाश्चात्र प्रतिलोमे भवन्ति च ॥ ४९ ॥

भाषा-मूत्राशयमें रहनेवाली वायु दूषित न होय तो मूत्र अच्छे प्रकारसे उतरता है और जो दूषित हो जाय तो अनेक प्रकारके अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र विकारोंको उत्पन्न करे है ॥ ४९ ॥

कंपवायुके लक्षण ।

सर्वाङ्गकम्पः शिरसो वायुर्वेपथुसंज्ञकः ॥ ५० ॥

भाषा-जिसमें सर्व अंग और शिर कम्पित हो उसको वेपथु (कम्पवात) कहते हैं ॥ ५० ॥

खल्लीके लक्षण ।

खल्ली तु पादजंघोरुकरमूलावमोटिनी ॥ ५१ ॥

भाषा-जिसमें पांव, जांघ, ऊरु और करमूल कम्पित हों उसको खल्ली कहते हैं ॥ ५१ ॥

साध्यासाध्य विचार ।

स्थाननामानुरूपैश्च लिंगैः शेषान् विनिर्दिशेत् । सर्वेष्वेतेषु संसर्गे पित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ॥ हनुस्तम्भार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः । कालेन महताव्यानां यत्नात् सिद्ध्यन्ति वा नवाः ॥ नवान् बलवतस्त्वेतान् साधयेन्निरुपद्रवान् । विसर्पदाहरुक्संगमूर्च्छारुच्यग्निमार्दवैः ॥ क्षीणमांसबलं वाता घ्नन्ति पक्षवधादयः। शूनं सुप्तत्वचं भग्नं कम्पाध्माननिपीडितम् ॥ रुजार्त्तिमन्तञ्च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् । अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतिस्थितः॥वायुः स्यात् सोऽधिकं जीवेत् वीतरोगः समाः शतम्५२॥

भाषा-ये जो वातरोग कहे इनके सिवाय औरभी अनेक प्रकारके वातरोग जानने । इनके स्थान और रूपानुसार नाम निश्चय करने । जैसे कुक्षिमें शूल होय तो कुक्षिशूल, नखोंमें पीडा होय तो नखभेद इत्यादि औरभी जानने । इस अधिकारमें जितनी वातजनित व्याधि कही हैं वे सब पित्त और कफसे मिश्रित हैं ।

परन्तु इनमें वायु प्रधानरूप और पित्तकफ अप्रधानरूप हैं। हनुस्तम्भ, अर्दित, आक्षेपक, पक्षाघात और अपतानक ये रोग बहुत दिनोंमें धनवानके बड़े परिश्रम और यत्नोंसे साध्य होते हैं और नहींभी होते परन्तु थोड़े दिनोंकी उत्पन्न हुई और उपद्रवरहित बलवान् मनुष्योंके हुई होय तो चिकित्सा करनी चाहिये। विसर्प, दाह, वेदना, मलमूत्रका रोध, मूर्छा, अरुचि और मंदाग्नि इन सब उपद्रवयुक्त पक्षवधादि वातव्याधि, कृश और दुर्बल मनुष्योंका नाश करती है। सूजनयुक्त, जिसको स्पर्शका ज्ञान नष्ट हो गया हो, जिसकी अस्थि भंग हो गई हों, कम्प और आध्मानसे दुःखित, पीडायुक्त ऐसे मनुष्योंको यह वातरोग नष्ट कर देता है। जिसके शरीरमें रहनेवाली वायु दूषित नहीं हुई हो, यथास्थानमें अवस्थित हो तथा गति न रुके वह मनुष्य नीरोगी होकर एक सौ वर्षतक जीता रहता है॥८२॥

इति वातव्याधिरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ वातव्याधिरोगचिकित्सा।

काथ लेप पानादि क्रिया।

शुकशैवालमन्थाश्च शुंठी पाषाणभेदकम्। शोभांजनं गोक्षुरं वा वरुणच्छदमेव च॥ शोभांजनस्य मूलं च एतैः क्कथितवारि च। दत्त्वा हिंगु यवक्षारं पीतं वातविनाशनम्॥ बृहतीकस्य वै मूलं संपिष्टमुदकेन च। पीतं मिण्मिनिवातस्य तद्विपाटनकृद्वचः॥ पीतं तक्रेण मूलं च आर्द्रकं तगरस्य च। हरेन्मिण्मिनिवातं च वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा॥ शणमूलं सताम्बूलं पीतमिन्द्रियकम्पहृत्। लाटां च शृंगवेरं च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्॥ गुग्गुलुं गुडतुल्यं च गुटिकामुपयुज्य तु। वायुं स्नायुगतं चैव अग्निमान्द्यं च नाशयेत्॥ कुष्ठस्य भागमेकं तु पथ्याभागद्वयं तथा। उष्णोदकेन संपीत्वा कटिशूलविनाशनम्॥ तथेन्द्रवारुणीमूलं विधिना पीतमीश्वर। जिङ्गिण्येरंडकं रुद्र शूकशिम्बिसमन्वितम्॥ शीतोदकं च तन्नस्यो बाहुग्रीवाव्यथां हरेत्। घृतलिप्तं सक्तुकं च छागीक्षीरेण संयुतम्॥ तल्लेपात् पादयोर्नश्येत् संतापो नात्र

संशयः । मध्वाज्यं सैन्धवं सिक्थं गुडगुग्गुलुगैरिकैः ॥ स सज्वरः सस्फुटितः कोमलोऽग्निश्च लेपनात् । दशमूलीबलामाषकाथं तैलाज्यमिश्रितम् ॥ सायं भुक्त्वा पिबेन्नस्यं विश्वाच्यामपबाहुके । माषात्मगुप्तकैरण्डवाट्यालकशृतं पिबेत् ॥ हिंगुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातनिवारणम् ॥ ५३ ॥

भाषा—गठिवन, सिवार, मेथी, सोंठ, पाषाणभेद, सहजना, गोखरू, वरनाके पत्ते और सहजनेकी जड ये सब समान भाग ले काथ बनाय कर जवाखार और हींग डालकर पीनेसे वातरोग दूर होते हैं । कटाईकी जडको जलमें पीसकर पीनेसे मिण्मिनी वातव्याधि दूर होती है । अदरख और तगरकी जडको तक्रमें पीसकर पीनेसे मिण्मिनी वात दूर होती है । जैसे इन्द्रके वज्रसे वृक्षोंका नाश होता है । सनकी जडको पीसकर पानके साथ सेवन करनेसे हाथपांवोंका कम्प दूर होता है । लाटाके बीज और सोंठका बारीक चूर्ण कर समान भाग गूगल और पुराना गुड मिलाकर गोलियां बना लेवे इन गोलियोंका सेवन करनेसे स्नायुगत वायु और मंदाग्निरोग दूर होता है। कूठ १ भाग और हरड २ भाग इनका चूर्ण कर गरमपानीके साथ पीनेसे कटिशूल दूर होता है । इन्द्रायनकी जड, मजीठ, अंडकी जड और कौंचके बीज इनको एकत्र पीसकर शीतल जलके साथ पीनेसे या नास लेनेसे बाहु और ग्रीवाकी पीडा दूर होती है । सत्तुओंको घीमें मिलाकर बकरीके दूधके साथ पैरोंपर लेप करनेसे पादसन्ताप दूर होता है । सहत, घी, सैंधानोन, मोम, गुड, गेरू, गूगल और राल समान लेकर एकत्र पीसकर पैरोंपर प्रलेप करनेसे पांवोंकी कर्कशता दूर होकर कोमलता प्रगट होती है। दशमूल, खिरैटी और उडद इनके काथमें तैल और घी मिलाकर भोजनके पश्चात् संध्यासमय नासिकाद्वारा पान करनेसे विश्वाची और अपबाहुकरोग दूर होता है । उडद, कौंच, अंडकी जड और खिरैटीके काथमें हींग और सैंधानोन डालकर पीनेसे पक्षाघात रोग दूर होता है॥५३॥

अनिलारिरसः ।

रसेन गन्धं द्विगुणं विमर्द्य वातारिनिर्गुण्डिरसैर्दिनैकम् । निवेशयेत्ताम्रमये प्रपुट्टे सर्वे मृदावेष्ट्य च वालुकाख्ये ॥ यन्त्रे पुटेद्वौ मयचूर्णवह्नौ स्वभावशीतं तु समस्तमेतत् । निर्गुण्डिकावातहराग्नितोयैः संचूर्ण्य यत्नेन विभावयेत्तु ॥ रसोनिलारिः कथितोऽस्य शूनैरेरण्डतैलेन सगन्धकेन । मरीचचूर्णेन ससर्पिषा वा निर्गुण्डिकाचित्रकट्टत्रिकैर्वा ॥ ५४ ॥

भाषा-पारा १ भाग, गंधक २ भाग दोनोंकी एकत्र कजली बनाकर अंड और संभालूके रसमें खरल करके तांबेके सम्पुटमें स्थापन कर कपरमिट्टी कर वालुकायंत्रमें अरने उपलोंकी अग्निसे पकावे, जब शीतल हो जाय तो पीसकर संभालू, अंड और चीतेके रसकी भावना देवे। इसको अनिलारिरस कहते हैं। अनिलारिरसकी तीन तीन रत्तीकी गोलियां बना लेवे। उन गोलियोंको अंडीका तेल, गंधकका चूर्ण, मरिचका चूर्ण, घी, संभालू, चीतेका रस या त्रिकुटेके चूर्णके साथ सेवन करे तो सर्व प्रकारके वातरोग दूर हों॥ ५४॥

वातकंटको रसः।

वज्रं मृताभ्रं हेमार्कं तीक्ष्णमुण्डं क्रमोत्तरम्। मरिचं मर्दयेदम्लवर्गेण दिवसत्रयम्॥ त्रिक्षारं पंचलवणं मर्दितं स्यात् समं समम्। दत्त्वा निर्गुण्डिकाद्रावैर्मर्दयेद्दिवसत्रयम्॥ शुष्कमेतद् विचूर्ण्याथ विषं चास्याष्टमांशतः। टङ्कणं विषतुल्यं स्याद्दत्वा जम्बीरजैर्द्रवैः॥भावयेद्दिनमेकं तु रसोऽयं वातकण्टकः। दातव्यो वातरोगेषु सन्निपाते विशेषतः॥ द्विगुंजामार्द्रकद्रावैः सेवयेद्वातरोगिणम्। अनुयोज्य घृतैर्नित्यं स्निग्धमुष्णं च भोजनम्॥ मण्डलान्नाशयेत्सर्वान् वातरोगानशेषतः। सन्निपाते पिबेच्चानु तालमूलकषायकम्॥ ५५॥

भाषा-हीरा, शुद्ध अभ्रक, सोना, तांबा, लोहा, मण्डूर और काली मिरच ये सब समान भाग लेकर अम्लवर्गमें तीन दिन भावना देवे। फिर सज्जी, जवाखार, सुहागा और पांचों नोन और निर्गुण्डीके रसमें तीन दिन खरल करे, जब सूख जाय तब बारीक पीसकर आठ भाग मिरच, एक भाग विष और समान भाग सुहागा मिलाकर जम्भीरी नीबूके रसमें एक दिन खरल करे; फिर दो रत्तीभर इसको अदरखके रसके अनुपानसे सान्निपातिक और वातरोगमें देवे। घृतके अनुपानके साथ सेवन करे तो मण्डलकुष्ठ और सर्व प्रकारके वातरोग दूर होते हैं। मुसलीके अनुपानसे इसको सेवन करनेसे सन्निपातरोग दूर होता है, इसपर स्निग्ध और गरम भोजन करे॥ ५५॥

चतुर्मुखो रसः।

रसगन्धकलोहाभ्रं समं सूतांघ्रिहेम च। सर्वं खल्वतले क्षिप्त्वा कन्यास्वरसमर्दितम्॥ एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिन-

त्रयम् । संस्थाप्य च तदुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुयोजितम् । तद्यथाग्निबलं खादेद्‌ वलीपलितनाशनम् ॥ क्षयमेकादशविधं पाण्डुरोगं प्रमेहकम् । कासं शूलं च मन्दाग्निं हिक्कां चैवाम्लपित्तकम्॥ व्रणान् सर्वानाढ्यवातं विसर्पं विद्रधिं तथा । अपस्मारं महोन्मादं सर्वार्शांसि त्वगामयान् ॥ क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा । पौष्टिकं धन्यमायुष्यं स्त्रीणां प्रसवकारणम् ॥ चतुर्म्मुखेन देवेन कृष्णात्रेयस्य सूचितम् ॥ ५६ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, गंधक, लोहा और अभ्रक ये प्रत्येक एक एक तोले, सोना २ मासे, इन सबोंको घीगुवारके रसमें मर्दन करके अंडके पत्तोंमें बांधकर फिर अंडके पत्तोंसे वेष्टित कर तीन दिन धानोंके ढेरमें रख देवे, निकालकर एक एक रत्तीकी गोलियां बना लेवे । इस उत्तम रसायनको त्रिफला और सहतके साथ सेवन करे । अग्निका बलाबल विचारकर इसकी मात्राका निश्चय करे । यह औषधि वलीपलित रोग, ग्यारह प्रकारके क्षयरोग, पाण्डुरोग, प्रमेह, खांसी, शूल, मंदाग्नि, हिक्का, अम्लपित्त, सर्व प्रकारके व्रण, आढ्यवात, विसर्प, विद्रधि, अपस्मार, महाउन्माद, सर्व प्रकारके अर्शरोग, सर्व प्रकारके त्वचाके रोग ये सब रोग दूर हो जाते हैं । पुष्टिकारक, धन्य, आयुवर्द्धक, स्त्रियोंके प्रसव करनेवाली । यह स्वयं ब्रह्माजीने कृष्णात्रेयसे कहा है ॥ ५६ ॥

चिन्तामणिचतुर्म्मुखः ।

विशुद्धं रससिन्दूरं तदर्द्धं लोहमभ्रकम् । तदर्द्धं कनकं खल्वे कन्यास्वरसमर्दितम् ॥ एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ निधापयेत् । त्रिदिनान्ते समुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुसंयुतम् । तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम् ॥ अपस्मारं महोन्मादं रोगान् वातसमुद्भवान् । क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ५७ ॥

भाषा-शुद्ध रससिन्दूर २ तोले, लोहा १ तोला, अभ्रक १ तोला और सुवर्ण ६ मासे ये सब द्रव्य एकत्र घीगुवारके रसमें खरल करके अंडके पत्तोंमें वेष्टित कर धानोंके ढेरमें रख देवे । तीसरे दिन निकालकर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे,

यह उत्तम रसायन त्रिफला और शहदके साथ सेवन करे। अग्निका बलाबल विचारकर मात्राका निश्चय करे। यह वलीपलितादिरोग, अपस्मार, महोन्माद और सर्व प्रकारके वातरोगोंको दूर करे है ॥ ५७ ॥

योगेन्द्ररसः ।

विशुद्धं रससिन्दूरं तदर्द्धं शुद्धहाटकम् । तत्समं कान्तलोहं च तत्समं चाभ्रमेव च ॥ विशुद्धं मौक्तिकं चैव वंगं च तत्समं मतम् । कुमारिकारसैर्भाव्यं धान्यराशौ दिनत्रयम् ॥ ततो रक्तिद्वयमितां वटीं कुर्याद्विचक्षणः । योगवाही रसो ह्येष सर्वरोगकुलान्तकः ॥ वातपित्तभवान् रोगान् प्रमेहान् बहुमूत्रताम् । मूत्राघातमपस्मारं भगन्दरगुदामयम् ॥ उन्मादं मूर्च्छांयक्ष्माणं पक्षाघातं हतेन्द्रियम् । शूलाम्लपित्तकं हन्ति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ त्रिफलारसयोगेन शुभया सितयापि वा । भक्षयित्वा भवेद्रोगी कामरूपी सुदर्शनः ॥ रात्रौ सेव्यं गवां क्षीरं कृशानां च विशेषतः । योगेन्द्राख्यो रसो नाम्ना कृष्णात्रेयविनिर्म्मितः ॥ ५८ ॥

भाषा-शुद्ध रससिन्दूर २ तोले, शुद्ध सोना १ तोला, लोहा १ तोला, अभ्रक १ तोला, मोती १ तोला, वंग १ तोला इन सबोंको घीगुवारके रसमें भावना देकर तीन दिन धानोंके ढेरमें रखके पश्चात् दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे। यह योगवाही रस सर्व प्रकारके रोगोंको हरनेवाला है। तथा वातपित्तोद्भव रोग, प्रमेह, बहुमूत्रता, मूत्राघात, अपस्मार, भगन्दर, बवासीर, उन्माद, मूर्छा, राजयक्ष्मा, नष्ट इंद्रिय, पक्षाघात, शूल और अम्लपित्तरोग दूर होता है। जैसे सूर्यसे अंधकार दूर होता है। अनुपान त्रिफलेका रस या चीनी है इसको सेवन करनेसे कामदेवकी समान स्वरूपवान् होता है। रात्रिमें गायके दूधके साथ इसको सेवन करे। यह योगेन्द्ररस कृष्णात्रेयने निर्माण किया है ॥ ५८ ॥

रसराजरसः ।

पलैकं शुद्धसूतस्य व्योमसत्वं च कार्षिकम् । तदर्द्धं कांचनं देयं कन्यारसविमर्दितम् ॥ लोहं रूप्यं मृतं वङ्गं वाजिगंधा लवङ्गकम् । जातीकोषं तथा क्षीरकाकोलीं च तदर्द्धतः ॥ काकमाची-

रसैः पिष्ट्वा पंचगुंजामिता वटी। क्षीरं च शर्करातोयमनुपानं प्रकल्पयेत्॥ पक्षाघातेऽर्दिते वाते हनुस्तम्भेऽपतन्त्रके । धनुस्तम्भेऽपताने च बाधिर्ये मस्तकभ्रमे॥ सर्ववातविकारेषु रसराजः प्रकीर्तितः। बल्यो वृष्यश्च भोग्यश्च वाजीकरण उत्तमः॥५९॥

भाषा–शुद्ध पारा ४ तोले, अभ्रक १ कर्ष, सोना ६ मासे सबोंको एकत्र कर घीगुवारके रसमें खरल करे, फिर उसमें लोहा, रूपा, वंग, असगंध, लौंग, जायफल और क्षीरकाकोली प्रत्येक तीन तीन मासे मिलाकर मकोयके रसमें खरल करके पांच पांच रत्तीकी गोलियां बना लेवे। अनुपान दूध और चीनी है। यह रसराजरस पक्षाघात, अर्दितवात, हनुस्तम्भ, अपतन्त्रक, धनुस्तम्भ, अपतानक, बधिरता, मस्तकभ्रम और सर्व प्रकारके वातविकारोंको दूर करे है। बलकारक, वीर्य्यवर्द्धक, भोग्य और उत्तम वाजीकरण है ॥ ५९॥

वृहद्वातचिन्तामणिरसः ।

भागत्रयं स्वर्णभस्म द्विभागं रूप्यमभ्रकम्। लोहात् पंच प्रवालं च मौक्तिकं त्रयसम्मितम्॥ भस्मसूतं सप्तकं च कन्यारसविमर्दितम् । वल्लमात्रा वटी कार्या भिषग्भिः परियत्नतः॥ यथा साध्यानुपानेन नाशयेद्रोगसंकुलम्। वातरोगं पित्तकृतं निहन्ति नात्र चिन्तनम्॥ वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी कन्दर्पसमविक्रमः। दृष्टः सिद्धफलं चायं वातचिन्तामणिस्त्विह ॥ ६० ॥

भाषा–सोनेकी भस्म ३ भाग, चांदीकी भस्म २ भाग, अभ्रककी भस्म २ भाग, लोहेकी भस्म ५ भाग, मूंगेकी भस्म ३ भाग, मोतीकी भस्म ३ भाग और पारेकी भस्म ७ भाग सबोंको एकत्र घीगुवारके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे। दोषोंका विचार करके अनुपानकी व्यवस्था करे। इसको सेवन करनेसे वातरोग और पित्तरोग दूर होते हैं। इसके प्रभावसे वृद्ध मनुष्यभी तरुणताको प्राप्त होकर कन्दर्पकी समान पराक्रमी होता है। यह वातचिन्तामणि रस तत्काल फलदायक है॥ ६०॥

अश्वगन्धातैलम्।

शतं पक्त्वाश्वगन्धाया जलद्रोणेशशोषितम् । विस्राव्य विपचेत्तैलं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्॥ कल्कैर्मृणालशाकं च बिसकिञ्ज-

ल्कमालतीः । पुष्पैर्द्वीबेरमधुकशारिवापद्मकेसरैः ॥ मेदा पुनर्नवा द्राक्षा मंजिष्ठा बृहतीद्वयम् । एलैलवालुका वरा मुस्तचंदनपद्मकैः ॥ पक्वं रक्ताश्रयं वातं रक्तपित्तमसृग्दरम् । हन्यात्पुष्टिबलं कुर्यात् कृशानां मांसवर्द्धनम् ॥ रेतोयोनिविकारघ्नं व्रणशोषापकर्षणम् । षण्डानापि वृषान् कुर्यात् पानाभ्यङ्गानुवासनैः ६१

भाषा-तिलका तैल ४ सेर, असगंध १२॥ सेर, ६४ सेर जलमें पकावे जब १६ सेर जल बाकी रह जाय तब उतार ले, फिर छानकर क्वाथको ग्रहण करे। दूध १६ सेर, कमलकी नाल, कमलकन्द, कुमुदकी नाल, किंजल्क, मालतीफूल, सुगंधवाला, मुलहठी, अनन्तमूल, कमलकेसर, मेदा, पुनर्नवा, दाख, मजीठ, कटेरी, कटाई, इलायची, एलुआ, त्रिफला, नागरमोथा, लालचंदन और पद्माख इनका कल्क बनाकर मिला देवे । यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे । इस तैलका पान, नस्य और मर्दन करनेसे रक्ताश्रितवात, रक्तपित्त और रक्तप्रदर दूर होता है । पुष्टिकारक, बलवर्द्धक, कृश मनुष्योंके मांसको बढानेवाला, वीर्यविकार और योनिके दोषोंको दूर करे है । व्रणशोषको हरनेवाला यह तैल नपुंसकोंकोभी अत्यन्त कामयुक्त कर देता है ॥ ६१ ॥

कुब्जप्रसारिणीतैलम् ।

प्रसारणीशतं क्षुण्णं पचेत्तोयार्म्मणे शुभे । पादशेषे समं तैलं दधि दद्यात् सकांजिकम् ॥ द्विगुणं च पयो दत्त्वा कल्कान् द्विपलिकांस्तथा । चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं बलाम् ॥ शतपुष्पां देवदारु रास्नां वारणपिप्पलीम्। प्रसारण्याश्च मूलानि मांसीं भल्लातकानि च ॥ पचेन्मृद्वग्निना तैलं वातश्लेष्मामयान् जयेत् । अशीतिं नरनाडीस्थान् वातरोगान् व्यपोहति ॥ कुब्जस्तिमितपंगुत्वं गृध्रसीखुडकार्दितान् । हनुपृष्ठशिरोग्रीवास्तम्भं चाशु नियच्छति ॥ ६२ ॥

भाषा-तिलका तैल १६ सेर, क्वाथके लिये प्रसारणी १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दहीका तोड १६ सेर, कांजी १६ सेर, दूध ३२ सेर, कल्कके लिये चीतेकी जड, पीपलामूल, मुलहठी, सैंधानोन, खिरैटी, सोया, देवदारु, रायसन, गजपीपल, गंधप्रसारन, बालछड और मिलावा प्रत्येक दो दो पल लेवे । सबोंको

मिलाकर यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे । इस तेलको मर्दन करनेसे कुबडापन, पंगुता, गृध्रसीवायु, हनुस्तम्भ और अन्यान्य वातरोग दूर होते हैं ॥ ६२ ॥

मध्यमविष्णुतैलम् ।

शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णी शठी बला । एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च ॥ गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च । एषां द्विपलिकान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ पादशेषे च पूते च गर्भं चैनं समावपेत् । पुनर्नवा वचा दारु शताह्वा चन्दनागरु ॥ शैलेयं तगरं कुष्ठमेला मांसी स्थिरा बला । अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना पलार्द्धानि च पेषयेत् ॥ गव्याजपयसः प्रस्थौ द्वौ द्वावत्र प्रदापयेत् । शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् । अश्वानां वातभग्नानां कुंजराणां तथा नृणाम् ॥ तैलमेतत् प्रयोक्तव्यं सर्ववातविकारनुत् । अपुमांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन पुमान् भवेत् ॥ गर्भमश्वतरी विन्द्यात् किं पुनर्मानुषी तथा ॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलं च तथैवार्द्धावभेदकम् ॥ अपचीं गण्डमालां च वातरक्तं गलग्रहम् । कामलां पाण्डुरोगं च अश्मरीं चैव नाशयेत् ॥ तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्त्तितम् । विष्णुतैलमिदं ख्यातं वातान्तकरणं शुभम् ॥ ६३ ॥

भाषा–कायके लिये सतावर, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कचूर, खिरैटी, अंडकी जड, बृहतीकी जड, कटेरीकी जड, दुर्गंध, करंजकी जड, गवेधुएकी जड, कटसरैयाकी जड प्रत्येक दो दो पल; पाकके लिये जल १ द्रोण, शेष चौथा भाग, कल्कके लिये पुनर्नवा, वच, देवदारु, सोया, चन्दन, अगर, भूरिछरीला, तगर, कूठ, इलायची, बालछड, शालिपर्णी, खिरैटी, असगंध, सैंधानोंन और रास्ना येप्रत्येक दो दो तोले; गायका दूध ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, सतावरकारस २ सेर सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तैलको सिद्ध करे । इस तेलको मर्दन करनेसे सर्वप्रकारके हाथी घोडे और मनुष्योंके वातरोग दूर होते हैं । इसको नपुंसक पीवे तो निश्चय पुंसक हो जाय । इसको पीनेसे खिचरियोंकेभी गर्भ रह जाता है स्त्रियोंकी तो कथाही क्या ? तथा हृदयशूल, पार्श्वशूल, अर्द्धावभेदक, अपची, गण्ड-

माला, वातरक्त, गलग्रह, कामला, पाण्डुरोग और अश्मरीरोग दूर होता है। यह विष्णुतैल विष्णुभगवान्ने निर्माण किया है। यह तैल वातका अन्त करनेवाला है ६३

बृहद्विष्णुतैलम्।

जलधरमश्वगंधा जीवकर्षभकौ शठी। काकोली क्षीरकाकोली जीवन्ती मधुयष्टिका ॥ मधूरिका देवदारु पद्मकाष्ठं च शैलजम्। मांसी चैला त्वचं कुष्ठं वचा चन्दनकुङ्कुमम् ॥ मंजिष्ठा मृगनाभिश्च श्वेतचंदनरेणुकम्। पृश्निपर्णी कुन्दुरुचोटीग्रन्थिकं च नखी तथा ॥ एतेषां पलिकैर्भागैस्तैलस्यापि तथाढकम्। शतावरीरससमं दुग्धं चापि समं पचेत् ॥ विष्णुतैलमिदं श्रेष्ठं सर्ववातविकारनुत्। ऊर्ध्ववातं तथा वातमंगुलिग्रहमेव च ॥ शिरोमध्यगतं वातं मन्यास्तम्भं गलग्रहम्। हन्ति नानाविधं वातं सन्धिमज्जागतं तथा ॥ यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला। ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः ॥ सर्वांस्तान् नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः ॥ ६४ ॥

भाषा-तिलका तेल ८सेर, कल्कके लिये नागरमोथा, असगंध, जीवक, ऋषभक, कचूर, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलहठी, सोंफ, देवदारु, पद्माख, भूरिछरीला, बालछड, इलायची, दालचीनी, कूठ, वच, लाल चंदन, केसर, मजीठ, कस्तूरी, सफेद चंदन, रेणुका, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, सुगवन, मषवन, कुन्दुरु, गठिवन और नखद्रव्य प्रत्येक चार चार तोले; शतावरका रस ९ सेर, दूध ९ सेर सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तेलको सिद्ध करे। यह उत्तम विष्णुतैल सर्व प्रकारके वातरोगोंको दूर करे है तथा ऊर्ध्ववात, अंगुलिग्रह, शिरोगतवायु, मन्यास्तम्भ, गलग्रह नानाप्रकारके वातरोग, सन्धिगतवायु और मज्जागतवायुको दूर करे है जिनका एक अंग सूख गया है जिनकी गति विह्वल हो गई हो उन सब रोगोंको यह दूर करे है सम्पूर्ण वातोत्पन्न रोग और पित्तोत्पन्न रोगोंको यह महाविष्णु तैल निश्चय दूर कर देता है। जिस प्रकार अंधकारको सूर्य्य दूर कर देता है ॥ ६४ ॥

नारायणतैलम्।

बिल्वाग्निमन्थश्योनाकपाटलापारिभद्रकम्। प्रसारण्यश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका ॥ बला चातिबला रास्ना श्वदंष्ट्रा च

पुनर्नवा । एरण्डशारिवौ पर्णी गुडूची कपिकच्छुरा ॥ एषां दशपलान् भागान् क्वाथयेत् सलिलेऽमले । तेन पादावशेषेण तैलपात्रं विपाचयेत् ॥ आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्। शतावरीरसं चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ॥ द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्यामि तच्छृणु । शतपुष्पा देवदारु बला पर्णी वचागरु ॥ कुष्ठं मांसी सैन्धवं च पलमेकं पुनर्नवा । पाने नस्ये तथाभ्यंगे तैलमेतत् प्रदापयेत् ॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलं च गण्डमालां च नाशयेत् । अपस्मारं वातरक्तमायुष्मांश्च पुमान् भवेत् ॥ गर्भमश्वतरी विन्द्यात् किं पुनर्मानुषी तथा । अश्वानां वातभग्नानां कुंजराणां नृणां तथा ॥ तैलमेतत् प्रयोक्तव्यं सर्ववातविकारिणाम् ॥ ६९ ॥

भाषा-तिलका तैल ९ सेर, बेल, अरणी, शोनापाठा, पाढल, फरहद, प्रसारणी, असगंध, बृहती, कटेरी, खिरैंटी, कंघी, रास्ना, गोखरू, पुनर्नवा, अंडकी जड, शारिवा, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, गिलोय, कौंच, प्रत्येक दश २ पल पाकके लिये जल ३२ सेर, शेष ९ सेर, गाय या बकरीका दूध १६ सेर, सतावरका रस ९ सेर, कल्कके लिये सोया, देवदारु, खिरैंटी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, वच, अगर, कूठ, बालछड, सैंधानोन और पुनर्नवा प्रत्येक चार २ तोले लेवे, सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तैलको सिद्ध करे । पान, नस्य और अभ्यंगमें प्रयोग करे । यह तैल हृदयशूल, पार्श्वशूल, गण्डमाला, अपस्मार और वातरक्तको दूर करे है । पुरुषता और आयुको बढावे है । इसको सेवन करनेसे खिचरियोंकेभी गर्भ रह जाता है स्त्रियोंकी तो कथाही क्या ? वातरोगसे पीडित घोडे, हाथी और मनुष्योंको यह तैल सदैव प्रयोग करना चाहिये ॥ ६९ ॥

मध्यमनारायणतैलम् ।

बिल्वाश्वगन्धाबृहतीश्वदंष्ट्राश्योनाकवाट्यालकपारिभद्रम् । क्षुद्राकठिल्लातिबलाग्निमन्थं मूलानि चैषां सरणीयुतानाम् ॥ मूलं विदध्यादथ पाटलीनां प्रस्थं सपादं विधिनोद्धृतानाम् । द्रोणैरप्यमष्टभिरेव पक्त्वा पादावशेषेण रसेन तेन ॥ तैलाढकाभ्यां सममेव दुग्धमाजं निदध्यादथ वापि गव्यम् । एकत्र सम्यग्

विपचेत् सुबुद्धिर्दद्याद्रसं चैव शतावरीणाम् ॥ तैलेन तुल्यं पुनरेव तत्र रास्नाश्वगन्धामिपिदारुकुष्ठम् । पर्णी चतुष्कागुरुकेशराणि सिन्धूत्थमांसी रजनीद्वयं च ॥ शैलेयकं चन्दनपुष्कराणि एलाग्रयष्टीतगराब्दपत्रम् । भृंगाष्टवर्गाम्बुवचापलाशं स्थौणेयवृश्चीरकचोरकाख्यम् ॥ एतैः समस्तैर्द्विपलप्रमाणैरालोड्य सर्वं विधिना विपक्वम् । कर्पूरकाश्मीरमृगाण्डजानां चूर्णीकृतानां द्विपलप्रमाणम् ॥ प्रस्वेददौर्गन्ध्यनिवारणाय दद्यात् सुगंधाय वदन्ति केचित् । नारायणं नाम महच्च तैलं सर्वप्रकारैर्विधिवत् प्रयोज्यम् ॥ आश्वेव पुंसां पवनार्दितानामेकांगहीनार्दितवेपनानाम् । ये पंगवः पीठविसर्पिणश्च बाधिर्यशुक्रक्षयपीडिताश्च ॥ मन्याहनुस्तम्भशिरारुजार्त्ता मुक्तामयास्ते बलवर्णयुक्ताः । संसेव्य तैलं सहसा भवन्ति वन्ध्या च नारी लभते च पुत्रम् ॥ वीरोपमं सर्वगुणोपपन्नं सुमेधसं श्रीविनयान्वितं च । शाखाश्रिते कोष्ठगते च वाते वृद्धौ विधेयं पवनार्दितानाम् ॥ जिह्वानिले दन्तगते च शूले उन्मादकौब्जज्वरकर्पितानाम् । प्राप्नोति लक्ष्मीं प्रमदाप्रियत्वं वपुःप्रकर्षं विजयं च नित्यम् ॥ तैलोपसेवी जरयाभिमुक्तो जीवेच्चिरं चापि भवेयुरेव । देवासुरे युद्धपरे समीक्ष्य स्नाय्वस्थिभंगानसुरैः सुरांश्च ॥ नारायणेनापि सुबृंहणार्थं स्वनामतैलं विहितं च तेषाम् ॥ ६६ ॥

भाषा–बेल, असगंध, कटाई, गोखरू, शोनापाठा, खिरैटी, फरहद, कटेरी, पुनर्नवा, कंघी, अरणी, पसारन और पाढलकी जड, अस्सी अस्सी तोले लेकर आठ द्रोण जलमें पकावे जब दो द्रोण शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे, पश्चात् इस काढेमें ५१२ तोले गाय या बकरीका दूध और ५१२ तोले शतावरका रस, तिलका तेल ५१२ तोले तथा रास्ना, असगंध, सौंफ, देवदारु, कूठ, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, अगर, नागकेशर, सैंधानोन, बालछड, हलदी, दारुहलदी, भूरिछरीला, लालचंदन, पोहकरमूल, इलायची, मुलहठी, तगर, नागर-

मोथा, तेजपात, दालचीनी, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, सुगंधवाला, वच, कचूर, विषखपरा, थुनेर और चोरक (नेपालदेशीय-भटेउर) यह प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले लेकर सबोंको पीसकर मिला देवे, फिर तैलको विधिपूर्वक पकावे । इस तैलको महानारायण तैल कहते हैं । पश्चात् कितनेक वैद्य इसमें कचूर, कस्तूरी और केशर ये प्रत्येक औषधि आठ आठ तोले सुगंधिके लिये और कितनेक वैद्य प्रस्वेद और दुर्गंध दूर करनेके लिये डालते हैं । यह महानारायणतैल वातरोग, एकांगशोष, अर्दितरोग और कम्पादिरोगोंको दूर करे है तथा पंगुरोगी जो मनुष्य पीठसे खिचडते हैं, बधिरता रोगवाले, जो मनुष्य वीर्यके क्षयसे पीडित हैं, मन्यास्तम्भ, हनुस्तंभ और शिरोरोगी मनुष्योंको यह नारायण तेल परम हितकारी है । बल तथा वर्णको बढानेवाला है इस तेलको सेवन करनेसे वंध्या स्त्रीभी देवोंकी समान सुन्दर सर्वगुणसम्पन्न महाबुद्धिमान् और विजयलक्ष्मीको पानेवाला पुत्र उत्पन्न करती है । यह तैल शाखागतवात, कोष्ठगतवात, वातवृद्धि, जिह्वागत वात, दंतगतशूल और वातरोगोंको दूर करे है । उन्माद, कुब्जवात और ज्वरसे व्याकुलमनुष्योंको यह तैल महोपकारी है । इसको वैद्य सर्व प्रकारके वातरोगोंमें देवे, जो इस तैलको सदैव सेवन करते हैं उनके लक्ष्मी और विजयकी प्राप्ति होती है, वृद्धता नहीं आती और वह मनुष्य बहुत कालतक जीता रहता है । पूर्वकालमें देवता और असुरोंका परस्पर युद्ध हुआ था उस समय असुरोंने देवताओंकी हड्डी, स्नायु और संधि आदि तोड डाली तब श्रीनारायणने देवताओंकी पुष्टिके अर्थ निज नामसे प्रसिद्ध नारायण तैल निर्म्माण किया है ॥ ६६ ॥

महानारायणतैलम् ।

शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णी शठी वचा । एरण्डस्य च मूलानि बृहत्याः पूतिकस्य च ॥ गवेधुकस्य मूलानि बृहत्याः पूतिकस्य च । एषां दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ पादावशेषे पूते च गर्भं चैनं निधापयेत् । पुनर्नवा वचा दारु शताह्वा चन्दनागरु ॥ शैलेयं तगरं कुष्ठमेला मांसी स्थिरा बला । अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना पलार्द्धानि च योजयेत् ॥ गव्याजपयसोः प्रस्थौ द्वौ द्वावत्र प्रदापयेत् । शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ अस्य तैलस्य पक्वस्य शृणु वीर्यमतः परम् ।

अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां नृणां तथा ॥ तैलमेतत् प्रयोक्तव्यं सर्ववातनिवारणम्। आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत् ॥ गर्भमश्वतरी विन्द्यात् किं पुनर्मानुषी तथा। हृच्छूलं पार्श्वशूलं च तथैवार्द्धावभेदकम् ॥ अपचीं गण्डमालां च वातरक्तं हनुग्रहम्। कामलां पाण्डुरोगं च अश्मरीं च विनाशयेत् ॥ तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्त्तितम्। नारायणमिदं ख्यातं वातान्तकरणं मतम् ॥ ६७ ॥

भाषा–क्वाथके लिये सतावर, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कचूर, वच, अंडकी जड, बृहती, पूतिकरंजकी जड, गरहेडुयेकी जड, कटेरीकी जड, दुर्गंध खैरकी जड, प्रत्येक दश २ पल; जल ३२ सेर, शेष ९ सेर, कल्कके लिये पुनर्नवा, वच, देवदारु, सोया, चन्दन, अगर, भूरिछरीला, तगर, कूठ, इलायची, बालछड, सलवन, खिरैंटी, असगंध, सेंधानोन और रायसन प्रत्येक दो दो तोले लेवे; गायका दूध ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, सतावरका रस २ सेर, तिलका तैल २ सेर, सबको मिलाकर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे। यह महानारायण तैल वातरोगसे पीडित घोडे, हाथी और मनुष्योंके सर्व प्रकारके वातरोगोंको दूर करे है। इसको मनुष्य पीनेसे दृढशरीर होते हैं। इसको सेवन करनेसे खिचरियोंकोभी गर्भ रह जाता है तो स्त्रियोंको तो कहना क्या? यह तैल हृदयशूल, पार्श्वशूल, अर्द्धावभेदक, अपची, गण्डमाला, वातरक्त, हनुग्रह, कामला, पाण्डुरोग और पथरीको दूर करे है। यह महानारायणतैल भगवान् श्रीकृष्णनारायणने निर्म्माण किया है और सर्व प्रकारके वातरोगोंको दूर करे है ॥ ६७ ॥

सिद्धार्थकतैलम्।

शतावरीं तु निष्पीड्य रसं प्रस्थद्वयं हरेत्। तिलतैलं पचेत् प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं बला। चन्दनं तगरं काष्ठमेला चांशुमती तथा ॥ रास्ना तुरगगन्धा च समंगा शारिवाद्वयम्। पृश्निपर्णी वचा चैव तथा गन्धर्वहस्तकम् ॥ सिन्धूद्भवं समं दद्यात् विश्वभेषजमेव च। एभिस्तैलं पचेद्धीमान् दत्त्वार्द्रकरसं समम् ॥ कुब्जेन वामना ये च पंगुपादाश्च ये नराः। महावातेन ये भग्ना अंगसंकुचिताश्च

ये॥ तेषां हितमिदं तैलं सन्धिवाते च शस्यते । येषां शुष्यति चैकांगं गतिर्येषां च विह्वला ॥ क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा जरया जर्जरीकृताः । अमेधसश्च बधिरास्तेषामपि परं हितम् ॥ मासमेकं पिबेद्यस्तु यौवनस्थः पुनर्भवेत् । सिद्धार्थकमिति ख्यातं नरनारीहिताय वै ॥ ६८ ॥

भाषा–तिलका तेल २ सेर, सतावरका रस ४ सेर, दूध ९ सेर और अदरखका रस २ सेर, कल्कके लिये सोया, देवदारु, वालछड, भूरिछरीला, खिरैटी, लालचंदन, तगर, कूठ, इलायची, शालिपर्णी रायसन, असगंध, वराहकान्ता, कालीसर, नौरीसर, पिठवन, वच, अंडकी जड, सैंधानोन और सोंठ ये आधसेर सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तेलको सिद्ध करे। इस तेलको मर्दन करनेसे कुब्जता, पंगुता, महावात, अंगसंकुचित, संधिवात और एकांगशोष आदि नानाप्रकारके रोग दूर होते हैं। यह सिद्धार्थक तैल क्षीणेन्द्रिय, क्षीणवीर्य, जिनका शरीर जरासे जर्जर हो गया है, अमेध और बहरे मनुष्योंको अत्यन्त हितकारी है। इसको एक महिने सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्यभी फिरसे युवा अवस्थाको प्राप्त होते हैं। यह पुरुष और स्त्रियोंके हितके लिये कहा है ॥ ६८ ॥

हिमसागरतैलम् ।

शतावरीरसप्रस्थे विदार्य्याः स्वरसे तथा । कूष्माण्डकरसप्रस्थे धान्याश्च स्वरसे तथा ॥ शाल्मल्याः स्वरसप्रस्थे तथा गोक्षुरकस्य च । नारिकेलरसप्रस्थे तिलतैलस्य प्रस्थतः ॥ कदल्याः स्वरसप्रस्थे क्षीरप्रस्थचतुष्टये । अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ चंदनं तगरं वाप्यं मंजिष्ठा सरलागरू । मांसी मुरा च शैलेयं यष्टिदारुनखी शिवा ॥ पूतिका पीतिकापत्रं कुन्दुरुर्नलिका तथा । वरी लोध्रं तथा मुस्तं त्वगेला पत्रकेशरम् ॥ लवङ्गं जातिकोषं च तथा मधुरिका शठी । चन्दनं ग्रन्थिपर्णं च कर्पूरं लाभतः क्षिपेत् ॥ अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् । उच्चैः प्रपततो वायोर्गजतो वाजिनस्तथा ॥ उद्भूतो लोष्टपाताच्च पंगूनां पीठसर्पिणाम् । एकांगशोषिणां

चैव तथा सर्वांगशोषिणाम् ॥ क्षतानां क्षीणशुक्राणामत्यन्तक्षयरोगिणाम् । हनुमन्याहतानां च दुर्बलानां तथैव च ॥ शोषिणां लम्बजिह्वानां तथा मिम्मिणभाषिणाम् । अत्यन्तदाहयुक्तानां क्षीणानां वातरोगिणाम् ॥ एतत्तैलवरं श्रेष्ठं विष्णुना परिकीर्त्तितम् । हिमसागरमाख्यातं सर्ववातविकारनुत् ॥ ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः । शिरोमध्यगता ये च शाखामाश्रित्य ये स्थिताः ॥ ते सर्वे प्रशमं यान्ति तैलस्यास्य प्रसादतः ६९

भाषा–सतावरका रस २ सेर, विदारीकंदका रस २ सेर, पेठेका रस २ सेर, आमलोंका रस २ सेर, सेमलकी जडका रस २ सेर, गोखरूका रस २ सेर, नारियलका जल २ सेर, केलेकी जडका स्वरस २ सेर, दूध ८ सेर, तिलका तेल २ सेर, कल्कके लिये लालचंदन, तगर, कूठ, मजीठ, धूप, सरल, अगर, बालछड, भूरिछरीला, मुलहटी, देवदारु, नखद्रव्य, हरड, खट्वाशी, असवर, कुन्दुरु, नलिका, सतावर, लोध, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग, जायफल, सौंफ, कचूर, चन्दन, गठिवन और कपूर प्रत्येक एक एक तोला लेकर पीसकर मिला देवे, सबोंको मिलाकर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे । यह तैल ऊंचेसे गिरनेसे उत्पन्न हुई हाथी, घोडे और ऊंटोंकी पीडाको तथा मनुष्योंकी पीडाको दूर करे है, पंगुमनुष्योंको जो मनुष्य पीठसे खिचडते हैं उनके लिये, एकांगशोषी, सर्वांगशोषी, क्षतरोगी, क्षीणवीर्यवाले मनुष्य, अत्यन्त क्षयरोगी, हनुस्तम्भरोगी, मन्यास्तम्भरोगी, दुर्बल मनुष्य, शोषरोगी, लम्बजिह्वरोगी, मिम्मिणरोगी, अत्यन्त दाहवाले रोगी, वातरोगसे क्षीण मनुष्य उन सबोंको यह अत्यन्त उत्तम तैल विष्णुभगवान्ने कहा है। इसको हिमसागर तैल कहते हैं। यह सर्वप्रकारके वातरोग और सर्व प्रकारके पित्तरोगोंको दूर करे है । तथा शिरोगत वायु और शाखागत वायु आदि सम्पूर्ण वातके विकारोंको यह हिमसागरतैल दूर कर देता है ॥ ६९ ॥

वायुच्छायासुरेन्द्रतैलम् ।

वाट्यालकं पलशतं तत् समं दशमूलकम् । जलषोडशिके पक्त्वा पादशेषं समुद्धरेत् ॥ एतत्क्काथे पचेत्तैलं द्वात्रिंशत् पलमेव च । कल्कार्थं दीयते तत्र मंजिष्ठा रक्तचंदनम् ॥ कुष्ठमेला देवदारु शैलजं सैन्धवं वचा । कङ्कोलं पद्मकाष्ठं च शृंगी तगरपादिका ॥ गुडूची मुद्गपर्णी च माषपर्णी शतावरी । नाग-

जिह्वा श्यामलता शतपुष्पापुनर्नवा ॥ एषां तोलद्वयं भागं दत्त्वा तैलं तु पाचयेत् । एतत्तैलवरं नाम्ना वायुच्छायासुरेन्द्रकम् ॥ सर्ववातविकारेषु हितं पुंसां च योषिताम् । क्षीणशुक्रार्त्तवानां च नारीणां च विशेषतः ॥ रेतोविकारं हन्त्याशु वायुमाक्षेपसंभवम् । मर्मवातं श्रमकृतं गात्रकम्पादिकं तथा ॥ हिक्कां श्वासं च कासं च वातपित्तसमुद्भवम् । अपस्मारे महोन्मादे हितं लेपे च भक्षणे ॥ श्रीमद्गहननाथेन रचितं विश्वसंपदे ॥ ७० ॥

भाषा–तिलका तेल २ सेर, क्वाथके लिये खिरेटीकी जड १०० पल, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, दशमूल १०० पल, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, कल्कके लिये मजीठ, लालचंदन, कूठ, इलायची, देवदारु, भूरिछरीला, सेंधानोन, वच, काकोली, पद्माख, कांकडाशिंगी, तगर, गिलोय, सुगवन, मषवन, सतावर, कालीसर, गौरीसर, सोया और पुनर्नवा प्रत्येक दो दो तोले लेवे । सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तेलको पकावे, यह वायुच्छायासुरेन्द्रतैल सर्व प्रकारके वातरोगवाले स्त्री और पुरुषोंको हितकारी है तथा क्षीणवीर्यवाले पुरुष और क्षीणआर्त्तववाली स्त्रियोंको अत्यन्त हितकारी है । तथा वीर्यविकार, आक्षेपवायु, मर्म्मवायु, श्रमकृतवायु, गात्रकम्पादिवात, वातपित्तोत्पन्न हिचकी, श्वास, खांसी, अपस्मार, महोन्माद इत्यादि रोग इसके मालिस करनेसे या पीनेसे दूर होते हैं । यह श्रीमान् गहनानन्दनाथने संसारके उपकारके लिये निर्म्माण किया है ॥ ७० ॥

महाबलातैलम् ।

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च । यवकोलकुलत्थानां क्वाथस्य पयसस्तथा ॥ अष्टावष्टौ शुभा भागास्तैलादेकस्तदेकतः। पचेदारोप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ तथागरु सर्जरसं सरलं देवदारु च। मंजिष्ठा चंदनं कुष्ठमेलां कालानुसारकम् ॥ मांसी शैलेयकं पत्रं तगरं शारिवां वचाम् । शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ तत्साधु सिद्धं सौवर्णे राजते मृण्मयेऽपि च। प्रक्षिप्य कलशे सम्यक् आत्मगुप्तां निधापयेत् ॥ बलातैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् । यथाबलमतो मात्रां सूतिकायै प्रदापयेत् ॥ या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ।

क्षीणधातौ मर्म्मभृतेऽभिहते मथितेऽथ वा ॥ भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयोजयेत् । सर्वानाक्षेपकादींश्च वातव्याधीन् व्यपोहति ॥ हिक्कां कासमधीमन्थं गुल्मं श्वासं सुदुस्तरम् । षण्मासानुपयुज्यैतदन्त्रवृद्धिमपोहति ॥ प्रत्यग्रधातुः पुरुषो भवेच्च स्थिरयौवनः । एतद्धि राज्ञा कर्त्तव्यं राजपुत्राश्च ये नराः ॥ सुखिनः सुकुमाराश्च बलिनश्चैव ये नराः ॥ ७१ ॥

भाषा–तिलका तेल २ सेर, खिरेटीके जडका काथ १६ सेर, दशमूलका काथ १६ सेर, जौ, बेर और कुलथीका काथ १६ सेर, दूध १६ सेर, कल्कके लिये जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, जीवन्ती, मुलहठी, सैंधानोन, अगर, सफेद राल, धूप सरल, देवदारु, मजीठ, लाल चंदन, कूठ, इलायची, पीला चंदन, बालछड, भूरिछरीला, तेजपात, तगर, अनन्तमूल, वच, शतावर, असगंध, सोया, पुनर्नवा ये सब समान भाग और सब १ सेर लेवे सबोंको मिलाकर यथाविधिसे सुवर्ण चांदी अथवा मट्टीके बासनमें सिद्ध करे। यह बलातैल सर्व प्रकारके वातविकारोंको दूर करे है। बलाबलको विचार मात्राका निश्चयकर सूतिका रोगमें इसको देवे। यह गर्भकी इच्छा करनेवाली स्त्रियोंको और क्षीणवीर्यवाले मनुष्योंको अत्यन्त हितकारी है तथा क्षीणधातु, मर्म्मभृत, रोगी मग्नरोगी, श्रमयुक्त, सर्व प्रकारके आक्षेपकादि रोग, हिक्का, खांसी, अधिमन्थ, गुल्म, दुस्तर श्वास और छः महिने सेवन करनेसे अन्त्रवृद्धिरोगभी दूर हो जाता है। भिन्न धातुवाले मनुष्यभी इसको सेवन करनेसे स्थिरयौवनयुक्त हो जाते हैं। यह तेल राजपुत्रोंके सेवने योग्य है तथा सर्व प्रकारके वातके रोगोंको दूर करे है ॥ ७१ ॥

पुष्पराजप्रसारिणीतैलम् ।

प्रसारणीपलशतं मूलं चैवाश्वगंधजम् । पंचाशत् पलमानं तु जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ पादशेषे हरेत् काथं काथांशं तिलतैलकम् । तैलाच्चतुर्गुणं क्षीरं गव्यं वा माहिषं तथा ॥ पुण्डरीकरसस्तत्र शतावर्या रसस्तथा । तैलसमः प्रदातव्यः पाचयेन्मृदुवह्निना ॥ शतपुष्पा कणा चैला कुष्ठं च कण्टकारिका । शुण्ठी यष्टी देवदारु शालिपर्णी पुनर्नवा ॥ मंजिष्ठा पत्रकं रास्ना वचा पुष्करमूलकम् । यवानी भूतिकं मांसी निर्गुण्डी च तथा

बला ॥ वह्निगोक्षुरकं चैव मृणालं बहुपुत्रिका । प्रतिकर्षमिदं योज्यं सर्वमेकत्र पाचयेत् ॥ तैलशेषं समुद्धृत्य पुष्पराजप्रसारिणीम् । अभ्यङ्गे योजयेत् पाने नस्यकर्मणि सर्वदा ॥ भग्नानां खञ्जपंगूनां शिरोरोगे हनुग्रहे । समस्तान् वातजान् रोगान् तूर्णं नाशयति ध्रुवम् ॥ ७२ ॥

भाषा–तिलका तैल २ सेर, क्वाथके लिये सुगंधप्रसरन १०० पल, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, असगंध ५० पल, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, गाय या भैंसका दूध ८ सेर, सफेद कमलका स्वरस २ सेर, शतावरका स्वरस २ सेर, कल्कके लिये सोया, पीपल, इलायची, कूठ, कटेरी, सोंठ, मुलहठी, देवदारु, शालिपर्णी, पुनर्नवा, मजीठ, तेजपात, रायसन, वच, पोहकरमूल, अजवायन, सुगंधतृण, बालछड, निर्गुण्डी, खिरैटी, चीता, गोखरू, कमलकी नाल और शतावर प्रत्येक दो दो तोले सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तैलको पकावे, जब केवल तैल शेष रह जाय उतार ले। इसको पुष्पराजप्रसारिणीतैल कहते हैं। इसको अभ्यंग (मालिस), पान और नस्यकर्ममें सदैव प्रयोग करे। यह तैल भग्नरोगी, खंजरोगी, पंगुरोगी, हनुग्रहरोगी और अन्यान्य समस्त रोगोंको यह तैल निश्चय दूर कर देता है॥ ७२॥

महाकुक्कुटमांसतैलम् ।

मांसस्यार्द्धाढकं देयं दशमूल्यास्तुलार्द्धकम् । बलामूलं च तस्यार्द्धं केतकीनां तथैव च ॥ दक्षमांसपलत्रिंशत् झिंटिका पंचविंशतिः । जलद्रोणद्वये पक्त्वा पादशेषेऽवतारिते ॥ तिलतैलस्य च प्रस्थं पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् । जीवनीयानि यान्यष्टौ मंजिष्ठा चव्यकट्फलम् ॥ व्योषं रास्ना कणामूलं मधुकं पुष्करं तथा । माषात्मगुप्ता सैरण्डा शताह्वा लवणत्रयम् ॥ कृष्णाश्वगन्धा ह्यमृता यवानीन्द्रवरी शठी । नागरं मागधी मुस्तं वर्षाभू रजनीद्वयम् ॥ शतावरीबृहत्यौ च एतैरक्षसमन्वितैः । पक्षाघातेषु सर्वेषु अर्दिते च हनुग्रहे ॥ मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे । हस्तकम्पे शिरःकम्पे गात्रकम्पे शिरोग्रहे ॥ शस्तं कलायखञ्जे च गृध्रस्यामपबाहुके । बाधिर्ये कर्णनादे च सर्ववात-

विकारनुत् ॥ दण्डापतानके चैव मन्यास्तम्भे विशेषतः । हनुस्तम्भे प्रशस्तं स्यात्सूतिकाशङ्कनाशनम् ॥ त्वच्यं मांसप्रदं चैव शुक्राग्निबलवर्द्धनम् । अण्डवृद्धयन्त्रवृद्धिं वा वातरक्तं च नाशयेत् ॥ ७३ ॥

भाषा-तिलका तैल २ सेर, क्वाथके लिये उडद २ सेर, दशमूल ३ सेर, खिरैटीकी जड २५ पल, केतकीकी जड २५ पल, मुरगेका मांस ३० पल, पियाबांसेकी जड २५ पल, पाकके लिये जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, कल्कके लिये जीवकादि अष्टवर्ग, मजीठ, चव्य, कायफल, त्रिकुटा, रास्ना, पीपलामूल, मुलहठी, कूठ, उडद, कौंचके बीज, अंडकी जड, सोया, बिडनोन, सेंधानोन, काला नोन, काला जीरा, असगंध, गिलोय, अजवायन, इन्द्रजौ, शतावर, कचूर, सोंठ, पीपल, नागरमोथा, पुनर्नवा, हलदी, दारुहलदी, शतावर, कटाई और कटेरी प्रत्येक दो दो तोले सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तैलको सिद्ध करे। इस तैलको मर्दन करनेसे पक्षाघात, अर्दित, हनुग्रह, श्रवणशक्तिका नाश, दृष्टिका नाश, हस्तकम्प, शिरःकंप, गात्रकंप, शिरोग्रह, कलायखंज, गृध्रसी, अपबाहुक, बधिरता, कर्णनाद, सर्व प्रकारके वातविकार, दण्डापतानक, मन्यास्तम्भ, हनुस्तम्भ, सूतिकारोग, अंडवृद्धि, अन्त्रवृद्धि और वातरक्तरोग दूर होते हैं। त्वचाको हितकारी, मांसवर्द्धक तथा शुक्र, अग्नि और अग्निको बढानेवाला है ॥ ७३ ॥

नकुलतैलम् ।

मधुकं जीरकं रास्ना सैन्धवं शतपुष्पिका । यवानी मरिचं कुष्ठं विडंगं गजपिप्पली ॥ सौवर्चलं चाजमोदा बला षड्ग्रन्थिका तथा । ग्रन्थिकं शैलजं मांसी कर्षांशेषां पृथक् पृथक् ॥ विनीय पाचयेत्तैलं प्रस्थं रुबुसमुद्भवम् । प्रस्थे नकुलमांसस्य क्वाथे च दशमूलजे ॥ प्रस्थे तु कांजिकस्यापि मस्तुप्रस्थे तथैव च । सिद्धं तैलमिदं हन्ति कंपवातं सुदारुणम् ॥ हस्तकम्पं शिरःकम्पं बाहुकम्पं च नाशयेत् । आमवातं सशूलं च सर्वोपद्रवसंयुतम् ॥ पानाभ्यंजनबस्तीभिर्नाशयेन्नात्र संशयः । आढ्यवातं कटीपृष्ठजानुजंघाश्रितं तथा ॥ सन्धिस्थं वातमाश्वेव जयेन्नकुलसंज्ञकम् । हारीतभाषितमिदं तैलं हितचिकीर्षया ॥ वैद्यानां सारभूतानां

शतेनापि समुज्झिकम्। वातव्याधिं निहन्त्याशु कंपवातं विशेषतः॥ अशीतिर्वातजान् रोगान् नाशयेदाशु देहिनाम्॥ ७४॥

भाषा–नकुल (नौले)का मांस १ सेर,जल ८ सेर, शेष २ सेर,दशमूल १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, कांजी २ सेर, दहीका तोड २ सेर, अंडीका तैल २ सेर, कल्कके लिये मुलहठी, जीरा, रायसन, सैंधानोन, सोया, अजवायन, काली मिरच, कूठ, वायविडंग, गजपीपल, काला नोन, अजमोद, खिरेंटी, वच, गठिवन, भूरिछरीला और बालछड प्रत्येक दो दो तोले, सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तैलको सिद्ध करे। यह नकुलतैल दारुण कम्पवात, हस्तकम्प, शिरःकम्प, बाहुकम्प, शूलयुक्त आमवात इन रोगोंको दूर करे है। इसको पान, अभ्यंजन और बस्तिकर्ममें प्रयोग करे। यह तैल आढचवात, कटीवात, पृष्ठवायु, जानुगत वायु, जंघाश्रित वात और संधिस्थवात तथा अन्यान्यरोगोंको दूर करे है। यह तैल हारीतमुनिने कहा है। सैकडों बडे बडे वैद्योंने इसको अजमाकर देखा है कि यह तैल विशेष करके कम्पवातको दूर करे है और अस्सी प्रकारके वातरोगोंको दूर करे है॥ ७४॥

माषतैलम्।

माषातसीयवकुरुण्टककंटकारीगोकंटटुंटुकजटाकपिकच्छुतोयैः। कार्पासकास्थिशणबीजकुलत्थकोलकाथेन मस्तुपिशितस्य रसेन चापि॥ शुण्ठ्या समागधिकया शतपुष्पया च सैरण्डमूलसपुनर्नवया सरण्या। रास्नाबलामृतलताकटुकैर्विपक्वं माषाख्यमेतदपबाहुहरं च तैलम्॥ अर्द्धाङ्गशोषमपतानकमाढ्यवातमाक्षेपकं सभुजशिरःप्रकम्पनम्। नस्येन बस्तिविधिना परिषेचनेन हन्यात् कटीजघनजानुरुजः समीरात्॥७५॥

भाषा–तिलका तेल २ सेर,क्वाथके लिये उडद, अलसी, जौ, पियाबांसेकी जड, कटेरी, गोखरू, सोनापाटा, बालछड और कौंचके बीज प्रत्येक आठ आठ पल, पाकके लिये जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, कपासके बीज, सनके बीज, कुलथी और बेर प्रत्येक ९ पल, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, बकरीका मांस ४ सेर, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, कल्कके लिये सोंठ, पीपल, सोया, अंडकी जड, पुनर्नवा, प्रसारिणी, रास्ना, खिरेंटी, गिलोय और कुटकी ये सब समानभाग और सब १ सेर सबोंको मिलाकर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे। यह तैल अपबाहुक, अर्द्धांगशोष, अपतानक, आढचवात, आक्षेपक, भुजकम्प, शिरःकम्प, कटीगत वायु, जघनगत वायु,

और जानुगत वायुको दूर करे है। इसका नस्य, बस्ति और अभ्यंग कर्ममें प्रयोग करे ॥ ७५ ॥

लघुमाषतैलम् ।

माषप्रस्थं समावाप्य पचेत् सम्यग् जलाढके । पादशेषे रसे तस्मिन् क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ प्रस्थं च तिलतैलस्य कल्कं दत्त्वाक्षसंमितम् । जीवनीयानि यान्यष्टौ शतपुष्पां ससैन्धवाम् ॥ रास्नात्मगुप्ता मधुकं बला व्योषत्रिकंटकम् । पक्षाघातेर्दिते वाते कर्णशूले च दारुणे ॥ मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे । हस्तकम्पे शिरःकम्पे विषूच्यामपबाहुके ॥ शस्तं कलायखंजे च पानाभ्यंजनबस्तिभिः । माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ७६ ॥

भाषा–तिलका तेल २ सेर, काथके लिये उडद १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, दूध ८ सेर, कल्कके लिये जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, सोया, सैंधानोन, रास्ना, कौंचके बीज, मुलहठी, खिरेटी, त्रिकुटा और गोखरू प्रत्येक एक एक तोला लेवें, सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तैलको सिद्ध करे। इस तैलको मर्दन करनेसे पक्षाघात, अर्दित, कर्णशूल, श्रवणशक्तिका नाश, हस्तकम्प, शिरःकम्प, विषूचिका, अपबाहुक, कलायखंज और अर्द्धजत्रुरोग दूर होते हैं। इसको लघुमाषतैल कहते हैं। इसका पान, अभ्यंजन और बस्तिकर्ममें प्रयोग किया जाता है ॥ ७६ ॥

बृहन्माषतैलम् ।

माषक्वाथे बलाक्वाथे रास्नाया दशमूलजे । यवकोलकुलत्थानां छागमांसं भवेत् पृथक् ॥ प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् । रास्नात्मगुप्तासिन्धूत्थशताह्वैरण्डमुस्तकैः ॥ जीवनीयबलाव्योषैः पचेदक्षसमैर्भिषक् । हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाहुशोषेऽपबाहुके ॥ बाधिर्ये कर्णशूले च कर्णनादे च दारुणे । विश्वाच्यामर्दिते कुब्जे गृध्रस्यामपतानके ॥ बस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावने च प्रयोजयेत् । माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ क्वाथप्रस्थाः षडेवात्र विभक्तव्यन्तेन दर्शिताः ॥ ७७ ॥

भाषा-काथके लिये उडद १ सेर,पाकके लिये तैल ८ सेर, शेष २ सेर; खिरैटी-की जड १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर; रास्ना १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर; दशमूल १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर; जव, बेर और कुलथी १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर; बकरेका मांस १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, दूध ८ सेर, कल्कके लिये रायसन, कौंचके बीज, सैंधानोन, सोया, अंडकी जड, नागरमोथा, जीवनीय वर्ग, खिरैंटी और त्रिकुटा प्रत्येक एक एक तोला लेवे । यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे। यह तैल बस्ति,नस्य,पान और मर्दन करनेसे हस्तकम्प,शिरःकम्प,बाहुशोष, अपबाहुक, बाधिरता, कर्णशूल, कर्णनाद, अर्दित, कुब्जकवायु, गृध्रसी, अपतानक इत्यादि रोगोंको दूर करे है । यह माषतैल ऊर्ध्वजत्रुरोगोंको हरनेवाला है ॥ ७७ ॥

महामाषतैलम् ।

माषस्यार्द्धाढकं दत्त्वा तुलार्द्धं दशमूलतः । पलानि छागमांसस्य त्रिंशद्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ पूतशीते कषाये च चतुर्थांशावशेषिते । प्रस्थं च तिलतैलस्य पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ आत्मगुप्ता रुबूकश्च शताह्वा लवणत्रयम्। जीवनीयानि मंजिष्ठा चव्यचित्रककट्फलम्॥ सव्योषं पिप्पलीमूलं रास्ना मधुकसैन्धवम् । देवदार्वमृता कुष्ठं वाजिगंधा वचा शठी॥ एतैरक्षसमैर्भागैः साधयेन्मृदुनाग्निना । पक्षाघातेर्दिते वाते बाधिर्ये हनुसंग्रहे ॥ कर्णमन्याशिरःशूले तिमिरे च त्रिदोषजे । पाणिपादशिरोग्रीवाभ्रमणे मंदसंक्रमे ॥ कलायखञ्जे पांगुल्ये गृध्रस्यामपबाहुके । पाने बस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ॥ तैलमेतत् प्रशंसन्ति सर्ववातरुजापहम् ॥ ७८ ॥

भाषा-तिलका तेल २ सेर, क्वाथके लिये कपडेकी पोटलीमें बंधे हुए उडद २ सेर, दशमूल ३ सेर, कपडा बंधा हुआ बकरेका मांस ३० पल इन सब पदार्थोंको ३२ सेर जलमें पकावे। जब ८ सेर बाकी रह जाय तब उतार ले। दूध ८ सेर, कल्कके लिये कौंच, अंडकी जड, सोया, सैंधानोन, विरियासंचरनोन, सामरनोन, जीवनीयदशक, मजीठ, चव्य, चीतेकी जड, कायफल, त्रिकुटा, पीपरामूल, रायसन, मुलहठी, सैंधानोन, देवदारु, गिलोय, कूठ, असगंध, वच और कचूर प्रत्येक एक एक तोला लेवे। सबोंको यथाविधिसे मिलाकर मंद मंद अग्निसे पकावे । यह तैल पक्षाघात, अर्दितवात,

बधिरता, हनुग्रह, कर्णशूल, मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, त्रिदोषज, तिमिररोग, हाथ, पांव, शिर और गरदनका हिलना, कलायखंज, पंगुता, गृध्रसीवायु, अपबाहुक तथा अन्यान्य सर्व प्रकारके वातरोगोंको दूर करे है। इसका पान, बस्ति, अभ्यंग, नस्य कर्ण और अक्षिपूरकर्ममें प्रयोग करे ॥ ७८ ॥

निरामिषमहामाषतैलम् ।

दशमूलाढकं पक्त्वा जलद्रोणेऽग्निशोषिते । तद्वन्माषाढकक्काथे तैलप्रस्थं पयःसमे ॥ कल्केरेतैश्च मतिमान् साधयेन्मृदुनाग्निना । अश्वगन्धा शटी दारु बला रास्ना प्रसारिणी ॥ कुष्ठं परूषकं भार्ङ्गी द्वे विदार्यौ पुनर्नवा । मातुलुंगफलाजाज्योरामठं शतपुष्पिका॥ शतावरी गोक्षुरकं पिप्पलीमूलचित्रकौ । जीवनीयगणं सर्वं संहृत्यैव ससैन्धवम् ॥ तत्साधु सिद्धं विज्ञाय माषतैलमिदं महत् । बस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावनेषु प्रशस्यते ॥ पक्षाघाते हनुस्तम्भे अर्दिते सापतन्त्रके । अपबाहुकविश्वाच्योः खाञ्ज्यपांगुल्ययोरपि ॥ शिरोमन्याग्रहे चैव अधिमन्थे च वातिके । शुक्रक्षये कर्णनादे कर्णक्ष्वेडे च दारुणे ॥ कलायखञ्जशमने भैषज्यमिदमादिशेत् ॥ ७९ ॥

भाषा-तिलका तेल २ सेर, क्वाथके लिये दशमूल ४ सेर, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, उडद ४ सेर, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, दूध ८ सेर, कल्कके लिये असगंध, कचूर, देवदारु, खिरैंटी, रायसन, गंधप्रसारिणी, कूठ, फालसा, भारंगी, विदारीकंद, क्षीरविदारी, पुनर्नवा, बिजोरा नीबू, जीरा, काला जीरा, हींग, सोया, शतावर, गोखरू, पीपलामूल, चीतेकी जड, जीवनीय दशक और सैंधानोन ये सब आधसेर सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तैलको सिद्ध करे । इसको महामाषतैल कहते हैं । इसका बस्ति, अभ्यंजन, पान और नस्यकर्ममें प्रयोग करे। यह तैल पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अर्दित, अपतंत्रक, अपबाहुक, विश्वाची, खंजता, पंगुता, शिरोग्रह, मन्याग्रह, अधिमंथ, वातिक शुक्रक्षय, कर्णनाद, कर्णक्ष्वेड और कलायखंज आदि रोगोंको दूर करे है ॥ ७९ ॥

सप्तशतिकप्रसारिणीतैलम् ।

समूलपत्रमुत्पाट्य शरत्काले प्रसारिणीम् । शतं ग्राह्यं सहचरात् शतावर्याः शतं तथा ॥ बलात्मगुप्ताश्वगन्धाकेतकीनां

शतं शतम् । पचेच्चतुर्गुणे तोये द्रवैस्तैलाढकं भिषक् ॥ मस्तु मांसरसं चुक्रं पयश्चाढकमाढकम् । दध्याढकसमायुक्तं पाचये-न्मृदुनाग्निना ॥ द्रव्याणां तु प्रदातव्या मात्रा चार्द्धपलांशिका । तगरं मदनं कुष्ठं केशरं मुस्तकं त्वचम् ॥ रास्ना सैन्धवपिप्पल्यौ मांसी मंजिष्ठयष्टिके । तथा मेदा महामेदा जीवकर्षभकौ पुनः ॥ शतपुष्पा व्याघ्रनखं शुंठी देवाह्वमेव च । काकोली क्षीरकाको-ली वचा भल्लातकं तथा ॥ पेषयित्वा समानेतान् साधनीया प्रसारिणी । नातिपक्वं न हीनं च सिद्धं पूतं निधापयेत् ॥ यत्र यत्र प्रदातव्यं तन्मे निगदतः शृणु । कुब्जानामथ पंगूनां वाम-नानां तथैव च॥ यस्य शुष्यति चैकाङ्गं ये च भग्नास्थिसंधयः । वातशोणितदुष्टानां वातोपहतचेतसाम् ॥ स्त्रीमद्यक्षीणशुक्राणां वाजीकरणमुत्तमम् । बस्तौ पाने तथाभ्यंगे नस्ये चैव प्रयोज-येत् ॥ प्रयुक्तं शमयत्याशु वातजान् विविधान् गदान् ॥ ८० ॥

भाषा-शरदृऋतुमें मूल और पत्रसहित उखाडी हुई प्रसारणी १०० पल, पियावांसा १०० पल, सतावर १०० पल, खिरेंटी १०० पल, कौंच १०० पल, असगंध १०० पल और केतकी १०० पल सबोंको अलग अलग चौगुने जलमें पकावे जब चौथा भाग शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। फिर इसमें दहीका तोड ८ सेर, बकरेके मांसका क्वाथ ८ सेर, चूका ८ सेर, दूध ८ सेर, दही ८ सेर, तिलका तैल ८ सेर तथा तगर, मैनफल, कूठ, नागकेशर, नागरमोथा, दालचीनी, रास्ना, सैंधानोन, पीपल, बालछड, मजीठ, मुलहठी, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋष-भक, सोया, नख, सोंठ, देवदारु, काकोली, क्षीरकाकोली, वच और भिलावे प्रत्येक दो दो तोले पीसकर मिला देवे । सबोंको मिलाकर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे । यह तैल कुबडे मनुष्योंको, पंगु मनुष्योंको, बौने मनुष्योंको, जिन मनुष्योंका एक अंग सूख गया है, जिनकी अस्थिसंधि भंग हो गई है, वातरक्तरोगी, वातके मारे हुए जो मनुष्य अधिक स्त्रीप्रसंग करनेसे क्षीण हो गये हैं उन सब रोगियोंको यह तैल अत्यन्त हितकारी है । उत्तम वाजीकरण, वस्ति, पान, अभ्यंग और नस्यकर्ममें इसका प्रयोग करे । यह तैल अनेक प्रकारके वातके विकारोंको दूर करे है ॥ ८० ॥

एकादशशतिकं महाप्रसारिणीतैलम् ।

शाखामूलदलैः प्रसारिणितुलास्तिस्रः कुरंटातुले छिन्नायाश्च तुले तुले रुबुकतो रास्नाशिरीषात्तुलाम् । देवाह्वाच सकेतकाद् घटशते निःक्वाथ्य कुम्भांशिके तोये तैलघटं तुषाम्बुकलशौ दत्त्वाढकं मस्तुनः॥ शुक्तच्छागरसादथेक्षुरसतः क्षीराच दत्त्वाढकं पक्त्वा कर्कटजीवकाद्यविकपाकाकोलिकच्छूरकाः । सूक्ष्मैलाघनसारकुन्दसरलाकाश्मीरमांसीनखैः कालीयोत्पलपद्मकाह्वकनिशाकक्कोलकग्रन्थिकैः ॥ चाम्पेयाभयचोचपूगकटुकीजातीफलाभीरुभिः श्रीवासामरदारुचन्दनवचाशैलेयसिन्धूद्भवैः । तैलाम्भोदकटम्भरांघ्रिनलिकावृश्चीरकचोरकैः कस्तूरीदशमूलकेतकनतध्यामाश्वगंधाम्बुभिः ॥ कौन्तीतार्क्ष्यजशल्लकीफललघुश्यामाशताह्वामयैर्भल्लातत्रिफलाब्जकेशरमहाश्यामालवंगान्वितैः । सव्योषैस्त्रिपलैर्महीयसि पचेन्मन्देन पात्रेऽग्निना पानाभ्यंजनबस्तिनस्यविधिना तन्मारुतं नाशयेत् ॥ सर्वाङ्गार्द्धगतं तथावयवगं सन्ध्यस्थिमज्जाश्रितं श्लेष्मोत्थानकपैत्तिकांश्च शमयेन्नानाविधानामयान् । धातून् बृंहयति स्थिरं च कुरुते पुंसां नवं यौवनं वृद्धस्यापि बलं करोति सुमहद्वन्ध्यासुगर्भप्रदम् ॥ पीत्वा तैलमिदं जरत्यपि सुतं सूतेऽम्बुना भूरुहाः सिक्ताः शोषमुपागताश्च मलिनाः स्निग्धा भवन्ति स्थिराः । भग्नाङ्गाः सुदृढा भवन्ति मनुजा गावो हया कुंजराः ॥ ८१ ॥

भाषा–तिलका तैल १६ सेर, क्वाथके लिये शाखा, मूल और पत्रसहित गंधप्रसारिणी ३०० पल, नीली कटसरैया २०० पल, अंडकी जड और गिलोय २०० पल, रास्ना और शिरस १०० पल, देवदारु और केवडेकी जड १०० पल, पाकके लिये जल ६४०० सेर, शेष १२८ सेर, कांजी १२८ सेर, दहीका तोड १६ सेर, शुक्त (एक प्रकारकी कांजी) १६ सेर, बकरेका मांस ६४ पल, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, ईखका रस १६ सेर, दूध १६ सेर, कल्कके लिये असवरग,

कांकडाशिंगी, जीवनीयदशक, मजीठ, काकोली, क्षीरकाकोली, कौंचकी जड, छोटी इलायची, कपूर, कुन्दरू, धूप सरल, केसर, बालछड, नख, अगर, कुमुद, पद्माख, हलदी, शीतलचीनी, गठिवन, नागकेशर, खस, दालचीनी, सुपारी, कुटकी, जायफल, शतावर, गंधविरोजा, देवदारु, लाल चंदन, वच, भूरिछरीला, सैंधानोन, शिलारस, नागरमोथा, प्रसारिणीकी जड, नलिका, पुनर्नवा, चोरक, कस्तूरी, दशमूल, केतकीकी जड, तगर, सुगंधित तृण, असगंध, सुगंधवाला, रेणुका, रसौत, सेमरकी जड, कायफल, अगर, श्यामालता, सोया, कूठ, भिलावा, त्रिफला, कमलकेसर, कालीसर, लौंग और त्रिकुटा प्रत्येक तीन तीन पल, सबोंको मिलाकर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे। इसका पान, नस्य, अभ्यंग और वस्तिकर्ममें प्रयोग करे। इससे सर्व प्रकारके वातरोग नष्ट होते हैं। यह तैल सर्वांगगत, अर्द्धांगगत, अवयवगत, संधिगत, अस्थिगत और मज्जागत वात तथा कफोत्पन्न रोग और पित्तोत्पन्न रोगोंको दूर करे है। धातुओंको पुष्ट और स्थिर करनेवाला, वृद्ध मनुष्योंको नवयौवनयुक्त करनेवाला वन्ध्यास्त्रियोंको गर्भको देनेवाला, बलको बढानेवाला और गाय, घोडे, हाथी और मनुष्योंके सर्व प्रकारके वातके रोगोंको दूर करे है ॥ ८१ ॥

अष्टादशशतिकप्रसारिणीतैलम् ।

समूलदलशाखायाः प्रसारिण्याः शतत्रयम्। शतमेकं शतावर्य्या अश्वगंधाशतं तथा ॥ केतकीनां शतञ्चैकं दशमूलाच्छतं शतम् । शतं वाट्यालकस्यापि शतं सहचरस्य च ॥ जलद्रोणशतं दत्त्वा शतभागावशेषितम् । ततस्तेन कषायेण कषायद्विगुणेन च ॥ सुव्यक्तेनारनालेन दधिमण्डाढकेन च । क्षीरशुक्तेक्षुनिर्यासच्छागमांसरसाढकैः ॥ तैलाद्द्रोणं समायुक्तं दृढे पात्रे निधापयेत्। द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्याम्यतः परम्॥ भल्लातकं नतं शुण्ठी पिप्पली चित्रकं शटी। वचा पृक्का प्रसारिण्याः पिप्पल्या मूलमेव च॥ देवदारु शताह्वा च सूक्ष्मैला त्वचवालकम्। कुंकुमं मदमंजिष्ठा तुरुष्कं नखिकागरु॥ कर्पूरकुन्दुरुनिशालवङ्गध्यामचंदनम्। कक्कोलं नलिका मुस्तं कालीयोत्पलपत्रकम् ॥ शठी हरेणुशैलेयश्रीवासश्च सकेतकम् । त्रिफला कच्चुरा भीरु सरलं पद्मकेशरम्॥ प्रियंगुशीरनलदं

जीवकाद्यं पुनर्नवा। दशमूल्यश्वगन्धे च नागपुष्पं रसांजनम्॥ कटुकाजातिपूगानां फलानि शल्लकीरसम्। भागान् त्रिपलिकान् दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥ विस्तीर्णे सुदृढे पात्रे पच्येषा तु प्रसारिणी। प्रयोगः षड्विधश्चात्र रोगार्त्तानां विधीयते॥ अभ्यंगात्त्वग्गतं हन्ति पानात् कोष्ठगतं तथा। भोजनात् सूक्ष्मनाडीस्थान् नस्याद्दूर्ध्वगतं तथा॥ पक्काशयगते बस्तिर्निरूहः सार्वकायिके। एतद्धि वडवाश्वानां किशोराणां यथामृतम्॥ एतदेव मनुष्याणां कुंजराणां गवामपि। अनेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महद्द्रुमाः॥ सिक्ताः पुनः प्ररोहन्ति भवन्ति फलशालिनः। वृद्धोऽप्यनेन तैलेन पुनश्च तरुणायते॥ न प्रसूते च या नारी सापि पीत्वा प्रसूयते। अप्रजः पुरुषो यस्तु सोऽपि पीत्वा लभेत् सुतम्॥ अशीतिं वातजान् रोगान् पैत्तिकान् श्लैष्मिकानपि। सन्निपातसमुत्थांश्च नाशयेत् क्षिप्रमेव हि॥ एतेनांन्धकदृष्टीनां कृतं पुंसवनं महत्। कृत्वा विष्णोर्बलिश्चापि तैलमेतत् प्रयोजयेत्॥ ८२॥

भाषा–पत्र, मूल और शाखासहित प्रसारिणी ३०० पल, शतावर १०० पल, असगंध १०० पल, केतकी १०० पल, दशमूलकी अलग अलग एक एक औषधी १००–१०० पल, खिरेंटी १०० पल, पियावांसा १०० पल, सबोंको मिलाकर १०० द्रोण जलमें पकावे। जब एक द्रोण शेष रहे तब उतारकर छानले, फिर इस काथसे दुगुना अर्थात् ६४ सेर कांजी, दहीका तोड ८ सेर, शुक्त ८ सेर, ईखका रस ८ सेर, बकरेके मांसका रस ८ सेर, तिलका तेल ३२ सेर, कल्कके लिये मिलावा, तगर, सोंठ, पीपल, चीता, कचूर, वच, असवरग, प्रसारिणी, पीपलामूल, देवदारु, सोया, छोटी इलायची, दालचीनी, सुगंधवाला, केशर, कस्तूरी, मजीठ, शिलारस, नलद्रव्य, अगर, कपूर, कुन्दुरु, हलदी, लौंग, सुगंधतृण, चंदन, शीतलचीनी, नलिका, मोथा, कलम्बक, कमल, तेजपात, कचूर, रेणुका, भूरिछरीला, गंधबिरोजा, केवडा, त्रिफला, कौंच, शतावर, सरल, कमलकेसर, फूलप्रियंगू, खस, बालछड, जीवकादिगणकी औषधी, पुनर्नवा, दशमूल, असगंध, नागकेशर, रसौत, कुटकी, जायफल, सुपारी, त्रिफला और गंधबिरोजा ये पीसे हुए प्रत्येक तीन तीन पल

सर्वोको यथाविधिसे मिलाकर तैलको सिद्ध करे। इस तैलको खूब चौडे और मजबूत बासनमें पकावे। इसको छः प्रकारसे रोगियोंको देवे। इसकी मालिस करनेसे त्वचागत वायुरोग दूर हो जाता है। इसको पीनेसे कोष्ठगत रोग दूर होते हैं। इसको भोजनके पदार्थोमें मिलाकर खानेसे सूक्ष्मनाडीगत वातरोग दूर होते हैं। इसका नास लेनेसे ऊर्द्धगत वातरोग दूर होते हैं। इसका निरूह बस्तिमें प्रयोग करनेसे सर्व देहगत वायुकी पीडा दूर होती है। यह तैल हाथी, घोडे और मनुष्योंको विशेष हितकारी है। इस तेलसे सूखे हुए वृक्षोंको सींचनेसे फिरसे हरेभरे होकर फलयुक्त हो जाते हैं। इस तेलसे वृद्ध मनुष्यभी फिरसे तरुणताको प्राप्त होते हैं। जो स्त्री प्रसूता नहीं होती वह स्त्री इस तैलको पीनेसे प्रसूता हो जाती है। जो मनुष्य पुत्ररहित है वह मनुष्य इस तैलके प्रभावसे पुत्रवान् हो जाता है। यह तैल अस्सी प्रकारके वातरोग, सर्व प्रकारके पैत्तिकरोग, सर्व प्रकारके कफरोग और सन्निपातआदि रोगोंको दूर करे है ॥ ८२ ॥

त्रिशतिप्रसारिणीतैलम् ।

समूलपत्रशाखां च जातसारां प्रसारिणीम् । कुट्टयित्वा पलशतं दशमूलशतं तथा ॥ अश्वगन्धापलशतं कटाहे समधिक्षिपेत् । वारिद्रोणे पृथक् कृत्वा पादशेषेऽवतारितम् ॥ कषायसममात्रन्तु तैलमत्र प्रदापयेत्। दध्नस्तथाढकं दत्त्वा द्विगुणं चाम्लकांजिकम्॥ चतुर्द्रोणेन पयसा जीवनीयैः पलोन्मितैः । शृंगवेरपलान् पंच त्रिंशद्भल्लातकानि च ॥ द्वे पले पिप्पलीमूलात् चित्रकाच्च पलद्वयम् । यवक्षारपले द्वे च सैन्धवस्य पलद्वयम्॥सौवर्चलपले द्वे च मंजिष्ठायाः पलद्वयम् । प्रसारिणीपले द्वे च मधुकस्य पलद्वयम्॥ सर्वाण्येतानि संहृत्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । एतदभ्यंजने श्रेष्ठं वस्तिकर्मनिरूहणे ॥ पाने नस्ये च दातव्यं न क्वचित् प्रतिहन्यते । अशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव सर्वानेतान् व्यपोहति । गृध्रसीमस्थिभंगं च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ अपस्मारं तथोन्मादं विभ्रमं मन्दगामिनाम् । त्वग्गताश्चापि ये वाताः शिरःसंधिगताश्च ये ॥ जानुसंधिगताश्चैव पादपृष्ठगताश्च ये । अश्वो वा वातसंभग्नो गजो वा यदि

वा नरः॥ प्रसारयति यस्मात्तु तस्मादेषा प्रसारिणी। इन्द्रियाणां च जननी वृद्धानां च प्रसूयनी॥ एतेनान्धकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत्। प्रसारिणीतैलमिदं बलवर्णाग्निवर्द्धनम्॥ अपनयति जरां पलितं शोषयति रुजामुत्पादयति तारुण्यम्। पक्षाघातसर्वाङ्गहतं वातगुल्मं च नाशयेत्॥ एतदुपयुज्यमानः प्रसन्नवर्णेन्द्रियो भवेत्॥ ८३॥

भाषा—उत्तम तिलका तेल ४८ सेर, क्राथके लिये मूल शाखा और पत्रसहित कुटी हुई प्रसारिणी १०० पल, पाकके लिये जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, असगंध १०० पल, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दशमूल १०० पल, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दहीका तोड १६ सेर, खट्टी कांजी ३२ सेर, पाकके लिये जल २५६ सेर, कल्कके लिये जीवनीयगण प्रत्येक औषधि एक एक पल, अदरख ५ पल, मिलावे ३० पल, पीपलामूल २ पल, चीता २ पल, जवाखार २ पल, सेंधानोन २ पल, काला नोन २ पल, मजीठ २ पल, प्रसारिणी २ पल, मुलहठी २ पल सबोंको मिलाकर शनैः शनैः मंदाग्निसे विधिपूर्वक पकावे। इसका अभ्यंग, बस्तिकर्म, निरूह, पान और नस्यकर्ममें प्रयोग करे। यह तैल अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस प्रकारके पित्तके रोग, बीस प्रकारके कफके रोग, गृध्रसीवात, अस्थिभंग, मंदाग्नि अरोचक, अपस्मार, उन्माद, भ्रम, मंदगति, त्वग्गत वायु, शिरागत, संधिगत, जानुसंधिगत, पादगत और पृष्ठगत वातको दूर करे है। यह तैल वातसे पीडित घोडे, हाथी और मनुष्योंको फैलाकर सुख देता है इस कारण इसको प्रसारिणी तैल कहते हैं। इन्द्रियोंको प्रसन्न करनेवाला, वृद्ध मनुष्योंको सुख देनेवाला, बल वर्ण और जठराग्निको बढानेवाला, जराको दूर करनेवाला, पलितरोगको हरनेवाला, पीडाको नष्ट करनेवाला, तरुणताको उत्पन्न करनेवाला तथा सर्वांगहत पक्षाघात और वातगुल्मको दूर करनेवाला है। इसका सेवन करनेसे वर्ण और इन्द्रियें प्रसन्न हो जाती हैं॥ ८३॥

महाराजप्रसारिणीतैलम्।

शतत्रयं प्रसारिण्या द्वे च पीतसहचरात्। अश्वगंधैरण्डबलावरीरास्नापुनर्नवाः॥ केतकी दशमूलं च पृथक् त्वक् पारिभद्रतः। प्रत्येकमेषान्तु तुला तुलार्द्धं किंशिमात्तथा॥ तुला धन्याच्छिरीषाच्च लाक्षायाः पंचविंशतिः। पलानि लोध्राच्च तथा सर्वमेकत्र साधयेत्॥ जलपंचाढकशते सपादे तत्र शेषयेत्।

द्रोणद्वयं कांजिकं च षड्विंशत्याढकोन्मितम् ॥ क्षीरदध्नोः पृथक् प्रस्थान् दशमस्त्वाढकं तथा । इक्षो रसाढकश्चापि छागमांसे तुलात्रये ॥ जलं पंचचत्वारिंशत्प्रस्थे पक्के तु शेषयेत् । सप्तदशरसप्रस्थान् मंजिष्ठाक्काथ एव च ॥ कुडवो नाढकोन्मानो द्रवैरेभिस्तु साधयेत । सुशुद्धं तिलतैलस्य द्रोणं प्रस्थेन संयुतम् ॥ कांजिकं मानतो द्रोणं शुक्तेनात्र विधीयते । आद्य एभिर्द्रवैः पाकः कल्को भल्लातकं कणा ॥ नागरं मरिचं चैव प्रत्येकं षट्पलोन्मितम् । भल्लातकसहत्वे तु रक्तचंदनमिष्यते ॥ पथ्याक्षधात्र्यः सरलं शताह्वा कर्कटी वचा । चोरपुष्पी शठी मुस्तद्वयं पद्मं च सोत्पलम् ॥ पिप्पलीमूलमंजिष्ठा साश्वगंधा पुनर्नवा । दशमूलं समुदितं चक्रमर्दो रसांजनम् ॥ गंधतृणं हरिद्रा च जीवनीयो गणस्तथा । एषां द्विपलिकैर्भागैराद्यः पाको विधीयते ॥ देवपुष्पी बेलपत्रं शल्लकीरसशैलजे । प्रियंगूशीरमधुरी मांसी दारु बला चलम् ॥ श्रीवासो नलिका खोटिः सूक्ष्मेला कुन्दुरुर्मुरा । नखीत्रयं च त्वक्पत्रीमपरापूतिचम्पकम् ॥ मदनं रेणुका पक्वा मरूवकपलत्रयम् । प्रत्येकं गंधतोयेन द्वितीयः पाक इष्यते ॥ गंधोदकं तु त्वक्पत्रीपत्रकोशीरमुस्तकम् । प्रत्येकं सरलामूलं पलानि पंचविंशतिः ॥ कुष्ठार्द्धभागोऽत्र जलप्रस्था तु पंचविंशतिः । अर्द्धावशिष्टाः कर्त्तव्या पाके गंधाम्बुकर्मणि ॥ गंधाम्बुचंदनाम्बुभ्यां तृतीयः पाक इष्यते । कल्कोत्र केशरं कुष्ठं त्वक्कालीयककुंकुमम् ॥ भद्रश्रियं पृश्निपर्णी लता कस्तूरिका तथा । लवंगागुरुकक्कोलजातीकोषफलानि च ॥ एला लवंगवल्ली च प्रत्येकं त्रिपलोन्मितम् । कस्तूरी षट्पला चन्द्रा पलं सार्द्धं च गृह्यते ॥ वेधनार्थं पुनश्चान्द्रमदो देयो तथोन्मितो । महाप्रसारिणी सेयं राजभोग्या प्रकीर्त्तिता ॥ महाप्र-

सारिणीनां तु वहत्येषा बलोत्तमान्॥ कांजिकं मानतो द्रोणः शुक्तेनात्र विधीयते॥ अत्र शुक्तविधिर्मण्डः प्रस्थः पंचाढकोन्मितम्। कांजिकं कुडवो दध्नो गुडप्रस्थोऽम्लमूलकात्॥ पलान्यष्टौ शोधितार्द्रा पलषोडशिकां तथा। कणाजीरकसिन्धूत्थहरिद्रां मरिचं तथा॥ द्विपलं भाविते भाण्डे घृतेनाष्टदिनं स्थितम्। सिद्धं भवति तच्छुक्तं यदावताप्यं गृह्यते॥ तदा देयं चतुर्जातं पृथक् कर्षत्रयोन्मितम्। काचिदुदुम्बरपत्राभा तथा चोत्पलसन्निभा॥ काचिदश्वमुखाकारा गजकर्णसमा तथा। वराहकर्णसंकाशा नखी पंचविधा स्मृता॥ ८४॥

भाषा—गंधप्रसारिणी ३०० पल, पीला पियावांसा २००पल, असगंध१००पल, अंडकी जड १०० पल, खिरैंटी १०० पल, शतावर १०० पल, रायसन १०० पल, पुनर्नवा १०० पल, केतकी १०० पल, फरहद १०० पल, देवदारु ५० पल, सिरस५० पल, लाख २५ पल, लोध २५ पल इन सबोंको एकत्र कर ५२५ आढक जलमें पकावे। जब दो द्रोण जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। कांजी एक द्रोण (परन्तु मूलमें २६ आढक लिखी है सो इतनी डालनेसे कांजीकी गंध अधिकतासे आने लगती है) दूध दही प्रत्येक दश प्रस्थ, दहीका तोड एक आढक, ईखका रस एक आढक, बकरेका मांस ३०० पल, पाकके लिये जल ८५ सेर, शेष १७ सेर, मजीठ ५० पल, जल ६० सेर, शेष १५ सेर, तिलका तेल एक द्रोण एक प्रस्थ, कल्कके लिये मिलावे, अभावमें लालचंदन, पीपल, सोंठ और काली मिरच, प्रत्येक छः छः पल, हरड, बहेडा, आमला, धूप सरल, सौंफ, कांकडासींगी, वच, शंखपुष्पी, कचूर, मोया, नागरमोथा, कमल, कुमुदिनी, पीपरामूल, मजीठ, असगंध, पुनर्नवा, दशमूल, चकवड, रसौत, सुगंधतृण, हलदी और जीवनीयगणकी सम्पूर्ण औषधि प्रत्येक दो दो पल, सबोंको विधिपूर्वक मिलाकर प्रथम पाक करे। तत्पश्चात् लौंग, गंधबोल, तेजपात, शल्लकीका गोंद, भूरिछरीला, फूलप्रियंगू, खस, सौंफ, बालछड, देवदारु, खिरैंटी, शिलारस, सरलका गोंद, नलिका, कुन्दुरु, छोटी इलायची, लोबान, कपूरकचरी, तीनों प्रकारकी नखी, दालचीनी, गंगापत्री, काकोली, खट्टाशमुष्क, चंपा, दवना, रेणुका, असवरग और मरुआ प्रत्येक तीन तीन पल लेवे। इन सबोंका कल्क और गंधोदकद्वारा तेलका दूसरा पाक करे। गंधोदक बनानेकी विधि यह है कि दालचीनी, गंगापत्री, तेजपात, खस, नागरमोथा, धूप

सरल प्रत्येक २५ पल, कूठ १२॥ पल, जल १०० शराव, अर्द्धावशेष क्वाथ करे। इसको गंधोदक कहते हैं। पश्चात् इसी गंधोदक और चन्दनोदकके द्वारा नीचे लिखे तृतीय कल्कका पाक करे। अब चन्दनोदक बनानेकी विधि कहते हैं। कूटा हुआ चंदन ५० पल, जल २५ सेर लेवे। अर्द्धावशेष अथवा चतुर्थांश क्वाथ करे या चंदनको जलमें घिस लेवे इसको चन्दनोदक, चन्दनाम्बु, चन्दनजल कहते हैं। ऊपरोक्त चंदनोदकके द्वारा नागकेशर, कूठ, दालचीनी, कलम्बक, केशर, चंदन, गठिवन, लता, कस्तूरी, लौंग, अगर, शीतलचीनी, जायफल, जावित्री, इलायची और लौंगकी वेल प्रत्येक तीन तीन पल; कस्तूरी छः पल, कपूर डेढ पल इनके कल्कके साथ तृतीय पाक करे। जब तेल सिद्ध हो जाय तब डेढ तोले कस्तूरी और डेढ तोला कपूर पीसकर तेलमें मिला देवे। यह महाराजप्रसारिणी तैल राजाओंके सेवने योग्य है तथा अन्यप्रसारिणी तैलोंकी अपेक्षा अधिक गुणवाला है। अब शुक्त बनानेकी विधि कहते हैं। भातका मांड २ सेर, कांजी ४० सेर, दही १ सेर, गुड १ सेर, कांजीमूलक (कांजीके नीचेकी जमी हुई गाद) आठ पल, शुद्ध अदरख १६ पल, पीपल, जीरा, सैंधानोन, हलदी और काली मिरच ये प्रत्येक दो दो पल लेकर सबोंको एकत्र घीके चिकने बासनमें आठ दिन रक्खा रहने देवे, फिर इसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण छः छः तोले मिला देवे इसको शुक्त कहते हैं। यह शुक्तनामवाली कांजी इस महाराजप्रसारिणी तैलमें डाली जाती है इसकारण इसको यहां लिख दिया है। कोई गूलरके पत्तोंकी समान कोई कमलकी समान कोई घोडेके मुखकी समान कोई हाथीके कानकी समान और कोई सूअरके समान ऐसे नखी पांच प्रकारकी होती है। उनमेंसे इस महाराजप्रसारिणीतैलमें पहिली तीन लेनी चाहिये ॥ ८४ ॥

महासुगन्धिलक्ष्मीविलासतैलम् ।

जिङ्गीचोरकदेवदारुसरलव्याघ्रीचलाचेलकात्वक्पत्रैः सह गंधपत्रकशठीपथ्याक्षधात्रीघनैः । एतैः शोधितसंस्कृतैः पलयुगेत्याख्यातया संख्यया तैलप्रस्थमवस्थितैः स्थिरमतिः कल्कैः पचेद्गान्धिकैः ॥ मांसीमुरादमनचंपकसुन्दरीत्वग्ग्रन्थ्यम्बरमरुबकैर्द्विपलैः सपक्कैः । श्रीवासकुन्दुरुनलिकामिषीणां प्रत्येकतः पलमुपाद्य पुनः पचेत्तु ॥ एलालवंगचलचंदनजाति-

१ यद्यपि कांजिकस्य षड्विंशति चाढकानीत्युक्तं तथापि कांजिकस्य द्रोणमात्रेण व्यवहारः। अन्यथा 'कांजिकस्यैव गन्धः स्या'दिति अतएव चरको वक्ष्यति'कांजिकं मानतो द्रोण'इति । २ तत्र आद्याः त्रिधो ग्राह्याः।

पूतिककोलकागुरुलताघुसृणैः पलार्द्धैः। कस्तूरिकाक्षसहितान-लदीप्तियुक्तैः पकन्तु मन्दशिखिनैव महासुगंधम् ॥ पंचद्विकेन चार्द्धेन मदात्कर्पूरमिष्यते। प्रागुक्तौ शुद्धिसंस्कारौ गंधानामिह तैः पुनः॥ द्विगुणैर्लक्ष्मीविलासस्यादयन्तु तैलसत्तमः। पंचपत्राम्बुना चाद्यो द्वितीयो गंधवारिणा ॥ तृतीयोपि च तेनैव पाकोऽवधूपिताम्बुना। तैलयुग्ममिदं तूर्णं विकारान् वातसंभवान् ॥ क्षपयेज्जनयेत्पुष्टिं कान्तिं मेधां धृतिं धियम् ॥ ८५ ॥

भाषा—मजीठ, चोरक सुगंधद्रव्य, देवदारु, सबरलोध, कदेरी, वच, सुपारीके, पेडकी छाल, दालचीनी, तेजपात, गंधपत्रक (बं० पचापाता), कचूर, हरड, बहेडा, आमला और नागरमोथा ये प्रत्येक दो दो पल ले कल्क बना दो सेर तेलमें मिलाकर बिल्वादि पंचपल्लवोंके जलके द्वारा प्रथम पाक करे। फिर बालछड, कपूरकचरी, दौना, चम्पा, फूलप्रियंगू, दालचीनी, गठिवन, सुगंधवाला, कूठ, मरुआ और असवरग प्रत्येक दो दो पल तथा श्रीवास (गंधविरोजा), कुंदुरु, नखी, नलिका और सौंफ ये प्रत्येक एक एक पल लेवे, इन सबोंका कल्क बनाकर दूसरी वार गंधोदकके द्वारा पकावे पश्चात् इलायची, लौंग, शिलारस, चंदन, चमेलीके फूल, जुईके फूल, शीतलचीनी, अगर, लताकस्तूरी और केशर प्रत्येक दो दो तोले, कस्तुरी एक तोला और कपूर छः मासे इन सबोंका कल्क बनाकर तीसरी वार गंधद्रव्यादिके द्वारा गंधोदकके साथ तीसरा पाक करे। यह महासुगंधित लक्ष्मीविलास तैल सर्व प्रकारके वातके विकारोंको दूर करे है। पुष्टिकारक, कान्तिजनक तथा मेधा, धृति और बुद्धिको बढावे है ॥ ८५ ॥

नकुलाद्यघृतम्।

नकुलस्य च मांसस्य पचेत् प्रस्थं जलाढके। तत्समं दशमूलं च पक्कं माषबलान्वितम् ॥ घृतप्रस्थं पचेत्तत्र चतुर्भागावशेषितम्। शतावरीरसप्रस्थं गव्यदुग्धं च तत्समम् ॥ अष्टौ वर्गाश्च काकोल्यौ जीवन्ती मधुयष्टिका। एला त्वचं च पत्रञ्च त्रिकटु त्रिफला तथा ॥ मुस्तकं नागजिह्वा च कर्षं कर्षं प्रदापयेत्। सर्व-

१ पंचद्विकेनेति पंचधा विभक्तस्य कस्तूरीकस्यैको भागो रक्तिद्वयाधिकत्रिमाषको भवति तदा मानेन कर्पूरस्य द्वौ भागौ किंवा अर्द्धेन कस्तूरीकर्षात् कर्पूरस्याष्टौ माषकाः।

वातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः ॥ महोन्मादे पक्षघाते चाध्माने कोष्ठनिग्रहे । हस्तकम्पे शिरःकंपे बाधिर्ये मूकमिण्मिने ॥ ऊर्ध्वजत्रुगते वाते जंघापार्श्वादिसंश्रिते । नकुलाद्यमिदं नाम्ना ऊर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ८६ ॥

भाषा-क्वाथके लिये नौलेका मांस २ सेर, पाकके लिये जल १६ सेर, शेष ४ सेर, दशमूल २ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, उडद २ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, खिरैंटी २ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, गायका घी ४ सेर, शतावरका रस ४ सेर, गायका दूध ४ सेर, कल्कके लिये अष्टवर्ग, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलहठी, इलायची, दालचीनी, तेजपात, त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा और अनंतमूल प्रत्येक दो दो तोले, सबोंको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। यह नकुलाद्यघृत सर्व प्रकारके वातविकार, विशेषकरके अपस्मार, महाउन्माद, पक्षाघात, आध्मान, कोष्ठनिग्रह, हस्तकम्प, शिरःकम्प, बाधिरता, मूकता, मिनमिपन, ऊर्ध्वजत्रुगत वायु, जंघागत वायु और पार्श्वादिसंश्रित वातरोगोंको दूर करे है॥८६॥

छागलाद्यं घृतम् ।

आजं चर्म विनिर्मुक्तं त्यक्तशृंगनखादिकम् । पंचमूलीद्वयं चैव जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । जीवनीयैः सयष्ट्याह्वैः क्षीरं चैव शतावरी॥छागलाद्यमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् । अर्दिते कर्णशूले च बाधिर्ये मूकमिण्मिने ॥ जडगद्गदपंगूनां खंजे गृध्रसिकुब्जयोः । अपतानेऽपतन्त्रे च सर्पिरेतत् प्रशस्यते ॥ ८७ ॥

भाषा-चर्म्म, शींग और खुरआदिसे रहित बकरीके पचास पल मांसको ३२ सेर जलमें पकावे जब आठ सेर शेष रह जाय तब उतार ले फिर पचास पल दशमूलको ३२ सेर जलमें पकावे जब चौथा भाग अर्थात् आठ सेर जल बाकी रहे तब उतार ले और दूध ४ सेर, शतावरका रस ४ सेर, गायका घी ४ सेर तथा कल्कके लिये जीवनीयदशक और मुलहटी यह ६ सेर लेवे, फिर विधिपूर्वक घृतको सिद्ध करे, इस घृतको सेवन करनेसे सर्व प्रकारके वातरोग, अर्दितवात, कर्णशूल, बधिरता, गूंगापन, मिनमिनवात, जडता, गद्गदपन, पंगुता, खंजत्व, गृध्रसीवात, कुब्जकवात, अपतानक और अपतंत्रकवातरोग दूर होता है । इसको छागलाघृत कहते हैं ॥ ८७ ॥

बृहच्छागलाद्यं घृतम् ।

नातिबाला न सूता च न वृद्धा न च रोगिणी । मध्यस्था तरुणी ग्राह्या कृष्णा वृष्या विशेषतः ॥ छागमांसतुलां गृह्य दशमूल्याः पलं शतम् । अश्वगंधापलशतं वाट्यालकशतं तथा ॥ घृताढकं पचेत्तोयैश्चतुर्भागावशेषितैः । क्षीरं स्नेहसमं दद्यात् शतावर्या रसं तथा ॥ ताम्रपात्रे दृढे चैव शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । अस्यौषधस्य कल्कस्य प्रत्येकं शुक्तिसंमितम्॥जीवन्ती मधुकं द्राक्षा काकोल्यौ नीलमुत्पलम् । मुस्तं सचंदनं रास्ना पर्णिनी द्वयशारिवे॥मेदे द्वे च तथा कुष्ठं जीवकर्षभकौ शठी । दार्वी प्रियंगुत्रिफलानंतताळीशपद्मकौ ॥ एलापत्रं वरी नागं जातीकुसुमधान्यकम् । मंजिष्ठा दाडिमं दासरेणुकं शैलवालुकम्॥ विडंगं जीरकश्चैव पेषयित्वा विनिःक्षिपेत् । वस्त्रपूते च शीते च शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ निधापयेत् स्निग्धभाण्डे मार्दे वा भाजने शुभे । अस्यौषधस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम्॥देवदेवं नमस्कृत्य संपूज्य गणनायकम् । पिबेत् पाणितलं तस्य व्याधिं वीक्ष्यानुपानतः ॥ सर्ववातविकारेषु अपस्मारे विशेषतः । उन्मादे पक्षाघाते च आध्माने कोष्ठनिग्रहे ॥ कर्णरोगे शिरोरोगे बाधिर्ये चापतन्त्रके । भूतोन्मादे च गृध्रस्यां सोद्गारे चाम्लपित्तजे ॥ पार्श्वशूले च हृच्छूले बाह्ययामार्दिते तथा । वातकंटकहृद्रोगमूत्रकृच्छ्रे सपङ्गुके ॥ क्रोष्टुशीर्षे तथा खंजे कुब्जे गद्गदमिण्मिने । अपतानेऽन्तरायामे रक्तपित्ते तथोर्ध्वगे ॥ आनाहेशौविकारेषु चातुर्थकज्वरेऽपि च । हनुग्रहे तथा शोषे क्षीणे चैवापबाहुके ॥ दण्डापतानके भग्ने दाहे चाक्षेपके तथा । जीर्णज्वरे विषे कुष्ठे शेफस्तम्भे मदात्यये ॥ आढ्यवातेऽग्निमान्द्ये च वातरक्तगदेषु च । एकांगरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे॥ हस्तकम्पे शिरः-

कम्पे जिह्वास्तम्भे जडे भ्रमे । क्षीणेन्द्रिये नष्टशुक्रे शुक्रनिःसरणे तथा ॥ स्त्रीणां वातास्रपाते च पटले चाक्षिस्पन्दने । एकांगस्पन्दने चैव सर्वाङ्गस्पन्दने तथा ॥ नगादिपतिते वाते स्त्रीणामप्राप्तिहेतुके । आभिचारिके दोषे च घने संतापसम्भवे ॥ ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः । शिरोमध्यगता ये च जंघापार्श्वादिसंस्थिताः ॥ मातृग्रहाभिभूतश्च शिशुर्यश्च विशुष्यति । प्रक्षीणबलमांसश्च न वर्त्मगहने गतिः ॥ घृतेनानेन सिध्यन्ति वज्रमुक्तिरिवासुरान् । निहंति सकलान् रोगान् घृतं परमदुर्लभम् ॥ रसायनं वह्निबलप्रदं च वपुःप्रकर्षं विदधाति रूपम् । दत्तावलेन्द्रेन समानतेजा दीर्घायुषं पुत्रशतं करोति ॥ स्त्रीणां शतं गच्छति चातिरेकं न याति तृप्तिं सरसः समांगः । अपुत्रिणीपुत्रशतं करोति शतायुषं कामसमं बलिष्ठम् ॥ महद् घृतं नाम तु छागलाद्यं विनिर्मितं वातनिषूदनं च । शिवं शुभं रोगभयापहं च चकार हारीतमुनिर्विशिष्टः ॥ ८८ ॥

भाषा—न अत्यन्त बालक हो, न तत्काल व्याही हुई हो, न वृद्ध हो और न रोगी हो, मध्यम अवस्थावाली, तरुण और कृष्णवर्ण हो ऐसी बकरी वृष्य होती है। ऐसी बकरीका मांस १००पल, दशमूल १०० पल, असगंध १०० पल और खिरैटी १०० पल, प्रत्येकको ५१२ पल जलमें पकावे जब १२८ पल जल शेष रहे तब उतार ले, इस प्रकार सबका चतुर्थांश काथ बनावे, फिर सब काथोंको एकत्र कर लेवे. पश्चात् इसमें १२८ पल गायका घी और १२८ पल शतावरका रस मिलाके तांबेके बासनमें मंद मंद अग्निसे पकावे और पकते समय जीवन्ती, महुआ, दाख, काकोली, नीलकमल, नागरमोथा, चन्दन, रास्ना, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, शारिवा, अनंतमूल, मेदा, महामेदा, कूट, जीवक, ऋषभक, कचूर, दारुहलदी, फूलप्रियंगू, त्रिफला, तगर, तालीशपत्र, पद्माख, इलायची, तेजपात, शतावर, नागकेशर, चमेलीके फूल, धनियां, मजीठ, अनार, देवदारु, रेणुका, भूरिछरीला, पलुवा, वायविडंग और जीरा ये प्रत्येक चार चार तोले लेकर कल्क बनाकर छोड देवे। जब पककर घृत शीतल हो जाय तब वस्त्रमें छानकर ६४ तोले बूरा मिलाके चिकने बासनमें भरके रख देवे, फिर देवाधिदेव गणेशजीको नमस्कार

और पूजकर प्रतिदिन एक तोला पीवे और इसके ऊपर रोगानुसार अनुपान करे तो यह घृत सर्व प्रकारके वातविकार, अपस्मार, उन्माद, पक्षाघात, आध्मान, कोष्ठरोग, विद्ग्रह, कर्णरोग, शिरोरोग, बधिरता, अपतन्त्रक, भूतोन्माद, गृध्रसी-वात, अम्लपित्तोद्भव उद्गाररोग, पार्श्वशूल, हृदयशूल, बाह्यायाम, अर्दितरोग, वातकण्टक, हृद्यरोग, मूत्रकृच्छ्र, पंगुता, क्रोष्टुशीर्ष, खंजवात, कुब्जवात, गद्गद्-वात, मिनामिन्, अपतानक, अंतरायामवात, अधोगत रक्तपित्त, आनाह, बवासीर, चातुर्थिकज्वर, हनुग्रह, शोष, क्षीण, अपबाहुक, दण्डापतानक, मन्नरोग, दाह, आक्षेपक, जीर्णज्वर, विषविकार, कोढ, शेफस्तम्भ (लिंगस्तम्भ), मदात्यय, आढ्यवात, मंदाग्नि, वातरक्त, एकांगवात, सर्वांगवात, हस्तकंप, शिरःकम्प, जिह्वा-स्तम्भ, जडता, भ्रम, इन्द्रियोंकी क्षीणता, शुक्रकी हीनता, शुक्रनिःसरण, स्त्रियोंके शरीरमें वातसे हता हुआ रुधिरविकार, पटलगत नेत्ररोग, अक्षिस्पन्दन, एकांगस्प-न्दन, सर्वांगस्पन्दन, वृक्षादिके ऊपरसे पतित होनेसे उत्पन्न हुई वात, स्त्रियोंके प्राप्तिके अभावसे उत्पन्न हुई वात, अभिचारकदोष, धनके सन्तापसे उत्पन्न हुई वात, सर्व प्रकारके वातसे उत्पन्न होनेवाले रोग, सर्व प्रकारके पित्तसे उत्पन्न होनेवाले रोग, सर्व प्रकारके शिरोरोग, जंघाके रोग, पसलियोंके रोग, मातृग्रहादिकके दोषसे बालकका सूख जाना, बल और मांसकी क्षीणता, मार्ग चलनेकी शक्तिका न होना ये सब रोग दूर हो जाते हैं। जैसे वज्रके आघातसे राक्षस नष्ट हो जाते हैं। यह परमदुर्लभ घृत सर्व प्रकारके रोगोंको हरनेवाला है। तथा रसायन, अग्नि-प्रदीपक, बलवर्द्धक, शरीरको सुन्दर करनेवाला, गजेन्द्रकी समान तेजस्वी और चिरायुषी १०० पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाला। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य सौ स्त्रियोंके साथभी रमण करे तौभी तृप्त नहीं होता। अपुत्रिणी स्त्रियोंके सैकडों पुत्रोंको उत्पन्न करनेवाला और वह पुत्र कामदेवकी समान और १०० वर्षतक जीवे। यह बृहत्छागलाद्यघृत वातका नाश करनेके लिये तथा कल्याण करनेके लिये और रोगोंके भय निवारण करनेके लिये हारीतमुनिने निर्माण किया है॥८८॥

अथ गन्धाघृतम्।

अश्वगंधाकषाये च कल्के क्षीरं चतुर्गुणम्।
घृतपक्वन्तु वातघ्नं वृष्यमायुर्विवर्द्धनम्॥ ८९॥

भाषा–असगंधका काथ और कल्क बनाकर चौगुने दूधके द्वारा घृतको पका-कर सेवन करनेसे वातरोग नष्ट होता है तथा बल और आयुकी वृद्धि होती है॥८९॥

हंसादिघृतम्।

हंसमेकं समादाय पचेत्तोयाढके भिषक्। चतुर्भागावशेषे तु

घृतस्य पलमष्टकम् ॥ घृततुल्यं विदध्यात्तु तैलमेरण्डसंभवम् । तत्रैव दशमूलस्य प्रत्येकं कर्षषट्कम् ॥ जले चाष्टगुणे पाच्यं तृतीयांशावशेषितम् । त्रिकटु त्रिफला मुस्तं पिप्पलीमूलपद्म-कम् ॥ वर्द्धमानस्य मूलस्य यथावत् परिकीर्त्तितम् । शुष्क-मूलं कदम्बत्वक् शूकशिम्बी पुनर्नवा ॥ तालमूली विदारी च दार्वी सिन्धूत्थनागरम् । प्रत्येकं कर्षभागं स्यात् भागं चापि त्रिकार्षिकम् ॥ निशारसोनचित्राणां कल्कं दत्त्वा पचेत् सुधीः । पादशेषे परिस्राव्यकर्षार्द्धमभ्रकं क्षिपेत् ॥ यथाग्निभक्षणं कार्यं सर्ववातविकारिणाम् । जडे मूके तथा खंजे पांगुल्ये चापबा-हुके ॥ कासे श्वासे तथा शोषे क्षये च विषमानले । हस्तकम्पे शिरःकंपे तथा सर्वाङ्गकम्पने ॥ गृध्रस्यां कुब्जके नित्यं ज्वरे जीर्णे विशेषतः ॥ ९० ॥

भाषा–एक हंसको लेकर आठ सेर जलमें पकावे जब २ सेर जल बाकी रह जाय तब उतार ले, फिर घी ८ पल, अंडीका तैल ८ पल, दशमूलकी प्रत्येक औषधि छः छः तोले लेकर अठगुने जलमें पकावे। जब तीसरा भाग शेष रह जाय उतार ले पश्चात् त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, पीपल, पद्माख, अंडकी जड, सूखी मूली, कदमकी छाल, कौंच, पुनर्नवा, मुसली, विदारीकंद, दारुहलदी, सैंधा-नोन और सोंठ प्रत्येक एक २ कर्ष, हलदी, लहसन और वायविडंग प्रत्येक तीन तीन कर्ष इनका कल्क बनाकर काथ, तैल, घी और मांसरस सबोंको एकत्र कर घृतको पकावे जब चौथाई भाग शेष रहे तब उतार ले। फिर अर्ध कर्ष इसमें अभ्रक डालकर चिकने घीके वासनमें भरके रख देवे। अग्निका बलावल विचार इसकी मात्राका निश्चय करे। यह हंसघृत सर्व प्रकारके वातविकार, जडता, मूकता, खंजता, पंगुता, अपवाहुक, खांसी, श्वास, शोष, क्षय, विषाग्नि, हस्तकम्प, शिरःकम्प, सर्वांगकम्प, गृध्रसीवात, कुब्जकवात और विशेष करके जीर्णज्वरको दूर करे है ॥ ९० ॥

द्विगुणाख्यो रसः ।

गन्धकाद्विगुणं सूतं शुद्धं मृद्वग्निना क्षणम् । पक्त्वावतार्य संचूर्ण्य तुल्याभयासमन्वितम् ॥ सप्तगुंजामितं खादेद्वर्द्धयेच्च दिने दिने । गुंजैकैकक्रमेणैव यावत् स्यादेकविंशतिः ॥ क्षीराज्यशर्कराभिश्च

शाल्यन्नं पथ्यमाचरन् । कम्पवातप्रशान्त्यर्थं निर्वाते निवसेत् सदा ॥ द्विगुणाख्यरसो नाम त्रिपक्षात् कंपवातजित् ॥ ९१ ॥

भाषा-शुद्ध गंधक १ भाग, शुद्ध पारा २ भाग, दोनोंको एकत्र कर क्षणभर मंद मंद अग्निसे पकावे जब पक जाय तब उतारकर चूर्ण कर लेवे फिर इस चूर्णमें समान भाग हरडका चूर्ण मिला लेवे । पहिले दिन सात रत्तीभर खाय, दूसरे रोज आठ रत्ती खाय, प्रतिदिन एक रत्ती बढाता जाय, इस प्रकार इक्कीस रत्तीतक बढावे। दूध घी और शर्करायुक्त शालिचावलोंका भात इसपर पथ्य है । यह कम्पवातको दूर करे है । इसको सेवन करनेवाला मनुष्य सदैव निर्वातस्थानमें रहे है । यह द्विगुणाख्यरस तीन पक्षोंमें कम्पवातको दूर करे है ॥ ९१ ॥

वातगजांकुशः ।

मृतं सूतं मृतं लोहं ताप्यं गन्धकतालकम् । पथ्या शृङ्गी विषं व्योपमग्निमन्थं च टंकणम् ॥ तुल्यं खल्वे दिनं मर्द्यं मुंडीनिर्गुण्डिकाद्रवैः। द्विगुंजां वटिकां खादेत् सर्ववातप्रशान्तये॥ कणाचूर्णयुतं चैव जिङ्गीकाथं पिबेदनु। साध्यासाध्यं निहन्त्याशु रसो वातगजांकुशः ॥ सप्ताहाद्गृध्रसीं हन्ति दारुणं सान्निपातिकम् । क्रोष्टुशीर्षकवातं चाप्यपबाहुकसंज्ञकम्॥ मन्यास्तम्भमुरुस्तम्भं हनुस्तम्भं विनाशयेत्। पक्षाघातादिरोगेषु कथितः परमोत्तमः॥ रसो वारिशोषणोऽत्र युक्तोऽन्यो योगवाहिकः ॥ ९२ ॥

भाषा-पारेकी भस्म, लोहेकी भस्म, सोनामक्खी, शुद्ध गंधक, शुद्ध हरिताल, हरड, कांकडासींगी, विष, त्रिकुटा, अरणी और सुहागा सबोंको समान भाग लेकर एक दिन गोरखमुंडी और निर्गुण्डीके रसमें खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली खाय तो सर्व प्रकारके वातविकार दूर होवें । अनुपान पीपलका चूर्ण मजीठके काथके साथ पीवे । यह वातगजांकुशरस साध्यासाध्य सर्व प्रकारके वातविकारोंको दूर करे है । यह वातगजांकुशरस सात दिनमें दारुणसान्निपातिक गृध्रसीवात, क्रोष्टुशीर्षवात, अपबाहुक, मन्यास्तम्भ, ऊरुस्तम्भ, हनुस्तम्भ और पक्षाघातादि रोगोंको दूर करे है । इस रोगमें वारिशोषणरस तथा अन्यान्य योगवाही रसोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ९२ ॥

बृहद्वातगजांकुशः ।

सूताभ्रतीक्ष्णकान्तानि ताम्रतालकगन्धकम् । स्वर्णं शुंठी बला

धान्यं कट्फलं चाभया विषम् ॥ पथ्या शृंगी पिप्पली च मरिचं टंकणं तथा । तुल्यं खल्वे दिनं मर्द्यं मुण्डीनिर्गुण्डिजैर्द्रवैः ॥ द्विगुंजां वटिकां खादेत् सर्ववातप्रशान्तये । साध्यासाध्यं निहन्त्याशु बृहद्वातगजांकुशः ॥ ९३ ॥

भाषा-पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, तीक्ष्ण लोहा, कान्तलोहा, तांबेकी भस्म, हरिताल, गंधक, सोनेकी भस्म, सोंठ, खिरैटी, धनियां, कायफल, हरड, विष, आमुला, कांकडासींगी, पीपल, काली मिरच और सुहागा सब समान भाग लेकर गोरखमुंडी और निर्गुंडीके रसमें खरल करे, फिर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली खाय। यह वातगजांकुश रस साध्य असाध्य सर्व प्रकारके वातविकारोंको दूर करे है ॥ ९३ ॥

महावातगजांकुशः ।

मृताभ्रतीक्ष्णताम्रस्य सूततालकगंधकम्। भार्ङ्गी शुंठी बला धान्यं कट्फलं चाभया विषम् ॥ संपिष्य चपलाद्रावैर्निष्कैकां भक्षयेद्वटीम्। वातश्लेष्महरो ह्येष महावातगजांकुशः ॥ ९४ ॥

भाषा-अभ्रककी भस्म, लोहेकी भस्म, तांबेकी भस्म, पारेकी भस्म, शुद्ध हरिताल, शुद्ध गंधक, मारंगी, सोंठ, खिरैटी, धनियां, कायफल, हरड, विष इन सबोंको समान भाग लेकर पीपलके काथमें पीसकर दो दो मासेकी गोलियां बना लेवे। इन गोलियोंका सेवन करनेसे सर्व प्रकारके वात और कफके रोग दूर होते हैं। इसको महावातगजांकुश रस कहते हैं ॥ ९४ ॥

वातनाशनो रसः ।

सूतहाटकवज्राणि ताम्रं लोहं च माक्षिकम् । तालं नीलांजनं तुत्थं सिन्धूफेनं समांशिकम् ॥ पंचानां लवणानां च भागैकं सुविमर्दयेत्। वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वा तं भूधरे पचेत् ॥ माषैकमार्द्रकद्रावैर्लिह्याद्वातविनाशनः । पिप्पलीमूलकक्काथं सकृष्णमनुपाययेत् ॥ सर्वान् वातविकारांश्च निहंत्याक्षेपकादिकान् ॥ ९५ ॥

भाषा-पारेकी भस्म, सोनेकी भस्म, हीरेकी भस्म, तांबेकी भस्म, लोहेकी भस्म, शुद्ध सोनामक्खी, शुद्ध हरिताल, नीलांजन, तूतिया, समुद्रफेन और पंचलवण ये सब समान भाग लेकर एक दिन थूहरके दूधमें खरल करे। फिर भूधरयंत्रमें पकाकर

एक मासे अदरखके रसमें मिलाकर खाय तो सर्व प्रकारके वातरोग दूर होवें। यह वातनाशनरस सर्व प्रकारके आक्षेपादि वातरोगोंको दूर करे है ॥ ९५ ॥

वातारिरसः।

रसभागो भवेदेको द्विगुणो गंधको मतः। त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागं तु चित्रकम् ॥ गुग्गुलोः पंचभागमेरण्डतैलेन मर्द्दयेत्। क्षिप्त्वात्र पूर्वकं चूर्णं पुनस्तैलेन मर्द्दयेत् ॥ गुटिकां कर्षमात्रां तु भक्षयेत् प्रातरुत्थितः। नागरैरण्डमूलानां क्वाथं तदनु पाययेत् ॥ अंगमेरण्डतैलेन स्वेदयेत् पृष्ठदेशतः। विरेके तेन संजाते स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् ॥ वातारिसंज्ञको ह्येष रसो निर्वातसेवितः ॥ ९६ ॥

भाषा-पारा १ भाग, गंधक २ भाग, त्रिफला ३ भाग, चीता ४ भाग और गूगल ५ भाग लेवे। प्रथम अंडीके तेलमें गूगलको खरल करे फिर उसमें पारे आदिको मिला लेवे, पश्चात् दूसरी वार फिर अंडीके तेलमें सबोंको एकत्र खरल करे। तदनन्तर एक एक तोलेकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल मुख धोकर एक गोली खाय और सोंठ तथा अंडीके तेलका पीठपर स्वेद देवे। इससे विरेचन होता है। इसपर स्निग्ध और उष्ण भोजन करे। इस वातारि संज्ञक रस-को सेवन करनेवाला मनुष्य निर्वात स्थानमें रहे। यह रस सर्व प्रकारके वातके रोगोंको दूर करे है ॥ ९६ ॥

अनिलारिरसः।

रसेन गंधं द्विगुणं विमर्द्य वातारिनिर्गुण्डीरसैर्दिनैकम्। निवेशयेत्ताम्रमये पुटे तत् सर्वं मृदावेष्ट्य च वालुकाख्ये ॥ यन्त्रे पुटेद्गोमयचूर्णवह्नौ स्वभावशीते तु समुद्धरेत्तत्। निर्गुण्डिका-वातहराग्नितोयैः संचूर्ण्य यत्नेन विभावयेत्तत् ॥ रसोऽनिलारिः कथितोऽस्य वल्लमेरण्डतैलेन ससैन्धवेन। मरीचचूर्णेन च सर्पिषा वा निर्गुण्डिचित्रैश्च कटुत्रिकैर्वा ॥ ९७ ॥

भाषा-पारा १ भाग और गंधक २ भाग दोनोंको एकत्र अंड और निर्गुण्डीके रसमें एक दिन खरल करे फिर तांबेके सम्पुटमें रखकर मृत्तिकासे लेपकर वालुकायंत्रमें अरने उपलोंकी आंचसे पकावे जब स्वयं शीतल हो जाय तब उतार-

कर चूर्णकर लेवे फिर संभालू, अंड और चीतेके रसकी सात सात भावना देकर तीन तीन रत्तीकी गोलियां बना लेवे । यह औषधि अंडीका तेल और सैंधानोनके साथ या काली मिरच मिलाकर घीके साथ अथवा त्रिकुटेका चूर्ण मिलाकर संभालू और चीतेकी जडके रसके साथ सेवन करे इससे सर्व प्रकारके वातरोग दूर होते हैं ॥ ९७ ॥

वातकण्टको रसः ।

वज्रं मृताभ्रहेमार्कतीक्ष्णमुण्डं क्रमोत्तरम् । मरिचं मर्दयेदम्लव- र्गेण दिवसत्रयम् ॥ द्विक्षारं पंचलवणं मर्दितं स्यात् समं समम् । ततो निर्गुण्डिकाद्रावैर्मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ शुष्कमेतद्विचूर्ण्याथ विषं चास्याष्टमांशतः । टंकणं विषतुल्यांशं दत्त्वा जम्बीरज- द्रवैः ॥ भावयेद्दिनमेकं तु रसोऽयं वातकंटकः । दातव्यो वात- रोगेषु सन्निपाते विशेषतः ॥ द्विगुंजमार्द्रकद्रावैर्घृतैर्वा वातरोगि- णे । निर्गुण्डीमूलचूर्णन्तु महिषाक्षं च गुग्गुलम् ॥ समांशं मर्द- येदाज्ये तद्वटी कर्षसम्मिता । अनुयोज्या घृतैर्नित्यं स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् ॥ मण्डलं नाशयेत् सर्वं वातरोगं विशेषतः। सन्नि- पाते पिबेच्चानु तालमूलीकषायकम् ॥ ९८ ॥

भाषा-हीरा १ भाग, अभ्रक २ भाग,सोना ३ भाग, तांबा ४ भाग, तीक्ष्ण लोहा ५ भाग, मण्डूर ६ भाग और काली मिरच ७ भाग सबोंको एकत्रकर अम्ल- वर्गमें तीन दिन खरल करे । फिर जवाखार, सज्जी और पंचलवण प्रत्येक एक एक भाग मिलाकर संभालूके रसमें तीन दिन खरल करे । जब सूख जाय तब चूर्ण कर ले। फिर उसमें आठवां भाग विष और आठवां भाग सुहागा मिलाकर जम्मीरी नीबूके रसमें एक दिन खरल करे तो वातकण्टकरस तैयार हो । फिर दो दो रत्तीकी गोलियां बनाकर वातरोग और सन्निपात रोगमें देवे । इसको वातकण्टकरस कहते हैं । अदरखके रसके साथ या घृतके साथ इस औषधिको सेवन करके संभालूकी जड और गूगल बराबर घीमें मर्दन कर उसको दो तोले घृतके साथ भक्षण करे । इस औषधिपर उष्ण अन्न पथ्य है। इससे मण्डल और वातरोग नष्ट होता है । सन्निपातमें इस औषधिको सेवन करके ऊपरसे मूसलीका काथ पीवे ॥९८॥

लघ्वानन्दरसः ।

पारदं गंधकं लोहमभ्रकं विषमेव च । समांशं मरिचस्याष्टौ

टंकणं तु चतुर्गुणम् ॥ भृंगराजरसेनैव दातव्याः पंच भावनाः । तथा दाडिमतोयेन वटीं कुर्यात् समाहितः ॥ निहंति वातजान् रोगान् भ्रमदाहपुरःसरान् ॥ ९९ ॥

भाषा-पारा, गंधक, लोहा, अभ्रक और विष ये सब एक २ भाग, काली मिरच ८ भाग और सुहागा ४ भाग इन सबोंको एकत्र करके भांगरेके रसमें पांच वार और अनारके रसमें पांच वार भावना देवे । रोगीका बलाबल विचार कर गोली बनाकर यथामात्राके अनुसार देवे । यह लब्धानन्द रस भ्रम और दाहयुक्त वातज रोगोंको दूर करे है ॥ ९९ ॥

चिन्तामणिरसः ।

कर्षैकं रससिन्दूरं तत्समं मृतमभ्रकम् । तदर्द्धं मृतलोहं च स्वर्णं शाणं क्षिपेद् बुधः ॥ कन्यारसेन संमर्द्य गुंजामानां वटीं चरेत् । अनुपानादिकं दद्याद् बुद्ध्वा दोषबलाबलम्॥ हन्ति श्लेष्मान्वितं वातं केवलं पित्तसंयुतम् । हृल्लासमरुचिं दाहं वार्ति भ्रांतिं शिरोग्रहम् ॥ प्रमेहं कर्णनादं च जडगद्गदमूकताम् । बाधिर्यं गर्भिणीरोगमश्मरीं सूतिकामयान् ॥ प्रदरं सोमरोगं च यक्ष्माणं ज्वरमेव च । बलवर्णाग्निदः सम्यक् कान्तिपुष्टिप्रसाधकः ॥ चिन्तामणिरसश्चायं चिन्तामणिरिवापरः ॥ १०० ॥

भाषा-रससिंदूर २ तोले, अभ्रककी भस्म २ तोले, लोहेकी भस्म १ तोला और सोनेकी भस्म अर्धातोला सबोंको एकत्र घीगुवारके रसमें खरल करके एकएक रत्तीकी गोलियां बना लेवे । दोषोंका बलाबल विचार अनुपानका निश्चय करे । यह चिन्तामणि रस कफयुक्त वात, केवलवात, पित्तयुक्त वात, हल्लास, अरुचि, दाह, वान्ति, भ्रान्ति, शिरोग्रह, प्रमेह, कर्णनाद, जडता, गद्गदपना, मूकता, बधिरता, गर्भिणीके रोग, अश्मरी, सूतिकारोग, प्रदर, सोमरोग, राजयक्ष्मा, ज्वर इत्यादि रोगोंको दूर करे है । बल और वर्णको सुंदर करनेवाला, कान्तिजनक, पुष्टिकारक यह चिन्तामणिरस चिन्तामणिरत्नकी समान है ॥ १०० ॥

चतुर्मुखोरसः ।

रसगन्धकलोहाभ्रं समं सूताग्निहेम च । सर्वं खल्वतले क्षिप्त्वा कन्यास्वरसमर्दितम्॥ एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम् ।

संस्थाप्य च तदुद्धृत्य त्रिफलारससंयुतम् ॥ एतद्रसायनवरं सर्वरोगेषु योजयेत् । तद्यथाग्निबलं खादेद्वलीपलितनाशनम् ॥ पौष्टिकं बल्यमायुष्यं पुत्रप्रसवकारकम् । क्षयमेकादशविधं कासं पंचविधं तथा ॥ कुष्ठमेकादशविधं पांडुरोगान् प्रमेहकान् । शूलं श्वासं च हिक्कां च मन्दाग्निं चाम्लपित्तकम् ॥ अपस्मारं महोन्मादं सर्वार्शांसि त्वगामयान् । क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ जगतां च हितार्थाय चतुर्मुखमुखोदितः । रसश्चतुर्मुखो नाम चतुर्मुख इवापरः ॥ १०१॥

भाषा-पारा, गंधक, लोहा और अभ्रक ये प्रत्येक चार चार भाग, सोना १ भाग, सबोंको खरलमें डालकर घीगुवारके रसमें खरल करे, फिर अंडके पत्तोंसे वेष्टित कर धानोंकी ढेरमें तीन दिन रक्खे,तदनंतर निकालकर चूर्ण कर लेवे।इसका त्रिफलेके रसमें मिलाकर सर्व रोगोंमें प्रयोग करे । यह उत्तम रसायन है । इसको अग्निका बलाबल विचारकर सेवन करे। यह वलीपलितरोगोंको दूर करे है। पुष्टिकारक, बलकारक, आयुको बढानेवाला, पुत्रको उत्पन्न करनेवाला तथा ग्यारह प्रकारके क्षयरोग, पांच प्रकारकी खांसी, ग्यारह प्रकारका कोढ, पाण्डुरोग, प्रमेह, शूल, श्वास, हिक्का, मंदाग्नि, अम्लपित्त, अपस्मार, महोन्माद, सर्व प्रकारकी बवासीर और सर्व प्रकारके त्वचाके रोगोंको दूर करे है । जैसे इन्द्रके वज्रसे वृक्षोंकी श्रेणी नष्ट होती है । यह जगत्‌के हितके लिये स्वयं चतुर्मुख (ब्रह्माजी) ने निर्माण किया है । यह चतुर्मुखरस चतुर्मुखकी समान है ॥ १०१ ॥

लक्ष्मीविलासो रसः ।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धौ रसगंधकौ । बला नागबला भीरुविदारीकन्दमेव च ॥ कृष्णधत्तूरनिचुलं गोक्षुरवृद्धदारयोः । बीजं शक्राशनस्यापि जातीकोषफले तथा ॥ कर्पूरं चैव कर्षांशं श्लक्ष्णचूर्णं पृथक् पृथक् । गृहीत्वा चाष्टमांशेन स्वर्णं पर्णरसेन च ॥ वटिकां स्विन्नचणकप्रमाणां कारयेद्भिषक् । रसो लक्ष्मीविलासोऽयं पूर्ववद्गुणकारकः ॥ १०२ ॥

भाषा-कृष्णाभ्रककी भस्म ४ तोले, पारा और गंधक २ तोले, खिरैटी, गंगेरन, शतावर, विदारीकंद, काला धतूरा, समुद्रफल, गोखरू, विधायरा, भांगके

बीज, जायफल और कपूर प्रत्येक एक एक कर्ष लेवे, सबोंको अलग २ बारीक पीस लेवे, इसमें आठ भाग सोना मिलाकर भूने हुए चनेकी समान गोलियां बना लेवे। यह लक्ष्मीविलासरस चतुर्मुखरसकी समान गुणवाला है ॥ १०२ ॥

रोगेभसिंहः।

सूताद्द्वयोर्घनवरानलवेल्लभार्ङ्गीतिक्ताकटुत्रयविषैः सवचैः समांशैः। रोगेभसिंह इति वातकफामयघ्नः सान्द्रोऽयमल्पपटुता विहितो द्विगुञ्जः ॥ १०३ ॥

भाषा-पारा २ भाग, नागरमोथा, त्रिफला, वायविडंग, भारंगी, त्रिकुटा, विष और वच प्रत्येक एक एक भाग, सबोंको पीसकर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे। यह रोगेभसिंहरस वातकफके रोगोंको दूर करे है ॥ १०३ ॥

श्रीखण्डवटी।

एतैर्गुडप्रमृदितै रसवर्जितैः स्यात् श्रीखण्डनामगुटिका विहिता द्विगुंजा। शैत्याद्यजीर्णकफवातभवान् विकारान् हन्त्यार्द्रकेण नियुताप्यथ केवला वा ॥ १०४ ॥

भाषा-पूर्वोक्त रसमें रससिन्दूर निकालकर शेष सब पदार्थ बराबरके गुडमें मिलाकर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे। इसको श्रीखण्डवटी कहते हैं। यह शैत्य, अजीर्ण और कफवातोद्भव रोगोंको दूर करे है। यह गोली अदरखके रसके साथ या इकलीही सेवन करे ॥ १०४ ॥

पिंडीरसः।

सूतात् पंचार्कतश्चैकं कृत्वा पिण्डं सुगंधकम्। सूतांशं नागवल्याश्च द्रवैः पिष्ट्वा प्रलेपयेत् ॥ ताम्रपत्रीं प्रलिप्तां तां रुद्ध्वा गजपुटे पचेत्। द्विगुंजाह्यूपणेनार्द्धवपुर्वातं सकम्पकम् ॥ निहन्ति दाहसंतापमूर्च्छापित्तसमन्वितम् ॥ १०५ ॥

भाषा-पारा ५ भाग, गंधक ५ भाग और तांबा १ भाग, सबोंको एकत्र करके पानोंके रसमें खरल करे, फिर इस खरल किये हुए द्रव्यसे एक तांबेके टुकडेको लेप देवे, फिर उस तांबेके टुकडेको एक मिट्टीकी हांडीमें रखकर गजपुटमें पकावे, फिर निकालकर चूर्ण कर लेवे। इस चूर्णको दो रत्तीप्रमाण सेवन करे तो कम्पसहित तथा दाह, मूर्छा, सन्ताप और पित्तसमन्वित अर्द्धांगवात नष्ट होता है। इसको पिण्डीरस कहते हैं ॥ १०५ ॥

कुब्जविनोदो रसः ।

रसगंधौ समौ शुद्धौ चाभयां तालकं तथा । विषं कटुकी व्योषं च बोलजैपालकौ समौ ॥ भृंगराजरसैर्मर्द्यं स्नुह्यर्कस्यरसैस्तथा । गुंजाद्वयं भक्षयेच्च हृच्छूलं पार्श्वशूलकम् ॥ आमवाताढ्यवातादीन् कटीशूलं च नाशयेत् । अग्निं च कुरुते दीप्तं स्थौल्यं चाप्यपकर्षति ॥ १०६ ॥

भाषा–पारा, गंधक, हरड, हरिताल, विष, कुटकी, त्रिकुटा, गंधबोल और जमालगोटा ये सब समान भाग लेकर भांगरेके रसमें, थूहरके रसमें और आकके स्वरसमें भावना देवे । इसको दो गुंजा प्रमाण भक्षण करे तो हृदयशूल, पार्श्वशूल, आमवात, आढ्यवात, कटीशूल और स्थूलता दूर होती है तथा अग्नि दीपन होती है ॥ १०६ ॥

शीतारिरसः ।

रसेन गंधं द्विगुणं प्रगृह्य पुनर्नवाग्निस्वरसैर्विभाव्य । पक्वार्कपत्रस्य रसेन पश्चाद्विपाचयेदष्टगुणेन यत्नात् ॥ रसार्द्धभागं च विषं च दत्त्वा विपाचयेदग्निजले क्षणं तत् । शीतारिसंज्ञस्य रसायनस्य वल्लं च सार्द्धं मरिचार्द्रकेण ॥ मरीचचूर्णेन घृताप्लुतेन सेवेत मांसं च घृतं च पथ्यम् ॥ १०७ ॥

भाषा–पारा १ भाग और गंधक २ भाग, दोनोंको एकत्र करके पुनर्नवा और चीतेके स्वरसकी भावना देवे, फिर आठगुने आकके पके हुए पत्तोंके रसोंके साथ वालुकायंत्रके द्वारा अंधमूषामें पकावे, उसमें पारेका आधा भाग विष मिला लेवे, फिर क्षणभर चीतेके रसमें पकावे पश्चात् तीन २ रत्तीकी गोलियां बना लेवे । इन गोलियोंको काली मिरचोंका चूर्ण और घीमें मिलाकर भक्षण करे । यह शीतारि रस शीतवातादिक सम्पूर्ण वातविकारोंको नष्ट करता है इसपर मांस और घृत पथ्य है ॥ १०७ ॥

वातविध्वंसिनो रसः ।

सूतमभ्रकसत्वं च कांस्यं शुद्धं च माक्षिकम् । गंधकं तालकं

१ हिमवन्ति हि गात्राणि रोमाणि स्फुरितानि च । शिरोक्षिवेदनालस्यं शीतवातस्य लक्षणम् ॥ १ ॥
अर्थ–सम्पूर्ण शरीर बर्फकी समान शीतल हो, रोमका स्फुरण होना, शिरमें दर्द, नेत्रोंमें दर्द और आलस्य ये सब शीतवातके लक्षण जानने ॥ १ ॥

सर्वं भागोत्तरविवर्द्धितम् ॥ कज्जलीकृत्य तत्सर्वं वातारिस्नेहसं-
युतम् । सप्ताहं मर्दयित्वा तु गोलकीकृत्य यत्नतः ॥ निम्बुद्रवेण
संपीड्य तिलकल्केन लेपयेत् । अर्द्धाङ्गुलदलेनैव परिशोष्य
प्रयत्नतः ॥ प्रपचेद्वालुकायन्त्रे द्वादशप्रहरं ततः । जठरस्य रुजः
सर्वास्तथा च मलविग्रहम् ॥ आध्मानकं तथानाहं विषूचीं वह्नि-
मान्द्यकम् । आमदोषमशेषं च गुल्मं छर्दिं च दुर्जराम् ॥ ग्रहणीं
श्वासकासौ च कृमिरोगं विशेषतः । हन्यात् पूर्वाङ्गशूलं च
मन्यास्तम्भं तथैव च ॥ ज्वरे चैवातिसारे च शूलरोगे त्रिदोषजे ।
पथ्यं रोगानुसारेण देयमस्मिन् भिषग्वरैः ॥ गहनानन्दनाथेन
वातविध्वंसिनो रसः ॥ १०८ ॥

भाषा–पारा १ भाग, अभ्रकका सत्व २ भाग, कांसा ३ भाग, सोनामक्खी ४ भाग, गंधक ५ भाग, हरिताल ६ भाग सबोंको एकत्र पीसकर अंडके तेलमें एक सप्ताह खरल करे फिर नींबूके रसमें खरल करके गोला बना लेवे। फिर उस गोलेपर तिलके कल्कका आधा अंगुल लेप लेवे, फिर धूपमें सुखाकर बारह प्रहरतक वालुकायंत्रमें पकावे जब स्वयं शीतल हो जाय तब निकालकर चूर्ण कर लेवे । इसको दो रत्तीप्रमाण भक्षण करे । इससे सर्व प्रकारके उदररोग, मल-विग्रह, आध्मान, विषूचिका, मंदाग्नि, आमदोष, गुल्म, वमन, संग्रहणी, श्वास, कृमिरोग, पूर्वांगशूल, मन्यास्तम्भ, ज्वर, अतिसार और त्रिदोषज शूलरोग दूर होता है । इसपर रोगानुसार पथ्य देवे । यह श्रीमान् गहनानन्दनाथने निर्म्माण किया है ॥ १०८ ॥

पलाशादिवटी ।

पलाशबीजोत्थरसेन सूतं गन्धेन युक्तं त्रिदिनं विमर्द्य । श्लक्ष्णी-
कृतं तद्विपतिन्दुबीजं संयोजयेदस्य कलाप्रमाणम् ॥ माषद्वयं
निष्कमितं प्रयत्नादर्शांसि हंत्याशु नियोजनीयम् । वातरक्तं
तथा शोषमस्पर्शाख्यानिलामयम् ॥ वातवत् पित्तरोगेपि तत्र
पित्तेन भावयेत् । पलाशादिवटी ख्याता वातरोगकुलान्तका १०९॥

भाषा–पारा और गंधक समान भाग लेकर ढाकके बीजोंके रसमें तीन दिन खरल करे, फिर इसमें आधा भाग तेंदुके बीजोंका चूर्ण मिलाकर २ मासे अथवा

एक एक निष्ककी गोलियां बना लेवे । इन गोलियोंको भक्षण करनेसे बवासीर दूर होती है । तथा वातरक्त, शोष और अस्पर्शाख्य वातरोग दूर होता है। इसका पित्तरोगमेंभी प्रयोग करे, परन्तु पित्तरोगमें प्रयोग करे जब उसको पंच पित्तोंमें भावना देवे । यह पलाशादिवटी वातरोगोंको दूर करे है ॥ १०९ ॥

दशसारवटी ।

यष्टी धात्री वरा द्राक्षा एला चंदनवालकम् । मधुपुष्पं च खर्ज्जूरं दाडिमं पेषयेत् समम् ॥ सर्वतुल्या सिता योज्या पलार्द्धं भक्षयेत् सदा । दशसारवटी ख्याता सर्ववातविकारनुत् ॥ अथ दाडिममित्यत्र गणमिच्छन्ति चापरे ॥ ११० ॥

भाषा-मुलहठी, आमला, खिरेटी, दाख, इलायची, चंदन, सुगंधवाला, महुएके फूल, खजूर और अनारदाना ये सब समान भाग और सबकी बराबर मिश्री मिला लेवे । प्रतिदिन दो दो तोले भक्षण करे । इसको दशसारवटी कहते हैं । यह सर्व प्रकारके वातके विकारोंको दूर करे । यहां दाडिमके स्थानमें कोई कोई वैद्य दाडिमादिगण ऐसा पाठ करते हैं ॥ ११० ॥

गगणादिवटी ।

मृतगगणरसार्कं मुण्डतीक्ष्णं सताप्यं सबलिसममिदं स्याद् यष्टितोयप्रपिष्टम् । तदनु सलिलजातैर्वासकैर्गोस्तनीभिर्मृदितमनु विदारीवारिणा घस्रमेकम् ॥ घृतमधुसहितेयं निष्कमात्रा वटीति क्षपयति गुरुवातं पित्तरोगं क्षयं च । भ्रममदकफशोषान् दाहतृष्णासमुत्थान् मलयजमिह पेयं चानुपेयं सचन्द्रम् ॥ १११ ॥

भाषा-अभ्रककी भस्म, रससिंदूर, तांबा, मुण्डलोहा, तीक्ष्णलोहा, सोनामक्खी, गंधक और पारा ये सब समान भाग लेकर मुलहठीके क्काथमें पीसे । फिर अडूसा, दाख और विदारीकंदके रससें एक दिन खरल करे, फिर एक एक निष्क की गोली बनाकर प्रतिदिन एक गोली घृत और सहतमें मिलायके खाय । यह गगणादिवटी महावातरोग, पित्तरोग, क्षयरोग, भ्रम, मद, कफ, शोष, दाह और तृषाको दूर करे है । अनुपान चन्दनके क्काथमें कपूर डालकर पीवे ॥ १११ ॥

सर्वांगसुन्दरो रसः ।

शुद्धसूताभ्रताम्रायो हिंगुलं कार्षिकं समम् । गन्धकश्चैकभागः स्यात् सर्वमेकत्र मर्द्दयेत् ॥ सप्तपर्णार्कस्नुक्क्षीरवासावातारिवा-

रिणा। विषमुष्टिसमं सर्वं पेष्यं तद्गोलकीकृतम्॥ विपचेद् वालुकायंत्रे द्वियामान्ते समुद्धरेत्। पिप्पलीविषसंयुक्तो रसः सर्वाङ्गसुन्दरः॥ सर्ववातविकारघ्नः सर्वशूलनिषूदनः॥ ११२॥

भाषा–शुद्ध पारा, अभ्रक, तांबा, सिंगरफ और गंधक ये सब दो दो तोले लेकर खरल करके सतवन, आक और थूहरका दूध, अडूसा और अंडके रसकी भावना देवे; फिर इसमें दो तोले कुचिला मिलाकर सबोंको पीसकर गोला बना लेवे, पश्चात् वालुकायंत्रमें इस गोलेको पकाकर निकाल लेवे, फिर इसमें पीपल और विष मिलावे तो सर्वांगसुन्दररस तैयार हो। यह सर्व प्रकारके वात और सर्व प्रकारके शूलोंको दूर करे है॥ ११२॥

तालकेश्वरः।

एको भागो रसस्य स्याच्छुद्धस्तालैकभागिकः। अष्टौ स्युर्विजयायाश्च गुटिकां गुडतश्चरेत्॥ एकैकां भक्षयेत् प्रातश्छायायामुपवेशयेत्। तालकेश्वरनामायं रोगश्चास्पर्शनाशनः॥ ११३॥

भाषा–रससिंदूर रस १ भाग, शुद्ध हरिताल १ भाग, भांग ८ भाग और गुड १० भाग सबोंको एकत्र खरल करके गुटिका बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली खाय और छायामें बैठे। यह तालकेश्वररस अस्पर्शवातरोगको दूर करे है॥ ११३॥

त्रैलोक्यचिन्तामणिरसः।

हीरं सुवर्णं सुमृतं तु तारमेषां समं तीक्ष्णरजश्चतुर्णाम्। समं मृताभ्रं शिववीर्य्यभस्म निष्पिष्टतीक्ष्णस्य तथाश्मनो वा॥ खल्वे द्रवेणैव कुमारिकाया गुंजाप्रमाणां वटिकां प्रकुर्यात्। त्रैलोक्यचिन्तामणिरेष नाम्ना संपूज्य सम्यग् गिरिजां दिनेशम्॥ हन्त्यामयान् योगशतैर्विवर्ज्यामयप्रणाशाय मुनिप्रणीतः। अस्य प्रसादेन गदानशेषान् जरां विनिर्जित्य सुखं विभाति॥ स्निग्धे श्लेष्मण्यार्द्रकस्य रसेन पाययेत् सुधीः। शुष्के च माक्षिकेणैव पित्ते घृतसितायुतम्॥ श्लेष्मणि मारुते सम्यग् दुष्टे च समतां गते। कणाचूर्णं क्षौद्रयुतं प्रमेहे दुग्धसंयुतम्॥ बलवर्णाग्निजननः कासघ्नः कफवातजित्। आयुःपुष्टिकरो वृष्यः सर्वरोगनिषूदनः॥ ११४॥

भाषा–हीरा, सोना, मोती और तीक्ष्ण लोहा प्रत्येकका चूर्ण एक एक भाग, अभ्रक ४ भाग और रससिंदूर ४ भाग सबोंको एकत्र करके लोहा, पत्थर अथवा घीगुवारके रसमें खरल करे । इसको त्रैलोक्यचिंतामणिरस कहते हैं । एक एक रत्तीकी गोली बना लेवे । प्रथम अच्छे प्रकारसे पार्वती और सूर्य्यका पूजन कर पश्चात् प्रतिदिन एक गोली खाय । जो रोग सैकडों औषधि सेवन करनेसे आराम नहीं होते वे रोग इस औषधिके सेवन करनेसे तत्काल आराम हो जाते हैं । इस औषधिके प्रभावसे सर्व प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं । रोगीका शरीर स्निग्ध होय तो अदरखके रसके साथ यह औषधि सेवन करे । कफ और वायुका कोप होय तो पीपलका चूर्ण और सहतके साथ तथा प्रमेहरोगमें दूधके साथ पीवे । इस औषधिको सेवन करनेसे बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है एवं खांसी और वातरोग दूर होवे । आयु और पुष्टिवर्द्धक, वृष्य और सर्व रोगोंको हरनेवाली है ॥ ११४ ॥

इति वातव्याधिरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ वातरक्तरोगनिदानम् ।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः । क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः । प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् ॥ स्थूलानां सुखिनां चापि कुप्यते वातशोणितम् ॥ १ ॥

भाषा–निमक, खटाई, चरपरे, खारी, चिकने, गरम और अजीर्ण (कच्चे) पदार्थ खानेसे या ऊपरोक्त पदार्थोंको अजीर्णमें भक्षण करनेसे, सडे हुए या सूखे जलचर जीवोंके मांसको सेवन करनेसे तथा जलके निकट रहनेवाले जीवोंके मांसको खानेसे, तिलकल्क (खल), मूली, कुलथी, उडद, सेम, शाक, ईख, साधारण मांस, दही, कांजी, सौवीर (कांजीविशेष), शुक्त (सिर्का), तक्र, सुरा, आसव, और विरुद्ध द्रव्य (संयोग, देश, काल और मात्राविरुद्ध द्रव्य) इन सब पदार्थोंको भक्षण करनेसे तथा भक्षण किया हुआ भोजन नहीं पचे फिर कभी अवस्थामेंही भोजन कर ले, क्रोध, दिनमें सोना और रात्रिमें जागना आदि कारणोंसे कोमल और स्थूलकायवाले सुखी मनुष्योंके वायु और रक्त दूषित हो जाते हैं ॥ १ ॥

वातरक्तकी संप्राप्ति ।

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्च विदाह्यन्नं सविदाहोऽशनस्य । कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च दुष्टं स्रस्तं पादयोश्चीयते तु ॥ तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ॥ २ ॥

भाषा–हाथी, घोडा और ऊंटपर चढकर चलनेवाले मनुष्योंके, दाहकारक अन्नपान सेवन करनेसे तथा विदाह अवस्थामें भोजन करनेसे शरीरका सम्पूर्ण रुधिर जलकर पांवोंमें संचित होता है वह रुधिर दुष्ट वातसे मिल जाता है तब दोनोंकी प्रबलतासे इसको वातरक्त कहते हैं ॥ २ ॥

पूर्वरूप ।

स्वेदोऽत्यर्थं न वा कार्ष्ण्यं स्पर्शाज्ञत्वं क्षतेऽतिरुक् । सन्धिशैथिल्यमालस्यं सदनं पीडिकोद्गमः॥ जानुजंघोरुकट्यंशहस्तपादाङ्गसंधिषु । निस्तोदः स्फुरणं भेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥ कण्डूः संधिषु रुग् भूत्वा भूत्वा नश्यति चासकृत् । वैवर्ण्यं मंडलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥ ३ ॥

भाषा–पसीना बहुत आवे; या बिलकुल नहीं आवे, जिस स्थानमें रोग उत्पन्न हो उस स्थानमें स्पर्शका ज्ञान नष्ट हो जाय तथा वह स्थान काला पड जाय, जो घाव होय तो उसमें अत्यन्त पीडा हो, संधिबन्धन शिथिल हो जांय; आलस्य हो, अंग रह जाय; शरीरका रंग बुरा हो जाय, कृशता और पिडिका हो तथा जानु, जंघा; ऊरू, कटि, स्कन्ध, हस्त, पांव और संधिस्थानोंमें सुईके चुभानेकी समान पीडा हो और विदारणकी समान पीडा हो, अंग फडके, भारीपन हो, शरीर शून्य हो जाय, खुजली हो, संधियोंमें पीडा हो, वारंवार दाह उत्पन्न हो और तत्काल नष्ट हो जाय और शरीरमें मण्डलकी समान चकत्ते हो जांय । यह वातरक्तका पूर्वरूप है ॥ ३ ॥

वाताधिकके लक्षण ।

वातेऽधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणभंजनम् । शोथस्य रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावता वृद्धिहानयः ॥ धमन्यंगुलिसन्धीनां संकोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् । शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः ॥ ४ ॥

भाषा–वाताधिक वातरक्तमें शूल, अंगोंका फडकना और नोचनेकेसी पीडा होना, सूजन, रूक्षता, कृष्णता या नीलापन तथा वातरक्तके लक्षणोंकी वृद्धि

अथ वातरक्तरोगचिकित्सा।

काथचूर्णयूषादिक्रिया।

अमृता नागरं धान्यं कर्षत्रयेण पाचनं सिद्धम्। जयति सरक्तं वातं सामं कुष्ठान्यशेषाणि॥ आढकाश्चणका मुद्गा मसूराः समुकुष्ठकाः। यूषार्थे बहुसर्पिष्काः प्रशस्ता वातशोणिते॥ पुराणा यवगोधूमनीवाराः शालिषष्टिकाः। भोजनार्थे हिता गव्यमाहिषाजपयो हितम्॥हरीतकी प्राश्य समं गुडेन तिस्रोऽथ वा पंच ततो गुडूच्याः। क्वाथेऽनुपीतः शमयत्यवश्यं प्रभिन्नमाजानुजवातरक्तम्॥ शम्याकामृतवासानामेरण्डस्नेहसंयुतम्। पीत्वा क्वाथमसृग्वातं क्रमात्सर्वाङ्गजं जयेत्॥गोधूमचूर्णाजपयो घृतं च सच्छागदुग्धोरुबुबीजकल्कः। लेपो विधेयः शतधौतसर्पिः सेके पयश्चाविकमेव शस्तम्॥ गुडूच्याः स्वरसं कल्कं चूर्णं वा क्काथमेव वा। प्रभूतकालमासेव्यमुच्यते वातशोणितात्॥ नारिकेलस्य वै पुष्पं छागीक्षीरेण संयुतम्। पिबेच्च त्रिविधस्तस्य रक्तवातो विनश्यति॥ १२॥

भाषा–गिलोय, सोंठ और धनियां प्रत्येक दो २ तोले लेकर आधा सेर जलमें औटावे जब आधपाव बाकी रह जाय तब छानकर पी लेवे, इससे सामवातरक्त और सर्व प्रकारके कुष्ठरोग नष्ट हो जाते हैं। अरहर, चने, मूग, मसूर और मोठ इनका यूष बनाकर अधिक घृतके साथ सेवन करे। यह वातरक्तरोगमें हितकारी है। पुराने जौ, गेहूं, नीवार, शालिधान और साठीधान ये सब अन्न तथा गाय, भैंस और बकरीका दूध भोजनके लिये हितकारी है। तीन या पांच हरडोंको गुडके साथ खाकर गिलोयका क्वाथ पीवे तो जानुपर्यंत प्रकाशित वातरक्तरोग दूर हो जाता है। अमलतासकी मींग, गिलोय और अडूसेके पत्ते प्रत्येक दो तोले लेकर आधसेर जलमें पकावे जब आधपाव बाकी रह जाय तब उतारके छान लेवे, फिर इसमें अंडीका तेल डालकर पीवे तो सर्वांगव्याप्त रक्तवातरोग दूर होता है। गेहूका चून, बकरीका दूध, बकरीका घी, अंडीके बीज और सौवार धुला हुआ

घी इनका प्रलेप करनेसे तथा भेडके दूधको सेवन करनेसे विशेष लाभ होता है। गिलोयके स्वरसको या गिलोयको पीसकर पीनेसे अथवा चूर्ण करके खानेसे या काथ बनाकर बहुत दिनोंतक पीनेसे वातरक्तरोग दूर होता है। नारियलके फूलको बकरीके दूधमें पीसकर बकरीके दूधके साथ दिनमें तीन वार पीनेसे वातरक्तरोग दूर होता है ॥ १२ ॥

नवकार्षिकः।

त्रिफला निम्बमंजिष्ठा चाथवा कटुरोहिणी। वत्सादनी दारुनिशा कषायो नवकार्षिकः ॥ वातरक्तं तथा कुष्ठं पामानं रक्तमण्डलम्। कण्डूं कापालिकां कुष्ठं पानादेवापकर्षति ॥ पंचरक्तिकमाषेण कार्योऽयं कार्षिको नवः ॥ १३ ॥

भाषा-त्रिफला (हरड, बहेडा, आमला), नीमकी छाल, मजीठ वा कुटकी, गिलोय और दारुहलदी प्रत्येक औषधि पांच रत्तीके मासेके हिसाबसे दो दो तोले लेकर आधसेर जलमें औटावे जब चौथाई रहे तब उतारकर छान ले। फिर वातरक्त, कुष्ठ, पामा, रक्तमण्डल, कण्डू और कापालिका, विलम्बिका, कुष्ठ आदि रोग नष्ट होवें, परन्तु मेरी बुद्धिके अनुसार दोदो तोले औषधी बहुत है आठ आठ मासे चाहिये। अधिक औषधि रोगीके लिये हानिकारक है ॥ १३ ॥

अमृतांकुरलोहम्।

हुताशमुखसंशुद्धं पलमेकं रसस्य वै। पलं लोहस्य ताम्रस्य पलं भल्लातकस्य च ॥ गंधकं च पलं चैकमभ्रकस्य च गुग्गुलोः। हरीतकीविभीतक्योश्चूर्णं कर्षद्वयं द्वयोः ॥ अष्टमाषाधिकं तत्र धात्र्याः पाणितलानि षट्। घृतं द्व्यष्टगुणं लोहाद्द्वात्रिंशत्रिफलाजलम् ॥ एकीकृत्य पचेत्पात्रे लोहे च विधिपूर्वकम्। पाकमेतस्य जानीयात्कुशलो लोहपाकवित् ॥ विबुद्धय प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकाः। रक्तकादिकमेणैव मृतभ्रामरमर्दितम् ॥ लोहे लोहस्य दण्डेन कुर्यादेतद्रसायनम्। अनुपानं च कुर्वीत नारिकेलोदकं पयः ॥ सर्वकुष्ठहरं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम्। पांडुमेहामवातघ्नं वातरक्तरुजापहम् ॥ कृमिशोथाश्मरीशूलदुर्नामवातरोगनुत्। क्षयं हन्ति महाश्वासमत्यर्थं शुक्रवर्द्ध-

नम् ॥ अग्निसंदीपनं हृद्यं कान्त्यायुर्बलवृद्धिकृत् । विवर्ज्यं शाकाम्लमपि स्त्रियं च सेव्यो रसो जांगलजीविकानाम् ॥ शाल्योदनं षष्टिकमाज्यमुद्गक्षौद्रं गुडक्षीरमिहोपभुक्तम् । शालिचगुर्वादिबृहत्करंजशिलाजतुक्षौद्रयुतं पयश्च ॥ सर्पिर्युतं भक्षयतो विहंगान् प्रपूर्यते दुर्बलदेहधातुः । कृष्णस्य पक्षस्य सिते तु पक्षे त्रिपंचरात्रेण यथा शशांकः ॥ १४ ॥

भाषा—चीतेके रसमें शुद्ध किया हुआ पारा ४ तोले, लोहसार ४ तोले, तांबा ४ तोले, मिलावे ४ तोले, गंधक ४ तोले, अभ्रक ४ तोले, गूगल ४ तोले, हरडका चूर्ण २ तोले, बहेडेका चूर्ण २ तोले और आमले २० तोले, घी १६ तोले, त्रिफलेका क्वाथ ३२ भाग उनको एकत्रित करके विधिपूर्वक लोहेके पात्रमें लोहपाकको जाननेवाला वैद्य पकावे। जब पक जाय तब उतार लेवे, पश्चात् प्रातःकाल उठकर गुरु, देव और ब्राह्मणोंकी पूजा करके उत्तम भ्रामरसहतमें लोहेके दंडेसे मर्दन करके प्रतिदिन एक रत्तीके क्रमसे सेवन करे। यह उत्तम रसायन है। अनुपान नारियलका जल सर्व प्रकारके कुष्ठोंको हरनेवाला, वलीपलितरोगनाशक तथा पाण्डु, प्रमेह, आमवात, वातरक्त, कृमि, शोथ, अश्मरी, शूल, बवासीर, वातरोग, क्षय और महाश्वासरोगको दूर करे है। शुक्रवर्द्धक, अग्निको दीपन करनेवाला, हृदयको हितकारी, कान्तिजनक, आयुवर्द्धक, बलवर्द्धक, इसपर शाक खटाई और स्त्रीसंसर्ग त्याग देवे। जांगलजीवोंका मांस शालिधानोंके चावलोंका भात, साठीधान, घी, मूग, सहत, गुड, दूध, शालिचशाक, भारी द्रव्य, बडी करंज, शिलाजीत, सहतके साथ दूध, दूधके साथ पक्षियोंका मांस यह सेवन करे। यह अमृतांकुर लोह शुक्लपक्षके दूजके चन्द्रमाकी समान दुर्बल देहवाले मनुष्योंकी धातुको क्रमसे दिन दिन पुष्ट करता है ॥ १४ ॥

निम्बादिचूर्णम् ।

निंबामृताभया धात्री प्रत्येकं च पलोन्मितम्। सोमराजीपलं शुंठी विडंगैडजगाः कणाः॥ यमानी चोग्रगंधा च जीरकं टंकणं तथा। खदिरं सैन्धवं क्षारं द्वे हरिद्रे च मुस्तकम् ॥ देवदारु तथा कुष्ठं कर्षं कर्षं प्रदापयेत्। सर्वं संचूर्णितं कृत्वा श्लक्ष्णवस्त्रेण छानयेत् ॥ शाणमात्रं तु भोक्तव्यं छिन्नाक्वाथं पिबेदनु । मासमात्रप्रयोगेण भवेत् कांचनसन्निभः॥ वातशोणितमत्युग्रं श्वित्रमौदुम्बरं तथा।

कोठं चर्मदलाख्यं च सिध्मपामा च विप्लुता ॥ कंडूर्विचर्चिका कारुदद्रुमंडलकिट्टिमम् । सर्वाण्येव निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राश-निर्यथा ॥ आमवातकृतं शोथमुदरं सर्वरूपिणम् । प्लीहानं गुल्मरोगं च पांडुरोगं सकामलम् ॥ सर्वान् कंडूव्रणांश्चैव हरते नात्र संशयः । एतन्निम्बादिकं चूर्णं प्राह नागार्जुनो मुनिः॥१८॥

भाषा—नीमकी छाल, गिलोय, हरड और आमला प्रत्येक १ पल, बावची १ पल, सोंठ, वायविडंग, पमारकी जड, पीपल, अजवायन, वच, जीरा, कुटकी, खैर, सैंधानोन, जवाखार, हलदी, दारुहलदी, नागरमोथा, देवदारु और कूठ प्रत्येक एक एक कर्ष, सबोंको पीसकर बारीक कपडेमें छान लेवे। इस चूर्णमेंसे प्रतिदिन चार मासे खाय और ऊपरसे गिलोयका काथ पान करे, इसको एक महीनेतक सेवन करनेसे शरीर कंचनकी समान सुन्दर हो जाता है। यह निम्बादि चूर्ण अत्यन्त उग्र वातरक्त, श्वित्रकुष्ठ, औदुम्बरकुष्ठ, कोठ, चर्म्मदल, सिध्म, पामा, विप्लुता, कण्डू, विचर्चिका, कारु, दद्रु, मण्डल और किट्टिम कुष्ठ आदि रोगोंको दूर करे है। जैसे वज्र वृक्षोंको नष्ट करे है। एवं आमवातजन्य शोथ, सर्व प्रकारके उदररोग, प्लीहा, गुल्म, पांडुरोग, कामला, सर्व प्रकारकी खुजली और सर्व प्रकारके व्रणोंको दूर करे हैं। यह निम्बादिक चूर्ण नागार्जुनमुनिने कहा है ॥ १९ ॥

बृहद्गुडूचीतैलम्।

शतं छिन्नरुहायाश्च जलद्रोणे विपाचयेत् । तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ क्षीरं चतुर्गुणं दद्यात कल्कानेतान् प्रयत्नतः। अश्वगंधा विदारी च काकोल्यौ हरिचन्दनम् ॥ शतावरी चातिबला श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् । कृमिघ्नं त्रिफला रास्ना त्रायमाणा च शारिवा॥ जीवन्ती ग्रन्थिकं व्योषं वाकुची भेकपर्णिका। विशाला ग्रंथिपर्ण च मञ्जिष्ठा चन्दनं निशा ॥ शताह्वा सप्तपर्णी च कार्षिकाण्युपकल्पयेत्। पानाभ्यंजननस्येषु वातरक्ते प्रयोजयेत् ॥ वातरक्तमुदावर्त्तं कुष्ठान्यष्टादशैव तु । हनुस्तम्भं प्रमेहं च कामलां पांडुतां जयेत् ॥ विस्फोटं च विसर्पं च नाडीव्रणभगन्दरम् । विचर्चिकां गात्रकण्डूं पाददाहं विशेषतः॥

एतत्तैलवरं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम् । आत्रेयनिर्मितं चैव बल-वर्णकरं स्मृतम् ॥ १६ ॥

भाषा–१०० पल गिलोयको ३२ सेर जलमें पकावे जब ८ सेर जल बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे, पश्चात् तिलका तेल २ सेर, दूध ८ सेर, कल्कके लिये असगंध, विदारीकंद, काकोली, क्षीरकाकोली, हरिचन्दन, शतावर, कंघी, गोखरू, कटेरी, कटाई, वायविडंग, त्रिफला, रायसन, त्रायमाण, अनन्तमूल, जीवन्ती, पीपलामूल, त्रिकुटा, बाकुची, मण्डूकपर्णी, इन्द्रायन, गठिवन, लाल चन्दन, हलदी, सौंफ और लज्जावन्ती प्रत्येक एक एक कर्ष लेवे । सबोंको मिलाकर यथाविधिसे तैलको पकावे । यह बृहद्गुडूचीतैल वातरक्तरोगमें पान, अभ्यंजन और नस्यकर्मके द्वारा प्रयोग करे । यह तैल वातरक्त, उदावर्त, अठारह प्रकारके कोढ, हनुस्तम्भ, प्रमेह, कामला, पाण्डुरोग, विस्फोट, विसर्प, नाडीव्रण, भगन्दर, विचर्चिका, शरीरकी खुजली, पाददाह आदि रोगोंको दूर करे है । यह उत्तमतैल, वलीपलितादि रोगोंको हरनेवाला है । बल और वर्णको सुन्दर करनेवाला है । यह तैल आत्रेयजीने निर्माण किया है ॥ १६ ॥

विषतिन्दुकतैलम् ।

विषतरुफलमज्जप्रस्थयुग्मं च शिग्रुस्वरसलकुचवारिप्रस्थमेकैकशश्च । कनकवरुणचित्रापत्रनिर्गुण्डिकासुकस्वरसतुरगगंधावेजयन्तीरसश्च ॥ पृथगिति परिकल्पप्रस्थयुग्मेन युग्मं विषतरुफलमज्जातुल्यतैलं विपक्वः । लशुनसरलयष्टिकुष्ठसिंधूत्थयुग्मं दहनतिमिरकृष्णाकल्कयुक्तं सुसिद्धम् ॥ हरति सकलवातान् घोररूपानसाध्यान् प्रतिदिनमनुलेपात् सुप्तवातस्य जन्तोः । कुष्ठमष्टादशविधं द्विविधं वातशोणितम् ॥ वैवर्ण्यं त्वग्गतान् दोषान् नाशयत्याशु मर्दनात् ॥ १७ ॥

भाषा–कूटे हुए दो सेर शुद्ध कुचलेको १६ सेर जलमें पकावे, जब ४ सेर, बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे, सहजनेके जडकी छाल १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, कनकधतूरा १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, मन्दारकी जड १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, वरनेकी छाल १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, चीतेकी जड १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, संभालूके पत्तोंका स्वरस २ सेर, थूहरके पत्तोंका स्वरस २ सेर, असगंधका स्वरस २ सेर, जयन्तीके पत्तोंका स्वरस २ सेर, तिलका तैल २ सेर

ऊपरोक्त औषधियोंका स्वरस न मिले तो काथही ग्रहण करे। कल्कके लिये लहसन, धूप सरल, मुलहठी, कूठ, सेंधानोन, बिरियासञ्चरनोन, चीतेकी जड और हलदी इन सब द्रव्योंके द्वारा उत्तमरीतिसे तैलको पकावे। इस विपतिन्दुकतैलको मर्दन करनेसे सर्व प्रकारके महाभयंकर और असाध्य वातरोग, सुप्तवात, अठारह प्रकारके कोढ, दोनों प्रकारके वातरक्त, विवर्णता और त्वचागत दोष दूर होते हैं॥ १७॥

महारुद्रतैलम्।

पुनर्नवा निशा निम्बं वार्ताकुर्दाडिमीफलम्। बृहत्यौ पूतिकामूलं वासकं सिन्धुवारकम्॥ पटोलपत्रं धत्तूरमपामार्गं जयन्तिका। दन्ती वरा पृथक् सर्वं कर्पद्वयमितं पुनः॥ विषस्य द्विपलं देयं पृथक् व्योषं पलत्रयम्। प्रस्थं च सार्षपं तैलं प्रस्थाम्बु वृषपत्रजम्॥ गुडूच्यास्तु चतुःपष्टिपलं काथरसेन च। वारिप्रस्थेन पक्तव्यं महारुद्रमिदं शुभम्॥ वातरक्तं निहन्त्याशु नानादोषसमुद्भवम्। अष्टादशविधं कुष्ठं हन्ति वर्णाग्निवर्द्धनम्॥ कृमिदुष्टव्रणं चैव दाहं कण्डूं निहन्ति च। अस्वेदनं महास्वेदमभ्यंगादेव नश्यति॥ १८॥

भाषा—सरसोंका तेल २ सेर, अडूसेके पत्तोंका स्वरस २ सेर, कायके लिये गिलोय ४ सेर, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, कल्कके लिये पुनर्नवा, हलदी, नीमकी छाल, बैंगन, अनारके फलकी छाल, कटाई, कटेरी, दुर्गंध, करंजकी जड, अडूसेकी छाल, संभालू, पटोलपत्र, धतूरा, चिरचिरा, जयन्ती, दन्ती, त्रिफला ये प्रत्येक चार चार तोले, विष ८ तोले, त्रिकुटा प्रत्येक तीन तीन पल, जल २ सेर सबोंको मिलाकर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे। यह महारुद्रतैल नानादोषोद्भव वातरक्त, अठारह प्रकारके कोढ, कृमि, दुष्टव्रण, दाह, खुजली, पसीनेका नहीं आना या अधिक आना आदि रोगोंको दूर करे है। एवं वर्ण और जठराग्निको दीपन करे है १८

वातरक्तान्तकोरसः।

पारदं गंधकं लोहं घनं तालं मनःशिलाम्। शिलाजतु पुरं शुद्धं समभागं विचूर्णयेत्॥ विडंगं त्रिफला व्योषमहिफेनं पुनर्नवा। देवदारु चित्रकं च दार्वी श्वेतापराजिता॥ चूर्णमेषां पृथक् तुल्यं सर्वमेकत्र भावयेत्। त्रिफलाभृंगराजस्य रसेनैव त्रिधा त्रिधा॥

सम्भाव्य भक्षयेत्पश्चान्मासमात्रं दिने दिने । कृत्वानुपानं निम्बस्य पत्रं पुष्पं त्वचं समम् ॥ शाणमात्रं घृतैः कुर्यात्सर्ववातविकारनुत् । वातरक्तं महाघोरं गंभीरं सर्वजं जयेत् ॥ सर्वोपद्रवसंयुक्तं साध्यासाध्यं निहन्त्ययम् ॥ १९ ॥

भाषा-पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, हरिताल, मैनशिल, शिलाजीत, शुद्ध गूगल, वायविडंग, त्रिफला, त्रिकुटा, अफीम, पुनर्नवा, देवदारु, चीता, दारुहलदी, श्वेत कोयल ये सब समानभाग लेकर एकत्र पीसकर त्रिफले और भांगरेके रसमें अलग अलग तीन तीन बार भावना देवे । पश्चात् प्रतिदिन इसको एक मासे भक्षण करे । अनुपान नीमके पत्ते, फूल और छाल बराबर लेकर बारीक पीसकर चार मासे घृतके साथ खाय । इससे सर्व प्रकारके वातविकार दूर होते हैं । यह वातरक्तान्तकरस सर्वदोषोत्पन्न, अत्यन्त गम्भीर, सर्व उपद्रवयुक्त, साध्य अथवा असाध्य घोर वातरक्त रोगको दूर करे है ॥ १९ ॥

लांगलाद्यं लोहम् ।

विशुद्धलांगलीमूलत्रिकटुत्रिफलैस्तथा । द्राक्षागुग्गुलुभिस्तुल्यं लोहचूर्णं नियोजयेत् ॥ मातुलुंगरसेनैव त्रिफलाया रसेन च । विमृद्य यत्नतः पश्चाद् गुटिकां कोलसम्मिताम् ॥ भक्षयेन्मधुना सार्द्धं शृणु कुर्वंति यान् गुणान् । आजानुस्फुटितं घोरं सर्वांगस्फुटितं तथा ॥ तत्सर्वं नाशयत्याशु साध्यासाध्यं च शोणितम् ॥ २० ॥

भाषा-शुद्ध कलिहारीकी जड, त्रिकुटा, त्रिफला, दाख और गूगल ये सब समानभाग और सबोंके बराबर लोहेका चूर्ण लेवे । सबोंको एकत्र पीसकर बिजोरे नीबूके रसमें और त्रिफलेके रसमें खरल करके बेरकी बराबर गुटिका बना लेवे । सहतमें मिलाके खाय । यह आजानुस्फुटित घोर और सर्वांगस्फुटित घोर वातरोगको दूर करे है तथा साध्यासाध्य शोणितरोगको नष्ट करे है ॥ २० ॥

वातरक्तान्तको रसः ।

गन्धकं पारदं लोहं शिला तालं घनस्तथा । शिलाजतु पुरं शुद्धं समभागं विचूर्णयेत् ॥ श्वेतापराजिता दार्वी वाकुची चित्रकं तथा । पुनर्नवा देवकाष्ठं त्रिफला व्योषवेल्लकम् ॥ चूर्णमेषां पृथक् तुल्यं सर्वमेकत्र कारयेत् । त्रिफलाभृंगराजस्य रसेनैव

त्रिधा त्रिधा ॥ भावयेद्भक्षयेत्पश्चात् चणमात्रं दिने दिने । ततो-नुपानं निम्बस्य पत्रं पुष्पं त्वचं समम् ॥ शाणमात्रं घृतैः कुर्यात्सर्ववातविकारनुत् । वातरक्तं महाघोरं गम्भीरं सर्वजं च यत् ॥ सर्वोपद्रवसंयुक्तं साध्यासाध्यं निहन्त्यलम् ॥ २१ ॥

भाषा-गंधक, पारा, लोहा, मैनशिल, हरिताल, अभ्रक, शुद्ध शिलाजीत और शुद्ध गूगल ये सब समानभाग लेकर पीस लेवे, फिर सफेद कोयल, दारुहलदी, बावची, चीता, पुनर्नवा, देवदारु, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग इन सबोंका समान भाग चूर्ण लेकर त्रिफला और भांगरेके रसमें अलग अलग तीन ३ वार भावना देवे । इसका प्रतिदिन चनेकी बराबर भक्षण करे । अनुपान नीमके पत्ते, नीमके फूल और नीमकी छालको पीसकर चार मासे घृतके साथ सेवन करे । इससे सर्व प्रकारके वातविकार, महाघोर, सर्वदोषोत्पन्न, अत्यन्त गम्भीर और साध्यासाध्य वातरक्तको दूर करता है ॥ २१ ॥

तालभस्म ।

हरितालं पलं शुद्धं तथा कर्षं विषस्य च । श्वेतां कोठरसेनैव द्वयमेकत्र खल्लयेत् ॥ पलाशभस्म द्विपलं निधाय स्थालिकोपरि । तद्भस्मोपरि तालस्य गोलकं स्थापयेत्सुधीः ॥ तस्योपरि अपामार्गभस्म दद्यात्पलत्रयम् । स्थालीमुखे शरावं च दद्याद्यत्नेन लेपयेत् ॥ लेपयित्वा ततश्चुल्यामहोरात्रं पचेद्भिषक् । ततस्तु जायते भस्म शुद्धकर्पूरसन्निभम् ॥ गुंजात्रयं ततो भक्ष्यमनुपानं विशेषतः । वातरक्तं च कुष्ठं च दद्रुविस्फोटकापचीम् ॥ विचर्चिकां चर्मदलं वातरक्तं च शोणितम् । रक्तपित्तं तथा शोथं गलत्कुष्ठं विनाशयेत् ॥ हलीमकं तथा शूलमग्निमान्द्यमरोचकम् ॥ २२ ॥

भाषा-शुद्ध हरिताल ४ तोले, विष २ तोले, दोनोंको सफेद अंकोलके रसमें खरल करे, फिर आठ तोले ढाककी भस्मको एक हांडीमें स्थापन करे, उस भस्मके ऊपर हरितालके गोलेको स्थापन करे पश्चात् उसके ऊपर चिरचिटेकी भस्म ३ पल रक्खे । फिर हांडीकेमुखपर सिकोरेको ढककर अच्छे प्रकार संधिस्थानोंमें मृत्तिकाके लेपसे बंद करके चूल्हेपर रखकर एक दिन और एक रात पकावे, इस प्रकार

करनेसे शुद्ध कपूरकी समान हरितालकी भस्म हो जाती है । इसको तीन रत्तीभर विशेष अनुपानोंके साथ सेवन करे । यह वातरक्त, कुष्ठ, दद्रु, विस्फोटक, अपची, विचर्चिका, चर्म्मदल, वातरक्त, रुधिरविकार, रक्तपित्त, सूजन, गलत्कुष्ठ, हलीमक, शूल, मंदाग्नि और अरुचिको दूर करे है ॥ २२ ॥

महातालेश्वरो रसः ।

तथा सिद्धेन तालेन गंधतुल्येन मेलयेत् । द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं वालुकायन्त्रगं पचेत् ॥ अयं तालेश्वरो नाम रसः परमदुर्लभः । हन्यात्कुष्ठानि सर्वाणि वातरक्तमथापि च ॥ शूलमष्टविधं श्वित्रं रसस्तालेश्वरो महान् ॥ २३ ॥

भाषा–ऊपरोक्त हरितालकी भस्म और शुद्ध गंधक दोनोंको समान भाग लेवे और दोनोंकी बराबर तांबेकी भस्म मिलावे। सबोंको एकत्र करके वालुकायंत्रमें पकावे तो परमदुर्लभ महातालेश्वर रस सिद्ध हो । यह महातालेश्वर रस सर्व प्रकारके कोढ, वातरक्त, आठ प्रकारके शूल और श्वित्रकोढको दूर करे है ॥ २३ ॥

विश्वेश्वरो रसः ।

रसाद्दश विषात् पंच गंधकाद्दश शोधितात् । तुत्थाद्दश पलाशस्य बीजेभ्यः पंच कारयेत् ॥ क्षुद्राश्मारधत्तूरकरहाटकनीलितः । दशकं दशकं कुर्याच्छोषयित्वा जटात्वचः ॥ दशकं दशकं दत्त्वा कुचिलाद्दश नूतनात् । भल्लातकाच्च दशकं चूर्णयित्वा भिषक् ततः ॥ सुदिवसे बलिं दत्त्वा वैद्यः पूजापरायणः । रक्तिकाद्वितयं दद्यात् सहते यदि वा त्रयम् ॥ वातरक्तं ज्वरं कुष्ठं खरस्पर्शमसौख्यदम् । आजानुस्फुटितं हन्ति विपजं वास्थिनिःसृतम् ॥ कुष्ठमष्टादशविधमग्निमान्द्यमरोचकम् । विश्वेश्वरो रसो नाम विश्वनाथेन भाषितः ॥ २४ ॥

भाषा–पारा १० भाग, विष ५ भाग, गंधक १० भाग, तूतिया १० भाग और ढाकके बीज ५ भाग, कटेरी, कनेर, धतूरा, मैनफल और नीलका वृक्ष प्रत्येककी दश २ भाग जड और छाल लेवे । कुचिले १० भाग, भिलावे १० भाग, सबका एकत्र चूर्ण करके शुभ दिनमें बलिदान देकर और इष्टदेवकी पूजा करके प्रतिदिन दो या तीन रत्ती भक्षण करे । इससे वातरक्त, जडता, क्लेशप्रद खरस्पर्श,

आजानुस्फुटित वात, अस्थिगत, विषदोष, अष्टादश कुष्ठ, अरुचि और मंदाग्नि दूर होती है । यह विश्वेश्वररस विश्वनाथने निर्माण किया है ॥ २४ ॥

रक्तमोक्षणम् ।

वक्ष्यते कुष्ठरोगे यदौषधं भिषजां वरैः ।
वातरक्ते प्रयुंजीत कुर्याच्च रक्तमोक्षणम् ॥ २५ ॥

भाषा-जो औषधि कुष्ठरोगमें कही है वह सब वातरक्तरोगमें प्रयोग करनी चाहिये । विशेषकरके वातरक्तरोगमें रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ २५ ॥

इति वातरक्तरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथोरुस्तम्भरोगनिदानम् ।

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः । जीर्णाजीर्णैस्तथायास-संक्षोभस्वप्नजागरैः ॥ सश्लेष्ममेदः पवनः साममत्यर्थसंचितम् । अभिभूयेतरं दोषमूरू चेत्प्रतिपद्यते ॥ सक्थ्यस्थिनी प्रपूर्यान्तः श्लेष्मणा स्तिमितेन च । तदा स्तभ्नाति तेनोरू स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥ परकीयाविव गुरू स्यातामतिभृशव्यथौ । ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतन्द्राच्छर्द्यरुचिज्वरैः ॥ संयुक्तौ पादसदन-कृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः । तमूरुस्तम्भमित्याहुराढ्यवातमथापरे ॥ १ ॥

भाषा-शीतल, गरम, पतला, कठिन, भारी, हलका, चिकना, रूखा, जीर्ण, अजीर्ण, व्यायाम, अव्यायाम, निद्रा, जागरण इत्यादि परस्पर विरुद्ध आहार और विहारोंके द्वारा कफ और मेदसंयुक्त वायु शरीरमें स्थित, अत्यन्त अपक्व पित्तको आच्छादित करके दोनों ऊरुओंमें प्राप्त होकर तथा आर्द्रकफसे उसके भीतरकी हड्डियोंको परिपूर्ण कर देवे तब वायु स्तब्ध अर्थात् गतिरहित हो जावे, इससे दोनों ऊरु अर्थात् घुटने स्तब्ध, शीतल, चेतनारहित, भारी और अत्यन्त पीडायुक्त हों तथा रोगी उठनेको और चलनेको असमर्थ हो जाय । ऊरुस्तम्भ रोगमें मनुष्य निश्चेष्ट हो जाता है और शरीर गीले कपडेसे ढके हुएकी समान मालूम होता है । तन्द्रा, वमन, अरुचि, शरीरमें पीडा, ज्वर और दोनों पांवोंका

सो जाना तथा बडे कष्टसे उठाकर धरना ये सब होते हैं। इसको कोई २ वै आढ्यवात कहते हैं ॥ १ ॥

पूर्वरूप ।

प्राग्रूपं तस्य निद्रातिध्यानं स्तिमितता ज्वरः ।
रोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जङ्घोर्वोः सदनं तथा ॥ २ ॥

भाषा–ऊरुस्तम्भके पूर्वमें अधिक निद्राका आना, ध्यानका लग जाना, स्तैमित्य (शरीर गीले कपडेसे आच्छादित होनेकी समान जान पडे), ज्वर, रोमांचोंका हं आना, अरुचि, वमन, जंघा और ऊरुओंका रह आना ये सब लक्षण होते हैं ॥२॥

ऊरुस्तंभके लक्षण ।

वातशङ्किभिरज्ञानात् तस्य स्यात् स्नेहनात् पुनः । पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा ॥ जंघोरुग्लानिरत्यर्थं शश्वच्च दाहवेदने । पदं च व्यथते न्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति च ॥ संस्थाने पीडने गत्यां चालने चाप्यनीश्वरः । अन्यनेयौ हि संभग्नावूरू पादौ च मन्यते ॥ ३ ॥

भाषा–वैद्य वातरोगके भ्रमसे ऊरुस्तम्भमें यदि स्नेहक्रिया (तैलादिका मर्दन) प्रयोग करे तो उससे रोग अधिक बढ जावे, पांवोंमें पीडा हो और सुन्न हो जावे, अत्यन्त कष्टसे पांव उठाया धरा जावे, जंघा और ऊरुओंमें पीडा हो, सदैव ज्वलन और पीडा हो, पैरोंमें व्यथा हो, शीतल द्रव्योंका स्पर्श मालूम न हो, पांवको न हिला सके, न उठा सके, न धर सके, पांव और घुटने टूटेसे या दूसरेके जान पडें, ये सब ऊरुस्तम्भके लक्षण हैं ॥ ३ ॥

असाध्य लक्षण ।

यदा दाहार्तितोदार्त्तो वेपनः पुरुषो भवेत् ।
ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात् साधयेदन्यथा नवम् ॥ ४ ॥

भाषा–ऊरुस्तम्भरोगमें यदि दाह, कतरनेकी समान पीडा या सुईके चुभनेकी समान पीडा और कम्प होय तो असाध्य है और जो ऊपरोक्त उपद्रवरहित हो एवं थोडे दिनोंका उत्पन्न हुआ हो तो साध्य है ॥ ४ ॥

इति ऊरुस्तंभरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथोरुस्तम्भरोगचिकित्सा।

वल्मीकमृत्तिकामर्दन।

अश्वगन्धामूलकाभ्यां सिद्धा वल्मीकमृत्तिका।
एतेषां मर्दनाद्रुद्र ऊरुस्तम्भः प्रशाम्यति ॥ ५ ॥

भाषा-असगंध, मूली और बांबीकी मट्टीको सिद्ध करके मर्दन करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग दूर होता है ॥ ५ ॥

पानविधिः।

त्रिफला चित्रकं चित्रा तथा च कटुरोहिणी।
ऊरुस्तम्भहरो ह्येष उत्तमं तु विरेचनम् ॥ ६ ॥

भाषा-त्रिफला, लाल चीता, दंती और कुटकी समान भाग लेकर पीसकर पीनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है तथा उत्तम रीतिसे कोठा साफ हो जाता है॥६॥

कषायः।

हरीतकी शृंगवेरं देवदारु च चन्दनम्।
क्काथयेच्छागदुग्धेन अपामार्गस्य मूलकम् ॥
जंघाशूलमुरुस्तम्भं सप्तरात्रेण नाशयेत् ॥ ७ ॥

भाषा-हरड, सोंठ, देवदारु और लाल चन्दन समान भाग लेकर काथ बनाके पीनेसे या चिरचिटेकी जडको बकरीके दूधमें पीसकर पीनेसे सात रोजमें घुटनोंकी पीडा और ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है ॥ ७ ॥

अथ लेहः।

त्रिफलाचव्यकटुकग्रंथिकं मधुना लिहेत्।
ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत् ॥ ८ ॥

भाषा-त्रिफला, चव्य, कुटकी और पीपलामूल इन सबोंको समान भाग लेकर बारीक पीसके सहतके साथ चाटनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है अथवा गोमूत्रमें गूगलको पीसकर सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है ॥ ८ ॥

भल्लातककाथो वा कल्कः।

भल्लातकामृता शुंठी दारु पथ्या पुनर्नवा। पंचमूली द्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिवर्हणाः ॥ पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातक्काथ एव वा। कल्को वा समधुर्देय ऊरुस्तम्भनिवर्हणः ॥ ९ ॥

भाषा-शुद्ध मिलावे, गिलोय, सोंठ, देवदारु, हरड, पुनर्नवा और दशमूल इनका क्राथ बनाकर पीनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है । पीपल, पीपरामूल और मिलावे इनका क्राथ या कल्क बनाकर सहतके साथ सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है ॥ ९ ॥

अथ लेपविधिः ।

क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतं भिषक् ।
गाढमुत्सादनं कुर्यादूरुस्तम्भे प्रलेपनम् ॥ १० ॥

भाषा-सहत, सरसोंका चूर्ण और बांबीकी मट्टीको धतूरेके पत्तोंके रसमें या थूहरके पत्तोंके रसमें घुटनोंमें गाढा लेप करके कपडेसे जकडके बांध देवे तो ऊरुस्तम्भरोग आरोग्य हो जाता है ॥ १० ॥

गुंजाभद्ररसेंद्रवटी ।

निष्कत्रयं शुद्धसूतं निष्कद्वादशगंधकम् । गुंजाबीजं च षट्-निष्कं निष्कं जैपालबीजकम् ॥ जयाजम्बीरधत्तूरकाकमाची-द्रवैर्दिनम् । भावयित्वा वटीं कुर्याद् घृतैर्गुंजाचतुष्टयम्॥ गुंजा-भद्रो रसो नाम्ना हिंगुसैन्धवसंयुतः । शमयत्येव नो चित्रमूरु-स्तम्भं सुदुर्जयम् ॥ ११ ॥

भाषा-शुद्ध पारा ६ मासे, गंधक ३ तोले, चोटली १॥ तोला और जमालगोटा २ मासे इन सबोंको जयंती, जम्मीरी नींबू, धतूरे और मकोयके रसमें भावना देकर घृतके साथ मर्दन करके चार चार रत्तीकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली हींग और सैंधानोनके साथ सेवन करे । इससे दुर्जर ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

पिप्पल्यादितैलम् ।

पलाभ्यां पिप्पली शुंठी नागरादष्टकद्रवः ।
तैलप्रस्थसमो दध्ना ऊरुस्तम्भरुग्रहापहः ॥ १२ ॥

भाषा-पीपल ८ तोले और सोंठ ८ तोले दोनोंका कल्क बनावे, आठगुना दही लेवे और २ सेर कडवा तेल लेवे, सबोंको मिलाकर विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे । इस तैलको मर्दन करनेसे ऊरुस्तम्भरोग दूर होता है ॥ १२ ॥

गुंजाभद्ररसः ।

निष्कत्रयं शुद्धसूतं निष्कद्वादशगंधकम् । गुंजाबीजं च षड्-निष्कं जयन्ती निम्बबीजकम् ॥ प्रत्येकं निष्कमात्रं तु निष्कं

जेपालबीजकम् । जयाजम्बीरधत्तूरकाकमाचीद्रवैर्दिनम् ॥ भावयित्वा वटीं कुर्यात् चतुर्गुञ्जाप्रमाणतः । गुंजाभद्ररसो नाम हिंगुसैन्धवसंयुतः॥शमयत्युल्वणं दुःखमूरुस्तम्भं सुदारुणम्॥१३॥

भाषा-शुद्ध पारा ३ निष्क, गंधक १२ निष्क और घूंघचीके दाने ६ निष्क, जयंती, नीमके बीज और जमालगोटा प्रत्येक एक एक निष्क लेवे । फिर सबोंको एकत्र कर जयंती, जम्मीरी नीबू, धतूरा और मकोय प्रत्येकके रसमें एक एक दिन खरल करे, पश्चात् चार चार रत्तीकी गोलियां बनाकर हींग और सेंधानोनके साथ सेवन करे । इसको गुंजाभद्ररस कहते हैं । यह दारुण ऊरुस्तम्भरोगको दूर करे है ॥ १३ ॥

शिलाजतुयोगः ।

शिलाजतु गुग्गुलुं वा पिप्पलीमथ नागरम् । ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा ॥ प्लीहाधिकारे कथितं रसेन्द्रं वारिशोषणम् । ऊरुस्तम्भे प्रयुंजीत चान्यद्वा योगवाहिकम् ॥ १४ ॥

भाषा-ऊरुस्तम्भरोगमें शिलाजीत, गूगल, पीपल अथवा सोंठको गोमूत्रके साथ या दशमूलके क्वाथके साथ पान करे । प्लीहारोगमें कहा हुआ वारिशोषण रस तथा अन्यान्ययोगवाही रसोंका इस रोगमें प्रयोग करे ॥ १४ ॥

इति ऊरुस्तम्भरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथामवातरोगनिदानम् ।

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च । स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा ॥ वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति । तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनीः प्रतिपद्यते ॥ वातपित्तकफैर्भूयो दूषितोः योऽन्नजो रसः । स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥ जनयत्याशु दौर्बल्यं गौरवं हृदयस्य च । व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः ॥ युगपत् कुपितावेतौ त्रिकसन्धिप्रवेशकौ । स्तब्धं वा कुरुते गात्रमामवातः स उच्यते ॥ १ ॥

भाषा-विरुद्ध आहार (प्रकृतिविरुद्ध, समयविरुद्ध, संयोगविरुद्ध) और विरुद्ध चेष्टा करनेवाले मनुष्योंके तथा स्निग्ध अन्न भक्षण करके कसरत करनेवाले मनुष्योंके, एवं विना काम बैठे रहनेवाले मनुष्योंके, मंदाग्निके कारण वायुसे प्रेरित हुई आमसे कफस्थान जो आमाशय, वक्षस्थल, कंठ, मस्तक और संधियोंमें प्राप्त होती है । वहां उस कफसे अत्यन्त अपक्व रहके धमनियोंमें प्राप्त होती है । पश्चात् वातपित्त और कफसे दूषित वह अन्नरस सो धमनियोंमें लिप्त हो जाता है, वह नानारंगका और अत्यन्त चिकना होता है, सो मंदाग्नि करे, हृदयमें गुरुता उत्पन्न करे, यह अन्नरस (आम) सर्व रसोंका आश्रय है इस कारण अत्यन्त दारुण है । जब आम और वायु दोनों एक समय कुपित होकर कोठेमें तथा कमर और गरदनके पीछेकी संधियोंमें प्रविष्ट होकर शरीरको जकड देते हैं उसको आमवात कहते हैं ॥ १ ॥

आमवातके सामान्य लक्षण ।

अंगमर्दोऽरुचिस्तृष्णा आलस्यं गौरवं ज्वरः ।
अपाकः शूनताङ्गानामामवातस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

भाषा-अंगमर्द, अरुचि, तृषा, आलस्य, गुरुता, ज्वर, अन्नका न पचना और शरीरमें शून्यता होना ये आमवातके सामान्य लक्षण हैं ॥ २ ॥

अत्यंत बढे हुए आमवातके लक्षण ।

स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् । हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसन्धिषु ॥ करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते । स देशो रुज्यतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥ जनयेत् सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम् । उत्साहहानिं वैरस्यं दाहं च बहुमूत्रताम् ॥ कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम् । तृट्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्च हृद्ग्रहं विड्विबद्धताम् ॥ जाड्यान्त्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ ३ ॥

भाषा-हाथ, पांव, मस्तक, गुल्फ, त्रिकस्थान, जानु, ऊरु और संधियोंमें पीडा तथा सूजन होती है एवं जिस जिस स्थानमें आम गमन करे उस उस स्थानमें विच्छूके डंकको समान पीडा होती है । रोगीके मंदाग्नि, अरुचि, शरीरमें गुरुता, उत्साहका नाश, मुखमें नीरसता, दाह, बहुमूत्रका आना, कोखमें कठिनता, शूल, दिनमें निद्रा आवे, रातको नहीं आवे, तृषा, वमन, भ्रम, मूर्छा, हृदयमें पीडा, मलरोध, जडता, आंतोंका कूंजना, आनाह और अत्यन्त उपद्रवोंको करे है ॥ ३ ॥

पित्तात् सदाहरागं च सशूलं पवनानुगम् ।
स्तिमितं गुरु कण्डूं च कफदुष्टं तमादिशेत् ॥ ४ ॥

भाषा-वातजनित आमवातरोगमें शरीरमें शूलकी समान पीडा होती है, पित्तजनित आमवातरोगमें दाह और शरीर रक्तवर्ण होता है, कफजनित आमवात रोगमें शरीरमें जडता, गुरुता और खुजली होती है ॥ ४ ॥

साध्यासाध्यविचारः ।

एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ।
सर्वदेहचरः शोथः स कृच्छ्रः सान्निपातिकः ॥ ५ ॥

भाषा-एक दोषजनित आमवात साध्य, दो दोषजनित आमवात याप्य और त्रिदोषजनित आमवात कष्टसाध्य है ॥ ५ ॥

इति आमवातरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथामवातरोगचिकित्सा ।

अथ क्वाथः ।

शठी शुण्ठ्यभया चोग्रा देवाह्वातिविषामृताः ।
कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम् ॥ ६ ॥

भाषा-कचूर, सोंठ, हरड, वच, देवदारु, अतीस और गिलोय इन सबोंको समानभाग लेकर क्वाथ बनाकर पान करनेसे आमवातरोग दूर होता है । इस रोगमें रूखा भोजन करे ॥ ६ ॥

अथ कल्कः ।

शठीविश्वौषधौ कल्कं वर्षाभूक्वाथसंयुतम् ।
सप्तरात्रं पिबेज्जन्तुरामवातविनाशनम् ॥ ७ ॥

भाषा-पुनर्नवेके क्वाथमें कचूर और सोंठका चूर्ण डालकर सात दिनतक पीनेसे आमवात रोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

प्रत्यूषपान ।

शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः प्रातः प्रातर्निषेवितः ।
आमे वातकटीशूले पाचनो रुक्प्रणाशनः ॥ ८ ॥

भाषा-सोंठ और गोखरू इनका क्वाथ बनाकर प्रतिदिन प्रातःकाल प्रत्यूषपान करनेसे आमवात और कटिशूल नष्ट होता है ॥ ८ ॥

दशमूलादिकषाय ।

आमवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ।
खादेद्वाप्यभया विश्वं गुडूचीनागरेण वा ॥ ९ ॥

भाषा-दशमूलके क्राथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे अथवा हरड, सोंठ और गिलोयके क्राथमें सोंठका चूर्ण डालकर पीनेसे आमवातरोग नष्ट होता है ॥९॥

लंघनादिबस्तिकर्मविधिः ।

लंघनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च ।
विरेचनं स्नेहपानं बस्तयश्चाममारुते ॥ १० ॥

भाषा-आमवातरोगमें लंघन, स्वेदन, कडवे, अग्निप्रदीपक और चरपरे पदार्थोंका भक्षण तथा विरेचन, स्नेहपान और बस्तिक्रिया प्रयोग करे ॥ १० ॥

तक्रसहितमांसभक्षणविधिः ।

यवकोद्रवशाल्यादिप्रपुराणं सतिक्तकम् ।
लावादीनां तथा मांसं तक्रेण मस्तुना हितम् ॥ ११ ॥

भाषा-जौ, कोदों और शालि आदि पुराने चावल कडवे पदार्थोंके साथ, लावादि पक्षियोंका मांस तक्र या मस्तु (दहीका पानी) के साथ आमवात रोगमें हितकारी है ॥ ११ ॥

वैश्वानरचूर्णम् ।

मणिमन्थस्य भागौ द्वौ यवान्यास्तद्वदेव तु । भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपंचकम् ॥ दश द्वौ च हरीतक्याः श्लक्ष्णचूर्णीकृताः शुभाः । मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ पीतं जयत्यामवातं गुल्महृद्बस्तिजान् गदान् । प्लीहानं ग्रन्थिशूलादीनर्शांस्यानाहमेव च॥विबद्धं जठरान् रोगान् तथा वै हस्तपादजान् । वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ १२ ॥

भाषा-सैंधानोन २ तोले, अजवायन २ तोले, अजमोद ३ तोले, सोंठ पांच तोले और हरड बारह तोले लेवे। सबोंको एकत्र बारीक पीसकर चूर्ण कर लेवे, इस चूर्णको दहीका तोड, कांजी, तक्र, घी और गरम जल इनमेंसे किसी एक अनुपानके साथ पीनेसे आमवात, गुल्म, हृदयरोग, बस्तिरोग, प्लीहा, ग्रन्थिरोग, शूल, अर्श, आनाह, विबन्ध, उदररोग और पांवोंके रोग दूर होते हैं । यह वैश्वानरचूर्ण वातानुलोमक है ॥ १२ ॥

शंकरस्वेदः।

कार्पासास्थिकुलत्थिकातिलयवैरेरण्डमूलातसीवर्षाभूपणबीज-
कांजिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक्। स्वेदः स्यादिति कुर्परोदरशि-
रःस्फिक्पाणिपादांगुलीगुल्फस्कन्धकटीरुजा विजयते सामाः
समीरानुगाः॥ १३॥

भाषा-बिनोले, कुलथी, तिल, जौ, अंडकी जड, अलसी, पुनर्नवा और सनके बीज इन सबोंको एकत्र कर अथवा एक एकको अलग अलग कूटकर कांजीमें भिगोकर पोटली बना लेवे उन पोटलियोंको वारंवार कांजीमें भिगोकर और गरम करके कुहिनी, उदर, शिर, कूला, हाथ, पांव, अंगुली, स्कन्ध और कमरको सेके तो आमवात दूर होवे॥ १३॥

शंकरप्रलेपः।

गोजलपिष्टं हिंस्राकेंबुकशिग्रूद्भवं मूलम्। माकुयुतं परिलेपात्
सामः समीरणः कुन्नाशतपुष्पा वचा शिग्रुः श्वदंष्ट्रो वरुणत्वचा।
सहदेवा च वर्षाभूः शठी च सहभाद्रली॥ सतकारीफलं हिंगु
शुक्तकांजिकपेषितम्। आमवातहरं श्रेष्ठं सुखोष्णं लेपनं हितम्१४

भाषा-काकादनी, केउआ, सहजनेकी जड और गेरूकी मट्टी इन सबोंको समान भाग लेकर गोमूत्रमें पीसकर प्रलेप करनेसे आमवातरोग दूर होता है। सौंफ, वच, सहजना, गोखरू, वरनाकी छाल, सहदेवी, पुनर्नवा, कचूर, गन्धप्रसारिणी, जयंतीका फल और हींग इन सबोंको समान भाग लेकर शुक्त और कांजीमें पीसकर सुहाता किंचित् गरम शोथकी जगह प्रलेप करनेसे आमवातरोग दूर होता है॥१४॥

रास्नादिदशमूलम्।

दशमूलामृतैरण्डरास्नानागरदारुभिः।
क्वाथो रुबुकतैलेन सामं हन्त्यनिलं गुरुम्॥ १५॥

भाषा-दशमूल, गिलोय, अंडकी जड, रायसन, सोंठ और देवदारु इनके क्वाथमें अंडीका तेल मिलाकर पान करनेसे आमवातरोग दूर होता है॥ १५॥

आमगजसिंहमोदकः।

शुंठीचूर्णस्य प्रस्थैकं यवान्याश्च पलाष्टकम्। जीरकस्य पल-
द्वन्द्वं धन्याकस्य पलद्वयम्॥ पलैकं शतपुष्पाया लवंगस्य

पलं तथा । टंकणस्य पलं ग्राह्यं मरिचस्य पलं भवेत् ॥ त्रिवृत्यत्रिफलाक्षारपिप्पलीनां पलं पलम् । एतेषां सर्वचूर्णानां खंडं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ घृतेन गुटकीकृत्य मोदको मधुना कृतः । शृष्ठ्येलातेजपत्राणां कर्षं दद्याद्गुडत्वचः ॥ चतुर्भिरधिवासोऽस्य तोलैकं खादयेद्बुधः। शरीरं वीक्ष्यमात्रस्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ॥ आमवातप्रशमनः कटिग्रहविनाशनः । शूलघ्नो रक्तपित्तघ्नश्चाम्लपित्तविनाशनः ॥ श्रीमता चन्द्रनाथेन गुरुणा भाषितं मयि । श्रीमद्गहननाथोऽहं कृतवान् मोदकं शुभम् ॥ गर्जित्वा नगजेन्द्रोऽयमजीर्णबलमागतः । यथा सिंहो वने हन्ति दन्तिनं बलिनं शुभम् ॥ तथामराजकरिणं निहन्त्येव न संशयः ॥ १६ ॥

भाषा–सोंठका चूर्ण ६४ तोले, अजवायन ३२ तोले, जीरा ८ तोले, धनियां ८ तोले, सोया ४ तोले, लौंग ४ तोले, सुहागा ४ तोले, काली मिरच ४ तोले, निसोत ४ तोले, हरड ४ तोले, बहेडा ४ तोले, आमला ४ तोले, जवाखार ४ तोले, पीपल ४ तोले और सबोंकी बराबर चीनी (खांड) लेवे, फिर इसमें कचूर, इलायची, दालचीनी और तेजपातका एक एक तोला चूर्ण मिलाकर घृत और सहतके योगसे लड्डू बना लेवे । रोगीका बलाबल विचारकर वैद्य मात्राका निरूपण करे । यह मोदक आमवातको शमन करनेवाला, कटिशूलको शांत करनेवाला तथा शूल, रक्तपित्त, अम्लपित्त इन सबोंको दूर करे है । यह श्रीमान् चन्द्रनाथगुरुजीने मुझ गहनानन्दनाथसे कहे हैं और मैंने यह उत्तम मोदक बनाये हैं । जिस प्रकार वनमें विचरते हुए गजराजको सिंह मार देता है उसी प्रकार मनुष्योंके शरीररूपी वनमें विचरते हुए आमवातरोगरूपी गजेंद्रको यह सिंहमोदक दूर कर देता है॥१६॥

रसोनपिण्डः ।

रसोनस्य पलशतं तिलस्य कुडवं तथा । हिंगु त्रिकटुकं क्षारौ द्वौ पंच लवणानि च ॥ शतपुष्पा तथा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ । अजमोदा यवानी च धन्याकं चापि बुद्धिमान् ॥ प्रत्येकं तु पलं चैषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । घृतभाण्डे दृढे चैतत् स्थापयेद्दिनषोडश॥ प्रक्षिप्य तैलमानीं च प्रस्थार्द्धं कांजिकस्य

च। खादेत्कर्षप्रमाणं तु तोयं मद्यं पिबेदनु ॥ आमवाते तथा वाते सर्वांगैकांगसंश्रये । अपस्मारेऽनले मन्दे कासश्वासगरेषु च॥ उन्मादवातभग्ने च शूले जृम्भोः प्रशस्यते ॥ १७॥

भाषा-लहसन एक सौ पल, तिल आधसेर, हींग, त्रिकुटा, जवाखार, सज्जी, पांचों नोन, सौंफ, कूठ, पीपरामूल, चीता, अजवायन, अजमोद और धनियां ये प्रत्येक एक एक पल सबोंका बारीक चूर्ण कर घीके चिकने बासनमें भर तिसमें बत्तीस तोले तेल और बत्तीस तोले कांजी मिलाके रख देवे। सोलह दिन बीत जाने पर इसमेंसे एक तोला या दो तोले नित्य खाय और ऊपरसे गरम जल या मदिरा पीवे। इससे आमवात, वात, सर्वांगवात, एकांगवात, अपस्मार, मन्दाग्नि, खांसी, श्वास, ज्वर, उन्माद, वातभग्न, शूल और जृम्भारोग दूर होते हैं ॥ १७॥

सिंहनादगुग्गुलुः।

पिष्टितां गुग्गुलोर्मानीं कटुतैलपलाष्टकम् । प्रत्येकं त्रिफला-प्रस्थौ सार्द्धद्रोणे जले पचेत् ॥ पादशेषं च पूतं च पुनरेतद्विमिश्रयेत् । त्रिकटु त्रिफला मुस्तविडंगामरकानिकम्॥ गुडूच्याग्नि-त्रिवृद्दन्तीचवीशूरणमानकम्। पारदं गंधकं चैव प्रत्येकं शुक्तिसम्मतम् ॥ सहस्रं कानकफलं सिद्धे संचूर्ण्य निक्षिपेत। ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम्॥ अग्निं च कुरुते दीप्तं वडवानलसन्निभम् । धातुवृद्धिं वयोवृद्धिं बलं सुविपुलं तथा ॥ आमवातं शिरोवातं सन्धिवातं सुदारुणम् । जानुजंघाश्रितं वातं सकटीग्रहमेव च ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च भग्नं च तिमिरोदरे। अम्लपित्तं तथा कुष्ठं प्रमेहं गुदनिर्गमम् ॥ कासं पंचविधं श्वासं क्षयं च विषमज्वरम्। प्लीहानं श्लीपदं गुल्मं पांडुरोगं सकामलम् ॥ शोथान्त्रवृद्धिशूलानि गुदजानि विनाशयेत् । मेदःकफामसंघातं व्याधिवारणदर्पहा ॥ सिंहनाद इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ॥ १८ ॥

भाषा-कूटा हुआ और पोटलीमें बँधा हुआ गूगल ८ पल, सरसोंका तेल ८ पल और त्रिफला प्रत्येक २ सेर लेकर डेढ द्रोण जलमें पकावे, जब जल चौथा भाग

शेष रह जाय तब उतार लेवे, पश्चात् वस्त्रमें छानकर फिर चूल्हेपर चढा देवे और इसमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चिळाटीकी जड, गिलोय, चीता, निसोत, दंती, चव्य, जमीकंद, मानकंद, पारा और गंधक प्रत्येक दो दो तोले तथा शुद्ध किये हुए जमालगोटेकी अन्तर्जिह्वा एक सहस्र, सबोंका चूर्ण कर मिला देवे । इसको प्रतिदिन दो मासे खाय और ऊपरसे गरम जल पीवे । इससे जठराग्नि वडवानलकी समान दीपन होती है । धातु, आयु और बलकी वृद्धि होती है तथा आमवात, शिरोवात, संधिवात, जानु और जंघाश्रित वात, कटिग्रह, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, भ्रम, तिमिर, उदररोग, अम्लपित्त, कुष्ठ, प्रमेह, गुदनिर्गम, पांचों प्रकारकी खांसी, श्वास, क्षय, विषमज्वर, प्लीहा, श्लीपद, गुल्म, पाण्डुरोग, कामला, शोथ, अन्त्रवृद्धि, शूल और बवासीर नष्ट होती है । यह मेद, कफ और आमसे उत्पन्न हुए रोगरूपी हस्तियोंके मदको दूर करनेके लिये सिंहनाद है । यह योग अमृतकी समान है ॥ १८ ॥

कांजिकषट्पलकं घृतम् ।

हिंगु त्रिकटुकं चव्यं माणिमंथं तथैव च । कल्कान् कृत्वा तु पलिकान् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ आरनालाढकं दत्त्वा तत्सर्पिस्तु ज्वरापहम् । शूलं विबन्धमानाहमामवातकटीग्रहम् ॥ नाशयेद्ग्रहणीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ १९ ॥

भाषा–हींग, त्रिकुटा, चव्य और सैंधानोन प्रत्येकका कल्क चार ४ तोले, घृत २ सेर, कांजी ८ सेर, सबोंको मिलाके यथ.विधिसे घृतको सिद्ध करे । यह घृत ज्वर, शूल, विबन्ध, आनाह, आमवात, कटिग्रह और संग्रहणीको दूर करके अग्निको दीपन करे है ॥ १९ ॥

योगराजगुग्गुलुः ।

नागरं पिप्पलीमूलचव्यमूषणचित्रकम् । भृष्टं हिंग्वजमोदा च सर्षपो जीरकद्वयम् ॥ रेणुकेन्द्रयवौ पाठा विडंगं गजपिप्पली । कटुकातिविषा भार्ङ्गी वचा मूर्वा च पत्रकम् ॥ देवदारु कणा कुष्ठं रास्ना मुस्ता च सैन्धवम् । एला त्रिकण्टकं पथ्या धन्याकं च विभीतकम् ॥ धात्री च त्वगुशीरं च यवक्षारोऽखिलान्यपि । एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ शोधितं गुग्गुलुं चैव सर्वचूर्णसमं नयेत् । संमर्द्य सर्पिषा पश्चात् सर्वं संमिश्रयेच्च

तत् ॥ एकं पिण्डं ततः कुर्यात् धारयेत् घृतभाजने। गुटिकाष्टकमात्रास्तु खादेत्ताश्च यथोचितम्॥सर्वान् वातामयान् हन्यादामवातमपस्मृतिम्। वातरक्तं तथा कुष्ठं तथा दुष्टव्रणानपि ॥ अर्शांसि ग्रहणीरोगं प्लीहगुल्मोदराण्यपि। आनाहं मंदमग्निं च श्वासं कासमरोचकम्॥ प्रमेहं नाभिशूलं च कृमिक्षयमुरोग्रहम्। शुक्रदोषं रजोदोषमुदावर्त्तं भगन्दरम्॥रास्नादिक्वाथसंयुक्तस्सर्ववातामयान् हरेत्। काकोल्यादिशृतात्पित्तं कफमारग्वधादिना॥ दार्वीशृतेन मेहांश्च गोमूत्रेण च पांडुताम्। मधुना मेदसो वृद्धिं कुष्ठं निम्बशृतेन च ॥ छिन्नाक्काथेन वातास्रं शोथं मूलजक्काथात् शृतात् । पाटलाक्काथसहितं विषं मूषिकसम्भवम् ॥ त्रिफलाक्काथसंयुक्तो दारुणां नेत्रवेदनाम् । पुनर्नवादेः क्काथेन हन्ति सर्वोदरानपि ॥ २० ॥

भाषा–सोंठ, पीपरामूल, चव्य, मिरच, चीता, शुद्ध हींग, अजमोदा, सरसों, जीरा, काला जीरा, रेणुका, इन्द्रजौ, पाढ, वायविडंग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, वच, चुरनहार, तेजपात, देवदारु, पीपल, कूठ, रायसन, नागरमोथा, सैंधानोन, इलायची, गोखरू, हरड, धनिया, बहेडा, आमला, दालचीनी, खस और जवाखार ये सब समान भाग लेकर बारीक पीस लेवे। सबोंकी बराबर शुद्ध गूगल लेवे, सबोंको घीमें मर्दनकर पिण्ड बनाकर घृतके वासनमें भरके रख देवे। यथोचित बलको विचारकर आठ गोली खाय। यह योगराज गूगल सर्व प्रकारके वातरोग, आमवात, अपस्मार, वातरक्त, कुष्ठ, दुष्टव्रण, बवासीर, संग्रहणीरोग, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, आनाह, मंदाग्नि, श्वास, खांसी, अरुचि, प्रमेह, नाभिशूल, कृमि, क्षय, उरोग्रह, शुक्रदोष, रजोदोष, उदावर्त्त और भगन्दररोगको दूर करे है। इसको रास्नादिके काथमें मिलाकर पीनेसे सर्व प्रकारके वातरोग, काकोल्यादि गणके काथके साथ सेवन करनेसे पित्तरोग, आरग्वधादि काथके साथ सेवन करनेसे प्रमेहरोग, गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे पाण्डुरोग, सहतके साथ सेवन करनेसे मेदोरोग, नीमकी छालके काथके साथ पीनेसे कुष्ठ, गिलोयके काथके साथ सेवन करनेसे वातरक्त, मूलीके काथके साथ सेवन करनेसे सूजन, पाढलके काथके साथ सेवन करनेसे चूहेका विष, त्रिफलेके काथके साथ सेवन करनेसे नेत्रोंकी पीडा और पुनर्नवाके काथके साथ पीनेसे सर्व प्रकारके उदररोग दूर होते हैं ॥ २० ॥

अस्य भक्षणविधिः ।

आदौ शाणोन्मितं खादेत् ततः कर्षार्द्धमात्रकम् । ततः कर्षमिदं खादेद् गुग्गुलुं क्रमतो नरः ॥ दिनानां सप्तके पूर्वे गुग्गुलोः शाणमाहरेत् । द्वितीये कर्षमर्द्धं तु पूर्णे कर्षं ततः परम् ॥ गुग्गुलुर्योगराजोऽयं महान् मुख्यो रसायनः । मैथुनाहारपानानां नियमो नात्र विद्यते ॥ २१ ॥

भाषा—प्रथम सात दिनतक आधा तोला खाय, फिर सात दिनतक एक कर्ष खाय, फिर सात दिनतक दो कर्ष प्रमाण सेवन करे । यह योगराजगूगल महारसायन है । इसपर मैथुन, आहार और विहारका विशेष नियम नहीं है ॥ २१ ॥

रास्नादिक्वाथो यथा ।

रास्ना पुनर्नवा शुण्ठी गुडूच्येरण्डकं शृतम् ।
सप्तधातुगते वाते सामे सर्वांगगे पिबेत् ॥ २२ ॥

भाषा—रास्ना, पुनर्नवा, सोंठ, गिलोय और अंडकी जड इनको समान भाग लेकर क्राथ बनाकर पान करनेसे सप्तधातुगत वात, आमवात और सर्वांगगत वात दूर होती है ॥ २२ ॥

सैन्धवाद्यतैलम् ।

सैन्धवं श्रेयसी रास्ना शतपुष्पायवानिका । सर्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विडम् ॥ वचाजमोदा मधुकं जीरकं पौष्करं कणा । एतान्यर्द्धपलांशानि श्लक्ष्णपिष्टानि कारयेत् ॥ प्रस्थमेरण्डतैलस्य प्रस्थाम्बु शतपुष्पजम् । कांजिकं द्विगुणं दत्वा तथा मस्तु शनैः पचेत् ॥ सिद्धमेतद् प्रयोक्तव्यं सामवातहरं परम् । पानाभ्यंजनबस्तौ च कुरुतेऽग्निबलं भृशम् ॥ वातातंरक्षणे शस्तं कटीजानूरुसन्धिजे । शूले हृत्पार्श्वपृष्ठेषु कृच्छ्रेऽश्मरिनिपीडिते ॥ अन्यांश्चानिलजान् रोगान् नाशयत्याशु देहिनाम् ॥ २३ ॥

भाषा—सेंधानोन, गजपीपल, रायसन, सोया, अजवायन, सज्जी, काली मिरच, कूठ, सोंठ, काला नोन, बिरिया संचरनोन, वच, अजमोद, मुलहठी, जीरा, पुष्कर-

मूल (अभावमें कूठ) और पीपल प्रत्येक दो दो तोले लेकर बारीक पीस लेवे । अंडीका तेल २ सेर, सोयेका काथ २ सेर, कांजी ४ सेर, दहीका तोड ४ सेर, सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तैलको सिद्ध करे । इस तैलका पान अभ्यंजन और बस्तिक्रियाके द्वारा प्रयोग करनेसे आमवातरोग दूर होता है । अग्नि दीपन होती है । यह सैंधवाद्य तैल वातकी पीडा, कटीगत वात, जानुगत वात, ऊरुगत वात, संधिगत वात, शूल, हृदयरोग, पसलीकी पीडा, पृष्ठगत वात, मूत्रकृच्छ्र, पथरीरोग और अन्यान्य वातके रोगोंको दूर करे है ॥ २३ ॥

आमवातारिवटिका ।

रसगंधकलौहार्कतुत्थटंकणसैन्धवान् । समभागैर्विचूर्ण्याथ चूर्णा-द्विगुणगुग्गुलुः ॥ गुग्गुलोः पादिकं देयं त्रिवृताचूर्णमुत्तमम् । तत्समं चित्रकस्याथ घृतेन वटिकां कुरु ॥ खादेन्मासद्वयं चेदं त्रिफलाजलयोगतः । आमवातारिवटिका पाचिका भेदिका मता ॥ आमवातं निहन्त्याशु गुल्मशूलोदराणि च । यकृत्प्ली-होदराष्ठीलां कामलां पांडुरोगकम् ॥ हलीमकं चाम्लपित्तं श्वयथुं श्लीपदार्बुदौ । ग्रन्थिशूलं शिरःशूलं वातरोगं च गृध्र-सीम्॥ गलगंडं गंडमालां कृमिकुष्ठविनाशिनी । विद्रधिं गर्द-भानाहावन्त्रवृद्धिं च नाशयेत् ॥ २४ ॥

भाषा-पारा, गंधक, लोहा, तांबा, तूतिया, सुहागा और सेंधानोन ये सब समानभाग लेकर चूर्ण कर ले और सब चूर्णसे दुगुना गूगल लेवे, गूगलसे चौथाई भाग निसोतका चूर्ण और निसोतके चूर्णकी समान चीतेका चूर्ण, सबोंको मिलाकर घृतमें गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन इसको दो मासे त्रिफलेके काथमें मिलाकर खाय, यह आमवातारिवटिका भोजनको अच्छे प्रकारसे पचाती है और दस्तको साफ लाती है तथा आमवात, गुल्म, शूल, उदररोग, प्लीहोदर, अष्ठीला, कामला, पाण्डुरोग, हलीमक, अम्लपित्त, सूजन, श्लीपद, अर्बुद, ग्रन्थि-शूल, शिरःशूल, वातरोग, गृध्रसी, गलगण्ड, गण्डमाला, कृमिरोग, कुष्ठ, विद्रधि, गर्दभरोग, आनाह और अन्त्रवृद्धिरोग दूर होता है ॥ २४ ॥

आमवातेश्वरो रसः ।

शुद्धगंधपलार्द्धं च मृतताम्रं च तत्समम् । ताम्रार्द्धं पारदं देयं रसतुल्यं मृतायसम् ॥ सर्वं पंचांगुलदले चालयेन्निपुणः कृती ।

संचूर्ण्य पंचकोलस्य सर्वं क्वाथे विमर्दयेत् ॥ रौद्रे विंशतिवारांश्च गुडूचीनां रसैर्दश । टङ्कणार्द्धं विडं देयं मरिचं विडतुल्यकम् ॥ तिन्तिडीबीजचूर्णं तु सूततुल्यं च दन्तिका । त्रिकटु त्रिफला चैव लवंगं चार्द्धभागिकम् ॥ आमवातेश्वरो नाम विष्णुना परिकीर्त्तितः । महाग्निकारको ह्येष आमवातकुलान्तकः ॥ स्थूलानां कुरुते कार्श्यं कृशानां स्थौल्यकारकः । अनुपानवशेनैव सर्वरोगकुलान्तकः ॥ साध्यासाध्यं निहन्त्याशु चामवातं सुदारुणम् । गुरुवृष्यान्नपानानि पयो मांसरसो हितः॥ भोजयेत् कण्ठपर्यन्तं चतुर्गुञ्जामितं रसम् । कट्वम्लतिक्तरहितं पिबेत्तदनुपानकम् ॥ शीघ्रं जीर्यति तत्सर्वं जायते दीपनः परः। अनेन सदृशो नास्ति वह्निसन्दीपनो रसः ॥ गुल्मार्शोग्रहणीरोगशोथपांडूदरापहः ॥ २५ ॥

भाषा-शुद्ध गंधक २ तोले, तांबेकी भस्म २ तोले, पारेकी भस्म १ तोला, लोहेकी भस्म १ तोला, सबोंको एकत्र पीसकर अंडके पत्तोंके रसमें खरल करे, फिर सुखाकर चूर्ण करके पंचकोलके काथकी बीस भावना धूपमें रख देवे, फिर गिलोयके रसकी १० भावना देवे, पश्चात् सबोंकी बराबर सुहागेकी खीलें, सुहागेसे आधा भाग बिडनोन, बिड्लवणकी समान, काली मिरच, इमलीके बीजोंका चूर्ण और दंतीकी जड, पारेकी समान त्रिकुटा, त्रिफला और लौंग प्रत्येक पारेसे आधा भाग, सबोंको यथाविधिसे कूट पीसकर तैयार करे । यह आमवातेश्वररस विष्णुभगवान्ने निर्माण किया है । यह रस अत्यन्त अग्निको दीपन करनेवाला, आमवात रोगको हरनेवाला, स्थूल मनुष्योंको कृश करनेवाला, कृश मनुष्योंको स्थूल करनेवाला यह अनुपानविशेषसे सर्व प्रकारके रोगोंका विध्वंस करे है । यह साध्यासाध्य दारुण आमवातरोगको नष्ट करे है । इसपर गुरु और वृष्य अन्न पान दूध, तथा मांसरस हितकारी है । इसको चार रत्ती प्रमाण खाय । इसपर कंठपर्यंत अर्थात् इच्छानुसार भोजन करे । कटु, अम्ल और तिक्तरससहित अनुपान पीवे । इसके प्रभावसे सर्व प्रकारके किये हुए भोजन शीघ्र जीर्ण हो जाते हैं । इसकी समान अग्निको दीपन करनेवाला दूसरा रस नहीं है । तथा गुल्म, बवासीर, संग्रहणी, शोथ, पाण्डु और उदररोगको दूर करे है ॥ २५ ॥

पंचाननरसलोहम् ।

जारितं पुटितं लोहं चूर्णं पंचपलं शुभम् । गुग्गुलोश्च पलं पंच लोहार्द्धं मृतमभ्रकम् ॥ शुद्धसूतमभ्रसमं गंधकं तत्समं भवेत् । त्रिगुणामयसश्चूर्णात् दश्रान्तां त्रिफलां नयेत् ॥ दत्त्वा द्विरष्टपानीयमष्टभागावशेषितम् । तेन चाष्टावशेषेण पचेल्लोहाभ्रगुग्गुलुः॥घृततुल्यं शतावर्या रसं दत्त्वा तथा शुभम् । प्रस्थं प्रस्थं च दुग्धस्य शनैर्मृद्वग्निना भिषक् ॥ लोहमय्या पचेद्दर्व्या पात्रे चायसि मृण्मये । ततः पाकविधिज्ञस्तु पाकसिद्धौ विनिःक्षिपेत् ॥ रसकज्जलिकां कृत्वा दत्त्वा चापि विशुद्धयेत् । विडंगं नागरं धान्यं गुडूचीं सत्वजीरकम् ॥ पंचकोलं त्रिवृद्दन्तीं त्रिफलैला च मुस्तकम् । सुचूर्णितं च प्रत्येकमेषामर्द्धपलं क्षिपेत् ॥ उत्तार्य स्थापयेद्भाण्डे सिद्धे चापि सुरञ्जितम् । घृतेन मधुना पश्चान्मर्दयित्वानुपानतः ॥ गुडूचीं नागरैरण्डं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् । भक्षयेच्छुद्धदेहस्तु शुभेऽहनि सुरार्चकः ॥ आमवात महाव्याधिविनाशायेष्टदेवता । सन्धिवातं कटीशूलं कुक्षिशूलं सुदारुणम्॥ जंघापादांगुलीशूलं गृध्रसीं हन्ति पंगुताम् । गुल्मशोथं पांडुरोगं सन्धिवातं च दुःसहम् ॥ आमवातगजेन्द्रस्य केसरी विधिनिर्म्मितः ॥ २६ ॥

भाषा–जारित और पुटित लोहेका चूर्ण ४ पल, शुद्ध गूगल ५ पल, अभ्रककी भस्म ढाई पल, क्वाथके लिये त्रिफला प्रत्येक बारह पल पांच तोले छः सौ तोले जलमें पकावे । जब आठवां भाग जल शेष रह जाय तब उतार ले पश्चात् उस अष्टावशेष क्वाथमें लोहेका चूर्ण गूगल और अभ्रक तथा घृत, दूध और शतावरका रस प्रत्येक एक एक प्रस्थ डालके उत्तम लोहेके पात्रमें अथवा मट्टीके पात्रमें धीरे धीरे मंदमंद अग्निसे पकावे और लोहेकी करछीसे चलाता जाय । जब पाक सिद्ध हो जाय तब किंचित् गरममें गंधक और पारेकी कज्जली ५ पल, वायविडंग, सोंठ, धनिया, गिलोयका सत्व, जीरा, पंचकोल, निसोत, त्रिफला, इलायची और नागरमोथा, प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले मिला देवे । फिर इसको उतारकर

चिकने बासनमें भरके रख देवे, पश्चात् इसको घृत और सहतमें मर्दन कर पवित्र हो शुभदिनमें शुद्ध शरीर होकर अपने इष्टदेवकी पूजा करके भक्षण करे। अनुपान गिलोय, सोंठ और अंडकी जडका क्वाथ है। यह पञ्चाननरस आमवात, महारोग, संधिवात, कटिशूल, दारुण कुक्षिशूल, जंघाश्रित वात, पादाश्रित वात, अंगुलीगत वातकी पीडा, गृध्रसीवात, पंगुता, गुल्म, शोथ, पाण्डुरोग और दुःसह संधिवातको दूर करे है। यह पंचाननरस आमवातरूपी गजेन्द्रके लिये सिंह है ॥ २६ ॥

आमवाते भोजननिषेधः ।

दधिमत्स्यगुडक्षीरपोतीमाषकपिष्टकाम् । वर्जयेदामवातार्त्तो मांसं चानूपसम्भवम् ॥ अभिष्यन्दकरा ये च ये चान्ये गुरुपिच्छिलाः । वर्जनीयाः प्रयत्नेन आमवातार्दितैर्नरैः ॥ २७ ॥

भाषा—आमवातरोगमें दही, मछली, गुड, दूध, पोईका शाक, उडद, पिट्ठी, अनूपदेशके जीवोंका मांस, अभिष्यन्दकारक पदार्थ, भारी और पिच्छिल पदार्थ ये सब त्यागने चाहिये ॥ २७ ॥

आमवातारिवटिका ।

रसगंधकलोहाभ्रं तुत्थं टंकणसैन्धवम् । समभागं विचूर्ण्याथ चूर्णाद्द्विगुणगुग्गुलुः ॥ गुग्गुलोः पादिकं देयं त्रिवृतामूलवल्कलम् । तत्समं चित्रकं देयं घृतेन परिमर्दयेत् ॥ खादेन्माषद्वयं चास्य त्रिफलाचूर्णयोगतः । आमवातारिवटिका पाचिका भेदिका मता ॥ आमवातं निहन्त्याशु गुल्मशूलोदराणि च । यकृत्प्लीहोदराष्ठीला कामला पांडुरोगकान् ॥ ग्रन्थिशूलं वातरोगं शिरःशूलं च गृध्रसीम् । गलगण्डं गंडमालां कृमिकुष्ठभगन्दरान्॥ विद्रधिमंत्रवृद्धिं च अर्शांसि गुदजानि च । आमवातारिवटिका पुरेशानेन चोदिता ॥ २८ ॥

भाषा—पारा, गंधक, लोहा, अभ्रक, तूतिया, सुहागा और सैंधानोन ये सब समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर ले, सब चूर्णसे दुगुना गूगल लेवे। गूगलसे चौथाई भाग निसोतके जडकी छाल और निसोतकी बराबर चीता लेवे। सबोंको पीसकर घृतमें मर्दन करके गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन दो मासे इसको त्रिफलेके चूर्णके साथ खाय। यह आमवातारिवटिका पाचक और भेदक है। तथा आमवात, गुल्म, शूल, उदररोग, यकृत, प्लीहा, उदररोग, अष्ठीला, कामला, पांडु-

रोग, अरुचि, ग्रन्थिशूल, शिरःशूल, वातरोग, गृध्रसीवात, गलगण्ड, गण्डमाला, कृमि, कुष्ठ, भगन्दर, विद्रधि, अन्त्रवृद्धि, बवासीर इन सब रोगोंको दूर करे है। यह आमवातारिवटिका पूर्वकालमें स्वयं महादेवने निर्माण की है ॥ २८ ॥

अपरामवातवटिका ।

रसगंधौ वरा वह्निर्गुग्गुलुः क्रमवर्द्धितः । एतदेरण्डतैलेन मर्दये-दतिचिक्कणः ॥ कर्षोऽस्यैरण्डतैलेन हन्त्युष्णजलपायिनः । आमवातमतीवोग्रं दुग्धं मुद्गादि वर्जयेत् ॥ २९ ॥

भाषा-पारा १ भाग, गंधक २ भाग, त्रिफला ३ भाग, चीता ४ भाग और गूगल ५ भाग इन सबोंको एकत्र पीसकर अंडीके तेलमें खरल करे। तोलाभर इस औषधीको अंडीके तेलके साथ खाय और ऊपरसे गरम जल पीवे तो अत्यन्त उग्र आमवातरोग दूर होवे। इसपर दूध और मुद्रादिका भोजन त्याग देवे ॥ २९ ॥

आमवातेश्वरो रसः ।

शुद्धगंधं पलार्द्धं च मृतताम्रं च तत्समम् । ताम्रार्द्धं पारदं शुद्धं रसतुल्यं मृतायसम् ॥ सर्वं पंचांगुलेनैव भावयेच्च पुनः पुनः । संचूर्ण्य पंचकोलोत्थैः क्वाथैः सर्वं विभावयेत् ॥ रौद्रे विंशतिवारांश्च गुडूचीनां रसैर्दश । भ्रष्टटंकणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् ॥ टंकणार्द्धं बिडं देयं मरिचं बिडतुल्यकम् । तिन्तिडीक्षारतुल्यं च सूततुल्यं च दन्तिकम् ॥ त्रिकटुं त्रिफलां चैव लवङ्गं चार्द्धभागिकम् । आमवातेश्वरो नाम विष्णुना परिकीर्त्तितः ॥ महाग्निकारको ह्येष आमवातान्तको मतः । स्थूलानां कर्षणः श्रेष्ठः कृशानां स्थौल्यकारकः ॥ अनुपानविशेषेण सर्वरोगविनाशनः । अनेन सदृशो नास्ति वह्निदीप्तिकरो महान् ॥ गुल्मार्शो ग्रहणीदोषशोथपाण्डुरुजापहः ॥ ३० ॥

भाषा-शुद्ध गंधक २ तोले, तांबेकी भस्म २ तोले, शुद्ध पारा १ तोला, लोहेकी भस्म १ तोला सबोंको एकत्र पीसकर अंडके रसमें सात भावना देवे। फिर पंचकोलके क्वाथकी बीस भावना धूपमें रखके देवे, पश्चात् गिलोयके रसकी दश भावना देवे, फिर सुखाकर बराबरका भूना हुआ सुहागा मिला देवे। सुहागेसे आधा भाग बिडनोन, बिडलवणकी बराबर काली मिरच, इमलीका खार और दन्ती मत्स्ये-

क पारेकी बराबर, त्रिकुटा, त्रिफला और लौंग प्रत्येक पारेसे आधा भाग, सबोंको एकत्र पीसकर गोलियां बनालेवे । यह आमवातेश्वर रस विष्णु भगवान्‌ने निर्माण किया है । अत्यन्त अग्निको दीपन करनेवाला, आमवातरोगको हरनेवाला, स्थूलमनुष्योंको कृश करनेवाला, कृश मनुष्योंको स्थूल करनेवाला, यह अनुपानविशेष के साथ सर्व प्रकारके रोगोंको हरनेवाला इसकी समान अग्निको दीपन करनेवाला दूसरा रस नहीं है । तथा गुल्म, बवासीर, संग्रहणी, सूजन और पाण्डुरोगको नष्ट करनेवाला है ॥ ३० ॥

वृद्धदाराद्यं लोहम् ।

वृद्धदारत्रिवृद्दन्तीगजपिप्पलमाणकैः ।
त्रिकत्रयसमायुक्तैरामवाताम्लकं त्वयः ॥
सर्वानेव गदान् हन्ति केसरी करिणं यथा ॥ ३१ ॥

भाषा-विधायरा, निसोत, दंती, गजपीपल, मानकंद, त्रिकुटा, त्रिफला और त्रिजातक ये सब समानभाग और सबोंकी बराबर लोहेका चूर्ण सबोंको एकत्र कर यथामात्रानुसार सेवन करे तो सर्व प्रकारके रोग दूर होवें । जैसे सिंहसे हाथी दूर भाग जाता है ॥ ३१ ॥

शिवागुग्गुलुः ।

शिवाबिभीतामलकीफलानां प्रत्येकशो मुष्टिचतुष्टयं च । तोयाढके तत् क्वथितं विधाय पादावशेषे त्ववतारणीयम् ॥ एरण्डतैलं द्विपलं निधाय पिचूत्रयं गंधकनामकस्य । पचेत् पुरस्यात्र पलद्वयं च पाकावशेषे च विचूर्ण्य दद्यात् ॥ रास्नां विडंगं मरिचं कणां च दन्ती जटा नागरदेवदारु । प्रत्येकशः कोलमितं तथैषां विचूर्ण्य निक्षिप्य नियोजयेच्च ॥ आमवाते कटीशूले गृध्रसीक्रोष्टुशीर्षके । न चान्यदस्ति भैषज्यं यथायं गुग्गुलुः स्मृतः ॥ ३२ ॥

भाषा-हरड, बहेडा और आमला प्रत्येक चार चार पल लेकर आठ सेर जलमें पकावे जब चौथाभाग शेष रह जाय तब उतार लेवे, फिर इस क्वाथमें अंडीका तेल २ पल, गंधक ६ तोले और गूगल २ पल डालकर पकावे । जब पाक समाप्त हो जावे तब रायसन, वायविडंग, काली मिरच, पीपल, दंती, बालछड, सोंठ, देवदारु प्रत्येक एक एक तोला लेकर बारीक पीसकर मिला देवे, पश्चात् गोलियां

बनाकर धूपमें सुखा देवे । यह शिवागूगल आमवात, कटिशूल, गृध्रसीवात, क्रोष्टुशीर्ष आदि वातके विकारोंको दूर करे है । इसकी बराबर आमवातरोगमें हितकारक और दूसरी औषधि नहीं है । इसको शिवागूगल कहते हैं ॥ ३२ ॥

आमवातगजसिंहमोदकः ।

शुण्ठीचूर्णस्य प्रस्थैकं यवान्याश्च पलाष्टकम् । जीरकस्य पलं द्वन्द्वं धन्याकस्य पलद्वयम् ॥ पलैकं शतपुष्पाया लवंगस्य पलं तथा । टंकणस्य पलं भृष्टं मरिचस्य पलानि च ॥ त्रिवृता त्रिफला क्षारपिप्पलीनां पलं तथा । शठ्येला तेजपत्रं च चविकानां पलं तथा ॥ अभ्रं लोहं तथा वंगं प्रत्येकं च पलं पलम् । एतेषां सर्वचूर्णानां खण्डं दद्यात् गुणत्रयम् ॥ घृतेन मधुना मिश्रं कर्षमात्रं तु मोदकम् । एकैकं भक्षयेत् प्रातर्घृतैश्चानु पिबेत् पयः ॥ शूलघ्नो रक्तपित्तघ्नश्चाम्लपित्तविनाशनः । आमवातकुलध्वंसी केसरी विधिनिर्मितः ॥ रामबाणो रसो देयो योगवाही रसेन्द्रकः । आमवाते विधीयन्ते सानुपानैः प्रयत्नतः ३३॥

भाषा—सोंठका चूर्ण २ सेर, अजवायन ८ पल, जीरा २ पल, धनिया २ पल, सोया १ पल, लौंग २ पल, भूना हुआ सुहागा १ पल, काली मिरच १ पल, निसोत, त्रिफला, जवाखार और पीपल प्रत्येक एक २ पल, कचूर, इलायची, तेजपात और चव्य प्रत्येक एक २ पल, अभ्रक, लोहा और वंग प्रत्येक एक २ पल और सबसे तिगुनी खांड लेवे। सबोंको एकत्र पीसकर घी और सहतमें मिलाकर एक एक तोलेके लड्डू बना लेवे । प्रतिदिन एक लड्डू खाय ऊपरसे घी और दूध पीवे । यह मोदक शूल, रक्तपित्त, अम्लपित्त और आमवातरोगको दूर करे है । इसमें रामबाणरस और अन्यान्ययोगवाही रस अनुपानविशेषके साथ सेवन करे ॥ ३३ ॥

इति आमवातरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ शूलरोगनिदानम् ।

दोषैः पृथक् समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् ।
सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥

भाषा-वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, पित्तकफज, वातश्लेष्मज, त्रिदोषज और आमजनित इस प्रकार शूलरोग आठ प्रकारका है। परन्तु इन सब शूलोंमें वायु बलवान् है कारण यह है कि प्रायः शूलरोग वायुके विना उत्पन्न नहीं होता है॥१॥

वातिकशूलके कारण और लक्षण ।

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् । कलायमुद्गाढकिकोरदूषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥ कषायतिक्तातिविरूढजान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकात् । विट्शुक्रमूत्रानिलवेगरोधात् शोकोपवासादतिहास्यभाष्यात् ॥ वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकबस्तिदेशे । जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विड्वातसंस्तंभनतोदभेदैः। संस्वेदनाभ्यंजनमर्द्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च समं प्रयाति ॥ २ ॥

भाषा-व्यायाम (दण्ड कसरत करना), घोडे हाथी आदिकी अधिक सवारी करना, अत्यन्त स्त्रीप्रसंग, रात्रिमें जागना, अधिकतर शीतल जलका पीना, मटर, मूंग, अरहर, कोदों तथा अन्यान्य रूक्ष अन्नको अतिशय सेवन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, चोटके लगनेसे, कषेले और कडवे पदार्थोका अत्यन्त सेवन करनेसे, जिसमें अंकुर निकल आये हों ऐसे अन्नको भक्षण करनेसे, विरुद्ध भोजन (दूधके साथ मछली आदि) करनेसे, सूखे मांस और सूखे शाकको भक्षण करनेसे, मल, मूत्र और वायुके वेगको रोकनेसे, शोक, उपवास, बहुत जोरसे हँसने और बहुत जोरसे बोलनेसे वायु दूषित होकर हृदय, पार्श्व, पृष्ठ और त्रिकस्थान तथा वस्तिस्थानमें शूलको उत्पन्न करती है । वह शूल भोजनके पचनेपर, संध्याकालमें वर्षा और शीतकालमें अत्यन्त कोपको प्राप्त होता है। तथा यह शूल वारंवार कुपित और वारंवार शांत हो जाय, सुई चुभानेकी समान और विदारनेकी समान पीडा होती है। स्वेदन, अभ्यंजन और तैलादिकके मलनेसे तथा स्निग्ध और उष्ण पदार्थोंके भक्षण करनेसे यह शूल शांत होता है ॥ २ ॥

पैत्तिकशूलके कारण और लक्षण ।

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलत्थयूषैः। कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥ ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याशु करोति शूलम् । तृण्मोहदाहा-

त्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयुक्तम् ॥ मध्यन्दिने कुप्यति चार्द्धरात्रे विदाहकाले जलदात्यये च । शीते च शीतैः समुपैति शान्तिं सुस्वादुशीतैरपि भोजनैश्च ॥ ३ ॥

भाषा–क्षार, तीक्ष्ण, उष्ण और दाहकारक एवं तैल, सेम, खस, कुलथीका यूष, कटु, अम्ल, सौवीर (एक प्रकारकी कांजी), सुराविकार इनको भक्षण करनेसे, तथा क्रोध अग्निका सेवन, परिश्रम, धूपमें फिरना और अत्यन्त मैथुन करना और विदग्ध पाकी अन्नका भक्षण करना इन सब कारणोंसे पित्त दूषित होकर शीघ्रही नाभिमें शूलको उत्पन्न करता है । वह शूल तृषा, मोह, दाह और घोर वेदनाको उत्पन्न करे तथा पसीना, मूर्छा, भ्रम और शोषको करे । यह शूल मध्याह्नके समय, अर्धरात्रिके समय, भुक्तद्रव्योंके विदग्धपाकके समय अथवा ग्रीष्मऋतु और शरत्ऋतुमें अधिक वृद्धिको प्राप्त होता है । स्वादिष्ट और शीतल द्रव्योंके भोजन करनेसे शीतकालमें यह शूल शांत होता है ॥ ३ ॥

कफात्मकशूलके कारण और लक्षण ।

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुलीभिः । अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम् ॥ हृल्लासकासदनारुचिसंप्रसेकैरामाशये स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः ॥ भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदयेऽथ शिशिरे कुसुमागमे च ॥ ४ ॥

भाषा–अनूपदेशके जीवोंका मांस, जलचरजीवोंका मांस, किलाट (मावा) खोवा इत्यादि), दूधके बने हुए पदार्थ (दही, तक्र, खडी, घी, मलाई इत्यादि), मांस, ईखका रस, पिष्टकद्रव्य, खिचडी, तिल, पूरी, कचौरी तथा अन्यान्य कफकारक पदार्थोंको भक्षण करनेसे कफ कुपित होकर शूलरोगको उत्पन्न करता है । इसमें उबकाई, खांसी, दुर्बलता, अरुचि, मुखसे पानीका गिरना, आमाशयमें स्तब्धता और मस्तक भारी होता है । भोजन करतेही अत्यन्त पीडा हो तथा सूर्योदयके समय, शिशिरऋतु और वसन्तऋतुमें शूल अधिक हो ॥ ४ ॥

त्रिदोषज शूलके लक्षण ।

सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिंगं विद्याद्भिषक् सर्वभवं हि शूलम् । सुकष्टमेनं विषवज्रकल्पं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ५ ॥

भाषा–त्रिदोषजनित शूलरोगमें वात, पित्त और कफजनित शूलके सम्पूर्ण

लक्षण होते हैं। यह अत्यन्त क्लेशकारक और विषवज्रकी समान है इस कारण इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ऐसा प्राचीन वैद्य कहते हैं ॥ ५ ॥

आमशूलके लक्षण ।

आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यमानाहकफप्रसेकैः ।
कफस्य लिंगेन समानलिंगमामोद्भवं शूलमुदाहरंति ॥ ६ ॥

भाषा–पेटमें गुडगुड शब्दका होना, उबकाई, वमन, शरीरमें भारीपन, भीजे कपडेसे ढके हुए समान शरीर मालूम हो, अफरा, मुखसे कफका गिरना इन सब लक्षणोंयुक्त और कफ शूलकी समान आमशूल होता है ॥ ६ ॥

द्विद्वजशूलोंके लक्षण ।

वस्तौ हृत्पार्श्वपृष्ठेषु स शूलः कफवातिकः ।
कुक्षौ हृन्नाभिमध्येषु स शूलः कफपैत्तिकः ॥
दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः ॥ ७ ॥

भाषा–जो शूल बस्ति, हृदय, पसली और पृष्ठ इन स्थानोंमें उत्पन्न होय वह कफवातिक जानना। जो शूल कोख, हृदय और नाभिमें उत्पन्न होय वह कफपैत्तिक है और जिस शूलमें घोर दाह और ज्वर हो वह वातपैत्तिक जानना ॥ ७ ॥

शूलके साध्यासाध्यलक्षण ।

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ।
सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ ८ ॥

भाषा–एक दोषज शूल साध्य, दो दोषज कष्टसाध्य और त्रिदोषज महाभयंकर एवं बहुत उपद्रवयुक्त शूल असाध्य है ॥ ८ ॥

परिणामशूलके लक्षण ।

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः सन्निहितस्तदा । कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्बली ॥ भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् । तस्य लक्षणमप्येतत् समासेनाभिधीयते ॥ ८ ॥

भाषा–आमको बढानेवाले और कुपित करनेवाले जो रूक्षादि कारण उनसे वायु दूषित होकर कफपित्तके समीप जाकर उसको आवृत कर बलवान् होकर शूलको उत्पन्न करे और वह शूल भोजनके पचनेके समय होता है इस कारण इसको परिणामशूल कहते हैं। उसके लक्षण अब संक्षेपसे कहता हूं ॥ ८ ॥

वातिकपरिणामशूलके लक्षण ।

आध्मानाटोपविण्मूत्रविबद्धारतिवेपनैः ।

स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेद्भिषक् ॥ ९ ॥

भाषा–वातजपरिणाममें अफरा, पेटमें गुडगुड शब्दका होना, मलमूत्रका अवरोध, बेचैनी और कम्प ये सब लक्षण होते हैं । यह शूल स्निग्ध और उष्ण द्रव्योंसे शांत होता है ॥ ९ ॥

पैत्तिकपरिणामशूलके लक्षण ।

तृष्णादाहारतिस्वेदं कट्वम्ललवणोद्भवम् ।
शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद्बुधः ॥ १० ॥

भाषा–जिसमें तृषा, दाह, बेकली और पसीना ये सब लक्षण हों तथा जो चरपरे, खट्टे और नमकीन द्रव्योंके सेवन करनेसे वृद्धिको प्राप्त हो और शीतल पदार्थोंके सेवन करनेसे शांत होय उसको पित्तका परिणामशूल जानना ॥ १० ॥

श्लैष्मिकपरिणामशूलके लक्षण ।

छर्दिहृल्लाससम्मोहं स्वल्परुग्दीर्घसंततिः ।
कटुतिक्तोपशान्तौ च तच्च ज्ञेयं कफात्मकम् ॥ ११ ॥

भाषा–वमन, उबकाई और इन्द्री तथा मनमें मोह हो, ये सब लक्षण जिसमें हों, पीडा कम होय और बहुत दिनोंतक रहे एवं जो चरपरे और कडवे पदार्थोंके सेवन करनेसे शांत होवे उसको कफज परिणामशूल जानना ॥ ११ ॥

द्विदोषज और त्रिदोषजके लक्षण ।

संसृष्टलक्षणं बुध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत् ।
त्रिदोषजमसाध्यं तु क्षीणमांसबलानलम् ॥ १२ ॥

भाषा–जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको द्वन्द्वज जानना और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलें उसको त्रिदोषज जानना, वह त्रिदोषज परिणामशूल असाध्य है अथवा जिसमें मांस, बल और अग्नि क्षीण हो गये हों वह परिणामशूल असाध्य है ॥ १२ ॥

अन्नके उपद्रवसे प्रगट शूलके लक्षण ।

जीर्णे जीर्यत्यजीर्णे वा यच्छूलमुपजायते । पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन च ॥ न शमं याति नियमात् सोऽन्नद्रव उदाहृतः । अन्नद्रवाख्यशूलेषु न तावत् स्वास्थ्यमश्नुते ॥ वान्तमात्रे जरत् पित्तं शूलमाशु व्यपोहति ॥ १३ ॥

भाषा–भोजनके पचनेपर या पचते समय अथवा अजीर्ण हो अर्थात् सब

कालमें जो शूल उत्पन्न होय उसको अन्नद्रवशूल कहते हैं । वह अन्नद्रवशूल पथ्यापथ्यसे तथा भोजन करनेसे या नहीं भोजन करनेसे नियमसे शांत नहीं होता है । अन्नद्रवशूलमें तवतक चैन नहीं पडता जबतक वमनके द्वारा पित्त पतित नहीं होता ॥ १३ ॥

इति शूलरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ शूलरोगचिकित्सा ।

वातशूलहरक्काथादिपानम् ।

शुंठी च पिप्पलीचूर्णं गुडूची कण्टकारिका । एभिश्च क्वथितं वारि पीतं चाग्निप्रदीपनम् ॥ वातशूलक्षयं चैव शूलमष्टविधं तथा । पिप्पली पिप्पलीमूलं तथा भल्लातकं शिवम् ॥ वार्यैतैः क्वथितं पीतं वरशूलापहारकम् । हिंगु सौवर्चलं शुंठी पीत्वा तु क्वथितोदकैः ॥ परिणामाख्यशूलं चाजीर्णं चैव विनश्यति । मातुलुंगस्य निर्यासं गुडाज्येन समन्वितम् ॥ वातपित्तजशूलानि हन्ति वै पानयोगतः । लोहचूर्णसमायुक्तं त्रिफलाचूर्णमेव वा ॥ मधुना खादितं रुद्र परिणामजशूलनुत् । क्वथितोदकपानं तु शम्बूकक्षारकं तथा ॥ मृगशृंगं ह्यग्निदग्धं गव्याज्येन समन्वितम् । पीतं हृत्पृष्ठशूलानां भवेन्नाशकरं शिवम् ॥ हिंगु सौवर्चलं रुद्र वृषध्वज महौषधम् । एभिस्तु क्वथितं वारि पीतं वै सर्वशूलनुत् ॥ अपामार्गस्य वै मूलं सामुद्रलवणान्वितम् । आस्वादितमजीर्णस्य शूलस्य स्याद्विमर्दकम् ॥ चूर्णमामलकस्यापि पीतं शूलहरं परम् ॥ १४ ॥

भाषा—सोंठ, पीपल, गिलोय और कटेरी इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे अग्नि दीपन होती है तथा वातशूल, क्षय और आठ प्रकारके शूलरोग दूर होते हैं । पीपल, पीपलामूल और भिलावे इनका क्वाथ बनाकर पीनेसे शूलरोग दूर होता है । हींग, काला नोन और सोंठका क्वाथ बनाकर पीनेसे परिणामशूल और अजीर्णरोग दूर

होता है। बिजौरे नीबूके रसको गुड और घीमें मिलाकर पीनेसे वातपैत्ति कशूलरोग दूर होता है। लोहेका चूर्ण और त्रिफलेके चूर्णको सहतमें मिलाकर भक्षण करनेसे परिणामशूलरोग दूर होता है। शम्बूजन्तुके क्षारके काथमें हिरनके शींगकी भस्म और घी मिलाकर पीनेसे हृदय और पृष्ठका शूल दूर होता है। हींग, काला नोन और सोंठका काथ बनाकर पीनेसे सर्व प्रकारके शूल दूर होते हैं। चिरचिटेकी जड-के काथमें समुद्रनिमकका चूर्ण मिलाकर पीनेसे अजीर्णशूल नष्ट होता है। आम-लेके चूर्णको प्रतिदिन पीनेसे शूलरोग दूर होता है॥ १४॥

अग्निदीपनचूर्णम्।

सामुद्रं सैन्धवं क्षारो राजिका लवणं विडम्। कटुलोहरजः किट्टं त्रिवृत्सूरणकं समम्॥ दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम्। एतच्चाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा॥ जीर्णेऽजीर्णे च भुञ्जीत मांसादिघृतभोजनम्। नाभिशूलं मूत्रशूलं गुल्मप्लीहभवं च यत्॥ सर्वशूलहरं चूर्णं जठरानलदीपनम्। परिणामसमुत्थस्य शूलस्य च हितं परम्॥ वमनं लंघनं स्वेदः पाचनं फलवर्त्तयः। क्षारचूर्णानि गुटिका शस्यन्ति शूलशान्तये॥ १५॥

भाषा-समुद्रनोन, सेंधानोन, जवाखार, राई, विरिया संचरनोन, लोहा, मण्डूर, निसोत और जमीकंद इनका समानभाग चूर्ण लेकर दही, गोमूत्र या दूधके साथ पकाकर गरम जलके साथ जीर्ण और अजीर्ण अवस्थामें सेवन करे मांस और घृतका भोजन करे तो नाभिशूल, मूत्रशूल, गुल्म, प्लीहा और सर्व प्रकारके शूलोंको दूर करे है तथा अग्नि दीपन होती है एवं परिणामशूल दूर होता है। वमन, लंघन, स्वेदनिर्गम, पाचन, फलवर्ति, क्षारचूर्ण और गुटिका ये सब शूलरोगमें हितकारी हैं॥ १५॥

अथ स्वेदः।

पुंसः शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः॥ १६॥

भाषा-शूलरोगयुक्त मनुष्यको स्वेदही सुखकारक है॥ १६॥

अन्नविचारः।

पायसैः कृशरैः पिंडैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्करैः॥ १७॥

भाषा-खीर, खिचडी, पिंडी, स्निग्ध और मांसयुक्त द्रव्य शूलरोगमें हितकारी है॥ १७॥

कुलित्थयूषः ।

वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः ।
ससैन्धवो व्योषयुतः सलावः सहिंगु सौवर्चलदाडिमाढ्यम् ॥ १८ ॥

भाषा—कुलथी और लवापक्षीके मांसका क्वाथ बनाकर उसमें किंचित् सैंधानोन, त्रिकुटा, अनारका रस और काला नोन मिलाकर सेवन करनेसे शीघ्रही शूलरोग दूर होता है ॥ १८ ॥

शूलहरबलाक्वाथः ।

बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः ।
सहिंगु लवणोपेतं सद्यो वातरुजापहम् ॥ १९ ॥

भाषा—खिरैंटी, पुनर्नवा, अंडकी जड, कटाई, कटेरी और गोखरू इनके क्वाथमें हींग और सैंधानोन डालकर पीनेसे तत्काल वातजन्य शूलरोग दूर होता है ॥१९॥

अजवायनचूर्णम् ।

यवानीहिंगुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभयाः ।
सुरामण्डेन पातव्यं चूर्णं शूलनिषूदनम् ॥ २० ॥

भाषा—अजवायन, हींग, सैंधानोन, जवाखार, काला नोन और हरड इनका चूर्ण सुरामण्डके साथ सेवन करनेसे वातशूलरोग दूर होता है ॥ २० ॥

शूलघ्नगुटिका ।

सौवर्चलाम्लिकाजाजीमरिचैर्द्विगुणोत्तरैः ।
मातुलुंगरसैः पिष्टा गुटिका वातशूलनुत् ॥ २१ ॥

भाषा—काला नोन १ भाग, इमली २ भाग, काला जीरा ४ भाग और काली मिरच ८ भाग इन सबोंको बिजौरे नीबूके रसमें खरल करके गोलियां बना लेवे, इन गोलियोंको सेवन करनेसे वातशूलरोग दूर होता है ॥ २१ ॥

घृतपानम् ।

बीजपूरकमूलं च घृतेन सह पाययेत् ।
जयेद्वातभवं शूलं कर्षमेकं प्रमाणतः ॥ २२ ॥

भाषा—बिजौरे नीबूकी जडके स्वरसमें एक कर्ष घृत मिलाकर सेवन करनेसे वातशूलरोग दूर होता है ॥ २२ ॥

हिंग्वादिगुटिका ।

हिंग्वम्लवेतसव्योषयमानीलवणत्रिकैः । बीजपूररसोपेतैर्गुटिका

वातशूलनुत् ॥ बिल्वमूलतिलैरण्डं पिष्ट्वा चाम्लतुषाम्भसा। गुटिकां भक्षयेत्प्रातर्वातशूलविनाशिनीम् ॥ २३ ॥

भाषा-हींग, अमलवेत, त्रिकुटा, अजवायन, सेंधानोन, काला नोन और बिरि-यासंचरनोन इनको बिजौरे नींबूके रसमें खरल करके गोलियां बना लेवे। इन गोलि-योंका सेवन करनेसे वातशूल नष्ट होता है। बेलकी जड, तिल और अंडकी जड, इनको कांजीमें पीसकर गोली बना लेवे उन गोलियोंको सेवन करनेसे वातशूल नष्ट होता है ॥ २३ ॥

पैत्तिकशूले योगाः।

गुडशालियवाः क्षीरं सर्पिःपानं विरेचनम्। जांगलानि च मांसानि भैषज्यं पित्तशूलिनाम्॥पैत्ते तु शूले वमनं पयोम्बु रसैस्तथेक्षोः सपटोलनिंबैः। शीतावगाहाः पुलिनाः सवाताः कांस्यादिपात्राणि जलप्लुतानि॥ विरेचनं पित्तहरं च शस्तं रसाश्च शस्ताः शशलावकानाम्। सन्तर्पणं लाजमधूपपन्नं योगाः सुशीता मधुसंप्रयुक्ताः॥ छर्द्यां ज्वरे पित्तभवेथ शूले घोरे विदाहे त्वतिकर्षिते च। यवस्य पेयां मधुना विमिश्रां पिबेत् सुशीतां मनुजः सुखार्थी॥ धात्र्या रसं विदार्या वा त्रायन्ती गोस्तनांबुना। पिबेत् सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिषूदनम्॥ शतावरीरसं क्षौद्रयुतं प्रातः पिबेन्नरः। दाहशूलोपशांत्यर्थं सर्वपित्तामयापहम्॥ शतावरीसयष्ट्याह्ववाट्यालकुशगोक्षुरैः। शृतशीतं पिबेत्तोयं सगुडक्षौद्रशर्करम्॥ पित्तासृग्दाहशूलघ्नं सद्यो दाहज्वरापहम्। तैलमेरण्डजं वापि मधुककाथसंयुतम्॥ शूलं पित्तोद्भवं हन्ति गुल्मपैत्तिकमेव च। प्रलिह्यात् पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम्॥ २४॥

भाषा-गुड, शालिधान, जौ, दूध, घी और जांगल देशके जीवोंका मांस इनका भक्षण करना और विरेचन यह पित्तशूलवालोंकी औषधि है। पैत्तिकशूल-रोगमें ईखके रसके साथ दूध या जल अथवा पटोल और नीमकी छालके काथमें मैनफलका चूर्ण डालकर पीनेसे वमन होती है। वह वमन पित्तशूलमें अत्य-

न्त हितकारी है। तथा शीतल जलमें घुसकर स्नान करना, शुद्ध चलती हुई पवन स्थानमें निवास और जलसे भरे हुए कांसीके पात्रको शरीरसे स्पर्श करनेसे विशेष लाभ होता है। पैत्तिकशूलरोगमें विरेचन, शशक और लावादि पक्षियोंके मांसका यूष, नारियलका जल और सहतके साथ खीलोंका चूर्ण तथा मधुयुक्त अन्यान्य शीतल योग हितकारी हैं। वमन, ज्वर, पित्तजन्य शूल, प्रबल दाह और अधिक कृशता इन सब रोगोंमें जौकी शीतल पेयाको सहतमें मिलाकर पीवे। आमलोंका रस या विदारीकंदका स्वरस, त्रायमाण और दाख इनके काथमें चीनी डालकर पीनेसे तत्काल पित्तशूल नष्ट होता है। प्रातःकाल शतावरके रसमें सहत मिलाकर सेवन करनेसे पैत्तिकशूल और दाहादिरोग दूर होते हैं। शतावरका रस, मुलहठी, खिरैटी, कुशाकी जड और गोखरू इनके काथमें गुड, सहत और शर्करा मिलाकर पान करनेसे रक्तपित्तदाह, पैत्तिकशूल और दाहयुक्त ज्वर दूर होता है। मुलहठीके काथमें अंडीका तेल डालकर पान करनेसे पैत्तिकशूल और पैत्तिकगुल्म नष्ट होता है तथा आमलोंके चूर्णमें सहत मिलाकर चाटनेसे पित्तशूल दूर होता है॥ २४॥

श्लैष्मिकशूले योगाः।

श्लेष्मात्मके छर्दनलंघनानि शिरोविरेकं मधुसीधुपानम्। मधूनि गोधूमयवानरिष्टान् सेवेत रूक्षान् कटुकांश्च सर्वान्॥ लवणत्रयसंयुक्तं पंचकोलं सरामठम्। सुखोष्णेनाम्बुना पीतं कफशूलनिवारणम्॥ बिल्वमूलमथैरण्डचित्रकं विश्वभेषजम्। हिंगुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम्॥ हिंगु सौवर्चलं शुण्ठी पथ्या च द्विगुणोत्तरा। एतच्चूर्णं कटीकुक्षिपार्श्वहृद्बस्तिशूलनुत्॥ २५॥

भाषा-श्लैष्मिकशूलरोगमें वमन, लंघन, नस्य, मधु, गोधूम, रसोन, रूक्ष और कटु ये सब द्रव्य हितकारी हैं। सेंधानोन, काला नोन, सिरिया संचरनोन, पीपल, पीपलामूल, चव्य, लाल चीतेकी जड और सोंठ इनके काथमें हींग डालकर पीनेसे कफशूल दूर होता है। बेलकी जड, अंडकी जड, चीतेकी जड और सोंठ इनके काथमें हींग और सेंधानोन डालकर पीनेसे तत्काल शूलरोग दूर होता है। हींग १ भाग, काला नोन २ भाग, सोंठ ४ भाग और हरड ८ भाग इनका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे कटी, कुक्षि, पार्श्व, हृदय और बस्तिशूल नष्ट होता है॥ २५॥

अथामशूले क्रिया।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी।
सेव्यमामहरं सर्वं यदग्निबलवर्द्धनम्॥ २६॥

भाषा-आमशूलमें कफनाशक सम्पूर्ण क्रिया करे तथा आमको हरनेवाली, अग्निको दीपन करनेवाली और बलको बढानेवाली औषधि प्रयोग करे ॥ २६ ॥

चतुःसमकचूर्णम् ।

दीप्यकं सैन्धवं पथ्या नागरं च चतुःसमम्। चूर्णं शूलं जयत्याशु मन्दस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ समाक्षिकं बृहत्यादि पिबेत् पित्तानिलात्मके । व्यामिश्रं वा विधिं कुर्याच्छूले पित्तानिलात्मके ॥ पित्तजे कफजे चापि क्रिया या कथिता पृथक् । एकीकृत्य प्रयुंजीत तां क्रियां कफपित्तजे ॥ रसोनमधुसंमिश्रं पिबेत्प्रातः प्रकांक्षितः । वातश्लेष्मभवं शूलं निहन्ति वह्निदीपनम् ॥ शंखचूर्णं च लवणं सहिंगु व्योषसंयुतम् । उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ गोमूत्रशुद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् । विलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ दग्धमनिर्गतधूमं मृगशृंगं गोघृतेन सह पीतम् । हृदयनितंबजशूलं हरति शिखी दारुनिवहमिव ॥ व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटु वैदलम् । वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ २७॥

भाषा-अजवायन, सैंधानोन, हरड और सोंठ ये सब समानभाग लेकर चूर्ण कर गरम जलके साथ सेवन करनेसे शूल शांत होता है और मंदाग्नि दीपन होती है । बृहती, गोखरू और अंडकी जड प्रत्येकके क्काथमें अलग अलग सहत मिलाकर अथवा उक्त तीनों द्रव्योंका एकत्र क्काथ बनाकरके सहत मिलाकर पीनेसे वातपैत्तिकशूल दूर होता है । पित्त और कफशूलमें जो चिकित्सा भिन्न भिन्न कही है वही चिकित्सा पित्तकफशूलमें मिलाकर करनी चाहिये । प्रातःकाल सहतके साथ लहसनका रस पीनेसे वातकफजनित शूल दूर होता है और अग्नि दीपन होती है । शंखकी भस्म, सैंधानोन, हींग और त्रिकुटा इनके चूर्णको गरम जलके साथ पान करनेसे कफोल्वण दारुण सन्निपातशूल दूर होता है । गोमूत्रसे शुद्ध किया हुआ मण्डूर, घृत और सहतमें मिलाकर चाटनेसे त्रिदोषज शूल दूर होता है । हिरनके सींगको इस प्रकार जलावे जिससे उसमें धुआं न निकले फिर उस भस्ममें गायके घीको मिलाकर सेवन करे तो हृदय और नितम्बस्थित शूल दूर होवे । शूलरोगमें व्यायाम, स्त्रीसंसर्ग, मदिरापान, लवण, कटु पदार्थ, विदलअन्न, मलमूत्रादिके वेगोंका रोधन, शोक और क्रोध ये सब त्याग देवे ॥ २७ ॥

न्त हितकारी है । तथा शीतल जलमें घुसकर स्नान करना, शुद्ध चलती हुई पवन स्थानमें निवास और जलसे भरे हुए कांसीके पात्रको शरीरसे स्पर्श करनेसे विशेष लाभ होता है । पैत्तिकशूलरोगमें विरेचन, शशक और लावादि पक्षियोंके मांसका यूष, नारियलका जल और सहतके साथ खीलोंका चूर्ण तथा मधुयुक्त अन्यान्य शीतल योग हितकारी हैं । वमन, ज्वर, पित्तजन्य शूल, प्रबल दाह और अधिक कृशता इन सब रोगोंमें जौकी शीतल पेयाको सहतमें मिलाकर पीवें । आमलोंका रस या विदारीकंदका स्वरस, त्रायमाण और दाख इनके काथमें चीनी डालकर पीनेसे तत्काल पित्तशूल नष्ट होता है । प्रातःकाल शतावरके रसमें सहत मिलाकर सेवन करनेसे पैत्तिकशूल और दाहादिरोग दूर होते हैं । शतावरका रस, मुलहठी, खिरैटी, कुशाकी जड और गोखरू इनके काथमें गुड, सहत और शर्करा मिलाकर पान करनेसे रक्तपित्तदाह, पैत्तिकशूल और दाहयुक्त ज्वर दूर होता है । मुलहठीके काथमें अंडीका तेल डालकर पान करनेसे पैत्तिकशूल और पैत्तिकगुल्म नष्ट होता है तथा आमलोंके चूर्णमें सहत मिलाकर चाटनेसे पित्तशूल दूर होता है ॥ २४ ॥

श्लैष्मिकशूले योगाः ।

श्लेष्मात्मके छर्दनलंघनानि शिरोविरेकं मधुसीधुपानम् । मधूनि गोधूमयवानरिष्टान् सेवेत रूक्षान् कटुकांश्च सर्वान् ॥ लवणत्रयसंयुक्तं पंचकोलं सरामठम् । सुखोष्णेनाम्बुना पीतं कफशूलनिवारणम् ॥ बिल्वमूलमथैरण्डचित्रकं विश्वभेषजम् । हिंगुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ हिंगु सौवर्चलं शुण्ठी पथ्या च द्विगुणोत्तरा । एतच्चूर्णं कटीकुक्षिपार्श्वहृद्बस्तिशूलनुत् ॥ २५ ॥

भाषा—श्लैष्मिकशूलरोगमें वमन, लंघन, नस्य, मधु, गोधूम, रसोन, रूक्ष और कटु ये सब द्रव्य हितकारी हैं । सैंधानोन, काला नोन, बिरिया संचरनोन, पीपल, पीपलामूल, चव्य, लाल चीतेकी जड और सोंठ इनके काथमें हींग डालकर पीनेसे कफशूल दूर होता है । बेलकी जड, अंडकी जड, चीतेकी जड और सोंठ इनके काथमें हींग और सैंधानोन डालकर पीनेसे तत्काल शूलरोग दूर होता है । हींग १ भाग, काला नोन २ भाग, सोंठ ४ भाग और हरड ८ भाग इनका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे कटी, कुक्षि, पार्श्व, हृदय और बस्तिशूल नष्ट होता है ॥ २५ ॥

अथामशूले क्रिया ।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी ।
सेव्यमामहरं सर्वं यदग्निबलवर्द्धनम् ॥ २६ ॥

भाषा-आमशूलमें कफनाशक सम्पूर्ण क्रिया करे तथा आमको हरनेवाली, अग्निको दीपन करनेवाली और बलको बढानेवाली औषधि प्रयोग करे ॥ २६ ॥

चतुःसमकचूर्णम् ।

दीप्यकं सैन्धवं पथ्या नागरं च चतुःसमम् । चूर्णं शूलं जयत्याशु मन्दस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ समाक्षिकं बृहत्यादि पिबेत् पित्तानिलात्मके । व्यामिश्रं वा विधिं कुर्याच्छूले पित्तानिलात्मके ॥ पित्तजे कफजे चापि क्रिया या कथिता पृथक् । एकीकृत्य प्रयुंजीत तां क्रियां कफपित्तजे ॥ रसोनमधुसंमिश्रं पिबेत्प्रातः प्रकांक्षितः । वातश्लेष्मभवं शूलं निहन्ति वह्निदीपनम् ॥ शंखचूर्णं च लवणं सहिंगु व्योषसंयुतम् । उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ गोमूत्रशुद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् । विलिहन् मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ दग्धमनिर्गतधूमं मृगशृंगं गोघृतेन सह पीतम् । हृदयनितंबजशूलं हरति शिखी दारुनिवहमिव ॥ व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटु वैदलम् । वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ २७ ॥

भाषा-अजवायन, सेंधानोन, हरड और सोंठ ये सब समानभाग लेकर चूर्ण कर गरम जलके साथ सेवन करनेसे शूल शांत होता है और मंदाग्नि दीपन होती है । बृहती, गोखरू और अंडकी जड प्रत्येकके काथमें अलग अलग सहत मिलाकर अथवा उक्त तीनों द्रव्योंका एकत्र काथ बनाकरके सहत मिलाकर पीनेसे वातपैत्तिकशूल दूर होता है । पित्त और कफशूलमें जो चिकित्सा भिन्न भिन्न कही है वही चिकित्सा पित्तकफशूलमें मिलाकर करनी चाहिये । प्रातःकाल सहतके साथ लहसनका रस पीनेसे वातकफजनित शूल दूर होता है और अग्नि दीपन होती है । शंखकी भस्म, सेंधानोन, हींग और त्रिकुटा इनके चूर्णको गरम जलके साथ पान करनेसे कफोल्वण दारुण सन्निपातशूल दूर होता है । गोमूत्रसे शुद्ध किया हुआ मण्डूर, घृत और सहतमें मिलाकर चाटनेसे त्रिदोषज शूल दूर होता है । हिरनके सींगको इस प्रकार जलावे जिससे उसमें धुआं न निकले फिर उस भस्ममें गायके घीको मिलाकर सेवन करे तो हृदय और नितम्बस्थित शूल दूर होवे । शूलरोगमें व्यायाम, स्त्रीसंसर्ग, मदिरापान, लवण, कटु पदार्थ, विदलअन्न, मलमूत्रादिके वेगोंका रोधू, शोक और क्रोध ये सब त्याग देवे ॥ २७ ॥

परिणामशूले योगाः ।

वमनं तिक्तमधुरैर्विरेकश्चात्र शस्यते । बस्तयश्च हिताः शूले परिणामसमुद्भवे ॥ दध्नाऽल्यूनसरेणाद्यात् सतिलयवसक्तुकान् । अचिरान्मुच्यते शूलान्नरोऽन्नपरिवर्जनात् ॥ लोहचूर्णं वरायुक्तं विलीढं मधुसर्पिषा । परिणामशूलं शमयेत्तन्मूलं वा प्रयोजितम् २८

भाषा-परिणामशूलमें तिक्त और मधुर द्रव्योंके द्वारा वमन, विरेचन और बस्तिक्रिया ये सब हितकारी हैं । मलाईयुक्त अलूने दहीमें तिल और जौंके सत्तू मिलाके भक्षण करनेसे शूलरोग दूर होता है । लोहेका चूर्ण १ भाग, त्रिफलेका चूर्ण १ भाग इनको सहत और घृतमें मिलाकर चाटनेसे परिणामशूल दूर होता है । लोहेके अभावमें मण्डूर लेना चाहिये ॥ २८ ॥

शंखरसगुटिका ।

पलानि चिंचाक्षारस्य पंच पंच पलानि च । लवणानां क्षिपेत्प्रस्थद्वयं जम्बीरवारिणः ॥ पलद्वादशशंखस्य भस्मीभूतं क्षिपेत्पुनः । सर्वत्रयेण संमर्द्य हिंगुव्योषचतुःपलम् ॥ रसामृतं सुगंधानां पलार्द्धं च पृथक् पृथक् । दद्यात्समस्तं संमर्द्य जम्बीराम्ले दिनत्रयम् ॥ बदरास्थिप्रमाणेन गुटिकाः कारयेद्भिषक् । भक्षयेत्प्रातरुत्थाय तोयमुष्णं पिबेदनु ॥ शूलं च सर्वगुल्मं च अजीर्णपरिणामजम् । अन्त्रशूलं पक्तिशूलं हृच्छूलं च विशेषतः ॥ कुक्षिशूलं पार्श्वशूलं पृथग्वातादिसंभवम् । आमशूलमुदावर्त्तं नाशयेन्नात्र संशयः ॥ नारिकेलं सतोयं च लवणेन प्रपूरितम् । विपक्वमग्निना सम्यक् परिणामजशूलनुत् ॥ वातिकं पैत्तिकं चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ २९ ॥

भाषा-इमलीका खार ५ पल, पंचलवण ५ पल, शंखकी भस्म १२ पल और जम्बीरी नीबूका रस १६ पल, सबोंको एकत्र खरल करे । फिर इसमें हींग, सोंठ, मिरच और पीपल प्रत्येक एक एक पल, पारेकी भस्म, विष और गंधक प्रत्येक दो दो तोले सबोंको एकत्र मिलाकर जम्बीरी नीबूके रसमें तीन दिनतक मर्दन करके बेरके गुठलीकी बराबर गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली खाय और ऊपरसे गरम जलका अनुपान करे तो सर्व प्रकारके शूल, गुल्म, अजीर्णशूल, परिणाम-

शूल, अंत्रशूल, पक्तिशूल, हृदयशूल, कुक्षिशूल, पार्श्वशूल, वातशूल, पित्तशूल, कफशूल, आमशूल और उदावर्त्तरोग दूर होवे। प्रथम एक जलसे भरा हुवा नारियल लेवे, फिर उसकी छाल छीलकर उसमें छेद कर लेवे, उस छेदमें सैंधानिमक भर देवे, पश्चात् उसको उत्तम विधिसे बंद करके अग्निसे पकावे। स्वयं शीतल होनेपर चूर्ण करके सेवन करे तो वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक परिणामशूल दूर होता है॥ २९॥

सप्तामृतलोहम्।

मधुरं त्रिफलाचूर्णमयोरजसमं लिहन्। मधुसर्पियुतं सम्यक्‌ गव्यक्षीरं पिबेदनु॥ छर्दिं सतिमिरं शूलमम्लपित्तं ज्वरं क्लमम्। आनाहं मूत्रसंगं च शोथं चैव निहन्ति सः॥ ३०॥

भाषा-मुलहठी, हरड, बहेडा, आमला और लोहेका चूर्ण सब समान भाग लेवे, सबोंको एकत्र पीसकर सहत और घीमें मिलाकर भक्षण करे। अनुपान गायका दूध है। यह सप्तामृत लोह वमन, तिमिर, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, क्लम, आनाह, मूत्रसंग और शोथको दूर करे है॥ ३०॥

बीजपूराद्यं घृतम्।

बीजपूरकमेरण्डं रास्ना गोक्षुरकं बलाम्। पृथक्‌ पंचपलान् भागान् यवप्रस्थसमायुतान्॥ वारिद्रोणेन संसाध्य यावत् पादावशेषितम्। घृतप्रस्थं पचेत्तेन कल्कं दत्त्वाक्षसम्मितम्॥ तुम्बुरूण्यभया व्योषं हिंगु सौवर्चलं विडम्। सैन्धवं यावशूकं च सर्जिकामम्लवेतसम्॥ पुष्करं दाडिमं चैव वृक्षाम्लं जीरकद्वयम्। मस्तु प्रस्थद्वयं दत्त्वा सर्वं मृद्वग्निना पचेत्॥ घृतमेतत् प्रशंसन्ति शूलं हन्ति त्रिदोषजम्। वातशूलं यकृच्छूलं गुल्मप्लीहापहं परम्॥ हृच्छूलं पार्श्वशूलं च अंगशूलं च नाशयेत्। बलवर्णकरं हृद्यमग्निसन्दीपनं परम्॥ ३१॥

भाषा-गायका घी दो सेर, दहीका तोड चार सेर, क्राथके लिये बिजोरा नीबू, अंड, रास्ना, गोखरू और खिरैंटी पांच पल, जौ दो सेर, पाकके लिये जल ३२ सेर, शेष ८ सेर रक्खे, कल्कके लिये तुम्बुरु, हरड, त्रिकुटा, हींग, काला नोन, बिरियासंचरनोन, सैंधानोन, जवाखार, सज्जी, अम्लवेत, पोहकरमूल, अनार, विषांबिल, जीरा और काला जीरा प्रत्येक समान भाग और सब बीस तोले लेवे, सबोंको यथा

विधिसे मिलाकर मंदाग्निसे पकावे, जब सिद्ध हो जाय तब उतारकर उत्तमपात्रमें भरके रख देवे. इसको पीनेसे त्रिदोषशूल, वातशूल, यकृत्शूल, गुल्म, प्लीहा, हृदयशूल, पार्श्वशूल और अंगशूल नष्ट होता है। यह बल और वर्णको करनेवाला, हृदयको हितकारी और अग्निको दीपन करे है॥ ३१॥

शतावरीमण्डूर।

संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मंडूरस्य पलाष्टकम्। शतावरीरसस्याष्टौ दध्नश्चा पयसस्तथा॥ पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः। विपचेत् सर्वमेकत्र यावत् पिण्डत्वमागतम्॥ सिद्धन्तु भक्षयेन्मध्ये भोजनस्याग्रतोपि वा। वातात्मकं पित्तभवं शूलं च परिणामजम्॥ निहन्त्येव नियोगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः॥३२॥

भाषा-शुद्ध मण्डूर ८ पल, शतावरका रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल, और गायका घी ४ पल लेवे। सबोंको एकत्र करके पकावे, जब पिण्डकी समान हो जाय तब उतार लेवे। यह औषधि भोजनके पहिले मध्यमें अंतमें भक्षण करे तो वातपैत्तिक परिणामशूल निःसंदेह दूर होवे॥ ३२॥

चतुःसममण्डूरम्।

सद्यो लोहमलाज्यमाक्षिकसिता भागाः समा मानतः पात्रे ताम्रमये दिनान्तमथितं संस्थापयेदातपे। पश्चात्तदनतां प्रणीय रजनीमेकां बहिः स्थापयेत् पात्रे ताम्रमये विधेयमथवा पात्रे हविर्भाविते॥ पश्चान्माषचतुष्टयं प्रतिदिनं दग्ध्वा जलं शीतलं पेयं भोजनपूर्वमध्यविरतौ स्वच्छन्दभोज्यैर्नरैः। जेतुं शूलहुताशमान्द्यकसनश्वासाम्लपित्तज्वरोन्मादापस्मृतिमेहसर्वजठराजीर्णादिसर्वा रुजः॥ ३३॥

भाषा-शुद्ध मण्डूर १ पल, गायका घी १ पल, सहत १ पल और चीनी १पल इन सबोंको एकत्र तांबेके पात्रमें लोहेके दण्डेसे उत्तम विधिसे खरल करके एक दिन घूपमें तथा एक रात ओसमें रक्खे। तदनन्तर घृतके बासनमें अथवा तांबेके बासनमें रख देवे। प्रतिदिन चार मासे लेकर शीतल जलके साथ सेवन करे। यह औषधि भोजनके पूर्व मध्य और अंतमें सेवन करे तो सर्व प्रकारके शूल, मंदाग्नि, खांसी, श्वास, अम्लपित्त, ज्वर, उन्माद, अपस्मार, सर्व प्रमेहरोग, उदररोग और जीर्णादि रोग दूर होते हैं। इसपर यथेच्छ भोजन करे। इसकी जो ४ मासेकी मात्रा कही है वह ४ मासे तीन बारके लिये है जैसा ऊपर कहा है॥ ३३॥

धात्रीलोहम् ।

षट्पलं शुद्धमण्डूरं यवस्य कुडवं तथा । पाकाय नीरप्रस्थार्द्धं दद्यात् पादावशेषितम् ॥ शतमूलीरसस्याढ्यावामलक्या रसस्तथा । तथा दधिपयोभूमिकूष्माण्डस्य चतुःपलम् ॥ चतुःपलं सर्पिरिक्षुरसं दद्याद्विचक्षणः । प्रक्षिपेद् जीरधन्याकं त्रिजातं करिपिप्पली ॥ मुस्तं हरीतकी चैव लोहमभ्रं कटुत्रिकम् । रेणुकं त्रिफला चैव तालीशं नागकेशरम् ॥ एतेषां कार्षिकैर्भागैश्चूर्णयित्वा विनिःक्षिपेत् । भोजनाद्यावसाने च मध्ये चैव समाहितः ॥ तोलैकं भक्षयेच्चानु पेयं नित्यं पयस्तथा । शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ वातिकं पैत्तिकं चापि श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् । परिणामभवं शूलमन्नद्रवभवं तथा ॥ द्वन्द्वजानपि शूलांश्च अम्लपित्तं सुदारुणम् । सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलोहमिदं शुभम् ॥ ३४ ॥

भाषा-किंचित् कूटे हुए जौ पल ४, पाकके लिये जल १६ पल, शेष ४ पल, कपडेमें छाना हुआ शतावरका रस, आमलोंका रस (अभावमें क्काथ), दही, दूध, प्रत्येक आठ पल, विदारीकंदका रस, घी, ईखका रस, प्रत्येक ४ पल इन सबोंको एकत्र कर लेवे, फिर इसमें गोमूत्रसे शुद्ध किया हुआ बारीक पीसा हुआ मण्डूर ६ पल डालकर पकावे, जब पाक पूर्ण हो जाय तब जीरा, धनियां, दालचीनी, तेजपात, इलायची, गजपीपल, नागरमोथा, हरड, लोहा, अभ्रक, त्रिकुटा, रेणुका, हरड, आमला, बहेडा, तालीशपत्र और नागकेशर प्रत्येक औषधिका चूर्ण एक एक कर्ष उत्तम रीतिसे मिला देवे । प्रतिदिन एक तोला भक्षण करे और दिन रातमें दूध पीवे । यह धात्रीलोह आठ प्रकारके शूल, साध्यासाध्य, वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक, सान्निपातिक, परिणामशूल, अन्नद्रवभव शूल, द्वन्द्वज शूल, दारुण अम्लपित्त और सर्व प्रकारके शूलोंको दूर करे है ॥ ३४ ॥

बृहन्नारिकेलखण्डः ।

नारिकेलपलान्यष्टौ शर्करा प्रस्थसम्मिता । तज्जलं पात्रमेकन्तु सर्पिः पंचपलानि च ॥ शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं क्षीरं प्रस्थार्द्धमेव च । सर्वमेकीकृतं पात्रे शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ तुगा त्रिकटुकं

मुस्तं चातुर्जातं सधान्यकम् । द्विकणा जीरकं चैव कर्षयुग्मं पृथक् पृथक् ॥ सूक्ष्मचूर्णं विनिःक्षिप्य स्थापयेद्भाजने मृदुः । खादेत् प्रतिदिनं शाणं यथेष्टाहारवानपि ॥ सर्वदोषभवं शूलमेकजं द्वन्द्वजं तथा । परिणामभवं शूलमम्लपित्तं च नाशयेत् ॥ बलपुष्टिकरं हृद्यं वाजीकरणमुत्तमम् । रक्तपित्तहरं श्रेष्ठं छर्दिहृद्रोगनाशनम् ॥ धन्वंतरिकृतं चैतन्नारिकेलरसायनम् ॥ ३८ ॥

भाषा–शिलापर पीसी हुई नारियलकी गिरी ८ पल, चीनी १६ पल, नारियलका जल ८ सेर, घी ५ पल, सोंठका चूर्ण ४ पल, दूध १ सेर सबोंको एकत्र करके मंद मंद अग्निसे पकावे, जब पाक समाप्त हो जाय तब वंशलोचन, त्रिकुटा, नागरमोथा, इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, धनियाँ, पीपल, गजपीपल और जीरा प्रत्येक दो दो कर्ष लेकर बारीक चूर्ण करके अच्छे प्रकारसे मिला देवे । प्रतिदिन इसमेंसे ४ मासे खाय इसपर यथेष्ट भोजन करे । इससे सर्व प्रकारके शूल, एकदोषज, द्वन्द्वज, परिणामशूल और अम्लपित्त रोग दूर होता है । बल और पुष्टिकारक, हृदयको हितकारी, उत्तम वाजीकरण, रक्तपित्तनाशक तथा हृदयरोग और वमनको दूर करे है । धन्वंतरिकृत यह उत्तम रसायन है ॥ ३८ ॥

नारिकेलामृतम् ।

नारिकेलफलं प्रस्थं सुपिष्टं भर्जितं घृते । प्रस्थे प्रस्थं समादाय शुण्ठीचूर्णं तु तत्समम् ॥ द्विपात्रं नारिकेलाम्बु तत्समं क्षीरमेव च । धात्र्याश्च स्वरसप्रस्थं खण्डस्यापि तुलां न्यसेत् ॥ एकीकृत्य पचेत्सर्वं शनैर्मृद्वग्निना भिषक् । सिद्धे शीते प्रदातव्यं चूर्णमेषां चतुर्गुणम् ॥ कटुत्रयं चतुर्जातं प्रत्येकं च पलोन्मितम् । धात्रीजीरकयुग्मं च धन्याकं ग्रन्थिपर्णकम् ॥ तुगा पयोदमूलानि त्रिकर्षाणि पृथक् पृथक् । चतुःपलानि मधुनः स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ शिवं प्रणम्य सगणं धन्वंतरिमथापरम् । कर्षप्रमाणं कर्त्तव्यं मुद्गयूषं पिबेदनु ॥ अम्लपित्तं निहन्त्युग्रं शूलं चैव सुदारुणम् । परिणामभवं शूलं पृष्ठशूलं च नाशयेत् ॥ अन्नद्रवभवं शूलं पार्श्वशूलं सुदुस्तरम् । अग्निसंदीपनकरं रसा-

यनमिदं शुभम् ॥ मूत्राघातानशेषांश्च रक्तपित्तं विशेषतः । पीनसं च प्रतिश्यायं नाशयेन्नित्यसेवनात् ॥ रोगानीकविनाशाय लोकानुग्रहहेतवे । अश्विभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं नारिकेलामृतं शुभम् ॥ ३६ ॥

भाषा-उत्तम सूखे हुए नारियलकी २ सेर गिरी लेकर २ सेर घीमें भून लेवे । सोंठका चूर्ण २ सेर, नारियलका जल १६ सेर, गायका दूध १६ सेर, आमलोंका स्वरस २ सेर, चीनी १२॥ सेर सबोंको एकत्र करके शनैः शनैः मंद अग्निसे पकावे जब पाक समाप्त हो जाय तब सोंठ, मिरच, पीपल, इलायची, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, आमले, जीरा, काला जीरा, धनियां, गठिवन और वंशलोचन प्रत्येक छः छः कर्ष पीसकर डाल देवे, जब शीतल हो जाय तब सहत ४ पल मिला देवे । प्रथम गणपतिसहित शिवका पूजन करके पश्चात् धन्वन्तरिका पूजन कर प्रतिदिन इस औषधिको एक कर्ष प्रमाण सेवन करे। अनुपान मूगका यूप । यह अम्लपित्त, अत्यन्त उग्र शूल, परिणामशूल पृष्ठशूल, अन्नद्रवभव शूल, पार्श्वशूल, मूत्राघात, रक्तपित्त, पीनस, प्रतिश्याय आदि रोगोंको दूर करे है । अग्नि दीपन करे है और उत्तम रसायन है । यह सब प्रकारके रोगोंको हरनेके लिये संसारके उपकारके लिये अश्विनीकुमारने निर्माण किया है ॥३६॥

हरीतकीखण्ड ।

त्रिफलाब्दं चतुर्जातं यवानी कटुकत्रयम् । धान्यं मधुरिका चैव शतपुष्पा लवंगकम् ॥ प्रत्येकं कार्षिकं ग्राह्यं त्रिवृता स्वर्णपत्रिका । पलद्वन्द्वप्रमाणेन सर्वतुल्या हरीतकी ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि सिता तद्द्विगुणा मता । पक्त्वैतानि विधानेन क्षीरेणोष्णेन सम्पिबेत् ॥ हन्त्यम्लपित्तं शूलं च षडर्शास्यनिलामयम् । कोष्ठवातं कटीशूलमानाहमतिदारुणम् ॥ ३७ ॥

भाषा-त्रिफला, नागरमोथा, इलायची, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी, सोंठ, मिरच, पीपल, धनियां, सौंफ, सोया और लौंग प्रत्येक एक एक कर्ष, निसोत और सनाय प्रत्येक दो दो पल, सबकी बराबर हरड, सबोंको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण कर ले और सब चूर्णसे दुगुनी चीनी मिलावे, सबोंका एकत्र पाक करे। प्रतिदिन यह औषधि एक तोला प्रमाण किंचित् गरम दूधके साथ सेवन करे तो अम्ल-

पित्त, शूल, छः प्रकारकी बवासीर, वातरोग, कोष्ठगत वायु, कटीशूल और दारुण आनाहरोगको दूर करे है ॥ ३७ ॥

पूगखण्ड।

प्रस्थैकं पूगचूर्णस्य पायसं चाढकं क्षिपेत् । शर्करायाः पलशतं घृतस्य कुडवद्वयम् ॥ चतुर्जातं त्रिकटुकं देवपुष्पं सचन्दनम् । मांसी तालीशपत्रं च बीजं कमलसंभवम् ॥ नीलोत्पलं तथा मांसी शृंगाटं जीरकं तथा । विदारीकन्दकं चैव रजो गोक्षुरसंभवम् ॥ शतमूलीरसश्चैव मालतीकुसुमं तथा । धात्रीचूर्णं समं कर्षं कर्पूरं शुक्तिमानतः ॥ मन्देऽग्नौ विपचेद्वैद्यः स्निग्धे भांडे निधापयेत् । खादेच्च प्रातरुत्थाय कर्षमेकं प्रमाणतः ॥ छर्घम्लपित्तहृद्दाहभ्रमिमूर्च्छापहं नृणाम् । सर्वशूलहरं श्रेष्ठमामवातविनाशनम् ॥ मेहमेदोविकारघ्नं प्लीहपांडुगदापहम् । अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च गुदजं रुधिरं जयेत् ॥ रेतोवृद्धिकरं हृद्यं तुष्टिदं कामदं तथा । वन्ध्यापि लभते पुत्रं वृद्धोपि तरुणायते ॥ नातः परतरं श्रेष्ठं विद्यते वाजिकर्मसु ॥ ३८ ॥

भाषा-सुपारीका चूर्ण २ सेर, दूध ८ सेर, शर्करा १०० पल, घी १ सेर, दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपात, सोंठ, मिरच, पीपल, लौंग, चन्दन, बालछड, तालीशपत्र, कमलगट्टा, नीलोत्पल, मांसरोहिणी, सिंघाडे, जीरा, विदारीकंद, गोखरू, शतावर, मालतीके फूल, आमले प्रत्येक एक एक कर्ष और कपूर २ कर्ष, सबोंको यथानियमसे मंदाग्निके द्वारा पकावे जब शीतल हो जाय तब उतारकर घीके चिकने बासनमें भरके रख देवे। प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक कर्ष प्रमाण सेवन करे। यह औषधि वमन, अम्लपित्त, हृदयरोग, दाह, भ्रम, मूर्छा, सर्व प्रकारके शूल, आमवात, प्रमेह, मेददोष, प्लीहा, पाण्डुरोग, पथरी, मूत्रकृच्छ्र और गुदाके मार्गसे रुधिरका निकलना आदि रोगोंको दूर करे है। वीर्यको बढानेवाला, हृदयको हितकारी, तुष्टिदायक, कामजनक, वंध्यास्त्रियोंके पुत्र उत्पन्न करनेवाली, वृद्ध मनुष्योंको तरुणता देनेवाली, इससे उत्तम औषधि वाजीकरणमें और नहीं है ॥ ३८ ॥

वैश्वानरलोहम् ।

द्विपलं तिन्तिडीक्षारं तथापामार्गसंभवम् । शम्बूकभस्मसंयुक्तं

लवणं च समं तथा ॥ चतुर्णां समभागाः स्युस्तुल्यं च लोहचूर्णकम् । चूर्णं संपिष्य खल्वादौ कारयेदेकतां भिषक् ॥ शूलिन्यागमवेलायां खादेन्माषत्रयं नरः । शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ॥ ३९ ॥

भाषा–इमलीका खार २ पल, चिरचिटेका खार २ पल, शम्बूककी भस्म २ पल, सैंधानोन २ पल और लोहेका चूर्ण ८ पल सबोंको एकत्र खरलमें पीस लेवे। शूल उत्पन्न होनेके समय इस औषधिको ३ मासे खाय यह आठों प्रकारके साध्यासाध्य शूलोंको दूर करे है ॥ ३९ ॥

शूलगजकेशरिचूर्णम् ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं यामैकं मर्दयेद्दृढम् । द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रं संपुटे तं निरोधयेत् ॥ ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भाण्डे स्थापयेद्बुधः । रुद्ध्वा गजपुटं दत्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ संपुटं चूर्णयेत् श्लक्ष्णं पर्णखण्डे द्विगुंजकम् । भक्षयेत् सर्वशूलार्तो हिंगु शुण्ठी सजीरका ॥ वचा मरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत् । असाध्यं साधयेच्छूलं श्रीशूलगजकेसरी ॥ ४० ॥

भाषा–शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गंधक दो भाग लेकर दोनोंको एकत्र खरल करे, फिर तीन भाग तांबा लेकर तिसका सम्पुट बनाय उस सम्पुटमें पूर्वोक्त खरल किये हुए पारे और गंधकको रखके ढक देवे, फिर इसको नोनसे भरी हुई हांडीमें गाढ हांडीका मुख बंधकर गजपुटमें धरके फूंक देवे, स्वांगशीतल होनेपर उसको बाहर निकालकर सम्पुटको बारीक पीसके चूर्ण बना लेवे तो शूलगजकेसरी रस सिद्ध हो। इसको दो रत्ती भर पानमें रखके खाय और ऊपरसे हींग, सोंठ, जीरा, वच और काली मिरचका चूर्ण एक एक कर्ष प्रमाण गरम जलके साथ पान करे। यह शूलगजकेसरी रस असाध्य शूलको दूर करे है ॥ ४० ॥

शूलवज्रिनी वटी ।

रसगंधकलोहानां पलार्द्धेन समन्वितम् । टंकणं रामठं शुण्ठीं त्रिकटुं त्रिफलां शठीम् ॥ त्वगेलापत्रतालीशं जातीफललवंगकम् । यवानी जीरकं धान्यं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥ माषिका वटिका कार्या छागीदुग्धेन पेषिता । गणेशं योगिनीं शम्भुं

हरिं सूर्यं प्रपूज्य च ॥ शीततोयानुपानेन छागीदुग्धेन वा पुनः। एकैका भक्षिता चेयं वटिका शूलवज्रिणी ॥ शूलमष्टविधं हन्ति प्लीहगुल्मोदरं ज्वरम्। अष्ठीलानाहमेहांश्च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ अम्लपित्तामवातांश्च कामलां पाण्डुरोगकम्। गुरुणा चन्द्रनाथेन वटिकैषा प्रकीर्तिता ॥ संसारपरिरक्षार्थं विचिन्त्य परिनिर्मिता ॥ ४१ ॥

भाषा–पारा, गंधक, लोहा, प्रत्येक दो दो तोले; सुहागा, हींग, सोंठ, त्रिकुटा, त्रिफला, कचूर, दालचीनी, इलायची, तेजपात, तालीसपत्र, जायफल, जीरा, लौंग, अजवायन, धनिया प्रत्येक एक एक तोला लेवे, सबोंको बकरीके दूधमें पीसकर एक एक मासेकी गोली बना लेवे, इसको शूलवज्रिणी वटिका कहते हैं। गणेश, योगेश्वरी, शंकर, हरि और सूर्यदेवका पूजन कर प्रतिदिन एक गोली शीतल जलके साथ अथवा बकरीके दूधके साथ खावे। यह वटी आठ प्रकारके शूल, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, ज्वर, अष्ठीला, आनाह, प्रमेह, मंदाग्नि, अरुचि, अम्लपित्त, आमवात, कामला, पाण्डुरोग इन सब रोगोंको दूर करे है। यह शूलवज्रिणी वटिका गुरुचन्द्रनाथने संसारकी रक्षाके लिये निर्माण की है ॥ ४१ ॥

शूलान्तको रसः।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं चिरता चित्रकं तथा। एकैकशः समो भागस्तदर्द्धं रसगन्धयोः ॥ लोहाभ्रकविडङ्गानां भागस्तद्विगुणो भवेत्। एतत् सर्वं समादाय चूर्णयित्वा विचक्षणः॥ त्रिफलायाः कषायेण गुडिकाः कारयेद्भिषक्। तदेकां भक्षयेत् प्रातर्भुक्त्वा वारि पिबेदनु॥निहन्ति परिणामोत्थमम्लपित्तं वमिं तथा। अन्नद्रवभवं शूलं सन्निपातसमुद्भवम् ॥ सर्वशूलान्निहन्त्याशु शुष्कदार्वनलो यथा ॥ ४२ ॥

भाषा–सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, चिरायता और चीता प्रत्येक एक एक तोला; पारा ६ मासे, गंधक ६ मासे, लोहा, अभ्रक, वायविडंग प्रत्येक दो दो तोले इन सबोंको एकत्र पीसकर त्रिफलेके क्वाथमें खरल करके गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली प्रातःकाल उठकर भक्षण करे ऊप-

रसे थोडा जल पीवे। यह शूलान्तकरस परिणामशूल, अम्लपित्त, वमन, अन्न-द्रवमव शूल, सन्निपातोत्पन्न और सर्व प्रकारके शूलोंको भस्म कर देता है। जिस प्रकार सूखे काष्ठको अग्नि भस्म कर देती है॥ ४२॥

विद्याधराभ्रम्।

विडङ्गमुस्तात्रिफलागुडूचीदन्तीत्रिवृद्वह्निकटुत्रिकं च। प्रत्येक-मेषां पिचुभागचूर्णं पलानि चत्वार्य्ययसो मलस्य॥ गोमूत्र-शुद्धस्य पुरातनस्य यद्वायसस्तानि शिवादिकायाः। कृष्णाभ्र-काचूर्णपलं विशुद्धं निश्चन्द्रकं श्लक्ष्णमतीव सूतात्॥ पादोनकर्षं स्वरसेन खल्वे शिलातले पत्रमुनीदलस्य। संमर्द्य यत्नादतिशु-द्धगन्धपाषाणगन्धेन पिचून्मितेन॥ युक्त्या ततः पूर्वरजांसि दत्त्वा सर्पिर्मधुभ्यामवमर्द्य यत्नात्। संस्थापयेत् स्निग्धविशुद्ध-भाण्डे ततः प्रयोज्यास्य रसायनस्य॥ प्राङ् माषकौ द्वावथ वा त्रयो वा गव्यं पयो वा शिशिरं जलं वा। पिबेदयं योगवरः प्रभूतकालप्रनष्टानलदीपकश्च॥ रोगेषु हन्यात् परिणामशूलं शूलं तथाम्लद्रवसंज्ञकं च। यक्ष्माम्लपित्तं ग्रहणीं प्रदुष्टां जीर्णज्वरं लोहितपित्तमुग्रम्॥ नश्यन्ति ते यत्र निहन्ति रोगान् योगोत्तमः सम्यगुपास्यमानः॥ ४३॥

भाषा–वायविडंग, नागरमोथा, त्रिफला, गिलोय, दंती, निसोत, चीता और त्रिकुटा, प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, गोमूत्रमें भावना देकर सिद्ध किया हुआ लोह मल या लोहपात्रिका चार पल, निश्चन्द्र कृष्णाभ्रकका चूर्ण ४ तोले और शुद्ध पारा डेढ तोला लेकर सबको अगस्तियाके पत्तोंके रसमें खरल करे, पश्चात् सूख जानेपर इसमें २ तोले शुद्धगंधकका चूर्ण मिला देवे, फिर सहत और घीमें घोटकर एक चिकने बासनमें भरके रख देवे। अग्निका बलाबल विचारकर प्रातःकाल एक मासे या दो मासे गायके दूध या शीतल जलके साथ सेवन करे। यह विद्याधराभ्र परिणामशूल, अम्लद्रवशूल, राजयक्ष्मा, अम्लपित्त, संग्रहणी, जीर्णज्वर और रक्त-पित्त रोगको दूर करे है॥ ४३॥

चतुःसमलोहम्।

अभ्रं गन्धं रसं लोहं प्रत्येकं संस्कृतं पलम्। सर्वमेतत् समा-

हृत्य यत्नतः कुशलो भिषक् ॥ आज्यपलद्वादशके दुग्धे वत्सरसंख्यके । पक्त्वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं सुपूतं घनवाससा ॥ विडङ्गत्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च । पिष्ट्वा पलोन्मितानेतान् तथा संमिश्रितान्नयेत् ॥ तत्तु पिष्टं शुभे भाण्डे स्थापयेत्तु विचक्षणः । आत्मनः शोभने चाह्नि पूजयित्वा रविं गुरुम् ॥ घृतेन मधुना मर्द्य भक्षयेन्माषकावधि । क्रमेण वर्द्धयेत्तच्च समाहितमनाः सदा ॥ अनुपानं च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा । जीर्णान्ने हितशाल्यन्नं मुद्गमांसरसादिभिः ॥ रसायनविरुद्धानि चान्यान्यपि च कारयेत् । हृच्छूलं पार्श्वशूलं चाप्यामवातं कटीग्रहम् ॥ गुल्मशूलं च हृच्छूलं यकृत्प्लीहानमेव च । अग्निमांद्यं क्षयं कुष्ठं कासं श्वासं विचर्चिकाम् ॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च योगेनानेन साधयेत् ॥ ४४ ॥

भाषा–अभ्रक, गंधक, पारा और लोहा प्रत्येक एक एक पल, घी १२ पल, दूध १२ पल इनको एकत्र विधिपूर्वक पकावे, फिर वायविडंग, हरड, बहेडा, आमला, चीता, सोंठ, मिरच और पीपल, चार चार तोला इनका बारीक चूर्ण कर कपडेमें छानकर मिला देवे, जब पाक पूर्ण होकर शीतल हो जाय तब घीके चिकने बासनमें भरके रख देवे । प्रथम गुरु देव और सूर्यका पूजन करके इस औषधिको एक मासे लेकर घी और सहतमें मर्दन करके भक्षण करे, फिर क्रम क्रमसे मात्रा बढाता जाय । अनुपान दूध और नारियलका जल है । पथ्य पुराने शालिधान, मूंग और मांसरसादिक है । इसपर रसायनविरुद्ध द्रव्य कदापि भक्षण न करे । यह औषधि हृदयशूल, पार्श्वशूल, आमवात, कटिग्रह, गुल्मशूल, हृदयशूल, यकृत्, प्लीहा, मंदाग्नि, क्षय, कुष्ठ, खांसी, श्वास, विचर्चिका, पथरी, मूत्रकृच्छ्रको दूर करे है ॥ ४४ ॥

शूलगजेन्द्रतैलम् ।

एरण्डं दशमूलं च प्रत्येकं पलपंचकम् । जले चाष्टगुणे पक्त्वा तैलस्यार्द्धाढकं पचेत् ॥ विश्वं जीरं यवानीं च धन्याकं पिप्पलीं वचाम् । सैन्धवं बदरीपत्रं प्रत्येकं च पलद्वयम् ॥ यवक्वाथः पयश्चैव तैलादेयं गुणद्वयम् । तैलमेतन्महातेजो नाम्ना

शूलगजेन्द्रकम् ॥ निहन्त्यष्टविधं शूलमुपद्रवसमन्वितम् ।
अग्निप्रदं वमिहरं श्वासकासारुचीर्जयेत् ॥ ज्वरघ्नं रक्तपित्तघ्नं
प्लीहगुल्मविनाशनम् । श्रीमद्गहननाथेन निर्म्मितं विश्वसम्पदे॥४५॥

भाषा-अंड और दशमूल प्रत्येक पांच २ पल लेकर आठ गुने जलमें पकावे, जब चौथा भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। जौका काथ ८ सेर, दूध ८ सेर और तिलका तैल ८ सेर, कल्कके लिये सोंठ, जीरा, अजवायन, धनियां, पीपल, वच, सैंधानोन और बेरीके पत्ते प्रत्येक दो दो पल, सबोंको यथाविधिसे मिलाकर पकावे, जब सिद्ध हो जाय तब उतार लेवे। यह शूलगजेन्द्रतैल अत्यन्त तेजवान् है। यह उपद्रवसहित आठों प्रकारके शूल, वमन, श्वास, खांसी, अरुचि, ज्वर, रक्तपित्त, प्लीहा और गुल्मको दूर करें है। अग्निको दीपन करे। श्रीमान् गहनानन्दनाथने यह शूलगजेन्द्रतैल संसारके उपकारके लिये निर्म्माण किया है ॥ ४५ ॥

सप्तामृतलोहम् ।

मधुकं त्रिफलाचूर्णमयोरजः समं लिहन् । मधुसर्पिर्युतं सम्यक्
गव्यक्षीरं पिबेदनु ॥ छर्दिं सतिमिरं शूलमम्लपित्तं ज्वरारुचिम् ।
मूत्रकृच्छ्रं तथा मेहं हन्यादेतन्न संशयः ॥ ४६ ॥

भाषा-मुलहठी, हरड, बहेडा, आमला, सहत और घी ये सब समान भाग और सबोंकी बराबर लोहेका चूर्ण लेवे; सबोंको एकत्र पीस लेवे इस औषधिको सेवन करके ऊपरसे गायका दूध पीवे। यह सप्तामृतलोह वमन, तिमिररोग, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और प्रमेहको दूर करे है ॥ ४६ ॥

त्रिफलालोहम् ।

तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ।
क्षीरेण पाययेद्धीमान् सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ४७ ॥

भाषा-लोहेका चूर्ण और त्रिफलेका चूर्ण दोनोंको एकत्र कर दूधमें मिलाकर सेवन करे तो तत्काल शूलरोग दूर होवे ॥ ४७ ॥

चतुःसमलोहम् ।

अभ्रं ताम्रं रसं लोहं गन्धकं संस्कृतं पलम् । सर्वमेतत् समाहृत्य यन्त्रतः कुशलो भिषक् ॥ आज्ये पले द्वादशके दुग्धे
वत्सरसंख्यके । पक्त्वा तत्र क्षिपेत् चूर्णं सुपूतं घनवाससा ॥

विडङ्गं त्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च । पिष्ट्वा पलोन्मितानेतानथ संमिश्रितान् नयेत् ॥ ततः पिष्ट्वा शुभे भाण्डे स्थापयेच्च विचक्षणः । आत्मनः शोभने चाह्नि पूजयित्वा रविं गुरुम् ॥ घृतेन मधुनालोड्य भक्षयेन्माषकादिकम् । अष्टौ माषान् क्रमेणैव वर्द्धयेच्च समाहितः॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं नारिकेलजलं पयः। जीर्णे लोहितशालयन्नं मुद्गमांसरसं तथा॥ भक्षयेत् घृतसंयुक्तं सद्यः शूलाद्विमुच्यते । हृच्छूलं पार्श्वशूलं च आमवातं कटिग्रहम् ॥ गुल्मशूलं शिरःशूलं योगेनानेन नाशयेत्४८

भाषा-अभ्रक, तांबा, पारा, लोहा और गंधक प्रत्येक एक एक पल, दूध १२ पल और घी १२ पल, सबोंको एकत्र करके पकावे. फिर वायविडंग, त्रिफला, चीता, त्रिकुटा प्रत्येक चार २ तोले लेकर बारीक पीसकर कपडेमें छानकर मिला देवे, जब सिद्ध हो जाय तब उतारकर एक चिकने बासनमें भरके रख देवे; शुभ दिनमें चन्द्रतारादि अपने गुरु देव और सूर्यदेवकी पूजा करके इस औषधिको घी और सहतमें मिलाकर एक मासा भक्षण करे, फिर प्रतिदिन एक २ मासे बढाकर क्रमसे आठ मासे पर्यंत सेवन करे । अनुपान नारियलका जल और दूध है । जब औषधि जीर्ण हो जाय तब लाल शालिधानके चावलोंका भात, मूंग और मांसरसादिकको घृतके साथ भक्षण करे । यह औषधि हृदयशूल, पार्श्वशूल, आमवात, कटिग्रह, गुल्मशूल और शिरःशूलको नष्ट करे है ॥ ४८ ॥

पंचात्मको रसः ।

मृतसूताभ्रकं चाम्लवेतसं ताम्रगन्धकम् । विषं फलत्रयाचूर्णं तुल्यं मर्द्यं दिनावधि ॥ जयन्ती मुण्डिरी वासा बृहती च गुडूचिका । महाराष्ट्री जम्बुरसैस्तथा नीलोत्पलस्य च ॥ प्रतिद्रावैर्दिनं भाव्यं ततः संशोष्य यत्नतः । अर्द्धांशं पंचलवणं दत्त्वार्द्रकरसेन च ॥ दिनं पेष्यं ततः कुर्यात् वटिकां चणसन्निभाम् । प्रातर्मध्याह्नरात्रौ च भक्षयेद्वटिकात्रयम् ॥ माषेक्षुपिष्टगुर्वन्नं गोपयश्च हितं तथा । सेवेत शूलार्त्तश्चायं वात पंचात्मकः स्मृतः४९

भाषा-पारेकी भस्म, अभ्रक, अम्लवेत, तांबा, गंधक, विष और त्रिफला ये सब समान भाग करके चूर्ण लेकर जयंती, गोरखमुंडी, अडूसा, कटाई,

गिलोय, मुलहठी, जामुन और नीलोत्पल प्रत्येकके रसमें एक एक दिन खरल करे, फिर सुखाकर आधा भाग पांचों नोन मिलाकर एक दिन अदरखके रसमें पीसकर चनेकी बराबर गोलियां बना लेवे। एक गोली प्रातःकाल, एक गोली मध्याह्नके समय और एक गोली रात्रिके समय भक्षण करे; इस प्रकार प्रतिदिन ३ गोली खाय। इसपर उडद, ईख, पिष्टक, भारी अन्न और गायका दूध सेवन करे। यह पंचात्मकरस वातशूलको दूर करे है ॥ ४९ ॥

धात्रीलोहम् ।

कुडवं शुद्धमण्डूरं यवं च कुडवं तथा । पाकार्थं च जलं प्रस्थं चतुर्भागावशेषितम् ॥ शतावरीरसस्याष्टावामलक्या रसस्य च । तथा दधिपयोभूमिकुष्माण्डस्य चतुःपलम् ॥ चतुःपलमिक्षुरसं दद्यात्तत्र विचक्षणः । प्रक्षिपेत् जीरकं धान्यं त्रिजातं करिपिप्पली ॥ मुस्तं हरीतकीं चैव अभ्रं लोहं कटुत्रयम् । रेणुकां त्रिफलां चैव तालीशं स्वर्णकेशरम्॥कटुकं मधुकं रास्नां चाश्वगन्धां च चन्दनम् । एतेषां कार्षिकं भागं चूर्णयित्वा विनिःक्षिपेत् ॥ भोजनादावसाने च मध्ये चैव समाहितः। तोलैकं भक्षयेन्नित्यं अनुपानं पयस्तथा ॥ शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा । वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ परिणामसमुत्थं च अन्नद्रवभवं तथा । सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलोहमिदं शुभम् ॥ ५० ॥

भाषा-आध सेर जौको दो सेर जलमें पकावे जब चौथा भाग बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर उसमें शुद्ध मण्डूर आध सेर, शतावरका रस ८ पल, आमलोंका स्वरस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल, विदारीकंद ४ पल, ईखका रस ४ पल डालकर पकावे। जब गाढा हो जाय तब जीरा, धनियां, त्रिजातक, गजपीपल, नागरमोथा, हरड, अभ्रक, लोहा, सोंठ, मिरच, पीपल, रेणुका, त्रिफला, तालीसपत्र, नागकेशर, कुटकी, मुलहठी, रास्ना, असगंध और चंदन प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर पीसकर मिला देवे। प्रतिदिन एक तोलाभर भोजनकी आदि, मध्य, अंतमें भक्षण करे। अनुपान दूध है। यह ८ प्रकारके शूल, साध्यासाध्य, वातिक, पैत्तिक, श्लेष्मिक, सान्निपातिक, परिणामशूल, अन्नद्रवभव शूल और सर्व प्रकारके शूलोंको दूर करे है। यह धात्रीलोह परमोत्तम है ॥ ५० ॥

शूलराजलोहम् ।

कर्षैकं कान्तलोहस्य शुद्धमभ्रं पलं तथा । सितायाश्च पलं चैकं मधु सर्पिस्तथैव च ॥ सर्वमेकीकृतं पात्रे लोहदण्डेन मर्दयेत् । त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकम् ॥ प्रत्येकं तोलकं मानं चूर्णितं तत्र दापयेत् । भक्षयेत् प्रातरुत्थाय शिशिराम्बुनुपानतः ॥ सर्वदोषभवं शूलं कुक्षिशूलं च यद्भवेत् । हृच्छूलं पार्श्वशूलं च अम्लपित्तं च नाशयेत् ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषं प्रमेहांश्च विषूचिकाम् । शूलराजमिदं लोहं हरेण परिनिर्म्मितम् ॥ ५१ ॥

भाषा—कान्तलोह १ कर्ष, शुद्ध अभ्रक १ पल, मिश्री १ पल, सहत १ पल, घी १ पल, सबोंको एकत्र करके लोहेके दंडेसे खरल करे, फिर इसमें सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग, चव्य और चीता प्रत्येक एक एक तोला लेकर पीसकर मिला देवे । प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर शीतल जलके साथ इसको भक्षण करे। यह शूलराजलोह सर्व दोषोत्पन्न शूल, कुक्षिशूल, हृदयशूल, पार्श्वशूल, अम्लपित्त, बवासीर, संग्रहणी, प्रमेह और विषूचिकादि रोगोंको दूर करे है । यह स्वयं महादेवने निर्माण किया है ॥ ५१ ॥

विद्याधराभ्रम् ।

विडङ्गमुस्तत्रिफला गुडूची दन्ती त्रिवृद्वह्निकटुत्रयं च । प्रत्येकमेषां पिचुभागचूर्णं पलानि चत्वार्य्ययसो मलस्य ॥ गोमूत्रशुद्धस्य पुरातनस्य यद्वायसस्तानि शिवाटिकायाः । कृष्णाभ्रचूर्णस्य पलं विशुद्धं निश्चन्द्रकं शुद्धमतीव सूतात् ॥ पादोनकर्षं स्वरसेन खल्वे शिलातलेथानकुलीदलस्य । संमर्द्य पश्चादतिशुद्धगन्धं पाषाणचूर्णेन पिचून्मितेन ॥ युक्त्या ततः पूर्वरजांसि दत्त्वा सर्पिर्मधुभ्यामवमर्द्य यत्नात् । निधापयेत् स्निग्धविशुद्धभाण्डे ततः प्रयोज्यास्य रसायनस्य ॥ प्राङ् माषको वाप्यथ वा द्वितीयो गव्यं पयो वा शिशिरं जलं वा । पिबेदयं योगवरः प्रभूतकालप्रणष्टानलदीपकश्च ॥ रोगं निहन्यात् परिणा-

मशूलं शूलं तथान्नद्रवसंज्ञकं च। यक्ष्माम्लपित्तं ग्रहणीं प्रवृद्धां जीर्णज्वरं लोहितपित्तकं च॥ नश्यन्ति ते यान्न निहन्ति रोगान् योगोत्तमः सम्यगुपास्यमानः॥ ८२॥

भाषा-वायविडंग, नागरमोथा, त्रिफला, गिलोय, दंती, निसोत, चीता, त्रिकुटा, प्रत्येक दो तोले; चार पल लोहेका मल या लोहपत्रिका गोमूत्रमें शुद्ध किया हुआ कृष्णाभ्रकका चूर्ण १ पल, गोरखमुण्डी ४ पल, पारा १॥ तोला और शुद्ध गंधक २ तोले, प्रथम तो पारेको गोरखमुंडीके रसमें खरल करके शुद्ध करे फिर उसमें १॥ तोले शुद्ध डालकर मर्दन करे, जब कज्जली तैयार हो जाय तब उसमें पूर्वोक्त वायविडंग आदि औषधियोंको मिलाकर लोहेके दंडेसे घी और सहतके द्वारा खरल करे, फिर इस औषधिको एक चिकने बासनमें भरके रख देवे। रोगीका बलाबल विचारकर यह औषधि एक मासे या दो मासे गायके दूधके या शीतल जलके साथ सेवन करावे, यह औषधि अत्यन्त अग्निको दीपन करें है। तथा परिणामशूल, शूल, अन्नद्रवशूल, राजयक्ष्मा, अम्लपित्त, संग्रहणी, जीर्णज्वर, रक्तपित्त इन सब रोगोंको यह उत्तम विद्याधररस दूर करता है॥ ८२॥

वृहद्विद्याधराभ्रम्।

शुद्धसूतं तथा गन्धं फलत्रयकटुत्रयम्। विडङ्गं मुस्तकञ्चैव त्रिवृता दन्तिचित्रकम्॥ आखुपर्णी ग्रन्थिकञ्च प्रत्येकं कर्षसम्मितम्। पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य मृतायश्च चतुर्गुणम्॥ घृतेन मधुना पिष्ट्वा वटिकां कोलसम्मिताम्। एकैकां वटिकां खादेत् प्रातरुत्थाय नित्यशः॥ अनुपानं गवां क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम्। सर्वशूलं निहन्त्याशु वातपित्तभवं तथा॥ एकजं द्वन्द्वजं चैव तथैव सान्निपातिकम्। परिणामोद्भवं शूलमामवातोद्भवं तथा॥ कार्श्यं वैवर्ण्यमालस्यं तन्द्रारुचिविनाशनम्। साध्यासाध्यं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ ८३॥

भाषा-शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, नागरमोथा, निसोत, दंती, चीता, मूसाकानी, गठिवन ये औषधि प्रत्येक एक एक कर्ष; कृष्णाभ्रकका चूर्ण १ पल, लोहेकी भस्म ४ पल, या लोहपत्रिका, गोमूत्रमें शुद्ध किया हुआ कृष्णाभ्रकका चूर्ण १ पल, गोरखमुण्डी ४ पल सबोंको एकत्र पीसकर घी और सहतमें खरल करके बेरकी बराबर गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन

प्रातःकाल उठकर एक गोली नित्य खाय; अनुपान गायका दूध, शीतल जल या नारियलका पानी है । यह औषधि सर्व प्रकारके शूल, वातपित्तोद्भव शूल, एक दोषज, दोदोषज, सान्निपातिक, परिणामशूल, आमवातोत्पन्न शूल, कृशता, विवर्णता, आलस्य, तन्द्रा, अरुचि और साध्यासाध्यरोगोंको दूर करे है ॥ ५३ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरो रसः ।

शुद्धसूतं तथा ताम्रं शिलामाक्षिकतालकम् । रजतं स्वर्णवङ्गं च लोहमभ्रं सनागरम् ॥ चूर्णयेत् पंचलवणं देयं सर्वन्तु तुल्यकम् । गन्धकं मिश्रयेत् सर्वं रसैरेषां विभावयेत् ॥ शुण्ठीजयन्तीविजयामहाराष्ट्रीकधूर्त्तजैः । सर्वाङ्गसुन्दरो नाम्ना रसोऽयं विष्णुनिर्मितः ॥ खादेदेरण्डशुण्ठीभ्यां माषमात्रं दिने दिने । कफवातमयं हन्ति चानुपानं वदाम्यहम् ॥ व्योषं सौवर्चलं हिङ्गु करञ्जबीजसंयुतम् । पिबेदुष्णाम्बुना चानु सर्वशूलनिकृन्तनम् ५४॥

भाषा-शुद्ध पारा, तांबा, मैनशिल, सोनामक्खी, हरिताल, चांदी, सोना, वंग, लोहा, अभ्रक, सोंठ, पांचों नोंन और गंधक ये सब समान भाग लेकर सोंठ, जयंती, भांग, मुलहठी और धतूरेके रसमें खरल करे तो सर्वांगसुन्दर रस तैयार हो। यह रस विष्णुभगवान्ने निर्माण किया है । प्रतिदिन एक मासेभर इस औषधिको अंडकी जड और सोंठके साथ भक्षण करे । यह रस कफवातके रोगोंको दूर करे है । अनुपान त्रिकुटा, काला नोन, हींग और करंजके बीजोंका चूर्ण गरम जलके साथ सेवन करे । यह सर्वांगसुन्दररस सर्व प्रकारके शूलोंको दूर करे है ॥५४॥

शूलवज्रिणी वटिका ।

रसगन्धकलोहानां पलार्द्धेन समन्वितम् । त्रिफला रामठं शुल्वं त्रिकटु शठी टंकणम्॥ पत्रं त्वगेलाताली सजातीफललवङ्गकम् । यवानी जीरकं धान्यं प्रत्येकं तोलकं शुभम् ॥ माषैका वटिका कार्य्या छागीदुग्धेन वा पुनः । एकैका भक्षिता चेयं वटिका शूलवज्रिणी ॥ शूलमष्टविधं हन्ति प्लीहगुल्मोदरं तथा । अम्लपित्तामवातं च पाण्डुत्वं कामलां तथा ॥ शोथं गलग्रहं वृद्धिं श्लीपदं सभगन्दरम् । वृद्धबालकरी चैव मन्दाग्नेरपि दीपनी॥ ५५ ॥

भाषा-पारा, गंधक, लोहा प्रत्येक दो दो तोले; त्रिफला, हींग, तांबा, त्रिकुटा, कचूर, सुहागा, तेजपात, दालचीनी, इलायची, तालीसपत्र, जायफल, लौंग,

जीरा और धनियां प्रत्येक एक एक तोला लेकर बकरीके दूधमें पीसकर एक एक मासेकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली खाय। यह गोली आठ प्रकारके शूल, प्लीहा, गुल्म, उदररोग, अम्लपित्त, आमवात, पांडुता, कामला, शोथ, गलग्रह, वृद्धिरोग, श्लीपद, भगन्दर आदि रोगोंको दूर करे हैं। वृद्ध मनुष्योंको बालककी समान करे है और अग्निको दीपन करे है। इसको शूलवज्रिणी वटिका कहते हैं॥ ५५॥

त्रिपुरभैरवः।

भागो रसस्याश्महेम्नो भागो ग्राह्योतियत्नतः। तयोर्द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि लेपयेत्॥ पचेत् शूलहरः सूतो भवेत् त्रिपुरभैरवः। माषो मध्वाज्यसंयुक्तो देयोऽस्य परिणामजे॥ अन्ये त्वेरण्डतैलेन हिङ्गुत्र्ययुतो रसः॥ ५६॥

भाषा-पारा १ भाग और गंधक १ भाग दोनोंको एकत्र खरल करके कजली बना लेवे, फिर इस कजलीसे बारहवा भाग तांबेके पत्र लेकर उन पत्रोंपर इस कजलीका लेप कर देवे, पश्चात् वालुकायंत्रमें पकावे, तांबेकी भस्म हो जाय तब चूर्ण कर लेवे, प्रतिदिन इसको एक मासेभर सहत और घीके साथ भक्षण करे। यह त्रिपुरभैरवरस परिणामशूलको दूर करे है। कोई कोई वैद्य इस रसमें अंडका तेल, हींग और त्रिकुटा मिलाकर सेवन करते हैं॥ ५६॥

अग्निमुखः।

रसबलिगगनार्कं वेतसाम्लं विषं स्यात् सवरमिह पृथक् स्याद् भावयेत् घस्रमेतैः। कनकभुजगवल्लीकण्टकारीजयाद्भिः कमलसलिलवासासुष्ठवजम्बुपूरैः॥ अरुणसहशपाकैर्मातुलुङ्गैश्च योज्यः पुटगण इह तुल्यो भावयेदार्द्रकाद्भिः। दहनवदननाम्ना वल्लमात्रो निहन्ति प्रबलसकलशूलं तद्विकारानशेषान्॥ ५७॥

भाषा-पारा, गंधक, अभ्रक, तांबा, अमलवेत, विष और त्रिफला ये सब औषधि समान भाग लेकर धतूरा, पान, कटेरी, जयंती, कमल, सुगंधवाला, अडूसा, कुचिला, थूहर और अच्छे प्रकारसे पका हुआ बिजौरा नींबू प्रत्येकके रसमें एक एक दिन खरल करे, फिर इसमें पुटगण (जिन औषधियोंमें इसको खरल किया वह सब औषधि) मिलाकर दूसरी बार अदरखके रसमें खरल करे पश्चात् इसको पकावे, प्रतिदिन तीन रत्ती प्रमाण सेवन करे, इससे सर्व प्रकारके प्रबल शूल और शूलरोगके उपद्रव दूर होते हैं॥ ५७॥

शूलगजकेसरी ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं यामैकं मर्दयेद्दृढम् । द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रं संपुटे सन्निवेशयेत् ॥ ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भाण्डे स्थापयेद्भिषक् । ततो गजपुटं दद्यात् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ संपुटं चूर्णयेत् श्लक्ष्णं पर्णखण्डे द्विगुञ्जकम् । भक्षयेत् सर्वशूलार्तो हिङ्गु शुण्ठी च जीरकम् ॥ वचं मरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत् । असाध्यं नाशयेच्छूलं श्रीशूलगजकेसरी ॥ ९८ ॥

भाषा-पारा १ भाग और गंधक २ भाग, दोनोंको एकत्र करके एक प्रहर उत्तम विधिसे खरल करे, फिर इसमें तीन भाग तांबा मिलाकर सम्पुटमें स्थापन कर मृत्तिकाके पात्रमें रक्खे, फिर इस संपुटके ऊपर और नीचे लवण देकर गजपुटमें पकावे, जब स्वांगशीतल हो जाय तब निकालकर चूर्ण कर लेवे, इस चूर्णको दो रत्तीभर पानमें रखके खाय । ऊपरसे हींग, सोंठ, जीरा, वच, काली मिरच इनका एक कर्ष चूर्ण गरम जलके साथ सेवन करे । यह शूलगजकेसरी रस असाध्यशूलको दूर करे है ॥ ९८ ॥

द्विगुणाख्यो रसः ।

टङ्कणं हारिणं शृङ्गं स्वर्णं गन्धं मृतं रसम् । दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुध्वा पुटे पचेत् ॥ द्विगुणाख्यो रसो ह्यस्य माषैकं मधुसर्पिषा । सैन्धवं जीरकं हिङ्गु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु॥ पक्तिशूलहरः ख्यातो याममात्रान्न संशयः ॥ ९९ ॥

भाषा-सुहागा, हरिणके सींगकी भस्म, सोना, गंधक और रससिन्दूर ये सब औषधि समान भाग लेकर एक दिन अदरखके रसमें खरल करे, फिर सम्पुटमें रख गजपुटमें पकावे, जब स्वांगशीतल हो जाय तब चूर्ण कर ले । प्रतिदिन इसको एक मासे भर सहत और घीके साथ सेवन करे । अनुपान सैंधानोन, जीरा, हींग, सहत और घी मिलाकर अवलेह यह औषधि एक प्रहरमें परिणामशूलको नष्ट करे है ॥ ९९ ॥

शूलहरणयोगः ।

हरीतकी त्रिकटुकं कुचिला हिङ्गु सैन्धवम् ।गन्धकं च समं सर्वं वटीं कुर्यात् सुखावहाम् ॥ लघुकोलप्रमाणां तु शस्यते प्रातरेव हि । एकैका वटिका ग्राह्या गुल्मशूलविनाशिनी ॥ ग्रहण्याम-

तिसारे च साजीर्णे मन्दपावके । योजयेदुष्णपयसा सुखमाप्नोति निश्चितम् ॥ सुवर्णं च भवेद्देहं सत्वोत्साहयुतं नृणाम् ॥ ६० ॥

भाषा-हरड, त्रिकुटा, कुचला, हींग, सैंधानोन और गंधक ये सब समान भाग लेकर खरल करके छोटे बेरकी बराबर गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक गोली भक्षण करे । यह गोली निश्चय गुल्मशूलको दूर कर देती है । संग्रहणी, अतीसार, अजीर्णरोग और मंदाग्निरोगमें इन गोलियोंको गरम दूधके साथ सेवन करे तो निःसंदेह सुखकी प्राप्ति होती है । इन गोलियोंका सेवन करनेसे शरीर सुवर्णकी समान होता है और उत्साहकी वृद्धि होती है ॥ ६० ॥

शर्करालोहम् ।

त्रिफलायास्तथा धात्र्याश्चूर्णं वा काललोहजम् । शर्कराचूर्णसंयुक्तं सर्वशूलेषु योजयेत् ॥ ६१ ॥

भाषा-त्रिफला, आमला और लोहेका चूर्ण ये सब समान भाग और सबकी बराबर शर्करा लेवे । सबोंको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारके शूलरोग दूर होते हैं ॥ ६१ ॥

शंखादिचूर्णम् ।

शंखचूर्णस्य च पलं पञ्चैव लवणानि च । क्षारं टङ्कणकं जाती शतपुष्पा यवानिका ॥ हिङ्गु त्रिकटुकं चैव सर्वमेकत्र चूर्णयेत् । आमवातं यकृत् शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ अन्नद्रवकृतं शूलं शूलं चैव त्रिदोषजम् ॥ ६२ ॥

भाषा-शंखकी भस्म एक पल, पंचलवण, जवाखार, सुहागा, जायफल, सोया, अजवायन, हींग और त्रिकुटा ये सब समान भाग लेवे । सबोंको एकत्र पीसकर चूर्ण कर ले । यह चूर्ण आमवात, यकृत्, शूल, परिणामशूल, अन्नद्रवभव शूल और त्रिदोषज शूलको दूर करे है ॥ ६२ ॥

इति शूलरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथोदावर्तानाहरोगनिदानम् ।

वातविण्मूत्रजृंभास्रक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः । क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसम्भवः ॥ १ ॥

भाषा-वायु, मल, मूत्र, जम्भाई, आंसू, छींक, डकार, वमन, शुक्र, क्षुधा, तृषा, श्वास और निद्रा इनके वेगोंको रोकनेसे तेरह प्रकारका उदावर्त्तरोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

तेरह उदावर्तोंके लक्षण ।

वातमूत्रपुरीषाणां संगाध्मानं क्लमो रुजः । जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ आटोपशूलौ परिकर्त्तिका च संगः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः । पुरीषमास्यादथ वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा । विनामो वंक्षणानाहः स्याल्लिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥ मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृंभोपरोधात्पवनात्मकाः स्युः । तथाक्षिनासावदनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः ॥ आनन्दजं वाप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुंचतो हि । शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ मन्यास्तम्भशिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ । इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥ कण्ठास्यपूर्णत्वमतीवतोदः कूजश्च वायोरथवाऽप्रवृत्तिः । उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति घोरा विकाराः पवनप्रसूताः॥२॥

भाषा-अधोवातरोगजनक उदावर्त्तरोगमें वातमूत्र और मलका रोध, आध्मान और पीडा होती है तथा उदरमें अन्यान्य वातजन्य तोद शूलादि नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। मलवेगरोधजनित उदावर्त्तरोगमें पेटमें गुडगुड शब्द, गुदद्वारमें कतरनीकी समान पीडा, मलरोध और वायुकी ऊर्ध्वगति तथा कभी कभी मुखके द्वारा मल निकले । मूत्रके वेगको धारण करनेसे जो उदावर्तरोग उत्पन्न होता है उसमें वस्ति और लिंगमें शूल, मूत्रकृच्छ्र और शिरमें पीडा हो तथा वंक्षणदेशमें आनाहकी पीडासे शरीर नव जाता है । जम्भाईके रोकनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें मन्या और गलस्तम्भरोग उत्पन्न होता है । वातजन्य तीव्र शिरोरोग, नेत्ररोग, नासारोग, कर्णरोग और मुखरोग उत्पन्न होते हैं । आनन्द अथवा शोकसे उत्पन्न आंसू उनको रोकनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें मस्तकमें भारीपन, पीनस और भयंकर नेत्ररोग उत्पन्न होता है । छींकके वेगको धारण करनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें मन्यास्तम्भ

शिरःशूल, अर्दित, अर्द्धावभेदक और सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें दुर्बलता उत्पन्न होती है। उद्गारके वेगको धारण करनेसे जो उदावर्त्तरोग उत्पन्न होता है उसमें मुख और कंठ भारीसा मालूम हो, सुई छेदनेकी समान पीडा हो, अव्यक्त भाषण और श्वासका अवरोध होता है तथा वातजन्य हिक्कादि रोग उत्पन्न होते हैं ॥ २ ॥

अधोवायुकी अप्रवृत्ति ।

कण्डूः कोठारुचिव्यंगो शोफपांड्वामयज्वराः । कुष्ठहृल्लासवीसर्पाच्छर्दिनिग्रहजा गदाः ॥ मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथोरुजा मूत्रविनिग्रहश्च । शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच ते ते विकाराभिहते च शुक्रे॥तन्द्राङ्गमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधाभिघातात्कृशता च दृष्टेः । कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृषाभिघाताद्धृदयव्यथा वै ॥ श्रांतस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवापि गुल्मः । जृंभांगमर्दाक्षिशिरोतिजाड्यं निद्राभिघातादथवापि तन्द्रा ॥ ३ ॥

भाषा-वमनके वेगको धारण करनेसे जो उदावर्त्तरोग उत्पन्न होता है उसमें मण्डलाकार चकत्ते पड जाना, शरीरमें खुजली, अरुचि, व्यंग, पांडु, ज्वर, कुष्ठ, विसर्प और हृल्लास होते हैं। शुक्रके वेगको धारण करनेसे जो उदावर्त्तरोग उत्पन्न होता है उसमें मूत्राशय, मलद्वार और अंडकोषमें सूजन तथा पीडा हो, मूत्ररोध, शुक्रज अश्मरी, शुक्रस्राव और वीर्य क्षरणके द्वारा नाना प्रकारके विकार उत्पन्न होते हैं। क्षुधाके वेगको धारण करनेसे जो उदावर्त्तरोग उत्पन्न होता है उसमें तन्द्रा, अंगोंका टूटना, अरुचि, श्रम, दृष्टिकी, हीनता और कृशता होती है। प्यासके वेगको रोकनेसे जो उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है उसमें कंठ और मुखका सूखना, कानोंमें शब्दका नहीं सुनना और हृदयमें पीडा होती है, थका हुआ, मनुष्य श्वासके वेगको रोके तो उसके जो उदावर्त्तरोग उत्पन्न हो उसमें हृदयरोग, मूर्छा और गुल्मरोग उत्पन्न होता है। निद्राके वेगको रोकनेसे जो उदावर्त्तरोग उत्पन्न होता है उसमें जम्भाई, अंगोंका टूटना, नेत्र और मस्तकमें जडता और तन्द्रा होती है ॥ ३ ॥

अब रूक्षादि द्रव्योंको सेवन करनेसे कुपित हुई जो वायु उससे उत्पन्न हुए जो उदावर्त्तरोग उनको कहते हैं ।

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षकषायकटुतिक्तकैः । भोजनैः कुपितः

सद्य उदावर्त्तं करोति च ॥ वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदोवहानि वै। स्रोतांस्युदावर्त्तयति पुरीषं चातिवर्त्तयेत्॥ततो हृद्बस्तिशूलार्त्तो हृल्लासारतिपीडितः। वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः॥ श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान् । वमिहिक्काशिरोरोग-मनःश्रवणविभ्रमान् ॥ बहूनन्यांश्च लभते विकारान्वातको-पजान् ॥ ४ ॥

भाषा—रूखे, कषैले, चरपरे और कडवे रसवाले द्रव्योंको भक्षण करनेसे कोष्ठ-स्थित वायु कुपित होकर तत्काल उदावर्त्तरोगको उत्पन्न करती है। मलकी कठि-नता तथा वात, मल, मूत्र, रुधिर, कफ और मेदवाहक स्रोतोंके समूहको आच्छा-दन करे, इस रोगमें हृदय और बस्तिदेशमें शूल उत्पन्न होता है, शरीरमें ग्लानि और उबकाई आती है। वायु, मूत्र और पुरीषको अत्यंत कष्टसे त्यागे, रोगीके श्वास, खांसी, प्रतिश्याय, दाह, मूर्छा, तृषा, ज्वर, वमन, हिक्का, शिरोरोग, मन-विभ्रम और कानोंमें भ्रम होता है और कुपितवातजन्य अन्यान्य प्रकारकेभी रोग उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥

आनाहरोगनिदानम् ।

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन। प्रवर्त्त-मानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ तस्मिन् भव-त्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः । आमाशये शूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तम्भ उद्गारविघातनं च ॥ स्तम्भः कटी-पृष्ठपुरीषमूत्रे शूलोथ मूर्च्छा शकृतश्च छर्दिः। श्वासश्च पक्वाश-यजे भवन्ति तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि ॥ ५ ॥

भाषा—आम या विष्ठा क्रमसे संचित होकर विगुण वायुसे वारंवार व्याप्त शुष्क होकर अपने मार्गसे अच्छे प्रकार नहीं प्रवर्ते उसको आनाह कहते हैं। आमसे उत्पन्न हुए आनाहरोगमें तृषा, पीनस, मस्तकमें जलन, आमाशयमें शूल, शरी-रमें भारीपन, हृदयका जकडना, डकार, कटि, पृष्ठ, मल और मूत्रका रुकना, शूल, मूर्छा और विष्ठायुक्त वमनका होना तथा श्वास ये सब लक्षण होते हैं। पक्वाशयमें आनाहरोग होय तो आलसोक्त लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥

असाध्य लक्षण ।

तृष्णार्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् ।

शकृद्वमंतं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ ६ ॥

भाषा-तृषासे पीडित, क्लेशयुक्त, क्षीण, शूलसे दुःखित और जो मलको वमन करे ऐसे उदावर्तरोगीकी वैद्य चिकित्सा नहीं करे ॥ ६ ॥

इति उदावर्तानाहरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथोदावर्त्तानाहरोगचिकित्सा ।

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो त्रिचतुःपंचभागिकाः । गुटिका गुडतुल्यास्ता विड्विबन्धगदापहाः ॥ हिङ्गुकुष्ठवचासर्ज्जिविडं चैव द्विरुत्तरम् । पीतं मद्येन तच्चूर्णमुदावर्त्तविनाशनम् ॥ रसोनं मद्यसंमिश्रं पिबेत् प्रातः प्रकांक्षितः । गुल्मोदावर्त्तशूलघ्नं दीपनं बलवर्द्धनम् ॥ हिङ्गुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पक्त्वा वर्तिं सुवर्तिताम् । घृताभ्यक्तां गुदे दद्यात् उदावर्त्तविनाशिनीम् ॥ वर्तिस्त्रिकटुसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः । मधुनि गुडे वा पक्त्वा पायवीरिताऽङ्गुष्ठपरिमाणा ॥ वर्तिरियं दृष्टफला शनैः शनैः प्रणिहिता घृताभ्यक्ता । आनाहोदावर्त्तप्रशमनी जठरगुल्मनिवारिणी ॥ त्रिवृत्सुधापत्रतिलादिशाकग्राम्यौदकानूपरसैर्यवान्नम् । अन्यैश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भिरद्यात् प्रसन्नागुडसीधुपायी ॥ आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्निग्धस्य शस्यते । पुरीषजे तु कर्त्तव्यो विधिरानाहिकस्तु यः ॥ ७ ॥

भाषा-निसोत ३ भाग, पीपल ४ भाग और हरड ५ भाग सबोंको एकत्र पीसकर चूर्ण कर ले और सब चूर्णकी बराबर गुड मिला लेवे । इन गोलियोंको सेवन करनेसे मलबन्धजनक उदावर्त्तरोग दूर होता है । हींग, कूठ, वच, सज्जी और विरिया संचरनोन ये प्रत्येक द्रव्य एकसे दुगुना भाग लेकर चूर्ण करके मदिराके साथ पान करनेसे उदावर्त्तरोग दूर होता है । लहसनके रसमें मदिरा मिलाकर प्रातःकाल पीवे तो गुल्म, उदावर्त्त और शूल दूर होता है । अग्नि दीपन होती है और बलकी वृद्धि होती है । हींग, सहत और सैंधानोन तीनोंको एकत्र पकाकर बत्ती बना लेवे, फिर उन बत्तियोंको घीमें सानकर गुदामें प्रवेश करे तो

उदावर्त्तरोग दूर होवे। काली मिरच, पीपल, सोंठ, सैंधानोन, सरसों, घरका धूंआ, कूट और मैनफल सबोंको समान भाग लेकर एकत्र चूर्ण करके बत्ती बनाकर घीमें सानकर वारंवार गुह्यद्वारमें प्रवेश करनेसे आनाह, उदावर्त्त, उदररोग और गुल्मरोग दूर होता है। निसोत, थूहरके पत्ते, तिलादिके पत्तोंका शाक, ग्राम्य जलचर और अनूपजीवोंके मांसका रस, जौ तथा अन्यान्य मलमूत्रको लानेवाले पदार्थ, उदावर्त्तरोगमें हितकारी हैं। इस रोगमें प्रसन्ना और गुड, सीधु नामवाली मदिरा हितकारी है। वायुजन्य उदावर्त्त रोगमें स्नेह और स्वेदक्रिया करके वस्तिक्रिया करनी चाहिये। मलरोधजन्य उदावर्त्तरोगमें आनाहरोगोक्त चिकित्सा करनी चाहिये॥ ७॥

नाराचचूर्णम्।

खण्डपलं त्रिवृता समसुपकुल्याकर्षचूर्णितं श्लक्ष्णम्। प्राग्भोजने च मधु बिडालपदकं लिहेत् प्राज्ञः॥एतद्गाढपुरीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम्॥स्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णं नाराचको नाम्ना॥८॥

भाषा—चीनी १ पल, निसोत १ पल और पीपल १ कर्ष सबोंको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर भोजनके पूर्व दो तोले परिमाण भक्षण करे तो सर्व प्रकारका उदावर्त्तरोग दूर हो। यह नाराचचूर्ण स्वादिष्ठ और राजाओंके सेवने योग्य है॥ ८॥

नाराचरसः।

सूतगन्धकतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम्।टङ्कणं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विमिश्रयेत्॥ सर्वतुल्यानि बीजानि दन्तीनां निस्तुषाणि च। स्नुहीक्षीरेण संयुक्तं मर्दयेद्दिवसत्रयम्॥ नारिकेलोदरे स्थाप्यं महागाढाग्निना ततः। तत्कल्कं पाचयेत् क्षिप्रं खल्लयित्वा निधापयेत्॥ तन्मध्यनारिकेलेन राजयोग्यं विरेचनम्। वटिकालेपमात्रेण दशवारं विरेचयेत्॥ तद्गन्धघ्राणमात्रेण विरेको जायते ध्रुवम्॥ ९॥

भाषा—पारा, गंधक और काली मिरच प्रत्येक एक २ भाग, सुहागा, पीपल और सोंठ प्रत्येक दो दो भाग और सबोंकी बराबर छिलकेरहित जमालगोटे, सबोंको एकत्र कर थूहरके दूधमें तीन दिन खरल करे, फिर नारियलके खोपडेमें स्थापन करके अत्यंत तेज आगसे पकावे, स्वांगशीतल होनेपर निकाल कर

खरल करके गोलियां बना लेवे, इस गोलीको नाभिपर घिसनेसे दश दस्त होते हैं अथवा सूंघनेसेभी दस्त हो जाते हैं ॥ ९ ॥

वारिपानं ।

त्रिवृद्धरीतकी श्यामा स्नुहीक्षीरेण भावयेत् ।
स्नुहीमूलस्य चूर्णं वा पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ १० ॥

भाषा-निसोत, हरड और पीपल इनको थूहरके दूधमें भावना देकर सेवन करनेसे अथवा थूहरकी जडके चूर्णको गरम जलके साथ पीनेसे मलमूत्र निःसृत होकर आनाहरोग दूर होता है ॥ १० ॥

वैद्यनाथवटी ।

मथ्या त्रिकटु सूतं च द्विगुणं कानकं तथा । थामकुनीरसैरम्ललोलिकाया रसैः कृता ॥ गुटिकोदरगुल्मादिपाण्डामयविनाशिनी । कृमिकुष्ठगात्रकण्डूपीडकांश्च निहन्ति च॥ गुटी सिद्धफला चेयं वैद्यनाथेन भाषिता ॥ ११ ॥

भाषा-हरड, त्रिकुटा और पारा प्रत्येक औषधि समान भाग और शुद्ध जमालगोटे दो भाग लेवे। सबोंको मण्डूकपर्णीके रसमें और अम्ललोनीके रसमें खरल करके गोलियां बना लेवे। यह वैद्यनाथवटी उदररोग, गुल्म, पाण्डुरोग, कृमि, कुष्ठ, गात्रकण्डू, पिडका इन सब रोगोंको दूर करे है ॥ ११ ॥

बृहदिच्छाभेदीरसः ।

शुद्धं पारदटङ्कणं समरिचं गन्धाश्मतुल्यं त्रिवृत् विश्वा च द्विगुणा ततो नवगुणं जैपालचूर्णं क्षिपेत् । खल्वे दण्डयुगं विमर्द्य विधिना चार्कस्य पत्रे ततः स्वेदं गोमयवह्निना च मृदुना स्वेच्छावशाद्भेदकः ॥ गुञ्जैकप्रमितो रसो हिमजलैः संसेवितो रेचयेत् यावन्नोष्णजलं पिबेदपि वरं पथ्यं च दध्योदनम् । आमं सर्वभवं सुजीर्णमुदरं गुल्मं विशालं हरेत् वह्नेर्दीप्तिकरो बलासहरणः सर्वामविध्वंसनः ॥ १२ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, सुहागा, काली मिरच और गंधक ये सब समान भाग और सबोंकी बराबर निसोत लेवे, दुगुनी सोंठ और नौगुने जमालगोटे लेवे। सबोंको एकत्र ४ घडी खरल करे, फिर आकके पत्तोंमें रख अरने उपलोंकी मंद मंद अग्निसे स्वेद देवे, इसको रत्तीभर शीतल जलके साथ भक्षण करे। इससे

जबतक गरम जल नहीं पीवे तबतक बराबर दस्त होते रहेंगे । इसपर दही और भात पथ्य है । यह सब प्रकारकी आम, उदररोग, गुल्म और कफको दूर करे, अग्निको दीपन करे और सर्व प्रकारके रोगोंको हरे है ॥ १२ ॥

योगवाहिरसाः ।

योगवाहिरसान् सर्वान् रेचके कथितानपि ।
प्लीहाधिकारे कथितं रसेन्द्रं वारिशोषिणम् ॥
उदावर्त्ते तथानाहे प्रयुञ्जीतानुपानतः ॥ १३ ॥

भाषा-योगवाही रस तथा रेचक रस और प्लीहाधिकारमें जो वारिशोषण रस उन सब रसोंको उदावर्त और आनाहरोगमें अनुपानके साथ प्रयोग करे ॥ १३ ॥

लोहचूर्णभक्षणविधिः ।

पुटितं भावितं लोहं त्रिवृत्क्वाथैरनेकशः ।
उदावर्त्तहरं युञ्ज्यात् ससितं वा यथाबलम् ॥
उदावर्त्ते प्रयोक्तव्या उदरोक्ता रसाः खलु ॥ १४ ॥

भाषा-शुद्ध लोहेके चूर्णको निसोतके क्वाथकी अनेक वार पुट और अनेक वार भावना देकर बलाबल विचारकर मिश्री मिलाके भक्षण करे, इससे उदावर्तरोग दूर होता है । उदावर्तरोगमें उदररोगोक्त सम्पूर्ण रस प्रयोग करने चाहिये॥ १४ ॥

इति उदावर्तानाहरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ गुल्मरोगनिदानम् ।

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः ।
कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठांतर्ग्रन्थिरूपिणम् ॥
तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिबस्तयः ॥ १ ॥

भाषा-मिथ्या आहार और मिथ्या विहार इन कारणोंसे वातादि दोष दूषित होकर कोठेमें पांच प्रकारका ग्रंथिरूप गुल्मरोग उत्पन्न करते हैं । दोनों पसली, हृदय, नाभि और वस्ति इन स्थानोंमें गुल्म उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

गुल्मसामान्यरूप ।

हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः संचारी यदि वाऽचलः ।
वृत्तश्चयोपचयवान्स गुल्म इति कीर्तितः ॥ २ ॥

भाषा-हृदय, नाभि और बस्ति इनमें स्थिर या चंचल, गोल, कभी घटे, कभी बढे ऐसी ग्रंथि हो उसको गुल्म कहते हैं ॥ २ ॥

संप्राप्ति ।

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः ।
पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥ ३ ॥

भाषा-कुपित हुए पृथक् वातादि दोषोंसे तीन प्रकारका और एक सन्निपातका ऐसे मिलाकर पुरुष और स्त्रियोंके गुल्मरोग चार प्रकारका होता है। परंतु स्त्रियोंके रक्तसे उत्पन्न होनेवाला एक पांचवां गुल्म होता है। क्षीरपाणिके मतसे द्वन्द्वज गुल्मभी होता है, रक्तगुल्म स्त्रियोंकेही होता है पुरुषोंके नहीं होता, परन्तु धातुरूप रक्तज गुल्म स्त्री और पुरुष दोनोंको होता है ॥ ३ ॥

पूर्वरूप ।

उद्गारबाहुल्यपुरीषबंधतृप्त्यक्षमत्वांत्रनिकूजनानि ।
आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ४ ॥

भाषा-डकारका अधिक आना, मलरोध, अन्नमें अरुचि, सामर्थ्यका नाश, आंतोंका कूजना, पेटमें गुडगुड शब्दका होना, अफरा हो, पेटका जकडना और मंदाग्नि ये लक्षण होंय तो समझना कि गुल्मरोग उत्पन्न होगा ॥ ४ ॥

गुल्मके साधारण लक्षण।

अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रं वातेनांत्रविकूजनम् ।
आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥ ५ ॥

भाषा-अरुचि, मल और मूत्रका कष्टसे उतरना, वातसे आंतोंका कूजना, पेटका फूलना और वायुकी ऊर्ध्वगति ये लक्षण सर्व प्रकारके गुल्मरोगमें होते हैं ॥ ५ ॥

वातगुल्मके कारण और लक्षण ।

रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च । शोकाभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥ यः स्थानसंस्थानरुजा विकल्पं विड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम् । श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजश्च॥ करोति जीर्णेऽभ्यधिकं च कोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति पश्चात् । वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतिक्तं कटु चोपशेते ॥ ६ ॥

भाषा–रूक्ष अन्न, रूक्ष पान, विषम और अधिक प्रमाण भोजन, विरुद्ध चेष्टा, मलमूत्रादिके वेगोंका रोध, शोक, अभिघात, विरेचनादिसे मलका क्षय और उपवास ये सब वातगुल्मके कारण हैं। जो गुल्म कभी पार्श्व, कभी नाभि, कभी हृदय और कभी बस्तीमें चला जाय तथा कभी लम्बा, कभी मोठा, कभी छोटा हो जाय तथा उसमें पीडा कभी बहुत और कभी थोडी, कभी सुई चुभानेकी समान, कभी कतरनीकेसी पीडा हो, मल और अधोवायुका अवरोध होय, कंठ और मुख सूख जाय, शरीरका रंग नीला अथवा लाल हो जाय, शीत लगकर ज्वर आ जाय, हृदय, कोख, पसली, कंधा और मस्तकमें पीडा हो, भोजन जीर्ण होनेपर अधिक पीडा करे और भोजन करनेके पश्चात् नरम हो जाय ये वातगुल्मके लक्षण हैं। इसमें रूखे, कषैले, कडवे और चरपरे पदार्थोंका सेवन करनेसे रोगीको सुख नहीं होता है॥६॥

पित्तगुल्मके कारण।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षं क्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा। आमाभिघातो रुधिरं च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम्॥ ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च। स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम्॥ ७॥

भाषा–कडु, अम्ल, तीक्ष्ण, दाहकारक और रूखे पदार्थोंको भक्षण करनेसे, क्रोध, अत्यन्त मद्यपान, सूर्य्यकी तपन और अग्निका अतिशय सेवन करनेसे, विदग्ध अजीर्णसे दुष्ट हुआ रस उससे लकडी आदिकी चोटके लगनेसे और रक्तके दूषित होनेसे पित्तगुल्म उत्पन्न होता है। इसमें ज्वर, तृषा, मुख और शरीरमें अरुणता, अन्नके पचनेके समय अत्यन्त शूलकी पीडा, पसीना, विदाह और व्रणकी समान स्पर्श न सह सके ये लक्षण होने हैं इसको पित्तगुल्म जानना॥ ७॥

कफगुल्मके लक्षण।

शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनं च संपूरणं प्रस्वपनं दिवा च। गुल्मस्य हेतुः कफसंभवस्य सर्वस्तु दुष्टो निचयात्मकस्य॥ स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि। शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य॥८॥

भाषा–शीतल, भारी और चिकने पदार्थोंका सेवन, अतिव्यायाम, अत्यन्त भोजन और अतिशय दिनमें सोना ये सब कफगुल्मके कारण हैं और जो वातजादि तीनों गुल्मोंके भिन्न भिन्न कारण कहे हैं वे सब कारण मिल जांय तो

सन्निपातके कारण जानने । शरीर गीले कपडेसे ढके हुएकी समान मालूम हो, शीतज्वर, अंगग्लानि, उबकाई, खांसी, अरुचि, भारीपना, शीतका लगना, अल्प-पीडा, गुल्म कठिन और ऊंचा हो ये सब कफगुल्मके लक्षण हैं ॥ ८ ॥

द्वंद्वजगुल्मके लक्षण ।

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्य गुल्मे संसर्गजे दोषबलाबलं च ।
व्यामिश्रलिङ्गानपरांश्च गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ ९ ॥

भाषा—द्वन्द्वज गुल्ममें निमित्त, लक्षण और दोषोंका बलाबल विचारकर औषध करनेके लिये दूसरे तीन द्वन्द्वज गुल्म जानने चाहिये ॥ ९ ॥

सन्निपातगुल्मके लक्षण ।

महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहदारुणम् ।
मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १० ॥

भाषा—अत्यन्त पीडा करनेवाला, दाहयुक्त, पाषाणकी समान कठिन, ऊंचा और बहुत दाहकरके भयंकर तथा अन्तःकरण, शरीर, अग्नि और बलको हरनेवाला ऐसा त्रिदोषज गुल्म जानना ॥ १० ॥

रक्तगुल्मके लक्षण ।

नवप्रसूताऽहितभोजनाया या चामगर्भे विसृजेदृतौ वा । वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥ पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यपरं निबोध । यः स्पंदते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः ॥ सरौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥ ११ ॥

भाषा—नवप्रसूता स्त्री अपथ्य सेवन करनेसे अथवा अपक्व अवस्थामें गर्भके पतित हो जानेसे या ऋतुकालमें अहितकारक भोजन करनेसे, वायु गर्भाशयमें रुधिरको जमाकर पीडा और दाहयुक्त गुल्मको उत्पन्न करती है । इसमें बहुतसे पित्तगुल्मके लक्षण होते हैं, इसमें जो विशेष लक्षण होते हैं उसको कहता हूं । वह गुल्म गोलाकार पेटमें फडकता रहता है और उसके हाथ पांव आदि अंगोंका आकार नहीं फडकता दीखता है और गर्भके सब लक्षण मालूम होते हैं । बहुत देरमें शूल होता है । इस स्त्रियोंके रक्तगुल्मकी चिकित्सा दश महीनेके पश्चात् करनी चाहिये ॥ ११ ॥

सञ्चितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः । कृतमूलः शिरा-

नद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः॥ दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासच्छर्द्यरति-
ज्वरैः। तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिध्यति॥ गृहीत्वा
स ज्वरः श्वासश्छर्द्यतीसारपीडिते। हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः
क्षिपति गुल्मिनाम्॥ श्वासः शूलं पिपासान्नविद्वेषो ग्रन्थिमू-
ढता। जायते दुर्बलत्वं च गुल्मिनां मरणाय वै॥ १२॥

भाषा–जो गुल्म क्रमक्रमसे संचित होकर सर्व उदरमें व्याप्त हो शूलको उत्पन्न करे तथा शिराओंके जालसे वेष्टित हो जाय, कछुएकी समान ऊंचा हो जाय, एवं दुर्बलता, अरुचि, उबकाई, खांसी, वमन, असंतोष, ज्वर, तृषा, तन्द्रा, प्रतिश्याय इनसे युक्त हो तो असाध्य जानना अथवा ज्वर, श्वास, वमन, अतीसार इनसे पीडित हृदय, नाभि, बस्ति और पांवोंतक सूजन होय और शूल हो ऐसा गुल्मरोगी असाध्य है। एवं श्वास, शूल, पियास, अन्नमें अरुचि और अकस्मात् गुल्मकी गांठका नाश हो जाना और दुर्बलता ये लक्षण गुल्मरोगीके मरनेके लिये उत्पन्न होते हैं॥ १२॥

इति गुल्मरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ गुल्मरोगचिकित्सा।

तिलक्वाथः।

ब्रह्मदण्डीतिलान् क्वाथ्य चूर्णं त्रिकटुकं पिबेत्।
विनाशयेद्बद्धगुल्मान् निरोधं रक्तमेव च॥ १३॥

भाषा–ब्रह्मदंडी और तिलोंके काथमें त्रिकुटेका चूर्ण डालकर पीनेसे गुल्मरोग और रुधिरकी बद्धता दूर होती है॥ १३॥

दुग्धपानम्।

पीत्वा क्षीरं क्षौद्रयुक्तं नाशयेद्दुद्रासृग्गुल्मम्॥ १४॥

भाषा–दूधमें सहत मिलाकर पीनेसे रक्तगुल्म नष्ट होता है॥ १४॥

अर्कमूलभक्षणविधिः।

नारी पुष्पदिने पीत्वा गोक्षुरेणोपवासिता।
श्वेतार्कस्य तु वै मूलं तस्यास्तद्गुल्मशूलनुत्॥ १५॥

भाषा-स्त्री ऋतुकालमें उपवास करनेके पश्चात् गायके दूधमें आककी जडको पीसकर पीनेसे गुल्मजन्य पीडा शांत हो जाती है ॥ १५ ॥

रक्तगुल्महरत्रिकटुकाचूर्णम् ।

द्विजयष्टित्रिकटुकं चूर्णं पीतं हरेच्छिव । तिलक्काथेन संयुक्तं रक्तगुल्मस्त्रिया हरम् ॥ तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च । श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥ १६ ॥

भाषा-तिलोंके क्वाथमें भारंगी, सोंठ, मिरच और पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे रक्तगुल्म नष्ट होता है । तिल, अंड, अलसीके बीज और सरसोंको पीसकर लोहेके पात्रपर प्रलेप करके किंचित् गरमकर स्वेद देवे तो कफजन्य गुल्मरोग दूर होय ॥ १६ ॥

त्रायमाणघृतम् ।

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणचतुःपलम् । पंचभागस्थितं पूतं कल्कैः संयोज्य कार्षिकैः ॥ रोहिणी कटुका मुस्तं त्रायमाणा दुरालभा । कल्कैस्त्वामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः ॥ रसस्यामलकीनां च क्षीरस्य च घृतस्य च । पलानि पृथगष्टाष्टौ दत्त्वा सम्यग् विपाच्यते ॥ पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं विसर्पं पैत्तिकं ज्वरम् । हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद् घृतोत्तमम् ॥ १७ ॥

भाषा-चार पल त्रायमाणको दशगुण जलमें पकावे जब आधा जल बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर एक एक कर्ष हरड, कुटकी, नागरमोथा, त्रायमाण, धमासा, भुई आवला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, लाल चन्दन और नीलोत्पल इनका कल्क लेवे । आमलोंका रस ८ पल, दूध ८ पल, घी ८ पल, सबोंको एकत्र कर उत्तम विधिसे घृतको तयार करे। यह घृत पित्तगुल्म, रक्तगुल्म, विसर्प, पित्तज्वर, हृदयरोग, कामला और कोढको दूर करे है ॥ १७ ॥

क्षीरषट्पलं घृतम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । पलिकैः सयवक्षारैः सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ॥ क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ १८ ॥

भाषा-पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ प्रत्येक चार चार तोले लेकर कल्क बनाके २ सेर घी, २ सेर दूध, सबोंको एकत्र पकाकर जवाखार डाल-

कर घृतको तैयार करे। यह घृत कफजन्य गुल्म, संग्रहणी, पांडुरोग, प्लीहा, खांसी और ज्वर इनको दूर करता है ॥ १८ ॥

द्राक्षाघृतम्।

द्राक्षा मधुकखर्ज्जूरं विदारी सशतावरी। परूषकानि त्रिफलां साधयेत् पलसम्मिताम् ॥ जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च। घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥ साधयेत्तद् घृतं शीतं शर्कराक्षौद्रपादिकम्। प्रयोगात् पित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत् ॥ साहचर्यादिह तथा घृतादेः क्राथतुल्यता। लंघनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् ॥ बृंहणं यद्भवेत् सर्वं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ १९ ॥

भाषा—दाख, महुआ, खजूर, विदारीकंद, शतावर, फालसे और त्रिफला प्रत्येक चार चार तोले लेकर ८ सेर जलमें पकावे, जब २ सेर जल बाकी रह जाय तब उतार लेवे; फिर आमलोंका रस २ सेर, घी २ सेर, ईखका रस २ सेर, दूध २ सेर और हरडका कल्क ८॥ सेर लेवे। सबोंको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। जब सिद्ध होकर शीतल हो जाय तो चीनी और सहत आधसेर मिला देवे। यह घृत पित्तगुल्म और सर्व प्रकारके पित्तविकारोंको दूर करे है ॥ १९ ॥

एकादशप्रकारात्मको स्नेहनादिप्रकारः।

सिद्धमेकादशविधं शृणु मे गुल्मभेषजम्। स्नेहनं स्वेदनं चैव निरूहमनुवासनम् ॥ विरेकवमने चेति लंघनं बृंहणं तथा। शमनं चावसेकं च शोणितस्याग्निकर्म्म च ॥ कारयेदिति गुल्मानां यथारम्भं चिकित्सितम् ॥ गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरितव्या। मारुते ह्यवजितेऽन्यमुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्म्म निहन्यात् ॥ स्निग्धस्य भिषजा स्वेदः कर्त्तव्यो गुल्मशान्तये। स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्वणम् ॥ भित्त्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्मान् व्यपोहति। कौम्भपिण्डकसंस्वेदान् कारयेत् कुशलो भिषक् ॥ उपनाहाश्च कर्त्तव्याः सुखोष्णाः साल्वनादयः। स्थानावसेको रक्तस्य

बाहुमध्ये शिराव्यधः ॥ स्वेदोऽनुलोमिनं चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम्। पेया वातहरैः सिद्धा कौलत्था धन्वजा रसाः॥ खडाः सपंचमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः। मातुलुङ्गरसो हिङ्गु दाडिमं विडसैन्धवम् ॥ सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् । नागरार्द्ध पलं पिष्टं द्वे पले लुञ्चितस्य च ॥ तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन पाययेत् । वातगुल्ममुदावर्त्त योनिशूलं च नाशयेत् ॥ पिबेदैरण्डतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम् । तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पिबेन्नरः ॥ साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुःपलम् । क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरशेषं च पाययेत् ॥ वातगुल्ममुदावर्त्तं गृध्रसीं विषमज्वरम्। हृद्रोगं विद्रधिं शोथं नाशयत्याशु तत्पयः ॥ एवं तु साधिते क्षीरे तोकमप्यत्र दीयते । सर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकजोऽपि वा ॥ तैलेन पीतः शमयेद्गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ २० ॥

भाषा-लंघन, अग्निप्रदीपक औषधि, स्निग्ध, उष्ण और वातको अनुलोमन करनेवाले पदार्थ और पुष्टिकारक द्रव्य ये सब गुल्मरोगीके लिये हितकारक हैं। स्नेह, स्वेद, निरूह, अनुवासन, विरेचन, वमन, लंघन, बृंहण, शमन, अवसेक और अग्निकर्म ये सब क्रिया गुल्मरोगीको करना चाहिये । गुल्मरोगमें प्रथम बहुतसे यत्नोंसे वायुशमन होनेका उपाय करना चाहिये क्योंकि जब वायुदमन हो जाता है तब अन्यान्य दोष थोडेही यत्नोंसेही शांत हो जाते हैं। गुल्मरोगीके लक्ष्मीविलासादि तैल मलकर स्वेद देवे । स्वेदक्रियासे शरीरके सम्पूर्ण स्रोत साफ होकर बलवान् वायु शांत और मलमूत्रादिका रोध दूर होकर गुल्मरोग शांत हो जाता है। वायुनाशक क्काथ या कांजी आदिसे घडेको भरकर उसमें स्वेद देवे,इसको कुम्भीस्वेद कहते हैं। सिद्धमांसादिके पिण्डसे जो स्वेद दिया जाता है उसको पिण्डस्वेद कहते हैं। ईटके चूर्णको गरम कांजीमें डुबोकर स्वेद देवे इसको इष्टिकास्वेद कहते हैं। इन तीनों प्रकारके स्वेद, सुखोष्ण लेप और सान्त्वना (अनुकूल क्रिया) दिके द्वारा गुल्मरोगको शमन करे। गुल्मके स्थानमें तथा जिस पार्श्वमें गुल्म उत्पन्न हो उस पार्श्वकी बाहुकी संधिकी अधःस्थ शिरामेंसे रक्तमोक्षण करावे तथा स्वेद और वायुके अनुलोमक क्रिया करे, इससे गुल्मरोग दूर होता है। वातनाशक औषधियोंके द्वारा सिद्ध की हुई पेया, कुलथीका यूष तथा धन्वन प-

क्षी और पंचमूलके द्वारा सिद्ध जांगलजीवोंके मांसका यूष गुल्मरोगमें हितकारी है। बिजोरे नींबूका रस, हींग, अनार, विरिया संचरनोन और सैंधानोन इन सबोंको सुरामण्डके साथ सेवन करनेसे वातजन्य गुल्मरोग दूर होता है । सोंठ २ तोले, निस्तुष तिल ८ तोले, गुड ४ तोले इन सबोंको एकत्र पीसकर गरम दूधके साथ पीनेसे वातगुल्म, उदावर्त्त और योनिशूल दूर होता है । गरम दूध सुराके मंडमें अंडीका तेल मिलाकर पान करनेसे वातगुल्म नष्ट होता है। शुद्ध सूखा हुआ लहसन ४ पल, दूध २ सेर और जल ८ सेर लेवे । इन सबोंको एकत्र पकावे, जब केवल दूध बाकी रह जाय तब उतार लेवे । इस दूधको थोडा थोडा पीवे तो वातजन्य गुल्मरोग, उदावर्त्त, गृध्रसीवात, विषमज्वर, हृदयरोग, विद्रधि और शीघ्र शोथरोग दूर होता है । तिलके तेलमें या अंडीके तेलमें सज्जी, कूट अथवा केतकीका खार मिलाकर पान करनेसे वातजन्य गुल्मरोग दूर होता है ॥ २० ॥

अथावस्थिकक्रियामाह ।

वातगुल्मे कफे वृद्धे वान्तिश्चूर्णादि चेष्यते । पित्ते विरेचनं स्निग्धं रक्ते रक्तस्य मोक्षणम् ॥ काकोल्यादिमहातिक्तवासाद्यैः पित्तगुल्मिनम् । स्नेहितं स्रंसयेत् पश्चाद् योजयेद्वस्तिकर्म्मणा॥ दाहशूलार्त्तिसंक्षोभस्वप्ननाशारतिज्वरैः । विदह्यमानं जानीयाद् गुल्मं तदुपनाहयेत् ॥ पक्के तु व्रणवत् कार्य्यं व्याध्यशोधनरोपणम् । स्वयमूर्ध्वमधो वापि स चेद्दोषः प्रवर्त्तते ॥ द्वादशाहमुपेक्षेत रक्षन्नन्यानुपद्रवान् । लंघनोल्लेखने स्वेदे कृतेऽग्नौ संधुक्षिते ॥ घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं पित्तगुल्मिना । वचाभयाविडाशुण्ठीहिङ्गुकुष्ठाग्निदीप्यकाः ॥ द्वित्रिषट्चतुरेकाष्टपञ्चपंचांशिकः क्रमात् । चूर्णं मद्यादिभिः पीतं गुल्मानाहोदरापहम् ॥ शूलार्शःश्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं परम् ॥ २१ ॥

भाषा-वातजनित गुल्ममें जो कफकी अधिकता होय तो वमनकारक औषधि और चूर्ण सेवन करे। पित्तगुल्ममें स्निग्ध विरेचन और रक्तगुल्ममें रक्तमोक्षण करावे। काकोल्यादि गणसे सिद्ध किये हुए अथवा कुष्ठरोगमें कहे हुए महातिक्त और वासादि औषधियोंसे सिद्ध किये हुए स्नेहको पानकर विरेचन कर्म्मसे निवटकर बस्तिक्रियाको करे । गुल्मरोगमें यदि दाह, शूल, पीडा, संक्षोभ, निद्राका नाश, अधीरता और ज्वर आदि उपद्रव होंय तो गुल्म पकता है ऐसा जानना।उस समय जिससे गुल्म

शीघ्र पक जाय ऐसे व्रणशोथमें कहे हुए प्रलेपादि करे । गुल्म पक जाय और उसमेंसे राध आदि निकलने लगे तब गुल्मस्थानको व्रणकी समान वेध देवे, तथा वह स्वयंभी विदीर्ण होकर उसमेंसे राध निकलने लगती है । इस कारण बारह दिन पर्यंत शोधनादि कर्म नहीं करके अपेक्षा करे । केवल इसमें जो अन्यान्य उपद्रव उत्पन्न हो जांय उनको शांत करे पश्चात् विचारकर कार्य करे । पित्तजगुल्ममें लंघन लेखन और स्वेद क्रियाके द्वारा अग्निको दीपन कर मिरच, पीपल, सोंठ और जवाखार इनके कल्कके द्वारा यथाविधि घृतको सिद्ध कर सेवन करे । वच ३ भाग, हरड ३ भाग, विडलवण ६ भाग, सोंठ ४ भाग, कूठ ८ भाग और चीतेकी जड ५ भाग इनका एकत्र चूर्ण कर मदिराके साथ पीनेसे गुल्म, आनाह, उदररोग, शूल, बवासीर, श्वास, खांसी और संग्रहणीको दूर करे है तथा अग्निको दीपन करे है ॥ २१ ॥

हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिंगु त्रिकटुकं पाठां हवुषामभयां शठीम् । अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ॥ दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजीं चित्रकं वचाम् । द्वौ क्षारौ लवणे द्वे च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ चूर्णमेतत् प्रयोक्तव्यमनुपानेष्वनत्ययम् । प्राग्भुक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा॥पार्श्वे हृद्बस्तिशूले च गुल्मे वातकफात्मके । आनाहे मूत्रकृच्छ्रेषु गुदयोनिरुजासु च ॥ ग्रहण्यर्शोविकारेषु प्लीहपाण्ड्वामयेऽरुचौ । उरोविबन्धे हिक्कायां श्वासकासे गलग्रहे ॥ भावितं मातुलुंगस्य चूर्णमेतद्रसेन वा । बहुशो गुटिकाः कार्य्याः कार्षिकाः स्युस्ततोऽधिकाः ॥ हिंगु पुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकी । श्यामा बिडं सैन्धवं च यवक्षारं महौषधम् ॥ यवक्काथोदकेनैतद्घृतभृष्टं तु पाययेत् । तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ २२ ॥

भाषा–हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, पाढ, हाऊबेर, हरड, सोंठ, अजमोद, अजगंधा (तिलवन), इमली, अमलवेत, अनार, पुष्करमूल, धनियां, जीरा, चीता, वच, जवाखार, सज्जी, सेंधानोन, बिडलवण और चव्य इन सब औषधियोंको समान भाग ले कूट पीसकर चूर्ण कर ले । इस चूर्णको मदिरा या गरम जलके साथ सेवन करनेसे वातश्लैष्मिक गुल्म, पार्श्वशूल, हृदयशूल, बस्तिशूल, आनाह, मूत्र-

कृच्छ्र, गुदजरोग, योनिरोग, संग्रहणी, बवासीर, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि, उरोग्रह, विबन्ध, हिक्का, श्वास, खांसी और गलग्रहरोगको दूर करे है । जो इसकी गोली बनानी होय तो सात दिन बिजोरे नीबूके रसमें खरल करके दो दो तोलेकी गोलियां बना लेवे । हींग, पुहकरमूल, तुम्बुरु, हरड, निसोत, सैंधानोन, बिडनोन, जवाखार और सोंठ इन सबोंका चूर्ण समान भाग लेकर घीमें भूनकर जौके काथके साथ पीनेसे गुल्म और गुल्मके उपद्रव दूर हो जाते हैं ॥ २२ ॥

त्वचादिचूर्णम् ।

वचा हरीतकी हिंगु सैन्धवं चाम्लवेतसम् । यवक्षारं यवानीं च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ एतद्धि गुल्मनिचयं सशूलं सपरिग्रहम् । भिनत्ति सप्तरात्रेण वह्नेर्वृद्धिं करोति च ॥ २३ ॥

भाषा–वच, हरड, हींग, सैंधानोन, अमलवेत, जवाखार और अजवायन ये सब समान भाग ले । चूर्ण कर गरम जलके साथ सेवन करनेसे उपद्रवयुक्त गुल्मरोग सात दिनमें आराम हो जाता है तथा अग्नि दीपन होती है ॥ २३ ॥

लवंगादिचूर्णम् ।

लवङ्गदन्तीत्रिवृतायवानीशुण्ठीवचाधान्यकचित्रकाणि । फलत्रिकं मागधिका च कट्वी द्राक्षा चवी गोक्षुरयावशूकम् ॥ एलाजमोदा कुटजस्य बीजं विधाय चूर्णानि समान्यमीषाम् । खादेत्ततः पाणितलं हिताशी कोष्णं जलं चानु पिबेत् प्रयत्नात् ॥ निहन्ति गुल्मं सरुजं सदाहमर्शांसि शोथांश्च तथामवातान् । सर्वोदराण्येव चिरोत्थितानि चूर्णं लवङ्गादिकमाशु हन्ति ॥ २४ ॥

भाषा–लौंग, दंती, निसोत, अजवायन, सोंठ, वच, धनियां, चीता, त्रिफला, पीपल, कुटकी, दाख, चव्य, गोखरु, जवाखार, इलायची, अजमोद, इन्द्रजौ ये सब समान भाग लेकर प्रतिदिन दो तोले खाय और ऊपरसे गरम जल पीवे । यह लवंगादि चूर्ण उपद्रव और दाहयुक्त गुल्मरोग, बवासीर, शोथ, आमवात और सर्व प्रकारके उदररोगोंको दूर करे है ॥ २४ ॥

कांकायनगुटिका ।

शठीं पुष्करमूलं च दन्तीं चित्रकमाढकीम् । शृङ्गवेरं वचां चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ त्रिवृतायाः पलं चैकं कुर्यात् त्रीणि च हिङ्गुनः । यवक्षारपले द्वे च द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ यवा-

न्यजाजी मरिचं धन्याकं चेति कार्षिकम् । उपकुल्यजमोदाभ्यां तथा चाष्टमिकामपि ॥ मातुलुङ्गरसे चैता गुडिकाः कारयेद्भिषक् । आसां चैकां पिबेद्द्वे वा तिस्रो वाथ सुखाम्बुना ॥ अम्लैर्मद्यैश्च यूषैश्च घृतेन पयसाथ वा । एषा कांकायनोक्ता च गुटिका गुल्मनाशिनी ॥ अर्शोहृद्रोगशमनी क्रमीणां च विनाशिनी । गोमूत्रयुक्ता शमयेत् कफगुल्मं चिरोत्थितम् ॥ क्षीरेण पित्तगुल्मं च मद्यैरम्लैश्च वातिकम् । रक्तगुल्मे च नारीणामुष्ट्रीक्षीरेण पाययेत् ॥ २५ ॥

भाषा—कचूर, पोहकरमूल, दंती, चीता, अरहर, सोंठ, वच और निसोत प्रत्येक एक एक पल; हींग ३ पल, जवाखार २ पल, अमलबेत २ पल, अजवायन, जीरा, काली मिरच, धनियां प्रत्येक एक एक कर्ष; काला जीरा और अजमोद प्रत्येक दो दो तोले सबोंको एकत्र पीस कूटकर बिजोरे नीबूके रसमें खरल करके चार चार मासेकी गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन एक या दो अथवा तीन गोली. किंचित् गरम जल, कांजी, मदिरा, मांसयूष, घी या दूधके साथ सेवन करे । यह कांकायनगुटिका गुल्मरोगको दूर करे है तथा बवासीर, हृदयरोग, कृमिरोग इन सबोंको नष्ट करे है । यह कांकायनवटी गोमूत्रके साथ बहुत पुराने कफगुल्मको, दूधके साथ पैत्तिकगुल्मको एवं मदिरा या कांजीके साथ वातिक गुल्मको और ऊटनीके दूधके साथ सेवन करनेसे स्त्रियोंके रक्तगुल्मको नष्ट करे है ॥ २५ ॥

नाराचघृतम् ।

चित्रकं त्रिफला दन्ती त्रिवृता कण्टकारिका । स्नुहीक्षीरविडङ्गानि घृतं दशममुच्यते ॥ एकैकस्य च कर्षेण घृतस्य कुडवं पचेत् । अस्य मात्रां पिबेत्काले पलार्द्धेन च सम्मिताम् ॥ उष्णोदकं चानुपिबेद्विरेकार्थं पिबेन्नरः । पिबेद् यवागुं सर्पिषा पेयां वा क्षीरसाधिताम् ॥ रसेन जाङ्गलानां वा भोजयेन्मतिमान् भिषक् । वातगुल्ममुदावर्त्तं प्लीहार्शो ब्रध्नकुण्डलम् ॥ ग्रहणीं दीपयेन्मन्दां कुष्ठदोषांश्च नाशयेत् । नाराचकमिदं सर्पिः ख्यातं नाराचसन्निभम् ॥ २६ ॥

भाषा—चीता, त्रिफला, दंती, निसोत, कटेरी, थूहरका दूध और वायविडंग,

प्रत्येक औषधि एक एक कर्ष लेकर कल्क बनावे और घी १६ तोले लेवे, पाकके लिये जल २ सेर इन सब औषधियोंके द्वारा घृतको यथाविधिसे पकाकर प्रतिदिन प्रातःकाल २ तोले प्रमाण इस घृतको गरम जलके साथ विरेचनके लिये पान करे। अनुपान घृतसंयुक्त यवागू, दूधमें सिद्ध की हुई पेया अथवा जांगल जीवोंके मांसका यूप भोजन करे। वातगुल्म, उदावर्त्त, प्लीहा, बवासीर, भ्रम्रकुण्डलरोग, संग्रहणी, मंदाग्नि और कुष्ठरोगको यह नाराचघृत नष्ट करे है तथा यह घृत नाराच शस्त्र (तीर) की समान है ॥ २६ ॥

हवुषाद्यं घृतम् ।

हवुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः । सजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैः पाचयेद् घृतम् ॥ सकोलमूलकरसं सक्षीरदधिदाडिमम् । तत्परं वातगुल्मघ्नं शूलानाहविबन्धनुत् ॥ योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान् । पार्श्वहृद्वस्तिशूलं च घृतमेतद् व्यपोहति ॥ २७ ॥

भाषा-घी २ सेर, बेरोंका क्वाथ २ सेर, सूखी मूलीका क्वाथ २ सेर, दूध २ सेर, दही २ सेर और अनारका क्वाथ २ सेर, कल्कके लिये हाऊबेर, काली मिरच, पीपल, सोंठ, इलायची, चव्य, चीतेकी जड, सेंधानोन, जीरा, पीपल और अजवायन ये सब आधसेर, यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। इस घृतको पान करनेसे वातगुल्म, शूल, आनाह, विबन्ध, योन्यर्श, संग्रहणी, श्वास, खांसी, अरुचि, पार्श्व हृदय और बस्तिशूल नष्ट होता है ॥ २७ ॥

धात्रीषट्फलकं घृतम् ।

धात्रीफलानां स्वरसैः षडङ्गं पाचयेद् घृतम् ।
शर्करासैन्धवोपेतं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ २८ ॥

भाषा-गायका घी १ सेर, आमलोंका स्वरस ४ सेर, कल्कके लिये पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, पाकके लिये जल ४ सेर, यथाविधिसे घृतको पकावे। इस घृतमें शर्करा और सेंधानोन डालकर पान करनेसे सर्व प्रकारके गुल्मरोग दूर हो जाते हैं ॥ २८ ॥

दन्तीहरीतकी ।

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पंच चाभयाः । दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥ तेनाष्टभागशेषेण पचेद्दन्तीसमं गुडम् । ताश्चाभयास्त्रिवृच्चूर्णं तैलाच्चापि चतुःपलम् ॥ पलमेकं

कणाशुण्ठ्योः सिद्धे लेहे च शीतले । क्षौद्रं तैलसमं दद्याच्चातुर्जातपलं तथा ॥ ततो लेहपलं लीढ्वा जग्ध्वा चैव हरीतकीम् । सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः ॥ प्लीहश्वयथुगुल्मार्शोहृत्पाण्डुग्रहणीगदाः । शाम्यन्त्युत्क्लेशविषमज्वरकुष्ठान्यरोचकाः ॥ २९ ॥

भाषा-पोटली बंधी हुई हरड २५ पल, दंतीकी जड २५ पल और चीतेकी जड २५ पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे जब चार सेर जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे और पोटलीको खोलकर हरडोंको निकाल लेवे । पश्चात् इस काथमें पचीस पल गुड, काढेमेंकी निकाली हुई वह सब हरड, सोलह तोले निसोतका चूर्ण, सोलह तोले तेल, पीपल और सोंठ चार तोले डालकर अवलेह सिद्ध करे । जब शीतल हो जाय तब सहत सोलह तोले और चातुर्जातका चूर्ण चार तोले मिला देवे । चार तोले अवलेह और इसमेंकी एक हरड सेवन करे । इससे कोठा स्निग्ध होकर सुखपूर्वक दस्त होने लगते हैं तथा प्लीहा, सूजन, गुल्म, बवासीर, हृदयरोग, पाण्डुरोग, संग्रहणी, उत्क्लेश, विषमज्वर, कुष्ठ और अरोचक रोग दूर होता है ॥ २९ ॥

रसायनामृतलोहम् ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं जीरकद्वयम् । यवानीद्वयं भूनिम्बं त्रिवृद्दन्ती च निम्बकम् ॥ सर्वेषां कार्षिकं भागं सैन्धवं कर्षमभ्रकम् । खण्डस्य षोडशपलं प्रस्थं च त्रिफलाजलम् ॥ जम्बीराणां रसं दद्यात् पलं षोडशकं तथा । पाच्यं सर्वं प्रयत्नेन लोहं दत्त्वा पलद्वयम् ॥ सिद्धे पाके पुनर्देयं घृतं पलचतुष्टयम् । सर्वरोगेषु संयोज्यं महामृतरसायनम् ॥ गुल्मं पंचविधं हन्ति यकृत्प्लीहोदराणि च । कामलां पाण्डुरोगं च शोथं जीर्णज्वरं तथा ॥ रोगान् सर्वान् निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३० ॥

भाषा-त्रिफलेका काथ २ सेर, जम्भीरी नीबूका रस १६ पल, खांड १६ पल इन सबोंको एकत्र करके पकावे जब पकते पकते गाढा हो जाय तब सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग, जीरा, काला जीरा, अजवायन, अजमोद, चिरायता, निसोत, दंती, नीमकी छाल, सैंधानोन और अभ्रक इन

प्रत्येक औषधिका चूर्ण एक एक कर्ष, लोहा २ पल और घी ४ पल मिला देवे। यह रसायनामृतलोह सर्व रोगोंमें योजना चाहिये। जिस प्रकार सूर्य अंधकारके समूहको नष्ट करता है उसी प्रकार यह रसायनामृतलोह पांच प्रकारके गुल्म, यकृत्, प्लीहा, उदररोग, कामला, पाण्डुरोग, सूजन, शोथ और जीर्णज्वरादि रोगोंको दूर करे है ॥ ३० ॥

गुल्मकालानलो रसः।

पारदं गन्धकं तालं ताम्रकं टङ्कणं समम्। तोलद्वयमितं भागं यवक्षारं च तत्समम् ॥ मुस्तकं पिप्पली शुण्ठी मरिचं गजपिप्पली। हरीतकी वचा कुष्ठं तोलैकं चूर्णयेत् सुधीः ॥ सर्वमेकीकृतं पात्रे भावना क्रियते ततः। पर्पटं मुस्तकं शुण्ठ्यपामार्गं पापचेलिकम् ॥ तत्पुनश्चूर्णयेत् पश्चात् सर्वगुल्मनिवारणम्। गुञ्जाचतुष्टयं खादेद्धरीतक्यनुपानतः ॥ वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं सान्निपातिकम्। द्वन्द्वजं विनिहन्त्याशु वातगुल्मं विशेषतः ॥ श्रीमद्गहननाथेन निर्म्मितो विश्वसम्पदे ॥ ३१ ॥

भाषा-पारा, गंधक, हरिताल, तांबा, सुहागा और जवाखार प्रत्येक दो दो तोले, नागरमोथा, पीपल, सोंठ, काली मिरच, गजपीपल, हरड, वच और कूठ प्रत्येक एक एक तोला, इन सबोंको एकत्र पीसकर पित्तपापडा, नागरमोथा, सोंठ, चिरचिटा और पाढ इनके काथमें भावना देकर सुखा लेवे। फिर चूर्ण करके प्रतिदिन इसमें चार रत्तीभर हरडके साथ खाय। यह गुल्मकालानलरस वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, द्वन्द्वज और विशेषकरके वातगुल्मको नष्ट करे है। श्रीमान् गहनानन्दनाथने यह संसारके उपकारके लिये निर्माण किया है ॥३१॥

शिखिवाडवो रसः।

मारितं ताम्रसूताभ्रं गन्धकं माक्षिकं समम्। मर्दयेच्चित्रकद्रावैर्यवक्षारयुतं दिनम् ॥ द्विगुंजं भक्षयेन्नित्यं नागवल्लीदलेन च। वातगुल्महरः स्यातो रसोऽयं शिखिवाडवः ॥ ३२ ॥

भाषा-तांबेकी भस्म, पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, शुद्ध गंधक, सोनामक्खी और जवाखार ये प्रत्येक समान भाग लेकर चीतेकी रसमें एक दिन खरल करके दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली पानमें रखकर खाय। यह शिखिवाडवरस वातगुल्मको दूर करे है ॥ ३२ ॥

रक्तगुल्मे स्नेहस्वेदादिक्रिया ।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यतिक्रमे । स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात् स्निग्धविरेचनम् ॥ शताह्वा च बिल्वत्वग्दारु भार्ङ्गी कणोद्भवः । कल्कः पीतो हरेद्गुल्मं तिलक्वाथेन रक्तजम् ॥ तिलक्वाथो गुडव्योषहिंगुभार्ङ्गीयुतो भवेत् । पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषिताम् ॥ सक्षारत्र्यूषणं मद्यं प्रपिबेदस्रगुल्मिनी । पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः पिबेच्च सा ॥ पारदांशकतुर्थं च गन्धं जैपालपिप्पली । आरग्वधफलान्मज्जावत्स्नुक्क्षीरेण भावयेत् ॥ धात्रीरसयुतं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये । चिञ्चादलरसं चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥ वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् शुष्कशाकानि वैदलम् । न खादेच्चालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ३३ ॥

भाषा–रक्तगुल्ममें प्रसवकाल अर्थात् जबतक दश महीने नहीं बीते तबतक चिकित्सा नहीं करे । दश महिनेके पश्चात् रोगीको स्नेह और स्वेद देकर स्निग्ध विरेचक औषधि देवे । सोया, बडी करंजकी छाल, देवदारु, भारंगी और पीपल इनका कल्क बनाकर तिलोंके क्वाथके साथ पीनेसे रक्तगुल्म दूर होता है । पुराना गुड, काली मिरच, पीपल, सोंठ, हींग और भारंगी इनको पीसकर तिलोंके क्वाथमें मिलाकर पीनेसे रक्तगुल्म दूर होता है और नष्ट पुष्प प्रकाशित होता है । जवाखार और त्रिकुटेका चूर्ण मदिराके साथ पीनेसे रक्तगुल्म दूर होता है । पलाशके खारके जलसे सिद्ध किये हुए घृतका पान करनेसे रक्तगुल्म नष्ट होता है । पारा, तूतिया, गंधक, शुद्ध जमालगोटा, पीपल और अमलतासका गूदा ये सब समान भाग लेकर थूहरके दूधमें खरल करे, इसको आमलोंके साथ सेवन करनेसे रक्तगुल्म नष्ट होता है । अनुपान इमलीके पत्तोंका स्वरस । पथ्य दही और भात है । सूखा मांस, मूली, मछली, सूखा शाक, विदल अन्न, आलू और मधुर फल ये सब गुल्मरोगी त्याग देवे ॥ ३३ ॥

महानाराचरसः ।

ताम्रं सूतं समं गन्धं जैपालं च फलत्रिकम् ।
कटुकं पेषयेत् क्षीरैर्निष्कं गुल्महरं पिबेत् ॥
उष्णोदकं पिबेच्चानु नाराचोऽयं महारसः ॥ ३४ ॥

भाषा-तांबा, पारा, गंधक, जमालगोटा, त्रिफला, त्रिकुटा और तीनों खार इन सबोंको एकत्र पीसकर एक निष्क प्रमाण गरम जलके साथ पीवे । इससे गुल्मरोग दूर होता है । इसको नाराचरस कहते हैं ॥ ३४ ॥

पंचाननरसः ।

पारदं शिखितुत्थं च गन्धं जैपालपिप्पली । आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीक्षीरेण पेषयेत् ॥ धात्रीरसयुतं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये । चिंचाफलरसं चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥ ३५ ॥

भाषा-पारा, नीला थोथा, गंधक, जमालगोटा, पीपल, अमलतासका गूदा ये सब समान भाग लेकर थूहरके दूधमें खरल करे । इसको आमलेके रसके साथ भक्षण करनेसे रक्तगुल्म दूर होता है । अनुपान इमलीका स्वरस । पथ्य दही और भात है ॥ ३५ ॥

गुल्मवज्रिणी वटिका ।

रसगन्धकताम्रं च कांस्यं टङ्कणतालकम् । प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं मर्दयेदतियत्नतः ॥ तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये । निर्मिता नित्यनाथेन वटिका गुल्मवज्रिणी ॥ गुल्मप्लीहोदराष्ठीलायकृदानाहनाशिनी । कामलापाण्डुरोगघ्नी ज्वरशूलविनाशिनी ॥ ३६ ॥

भाषा-पारा, गंधक, तांबा, कांसा, सुहागा और हरिताल प्रत्येक एक एक पल लेकर अच्छी रीतिसे खरल करे । अग्निका बलावल विचारकर इसको भक्षण करे । यह गुल्मवज्रिणी वटिका श्रीमान् नित्यनाथने निर्म्माण की है । यह वटी रक्तगुल्म, गुल्म, प्लीहा, उदररोग, अष्ठीला, यकृत्, आनाह, कामला, पाण्डुरोग, ज्वर और शूलको नष्ट करे है ॥ ३६ ॥

गुल्मकालानलो रसः ।

सूतकं लोहकं ताम्रं तालकं गन्धकं समम् । तोलद्वयमितं भागं यवक्षारं च तत्समम् ॥ मुस्तकं मरिचं शुण्ठी पिप्पली गजपिप्पली । हरीतकी वचा कुष्ठं तोलैकं चूर्णयेद् बुधः ॥ सर्वमेकीकृतं पात्रे क्रियन्ते भावनास्ततः । पर्पटं मुस्तकं शुण्ठ्यपामार्गं पापचेलकिम् ॥ तत्पुनश्चूर्णयेत् पश्चात् सर्वगुल्मनिवारणम् ।

गुञ्जाचतुष्टयं खादेद्धरीतक्यनुपानतः ॥ वातिकं पैत्तिकं गुल्मं तथा चैव त्रिदोषजम् । द्वन्द्वजं श्लैष्मिकं हन्ति वातगुल्मं विशेषतः ॥ गुल्मकालानलो नाम सर्वगुल्मकुलान्तकृत् ॥ ३७ ॥

भाषा-पारा, लोहा, तांबा, हरिताल, गंधक और जवाखार प्रत्येक दो दो तोले, नागरमोथा, काली मिरच, सोंठ, पीपल, गजपीपल, हरड, वच और कूट प्रत्येक एक एक तोला, सबोंको एकत्र पीसकर पित्तपापडा, नागरमोथा, सोंठ, चिरचिटा और पाढके रसमें भावना देवे। फिर चूर्ण करके चार रत्ती प्रमाण हरडके साथ सेवन करे । यह गुल्मकालानल रस वातिक, पैत्तिक, त्रिदोषज, द्वन्द्वज, श्लैष्मिक और विशेषकरके वातगुल्मको नष्ट करे हैं । यह सर्व प्रकारके गुल्मोंका नाश करे है ॥ ३७ ॥

वडवानलरसः ।

पारदं गन्धकं ताप्यं यवक्षारार्कमभ्रकम् । अग्न्यम्बुनार्कपत्रेण संमर्द्याथ द्विगुञ्जकम् ॥ भक्षयेत् पर्णखण्डेन हिंगुसिन्धुसुवर्चलैः । दाडिमं च तथा बिल्वं कार्षिकं भृङ्गजैर्द्रवैः ॥ पिष्ट्वा तु सुरया युक्तं देयं स्यादनुपानकम् । सर्वगुल्मं निहन्त्याशु शूलं च परिणामजम् ॥ ३८ ॥

भाषा-पारा, गंधक, सोनामक्खी, जवाखार, तांबा और अभ्रक ये सब समान भाग लेकर चीतेके रसमें और आकके पत्तोंके रसमें खरल करके दो रत्ती प्रमाण पानमें रखके खाय । ऊपरसे हींग, सेंधानोन, काला नोन, अनार और बेल प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर भांगरेके रसमें पीसकर सुराके साथ सेवन करे । यह अनुपान है । यह वडवानलरस सर्व प्रकारके गुल्म और परिणामशूलको दूर करे है ॥ ३८ ॥

महानाराचरसः ।

सूतटङ्कणतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् । गन्धकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विमिश्रयेत् ॥ सर्वतुल्यं क्षिपेत् दन्तीबीजं निस्तुषमेव च । द्विगुञ्जं रेचनं सिद्धं नाराचाख्यो महारसः ॥३९॥

भाषा-पारा, सुहागा और काली मिरच प्रत्येक एक एक भाग, गंधक, पीपल और सोंठ प्रत्येक दो दो भाग और सबोंकी बराबर छिलकेरहित जमालगोटे लेवे । सबोंको एकत्र कूट पीसकर चूर्ण कर ले । इसको दो रत्तीभर विरेचनके लिये देवे ॥ ३९ ॥

विद्याधररसः ।

पारदं गन्धकं तालं ताप्यं स्वर्णं मनःशिलाम् । कृष्णाक्वाथैः स्नुहीक्षीरैर्दिनैकं मर्दयेत् सुधीः ॥ निष्कार्द्धं श्लैष्मिकं गुल्मं हन्ति मूत्रानुपानतः । रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धं च पिबेदनु४०॥

भाषा–पारा, गंधक, हरिताल, सोनामक्खी, सोना और मैनशिल इन सबोंको एकत्र पीसकर पीपलके काथ और थूहरके दूधमें एक एक दिन खरल करे। इसको अर्धनिष्कभर गोमूत्रके साथ सेवन करे और ऊपरसे गायका दूध पीवे। यह विद्याधर रस श्लैष्मिक गुल्मको नष्ट करे है ॥ ४० ॥

महागुल्मकालानलो रसः ।

गन्धकं तालकं ताम्रं तथैव तीक्ष्णलोहकम् । समांशं मर्दयेत् गाढं कन्यानीरेण यत्नतः ॥ संपुटं कारयेत् पश्चात् सन्धिलेपं च कारयेत् । ततो गजपुटं दत्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ द्विगुञ्जां भक्षयेद् गुल्मी शृङ्गवेरानुपानतः । सर्वगुल्मं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा॥ ४१ ॥

भाषा–गंधक, हरिताल, तांबा और तीक्ष्ण लोहा ये सब समान भाग लेकर घीगुवारके रसमें खरल करे। फिर इसको सम्पुटमें रख गजपुटमें पकावे जब स्वांगशीतल हो जाय तब निकाल चूर्ण कर ले। प्रतिदिन दो रत्तीभर इसको अदरखके रसके साथ भक्षण करे। यह महागुल्मकालानलरस सर्व प्रकारके गुल्मको दूर करे है। जिस प्रकार दिवाकर अंधकारके समूहको दूर करे है ॥ ४१ ॥

अभयावटी ।

अभया मरिचं कृष्णा टङ्कणं च समांशिकम् । सर्वचूर्णसमं चैव दद्यात् कानकजं फलम् ॥ स्नुहिक्षीरैर्वटी कार्य्या यथासिद्धकलायकृत् । वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा चोष्णाम्बुना पिबेत् ॥ उष्णाद्विरोचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च । जीर्णज्वरं पाण्डुरोगं प्लीहाष्ठीलोदराणि च ॥ रक्तपित्ताम्लपित्तादिसर्वाजीर्णं विनाशयेत् ॥ ४२ ॥

भाषा–हरड, काली मिरच, पीपल और सुहागा ये सब समान भाग लेकर चूर्ण कर ले और सब चूर्णकी बराबर जमालगोटेका चूर्ण मिलाके थूहरके दूधमें

खरल करके बडी मटरकी बराबर गोलियां बना लेवें। यह दो गोली और एक हरड एकत्र पीसकर गरम जलके साथ सेवन करे, इस औषधिको सेवन करके गरम जल पीवे तो दस्त होने लगते हैं और शीतल जल पीवे तो दस्त बंद हो जाते हैं। यह अभयावटी जीर्णज्वर, पाण्डुरोग प्लीहा, अष्ठीला, उदररोग, रक्तपित्त, अम्लपित्त और सर्व प्रकारके अजीर्णादि रोग दूर करे है ॥ ४२ ॥

गोपीजलम्।

जैपालाष्टौ द्विको गन्धः शुण्ठी मरिचचित्रकम्। एकः सूतः समो भागो गोपीजलमिति स्मृतम् ॥ शूलव्याध्याश्रयान् गुल्मान् कोष्ठादौ दश पैत्तिकान्। भगन्दरादिहृद्रोगान्नाशयेदेव भक्षणात् ॥ ४३ ॥

भाषा-जमालगोटा ८ भाग, गंधक २ भाग, सोंठ, मिरच, चीता और पारा प्रत्येक एक एक भाग इन सबोंको गोमूत्रमें पीसकर सेवन करनेसे शूल, गुल्म, भगन्दर और हृदयरोग दूर होता है। इसको गोपीजल कहते हैं ॥ ४३ ॥

काङ्कायनगुटिका।

शठीं पुष्करमूलं च दन्तीं चित्रकमाढकीम्। शृङ्गवेरं वचां चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ त्रिवृतायाः पलं चैकं कुर्यात् त्रीणि च हिंगुलः। यवक्षारात् पले द्वे च द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ यवान्यजाजी मरिचं धान्याकं च त्रिकार्षिकम्। उपकुञ्च्यजमोदाभ्यां पृथगर्द्धपलं भवेत् ॥ मातुलुङ्गरसेनैव गुटिकां कारयेद्भिषक्। तासामेकां पिबेद् द्वे वा तिस्रो वाथ सुखाम्बुना ॥ अम्लैर्मद्यैश्च यूषैश्च घृतेन पयसाथ वा। एषा काङ्कायनेनोक्ता गुटिका गुल्मनाशिनी ॥ अर्शोहृद्रोगशमनी कृमीणां च विनाशिनी। गोमूत्रयुक्ता शमयेत् कफगुल्मं चिरोत्थितम् ॥ क्षीरेण पित्तरोगं च मद्यैरम्लैश्च वातिकम्। त्रिफलारसमूत्रैश्च नियच्छेत् सान्निपातिकम् ॥ रक्तगुल्मेषु नारीणामुष्ट्रीक्षीरेण पाययेत् ॥ ४४ ॥

भाषा-कचूर, पोहकरमूल, दंती, चीता, अरहर, अदरख, वच और निसोत प्रत्येक एक एक पल, शुद्ध सिंगरफ ३ पल, जवाखार २ पल, अमलवेत २ पल, अजवायन, जीरा, काली मिरच और धनियां प्रत्येक तीन तीन कर्ष, काला जीरा

और अजमोद प्रत्येक दो दो तोले, सबोंको बिजोरे नीबूके रसमें खरल करके गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन दो या तीन गोली गरम जलके साथ अथवा कांजी, मदिरा, यूष, घृत और दूधके साथ सेवन करे। यह गुल्मनाशक गुटिका कांकायनमुनिने निर्म्माण की है। बवासीर, हृदयरोग और कृमिरोगको दूर करे है। यह गोली गोमूत्रके साथ बहुत पुराने कफगुल्मको, दूधके साथ पित्तगुल्मको, मदिरा और कांजीके साथ वातिक गुल्मको, त्रिफलेका रस और गोमूत्रके साथ सान्निपातिक गुल्मरोगको और ऊंटनीके दूधके साथ रक्तगुल्मको दूर करे है ॥ ४४ ॥

गुल्मशार्दूलो रसः ।

रसं गन्धं शुद्धलोहं गुग्गुलोः पिप्पलं पलम् । त्रिवृता पिप्पली शुण्ठी शठी धान्यकजीरकम् ॥ प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं पलार्द्धं कानकं पलम् । संचूर्ण्य वटिका कार्य्या घृतेन वल्लमानतः ॥ वटीद्वयं भक्षयेच्चार्द्रकोष्णाम्बु पिबेदनु । हन्ति प्लीहयकृत्गुल्मकामलोदरशोथकम् ॥ वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं रौधिरं तथा । गहनानन्दनाथोक्तरसोऽयं गुल्मशार्दुलः ॥ ४५ ॥

भाषा–पारा, गंधक, लोहा, गूगल, पीपलवृक्षकी जड, निसोत, पीपल, सोंठ, कचूर, धनिया और जीरा प्रत्येक एक एक पल, जमालगोटे दो तोले, सबोंको एकत्र घृतमें पीसकर तीन तीन रत्तीकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन दो गोली अदरखके रसके साथ और गरम जलके साथ सेवन करे। यह औषधि प्लीहा, यकृत्, गुल्म, कामला, उदररोग, शोथ, वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और रक्तज गुल्मको दूर करे है। श्रीमान् गहनानन्दनाथने यह गुल्मशार्दूलरस निर्म्माण किया है ॥ ४५ ॥

प्राणवल्लभो रसः ।

लोहं ताम्रं वराटं च तुत्थं हिङ्गु फलत्रिकम् । स्नुहीमूलं यवक्षारं जैपालं टङ्कणं त्रिवृत् ॥ प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं छागीदुग्धेन पेषयेत् । चतुर्गुञ्जां वटीं खादेद्वारिणा मधुनापि वा ॥ प्राणवल्लभनामायं गहनानन्दभाषितः । निहन्ति कामलां पाण्डुं मेहं हिक्कां विशेषतः ॥ असाध्यं सन्निपातं च गुल्मं रुधिरसम्भवम् । वातरक्तं च कुष्ठं च कण्डूविस्फोटकापचीम् ॥ ४६ ॥

भाषा–लोहा, तांबा, कौडी, तूतिया, हींग, त्रिफला, थूहरकी जड, जवाखार, जमालगोटा, सुहागा, निसोत ये प्रत्येक एक एक पल लेकर बकरीके दूधमें

पीसकर चार चार रत्तीकी गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली जल अथवा सहतके साथ भक्षण करे । यह प्राणवल्लभरस गहनानन्दनाथने निर्म्माण किया है । कामला, पाण्डुरोग, प्रमेह, हिक्का, असाध्य सन्निपात, रक्तगुल्म, वातरक्त, कुष्ठ, कण्डू, विस्फोटक और अपचीरोगको दूर करे है ॥ ४६ ॥

सर्वेश्वरो रसः ।

ताम्रं दशगुणं स्वर्णात् स्वर्णपादं कटुत्रिकम् । त्रिकटु त्रिफला तुल्या त्रिफलार्द्धमयोरजः ॥ अयसोर्द्धं विषं चैव सर्वं संमर्द्य यत्नतः । सर्वेश्वररसो नाम रौधिरगुल्मनाशनः ॥ ४७ ॥

भाषा-तांबा १० तोले, सोना १ तोला, त्रिकुटा ३ मासे, त्रिफला और लोहेका चूर्ण प्रत्येक एक मासा और विष आधा मासा इन सबोंको एकत्र खरल करके गोलियां बना लेवे । यह सर्वेश्वररस रक्तगुल्मको नष्ट करे है ॥ ४७ ॥

इति गुल्मरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ हृद्रोगनिदानम् ।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तैः श्रमाभिघाताध्यशनप्रसंगैः ।
संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पंचविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

भाषा-अत्यन्त गरम, भारी, खट्टे, कषैले, कडवे ऐसे पदार्थोंको सेवन करनेसे तथा श्रम, अभिघात, अध्यशन, मैथुन, मलमूत्रादिके वेगका धारण, चिंता इत्यादि कारणोंसे हृदयरोग उत्पन्न होता है । वह वातादि सम्बन्धसे पांच प्रकारका जानना ॥ १ ॥

संप्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण ।

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥

भाषा-वातादि दोष कुपित हो रसधातुको दूषित करके हृदयमें पीडा उत्पन्न करते हैं उसको हृदयरोग कहते हैं ॥ २ ॥

वातहृद्रोगलक्षण ।

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा ।
निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि च ॥ ३ ॥

भाषा-वातज हृदयरोगमें हृदयमें खींचनेकी समान, सुई चुभानेकी समान, फोडनेकी समान, तोडनेकी समान, मथनेकी समान और कुल्हाडीसे चीरनेकी समान पीडा होती है ॥ ३ ॥

पित्तहृद्रोगके लक्षण ।

तृष्णोष्णदाहमोहाः स्युः पैत्तिके हृदयक्लमः ।
धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तज हृदयरोगमें तृषा, कुछ कुछ दाह, मोह, हृदयकी ग्लानि, धुंआ निकलतासा मालूम हो, मूर्छा, खेद और मुखशोष होती है ॥ ४ ॥

कफहृद्रोगके लक्षण ।

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तंभोऽग्निमार्दवम् ।
माधुर्य्यमपि चास्यस्य बलासा वर्त्तते हृदि ॥ ५ ॥

भाषा-कफज हृदयरोगमें भारीपन, कफका निकलना, अरुचि, हृदयका जकडना, मंदाग्नि और मुखमें मधुरता होती है ॥ ५ ॥

त्रिदोषजके लक्षण ।

विद्यात्त्रिदोषं त्वपि सर्वलिङ्गम् ॥ ६ ॥

भाषा-जिसमें सर्व लक्षण हों वह त्रिदोषज हृदयरोग जानना ॥ ६ ॥

कृमिज हृद्रोगके लक्षण ।

तीव्रार्तितोदं कृमिजं सकण्डूः।उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः ॥ अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥ ७ ॥

भाषा-जिसमें तीव्र नोचनेकेसी पीडा हो और खुजली हो उसको कृमिजन्य हृदयरोग जानना । उत्क्लेद, वारंवार थूकना, सुई चुभानेकी समान पीडा हो, शूल, उबकाई, अंधकार, अरुचि, नेत्रोंमें कृशता और शोष ये कृमिज हृदयरोगके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

उपद्रव ।

क्लोम्नः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः ।
कृमिजे कृमिजातीनां श्लेष्मिकाणां च ये मताः ॥ ८ ॥

भाषा-क्लोम (तृषास्थान) में ग्लानि, भ्रम, शोष ये हृदयरोगके उपद्रव हैं । कृमिज हृदयरोगके लक्षण कफज कृमिरोगकी समान जानने ॥ ८ ॥

इति हृदयरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ हृद्रोगचिकित्सा।

हिंगुपानम्।

शुण्ठी सौवर्चलं हिङ्गु पीत्वा हृदयरोगनुत् ॥ ९ ॥

भाषा-सोंठ, काला नोन और हींगका क्वाथ बनाकर पान करनेसे हृदयरोग दूर होता है ॥ ९ ॥

पंचमूलीभक्षण।

अर्जुनस्य त्वचासिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये ॥ १० ॥

भाषा-अर्जुनकी छालको दूधमें औटाकर पान करनेसे हृदयरोग दूर होता है ॥ १० ॥

दुग्धपानम्।

सितया पंचमूल्या वा बलया मधुकेन च ॥ ११ ॥

भाषा-पंचमूलके क्वाथमें चीनी डालकर पीनेसे या खिरैटी और मुलहठीका क्वाथ बनाकर पीनेसे हृदयरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

घृतपानम्।

गोधूमककुभचूर्णं छागपयोगव्यसर्पिषा पक्वम्।
मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्रोगं समुद्धतं पुंसाम् ॥ १२ ॥

भाषा-गेहूं और अर्जुनवृक्षकी छालका चूर्ण बकरीका दूध और गायके घीके द्वारा पकाकर सहत और चीनी मिलाकर पान करनेसे हृदयरोग दूर होता है॥१२॥

दशमूलक्वाथः।

दशमूलीकषायस्तु लवणक्षारयोजितः।
कासं श्वासं च हृद्रोगं गुल्मशूलं च नाशयेत् ॥ १३ ॥

भाषा-दशमूलके क्वाथमें सेंधानोन और जवाखार मिलाकर पान करनेसे खांसी, श्वास, हृदयरोग और गुल्मशूल दूर होता है ॥ १३ ॥

हृदयार्णवो रसः।

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतं ताम्रं द्वयोः समम्। मर्द्दयेत्त्रिफलाद्रावैः काकमाचीद्रवैर्दिनम्॥चणमात्रां वटीं खादेद्रसोऽयं हृदयार्णवः। काकमाचीफलं शुष्कं त्रिफलाफलसंयुतम् ॥ द्वात्रिंशत्तु पलं

तोयं क्वाथमष्टावशेषितम् । अनुपानं पिबेद्रान्तैर्हृद्रोगे च कफोत्थिते ॥ १४ ॥

भाषा-शुद्ध पारा और शुद्ध गंधक समान भाग लेवे । तांबेकी भस्म दो भाग इनको एक दिन त्रिफलेके क्राथमें और एक दिन मकोयके रसमें खरल करके चनेकी बराबर गोली बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली खाय और ऊपरसे मकोयके सूखे पत्ते और त्रिफलेके बत्तीस पल जलमें अष्टावशेष काथ बनाकर पीवे तो कफज हृदयरोग दूर होता है ॥ १४ ॥

बलाद्यं घृतम् ।

घृतं बलानागबलार्ज्जुनाम्बुसिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ।
हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्तकासानिलासृक्छमयत्युदीर्णम् ॥ १५ ॥

भाषा-खिरैटी, गंगेरन और अर्जुनके छालके काथमें मुलहठीका कल्क और घृत डालकर घीको सिद्ध करे । इसको सेवन करनेसे हृदयरोग, शूल, क्षत, रक्तपित्त, खांसी और वातरक्त नष्ट होता है ॥ १५ ॥

अथ वमनविधिः ।

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत् स्निग्धमातुरम् ।
द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सस्नेहलवणेन च ॥
मदनादिचूर्णयुक्तेन द्विपंचमूलीक्वाथेन वमनम् ॥ १६ ॥

भाषा-वातिकहृदयरोगमें रोगीको दशमूलके क्वाथमें तेल, सैंधानोन और मैनफलका चूर्ण डालकर वमन करावे ॥ १६ ॥

विरेचनादिक्रिया ।

कर्त्तव्यं अत्र विरेचनमपि कर्त्तव्यं लंघनं च ।
हृद्रोगिणं स्नेहयित्वा वामयेत् रेचयेत्तथा ॥
अचिरोत्थितं लंघयेत् हृद्रोगं वातिकं विना ॥ १७ ॥

भाषा-इस रोगमें विरेचन और लंघनभी कराने चाहिये । हृदयरोगीको प्रथम स्निग्ध करके पश्चात् वमन और विरेचन करावे । वातिक हृदयरोगको छोडकर बाकीके सब नवीन हृदयरोगमें लंघन करावे ॥ १७ ॥

पिप्पल्यादीनां पानविधिः ।

पिप्पल्येला वचा हिंगु यवक्षारोऽथ सैन्धवम् । सौवर्चलमथो शुण्ठी

अजमोदा च चूर्णितम् ॥ फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवा-
दिभिः । पाययेत् शुद्धदेहं च स्नेहेनान्यतमेन वा ॥ १८ ॥

भाषा-पीपल, इलायची, वच, हींग, जवाखार, सैंधानोन, कालानोन और अजमोद इन सबोंका एकत्र चूर्ण कर त्रिफलेके काथके साथ, कांजीके साथ, कुलथीके यूपके साथ, दधि, मदिरा, आसव अथवा अन्य किसी स्नेहके साथ वमन विरेचनादिके द्वारा शुद्ध शरीरवाले हृदयरोगीको पान करावे ॥ १८ ॥

घृतकषायादिपानम् ।

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितागुडजलैर्वमेत् ।
पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत् मधुरकैः शृतम् ॥
घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान् पित्तज्वरविनाशनान् ॥ १९ ॥

भाषा-पित्तज हृदयरोगमें कुम्भेरके फल और मुलहठीके अर्द्ध सिद्ध काथमें सहत चीनी और गुड डालकर तथा इसके साथ मैनफलका चूर्ण मिलाकर वमन करावे, मधुरपदार्थोंके साथ सिद्ध किया हुआ घी और कषाय सेवन करे, एवं पित्तज्वरोक्त चिकित्सा करे ॥ १९ ॥

अन्नपानम् ।

शीताः प्रदेहाः परिसेचनानि तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे ।
द्राक्षासिताक्षौद्रपरूपकैः स्यात् शुद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥ २० ॥

भाषा-पित्तज हृदयरोगमें चन्दनादिके शीतल प्रलेप, शीतल जलका सेचन और विरेचन ये सब उपचार करे। तथा वमन विरेचनादिसे शरीरको शुद्ध करके दाख, चीनी, मधु और फालसेके साथ पित्तनाशक अन्नपान प्रयोग करे ॥ २० ॥

अर्जुनत्वक्चूर्णभक्षणप्रकारः ।

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये ।
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ २१ ॥

भाषा-घृत, दूध अथवा गुडके सर्बतके साथ अर्जुनवृक्षकी छालका चूर्ण सेवन करनेसे हृदयरोग, जीर्णज्वर और रक्तपित्तरोग दूर होता है ॥ २१ ॥

वातहृद्रोगहरपिप्पलीचूर्णम् ।

वचानिम्बकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफोत्थिते ।
वातहृद्रोगहृच्चूर्णं पिप्पल्यादींश्च पाययेत् ॥ २२ ॥

भाषा-कफज हृदयरोगमें वच और नीमकी छालका काथ पिलाकर वमन करावे तथा इस रोगमें वातहृदयरोगोक्त पिप्पल्यादि चूर्ण देवे ॥ २२ ॥

लंघनादिप्रकारः।

त्रिदोषजे लंघनमादितः स्यादन्नं च सर्वेषु हितं विधेयम्। हीनातिमध्यत्वमवेक्ष्य चैव कार्य्यं त्रयाणामपि कर्म्म शस्तम्॥२३॥

भाषा-त्रिदोषज हृदयरोगमें प्रथम लंघन करावे तथा त्रिदोषनाशक अन्नपान देवे। एवं दोषोंकी प्रबलता, हीनता और समता विचार यथाविधिसे चिकित्सा करे ॥ २३ ॥

हिंगुक्वाथः।

हिंगूग्रगन्धा विडविश्वकृष्णा कुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम्। पिबेत् ससौवर्चलपुष्कराढ्यं यवाम्भसा शूलहृदामयघ्नम् ॥ २४ ॥

भाषा-हींग, वच, बिरिया संचरनोन, सोंठ, पीपल, कूठ, हरड, चीता, जवाखार काला नोन और पोहकरमूल इन सबोंको चूर्ण समान भाग लेकर जौके काथके साथ पीनेसे शूल और हृदयरोग दूर होता है ॥ २४ ॥

वल्लभघृतम्।

मुख्यं शतार्द्धं च हरीतकीनां सौवर्चलस्यापि पलद्वयं च। पक्वं घृतं वल्लभकेति नाम्ना हृल्लासशूलोदरमारुतघ्नम् ॥ २५ ॥

भाषा-उत्तम हरड ५० और काला नोन २ पल इन दोनोंके साथ घृतको सिद्ध करके सेवन करनेसे हल्लास (उबकाई), शूल, उदररोग और वातरोग नष्ट होता है इसको वल्लभघृत कहते हैं ॥ २५ ॥

अर्जुनघृतम्।

पार्थस्य कल्कस्वरसेन सिद्धं शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥ २६ ॥

भाषा-अर्जुनवृक्षके कल्क और काथके द्वारा घृतको सिद्ध करके सेवन करनेसे सर्व प्रकारके हृदयरोग दूर होते हैं ॥ २६ ॥

हृदयार्णवो रसः।

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतं ताम्रं तयोः समम्। मर्द्दयेत् त्रिफलाक्वाथैः काकमाचीद्रवैर्दिनम्॥ चणमात्रां वटीं खादेद्रसोऽयं हृदयार्णवः। काकमाचीफलं कर्षं त्रिफलाफलसंयुतम् ॥ द्वात्रिंश-

तोलकं तोयं क्वाथमष्टावशोषितम्। अनुपानं पिबेचात्र हृद्रोगे च कफोत्थिते ॥ २७॥

भाषा-शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गंधक १ भाग और तांबेकी भस्म २ भाग सबोंको एकत्र कर त्रिफले और मकोयके रसमें एक दिन खरल करे। फिर चनेकी बराबर गोलियां बनाकर प्रतिदिन एक गोली खाय, ऊपरसे मकोयके फल और त्रिफलेका ३२ तोले जलमें अष्टावशेष काढा करके पीवे तो कफोत्पन्न हृदयरोग दूर हो॥ २७॥

नागार्जुनाभ्रम्।

सहस्रपुटनैः शुद्धं वज्राभ्रमर्जुनत्वचः। सत्वैर्विमर्दितं सप्त दिनात् खल्वे विशोषितम्॥ छायाशुष्का वटी कार्य्या नाम्नेदमर्जुनाह्वयम्। हृद्रोगं सर्वशूलार्शोहृल्लासच्छर्द्यरोचकान्॥ अतीसारमग्निमांद्यं रक्तपित्तं क्षतक्षयम्। शोथोदराम्लपित्तं च विषमज्वरमेव च॥ हन्त्यन्यान्यपि रोगाणि बल्यं वृष्यं रसायनम्॥२८॥

भाषा-सहस्रपुटित वज्राभ्रकको अर्जुनवृक्षकी छालके रसमें सात दिन खरल करके छायामें सुखाकर गोली बना लेवे, इसको अर्जुनाभ्रक कहते हैं। यह हृदयरोग, सर्व प्रकारके शूल, बवासीर, हृल्लास, छर्दि, अरुचि, अतीसार, मंदाग्नि, रक्तपित्त, क्षतक्षय, शोथ, उदररोग, अम्लपित्त, विषमज्वर तथा अन्यान्य रोगोंको दूर करे है। बल्य, वृष्य और रसायन है॥ २८॥

पंचाननरसः।

सूतगन्धौ द्रवैर्धात्र्या मर्दयेत गोस्तनीद्रवैः।
यष्टिखर्ज्जूरसलिलैर्दिनं च परिमर्दयेत्॥
धात्रीचूर्णं सितां चानु पिबेत् हृद्रोगशान्तये॥ २९॥

भाषा-पारे और गंधकको समान भाग लेकर आमलेके रसमें खरल करके दाख, मुलहठी और खजूरके क्वाथमें एक दिन भावना देवे। फिर दो दो रत्तीकी गोलियां बनाकर आमलेके चूर्ण और मिश्रीके साथ भक्षण करे तो हृदयरोग दूर होता है॥ २९॥

इति हृदयरोगचिकित्सा समाप्ता।

अथ मूत्रकृच्छ्ररोगनिदानम् ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसंगनित्यद्रुतपृष्ठयानात् ।
आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणामिहाष्टौ ॥१॥

भाषा-व्यायाम (कसरत आदि), तीक्ष्ण औषधियोंका सेवन, रूखे पदार्थों-का भक्षण, सदैव मद्यपान करना, नित्य घोडेपर चढना, जलके निकट रहनेवाले जीवोंके मांसको और मछलीको भक्षण करनेसे, भोजनके ऊपर भोजन करनेसे और अजीर्णसे मनुष्योंके आठ प्रकारका मूत्रकृच्छ्ररोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

संप्राप्ति ।

पृथङ्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य बस्तौ ।
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ २ ॥

भाषा-अपने अपने कारणोंसे वातादिक दोष भिन्न भिन्न कुपित होकर अथवा एकसाथ कुपित होकर मूत्राशयमें प्राप्त होके मूत्रके मार्ग पीडित करते हैं तब मनुष्य बडे कष्टसे मूतता है ॥ २ ॥

पित्तोद्भव मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं कृच्छ्रं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥ ३ ॥

भाषा-पित्तज मूत्रकृच्छ्रमें पीला, किंचित् लाल, पीडासहित, दाहयुक्त, वारंवार कृच्छ्रसे मूतता है ॥ ३ ॥

वातोद्भव मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

तीव्रार्त्तिरुग्वंक्षणबस्तिमेढ्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् ॥ ४ ॥

भाषा-वातज मूत्रकृच्छ्रमें वंक्षण, बस्ति और लिंगमें अत्यन्त पीडा हो और वारंवार थोडा थोडा मूत्र उतरे ॥ ४ ॥

कफज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

बस्तेः सलिंगस्य गुरुत्वशोथौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ५ ॥

भाषा-कफज मूत्रकृच्छ्रमें बस्ति और लिंग भारी हो तथा सूजन हो और मूत्र पिच्छिल हो ॥ ५ ॥

संनिपातोद्भव मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपाताद्भवन्ति तत्कृच्छ्रतमं तु कृच्छ्रम् ॥ ६ ॥

भाषा–त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रमें सब लक्षण होते हैं । यह कष्टसाध्य है ॥ ६ ॥

शल्यज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

मूत्रवाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च ।
मूत्रकृच्छ्रं तदा घाताज्जायते भृशदारुणम् ॥
वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य लिंगानि लक्षयेत् ॥ ७ ॥

भाषा–मूत्रके बहनेवाली जो नसें उनमें किसी प्रकारसे घाव हो जाय अथवा चोट लग जाय तब उससे अत्यन्त भयंकर मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है । इसके लक्षण वातज मूत्रकृच्छ्रकी समान होते हैं ॥ ७ ॥

मलोद्भव मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः ।
आध्मानं वातसंगं च मूत्रसंगं करोति च ॥ ८ ॥

भाषा–मलके अवरोधनसे वायु कुपित होकर पेटका फूलना, वातशूल और मूत्रका अवरोध करती है ॥ ८ ॥

अश्मरीजन्य मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

अश्मरीहेतु तत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत् ॥ ९ ॥

भाषा–जो मूत्रकृच्छ्र अश्मरीके कारणोंसे होता है उसको अश्मरी मूत्रकृच्छ्र कहते हैं ॥ ९ ॥

शुक्रज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

शुक्रे दोषैरुपहते मूत्रमार्गे विधारिते ।
सशुक्रं मूत्रयेत् कृच्छ्राद्बस्तिमेहनशूलवान् ॥ १० ॥

भाषा–वातादिक दोषोंसे वीर्य्य दूषित होकर मूत्रमार्गको रोक देता है तब मनुष्यके मूत्राशय और लिंगमें शूल होता है और वह वीर्ययुक्त मूतता है ॥ १० ॥

अश्मरी शर्करा इन दोनोंका अवांतर भेदसाम्य ।

अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे । विशेषणं शर्करायाः शृणु कीर्त्तयतो मम ॥ पाच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना । विमुक्तकफसंधाना क्षरंती शर्करा मता ॥ हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निश्च दुर्बलः । तथा भवति मूर्च्छा च मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ॥ ११ ॥

भाषा-अश्मरी और शर्कराके लक्षण समानही हैं परन्तु कुछ थोडासा अन्तर है सो कहते हैं । पित्तसे पकनेवाली और वातसे सूखनेवाली तथा कफसे छूटनेवाली ऐसी पथरी मूत्रके मार्गसे रेतेकी समान सरने लगे, उसको शर्करा कहते हैं । उस शर्कराके कारण हृदयमें पीडा, कम्प, कोखमें शूल, मंदाग्नि, मूर्छा और घोर मूत्रकृच्छ्ररोग उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥

इति मूत्रकृच्छ्ररोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ मूत्रकृच्छ्ररोगचिकित्सा ।

अजाजीं शृङ्गवेरं च दधिमण्डेन पाययेत् । लवणेन तु संयुक्तं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ यवक्षारः शर्करा च मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् । पिष्टं वै मालतीमूलं ग्रीष्मकाले समाहृतम् ॥ साधितं छागदुग्धेन पीतं शर्करयान्वितम् । हरेन्मूत्रनिरोधं च हरेद्धि पाण्डुशर्कराम् ॥ हरीतकीं गोक्षुरपाषाणभिन्नद्वयवासकानाम् । क्काथं पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे ॥ १२ ॥

भाषा-काला जीरा और सोंठका चूर्ण दहीके तोडके साथ सैंधानोन मिलाकर सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है । जवाखार और मिश्रीको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है । ग्रीष्मऋतुमें मालतीकी जडको उखाडकर पीस लेवे, फिर उसमें चीनी और बकरीका दूध मिलाकर पान करनेसे मूत्ररोध, पाण्डु, शर्करा, इत्यादि रोग दूर होते हैं । हरड, गोखरू, दोनों पाषाणभेद और अडूसा इनके काथमें सहत मिलाके पान करनेसे पीडायुक्त और दाहयुक्त मूत्रकृच्छ्र और मूत्ररोध दूर होता है ॥ १२ ॥

एलाभक्षणविधिः ।

एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां चूर्णानि तण्डुलजले लुलितानि पीत्वा । यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य तानि चासन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ १३ ॥

भाषा-इलायची, पाषाणभेद, शिलाजीत और पीपलका चूर्ण एकत्र करके चावलोंके जल या गुडके साथ सेवन करनेसे असाध्य मूत्रकृच्छ्ररोगीभी बच जाता है ॥ १३ ॥

गुडूच्यादिकाथः।

अमृता नागरं धात्री वाजिगन्धा त्रिकण्टकान्। प्रपिबेद्वातरोगार्त्तः सशूलो मूत्रकृच्छ्रवान्॥ गुडेनामलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं प्रियम्। पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम्॥ अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्तिस्वेदोपनाहोत्तरवस्तिसेकान्। स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान् दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे॥ १४॥

भाषा-गिलोय, सोंठ, आमले, असगंध और गोखरू इनका काथ बनाकर पान करनेसे वातरोग और शूलयुक्त मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है। गुड और आमलेका चूर्ण एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे वीर्यकी वृद्धि होती है। श्रमका नाश होता है, तृप्ति होती है तथा रक्तपित्त, दाह, शूल और मूत्रकृच्छ्र दूर होता है। वातजन्य मूत्रकृच्छ्ररोगमें वायुनाशक तैलादि मर्दन करे तथा स्नेहपान, निरूहवस्ति, स्वेद, प्रलेप और उत्तरवस्ति, परिषेक इत्यादि कार्य करे तथा शालिपर्णी आदि वातनाशक पदार्थोंके साथ सिद्ध मांसादिका यूष सेवन करे॥ १४॥

सेकादिक्रिया।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मो विधिर्वस्तिपयोविरेकाः। द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्य्याः॥ १५॥

भाषा-पित्तजन्य मूत्रकृच्छ्रमें शीतल जलसे शरीरको सींचना या शीतल जलमें घुसकर स्नान करना, खस चन्दनादिका लेप, ग्रीष्मऋतुकी ऋतुचर्या वर्त्ते तथा दाख, विदारीकंद और ईखका रस घीके साथ पीवे॥ १५॥

निरूहवस्तिवमनादिक्रिया।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहाः। तक्रं सतिक्तौषधिसिद्धतैलमभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे॥ १६॥

भाषा-कफजन्य मूत्रकृच्छ्ररोगमें क्षार, उष्ण द्रव्य, पंचकोलादि तीक्ष्ण औषध, तीक्ष्ण भोजन, स्वेद, यवान्न, वमन और निरूह ये सब प्रयोग करे तथा तक्र और तिक्तद्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ तेल मर्दन और पान करे॥ १६॥

वमनविरेचनादिक्रिया।

सर्वं त्रिदोषप्रभवे च वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्य्यम्। त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं विरेकः पित्ते कफे स्यात् पवने च वस्तिः॥ १७

भाषा-त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रमें वायुसे लेकर जो कफपर्य्यंत उपचार कहे हैं उन

सबोंको मिश्रित करके प्रयोग करे, विशेष करके दोषोंकी अवस्था देखकर मिश्रित उपचार करे । त्रिदोषमें जो कफाधिक होय तो प्रथम वमन, पित्त अधिक होय तो विरेचन और वाताधिकमें वस्ति देवे ॥ १७ ॥

सद्योव्रणअभ्यंगादिक्रिया ।

तथाभिघातजे कुर्यात् सद्योव्रणचिकित्सितम् ।
स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गवस्तयः स्युः पुरीषजे ॥
क्रिया हिता त्वश्मरिशर्करायां या मूत्रकृच्छ्रे कफमारुतोत्थे॥१८॥

भाषा-अभिघातज मूत्रकृच्छ्रमें सद्योव्रणोक्त चिकित्सा करनी चाहिये । पुरीषज मूत्रकृच्छ्रमें स्वेद, चूर्ण, क्रिया, अभ्यंग और वस्तिकर्म करना चाहिये। अश्मरी और शर्कराजनित मूत्रकृच्छ्रमें कफवातज मूत्रकृच्छ्रोक्त चिकित्सा करनी चाहिये १८

शिलाजतुभक्षण ।

लेह्यं शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् ।
वृष्यैर्बृंहितधातुस्थे विधेया प्रमदोत्तमा ॥ १९ ॥

भाषा-शुक्ररोधजनित मूत्रकृच्छ्ररोगमें सहतमें शिलाजीतको मिलाकर चाटे । वाजीकरणविधिसे बढे हुए वीर्यसे उत्पन्न हुए मूत्रकृच्छ्रमें सुन्दर स्त्रीके साथ मैथुन करे ॥ १९ ॥

कूष्माण्डरसभक्षणविधिः ।

कूष्माण्डकरसं पीत्वा सयवक्षारशर्करम् ।
मूत्रकृच्छ्राद्विमुच्येत शीघ्रं च लभते सुखम् ॥ २० ॥

भाषा-पेठेके रसमें किंचित् चीनी और जवाखार डालकर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग शीघ्र दूर हो जाता है ॥ २० ॥

तृणपंचमूलम् ।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवेत् ।
पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं बस्तिविशोधनम् ॥ २१ ॥

भाषा-कुश, काश, रामशर, दाभ और ईख इन पांचोंकी जडको औटाकर पीनेसे पित्तज मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है तथा वस्ति शुद्ध होती है ॥ २१ ॥

त्रिकण्टकादि ।

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकासदुरालभाः प्रस्तरभेदपथ्याः ।
निघ्नंति पीडां मधुनाश्मरीं च संप्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥२२॥

भाषा-गोखरू, अमलतास, दाभ, काश, धमासा, पाषाणभेद और हरड इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है ॥ २२ ॥

धात्र्यादिः ।

धात्री द्राक्षा विदारी च यष्ट्याह्वा गोक्षुरं तथा ।
एभिः कषायं विपचेत् पिबेत् शीतं सशर्करम् ॥
अपि योगशतासाध्यं मूत्रकृच्छ्रं जयेल्लघुम् ॥ २३ ॥

भाषा-आमला, दाख, विदारीकंद, मुलहठी और गोखरू इनके काथमें शर्करा डालकर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ २३ ॥

शतावर्यादि ।

शतावरीकासकुशैः श्वदंष्ट्राविदारिशालीक्षुकशेरुकानाम् ।
क्वाथं सुशीतं मधुशर्करात्तं पिबन् जयेत् पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रम्॥२४॥

भाषा-शतावर, कास, कुश, गोखरू, विदारीकंद, शालि, ईख और कशेरू इनके काथमें चीनी और सहत डालकर शीतल करके पीनेसे पैत्तिक शूलरोग नष्ट होता है ॥ २४ ॥

त्रिकण्टकाद्यं घृतम् ।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरुककारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम् ।
सर्पिर्गुडार्द्धांशयुतं प्रपेयं कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातहेतोः ॥ २५ ॥

भाषा-गोखरू, अंड, कुशादि पंचमूल, शतावर, पेठा और ईख इनके स्वरसमें घृतको सिद्ध करे। इस घृतसे आधा भाग गुड मिलाकर पीवे तो मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और मूत्राघात रोग दूर होवे। जो त्रिकण्टकादि औषधियोंका स्वरस न मिले तो काथ लेना चाहिये ॥ २५ ॥

मूत्रकृच्छ्रहरः ।

विदारी गोक्षुरं यष्टी केशरं च समं पचेत् ।
तत्कषायं पिबेत् क्षौद्रे रसभस्मयुतं पुनः ॥
मूत्रकृच्छ्रं हरेत् सर्वं सप्ताहात् पित्तसम्भवम् ॥ २६ ॥

भाषा-विदारीकंद, गोखरू, मुलहठी और नागकेशर इनके काथमें सहत और पारेकी भस्म डालकर पीनेसे सात दिनमें पित्तज मूत्रकृच्छ्ररोग दूर हो जाता है ॥ २६ ॥

त्रिनेत्राख्य रसः ।

वङ्गं सूतं गन्धकं भावयित्वा लोहे पात्रे मर्दयेदेकघस्रम् । दूर्वा-यष्टीगोक्षुरैः शाल्मलीभिर्मूषामध्ये भूधरे पाचयित्वा ॥ तत्तत् द्रावैर्भावयित्वास्य वल्लं दद्यात् शीतं पायसं वक्ष्यमाणम् । दूर्वा-यष्टीशाल्मलीतोयदुग्धैस्तुल्यैः कुर्य्यात् पायसं तद्ददीत ॥ प्रातःकाले शीतपानीयपानात् मूत्रे जाते स्यात्सुखी चंक्रमेण॥२७॥

भाषा-वंग, पारा और गंधक ये समान भाग लेकर दूब, मुलहठी, गोखरू और शेमलके काथमें भावना देकर एक दिन खरल करे, फिर मूषामें रखकर भूधरयंत्रमें पकावे । शीतल होनेपर इसको निकालकर दूसरी बार भावना देवे, पश्चात् दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे । दूब, मुलहठी, सेमलका क्राथ और दूध बराबर लेकर खीर बना लेवे । शीतल होनेपर इसका अनुपान करे । प्रतिदिन प्रातः-काल इस औषधिको भक्षण करके शीतल जल पीनेसे जब पेसाब आवेगा तब रोगी सुखी होगा ॥ २७ ॥

वरुणाद्यं लोहम् ।

द्विपलं वरुणं धात्र्यास्तदर्द्धं धात्रिपुष्पकम् । हरीतक्याः पलार्द्धं च पृश्निपर्णी तदर्द्धकम् ॥ कर्षमानं च लोहाभ्रं चूर्णमेकत्र कारयेत् । भक्षयेत् प्रातरुत्थाय शाणमानं विधानवित् ॥ मूत्रा-घातं तथा घोरं मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् । अश्मरीं विनिहन्त्याशु प्रमेहं विषमज्वरम् ॥ बलपुष्टिकरं चैव वृष्यमायुष्यमेव च । वरुणाद्यमिदं लोहं चरकेण विनिर्म्मितम्॥अयोरजः श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजयेत् । मूत्राघातं निहन्त्याशु मूत्रकृच्छ्रं सुदा-रुणम् ॥ रसगन्धयवक्षारं सितातक्रयुतं पिबेत् । मूत्रकृच्छ्राण्य-शेषाणि निहन्ति नियतं नृणाम् ॥ भैषज्यैरश्मरीप्रोक्तैर्मूत्रकृच्छ्र-मुपाचरेत् । योगवाहिरसैर्वापि चानुपानविशेषतः ॥ २८ ॥

भाषा-वरनाकी छाल २ पल, आमले २ पल, धायके फूल १ पल, हरड २ तोले, पिठवन १ तोला, लोहा १ कर्ष और अभ्रक १ कर्ष इन सबोंका एकत्र चूर्ण करके नित्य प्रातःकाल ४ मासे खाय तो घोर मूत्राघात, दारुण मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह और विषमज्वर दूर होता है । बल और पुष्टिकारक, वीर्यको बढानेवाला,

अवस्थास्थापक यह वरुणाद्यलोह श्रीमान् चरकपतिने निर्म्माण किया है। लोहेका चूर्ण सहतके साथ चाटनेसे मूत्राघात और दारुणमूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है। पारा, गंधक, जवाखार और मिश्रीको तक्रके साथ पीनेसे सर्व प्रकारके मूत्रकृच्छ्ररोग दूर हो जाते हैं। अश्मरीरोगमें कही हुई सब औषधि तथा योगवाहि रस अनुपानविशेषके साथ इस रोगमें प्रयोग करने चाहिये ॥ २८ ॥

मूत्रकृच्छ्रान्तको रसः ।

शतावरीरसैः पिष्ट्वा मृतसूतं च तालकम् । शिखितुत्थं च तुल्यांशं दिनैकं मर्दयेद्दृढम् ॥ तद्गोलं सार्षपे तैले पाच्यं यामं च चूर्णयेत् । मूत्रकृच्छ्रान्तकश्चास्य क्षौद्रैर्गुञ्जाचतुष्टयम् ॥ भक्षणान्नात्र सन्देहो मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्यलम् । तुलसीं तिलपिण्याकं बिल्वमूलं तुषाम्बुना ॥ कर्षैकं वानुपानेन सुरया वा सुवर्चलैः ॥२९॥

भाषा–पारेकी भस्म, हरिताल और शुद्ध नीला थोथा इनको समान भाग लेकर एक दिन शतावरके रसमें खरल करे, पश्चात् इसका गोला बनाकर सरसोंके तेलमें एक पहरतक पकावे, शीतल होनेपर चूर्ण कर लेवे तो मूत्रकृच्छ्रान्तकनामवाला रस तैय्यार हो। इसको सहतमें मिलाकर चार रत्तीप्रमाण खावे तो निश्चय मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होवे। इसके ऊपर तुलसी, तिलकी खल और बेलकी जड इनको तुषाम्बुनामवाली कांजीमें मिलाकर एक कर्ष प्रमाण पीवें अथवा सुरामें सैंधानोन डालकर पान करे ॥ २९ ॥

इति मूत्रकृच्छ्ररोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ मूत्राघातरोगनिदानम् ।

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश ।
प्रायो मूत्रविघाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः ॥ १ ॥

भाषा–मलमूत्रादिकके वेगोंको रोकनेसे वातादिदोष कुपित होकर वातकुण्डलिकादि तेरह प्रकारके मूत्राघात उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

वातकुंडलिकाके लक्षण ।

रौक्ष्याद्वेगविघाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनः । मूत्रमाविश्य चरति

त्रिगुणः कुण्डलीकृतः ॥ मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्त्तते ।
वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणम् ॥ २ ॥

भाषा–रूक्षतासे या मलमूत्रादिके वेगोंको रोकनेसे वात कुपित होकर मूत्राशयमें प्राप्त होकर मूत्रमें प्रवेश करके कुण्डलिकाके आकार फिरती है उससे कुछ कुछ या पीडायुक्त मूतता है। यह वातकुण्डलिका व्याधि अत्यन्त घोर है॥२॥

अष्ठीलाके लक्षण ।

आध्मापयन्वस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोन्नताम् ।
कुर्यात्तीव्रार्त्तिमष्ठीलां मूत्रमार्गावरोधिनीम् ॥ ३ ॥

भाषा–बस्ति और गुदामें वायु अफरेको करे तथा गुदाकी वायुको रोककर चलायमान और ऊंची ऐसी अष्ठीलाको उत्पन्न करे । यह अष्ठीला मूत्रमार्गको रोकनेवाली और तीव्रपीडाको करती है ॥ ३ ॥

वातबस्तीके लक्षण ।

वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः । निरुणद्धि मुखं तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥ मूत्रसंगो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिपीडितः । वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ४ ॥

भाषा–जो मनुष्य जबरदस्ती मूत्रके वेगको रोके, उसके बस्तीकी वायु बस्तीके मुखको बंद कर देवे, तब पेडू और कोखमें पीडित हुआ मूत्रका अवरोध होता है उसको वातबस्ति कहते हैं । यह कष्टसाध्य है ॥ ४ ॥

मूत्रातीतके लक्षण ।

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्त्तते ।
मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ५ ॥

भाषा–मूत्रके वेगको बहुत समयतक धारण करनेसे मूत्र शीघ्र नहीं उतरे मूतनेके समय शनैः शनैः मूते उसको मूत्रातीत कहते हैं ॥ ५ ॥

मूत्रजठरके लक्षण ।

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्त्तहेतुकः । अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥ नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनाम् । तन्मूत्रजठरं विद्यादधोबस्तिनिरोधजम् ॥ ६ ॥

भाषा–मूत्रके वेगको रोकनेसे जो उदावर्त्तरोग उत्पन्न होता है उस उदावर्त्तसे

कुपित हुई वायु पेटको पूरित करके नाभिके नीचे तीव्र पीडायुक्त अफरेको करे इस अधोवास्तिका अवरोध करनेवाले इस रोगको मूत्रजठर कहते हैं ॥ ६ ॥

मूत्रोत्संगके लक्षण ।

बस्तौ वाप्यथ वा नाले मणौ वा यस्य देहिनः। मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ स्रवच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाथ नीरुजम् । विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्संगसंज्ञितः ॥ ७ ॥

भाषा-मूत्र त्यागनेके समय वस्ति या लिंग अथवा लिंगके अग्रभागमें मूत्र रुक जाता है और जोरसे मूत्रको करे तो वायुसे बस्तीको फाडकर जो मूत्र निकले वह धीरे धीरे थोडा थोडा पीडासहित या विना पीडाके रुधिरसंयुक्त निकले । विगुण वातोत्पन्न इस रोगको मूत्रोत्संग कहते हैं ॥ ७ ॥

मूत्रक्षयके लक्षण ।

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ।
मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ ८ ॥

भाषा-रूखे और थके हुए मनुष्यके मूत्राशयमें स्थित जो पित्त और वायु सो मूत्रका क्षय करे, इसमें पीडा और दाह होती है इसको मूत्रक्षय कहते हैं ॥८॥

मूत्रग्रंथिके लक्षण ।

अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ।
अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ ९ ॥

भाषा-बस्तिके मुखपर अकस्मात् गोल, स्थिर, छोटे आमलेकी समान गांठ हो, उसमें पथरीकी समान पीडा हो उसको मूत्रग्रन्थि कहते हैं ॥ ९ ॥

मूत्रशुक्रके लक्षण ।

मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धृतम् ।
स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक्पश्चाद्वा प्रवर्त्तते ॥
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १० ॥

भाषा-मूत्रके वेगको रोककर जो मनुष्य स्त्रीप्रसंग करते हैं उनका वीर्य्य वायुसे भ्रष्ट होकर मूतनेके पहिले या मूतनेके पीछे भस्ममिश्रित पानीकी समान गिरे उसको मूत्रशुक्र कहते हैं ॥ १० ॥

उष्णवातका लक्षण ।

व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलावृतम् । बस्तिं मेढ्रं

गुदं चैव प्रदहेत्स्रावयेदधः ॥ मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव च । कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्णवातं वदन्ति तम् ॥ ११ ॥

भाषा-व्यायाम (कसरत आदि परिश्रम), अत्यन्त मार्गका चलना और धूपमें फिरना इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर वायुके साथ बस्तिमें प्राप्त होके बस्ति, लिंग और गुदामें दाह करे तथा हलदीकी समान या किंचित् ललाई लिये अथवा लाल मूत्रको वारंवार कष्टसे मूते उसको उष्णवात रोग कहते हैं ॥ ११ ॥

मूत्रसादके लक्षण ।

पित्तं कफो वा द्वौ वापि संहन्येतेऽनिलेन चेत् । कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् ॥ सदाहं रोचनाशंखचूर्णवर्णं भवेत्तु तत् । शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥ १२ ॥

भाषा-पित्त या कफ अथवा पित्तकफ दोनों जब वायुसे दूषित हो जाते हैं तब पीला, लाल, सफेद और गाढा ऐसा कष्टसे मूत उतरे तथा मूततो बेर जलन हो एवं जब वह मूत्र भूमिमें सूख जाय तब उसका रंग गोरोचन या शंखकी चूर्णकी समान हो अथवा सब रंगका हो इसको मूत्रसाद कहते हैं ॥ १२ ॥

विड्विघातके लक्षण ।

रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्त्तं शकृद्यदा । मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विड्विसृष्टं तदा नरः ॥ विड्गंधं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं विनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

भाषा-रूखे शरीरवाले और दुबले मनुष्यके वायुसे प्रेरित मल जब उदावर्त्तःको करता है तब वह मलमूत्र मार्गमें आवे उस समय वह मनुष्य मूते तो बडे कष्टसे विष्ठाकी गंधयुक्त मूत्र उतरे, उसको विड्विघात कहते हैं ॥ १३ ॥

बस्तिकुंडलरोगके लक्षण ।

द्रुताध्वलंघनायासैरभिघातात्प्रपीडनात् । स्वस्थानाद्बस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ शूलस्पंदनदाहार्त्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि । पीडितस्तु सृजेद्धारां संरंभोद्वेष्टनार्त्तिमान् ॥ बस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम् । पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ १४ ॥

भाषा-बहुत शीघ्र चलनेसे, लंघन करनेसे, अधिक परिश्रम करनेसे, लकड़ी ादिकी चोट लगनेसे, दबानेसे, बस्ति अपने स्थानको त्यागकर ऊपर जायके थूल होकर गर्भकी समान होती है। उससे शूल, कम्प और दाहसे पीडित कर एक एक बूंद पेशाब होता है। जब बस्ति पेडूको जोरसे दाबे तो बड़ी वे-से धार गिरती है बस्तिमें सूजन और पेटमें पीडा होती है, इसको बस्तिकुण्डल हते हैं। यह महाभयंकर व्याधि शस्त्र और विषके समान है। प्रायः वायु इसमें बल होती है, यह थोडी बुद्धिवाले वैद्योंकरके दुर्निवार है॥ १४॥

अन्य दोषोंके सम्बन्ध होनेसे जो लक्षण हों उनको कहते हैं।

तस्मिन्पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता।
श्लेष्मणा गौरवं शोथः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम्॥ १५॥

भाषा-जो यह बस्तिकुण्डल पित्तयुक्त होय तो इसमें दाह, शूल और मूत्रका ा बुरा होता है, कफयुक्त होय तो भारीपन, सूजन, मूत्र चिकना, गाढा और फेद होता है॥ १५॥

साध्यासाध्यलक्षण।

श्लेष्मरुद्धबिलो बस्तिः पित्तोदीर्णो न सिद्ध्यति।
अविभ्रांतबिलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः॥ १६॥

भाषा-जिस बस्तिका मुख कफकरके बंद हो जाय और पित्तकरके व्याप्त हो ; बस्ति असाध्य है। जिसका मुख खुला हो सो साध्य और जो कुण्डलीकृत हो सो साध्य है॥ १६॥

कुंडलीभूतके लक्षण।

स्याद्बस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहः श्वास एव च॥ १७॥

भाषा-इस कुण्डलीकृत बस्तिके होनेसे तृषा, मोह और श्वास ये लक्षण ते हैं॥ १७॥

इति मूत्राघातरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ मूत्राघातरोगचिकित्सा।

क्षारकषायादिकल्पना।

कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम्। धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्राघाताद्विमुच्यते॥ पाटलायावशूकाच्च पारिभद्रात्तिलादपि।

क्षारोदकेन मदिरां त्वगेलोषणसंयुताम् ॥ पिबेद् गुडोपदंशान् वा लिह्यादेतान् पृथक् पृथक् । जले कुंकुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि ॥ सतैलपाटलाभस्म क्षारवद्वा परिस्नुतम् । सुरां सौवर्चलवतीं मूत्राघाती पिबेन्नरः॥ मूत्रे विबन्धे कर्पूरचूर्णं लिङ्गे प्रवेशयेत् । मूत्राघातं यथादोषं मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत् ॥ बस्तिमुत्तरबस्तिं च दद्यात् स्निग्धविरेचनम् । यवक्षारगुडोन्मिश्रं पिबेत् पुष्पफलोद्भवम् ॥ रसं मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम् । सपत्रफलमूलस्य क्वाथं गोक्षुरकस्य च ॥ पिबेन्मधुसितायुक्तं मूत्राघातादिरोगनुत् । बिम्बीमूलं च संपिष्टं काञ्जिकेन समन्वितम् ॥ नाभिलेपनमात्रेण मूत्ररोगं निहन्ति च । मूत्रे विपन्ने कर्पूरचूर्णं लिङ्गे प्रवेशयेत् ॥ कूष्माण्डकरसो वापि पेयः सक्षारशर्करः । जलेन खदिरीबीजं मूत्राघाताश्मरीहरम् ॥ मूलं रुद्रजटायाश्च तक्रं पीतं तदर्थकृत् । गोधावत्या मूलं घृततैलगोरसोन्मिश्रम् ॥ पीतं निरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रस्य संरोधम् । वराम्ललवणोपेतं शृतं यश्च पिबेन्नरः ॥ तस्य नश्यन्ति वेगेन मूत्राघातास्त्रयोदश ॥ १८ ॥

भाषा-१ तोला ककडीके बीजोंको जलमें पीसकर सेंधानोन मिलाकर कांजीके साथ पीनेसे मूत्राघातरोग दूर होता है । पाढरकी छाल, जवाखार, पारिभद्र (फरहद) और तिल इनको अलग अलग आगमें जलाकर जलमें डाल देवे, इस क्षारजलमें मदिरा, दालचीनी, इलायची और काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पान करनेसे अथवा इस क्षारजलको गुडके साथ मिलाकर चाटनेसे मूत्राघातरोग दूर होता है । केशरको जलमें भिगोकर दूसरे दिन सहतमें मिलाकर पान करनेसे अथवा पाडलके छालकी भस्मको जलमें डालकर क्षारकी समान सात वार नितारकर तैलके साथ पान करनेसे मूत्राघातरोग दूर होता है। काले नोनके साथ मदिराको पीनेसे मूत्राघातरोग दूर होता है । मूत्ररोधमें लिंगके छिद्रमें कपूरका चूर्ण प्रवेश करे । वात, पित्त और कफकी प्रबलता विचारकर मूत्रकृच्छ्रनाशक औषधियोंसे मूत्राघातके हरनेकी चेष्टा करे । विशेषकरके इस रोगमें बस्तिक्रिया, उत्तरबस्ति और स्निग्धविरेचन प्रयोग करे । पेठेके रसमें जवाखार और गुड मिलाकर पान

करनेसे मूत्ररोध, शर्करा और अश्मरीरोग दूर होता है। पत्र, फल और मूलसहित गोखरुओंका काथ बनाकर सहत और मिश्रीके साथ पीनेसे मूत्राघातादि रोग दूर होते हैं। कन्दूरीकी जडको कांजीमें पीसकर नाभिपर लेप करनेसे मूत्ररोग दूर होता है। मूत्ररोध होय तो लिंगके छिद्रमें कपूरका चूर्ण प्रवेश करे अथवा जवाखार और मिश्रीके साथ पेठेका रस पीवे तो पेशाव खुलकर आता है। खेरीशाकके बीजोंको जलमें पीसकर पान करनेसे अथवा रुद्रजटाके तैलमें पीसकर पान करनेसे मूत्राघात और अश्मरीरोग दूर होता है। लाल लज्जावंतीकी जडको घी, तैल और गायके दूधके साथ पीनेसे मूत्ररोध दूर होता है। त्रिफलेके काथमें कांजी और सैंधानोन मिलाकर पान करनेसे तेरह प्रकारके मूत्राघातरोग दूर होते हैं॥ १८॥

उशीराद्यं तैलम्।

उशीरं तगरं कुष्ठं यष्टीमधुकचन्दनम्। विभीतक्यभया भीरुः पद्ममुत्पलशारिवा॥ बला तुरगगन्धा च दशमूलं शतावरी। विदारी चैव काकोली गुडूच्यतिबला तथा॥ श्वदंष्ट्रा शतपुष्पा च वाट्यालकमधूरिकाः। एतैः कर्षमितैर्भागैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्॥ सपत्रफलमूलस्य गोक्षुरस्य पलं शतम्। जलद्रोणे विपक्तव्यं पादांशेनावतारयेत्॥ तक्रं तैलसमं देयं वीरणक्काथकाढकम्। मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रमश्मरीं हन्ति दारुणम्॥ बलवर्णकरं वृष्यं वातपित्तनिषूदनम्। उशीराद्यमिदं तैलं काशिराजेन निर्म्मितम्॥ १९॥

भाषा-खस, तगर, कूठ, मुलहठी, लाल चन्दन, बहेडा, हरड, कटेरी, कमल, उत्पल, शारिवा, खिरेटी, असगंध, दशमूल, शतावर, विदारीकंद, काकोली, गिलोय, कंघी, गोखरु, सोया, सफेद खिरैटी और सौंफ प्रत्येक औषधिका कल्क दो २ तोले, तिलका तेल २ सेर, पत्र फल और मूलसहित गोखरु १०० पल लेकर एक जलद्रोणमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे। तक्र २ सेर, खसका काथ एक आढक सबोंको मिलाकर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे। यह तैल मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, दारुण अश्मरी और वातपित्तको दूर करे है। बल और वर्णको सुन्दर करे, वीर्यवर्द्धक। यह उशीराद्य तैल श्रीमान् काशीराजने निर्माण किया है॥ १९॥

तारकेश्वरो रसः ।

मृतसूताभ्रगन्धं च मर्दयेन्मधुना दिनम् । तारकेश्वरनामायं गहनानंदभाषितः ॥ माषमात्रं भजेत् क्षौद्रैर्बहुमूत्रप्रशान्तये । उदुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमात्रकम् ॥ संलिह्यान्मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥ २० ॥

भाषा–पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म और शुद्ध गंधक ये सब समान भाग लेकर एक दिन सहतमें खरल करे। यह तारकेश्वर रस श्रीमान् गहनानन्दनाथने निर्माण किया है। इसको प्रतिदिन एक मासे प्रमाण सहतके साथ खाय, इससे बहुमूत्ररोग दूर होता है। गूलरके पके हुए फलोंका चूर्ण एक कर्षप्रमाण लेकर सहतमें मिलाकर चाटे, यह इसका अनुपान है। यह अत्यन्त सुखकारक है ॥ २० ॥

लघुलोकेश्वरो रसः ।

शुद्धसूतस्य भागैकं चत्वारः शुद्धगन्धकात् । पिष्ट्वा वराटिकाः पूर्य्या रसपादेन टङ्कणम् ॥ क्षीरैः पिष्ट्वा मुखं लिप्त्वा भाण्डे रुद्ध्वा पुटे पचेत् । स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याथ लघुलोकेश्वरो मतः ॥ चतुर्गुञ्जाप्रमाणं तु मरिचेन तथैव च । जातीमूलफलैर्युक्तमजाक्षीरेण पाययेत् ॥ शर्कराभावितं चानु पीत्वा कृच्छ्रहरं परम् । येनौषधेन मतिमान् मूत्रकृच्छ्रमुपाचरेत् ॥ तेनौषधेन श्रेष्ठेन मूत्राघातानुपाचरेत् । लवणाम्लवरायुक्तं घृतं चापि पिबेन्नरः ॥ तस्य नश्यन्ति वेगेन मूत्राघातास्त्रयोदश । पक्वमिर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम् ॥ धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥ त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः सिद्धं पयो वा तृणपञ्चमूलैः । गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् २१

भाषा–शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गंधक ४ भाग दोनोंको एकत्र पीसकर कौडीमें भरकर पश्चात् पारेसे चौथाई भाग सुहागेको दूधमें पीसकर कौडीके मुखको बंद कर दे। फिर कौडीको मूषामें रख पुटपाक करे। जब स्वांगशीतल हो जाय तब चूर्ण कर ले तो लघुलोकेश्वररस तैय्यार हो। इसको चार रत्तीप्रमाण काली मिरच, जातीकी जड और फल तथा बकरीके दूधके साथ चीनी मिलाकर सेवन करे इससे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है। जिन औषधियोंसे मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा

करनी कही है उनही औषधियोंके द्वारा मूत्राघातकी चिकित्सा करे । त्रिफलेके काथमें नमक, कांजी और घी डालकर पान करनेसे तेरह प्रकारके मूत्राघातरोग दूर होते हैं । दो तोले खीरेके बीजोंको सैंधानोन और कांजीके साथ पान करनेसे मूत्राघातरोग दूर होता है । गोखरू, अंड, शतावर इनको दूधमें औटाकर या तृण-पंचमूलको दूधमें औटाकर गुड और घी मिलाकर पान करनेसे मूत्रकृच्छ्रादिरोग दूर हो जाते हैं ॥ २१ ॥

इति मूत्राघातरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ अश्मरीरोगनिदानम् ।

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजाऽपरा ।
प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्य्यः स्युर्यमोपमाः ॥ १ ॥

भाषा-पथरीरोग वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और शुक्रज इन भेदोंसे चार प्रकारका है । तहां वातादि तीनों प्रकारकी पथरी कफाश्रित है और चौथी शुक्रज अश्मरी शुक्रके आश्रय है । यह पथरीरोग यमकी समान दुःखदायक है ॥ १ ॥

संप्राप्ति ।

विशोषयेद्बस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा ।
यदा यदाऽश्मर्य्युपजायते च क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ २ ॥

भाषा-जब कुपित हुई वायु बस्तिगत शुक्रके साथ मूत्रको अथवा पित्तके साथ कफको सुखाती है तब गायके पित्तमें गोरोचनकी समान क्रम क्रमसे पथरी उत्पन्न होती है ॥ २ ॥

पूर्वरूप ।

नैकदोषाश्रयाः सर्वा अश्मर्याः पूर्वलक्षणम् ।
बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् ॥
मूत्रे बस्तसगंधत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ॥ ३ ॥

भाषा-सर्व प्रकारकी अश्मरी त्रिदोषसे उत्पन्न होती है । केवल त्रिदोषोल्बणताके भेदसे उसके वातादिदोष भेद जानने । पथरीके पूर्व बस्तिमें आध्मान, जिस स्थानमें अश्मरी अवस्थान वह स्थान अत्यन्त वेदनासंयुक्त हो, मूत्रमें बकरेकी समान दुर्गंध और कृच्छ्रता, ज्वर तथा अरुचि होती है ॥ ३ ॥

पथरीके सामान्य लक्षण।

सामान्यलिङ्गं रुङ्नाभिसेवनीबस्तिमूर्धसु । विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधने ॥ तव्द्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् । तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥ ४ ॥

भाषा-नाभि, सेवनी और बस्तिके ऊपर भागमें पीडा हो, पथरीके योगसे मूत्र रुकनेसे फुटी धार निकले, जब मूत्रमार्गसे पथरी हट जाय तब गोमेदमणिकी समान स्वच्छ क्लेशरहित मूत्र उतरे पथरीके योगसे बस्तिमें क्षत होनेसे रक्तमिला मूत्र उतरे और जोरकरके मूत्र करनेसे अत्यन्त पीडा होती है । ये सामान्य लक्षण हैं ॥ ४ ॥

वातपथरीके लक्षण ।

तत्र वाताद्भृशं व्यात्तो दन्तान्खादति वेपते । मथ्नाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन् ॥ सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः । श्यावा रूक्षाश्मरी चास्य स्याच्चिता कंटकैरिव ॥ ५ ॥

भाषा-वातज अश्मरीरोगवाला रोगी अत्यन्त पीडासे पीडित हो, दांतोंको चबावे, कांपे, लिंग और नाभिको हाथसे रगडे, निरन्तर पीडाके मारे रोवे, मूत्र आनेके समय शब्दके साथ मलको त्याग करे, वारंवार मूत्र टपक टपकके गिरे, उस पथरीका रंग धूसर या लाल हो और उसके ऊपर कांटे हों ॥ ५ ॥

पित्तजपथरीके लक्षण ।

पित्तेन दह्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् । भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीता सिताश्मरी ॥ ६ ॥

भाषा-पित्ताधिक अश्मरीरोगमें बस्तिमें दाह, पकनेकी समान पीडा और उष्णतायुक्त जान पडती है और उस पथरीका स्वरूप भिलावेके मींगीकी समान, रंग लाल पीला और काला होता है ॥ ६ ॥

कफकी पथरीके लक्षण ।

बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः । अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णा खरा सिता ॥ एता भवन्ति बालानामेषामेव च भूयसा । आश्रयोपचयाल्पत्वाद् ग्रहणाहरणे सुखाः ॥ ७ ॥

भाषा-कफाधिक अश्मरीरोगमें बस्तिमें सुई चुभानेकेसी पीडा तथा बस्ति, शीतल और भारी मालूम होती है । वह पथरी बडी, सफेद अथवा किंचित् पिं-

गल वर्णयुक्त, मसृण तथा कर्कश होती है । ऊपरोक्त त्रिदोषज पथरीरोग प्रायः बालकोंकेही होता है । कारण यह है कि बालकोंकी बस्तिमें थोडा मांस और पुष्टी कम होती है अतएव वैद्योंको उसका चीरना, काटना, फाडना, निकालना सुखसाध्य है ॥ ७ ॥

शुक्राश्मरीके लक्षण ।

शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् । स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः ॥ शोषयत्युपसंहृत्य शुक्रं तच्छुष्कमश्मरी । बस्तिरुक् कृच्छ्रमूत्रत्वं मुष्कश्वयथुकारिणी ॥ तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते । पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्य्येव च शर्करा ॥ ८ ॥

भाषा-शुक्राश्मरी केवल अधिक उमरवालेही मनुष्योंके होती है । बालकोंके नहीं होती है । यह शुक्रके रोकनेसे होती है । जैसे मैथुन करनेके समय मैथुनको वीर्य स्खलित होनेसे पूर्व रोक देवे, तब शुक्र अपने स्थानसे चलायमान हुआ भीतरही रुक जावे अर्थात् बाहर नहीं निकले, तब पवन उस शुक्रको उठाकर सुखा देती है उसको शुक्राश्मरी कहते हैं । इससे रोगीके दोनों अंडकोषोंमें सूजन, बस्तिमें पीडा और मूत्रमें कृच्छ्रता होती है । इस रोगके उत्पन्न होतेही शुक्र स्खलित होता है तथा अंगुलीसे बस्तिको दबानेसे अश्मरी नहीं माळूम होती है॥८॥

पथरीशर्कराके उपद्रव ।

अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे । निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विवर्धते ॥ मूत्रस्रोतःप्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवान् । दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमथारुचिम् ॥ पाण्डुत्वमुष्णवातं च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ ९ ॥

भाषा-शर्करा और सिकता इस प्रकार अश्मरी दो भेदोंसे विभक्त है जो अश्मरी वायुसे भिन्न भिन्न होकर खण्ड खण्ड अर्थात् शर्कराकी समान होती है उसको शर्कराअश्मरी कहते हैं । जो अश्मरी बालूके कणकी समान हो उसको सिकताश्मरी कहते हैं । शर्करा और सिकता इन दोनोंमें शर्कराकी अपेक्षा सिकता अश्मरीके रेणु सूक्ष्म होते हैं । शर्कराश्मरीरोगमें वायुकी अनुलोमगति होनेपर उसके रेणु मूत्रके साथ निकलते हैं । विरूप गति होनेपर बद्ध हो जाती है और सू-

स्रोतमें आ जाय तो दुर्बलता, ग्लानि, शरीरमें कृशता, पाण्डुता, कुक्षिशूल, हृद पीडा, पियास, अरुचि, वमन इत्यादि उपद्रवोंको उत्पन्न करे है ॥ ९ ॥

असाध्यलक्षण ।

प्रसूननाभिवृषणं बद्धमूलं रुजान्वितम् ।
अश्मरी क्षपयत्याशु शर्करा सिकतान्विता ॥ १० ॥

भाषा–जिसकी नाभि और अंड दोनों सूज जांय, मूत्र उतरे नहीं, अत्य पीडा हो ऐसे मनुष्यके शर्करा और सिकताश्मरी शीघ्र प्राणनाश करे है ॥ १०

इति अश्मरीरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथाश्मरीरोगचिकित्सा ।

क्वाथकल्कचूर्णादिप्रकारः ।

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणशिग्रुवरुणगोक्षुरैः । अभयारग्वधफलैः क्वाथं कुर्याद्विचक्षणः ॥ रामठक्षारलवणं चूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः । अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं दीपनं पाचनं परम् ॥ हन्यात् कोष्ठाश्रितं वातं कटचूरुगुदमेहगम् । वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम् ॥ यवक्षारगुडं दत्त्वा क्वाथयित्वा पिबेद्धिताम् । अश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ यवक्षारगुडोन्मिश्रं पिबेत् पुष्पफलोद्भवम् । रसं मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ क्वाथश्च शिग्रुमूलोत्थः कदुष्णोऽश्मरिनाशनः । वरुणत्वक्शिलाभेदशुण्ठीगोक्षुरकैः कृतः ॥ कषायः क्षारसंयुक्तः शर्कराश्च भिनत्त्यपि । श्वदंष्ट्रैरण्डपत्राणि समानि नागरं त्वचः ॥ एतत् क्वाथवरं प्रातः पिबेदश्मरिभेदनम् ॥ पाषाणरोगपीडां सौवर्चलयुक्ता सुरा जयति । तद्वन्मधुदुग्धयुता त्रिरात्रं तिलनालभूतिश्च ॥ त्वक्पत्रमूलपुष्पस्य वरुणात् सत्रिकण्टकात् । कषायेण पचेत्तैलं वस्तिनास्थापनेन च॥शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् । सगुडो वरुणक्वाथस्तत्कल्केनाथ वान्वितम्॥

शिग्रुक्वाथोऽथवात्युष्णो हन्त्याशु सरुगश्मरीम् । त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ॥ अजाक्षीरेण सप्ताहं पेयमश्मरिभेदनम् । प्रपिबेत्तालबमूल्या वा कल्कं व्युषितवारिणा ॥ तेनैवाथ गवाक्ष्या वा त्र्यहादश्मरिपातनम् ॥ ११ ॥

भाषा–सोंठ, अरणी, पाषाणभेद, सहजना, वरुणा, गोखरू, हरड और अमलतास ये सब समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर हींग, जवाखार और सैंधानोनका चूर्ण डालकर पान करनेसे अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है तथा यह दीपन और पाचन है । तथा कोष्ठ आश्रितवात, कटीगत वात, ऊरुगत वात और गुदादिगत वायु दूर होती है । वरनेकी छाल, सोंठ और गोखरू इनके क्वाथमें जवाखार और गुड मिलाकर पान करनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी वातज अश्मरी दूर हो जाती है। पेठेके रसमें जवाखार और गुड मिलाकर पान करनेसे मूत्रविबन्ध, शर्करा और अश्मरीरोग दूर होता है । सहजनेकी जडका मंदोष्ण क्वाथ पान करनेसे अश्मरीरोग दूर होता है । वरनाकी छाल, पाषाणभेद, सोंठ, गोखरू इनका क्वाथ बनाकर जवाखार मिलाकर पान करनेसे शर्करारोग दूर होता है । गोखरू, अंडके पत्ते, सोंठ और दालचीनी ये सब समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर प्रातःकाल पान करनेसे अश्मरीरोग दूर होता है। काले नोनके साथ मदिराका पान करनेसे पथरीरोग दूर होता है तथा तिलोंके नालकी भस्मको सहत और दूधके साथ तीन दिनतक पान करनेसे अश्मरीरोग दूर होता है । वरनाकी छाल, पत्ते, जड और फूलोंका और गोखरुओंका क्वाथ बनाकर तिसके द्वारा तैलको पकाकर बस्तिस्थानपर मर्दन करनेसे शर्करा, अश्मरी, शूल और मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है। वरनाकी छालके क्वाथमें या कल्कमें पुराना गुड अथवा सहजनेका क्वाथ मिलाकर पान करनेसे अश्मरी और अश्मरीके उपद्रव दूर हो जाते हैं । गोखरुओंके बीजोंका चूर्ण सहत मिलाकर बकरीके दूधके साथ सात दिनतक सेवन करनेसे अश्मरीरोग दूर होता है । मुसली अथवा गवाक्षीको पीसकर बासी जलके साथ पान करनेसे तीन दिनमें अश्मरीरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

कुलत्थाद्यं घृतम् ।

कुलत्थसिन्धूत्थविडङ्गसारं सशर्करं शीतलियावशूकम् ।
बीजानि कूष्मांडकगोक्षुराभ्यां घृतं पचेत्तद्वरुणस्य तोयैः ॥
दुःसाध्यसर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रं मूत्राभिघातं च समूत्रबन्धम् ।
एतानि सर्वाणि निहन्ति शीघ्रं प्ररूढवृक्षानिव वज्रपातः ॥ १२ ॥

भाषा-कुलथी, सैंधानोन, वायविडंग, चीनी, हरसिंगार, जवाखार पेठेके बीज और गोखरुओंके बीज इनके कल्कके द्वारा और वरणाकी छालके काथके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करनेसे दुःसाध्य, सर्व प्रकारकी अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, मूत्ररोध इन सब रोगोंको यह घृत बहुत शीघ्र दूर कर देता है । जैसे इन्द्रका वज्र वृक्षोंके समूह नष्ट कर देता है ॥ १२ ॥

वरुणघृतम् ।

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत् । पादशेषं परिस्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ वरुणं कदली निम्बं तृणजं पञ्चमूलकम् । अमृता चाश्मजं देयं बीजं च त्रपुषोद्भवम् ॥ शतपर्वतिलक्षारं पलाशक्षारमेव च । यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत् ॥ अस्य मात्रां पिबेज्जन्तुर्देशकालाद्यपेक्षया । जीर्णे तस्मिन् पिबेत् पूर्वं गुडं जीर्णं तु मस्तुना ॥ अश्मरीं शर्करां चैव मूत्रकृच्छ्रं विनाशयेत् ॥ १३ ॥

भाषा-साडे बारह सेर वरनाकी छालको कूटकर बत्तीस सेर जलमें औटावे जब आठ सेर जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे, पश्चात् इसमें दो सेर गायका घी, वरनाकी छाल, केला, तृणपंचमूल, वेल, गिलोय, शिलाजीत, हरड, खीरेके बीज, दूब, तिलोंका खार, ढाकका खार और जुहीकी जड प्रत्येक दो दो तोले डालकर पकावे। देश, काल और अग्निका बलाबल विचार कर इसका सेवन करे। इसके जीर्ण होनेपर पुराना गुड दहीके तोडके साथ सेवन करे। यह वरुणादि घृत पथरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्ररोगको दूर करे है ॥ १३ ॥

पाषाणभिन्नरसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं शिलाजतुरसः पलम् । श्वेतपुनर्नवावासारसैः श्वेतापराजितैः ॥ प्रतिदिनं त्र्यहं मर्द्यं शुष्कं तद्भाण्डसंपुटे । स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रे संशुष्कं तं विचूर्णयेत् ॥ रसः पाषाणभिन्नः स्यात् द्विगुञ्जश्चाश्मरीं हरेत् । भूधात्रीफलविशालां पिष्ट्वा दुग्धेन पाययेत् ॥ कुलत्थक्वाथसंपीतमनुपानं सुखावहम् १४

भाषा-शुद्ध पारा १ पल, शुद्ध गंधक २ पल और शिलाजीत १ पल इन सबोंको एकत्र श्वेतपुनर्नवा, अडूसा और सफेद अपराजिताके रसमें एक एक दिन

खरल करे फिर सुखाकर घीके बासनमें स्थापन करके दोलायंत्रके द्वारा स्वेद देवे जब सूख जाय तब चूर्ण कर ले तो पाषाणभिन्न नामवाला रस तैयार हो । इस को प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण भुईआमला और इन्द्रायनके फलको दूधमें पीसकर अथवा साथ सेवन करे तो अश्मरी आदिक सर्व रोग नष्ट करता है ॥ १४ ॥

पाषाणवज्रो रसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं रसैः श्वेतपुनर्नवैः । मर्दयित्वा दिनं खल्वे रुध्वा तद् भूधरे पचेत् ॥ दिनान्ते तत् समुद्धृत्य मर्द्दयेद् गुडसंयुतम् । अश्मरीं बस्तिशूलं च हन्ति पाषाणवज्रकः ॥ गोरक्षकर्कटीमूलक्वाथं कौलत्थकं तथा । अनुपानं प्रयोक्तव्यं बुध्वा दोषबलाबलम् ॥ १५ ॥

भाषा-शुद्ध पारा १ भाग और शुद्ध गंधक दो भाग दोनोंको एकत्र सफेद पुनर्नवेके रसमें एक दिन खरल करके सम्पुटमें रखकर भूधरयंत्रमें पकावे, फिर संध्यासमय इसको निकालकर गुडके साथ खरल करे तो पाषाणवज्रक रस तैयार हो इसको गोरखककडीकी जडके और कुलथीके क्वाथके साथ दोषोंका बलाबल विचारकर सेवन करनेसे अश्मरी और बस्तिशूल दूर होता है ॥ १५ ॥

त्रिविक्रमो रसः ।

मृतताम्रमजाक्षीरैः पाच्यं तुल्यं गते द्रवे । तत्ताम्रं शुद्धसूतं च गन्धकं च समं समम् ॥ निर्गुण्डीस्वरसैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलकीकृतम् । यामैकं वालुकायन्त्रे पक्त्वा योज्यं द्विगुञ्जकम् ॥ बीजपूरस्य मूलं च सजलं चानुपाययेत् । रसस्त्रिविक्रमो नाम शर्करां चाश्मरीं जयेत् ॥ १६ ॥

भाषा-तांबेकी भस्मको बकरीके दूधमें पकावे, यह तांबेकी भस्म शुद्ध पारा और गंधक समान भाग लेकर एक दिन निर्गुण्डीके रसमें खरल कर गोला बनाकर एक प्रहर वालुकायंत्रमें पकावे । स्वांगशीतल होनेपर चूर्ण कर ले इसको दो रत्ती प्रमाण सेवन करे । ऊपरसे बिजोरेकी जडको जलमें पीसकर पीवे । यह त्रिविक्रम रस शर्करा और अश्मरी रोगको दूर करे है ॥ १६ ॥

लोहप्रयोगः ।

अयोरजं श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजितम् । अश्मरीं विनिहन्त्याशु मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ॥ इन्द्रवारुणिकामूलं मरिचं

क्षीरपाचितम् । पर्पटीरससंयुक्तं सप्ताहादश्मरीं जयेत् ॥ गन्धकं जीरकं क्षुद्राफलं टङ्कद्वयं सदा । अश्मरीं शर्करां मूत्रकृच्छ्रं क्षपयति ध्रुवम् ॥ १७ ॥

भाषा–लोहेको बारीक पीसकर सहतके साथ चाटनेसे पथरीरोग और अत्यन्त दारुण मूत्रकृच्छ्र रोग दूर होता है । इन्द्रायनकी जड और मिरचोंको दूधमें औटाकर रसपर्पटीके साथ अथवा पर्पटीसुगंधित द्रव्यके रसके साथ सेवन करनेसे सात दिनमें पथरीरोग दूर होता है । गंधक, जीरा और कटेरीके फल तीनोंको एकत्र पीसकर प्रतिदिन दो टंकप्रमाण सेवन करनेसे पथरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ १७ ॥

इति अश्मरीरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ प्रमेहरोगनिदानम् ।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्योदकानूपरसाः पयांसि । नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥

भाषा–बैठनेका सुख, निद्राका सुख अथवा स्वप्नका सुख, दहीका भक्षण ग्राम्य अर्थात् भेड बकरी आदि, औदक अर्थात् मछली आदि और अनूप अर्थात् हंस, सारस आदि जीवोंके मांसरसका सेवन, दूध, नवीन अन्न और नवीन जलका सेवन और गुडके बने हुए पदार्थ अथवा गुडके विकार ये सब तथा अन्यान्य कफकारक सकल पदार्थ प्रमेहके कारण हैं ॥ १ ॥

अब कफ, पित्त और वातोद्भव प्रमेहोंकी क्रमसे सम्प्राप्ति कहते हैं ।

भेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतः प्रदूष्य । करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून्संदूष्य मेहान्कुरुतेऽनिलश्च । साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षट् याप्या न साध्याः पवनाश्चतुष्काः ॥ समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते २

भाषा–बस्तिगत कफ, मेद, मांस और क्लेदको दूषित करके कफप्रमेहोंको उत्पन्न करे है, उसी प्रकार अधिक गरम पदार्थोंको सेवन करनेसे बढा हुआ पित्त, मेद, मांस



सादिकोंको दूषित करके पित्तप्रमेहोंको उत्पन्न करता है । एवं वायु कफपित्तकी क्षीणतासे वसा मज्जादि धातुओंको खींचकर वस्तिके मुखपर लाकर वातज प्रमेहोंको उत्पन्न करे है, इसमें कफोत्पन्न दश प्रमेह साध्य हैं। कारण यह है कि इनकी औषधक्रिया समान है । छः प्रकारके पित्तप्रमेह याप्य हैं । कारण यह है कि इनमें औषधिक्रिया विषम है और चार प्रकारके जो वातप्रमेह सो असाध्य हैं । कारण यह है कि वायु मज्जादि गम्भीर धातुओंको अपकर्षण करनेसे अत्यन्त पीडा करे है तथा इनकी विषम क्रिया है ॥ २ ॥

अब प्रमेहके दोषदूष्यगण कहते हैं ।

कफः सपित्तं पवनश्च दोषा मेदोस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः ।
मज्जारसौजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिणीं विंशतिरेव मेहाः ॥ ३ ॥

भाषा-कफ, पित्त और वायु ये दोष तथा मेद, रक्त, शुक्र, जल, स्नेह, लसीका, मज्जा रस, ओज और मांस ये दूष्य हैं। इन दोष और दूष्य दोनोंसे बीस प्रकारके प्रमेह उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

पूर्वरूप ।

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः ।
दाहश्चिक्कणता देहतृट्श्वासश्चोपजायते ॥ ४ ॥

भाषा-दांत आदिमें मैल इकट्ठा होना, हाथ पावोंमें दाह, शरीरमें चिकनापन, तृषा और श्वासादिक ये प्रमेहके पूर्वरूप हैं ॥ ४ ॥

सामान्यलक्षण ।

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता ॥ ५ ॥

भाषा-अधिक और गाढा मूते यह प्रमेहका सामान्य लक्षण है ॥ ५ ॥

प्रमेहके कारण ।

दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ।
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥ ६ ॥

भाषा-प्रमेहोंके दोष और दूष्य अविशेष अर्थात् समान हैं तथापि मूत्रके वर्णादिकभेदोंकरके भेद जानना ॥ ६ ॥

कफके दश प्रमेहोंके लक्षण ।

अच्छं बहुसितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् । मेहत्युदकमेहेन किंचिदाविलपिच्छिलम् ॥ इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमे-

हतः । सांद्रीभवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ॥ सुरामेही सुरातु-
ल्यमुपर्यच्छमधो घनम्॥संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम्॥
शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति । मूत्राणून्सिकतामेही
सिकतारूपिणो मलान् ॥ शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीत-
लम् । शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥ लालातंतु-
युतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ ७ ॥

भाषा-स्वच्छ, बहुत सफेद, शीतल, गंधरहित, जलकी समान, किंचित् गाढा और पिच्छिल मूते उसको उदकमेह कहते हैं । ईखके रसकी समान रंगवाला और स्वादमें मीठा मूत्र उतरे उसको इक्षुमेह कहते हैं । मूत्रको पात्रमें करके रातमें रख देवे जो वह प्रमेह दूसरे दिन गाढा हो जावे तो सान्द्रमेह जानना । जिसका मूत्र सुराकी समान ऊपर तो स्वच्छ और नीचे गाढा होय तो उसको सुरामेह जानना । जिसे चावलोंके पानीकी समान सफेद और बहुत मूते तथा मूतनेके समय रोमांच हो आवें उसको पिष्टमेह जानना । शुक्रकी समान अथवा शुक्रमिला मूते उसको शुक्रमेह कहते हैं । जिस प्रमेहमें छोटे छोटे बालू रेतकी समान कण मूते उसको सिकतामेह कहते हैं । वारंवार मधुर और अत्यन्त शीतल मूत्र उतरे उसको शीतमेह कहते हैं । धीरे धीरे थोडा थोडा मूते उसको शनैःमेह कहते हैं । लारकी समान तंतुयुक्त और पिच्छिल मूत्र उतरे उसको लालामेह कहते हैं ॥ ७ ॥

पित्तके ६ प्रमेहके लक्षण ।

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् । नीलमेहेन नीलाभं
कालमेही मषीनिभम् ॥ हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत्।
विस्रमांजिष्ठमेहेन मंजिष्ठासलिलोपमम् ॥ विस्रमुष्णं सलवणं
रक्ताभं रक्तमेहतः ॥ ८ ॥

भाषा-खारी जलकी समान गंधवर्ण रस और स्पर्श हो उसको क्षारमेह कहते हैं । नीलामेह उतरे उसको नीलमेह कहते हैं । स्याहीकी समान मूत्र उतरे उसको कालमेह कहते हैं । कटुरसान्वित, हलदीकी समान रंगवाला और दाहयुक्त मूते उसको हारिद्रमेह कहते हैं । दुर्गंधित और मजीठके क्वाथकी समान मूत्र उतरे उसको मांजिष्ठमेह कहते हैं । दुर्गंधयुक्त, गरम, नमकीन और रुधिरकी समान लाल मूत्र उतरे उसको रक्तमेह कहते हैं ॥ ८ ॥



वातके ४ प्रमेहोंके लक्षण।

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः । मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ॥ कषायमधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहं वदेद्बुधः । हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ॥ सालसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ ९ ॥

भाषा–चर्बीयुक्त और चर्बीकी समान वारंवार मूते उसको वसामेह कहते हैं । मज्जाकी समान अथवा मज्जामिश्रित मूत्र वारंवार उतरे उसको मज्जामेह कहते हैं। कषैला, मधुर, रूखा और सहतकी समान मूते उसको क्षौद्रमेह कहते हैं । मत्त हाथीकी समान वारंवार वेगरहित, तारसंयुक्त और रुक रुकके मूते उसको हस्तिमेह कहते हैं ॥ ९ ॥

कफप्रमेहके उपद्रव ।

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्ज्वरः कासः सपीनसः ।
उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ १० ॥

भाषा–अन्नका परिपाक न होना, अरुचि, वमन, निद्रा, खांसी और पीनस ये सब उपद्रव कफज प्रमेहरोगमें उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥

पित्तप्रमेहके उपद्रव ।

बस्तिमेहनयोः शूलं मुष्कावदरणं ज्वरः ।
दाहस्तृष्णाम्लिका मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥ ११ ॥

भाषा–बस्ति और लिंगमें पीडा होवे, अण्डकोष पककर फट जावे, ज्वर, दाह, तृषा, खट्टी डकार, मूर्छा और मलभेद ये उपद्रव पित्तज प्रमेहमें होते हैं ॥११॥

वातप्रमेहके उपद्रव ।

वातजानामुदावर्त्त कण्ठहृद्ग्रहलोलताः ।
शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥ १२ ॥

भाषा–उदावर्त्त, घर्म्म, हृदयमें पीडा, लोलता, शूल, निद्राका नाश, शोष, खांसी और श्वास ये उपद्रव वातज प्रमेहमें होते हैं ॥ १२ ॥

प्रमेहके असाध्य लक्षण ।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव च ।
पिडिकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ १३ ॥

भाषा-ऊपर कहे हुए अविपाकादि सर्व उपद्रव होवें और अत्यन्त शुक्रस्रावित तथा पिडिकाओंसे पीडित हो ऐसा प्रमेहरोगी निश्चय मरणको प्राप्त होता है ॥१३॥

दूसरे असाध्य लक्षण ।

जातः प्रमेही मधुमेहिना यो न साध्यरोगः सहि बीजदोषात् ॥१४॥

भाषा-मधुमेहवाले मनुष्यसे उत्पन्न हुआ जो प्रमेहवान् मनुष्य उसका प्रमेह बीजके दोषके कारण साध्य नहीं है ॥ १४ ॥

कुलपरंपरागत अन्य विकारोंको असाध्यत्व कहते हैं ।

ये चापि केचित्कुलजाधिकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान्१५

भाषा-जो जिसके कुलमें परंपरासे विकार चले आते हैं वेभी साध्य नहीं हैं॥१५॥

सर्वप्रमेहकी उपेक्षा करनेसे मधुमेह होता है ।

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ।
मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥ १६ ॥

भाषा-चिकित्सा न करनेसे सर्व प्रकारके प्रमेह कालकरके मधुमेहको प्राप्त होते हैं तब असाध्य हो जाते हैं ॥ १६ ॥

धातुक्षय और आवरण इनसे कुपित भये वायुसे मधुमेहका संभव होता है ।

मधुमेहे मधुसमं जायते स किल द्विधा।
क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथ वा ॥ १७ ॥

भाषा-मधुमेहमें मूत्र सहतके समान होता है यह मधुमेह दो प्रकारसे होता है । एक तो धातुकी क्षीणतासे वायु कुपित होता है उससे होता है दूसरा पित्तादि दोषोंसे वायु जो मूत्रमार्गमें रुक जाता है उससे होता है ॥ १७ ॥

आवरणके लक्षण ।

आवृतो दोषलिंगानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् ।
क्षीणः क्षणात्पुनः पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ १८ ॥

भाषा-जिस दोषसे वायु आच्छादित हो अकस्मात् उस दोषके लक्षण दीखें, क्षणमें क्षीण और क्षणभरमें पूर्ण हो जाय वह कष्टसाध्य है ॥ १८ ॥

मधुमेहशब्दकी प्रवृत्ति विषयनिमित्त ।

मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति ।
सर्वेऽपि मधुमेहाख्यां माधुर्याच्च तनोरतः ॥ १९ ॥

भाषा-प्रायः प्रमेहरोगी सहतकी समान मीठा मूते है और सब शरीरको मी-ठा कर दे, इसी कारण सर्व प्रमेह मधुमेह नामसे कहे जाते हैं ॥ १९ ॥

इति प्रमेहरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ प्रमेहरोगचिकित्सा ।

चूर्णकषायरसादीनां क्रिया ।

त्रिकटु त्रिफला चैव शिलाजतु हरीतकी । एकैकमेषां चूर्णन्तु मधुना च विमिश्रितम् ॥ पीतं सर्वप्रमेहन्तु क्षयं नयति शङ्कर । पीतं सारं गुडूच्याश्च मधुना च प्रमेहनुत् ॥ दूर्वाकशेरुपूतीककुम्भीकप्लक्षशैलजम् । जलेन क्वथितं पीतं शुक्रमेहहरं परम् ॥ त्रिफलारग्वधद्राक्षाकषायो मधुसंयुतः । पीतो निहन्ति फेनाख्यं प्रमेहं नियतं नृणाम् ॥ फलत्रिकं दारु निशा विशालं मेहार्दितो मुस्तनिशांशकल्कम् । पिबेत् कषायं मधुसंविमिश्रं सर्वप्रमेहेषु समुत्थितेषु ॥ शतावर्य्या रसं नीत्वा क्षीरेण सह यः पिबेत् । प्रमेहा विंशतिस्तस्य क्षयं यान्ति न संशयः ॥ २० ॥

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला, शिलाजीत और हरड प्रत्येक समान भाग अलग अलग चूर्ण कर पश्चात् सबोंको एकत्र मिलाकर सहतके साथ चाटनेसे सर्व प्रकारके प्रमेह दूर हो जाते हैं। गिलोय सत्व सहतके साथ चाटनेसे प्रमेह रोग दूर होता है। दूब, कशेरू, पूतिकरंज, केवटी मोथा, पाखर, भूरिछरीला इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे शुक्रमेह दूर होता है। त्रिफला, अमलतास और दाखके क्वाथमें सहत मिलाकर पान करनेसे फेनाख्य प्रमेह दूर होता है। त्रिफला, दारुहलदी, इन्द्रायन और नागरमोथेके क्वाथमें हलदीका चूर्ण और सहत डालकर पान करनेसे सर्व प्रकारके प्रमेह दूर हो जाते हैं। शतावरके रसको दूधके साथ पान करनेसे बीस प्रकारके प्रमेह नाश हो जाते हैं ॥ २० ॥

मेहवज्रो रसः ।

भस्म सूतं मृतं कान्तं लोहभस्म शिलाजतु । शुद्धताप्यं शिला व्योषं त्रिफला बिल्वजीरकम् ॥ कपित्थं रजनीचूर्णं भृङ्गराजेन

भावयेत् । विंशद्वारं विशोष्याथ मधुयुक्तं लिहेत्सदा ॥ निष्कमात्रं हरेन्मेहान् मेहवज्रो रसोत्तमः ॥ २१ ॥

भाषा-पारेकी भस्म, कान्तिसार, लोहेकी भस्म, शिलाजीत, शुद्ध सोनामक्खी, मैनशिल, त्रिफला, त्रिकुटा, बेल, जीरा, कैथ और हलदी ये सब समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके भांगरेके रसमें बीसवार भावना देवे, फिर सुखाकर सहत मिलाकर प्रतिदिन दो मासे चाटे तो सर्व प्रकारके प्रमेह दूर हों इसको मेहवज्ररस कहते हैं ॥ २१ ॥

वङ्गेश्वरः ।

रसस्य भस्मना तुल्यं वङ्गभस्म प्रकल्पयेत् ।
अस्य माषद्वयं हन्ति प्रमेहान् क्षौद्रसंयुतम् ॥ २२ ॥

भाषा-पारेकी भस्म और वंगकी भस्म समान भाग लेकर प्रतिदिन दो मासे सहतमें मिलाकर खाय तो प्रमेह रोग दूर हो ॥ २२ ॥

धान्वन्तरं घृतम् ।

दशमूलं करंजौ द्वौ देवदारु हरीतकी । वर्षाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ॥ सुधा नीपकदम्बाश्च विल्वं भल्लातकानि च । शठी पुष्करमूलं च पिप्पलीमूलमेव च ॥ पृथग्दशपलानेतान् भागांस्तोयार्म्मणे पचेत् । यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं प्रदापयेत् ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । निचुलं त्रिफला भार्ङ्गी रोहिषीं गजपिप्पलीम् ॥ शृंगबेरं विडङ्गानि वचा काम्पिल्यकं तथा । गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेच्च यथाबलम् ॥ एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् । कुष्ठगुल्मप्रमेहांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ॥ प्लीहोदरं तथार्शांसि विद्रधिं पित्तकं तथा । अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ पृथक् तोयार्म्मणे तत्र पचेद्द्रव्याच्छतं शतम् । शतत्रयाधिके तोयधुत्सर्गक्रमतो मतम् ॥ २३ ॥

भाषा-दशमूल, दोनों प्रकारकी करंज, देवदारु, हरड, लाल पुनर्नवा, वरना, दंती, चीता, सफेद पुनर्नवा, थूहर, कदम, बडी कदम, बेल, भिलावा, कचूर, पोहकरमूल, पीपलामूल ये प्रत्येक औषधि दश दश पल, जौ सोलह पल, बेर सोलह पल, एवं

कुलथी सोलह पल सबोंको २१० सेर जलमें पकावे जब ५२ सेर ४ पल जल शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवे। फिर इसमें ४ सेर गायका घी, हिज्जल, त्रिफला, भारंगी, सुगंधितृण, गजपीपल, अदरख, वायविडंग, वच, कबीला ये सब औषधि ४ सेर लेकर पीसकर मिला देवे। सबोंको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। अग्निका बलाबल विचारकर इसका सेवन करे। यह धान्वन्तरघृत अत्यन्त उत्तम है। यह घृत कुष्ठ, गुल्म, प्रमेह, सूजन, वातरक्त, प्लीहा, उदररोग, बवासीर, पित्तजनित रोग, अपस्मार और उन्माद रोगको दूर करे है ॥ २३ ॥

बृंहणशोधनप्रकारः ।

स्थूलप्रमेही बलवानिहैकः कृशस्तथान्यः परिदुर्बलश्च । सबृंहणं तत्र कृशस्य कार्य्यं संशोधनं दोषबलाधिकस्य ॥ २४ ॥

भाषा-प्रमेहरोगी कोई स्थूल और बलवान् होते हैं और कोई कृश तथा दुर्बल होते हैं तहां कृश अर्थात् कमजोर मनुष्योंको बृंहणविधि और बलवान् मनुष्योंको विरेचन अर्थात् जुल्लाब देकर शुद्ध करना चाहिये ॥ २४ ॥

पथ्य और अन्नादिकभक्षणविचार ।

ये विष्किरा ये प्रतुदा विहङ्गास्तेषां रसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः । मन्दाः कषाया रसचूर्णलेहा मसूरमुद्गा लघवश्च भक्ष्याः ॥ श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी । कुलत्थाश्च हिता भोज्ये पुराणा मेहिनां सदा ॥ जाङ्गलं तिक्तशाकं च यवान्नं च श्रमो मधु ॥ २५ ॥

भाषा-प्रमेहरोगमें हंस, मोर, मुरगा, कबूतर आदि पक्षी तथा बकरा आदि पशुओंके मांसका यूष पथ्य है तथा अल्पकषाय, रस, चूर्ण, अवलेह, मसूर और मूग आदि हलके अन्नका आहार, प्रमेहरोगमें हितकारी है। पुराने समा, कोदों, वनकोदों, गेहूं, चने, अरहर, कुलथी, जांगल जीवोंका मांस, तिक्तशाक, यवान्न, परिश्रम और मधु ये सब प्रमेहरोगमें हितकारी हैं ॥ २५ ॥

शिलाजतुप्रयोगः ।

सालसारादितोयेन भावितं यच्छिलाजतु । पिबेत्तेनैव संशुद्धदेहः पिष्टं यथाबलम् ॥ जाङ्गलानां रसैः सार्द्धं तस्मिन् जीर्णे च भोजनम् । कुर्यादेवं तुलां यावदुपयुञ्जीत मानवः ॥ मधुमेहं

विहायासौ शर्करामश्मरीं तथा । वपुर्वर्णबलोपेतः शतं जीवत्यनामयः ॥ २६ ॥

भाषा-सालसारादि गणके काथमें शिलाजीतको भावना देकर फिर उसमें खरल करके सेवन करनेसे मधुमेह, शर्करा और अश्मरीरोग दूर होता है तथा शरीरका रंग सुन्दर होता है और वह मनुष्य १०० वर्षतक जीता है इसके जीर्ण होनेपर जांगल जीवोंके मांसके यूषके साथ भोजन करे ॥ २६ ॥

मेहकुलान्तको रसः ।

मृतं वङ्गं मृतं चाभ्रं शुद्धपारदगंधकम् । भूनिम्बं पिप्पलीमूलं त्रिकटु त्रिफला त्रिवृत् ॥ रसाञ्जनं विडङ्गाब्दबिल्वगोक्षुरदाडिमम् । प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यं शुद्धमश्मजतोः पलम् ॥ गोपालकर्कटीमूलस्वरसैर्वटिकां कुरु । प्रमेहान् विंशतिं हन्ति मूत्रकृच्छ्रं हलीमकम् ॥ अश्मरीं कामलां पाण्डुं मूत्राघातमरोचकम् । अनुपानं प्रयोक्तव्यं छागीदुग्धं पयोऽथ वा ॥ धात्रीफलस्य निर्यासं क्वाथं कौलत्थजं पिबेत् ॥ २७ ॥

भाषा-वंगकी भस्म, अभ्रककी भस्म, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, चिरायता, पीपलामूल, त्रिकुटा, त्रिफला, निसोत, रसोत, वायविडंग, नागरमोथा, बेल, गोखरू और अनार प्रत्येक एक एक तोला, शुद्ध शिलाजीत ४ तोले, सबोंको एकत्र पीसकर गोपालककडीकी जडके रसमें खरल करके गोलियां बना लेवे । यह गोली बीस प्रकारके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, हलीमक, अश्मरी, कामला, पाण्डु, मूत्राघात और अरुचिको दूर करे है । अनुपान बकरीका दूध, जल, आमलोंका स्वरस अथवा कुलथीका काथ है ॥ २७ ॥

तारकेश्वररसः ।

मृतं सूतं मृतं लोहं मृतं वङ्गाभ्रकं समम् । मर्दयेन्मधुना चाह्नो रसोऽयं तारकेश्वरः ॥ माषमात्रं लिहेत् क्षौद्रैर्बहुमूत्रापनुत्तये । उदुम्बरं पक्वफलं चूर्णितं मधुना लिहेत् ॥ २८ ॥

भाषा-पारेकी भस्म, लोहेकी भस्म, वंगकी भस्म और अभ्रककी भस्म ये सब समान भाग लेकर एक दिन सहतमें खरल करे, तब तारकेश्वररस तैयार हो । प्रतिदिन एक मासा यह रस सहतमें मिलाकर चाटे इससे बहुमूत्ररोग दूर होता है । अनुपान पके हुए गूलरके फलोंको पीसकर सहतमें मिलाकर खाय ॥ २८ ॥

सोमेश्वरो रसः।

शालार्जुनकलोध्रं च कदम्बागरुचन्दनम्। अग्निमन्थनिशाद्वन्द्व-धात्रीदाडिमगोक्षुरम्॥ जम्बुवीरणमूलं च भागमेषां पलार्द्ध-कम्। रसगन्धकधान्याब्दमेलापत्रं च पद्मकम्॥ लोहं रसांजनं पाठा विडंगं टङ्कजीरकम्। प्रत्येकं शाणकं ग्राह्यं पलार्द्धं गुग्गुलोरपि॥ घृतेन वटिकां कृत्वा खादेत् षोडशरक्तिकाम्। गहनानन्दनाथेन रसो यत्नेन निर्मितः॥ सोमेश्वरो महातेजा वातमेहान्निहन्त्यलम्। एकजं द्वन्द्वजं चोग्रं सन्निपातसमुद्भवम्॥ उपद्रवसमायुक्तं चिरकालसमुद्भवम्। मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं कामलां च हलीमकम्॥ भगन्दरोपदंशौ च विविधान् पीडिकाव्रणान्। विस्फोटार्बुदकण्डूश्च वातपित्ताम्लपित्तके॥ यकृत् प्लीहोदरं गुल्मशूलार्शःकासविद्रधीः। सोमरोगं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनम्॥ बलवर्णाग्निजननो ग्रहवैगुण्यनाशनः। छागीदुग्धानुपानेन नारिकेलोदकेन वा॥शीतेन पाकतैलेन यव-यूषादियोगतः।युक्त्या प्रयोज्यो भिषजा रसो दोषविदाह्ययम्॥२९॥

भाषा—सालकी छाल, अर्जुनकी छाल, लोध, कदंब, अगर, चन्दन, अरणी, हलदी, दारुहलदी, आमला, अनार, गोखरू, जामुन और खस प्रत्येक दो दो तोले; पारा, गंधक, धान्याभ्रक, इलायची, तेजपात, पद्माख, लोहा, रसौन, पाढ, वायविडंग, सुहागा और जीरा प्रत्येक चार चार मासे; गूगल २ तोले, सबोंको एकत्र पीसकर घृतके योगसे सोलह रत्तीकी गोलियां बना लेवे। गहनानन्दनाथने यह सोमेश्वर रस निर्म्माण किया है। प्रतिदिन एक गोली खाय, इससे वातप्रमेह, एकदोषज, दो दोषज, सन्निपात, अनेक उपद्रवयुक्त और बहुत दिनोंका पुराना प्रमेह दूर होता है। तथा मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, कामला, हलीमक, भगन्दर, उपदंश, नानाप्रकारकी पिडिका, विस्फोट, अर्बुद, कण्डू, वातपित्त, अम्लपित्त, यकृत्, प्लीहा, उदररोग, गुल्मरोग, शूल, बवासीर, खांसी, विद्रधी और बहुत दिनोंका सोमरोग दूर होता है। बल, वर्ण और अग्निको बढानेवाला, ग्रहबाधाको हरनेवाला है। अनुपान बकरीका दूध, नारियलका जल, शीतल सिद्ध तैल अथवा जौ आदिका यूष है॥ २९॥

बृहद्वङ्गेश्वरो रसः ।

वङ्गभस्म रसं गन्धं रूप्यं कर्पूरमभ्रकम् । कर्षं कर्षं मानमेषां सूताग्निहेम मौक्तिकम् ॥ केशराजरसैर्भाव्यं द्विगुंजाफलमानतः । प्रमेहान् विंशतिं हन्ति साध्यासाध्यं न संशयः ॥ मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थं च ज्वरं जयेत् । हलीमकं रक्तपित्तं वातपित्तकफोद्भवम् ॥ ग्रहणीनामदोषं च मन्दाग्नित्वमरोचकम् । एतान् सर्वान् निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३० ॥

भाषा–वंगकी भस्म, पारेकी भस्म, शुद्ध गंधक, चांदीकी भस्म, शुद्ध कपूर और अभ्रक प्रत्येक एक एक तोला, सोनेकी भस्म ३ रत्ती, मोतीकी भस्म ३ रत्ती सबको एकत्र पीसकर कुकुरभांगरेके रसमें खरल करे। प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण भक्षण करे। यह बृहद्वंगेश्वर रस बीस प्रकारके प्रमेह, साध्य असाध्य मूत्रकृच्छ्र, पाण्डुरोग, धातुगत ज्वर, हलीमक, रक्तपित्त, वात, पित्त, कफोत्पन्न संग्रहणी, मंदाग्नि, अरुचि इन सब रोगोंको इस प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार इन्द्रका वज्र वृक्षोंके समूहको नष्ट कर देता है ॥ ३० ॥

वसन्तकुसुमाकररसः ।

पृथग् द्वौ हाटकं चन्द्र त्रयो वङ्गाहिकान्तकाः । चत्वारो मृतमभ्रं च प्रवालं मौक्तिकं तथा ॥ भावना गव्यदुग्धैश्च भावनेक्षुरसेन च । वासालाक्षारसोदीच्यरम्भाकन्दप्रसूनकैः ॥ शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमेन च । पश्चान्मृगमदैर्भाव्यं सुसिद्धो रसराड् भवेत् ॥ कुसुमाकरविख्यातो वसन्तपदपूर्वकः । गुञ्जद्वयेन संसेव्यः सिताज्यमधुसंयुतः ॥ वलीपलितहृन्मेध्यः कामदः सुखदः सदा ॥ मेहघ्नः पुष्टिदः श्रेष्ठः पुत्रप्रसवकारणम् ॥ क्षयकासघ्न उन्मादश्वासरक्तविषापहः । सिताचन्दनसंयोगादम्लपित्तादिरोगजित् ३१

भाषा–सोनेकी भस्म २ भाग, चांदीकी भस्म २ भाग, वंगकी भस्म ३ भाग, सीसेकी भस्म ३ भाग, कान्तलोहकी भस्म ३ भाग, अभ्रककी भस्म ४ भाग, मूंगेकी भस्म ४ भाग और मोतीकी भस्म ४ भाग इन सबोंको एकत्र मर्दन कर गायका दूध, ईखका रस, अडूसा, लाख, सुगंधवाला, केलेकी जड और फूल, शेवती, मालतीके फूल और कस्तूरी इन सबोंके रसमें यथाक्रमसे भावना

देकर एक रत्तीकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन दो गोली मिश्री, घी और सहतके साथ सेवन करे। यह वसन्तकुसुमाकररस वलिपलितादिरोगोंको हरनेवाला, मेधाजनक, सदैव काम और आनन्दको देनेवाला, प्रमेहनाशक, पुष्टिकारक, उत्तम, पुत्रको उत्पन्न करनेवाला तथा क्षय, खांसी, उन्माद, श्वास, रुधिरविकार, विषदोष इन सबोंको दूर करे है। चीनी और सफेद चन्दनके अनुपानके साथ इसको सेवन करनेसे अम्लपित्तादिरोग दूर होते हैं ॥ ३१ ॥

मेहमिहिरतैलम् ।

पंचमूल्यमृताधात्रीदाड़िमानां तुलां पचेत् । जलद्रोणे स्थिते पादे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ क्षीरं तैलसमं कल्कान् निम्बभूनिम्बगोक्षुरम् । दाडिमं रेणुकं बिल्वं दारुदार्वीबलाहकान् ॥ त्रिफला तगरं द्राक्षा जम्ब्वाम्रवल्कलाभयात् । नाम्नेदं मेहमिहिरं सर्वमूत्रामयान् जयेत् ॥ हस्तपादशिरोदाहं दौर्बल्यं कृशतां तथा । क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्राः स्त्रीक्षीणाश्चापि ये नराः ॥ तेषां बलयकरं वृष्यं वयःस्थापनमेव च ॥ ३२ ॥

भाषा-पंचमूल, गिलोय, आमले और अनार ये सब १२॥ सेर लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब ८ सेर जल बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इसमें तिलका तेल २ सेर, गायका दूध २ सेर, कल्कके लिये नीम, चिरायता, गोखरू, अनार, रेणुका, बेल, देवदारु, दारुहलदी, नागरमोथा, त्रिफला, तगर, दाख, जामुन, आमकी वलकल और खस ये सब आधसेर। सबोंको मिलाकर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे। यह प्रमेहमिहिर तैल सर्व प्रकारके मूत्ररोगोंको दूर करे है तथा हाथ पांवकी दाह, दुर्बलता, कृशता, इन्द्रियोंकी क्षीणता, शुक्रकी हीनता इन सबोंको दूर करे हैं तथा जो मनुष्य स्त्रीप्रसंगसे क्षीण हो गये हैं उनके लिये यह तैल बलकारक, वीर्य्यवर्द्धक और अवस्थाको स्थापन करनेवाला है ॥ ३२ ॥

सोमनाथरसः ।

हिङ्गुलसम्भवं सूतं पालिधारसमर्दितम् । रण्डाशोधितगन्धं च तेनैव कज्जलीकृतम् ॥ तद्वयोर्द्विगुणं लोहं कन्यारसविमर्दितम् । अभ्रकं वङ्गकं रौप्यं खर्परं माक्षिकं तथा ॥ सुवर्णं च समं सर्वं प्रत्येकं च रसार्द्धकम् । तत्सर्वं कन्यकाद्रावैर्मर्दयेद्भावयेत्तथा ॥ भेकपर्णीरसेनैव गुञ्जाद्वयवटीं हिताम् । मधुना भक्षये-

चापि सोमरोगनिवृत्तये ॥ प्रमेहान् विंशतिं हन्ति बहुमूत्रं च सोमनम् । मूत्रातिसारमत्युग्रं मूत्राघातं सुदारुणम् ॥ मूत्रदोषं बहुविधं प्रमेहं मधुसंज्ञकम् । हस्तिमेहमिक्षुमेहं नानामेहान् विनाशयेत् ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सोमसंज्ञितम् । नाशयेद्बहुमूत्रं च प्रमेहमविकल्पतः ॥ सोमनाथरसश्चायं चरकेण विनिर्म्मितः। वृष्याद्वृष्यतमो ह्येष मूत्रदोषकुलान्तकृत् ॥३३॥

भाषा-फरहदके रसमें खरल किये हुए सिंगरफमेंसे निकाला हुआ पारा और मूसाकानीके रसमें शुद्ध किया हुआ गंधक प्रत्येक दो दो तोले लेकर दोनोंकी कजली बनावे, फिर इसमें ८ तोले शुद्ध लोहा डालकर घीगुवारके रसमें खरल करे। पश्चात् अभ्रककी भस्म, रांगकी भस्म, चांदीकी भस्म, शुद्ध खपरिया, शुद्ध सोनामक्खी और सोनेकी भस्म प्रत्येक एक एक तोला लेकर सबोंको एकत्र मिलाकर घीगुवारके रसमें और मण्डूकपर्णीके रसमें भावना देकर और खरल करके दो दो रत्तिकी गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली सहतके साथ खाय । यह सोमनाथरस सोमरोग, बीस प्रकारके प्रमेह, बहुमूत्ररोग, अत्यन्त उग्र मूत्रातीसार, दारुण मूत्राघात, नानाप्रकारके मूत्रदोष, मधुमेह, हस्तिमेह, इक्षुमेह, अनेक प्रकारके मेह, वातिकमेह, पैत्तिकमेह, श्लैष्मिकमेह, सोममेह, बहुमूत्र और सर्व प्रकारके प्रमेहोंको दूर करे है । यह सोमनाथरस श्रीमान् चरकाचार्यजीने निर्माण किया है । यह अत्यन्त वृष्य रस सर्व प्रकारके मूत्रदोषोंको नष्ट करे है ॥ ३३ ॥

वंगावलेहः ।

वंगभस्म द्विवल्लं च लेहयेन्मधुना सह । ततो गुडसमं गन्धं भक्षयेत् कर्षमात्रकम् ॥ गुडूचीसत्त्वमथवा शर्करासहितं तथा । सर्वमेहहरो ज्ञेयो वंगावलेह उत्तमः ॥ ३४ ॥

भाषा-दो रत्ती वंगकी भस्मको सहतमें मिलाकर चाटे, ऊपरसे एक तोला प्रमाण गुड और गंधक मिलाकर भक्षण करे, अथवा गिलोयके सत्वमें चीनी मिलाकर खाय । यह वंगावलेह सर्व प्रकारके प्रमेहरोगोंको दूर करे है ॥ ३४ ॥

चन्द्रप्रभा वटी ।

मृतसूताभ्रकं लोहं नागं वंगं समं समम् । एलाबीजं लवंगं च जातीकोषफलं तथा ॥ मधुकं मधुयष्टी च धात्री च समशर्करा । कर्पूरं खादिरं सारं शताह्वा कण्टकारिका ॥ अम्लवेतसकं

तुल्यं दिनैकं लांगलीद्रवैः। भावयेन्मेषदुग्धेन नागवल्या रसैर्दि-
नम् ॥ वटिका बदरास्थ्याभा कार्या चन्द्रप्रभापरा । भक्षयेद्व-
टिकामेकां सर्वमेहकुलान्तिकाम् ॥ धात्री पटोलपत्रं वा कषायं
वामृतायुतम् । सक्षौद्रं भक्षयेच्चानु सर्वमेहप्रशान्तये ॥ ३५ ॥

भाषा–पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, लोहेकी भस्म, सीसेकी भस्म, रांगेकी भस्म, इलायची, लौंग, जायफल, महुएका सार, मुलहठी, आमला, चीनी, कपूर, खैरसार, सोया, कटेरी और अमलवेत ये सब समान भाग लेकर सबोंको एकत्र पीसकर एक दिन कलिहारीके रसमें खरल करे फिर एक एक दिन मेढके दूधकी और पानोंके रसकी भावना देकर बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली खाय । यह चन्द्रप्रभावटी सर्व प्रकारके प्रमेहोंको दूर करे है । आमले और पटोलपत्रके क्काथमें गिलोय और सहत मिलाकर इसका अनुपान करे ॥ ३५ ॥

इक्षुमेहवंगेश्वरो रसः ।

रसभस्मसमायुक्तं वङ्गभस्म प्रकल्पयेत् ।
अस्य माषद्वयं हन्ति मेहान् क्षौद्रसमन्वितम् ॥ ३६ ॥

भाषा–पारेकी भस्म और वंगकी भस्म दोनों समान भाग लेकर दो तोले प्रमाण सहत मिलाकर चाटनेसे सर्व प्रकारके प्रमेह दूर हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

इति प्रमेहरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ सोमरोगनिदानम् ।

स्त्रीणामतिप्रसंगाद्वा शोकाद्वापि श्रमादपि । अतिसारकरोगाद्वा
गरदोषात्तथैव च ॥ आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति
च । तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि ॥ प्रसन्ना
निर्मलाः शीता निर्गन्धा नीरुजाः सिताः । स्रवन्ति चातिमा-
त्रं ताः सा न शक्नोति दुर्बला ॥ वेगं धारयितुं तासां न विन्दति
सुखं क्वचित् । शिरसः शिथिलत्वं च मुखतालुकशोषणम् ॥
मूर्च्छा जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः । भक्ष्यैर्भोज्यैश्च

पेयैश्च तृप्तिं न लभते सदा ॥ सोमरोग इति ज्ञेयो देहे सोमक्षयात् स्त्रियाः । शरीरधारणाच्चापि सोमद्रव्याभिशब्दितः ॥ तस्मात्सोमक्षयाद्देहो निश्चेष्टश्च भवेत्सदा ॥ १ ॥

भाषा-अत्यन्त मैथुन, शोक, परिश्रम, अतिसार और विषदोष इन सब कारणोंसे स्त्रियोंके सर्व शरीरगत जल क्षोभित होकर गिरे हैं तब वह जल अपने स्थानसे हटकर मूत्रके मार्गसे निकलते हैं । सोमरोगमें प्रसन्न, विमल, शीतल, निर्गंध, पीडारहित और श्वेतरंगका अधिक जल निकलता है । इससे स्त्रियोंके दुर्बलता, शक्तिहीनता, मस्तकमें शिथिलता, मुखशोष, तालुशोष, मूर्छा, जम्भाई, प्रलाप और शरीरमें रूक्षता उत्पन्न होती है । तथा इस रोगमें भक्ष्य, भोज्य और पेय पदार्थोंके सेवन करनेसे कदापि तृप्ति नहीं होती है । स्त्रियोंके शरीरमें सोमके नाश होनेसे सोमरोग होता है । शरीरके धारण करनेसे इन जलोंको सोम कहते हैं । इस सोमके क्षय होनेसे शरीर चेष्टारहित हो जाता है ॥ १ ॥

इति सोमरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ सोमरोगचिकित्सा ।

रंभाफलभक्षणविधिः ।

कदलीनां फलं पक्कं धात्रीफलरसं मधु । शर्करापयसा पीतमपां धारणमुत्तमम् ॥ कदलीनां फलं पक्कं विदारीं च शतावरीम् । क्षीरेण पाययेत् प्रातरपां धारणमुत्तमम् ॥ २ ॥

भाषा-केलेकी पकी फली, आमलोंका रस, सहत, बूरा और दूध इन सबोंको एकत्र मिलाकर पीनेसे स्त्रियोंकी सोमधातु निकली बंद हो जाती है । केलेकी पकी फली, विदारीकंद और शतावर इनको दूधमें मिलाकर पान करनेसे सोमधातु निकली बंद हो जाती है ॥ २ ॥

धात्रीरसभक्षणम् ।

धात्रीफलस्य रसकं मधुना च पिबेत् सदा । बहुमूत्रक्षयं कुर्यात् क्षीरेण वासकस्य च ॥ ३ ॥

भाषा-आमलोंके स्वरसको सहतमें मिलाकर पीनेसे अथवा अडूसेके रसमें दूध मिलाकर पान करनेसे बहुमूत्ररोग दूर होता है ॥ ३ ॥

धात्रीघृतम्।

धात्रीफलरसप्रस्थं विदारीस्वरसं तथा। क्षीरस्यापि शतावर्य्याः प्रस्थं प्रस्थं रसस्य च ॥ तृणपंचरसप्रस्थं दत्त्वा प्रस्थं घृतस्य च। पचेन्मृद्वग्निना वैद्यः पाकं ज्ञात्वा विधानतः॥ एला लवंग-त्रिफला कपित्थफलमेव चासजलं सरलं मांसी कदलीकन्दमेव च॥ उत्पलस्य च कन्दानि कल्कं दत्त्वा विचक्षणः। ततः कल्कं परिस्राव्य चूर्णं दद्यात् पलं पलम्॥ मधुकं त्रिवृता चैव क्षारकं वृद्धदारकम्। शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनश्च पलाष्टकम्॥ चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धभाण्डे निधापयेत्। सोमरोगं निह-न्त्याशु तृष्णां दाहमरोचकम्॥ मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं नाशयेद् बहुमूत्रकम्। पित्तजान् विविधान् व्याधीन् वातजांश्च सुदारु-णान्॥ करोति शुक्रोपचयं बलवर्णकरं परम्। नानारूपवि-कारघ्नं विशेषात् बहुमूत्रनुत्॥ ४॥

भाषा-आमलोंका स्वरस (स्वरस न मिले तो क्वाथ लेवे) २ सेर, विदारी-कंदका रस २ सेर, दूध २ सेर, शतावरका रस २ सेर, तृणपंचमूलका रस २ सेर और गायका घी २ सेर, कल्कके लिये इलायची, लौंग, हरड, बहेडा, आमला, कैथ, सुगंधवाला, सरल, बालछड, केलेका कन्द और उत्पलकी जड प्रत्येक तीन तीन तोले लेकर पीसकर डाल देवे। सबोंको यथाविधिसे मिलाकर घृतको सिद्ध करे और कल्ककी औषधियोंको छानकर डाले। जब तैय्यार हो जाय तब मुलहठी, निसोत, जवाखार, विधायरा और चीनी प्रत्येकका चूर्ण आठ आठ पल मिला देवे। शीतल होनेपर आठ पल सहत मिलाके सबको एकत्र करके घीके चिकने बास-नमें भरके रख देवे। यह धात्रीघृत सोमरोग, तृषा, अरुचि, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, बहुमूत्र, विविध प्रकारके पित्तरोग और अनेक प्रकारके दारुण वातरोगोंको दूर करे है। यह घृत शुक्रका संचय करे है, बल और वर्णको सुन्दर करे है। नानाप्रका-रके रोग और विशेषकरके बहुमूत्ररोगको हरे है॥ ४॥

कदल्यादि घृतम्।

कदलीकन्दनिर्यासे तत्प्रसूनतुलां पचेत्। चतुर्भागावशेषेऽस्मि-न् घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ चन्दनं सरलं मांसी कदली मूलकं तथा। एला लवंगत्रिफला कपित्थफलमेव च॥ उदकानि च

कन्दानि न्यग्रोधादिगणस्तथा । कल्केनानेन संसिद्धं सोमरोग-निवारणम् ॥ मूत्ररोगानशेषांश्च प्रभूतान् शुक्रपिच्छिलाम् । प्रमेहान् विंशतिं चैव मूत्राघातांस्त्रयोदश ॥ बहुमूत्रं विशेषेण मूत्रकृच्छ्रं तथाऽश्मरीम् । पीतं घृतं निहन्त्याशु विष्णुचक्रमिवासुरान् ॥ कदल्यादिघृतं नाम विष्णुना परिनिर्म्मितम् ॥ ५ ॥

भाषा–१२॥ सेर केलेके फूलोंको ६४ सेर केलेके रसमें पकावे जब चौथाई भाग शेष रह जाय तब उसमें २ सेर गायका घी, चन्दन, धूप.सरल, बालछड, केलेकी जड, इलायची, लौंग, हरड, बहेडा, आमला, कैथ, जलमें उत्पन्न होनेवाले कन्द (जैसे कमलकंद, कसेरू, चांस, सालग, कुमुदिनी जड इत्यादि) और न्यग्रोधादिगणकी समस्त औषधि प्रत्येक दो दो तोले पीसकर डाल देवे यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । सोमरोग, सर्व प्रकारके मूत्ररोग, शुक्रकी पिच्छिलता, बीस प्रकारके प्रमेह, तेरह प्रकारके मूत्राघात, विशेषकरके बहुमूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोग इस कदल्यादिघृतका पान करनेसे तत्काल नष्ट हो जाते हैं । जिस प्रकार विष्णुनारायणका चक्र असुरोंके समूहको नष्ट कर देता है । यह कदलीघृत श्रीमान् भिषग्राज विष्णुनारायणने कहा है ॥ ५ ॥

तालकेश्वरो रसः ।

तालं सूतं समं गन्धं मृतलोहाभ्रवङ्गकम् । मर्दयेन्मधुना चैव रसोयं तालकेश्वरः ॥ माषमात्रं भजेत् क्षौद्रैर्बहुमूत्रप्रशान्तये । उदुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमानतः ॥ संलेह्यं मधुना सार्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥ ६ ॥

भाषा–शुद्ध हरिताल, पारेकी भस्म, शुद्ध गंधक, लोहेकी भस्म, अभ्रककी भस्म और वंगकी भस्म इन सबोंको समान भाग लेकर सहतमें खरल करे तो तालकेश्वर रस तैयार हो । प्रतिदिन इसको एक मासाभर सहतमें मिलाकर भक्षण करे । इससे बहुमूत्ररोग दूर होता है । ऊपर पके हुए गूलरके फलोंको पीसकर सहतमें मिलाकर २ तोले प्रमाण खाय यह अनुपान है ॥ ६ ॥

गगणादिलोहः ।

गगणं त्रिफला लोहं कुटजं कटुकत्रयम् । पारदं गन्धकं चैव विषटंकणसर्जिकाः ॥ त्वगेला तेजपत्रं च वङ्गं जीरकयुग्मकम् । एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ तदर्द्धं चित्रकं

चूर्णं कर्षैकं मधुना लिहेत् । अवश्यं विनिहन्त्याशु मूत्रातीसार-सोमकम् ॥ ७ ॥

भाषा-अभ्रककी भस्म, हरड, बहेडा, आमला, लोहेकी भस्म, इंद्रजौ, सोंठ, मिरच, पीपल, पारेकी भस्म, शुद्ध गंधक, शुद्ध मीठा, सुहागा, सज्जी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, वंगकी भस्म, जीरा और काला जीरा ये सब समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण कर ले और सब चूर्णसे आधा चीतेका चूर्ण मिलावे । इसको एक कर्ष प्रमाण सहतमें मिलाकर खाय । यह गगणादिलोह अवश्य मूत्रातीसार और सोमरोगको दूर करे है ॥ ७ ॥

सोमेश्वरो रसः ।

शालार्ज्जुनं लोध्रकं च कदम्बागुरुचन्दनम् । अग्निमन्थं निशायुग्मं धात्री दाडिमगोक्षुरम् ॥ जम्बुवीरणमूलं च भागमेषां पलार्द्धकम् । रसगन्धकधान्याब्दमेलापत्रं तथाभ्रकम् ॥ लोहं रसांजनं पाठा विडंगं टंकजीरकम् । प्रत्येकं पलिकं भागं पलार्द्धं गुग्गुलोरपि ॥ घृतेन वटिकां कृत्वा खादेत् षोडशरक्तिकाम् । गहनानन्दनाथेन रसो यत्नेन निर्म्मितः ॥ सोमेश्वरो महातेजा सोमरोगं निहन्त्यलम् । एकजं द्वन्द्वजं चैव सन्निपातसमुद्भवम् ॥ मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं कामलां च हलीमकम् । भगन्दरोपदंशौ च विविधान् पीडिकाव्रणान् ॥ विस्फोटार्बुदकण्डूं च सर्वमेहं विनाशयेत् ॥ ८ ॥

भाषा-शाल, अर्ज्जुन, लोध, कदम, अगर, चन्दन, अरणी, हलदी, दारुहलदी, आमला, अनार, गोखरू, जामुन और खस प्रत्येक दो दो तोले; पारा, गंधक, धनिया, सुगंधवाला, इलायची, तेजपात, अभ्रक, लोहा, रसोत, पाढ, वायविडंग, सुहागा और जीरा प्रत्येक चार चार तोले; गूगल ४ तोले सबोंको एकत्र पीसकर घीके योगसे सोलह सोलह रत्तीकी गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली खाय । यह सोमेश्वररस श्रीमान् गहनानन्दनाथने निर्म्माण किया है । यह सोमेश्वररस सोमरोग, एकदोषज, दो दोषज, सान्निपातिक, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, कामला, हलीमक, भगन्दर, उपदंश, विविध प्रकारकी पीडिका, व्रण, विस्फोट, अर्बुद, कण्डू और सर्व प्रकारके प्रमेहोंको दूर करे है ॥ ८ ॥

इति सोमरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ मेदोरोगनिदानम् ।

कारण और संप्राप्ति ।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः । मधुरोन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदो विवर्धते ॥ मेदसावृतमार्गत्वात्पुष्यंत्यन्येन धातवः । मेदस्तु चीयते यस्मादशक्तः सर्वकर्मसु ॥ १ ॥

भाषा-कसरत आदि परिश्रम करनेसे, दिनमें सोनेसे, कफकारक आहारका भक्षण करनेसे, मधुर अन्न और रसको सेवन करनेसे मेद बढता है । मेदके बढनेसे समस्त धातुओंके मार्ग बंद हो जाते हैं इस कारण धातु पुष्ट नहीं होते और मेद-वृद्धि नहीं होती तथा मनुष्य सर्व कार्य्य करनेको असमर्थ हो जाता है ॥ १ ॥

मेदस्वी पुरुषके लक्षण ।

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः । युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोल्पमैथुनः ॥ मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिषु स्थितम् । अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ २ ॥

भाषा-क्षुद्र श्वास, तृषा, मोह, निद्रादिकी अधिकता, अकस्मात् श्वासका रुक जाना, अंगग्लानि, छींक, पसीना, देहमें दुर्गंध, शक्तीकी हीनता । मैथुनकी इच्छाका कम होना, यह मेद सब प्राणियोंके उदर और हड्डियोंमें रहता है, इसकारण प्रायः मेदरोगियोंका पेटही बढता है ॥ २ ॥

मेदस्वीके अवस्थालक्षण ।

मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः । चरन्संधुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारं चापि कांक्षति । विकारांश्चाश्नुते घोरान्कांश्चित्कालव्यतिक्रमात् ॥ एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ । एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलो यथा ॥ ३ ॥

भाषा-मेद वायुके विचरनेके मार्गको रोक देती है, तब वह कोठेमें स्थित वायु जठराग्निको अत्यन्त दीपन करती है तथा आहारको सुखाती है, इससे भोजन बहुत जल्दी पच जाता है और फिर तत्काल भोजन करनेकी इच्छा हो जाती है, कभी भोजनमें व्यतिक्रम पडनेसे अन्यान्य वातविकारोंको उत्पन्न करे है । यह अग्नि

और वायु बडे बडे उपद्रवोंको करे है, जिस प्रकार दावानल वनको भस्म करती है उसी प्रकार यह अत्यन्त बढा हुआ मेद स्थूल मनुष्योंको भस्म करता है ॥ ३ ॥

अत्यन्त मेद बढनेका परिणाम ।

मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः ।
विकारान् दारुणान् कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥ ४ ॥

भाषा—मेदके अत्यन्त बढनेसे वातादि भयंकर रोगोंको उत्पन्न करके शीघ्रही प्राणोंका नाश करे है ॥ ४ ॥

स्थूल लक्षण ।

अतिस्थूलेषु संदृष्टा विसर्पाः सभगंदराः। ज्वरातीसारमेहार्शश्श्लीपदापचिकादयः ॥ मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिग्उदरस्तनः । अथ योपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ५ ॥

भाषा—जब मनुष्य अत्यन्त स्थूल हो जाता है तब उसके विसर्प, भगन्दर, ज्वर, अतीसार, प्रमेह, बवासीर, श्लीपद और अपची आदि रोग उत्पन्न होते हैं । मेद और मांसके अत्यन्त बढनेसे उस मनुष्यके कूले, पेट और स्तन थलथलाने लगते हैं और वह मनुष्य स्थूल होनेपरभी निर्बल होता है उसको स्थूल कहते हैं॥५॥

इति मेदोरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ मेदोरोगचिकित्सा ।

वारिसेवनम् ।

प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् । उष्णमन्नस्य मण्डं वा पीतः कृशतनुर्भवेत्॥ सचव्या जीरका व्योषा हिंगु सौवर्चलानलाः । मस्तुना सक्तवः पीताः मेदोघ्ना वह्निदीपनी ॥ श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः । हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनैः ॥ अस्वप्नं च व्यवायं च व्यायामंचिंतनानि च । स्थौल्यमिच्छन् परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्द्धयेत् ॥ ६ ॥

भाषा—प्रातःकाल जलमें सहत मिलाकर पान करनेसे स्थूलता दूर होती है । उष्ण अन्नका मांड पीनेसे स्थूलता दूर होती है । चव्य, जीरा, काली मिरच, पीपल, सोंठ, हींग, काला नोन और लाल चीता इनको समान भाग लेकर चूर्ण

करके १६ गुणा खीलोंका चूर्ण मिलाकर दहीके तोडके साथ सेवन करनेसे मेदोरोग दूर होता है तथा अग्नि दीपन होती है। परिश्रम, चिन्ता, मैथुन, मार्ग चलना, सहतको पीना, जागरण तथा जौं और समाका भोजन ये सब शरीरकी स्थूलताको दूर करते हैं। जो मनुष्य स्थूलसे कृश होना चाहते हैं उन्होंने रात्रिमें जागना, स्त्रीप्रसंग, व्यायाम (दंड कसरत आदि) और चिन्ता इन सबोंका अधिक व्यवहार करे॥ ६॥

व्योषाद्यसक्तुः ।

व्योषविडङ्गशिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहिणीम् । बृहत्यौ च हरिद्रे द्वे पाठामतिविषां स्थिराम्॥ हिङ्गु केबुरमूलानि यवानी धान्यचित्रकम् । सौवर्चलमजाजी च हबुषां चेति चूर्णयेत् ॥ चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाः स्युर्म्मानतः समाः । सक्तूनां षोडशगुणो भागः सन्तर्पणं पिबेत् ॥ प्रयोगात्तस्य नश्यन्ति रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः । प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामलाः ॥ प्लीहापाण्ड्वामयः शोथो मूत्रकृच्छ्रमरोचकाः । हृद्रोगराजयक्ष्मा च कासः श्वासो गलग्रहः ॥ क्रिमिघ्नो ग्रहणीदोषः शैत्यस्थौल्यमतीव च । नराणां दीप्यते चाग्निः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्द्धते ॥ ७ ॥

भाषा–त्रिकुटा, वायविडंग, सहजनेकी जड, त्रिफला, कुटकी, कटाई, कटेरी, हलदी, दारुहलदी, पाठ, अतीस, शालिपर्णी, हींग, केउआकी जड, अजवायन, धनिया, चीता, काला नोन, जीरा और हाऊबेर इन सबोंको समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण कर ले, फिर तिलका तेल, घी और सहत प्रत्येक चूर्णकी बराबर लेवे और जौंके सत्तू १६ भाग लेवे, सबोंको एकत्र मिलाकर कीसी शीतल पदार्थके साथ सेवन करनेसे प्रमेह, मूढवात, कोढ, बवासीर, कामला, प्लीहा, पाण्डुरोग, सूजन, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृदयरोग, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, गलग्रह, कृमिरोग, संग्रहणी, शीतता, स्थूलता इत्यादि रोग दूर होते हैं। अग्नि दीपन होती है तथा स्मरणशक्ति और बुद्धिकी वृद्धि होती है ॥ ७ ॥

अमृताद्यगुग्गुलुः ।

अमृता त्रुटिवेल्लवत्सकं कलिङ्गपथ्यामलकानि गुग्गुलुम् । क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं पीडिकां स्थौल्यभगन्दरं जयेत् ॥ ८ ॥

भाषा–गिलोय १ भाग, छोटी इलायची २ भाग, वायविडंग ३ भाग, कूडेकी छाल ४ भाग, इन्द्रजौ ५ भाग, हरड ६ भाग, आमला ७ भाग और गूगल ८

भाग इन सबोंको सहतमें मर्दन करके सेवन करनेसे प्रमेहपिडिका, स्थूलता और भगन्दररोग दूर होता है ॥ ८ ॥

त्र्यूपणाद्यं लोहम्।

त्र्यूपणं विजया चव्यं चित्रकं विडमौद्भिदम्। बाकुची सैन्धवं चैव सौवर्चलसमन्वितम् ॥ अयश्चूर्णेन संयुक्तं भक्षयेन्मधुसर्पिषा। स्थौल्यापकर्षणं श्रेष्ठं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ मेहघ्नं कुष्ठशमनं सर्वव्याधिहरं परम्। नाहारे यन्त्रणा कार्या न विहारे तथैव च ॥ त्र्यूपणाद्यमिदं लोहं रसायनवरोत्तमम् ॥ ९ ॥

भाषा-सोंठ, मिरच, पीपल, भांग, चव्य, चीता, विरिया संचरनोन, खारी नोन, बावची, सैंधानोन और काला नोन ये सब समान भाग और सबोंकी बराबर लोहेका चूर्ण सबोंको एकत्र पीसकर सहत और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे स्थूलता अपकर्षण होती है। बल वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है तथा प्रमेह, कोढ और सर्व प्रकारके रोग दूर होते हैं। इसपर आहार विहारका कुछ परहेज नहीं है। यह त्र्यूपणाद्यलोह उत्तम रसायन है ॥ ९ ॥

वडवाग्निलोहम्।

सूतभस्म सतालं च लोहं ताम्रं समं समम्। मर्दयेत् सूर्य्यपत्रेण चास्य वल्लं प्रयोजयेत् ॥ मधुना स्थूलरोगे च शोथे शूले तथैव च। मध्वाज्यमनुपानं च देयं वापि कफोल्वणे ॥ १० ॥

भाषा-पारेकी भस्म, शुद्ध हरिताल, लोहेकी भस्म और तांबेकी भस्म ये सब समान भाग लेकर आकके पत्तोंके रसमें खरल करके प्रतिदिन रत्तीप्रमाण सहतमें मिलाके खाय। ऊपरसे सहत और घी मिलाकर खाय। यह वडवाग्निलोह स्थूलरोग, शोथ, स्थूल और कफोल्वण दूर होते हैं ॥ १० ॥

वडवाग्निरसः।

शुद्धसूतं समं गन्धं ताम्रं तालं समं समम्।
अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं क्षौद्रैर्लेह्यं त्रिगुञ्जकम् ॥
वडवाग्निरसो नाम्ना स्थौल्यमाशु नियच्छति ॥ ११ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, शुद्ध हरिताल और तांबेकी भस्म सब समान भाग लेकर एक दिन आकके पत्तोंके रसमें खरल करके सहतमें मिलाकर रत्ती प्रमाण सेवन करे। यह वडवाग्निरस स्थौल्यताका नाश करे है ॥ ११ ॥

इति मेदोरोगचिकित्सा समाप्ता।

अथोदररोगनिदानम् ।

उदररोगका कारण ।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च ।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात् ॥ १ ॥

भाषा–सर्व प्रकारके रोग मंदाग्निसे उत्पन्न होते हैं; इस कारण मंदाग्निके होनेसे तथा अजीर्णकारक द्रव्योंके सेवन करनेसे और कोष्ठबद्धताके होनेसे उदररोग उत्पन्न होता है ॥ १ ॥

उदरकी संप्राप्ति ।

रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि संचिताः ।
प्राणाग्न्यपानान् संदूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ २ ॥

भाषा–कुपितदोष स्वेद और अम्बुवाहिनी सम्पूर्ण शरीरके स्रोतोंको रोककर तथा अग्नि और प्राण एवं अपानवायुको दूषित करके मनुष्योंके उदररोगको उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥

उदरके सामान्य लक्षण ।

आध्मानं गमने शक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता ।
शोथः सदनमंगानां सङ्गो वातपुरीषयोः ॥
दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ॥ ३ ॥

भाषा–अब दुर्बलता, मंदाग्नि, गमनशक्तिका नाश, सूजन, आध्मान, वात और पुरीषकी बद्धता, अंगग्लानि, दाह और तन्द्रा ॥ ३ ॥

उदररोगसंख्या ।

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः ।
सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिंगं पृथक् शृणु ॥ ४ ॥

भाषा–उदररोग आठ प्रकारका कहा है । जैसे वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक, प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर और जलोदर । अब इनके लक्षण अलग सुनो ॥ ४ ॥

वातोदरके लक्षण ।

तत्र वातोदरे शोथः पाणिपन्नाभिकुक्षिषु । कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम् ॥ शुष्ककासोऽङ्गमर्दोऽधो गुरुता मलसं-

ग्रहः । श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद् वृद्धिह्रासवत् ॥ सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णशिराततम् । आध्मातदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ॥ वायुश्चात्र सरुक् शब्दो विचरेत् सर्वतोगतिः ॥ ५ ॥

भाषा-तहां वातोदररोगमें हाथ, पांव, नाभि और कोखमें सूजन हो, एवं कोख, पसली, पेट, कमर और पीठमें पीडा हो, संधियोंमें तोडने सरीखी पीडा हो, सूखी खांसी हो, शरीरका रोकना, नाभिके नीचेका भाग भारी मालूम हो, मलरोध, त्वचादिका रंग धूसर या लाल हो, अकस्मात् उदर घटे और बढे, सुई चुभानेकीसी और तोडनेकी समान पीडा, सूक्ष्म और काले रंगकी नसोंसे उदर व्याप्त हो, उदरमें अंगुली मारनेसे मस्तककी समान शब्द हो इस वातोदरमें वायु सर्वत्र विचरण करती हुई शब्द और पीडा करती है ॥ ५ ॥

पित्तोदरके लक्षण ।

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता । भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित् ॥ पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते । धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ ६ ॥

भाषा-पित्तोदरमें मूर्छा, दाह, तृषा, मुखमें कडवापन, भ्रम, अतीसार, त्वचा आदिका रंग पीला हो जाना, उदरका रंग हरा हो, पीली और लाल नसोंसे व्याप्त हो, पसीना आवे, गरमीसे पेटमें दाह हो, आंतोंमेंसे धूंआसा निकले, हाथके छूनेसे नरम मालूम हो, शीघ्र पके अर्थात जलोदरपनको प्राप्त हो और दूखे ॥ ६ ॥

कफोदरके लक्षण ।

श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापश्वयथुगौरवम् । निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥ उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत् । चिराभिवृद्धं कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ ७ ॥

भाषा-कफोदरसे शरीरमें शिथिलता, शून्यता, सूजन, गुरुता, निद्राकी अधिकता, वमन होनेकीसी इच्छा, अरुचि, श्वास, खांसी, त्वचादिका रंग सफेद होना, पेट भीजासा मालूम हो, चिकना, सफेद, नसोंसे व्याप्त हो, बहुत देरमें वृद्धिको प्राप्त हो, कठिन, हाथके स्पर्श करनेसे शीतल जान पडे, भारी और स्थिर हो ॥ ७ ॥

सन्निपातोदरके लक्षण ।

स्त्रियोऽन्नपानं नखलोममूत्रविडार्त्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः । यस्मै

प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा ॥ तेनाशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्य्युः सुघोरं जठरं त्रिलिङ्गम् । तच्छीतवाते भृशदुर्दिने च विशेषतः कुप्यति दह्यते च ॥ स चातुरो मुह्यति हि प्रसक्तं पाण्डुः कृशः शुष्यति तृष्णया च । दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव ॥ ८ ॥

भाषा–जिस मनुष्यको दुष्टस्त्री वशमें करनेके लिये नख, बाल, मूत्र, मल अथवा आर्त्तव (रजोधर्मका रुधिर) मिश्रित अन्नपान भक्षण करा दे अथवा जिसको शत्रु विष देते हैं या जो मनुष्य दुष्ट जल (सिवार, काई, पत्तों, संयुक्त पानी) पीते हैं अथवा जो मनुष्य दूषीविष सेवन करते हैं उनके रक्त और दोष कुपित होकर अत्यन्त दारुण त्रिदोषज उदररोग उत्पन्न करते हैं । वह उदररोग शीतकालमें या शीतल पवन चलनेके समय अथवा जिस दिन वर्षाका झड लग रहा हो उस समयमें विशेष करके कुपित होता है । इस रोगीके शरीरमें दाह हो, निरन्तर मूर्छित रहे, शरीरका रंग पीला पड जाय, कृश हो जाय, तृषाकरके सूखता जाय इसको दूष्योदरभी कहते हैं ॥ ८ ॥

प्लीहोदरके लक्षण ।

प्लीहोदरं कीर्त्तयतो निबोध । विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक् कफश्च ॥ प्लीहातिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धो प्लीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति । तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ॥ मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिंगैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः ॥ ९ ॥

भाषा–अब प्लीहोदरको कहता हूं । दाहकारक और अभिष्यन्दी द्रव्य भोजन करनेवाले मनुष्योंके रक्त और कफ अत्यन्त दूषित होकर उदरके वामपार्श्वमें प्लीहाको बढाकर शरीरमें अप्रसन्नता उत्पन्न करते हैं, इसीको प्लीहारोग कहते हैं । इसमें मन्दज्वर, मंदाग्नि, रोगी कफपित्तके लक्षणोंकरके पीडित हो, बल क्षीण और शरीरका रंग पीला होता है ॥ ९ ॥

यकृद्दाल्युदरके लक्षण ।

सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रवृद्धे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव ।
उदावर्त्तरुजानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः ।
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान् क्रमात् ॥ १० ॥

भाषा-जैसे प्लीहा बांई तरफ होती है उसी प्रकार दहिनी ओर यकृत् दूषित होनेसे यकृद्दाल्युदर होता है । इसमें उदावर्त्त, शूल, अफरा इनसे वातका कोप, मोह, तृषा, ज्वर इनसे पित्तका कोप तथा शरीरका भारीपन, अरुचि और कठिनता इनसे कफका कोप होता है ॥ १० ॥

बद्धगुदोदरके लक्षण ।

यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत् । सञ्चीयते तस्य मलः सदोषः शनैः शनैः संकरवच्च नाड्याम् ॥ निरुध्यते तस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् । हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति ॥ ११ ॥

भाषा-जिस मनुष्यकी आंतें उपलेपी अर्थात् चिपटनेवाले पदार्थ अथवा शाकादि या बाल तथा कंकरोंसे बद्ध हो जांय उस मनुष्यका मल वातादि दोषोंकरके थोडा थोडा नित्य आंतोंमें जमता जाय । जैसे बुहारी देते समय थोडा थोडा कूडा करकट रह जाता है तब वह मल गुदद्वारको रोककर कुछ कुछ मलको अत्यन्त कठिनतासे निकलने देता है । इसमें हृदय और नाभिके नीचेमें पेट बढ जाता है उसको बद्धगुदोदर कहते हैं ॥ ११ ॥

क्षतोदरके लक्षण ।

शल्यं तथान्नोपहितं यदन्त्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा । तस्मात् श्रुतोऽन्त्रात् सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः॥ नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् । एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टम् ॥ १२ ॥

भाषा-कांटा, खोबडा, कंकर, हड्डी आदि पदार्थ अन्नके साथ पक्वाशयमें चले जांय, तहांसे तिरछे होकर आंतमें छेद कर दें, तब उस क्षतयुक्त आंतसे पानीकी समान गुदाके मार्गसे बहुत स्राव हो, इसमें नाभिके नीचे पेट बढ जाता है । उसमें शूल और तोडनेकी समान पीडा होती है इसको क्षतोदर कहते हैं । कोई कोई वैद्य परिस्राव्युदर कहते हैं ॥ १२ ॥

उत्पत्तिसहित जलोदरके लक्षण ।

दकोदरं कीर्त्तयतो निबोध॥यः स्नेहपीतोप्यनुवासितो वा वान्तो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः । पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दूष्यन्ति हि तद्वहानि ॥ स्नेहोपलिप्तेष्वथवापि तेषु दको-

दरं पूर्ववदभ्युपैति । स्निग्धं महत्तत् परिवृत्तनाभि समाततं पूर्णमिवाम्बुना च ॥ यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥ १३ ॥

भाषा–अब इसके आगे दकोदर अर्थात् जलोदरको कहते हैं। जो मनुष्य स्नेहपान करनेपर या अनुवासन बस्ति सेवन करनेपर अथवा वमन विरेचन करनेपर किंवा निरूहबस्ति सेवन करनेपर तत्कालही शीतल जल पी लेवै तो उस मनुष्यकी जल वहनेवाली नाडी दूषित होकर अथवा उनमें चिकटाईके लिपटनेसे क्रम क्रमसे बढके पूर्ववत् जलोदर उत्पन्न होता है। वह चिकना, बडा, नाभिके चहुं ओर बहुत ऊंचा होता है तथा तनासा मालूम होता है, पानीकी पोट भरीसी जान पडे। जिस प्रकार जलसे भरी हुई मसक झलर झलर हलती है, उसी प्रकार यह हले है, गुडगुड शब्द हो, कांपे, इसको संस्कृतमें दकोदर या जलोदर और देशभाषामें जलन्धर कहते हैं ॥ १३ ॥

साध्यासाध्यविचारः ।

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम् । बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम् ॥ पक्षाद्बद्धगुदं तूर्द्धं सर्वं जातोदकं तथा। प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम् ॥ शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम् । बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत् ॥ पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषः शोथातीसारपीडितम् । विरिक्तश्चाप्युदरिणं पूर्य्यमाणं विवर्जयेत् ॥ १४ ॥

भाषा–आठ प्रकारके उदररोग प्रायः उत्पन्न होवेहीके साथ कष्टसाध्य पड जाते हैं। तहां बलवान् मनुष्यके थोडे दिनोंसे उत्पन्न हुआ हो और उसमें पानी नहीं हुआ हो ऐसा रोगी कदाचित् बडे प्रयत्न करनेसे साध्य हो जाय। बद्धगुदोदर पन्द्रह दिनके बाद असाध्य हो जाता है । जिनमें जल उत्पन्न हो गया वे सब असाध्य और क्षतोदर मृत्युके लिये उत्पन्न होता है। जिसके नेत्रोंमें सूजन आ गई हो, लिंग टेढा पड गया हो, उदरकी त्वचा पीली तथा गीलीपड गई हो, बल, मांस, रुधिर और जठराग्नि क्षीण हो गई हो वह उदररोगी असाध्य जानना। जिसकी पसली टेढी हो गई हो, अन्नमें अरुचि हो, सूजन, अतीसार, इनसे दुःखित हो तथा विरेचन करानेसे जिसका पेट फिर पानीसे भर जाय ऐसा उदररोगी त्यागना चाहिये ॥ १४ ॥

इति उदररोगनिदानं समाप्तम् ।

अथोदररोगचिकित्सा ।

काथतक्रादिपानम् ।

यवक्षारन्तु कदली पानीयेन प्रसाधितम् । एतस्यास्वादनान्नश्य-न्त्युदरव्याधयोऽखिलाः ॥ वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणा-न्वितम् । शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥ यवानी-सैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ॥ १५ ॥

भाषा-केलेकी जड और जवाखारका क्वाथ बनाकर पान करनेसे उदररोग आराम होता है । वातोदरमें पीपलका चूर्ण और सैंधानोनको तक्रके साथ पीवे । पित्तोदरमें मिरच और मिश्रीके चूर्णके साथ तक्रको पीवे । अजवायन, सैंधानोन, काला जीरा और त्रिकुटेके चूर्णके साथ तक्रको कफोदररोगमें पीवे ॥ १५ ॥

सामुद्राद्यं चूर्णम् ।

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि क्षारं यवानीमजमोदकञ्च । सपिप्प-लीचित्रकशृंगवेरं हिङ्गु बिडञ्चेति समानि कुर्यात् ॥ एतानि चू-र्णानि घृते प्लुतानि भुञ्जीत पूर्वं कवलं प्रशस्तम् । वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्तं वायुः प्रकोपं ग्रहणीं च दुष्टाम् ॥ अर्शांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं भगन्दरं चेति निहन्ति सद्यः ॥ १६ ॥

भाषा-समुद्रनोन, काला नोन, सैंधानोन, जवाखार, अजवायन, अजमोद, पीपल, चीता, अदरख, हींग, बिरिया और बिरिया संचरनोन ये सब समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर ले, पश्चात् इस चूर्णको भोजनके पहिले ग्रासमें मिलाकर घीमें सानकर भक्षण करे । यह चूर्ण वातोदर, गुल्म, अजीर्ण, वातप्रकोप, दुष्टसंग्रहणी, दुष्ट अर्शरोग, पाण्डुरोग और भगन्दररोगको तत्काल नष्ट करता है ॥ १६ ॥

शंखद्रावकः ।

अर्कस्नुही तथा चिंचा तिलारग्वधचित्रकम् । अपामार्गभस्म समं वस्त्रपूतं जलं हरेत् ॥ मृद्वग्निना पचेत्तत्तु यावल्लवणतां गतः । लवणेन समौ ग्राह्यौ द्वौ क्षारौ टङ्कणं तथा ॥ द्विगुणं पंचलवणं मातुलुङ्गरसेन च । काचकूप्यां तु सप्ताहं वासयेदम्लयोगतः ॥

शंखचूर्णपलं दत्त्वा वारुणीयन्त्रमुद्धरेत् । सर्वधातुगतान् दोषान् प्लीहबद्धक्षतोदकान्॥उदरादिकरोगाणां सद्यो नाशकरः परः॥१७॥

भाषा–आक, थूहर, इमली, तिल, अमलतास, चीता और चिरचिटा इन सबोंको जलाकर जलमें डालकर कपडेमें छानकर जलको ग्रहण करे, फिर इस जलका मंद मंद अग्निसे पकावे जब इसमें खारीपन आ जाय तब सज्जी, सुहागा, समुद्रफेन, गोदंती, हरिताल, कसीस और सुहागा समान भाग तथा पांचों नोन उनसे दुगुने लेवे। पश्चात् एक कांचकी शीशीमें बिजोरे नीबूका रस भरकर उसमें इनको डाल देवे, फिर ४ तोले शंखका चूर्ण डालकर वारुणीयंत्रके द्वारा पकावे। इसको सेवन करनेसे धातुगत दोष, प्लीहोदर, बद्धगुदोदर, क्षतोदर, जलोदर और सर्व प्रकारके उदररोग दूर होते हैं ॥ १७ ॥

अपरशंखद्रावकः ।

योगिनीभैरवाभ्यां च बलिमादौ प्रदापयेत् । पश्चाद् यन्त्रञ्च कर्त्तव्यमेवाह परमेश्वरी ॥ रसः शंखद्रवो नाम शम्भुदेवेन भाषितः। गुह्याद् गुह्यतमं गुह्यमिदानीं कथ्यते मया ॥ शंखचूर्णं यवक्षारं सर्जिकाक्षारटंकणम् । समं च पंचलवणं स्फटिकारिनृशादयः ॥ काचकूप्यां ततः क्षिप्त्वा वारुणीयन्त्रमध्यगः । भोजनात् पूर्वतः सेव्यो मूत्रकृच्छ्राश्मरीं तथा ॥ उदराष्टविधं हन्ति गुल्मप्लीहोदराणि च । अजीर्णं नाशयेच्छीघ्रं ग्रहणीं च विषूचिकाम् ॥ भुक्तशेषे च भोक्तव्यो माषमात्रो रसोत्तमः । क्षणमात्राद्भवेद्भस्म पुनर्भोजनमिच्छति ॥ प्रत्यहं भोजनान्ते च संसेव्योऽयं रसोत्तमः । न रुजाया भयं क्वापि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ न देयं यस्य कस्यापि सदा गोप्यं च कारयेत् । रसः शंखद्रवो नाम वैद्यानामुपकारकः ॥ १८ ॥

भाषा–प्रथम योगिनी और भैरवोंको बलिदान देकर पश्चात् यन्त्र बनावे । यह शंखद्रावरस स्वयं शिवजीने कहा है । यह अत्यन्त गुप्तोंमें गुप्त प्रयोग गुप्त रखना चाहिये। अब मैं इसको कहता हूं। शंखका चूर्ण, जवाखार, सज्जी, सुहागा, सैंधानोन, काला नोन, बिरिया संचरनोन, रेहगमा, खारी नोन, फटकरी और नवसादर इन सबोंको समान भाग लेकर कांचकी शीशीमें भरकर वारुणीयन्त्रके

द्वारा पकावे। इसको भोजनके पूर्व सेवन करे। यह शंखद्राव मूत्रकृच्छ्र, पथरी, आठ प्रकारके उदररोग, गुल्म, प्लीहोदररोग, अजीर्ण, संग्रहणी, विषूचिका इनको तत्काल नष्ट करता है। इसको भोजनके पश्चात् सेवन करनेसे तत्काल भोजन भस्म हो जाता है और फिर भोजन करनेकी इच्छा होती है। प्रतिदिन भोजनके अंतमें इस उत्तम रसको सेवन करे। इसको सेवन करनेवाले मनुष्यके फिर कभी रोग उत्पन्न नहीं होता, मैं सत्य सत्य कहता हूं। हर किसीको यह शंखद्राव रस नहीं देवे, सदैव गुप्त रक्खे। यह रस वैद्योंको अत्यन्त उपकारक है॥ १८॥

इच्छाभेदी रसः।

शुण्ठीमरिचसंयुक्तं रसगन्धकटंकणम्। जैपालस्त्रिगुणः प्रोक्तः सर्वमेकत्र पेषयेत्॥ इच्छाभेदी द्विगुञ्जः स्यात् सितया सह पाययेत्। यावच्च चुलुकं पीत्वा तावद्वेगाद्विरेचयेत्॥ तक्रौदनं च दातव्यमिच्छाभेदी यथेच्छया॥ १९॥

भाषा-सोंठ, मिरच, पारा, गंधक और सुहागा प्रत्येक एक एक भाग और जमालगोष्टा तीन भाग लेवे, सबोंको एकत्र पीसकर जलके योगसे दो दो रत्तीकी गोली बना लेवे, इनको चीनीके सरबतके साथ सेवन करे। इसके ऊपर जितने चुल्लू चीनीका सरबत पिया जाय उतनेही दस्त होंगे। इसपर पथ्य मठा और भात है॥१९॥

अभयावटी।

अभया मरिचं कृष्णा टङ्कणं च समांशिकम्। सर्वचूर्णसमं भागं दद्यात् कानकजं फलम्॥ स्नुहीक्षीरेण संकुर्याद्वटीं स्विन्नकलायवत्। वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा॥ उष्णाद्विरेचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च। जीर्णज्वरं प्लीहरोगं हन्त्यष्टाबुदराणि च॥ वातोदरे प्रशस्तोयं सर्वाजीर्णं व्यपोहति। कामलां पाण्डुरोगं च तथैव कुम्भकामलाम्॥ २०॥

भाषा-हरड, काली मिरच, पीपल और सुहागा ये सब समान भाग और सबकी बराबर जमालगोटे लेवे, सबोंको एकत्र थूहरके दूधमें पीसकर मटरकी बराबर गोलियां बना लेवे। ये दो गोली एक हरड चावलोंके जलमें पीसकर भक्षण करे, इसके ऊपर गरम जल पीनेसे दस्त होते हैं और शीतल जल पीनेसे दस्त बंद हो जाते हैं। यह अभयावटी जीर्णज्वर, प्लीहारोग, आठ प्रकारके उदररोग, विशेषकरके वातोदर, सर्व प्रकारके अजीर्ण, कामलां, पाण्डुरोग, कुम्भकामला इन सबोंको दूर करे है॥ २०॥

नाराचरसः ।

सूतं टङ्कणतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् । गन्धकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥ सर्वतुल्यं क्षिपेद्दन्तीबीजं निस्तुषमेव च । द्विगुञ्जो रेचने सिद्धो नाराचोऽयं महारसः ॥ गुल्मप्लीहोदरं हन्ति पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ २१ ॥

भाषा–पारा, सुहागा और मिरच प्रत्येक एक एक भाग; गंधक, पीपल और सोंठ प्रत्येक दो दो भाग और सबोंकी बराबर तुषरहित जमालगोटा इन सबोंको एकत्र जलमें पीसकर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे। एक गोली चावलोंके जलके साथ सेवन करे। यह नाराच रस गुल्म और प्लीहा तथा उदरको दूर करे है ॥ २१ ॥

जलोदरारिरसः ।

रसेन गन्धं द्विगुणं शिला च निशा च बीजं जयपालकस्य । फलत्रयं त्र्यूषणकं च चित्रं सर्वं विचूर्ण्यापि विभावयेच्च ॥ दन्ती स्नुही भृंगरसे पृथक् च सम्भाव्य संशोध्य च सप्तवारान् । वयो बलं वीक्ष्य तथा ददीत जाते विरेके च ददीत पथ्यम् ॥ अल्पं सतक्रं शिशिरानुशायि जाते बले तत् पुनरेव दद्यात् । तक्रेण रोगः समुपैति शान्तिं सिद्धो रसो नाम जलोदरारिः ॥ २२ ॥

भाषा–पारा २ तोले, गंधक ४ तोले, मैनशिल, हलदी, जमालगोटे, हरड, आमले, बहेडे, सोंठ, मिरच, पीपल और चीतेकी जड प्रत्येक एक एक भाग लेवे। सबोंको एकत्र दंती, थूहर और भांगरेके रसमें सातवार भावना देकर गोली बना लेवे। रोगीके बलाबल और आयुको विचारकर दो रत्तीसे लेकर चार रत्ती पर्यंत विरेचनके लिये देवे। जब अच्छे प्रकारसे विरेचन (जुल्लाब) हो जाय तब इसपर तक्रके साथ शीतल अन्न पथ्य देवे, इसको जलोदरारि रस कहते हैं ॥२२॥

त्रैलोक्यसुन्दरो रसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं ताम्राभ्रं सैन्धवं विषम् । कृष्णजीरं विडंगं च गुडूचीसत्वचित्रकम् । उग्रगन्धा यवक्षारं प्रत्येकं कर्षमात्रकम् । निर्गुण्डिकाद्रवैस्त्रिबीजपूरद्रवैर्दिनम् ॥ मर्दयेत् शोषयेत् सोऽयं रसस्त्रैलोक्यसुन्दरः । गुञ्जाद्वयं घृतैर्लेह्यं वातोदरकुलान्त-

कम् ॥ वह्निचूर्णं यवक्षारं प्रत्येकं च पलद्वयम्। घृतप्रस्थं विपक्तव्यं गोमूत्रैश्च चतुर्गुणैः॥घृतावशेषं कर्त्तव्यं कर्षमात्रं पिबेदनु॥२३॥

भाषा-शुद्ध पारा १ भाग, शुद्ध गंधक, तांबेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, सेंधानोन, शुद्ध विष, काला जीरा, वायविडंग, गिलोयका सत्व, चीता, वच और जवाखार प्रत्येक दो दो भाग, फिर संमालू, चीता और बिजौरे नीबूके रसमें एक एक दिन खरल करे फिर सुखाकर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे । एक गोली घीके साथ सेवन करे। यह त्रैलोक्यसुन्दररस वातोदररोगको दूर करे है। चीतेका चूर्ण २ पल और जवाखार २ पल, गायका घी १ प्रस्थ और गोमूत्र ४ प्रस्थ इनको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे इस घृतको एक कर्ष प्रमाण त्रैलोक्यसुन्दर रसके ऊपर पान करे यह अनुपान है ॥ २३ ॥

यकृत्प्लीहरोगहरक्षारभक्षणविधिः।

केतकीपत्रजं क्षारं गुडेन सह भक्षयेत्। तक्रेण शरपुंखं वा पीत्वा प्लीहां विनाशयेत् ॥ विटपेन्द्रवारुणीमूलं यस्य नाम्ना सुदूरतः। निक्षिप्यते समुत्पाट्य तस्य प्लीहा विनश्यति॥ पलद्वयं सैन्धवं च शुण्ठी चित्रकपंचकम्। पंचप्रस्थस्त्वारनालं तैलप्रस्थं पचेततः॥ ग्रहण्यग्रयकृत्प्लीहसर्ववातविकारनुत् ॥ २४ ॥

भाषा-केतकीके पत्तोंके खारको गुडके साथ भक्षण करनेसे अथवा तक्रके साथ शरपुंखके चूर्णका पान करनेसे प्लीहारोग दूर होता है। इन्द्रायणकी जडको उखाडकर जिसका नाम लेकर दूर फेंक देवे उसकी प्लीहा दूर हो जाती है। सेंधानोन २ पल, सोंठ ५ पल और चीता ५ पल, कांजी १० सेर और तिलका तेल २ सेर, सबोंको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे तैलको पकावे। यह तैल ग्रहणी, प्लीहारोग, यकृत्रोग और सर्व प्रकारके वातके विकार दूर हो जाते हैं ॥ २४ ॥

महाद्रावकः।

यवक्षारस्य भागौ द्वौ स्फटिकारिस्त्रयो मताः। एकीकृत्य प्रपिष्यापि मूत्रैर्वत्सतरीभवैः ॥ शुष्कं कृत्वा क्षिपेत्पात्रे सीसके वज्रलेपिते। अन्यसीसकपात्रन्तु द्विमुखं मेलयेद् बुधः॥ वृद्धवैद्योपदेशेन पचेत् पात्रस्थमौषधम्। ततो ज्वालावतः स्थाप्यं पात्रान्यं लभते रसम् ॥ ततो रसं विनिष्कृष्य

स्थापयेत् स्निग्धभाजने । लवङ्गेन वटीं कुर्यादथवा मृतताम्रकैः॥ प्लीहादिस्थूलरोगेषु दापयेद्रक्तिकां भिषक् । द्रवीकरोति रोगं च महाद्रावकसंज्ञकः ॥ श्वित्रे च दद्रुरोगे च प्रलेपं द्रावकस्य च । वह्निरज्वलनं तस्य दधि दत्त्वा प्रलेपयेत् ॥ २५ ॥

भाषा—जवाखार २ भाग और फटकरी ३ भाग इन दोनोंको एकत्र बछडेके मूत्रमें पीसकर सुखा लेवे, फिर इसको कपरोटी किये हुए सीसेके पात्रमें स्थापन करे, ऊपरसे दूसरा सीसेका बासन ढककर दोनोंके मुखको मिलाकर बंद कर देवे। नीचेके पात्रमें एक छिद्र कर देवे, फिर एक गढा खोदकर उसमें एक पात्रको स्थापन करे और उस पात्रके ऊपर इन दोनों सीसेके पात्रोंको रख देवे। ऊपरसे आग जला देवे, अग्निके सन्तापसे सीसेके पात्रके द्रव्य पिघलकर नीचेके पात्रमें चले जांयगे, फिर इस रसको चिकने बासनमें भरके लौंग या शुद्ध तांबा मिलाकर एक एक रत्तीकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली खाय इससे प्लीहादि अतिकठिन रोग बहुत शीघ्र द्रव अर्थात् गल जाते हैं। कठिनरोगको द्रव करे है इसलिये इसका नाम द्रावक है। इन गोलियोंको घिसकर श्वित्र और दद्रुरोगपर लेप करनेसे आरोग्य हो जाते हैं। इसके लेपमें यदि जलन होय तो इसमें दही मिला लेवे ॥ २५ ॥

अपरमहाद्रावकः ।

वृषश्वित्रमपामार्गं चिञ्चाकुष्माण्डनाडिका । स्नुहीतालस्य पुष्पाणि वर्षाभूर्वेतसं तथा ॥ एतेषां क्षारमाहृत्य लिम्पाकस्वरसेन च । क्षालयित्वा क्षारतोयं वस्त्रपूतं च कारयेत्॥ चण्डातपेन संशोष्य ग्राह्यं तद्लवणोचितम् । एतस्य द्विपलं ग्राह्यं यवक्षारपलद्वयम् ॥ स्फटिकारिपलं चैव नरसारपलं तथा । पलार्द्धं सैन्धवं ग्राह्यं टङ्कणं तोलकद्वयम् ॥ कासीसं तोलकं चैव मुद्राशंखं च तोलकम् । दारुमोचं कर्षकं च तोलं समुद्रफेणकम् ॥ सर्वमेकत्र संचूर्ण्य वकयंत्रेण साधयेत् । महाद्रावकमेतद्धि योज्यं च रसजारणे ॥ हन्ति गुल्मादिकान् रोगान् यकृत्प्लीहोदराणि च ॥ २६ ॥

भाषा—अडूसा, चीता, चिरचिटा, इमली, पेठेकी डंडी, थूहर, ताडके फूल,

पुनर्नवा, बेत इन सबोंका भस्म लेकर नीबूके रसमें धोकर कपडेमें छानकर क्षारजलको ग्रहण करे। फिर इस जलको तीक्ष्ण धूपमें सुखाकर ८ तोले लेवे। एवं जवाखार ८ तोले, पिटकरी ४ तोले, नवसादर ४ तोले, सैंधानोन २ तोले, सुहागा २ तोले, कसीस १ तोला, मुद्राशंख (अरधा) १ तोला, दारुमोचाख्य विष १ कर्ष, समुद्रफेन १ तोला सबोंको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण करके बकयंत्रमें चुवाकर अर्क ग्रहण करे। इस महाद्रावकका रसादि जारणमें प्रयोग करे तथा गुल्मादिरोग, यकृत्रोग और प्लीहादि रोगोंको दूर करे है ॥ २६ ॥

यवानिकादिचूर्णम्।

यवानिकाचित्रकयावशूकषड्ग्रन्थिदन्तीमगधोद्भवानाम्। प्लीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्णमुष्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ २७ ॥

भाषा-अजवायन, चीता, जवाखार, वच, दंती, पीपल इनको समान भाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण कर लेवे। इस चूर्णको गरम जल, दहीका तोड, सुरा अथवा आसवके साथ सेवन करे ॥ २७ ॥

मानकादिगुटिका।

मानमार्गामृतावासास्थिरासैन्धवचित्रकम्। नागरं तालपुष्पं च प्रत्येकं च त्रिकार्षिकम् ॥ बिडसौवर्चलक्षारः पिप्पल्यश्चापि कार्षिकाः। एतच्चूर्णीकृतं सर्वं गोमूत्रस्याढके पचेत् ॥ सान्द्रीभूते गुटीं कुर्याद्दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम्। यकृत्प्लीहोदरहरो गुल्मार्शोग्रहणीहरः ॥ रोगः परिकरो नाम्ना ह्यग्निसन्दीपनः परः ॥ २८ ॥

भाषा-एक वर्षका पुराना मानकंद, चिरचिटेकी भस्म, गिलोय, अडूसा, शालिपर्णी, सैंधानोन, चीता, सोंठ, ताडके फूल प्रत्येकी भस्म तीन तीन कर्ष; विरिया संचरनोन, काला नोन, जवाखार और पीपल प्रत्येक एक एक कर्ष इन सबोंका चूर्ण करके एक आढक गोमूत्रमें पकावे, जब गाढा हो जाय तब उतारकर तीन पल सहत डालकर गोलियां बना लेवे। इसको सेवन करनेसे यकृत्, प्लीहा, उदररोग, गुल्म, बवासीर और संग्रहणी दूर होती है तथा अत्यन्त अग्निदीपन होती है॥२८॥

चित्रकादिलोहम्।

चित्रकं नागरं वासा गुडूची शालिपर्णिका। तालपुष्पमपामार्गो मानकं कार्षिकत्रयम्॥लोहमभ्रं कणा ताम्रं क्षारको लवणानि च। पृथक्कर्षांशमेतेषां चूर्णमेकत्र चिक्कणम् ॥ चतुःप्रस्थे गवांमूत्रे

पचेन्मन्देन वह्निना । सन्धिशीतं समुद्धृत्य माक्षिकं द्विपलं क्षिपेत् ॥ चित्रकादिरयं लोहो गुल्मप्लीहोदरामयम् । यकृतं ग्रहणीं हन्ति शोथं मन्दानलं ज्वरम् ॥ कामलां पाण्डुरोगं च गुदभ्रंशं प्रवाहिकाम् ॥ २९ ॥

भाषा–चीता, नागरमोथा, अडूसा, गिलोय, सालवन, ताडके फूल, चिरचिटा, मानकंद प्रत्येक तीन तीन कर्ष; लोहा, अभ्रक, पीपल, तांबा, जवाखार और पांचों नोन प्रत्येक एक एक कर्ष इन सबोंको एकत्र पीसकर चूर्ण कर इस चूर्णको चार प्रस्थ गोमूत्रमें मंद मंद अग्निसे पकावे । जब पककर शीतल हो जाय तब दो पल सहत मिला देवे । यह चित्रकादि लोह गुल्म, प्लीहा, उदररोग, यकृत्, संग्रहणी, सूजन, मन्दाग्नि, ज्वर, कामला, पाण्डुरोग, गुदभ्रंश और प्रवाहिका रोगको दूर करे है ॥ २९ ॥

गुडपिप्पली ।

विडङ्गं त्र्यूषणं कुष्ठं हिङ्गु लवणपञ्चकम् । त्रिक्षारं फेणकं वह्निश्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ तालपुष्पोद्भवं क्षारं नाड्याः कुष्माण्डकस्य च । अपामार्गस्य चिंचायाश्चूर्णानि चिक्कणानि च ॥ सर्वचूर्णसमं देयं चूर्णमत्र कणोद्भवम् । एतस्माद्द्विगुणाच्चूर्णात् पुराणो द्विगुणो गुडः ॥ मर्दयित्वा दृढे पात्रे मोदकानुपकल्पयेत् । भक्षयेदुष्णतोयेन प्लीहानं हन्ति दुस्तरम् ॥ यकृतं पंचगुल्मं च उदरं सर्वरूपकम् । जीर्णज्वरं तथा शोथं कासं पंचविधं तथा ॥ अश्विभ्यां निर्म्मिता श्रेष्ठा बालानां गुडपिप्पली । पिप्पली चित्रकान्मूलं पिष्ट्वा सम्यग्विपाचयेत् ॥ घृतं चतुर्गुणं क्षीरं यकृत्प्लीहोदरापहम् ॥ ३० ॥

भाषा–वायविडंग, त्रिकुटा, कूठ, हींग, पांचों नोन, जवाखार, सुहागा, गजपीपल, काला जीरा, ताडके फूलोंकी भस्म, पेठेकी डंडी, चिरचिटेकी भस्म और इमलीकी भस्म इन सबोंका चूर्ण समान भाग और सब चूर्णकी बराबर पीपलका चूर्ण सब चूर्णसे दुगुना पुराना गुड इन सब द्रव्योंको एकत्र खरल करके मोदक बना लेवे । इनको गरम जलके साथ सेवन करे। यह मोदक दुस्तर प्लीहारोग, यकृत्, पांच प्रकारके गुल्म, सर्व प्रकारके उदररोग, जीर्णज्वर, सूजन, खांसी पांच प्रकारकी

इन सब रोगोंको दूर करे है । यह गुडपिप्पली अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण की है । गायका घी २ सेर, दूध ८ सेर, जल ८ सेर, पीपल और चीतेकी जडका कल्क आधसेर सबोंको यथाविधिसे मिलाकर घृतको सिद्ध करे । यह घृत यकृत् और प्लीहोदररोगको दूर करे है ॥ ३० ॥

विद्याधरो रसः ।

गन्धकं तालकं ताप्यं मृतं ताम्रं मनःशिला । शुद्धसूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥ पिप्पल्याश्च कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत् । वल्लं च भक्षयेत् क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकं जयेत् ॥ रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धं च पिबेदनु ॥ ३१ ॥

भाषा-शुद्ध गंधक, शुद्ध हरिताल, शुद्ध सोनामक्खी, तांबेकी भस्म, शुद्ध मैनशिल और शुद्ध पारा ये सब समान भाग लेकर पीपलका क्वाथ और थूहरके दूधमें एक एक दिन भावना देकर दो दो रत्तीकी गोलियां बनाकर प्रतिदिन एक गोली सहतके साथ सेवन करे । ऊपरसे गायका दूध पीवे । यह विद्याधररस गुल्म और प्लीहादि रोगोंको दूर करे है ॥ ३१ ॥

प्लीहान्तको रसः ।

हतशुल्वं च तारं च गगणायसमुक्तिका । दरदं पुष्पकं सूतं गन्धकं नवमं तथा॥गुग्गुलुस्त्रिकटु रास्ना तथा जैपालबीजकम् । त्रिफला कटुकी दन्ती देवदाली तु सैन्धवम्॥त्रिवृता तु यवक्षारं वातारितैलमर्द्दितम् । अष्टोदराणि पाण्डुत्वमानाहं विषमज्वरम्॥ अजीर्णमामं कफं च क्षयं च सर्वशूलकम् । कासं श्वासं च शोथं च सर्वमाशु व्यपोहति॥प्लीहान्तको रसो नाम प्लीहोदरविनाशनः३२

भाषा-तांबेकी भस्म, चांदीकी भस्म, अभ्रककी भस्म, लोहेकी भस्म, मोतीकी भस्म, सिंगरफ, कांसीकी भस्म, पारेकी भस्म, शुद्ध गंधक, गूगल, त्रिकुटा, रायसन, शुद्ध जमालगोटा, त्रिफला, कुटकी, दंती, कडवी तोरई, सैंधानोन, निसोत और जवाखार इन सबोंको समान भाग लेकर अंडीके तेलमें खरल करे । यह प्लीहान्तकरस आठ प्रकारके उदररोग, पाण्डुरोग, आनाह, विषमज्वर, अजीर्ण, आम, कफ, क्षय, सर्व प्रकारके शूल, खांसी, श्वास, सूजन और विशेषकरके प्लीहारोगको दूर करे है ॥ ३२ ॥

यकृत्प्लीहारि लोहम् ।

हिंगूलसम्भवं सूतं गन्धकं लोहमभ्रकम् । तुल्यं द्विगुणताम्रं तु शिला च रजनी तथा ॥ जयपालं टङ्कणं च शिलाजतु समं रसात् । एतत् सर्वं समाहृत्य चूर्णीकृत्य विमिश्रयेत् ॥ दन्ती त्रिवृच्चित्रकं च निर्गुण्डी त्र्यूषणं तथा। आर्द्रकं भृंगराजश्च रसैरेषा पृथक् पृथक् ॥ भावयित्वा वटीं कुर्याद्बदरास्थिमितां भिषक् । प्लीहानं यकृतं चैव चिरकालानुवर्द्धिनम् ॥ एकजं द्वन्द्वजं चैव सर्वदोषभवं तथा । हन्यादष्टोदरानाहज्वरं पाण्डुं च कामलाम् ॥ शोथं हलीमकं हन्ति मन्दाग्नित्वमरोचकम्।यकृत्प्लीहारिनामेदं लोहं जगति दुर्लभम् ॥ ३३ ॥

भाषा-सिंगरफसे निकाला हुआ पारा, शुद्ध गंधक, लोहेकी भस्म और अभ्रककी भस्म ये सब एक एक भाग, तांबेकी भस्म दो भाग, मनशिल, हलदी, जमालगोटे, सुहागा और शिलाजीत प्रत्येक एक एक भाग, इन सबोंको समान भाग लेकर कूट पीसकर चूर्ण कर ले, फिर इस चूर्णको दंती, निसोत, चीता, संभालू, त्रिकुटा, अदरख और भांगरा प्रत्येकके रसकी अलग अलग भावना देकर बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियां बना लेवे । यह औषधि प्लीहा, यकृत्, बहुत पुरानी प्लीहा, एक दोषोत्पन्न, दो दोषोत्पन्न, त्रिदोषोत्पन्न, आठ प्रकारके उदररोग, आनाह, ज्वर, पाण्डु, कामला, सूजन, हलीमक, मंदाग्नि, अरुचि इन सबोंको दूर करे है । यह यकृत्प्लीहारि लोह जगत्में दुर्लभ है ॥ ३३ ॥

यकृत्प्लीहोदरहरलोहम् ।

लोहार्द्धमभ्रकं शुद्धं सूतमभ्रार्द्धभागिकम् । त्रिगुणामयसश्चूर्णी त्रिफलां सार्द्धकाभ्रकाम् ॥ द्विरष्ट वारिणो भागमष्टशेषं तु कारयेत् । तेन चाष्टावशेषेण समेनाज्येन यत्नतः ॥ रसेन बहुपुत्र्या द्विगुणक्षीरसम्मितम् । लोहमय्या पचेद्दर्व्या पात्रे चायसि मृण्मये ॥ दिव्यौषधिहतं लोहं पुटितं पुटनौषधैः । पचेत् पाकविधिज्ञस्तु वह्निना मृदुनाशनैः ॥ अभ्रकं निहतं कृष्णं सूतकं विधिमूर्च्छितम् । अयसश्चार्द्धभागैस्तु आदौ पाके विनिःक्षिपेत् ॥ कन्दकापालिका चव्यं विडङ्गं सवृद्धदलम् । शरपुंखा च

पाठा च चित्रकं च महौषधम् ॥ लवणानि च सर्वाणि सक्षारं वृद्धदारकम् । दीप्यकं च तथा सिक्थं लोहाभ्रकसमं क्षिपेत् ॥ प्लीहोदरयकृद्गुल्मान् हन्ति क्षाराग्निभिर्विना । प्रयोगोऽयं महावीर्यो लोहो लोहविदां वरः ॥ प्लीहोदरविनाशाय दद्याद्वे द्वे पुटे पृथक् । मानेन घण्टकर्णेन शूरणेनाधिकं पुनः ॥ ३४ ॥

भाषा–लोहा १ भाग, लोहेसे आधा अभ्रक, अभ्रकसे आधा रससिन्दूर, अभ्रक और लोहेसे तिगुना त्रिफला इन सब द्रव्योंको एकत्र आठगुने जलमें पकावे । जब आठवा भाग जल शेष रह जाय तब उतार ले, फिर इसमें समान भाग घी तथा लोहा और अभ्रकसे दुगुना शतावरका रस और दूध मिलाकर मट्टी या लोहेके पात्रमें यथाविधिसे पकावे और लोहेकी करछीसे चलाता जाय प्रथम तो लोहेका मंद मंद अग्निसे अर्धपाक करे फिर दुबारा पाक करे । तथा जमीकंद, चव्य, वायविडंग, लोध, शरफोका, पाढ, चीतेकी जड, सोंठ, पांचों नोंन, जवाखार, विधायरेके बीज, अजवायन और मोम यह सब द्रव्य लोहे और अभ्रककी समान लेकर ऊपरोक्त पाकमें डालकर विधिपूर्वक लोहेको तैयार करे । यह यकृत्प्लीहोदर लोह सर्व प्रकारके प्लीहा और उदररोग एवं गुल्मरोगोंको विना अग्नि और क्षारके दूर करे है । यह उत्तम लोहप्रयोग महावीर्यवान् है ॥ ३४ ॥

रोहितकलोहम् ।

रोहितकसमायुक्तं त्रिकत्रययुतं त्वयः । प्लीहानमग्रमांसं च यकृतं च विनाशयेत् ॥ ३५ ॥

भाषा–रोहिडे वृक्षकी छाल, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, दालचीनी, इलायची और तेजपात ये सब समान भाग और सबोंकी बराबर लोहेका चूर्ण लेवे । सबोंको एकत्र पीसकर एक रत्ती प्रमाण सेवन करनेसे प्लीहा, अग्रमांस और यकृत् रोग दूर होता है ॥ ३५ ॥

लोकनाथरसः ।

पारदं गन्धकं चैव समभागं विमर्दयेत् । मृताभ्रं रसतुल्यं च यत्नतः परिमर्दयेत् ॥ रसाद्विगुणलोहं च लोहतुल्यं च ताम्रकम् । भस्म वराटिकायाश्च ताम्रतस्त्रिगुणं कुरु ॥ नागवल्लीदलेनैव मर्दयेद्यत्नतो भिषक् । पुटेद्गजपुटे विद्वान् स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ यकृत्प्लीहोदरं गुल्मं श्वयथुं च विनाशयेत् । पिप्पली-

मधुसंयुक्तां सगुडां वा हरीतकीम् ॥ गोमूत्रं च पिबेद्वानु गुडं वा जीरकान्वितम् ॥ ३६ ॥

भाषा-पारा और गंधक समान भाग लेकर दोनोंको एकत्र खरल करे, फिर इसमें पारेकी बराबर अभ्रककी भस्म मिलाकर खरल करे, पश्चात् इसमें पारेसे दुगुना लोहा और लोहेकी बराबर तांबा एवं तांबेसे तिगुनी कौडीकी भस्म लेवे । सबोंको एकत्र पानोंके रसमें खरल करके गजपुटमें पकावे जब स्वांगशीतल हो जाय तब निकालकर चूर्ण कर ले । इसको सेवन करनेसे यकृत, प्लीहारोग, उदररोग, गुल्मरोग और शोथरोग दूर होता है । अनुपान सहतके साथ पीपल या गुडके साथ हरड अथवा गोमूत्र किंवा जीरा और गुड है ॥ ३६ ॥

ताम्रेश्वरवटी ।

हिङ्गु त्रिकटुकं चैवापामार्गस्य च पत्रकम् । अर्कपत्रं तथा स्नुहीपत्रं च समभागिकम् ॥ सैन्धवन्तं समं ग्राह्यं लोहं ताम्रं च तत्समम् । प्लीहानं यकृतं गुल्ममामवातं सुदारुणम् ॥ अर्शांसि घोरमुदरं मूर्च्छां पाण्डुं हलीमकम् । ग्रहणीमतिसारं च यक्ष्माणं शोथमेव च ॥ ३७ ॥

भाषा-हींग, सोंठ, मिरच, पीपल, चिराचिटेके पत्ते, आकके पत्ते और थूहरके पत्ते ये सब समान भाग और सबकी बराबर सैंधानोन, सैंधानोनकी बराबर लोहा और तांबा लेवे । सबोंको खरल करके गोली बना लेवे । यह ताम्रेश्वरवटी प्लीहा, यकृत्, गुल्म, आमवात, घोर अर्शरोग, मूर्छा, पाण्डुरोग, हलीमक, संग्रहणी, अतीसार, राजयक्ष्मा और सूजनको दूर करे है ॥ ३७ ॥

अग्निकुमारलोहम् ।

तुत्थरामठटङ्कानि सैन्धवं धान्यजीरकम् । यवानी मरिचं शुण्ठी लवंगैला विडंगकम् ॥ प्रत्येकं तोलकं चूर्णं लोहचूर्णं तु तत्समम् । रसस्य गन्धकस्यापि पलैकं कज्जलीकृतम् ॥ घृतेन मधुना खाद्यं लोहमग्निकुमारकम् । यकृत्प्लीहोदरहरं गुल्मं चापि हलीमकम् ॥ बलवर्णाग्निजननं कान्तिपुष्टिविवर्द्धनम् । श्रीमद्गहननाथेन निर्मितं विश्वसम्पदे ॥ ३८ ॥

भाषा-तूतिया, हींग, सुहागा, सैंधानोन, धनियां, जीरा, अजवायन, सोंठ,

मिरच, इलायची, लोंग और वायविडंग प्रत्येक एक एक तोला लेकर चूर्ण कर ले। सब चूर्णकी समान लोहेका चूर्ण, पारा और गंधककी कजली १ पल इन सबोंको एकत्र खरल करे। इसको घी और सहतमें मिलाकर भक्षण करे। यह अग्निकुमार लोह यकृत्, प्लीहा, उदररोग, गुल्म और हलीमकरोगको दूर करे है। एवं बल, वर्ण और अग्निको उत्पन्न करे, कान्ति और पुष्टिको बढावे है। श्रीमान् गहनानन्दनाथने यह अग्निकुमार लोह संसारकी सम्पदाके लिये निर्म्माण किया है॥ ३८॥

प्राणवल्लभो रसः ।

लोहं ताम्रं वराटं च तुत्थं हिंगु फलत्रिकम् । स्नुहीमूलं यवक्षारं जैपालं टङ्कणं त्रिवृत्॥ प्रत्येकं च पलं ग्राह्यं छागीदुग्धेन पेषितम्। चतुर्गुञ्जां वटीं खादेद्वारिणा मधुनापि वा ॥ प्राणवल्लभनामायं गहनानन्दभाषितः। दोषं रोगं च संवीक्ष्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम्॥ निहन्ति कामलां पाण्डुमानाहं श्लीपदार्बुदम्। गलगण्डं गण्डमालां व्रणानि च हलीमकम्॥ अपचीं वातरक्तं च कण्डूं विस्फोटकुष्ठकम्। नातः परतरं श्रेष्ठं कामलार्तिभयेष्वपि३९

भाषा-लोहा, तांबा, कौडी, नीलाथोथा, हींग, त्रिफला, थूहरकी जड, जवाखार, जमालगोटा, सुहागा और निसोत प्रत्येक चार चार तोले लेकर बकरीके दूधमें पीसकर चार चार रत्तीकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली जल या सहतके साथ खाय। यह प्राणवल्लभरस गहनानन्दनाथने निर्माण किया है। दोष और रोगका विचारकर इसकी मात्रा कमती बढती करे। इसको सेवन करनेसे कामला, पाण्डु, आनाह, श्लीपद, अर्बुद, गलगण्ड, गण्डमाला, व्रण, हलीमक, अपची, वातरक्त, कण्डू, विस्फोट, कोढ और विशेषकरके कामलारोग दूर होता है ३९॥

मृत्युंजयलोहम् ।

शुद्धसूतं समं गन्धं जारिताभ्रं समं समम्। गन्धकाद्द्विगुणं लोहं मृतं ताम्रं चतुर्गुणम् ॥ द्विक्षारं टंकणविडं वराटमथ शंखकम्। चित्रकं कुनटी तालकटुकी रामठं तथा ॥ रोहीतकं त्रिवृच्चिञ्चा विशालाधवमंकोटम्। अपामार्गं तालगुंडमम्लिका च निशायुगम्॥ कानकं तुत्थकं चैव यकृन्मर्दं रसांजनम्। एतानि समभागानि चूर्णयित्वा विभावयेत्॥ आर्द्रकस्वरसेनैव गुडूच्याः

स्वरसेन च । मधुनः कुडवैर्भाव्यं वटिका माषमात्रतः ॥ अनुपानं प्रदातव्यं बुद्धा दोषानुसारतः । भक्षयेद् प्रातरुत्थाय सर्वरोगकुलान्तकम् ॥ प्लीहानं ज्वरमुग्रं च कासं च विषमज्वरम् । चिरजं कुलजं चैव श्लीपदं हन्ति दारुणम् ॥ रोगानीकविनाशाय धन्वन्तरिकृतं पुरा । मृत्युंजयमिदं लोहं सिद्धिदं शुभदं नृणाम् ॥ ४० ॥

भाषा—पारा, गंधक और अभ्रक प्रत्येक एक एक भाग, लोहा दो भाग, तांबा चार भाग, सज्जी, जवाखार, सुहागा, विरिया संचरनोन, कौडी, शंख, चीता, मैनशिल, हरिताल, कुटकी, हींग, रोहेडा, निसोत, इमलीके छालकी भस्म, इन्द्रायन, धों, अंकोल, चिरचिटा, ताडकी डाढी, अम्लिलोना, हलदी, दारुहलदी, जमालगोटा, तूतिया, रोहेडा और रसौन प्रत्येक एक एक भाग लेवे। सबोंको एकत्र पीसकर एक दिन अदरखके रसकी और एक दिन गिलोयके रसकी भावना देवे । पश्चात् आधा सेर सहत इस औषधिमें मिलाकर प्रतिदिन इसमेंसे एक मासेभर भक्षण करे । अनुपान रोगीके दोषोंको विचार कर स्थिर करे । इसको प्रातःकाल उठकर भक्षण करे । यह मृत्युञ्जय लोह प्लीहा, उग्र ज्वर, खांसी, विषमज्वर, बहुत पुराने और वंशजरोग एवं दारुण श्लीपदादि रोगोंको नष्ट करे है । यह रोगोंको नाश करनेके लिये पूर्वकालमें धन्वन्तरि भगवान्ने निर्माण किया है। तथा मनुष्योंको सिद्धि और शुभका देनेवाला है ॥ ४० ॥

लोहमृत्युंजयो रसः ।

रसगंधकलोहाभ्रं कुनटी मृतताम्रकम् । विषमुष्टिवराटं च तुत्थं शंखं रसांजनम् ॥ जातीफलं च कटुकीं द्विक्षारं कानकं तथा । व्योषं हिंगु सैन्धवं च प्रत्येकं भावयेत्ततः ॥ सूर्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च । सूर्यावर्त्तेन मतिमान् वटिकां कारयेत्ततः ॥ प्लीहानं यकृतं गुल्ममष्ठीलां च विनाशयेत् । अग्रमांसं तथा शोथं तथा सर्वोदराणि च ॥ वातरक्तं च कमठं चान्तर्विद्रधिमेव च४१

भाषा—पारा, गंधक, लोहा, अभ्रक, मैनशिल, तांबेकी भस्म, कुचला, कौडी, तूतिया, शंख, रसोन, जायफल, कुटकी, जवाखार, सज्जी, जमालगोटा, सोंठ, मिरच, पीपल, हींग और सैंधानोन प्रत्येक समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर ले, फिर सूर्य्यावर्त्त (हुलहुल) के रसकी सात भावना देकर बेलके पत्तोंके रसकी

सात भावना देवे। पश्चात् सुखाकर हुलहुलके रसमें दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे। इसको सेवन करनेसे प्लीहा, यकृत्, गुल्म, अष्ठीला, अग्रमांस, शोथ, सर्व प्रकारके उदररोग, वातरक्त, कमठ और अन्त्रवृद्धि रोगादि दूर होते हैं ॥ ४१ ॥

बृहद्गुडपिप्पली ।

विडङ्गं त्र्यूषणं हिङ्गु कुष्ठं लवणपञ्चकम् । त्रिक्षारं फेणकं चव्यं श्रेयसी कृष्णजीरकम् ॥ तालपुष्पोद्भवं क्षारं नाड्याः कूष्माण्डकस्य च । अपामार्गोद्भवं क्षारं चित्रायाश्चित्रकं तथा ॥ एतानि समभागानि पुराणो द्विगुणो गुडः । गुडतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णं चैव कणोद्भवम् ॥ मर्दयित्वा दृढे पात्रे मोदकानुपकल्पयेत् । भक्षयेद्वर्द्धयेन्नित्यं प्लीहानं हन्ति दुस्तरम् ॥ प्रमेहं पाण्डुरोगं च कामलां वह्निमान्द्यकम् । यकृतं पञ्चगुल्मं च तूदरं सर्वरूपकम् ॥ जीर्णज्वरं तथा शोथं कासं पंचविधं तथा । अश्विभ्यां निर्मिता ह्येषा सुबृहद्गुडपिप्पली ॥ ४२ ॥

भाषा-वायविडंग, सोंठ, मिरच, पीपल, हींग, कूठ, पांचों नोन, जवाखार, सज्जी, सुहागा, समुद्रफेन, चव्य, गजपीपल, काला जीरा, ताडके फूलोंकी भस्म, पेठेकी डंडीकी भस्म, चिरचिटेका खार, इमलीकी भस्म और चीतेकी भस्म ये सब समान भाग लेवे, इन सबोंसे दुगुना पुराना गुड लेवे और गुडकी बराबर पीपलका चूर्ण लेवे, सबोंको एक उत्तम बासनमें मर्दनकर लड्डू बना लेवे । प्रतिदिन एक एक मोदक क्रमसे बढाकर खाय । यह मोदक दुस्तर प्लीहारोग, प्रमेह, पाण्डुरोग, कामला, मंदाग्नि, यकृत्, पांचों प्रकारके गुल्म, सर्व प्रकारके उदररोग, जीर्णज्वर, शोथ और पांचों प्रकारकी खांसी इन सबोंको दूर करे है । यह बृहद्गुडपिप्पली अश्विनीकुमारोंने निर्माण की है ॥ ४२ ॥

दारुभस्म ।

दारु सैन्धवगन्धं च भस्मीकृत्य प्रयत्नतः ।
प्लीहानमग्रमांसं च यकृतं च विनाशयेत् ॥ ४३ ॥

भाषा-पीपल (अन्यमते दारुमोचाख्य विष अथवा दारुहलदी) सेंधानोन और गंधककी एकत्र भस्म करके सेवन करनेसे प्लीहा, अग्रमांस और यकृतरोग दूर होता है ॥ ४३ ॥

इति उदररोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ शोथरोगनिदानम् ।

शोथकी संप्राप्ति ।

रक्तपित्तकफान् वायुर्दुष्टोदुष्टान् बहिः शिराः ।
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥
उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः ॥ १ ॥

भाषा-अपने कारणोंसे कुपित हुई वायु दुष्ट हुए रक्त, पित्त और कफको बाहरकी नसोंमें प्राप्त करके उनकी गति रोक देवे, इसके रुकनेसे वह वायु त्वचा और मांसमें कठिन और ऊंची सूजनको उत्पन्न करे, यह त्रिदोषसंग्रहसे होती है ॥ १ ॥

यह सूजन कारणविशेष और रूपभेदसे नौ प्रकारकी है ।

सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् ।
दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि ॥
तत्पूर्वरूपं दवथुः शिरायामोऽङ्गगौरवम् ॥ २ ॥

भाषा-तहां पृथक् पृथक् भेदोंसे तीन, द्वन्द्वज तीन, सन्निपातज एक, अभिघातज एक और विषज एक ऐसे नौ प्रकारकी हैं । सूजनके उत्पन्न होनेके पूर्व नेत्रादिकोंमें सन्ताप, नसोंका तनना और जिस अंगमें सूजन होनेवाला होता है वह भारी होता है ॥ २ ॥

निदान ।

शुद्ध्यामयाभुक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा ।
दध्याममृच्छाकविरोधिदुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥
अर्शांस्यचेष्टा न च देहशुद्धिर्मर्म्मोपघातो विषमा प्रसूतिः ।
मिथ्योपचारः प्रतिकर्म्मणां च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः॥३ ॥

भाषा-वमन विरेचनादि, ज्वरादि और अभोजन (उपवास या विगुण भोजन), इनसे जो मनुष्य कृश और बलहीन हो गये हैं उनको क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, भारी, दही, कच्चे पदार्थ, मृत्तिका, शाक, विरुद्ध दुष्ट और विषयुक्त भोजनका सेवन करना सूजनका कारण होता है तथा अर्शरोग, निचेष्ट रहना, शरीरकी अशुद्धता, मर्मस्थानमें अभिघातका लगना, असमय गर्भपातादिक तथा वमनादिका मिथ्या उपचार ये सब शोथरोगके कारण हैं ॥ ३ ॥

सामान्यलक्षण ।

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमुष्माथ शिरातनुत्वम् ।
सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिङ्गं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ४ ॥

भाषा-शरीर भारी, चित्तमें व्याकुलता, ऊंची सूजन, दाह, नसें पतली हो जांय, रोमांचोंका हो आना और देहका रंग बदल जाय ये शोथके सामान्य लक्षण हैं ॥ ४ ॥

वातज शोथके लक्षण ।

चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः सुषुप्तिहर्षार्त्तियुतोऽनिमित्ततः । प्रशाम्यति प्रोन्नमतिप्रपीडितो दिवा बली च श्वयथुः समीरणात् ॥ ५ ॥

भाषा-वातज शोथ चंचल, त्वचा पतली हो, कर्कश हो, लाल, काली, स्पर्श करनेसे न मालूम हो, रोमांच हो आवे, तीव्र पीडा, विनाकारण कभी शांत हो जाय, कभी बढ जाय और दबानेसे दबके फिर उठ आवे तथा दिनमें प्रबल हो ॥ ५ ॥

पित्तज शोथके लक्षण ।

मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान् भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः ।
य उष्यते स्पर्शरुगक्षिरागकृत् स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान् ॥ ६ ॥

भाषा-पित्तकी सूजन कोमल, गंधयुक्त, काले और पीले रंगकी तथा भ्रम, ज्वर, पसीना, तृषा, मदयुक्त, सूजनमें दाह, स्पर्श करनेसे पीडा हो, नेत्रोंमें लाली हो, सूजनमें अत्यन्त दाह और पाकयुक्त हो ॥ ६ ॥

कफज शोथके लक्षण ।

गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत् ।
सकृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो न चोन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः ॥ ७ ॥

भाषा-कफकी सूजन भारी, स्थिर और पाण्डुरंगकी होती है । इसमें अरुचि, मुखसे पानीका निकलना, निद्रा, वमन, मंदाग्नि हो, यह बहुत दिनोंमें उत्पन्न हो और बहुत दिनोंमें नष्ट हो, दबानेसे ऊपरको नहीं उठे और रात्रिमें बलवान् हो ॥ ७ ॥

द्वंद्वज और संनिपातज शोथके लक्षण ।

निदानाकृतिसंसर्गात् श्वयथुः स्याद्विदोषजः ।
सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥ ८ ॥

भाषा–दो दोषोंके जिसमें लक्षण हों उसको दो दोषज सूजन जानना, जिस सूजनमें वात, पित्त, कफ तीनोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातकी जानना॥८॥

अभिघातज शोथके लक्षण।

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः। हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः॥ रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान्। भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः॥ ९॥

भाषा–लाठी आदिकी चोटके लगनेसे, शस्त्रादिके छिदनेसे या कटने फटनेसे अथवा घाव आदिके होनेसे, शीतल पवन अथवा समुद्रकी पवनके लगनेसे, भिलावेके तेलके लगनेसे और कौंछकी फलीके छू जानेसे सूजन उत्पन्न होती है। उसको अभिघातज कहते हैं। यह चारों ओर फैल जाती है। इसमें दाह अधिक होती, इसका रंग लाल होता है और इसमें विशेषकरके पित्तके लक्षण होते हैं॥ ९॥

विषज शोथके लक्षण।

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात्। दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि॥ विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसङ्करात्। विषवृक्षानिलस्पर्शात् गरयोगावचूर्णनात्॥ मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः॥ १०॥

भाषा–विषवाले प्राणियोंके अंगके स्पर्शसे अथवा उनके मूत्रके स्पर्शसे या निर्विष जो मनुष्यादिक उनके डाढ दांत नख इनके लगनेसे अथवा विषैले जीवोंके मल, मूत्र और वीर्यसे सने हुए एवं मलिन ऐसे वस्त्रोंके स्पर्शसे अथवा विषैले वृक्षोंकी पवनके स्पर्शसे या संयोगज विषके शरीरमें लग जानेसे जो सूजन उत्पन्न होती है इसको विषज कहते हैं। वह सूजन कोमल, चंचल, भीतरको जानेवाली, शीघ्र उत्पन्न होनेवाली, दाह और पीडाकारक होती है॥ १०॥

दोषपरत्वसे सूजनका स्थानान्तर कथन।

दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामाशयस्थिताः।
पक्वाशयस्था मध्ये तु वर्चःस्थानगतास्त्वधः॥
कृत्स्नदेहमनुप्राप्ताः कुर्य्युः सर्वसरं तथा॥ ११॥

भाषा–आमाशयमें रहनेवाले दोष, शरीरके ऊर्ध्वभागमें पक्वाशयमें रहनेवाले दोष, शरीरके मध्यभागमें और मलाशयमें रहनेवाले दोष, शरीरके नीचेके भागमें एवं सर्व शरीरमें स्थित दोष सर्व शरीरमें सूजनको उत्पन्न करते हैं॥ ११॥

शोथके कृच्छ्रादिभेद ।

यो मध्यदेशे श्वयथुः स कष्टः सर्वगश्च यः ।
अर्द्धाङ्गेरिष्टभूतः स्यात् यश्चोर्ध्वं परिसर्पति ॥ १२ ॥

भाषा-जो सूजन शरीरके मध्यभागमें उत्पन्न हुई हो अथवा सर्व शरीरमें उत्पन्न हुई हो वह कष्टसाध्य है । जो सूजन नीचेके भागमें उत्पन्न होकर ऊपरको चढे वह अत्यन्त कष्टसाध्य है ॥ १२ ॥

असाध्यलक्षण ।

श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च । यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति श्वयथुं तं विवर्जयेत् ॥ अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः । पुरुषं हन्ति नारीं च मुखजो गुदजो द्वयम् ॥ नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः ॥ १३ ॥

भाषा-श्वास, तृषा, छर्दी, दुर्बलता, ज्वर और अन्नमें अरुचि इन लक्षणोंयुक्त सूजनके रोगियोंको वैद्य त्याग दे । जो अन्यान्यरोगोंके उपद्रवमें उत्पन्न नहीं हुई हो अर्थात् जो केवल अपने निदानसे अपने आपही उत्पन्न हुई हो ऐसी सूजन यदि मनुष्यके पैरोंमें उत्पन्न होकर ऊपरको जाय तो मनुष्यको मारे और यदि स्त्रीके मुखसे उत्पन्न होकर पैरोंपर जाय तो स्त्रीको मारे । एवं जो गुह्यस्थानमें उत्पन्न होकर सर्व शरीरमें फैल जाय वह स्त्रीपुरुष दोनोंको मारे और जो शोथ नवीन और उपद्रवरहित है वह साध्य है ॥ १३ ॥

इति शोथरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ शोथरोगचिकित्सा ।

क्वाथकल्कादिसेवन ।

शुण्ठी पुनर्नवैरण्डपंचमूलशृतं जलम् । वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे ॥ पुनर्नवानिम्बत्रिवृद्गुडूचीशम्याकपथ्यासुरदारुकल्कम् । शोथे कफोत्थे महिषाख्यमूत्रयुक्तं पिबेद्वा सलिलं तथैषाम् ॥ बिल्वपत्ररसं पेयं शोषणं श्वयथौ त्रिजे ।

गुडपिप्पलिशुण्ठीनां चूर्णं श्वयथुनाशनम् ॥ आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं बस्तिशोधनम् ॥ १४ ॥

भाषा-सोंठ, पुनर्नवा, अंड, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, कटाई और गोखरूका काथ बनाकर पान करनेसे वातिक सूजन दूर होती है। पुनर्नवा, सोंठ, निसोत, गिलोय, अमलतास, हरड, देवदारु इन सबोंका चूर्ण कर गूगल मिलाकर गोमूत्रके साथ पान करनेसे अथवा इन सब औषधियोंका काथ बनाकर गूगल और गोमूत्र डालकर पान करनेसे शोथ रोग दूर होता है। बिलके पत्तोंके रसमें काली मिरचोंका चूर्ण डालकर पान करनेसे त्रिदोषज सूजन दूर होती है। गुड, पीपल और सोंठ इनका चूर्ण बनाकर सेवन करनेसे सूजन, आमाजीर्ण और शूलनाशक है तथा बास्तिशोधक है ॥ १४ ॥

चित्रकाद्यं घृतम् ।

सचित्रका धान्ययवानिपाठाः सदीप्यकत्र्यूषणवेतसाम्लाः ।
बिल्वात् फलं दाडिमयावशूकं सपिप्पलीमूलमथापि चव्यम् ॥
पिष्ट्वाक्षमात्राणि जलाढकेन पक्त्वा घृतप्रस्थमथोपयुंज्यात् ।
अर्शांसि गुल्मं श्वयथुं च कृच्छ्रं निहन्ति वह्निं च करोति दीप्तम् १५

भाषा-चीता, धनिया, अजवायन, पाढ, अजमोद, सोंठ, मिरच, पीपल, अमलबेत, बेलगिरी, अनार, जवाखार, पीपलामूल और चव्य प्रत्येक एक एक तोला लेकर पीसकर आठ सेर जलके द्वारा दो सेर घीको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। यह चित्रकाद्यघृत बवासीर, गुल्म, सूजन, मूत्रकृच्छ्र इन सबोंको दूर करे है और अग्निको दीपन करे है ॥ १५ ॥

शैलेयाद्यं तैलम् ।

शैलेयकुष्ठागरुदारुकौन्तीत्वक्पद्मकैलाम्बुपलाशमुस्तैः ।
प्रियङ्गुस्थौणेयकहेममांसीतालीशपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥
श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिः पक्त्वा नखैश्चापि अथोपलाभम् ।
वातान्वितोऽभ्यङ्गनुदन्ति तैलं सिद्धं सुपिष्टैरपि च प्रदेहम् ॥१६॥

भाषा-भूरिछरीला, कूठ, अगर, देवदारु, रेणुका, दालचीनी, पद्माख, इलायची, सुगंधवाला, ढाकके बीज, नागरमोथा, फूलप्रियंगु, थुनेर, नागकेशर, बालछड, तालीशपत्र, केवटीमोथा, तेजपात, धनिया, गंधबिरोजा, सुगंधतृण, पीपल, असबरग और नखसुगंध द्रव्य इन सब द्रव्योंके कल्कके द्वारा तेलको सिद्ध कर मर्दन

करनेसे एवं इन्हीं औषधियोंको इसी तेलमें पीसकर शरीरपर मलनेसे वातज सूजन दूर होती है ॥ १६ ॥

लंघनपाचनादिप्रकारः।

लंघनं पाचनं शोथे शिरःकायविरेचनम्। वमनं च यथासन्नं यथादोषं प्रकल्पयेत्॥ स्नेहोऽथ वातिके शोथे बद्धविट्के निरूहणम्। पयो घृतं पैत्तिके तु कफजे रूक्षणः क्रमः॥ अथामजं लंघनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुल्बणदोषमादितः। शिरोगतं शीर्षविरेचनैरधो विरेचनैरूर्द्धहरैस्तथोर्ध्वगम्॥ उपाचरेत् स्नेहभवं विरूक्षणैः प्रकल्पयेत् स्नेहविधिं च रक्षिते॥ दशमूलं सदा शस्तं वातशोथे विशेषतः। वातजे तैलमेरण्डं विड्ग्रहे पयसा पिबेत्॥ गोमूत्रस्य प्रयोगो वा शीघ्रं श्वयथुनाशनः। यवागूर्मानकन्दस्य प्रायशश्चातिशोथजित्॥ निम्बपत्ररसं पातुं शोषणं श्वयथौ त्रिजे। विड्संगे चैव दुर्नाम्नि विदध्यात् कामलासु च॥ स्थलपद्ममयं कल्कं पयसालोड्य पाययेत्। प्लीहामयहरं चैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथजित्॥ भूनिम्बदारुकल्कं जग्ध्वा पेयः पुनर्नवाक्वाथः। अपहरति नियतमाशु शोथं सर्वाङ्गिकं नृणाम्॥ १७॥

भाषा-शोथरोगमें वात, पित्त और कफका बलाबल विचारकर लंघन, पाचन, नस्य, विरेचन और वमन करावे। वातिक शोथरोगमें स्नेहकर्म्म, मलबद्धरोगमें निरूहणबस्ति, पैत्तिकशोथमें दूध और घृतपान एवं कफजन्य शोथमें रूक्षकर्म प्रयोग करने चाहिये। आमजन्य शोथरोगमें क्रमसे लंघन और पाचन प्रयोग करे। यदि दोषोंकी प्रबलता हो तो संशोधक औषधि प्रयोग करे। मस्तकगत शोथमें नस्य, निम्नभागगत शोथमें विरेचन और ऊर्ध्वगतशोथमें वमन प्रयोग करे। तैलघृतादि स्नेह पदार्थोंके सेवन करनेसे उत्पन्न हुई सूजनमें रूक्षक्रिया और रूखे पदार्थोंके सेवन करनेसे उत्पन्न हुई सूजनमें स्निग्ध क्रिया प्रयोग करे। वातजन्य शोथरोगमें दशमूलका काथ पान करे। यदि वातजशोथमें मलबद्ध होय तो दूधके साथ अंडीका तेल पीवे, इससे कोठा साफ हो जाता है। गोमूत्रकी सूजनके स्थानमें लगानेसे अथवा गोमूत्रको पान करनेसे शीघ्रही सूजन दूर होती है। पुराने मानकन्द-

की यवागू पान करनेसे सूजन दूर होती है । नीमके पत्तोंके रसमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे त्रिदोषज सूजन मलरोध, बवासीर और कामलारोग दूर होता है । स्थलकमलको दूधमें पीसकर पान करनेसे प्लीहारोग सर्वांगगत और एकांगगत सूजन दूर होती है । चिरायता और देवदारुके कल्कको पुनर्नवेके क्वाथमें डालकर पान करनेसे सर्वांगगत सूजन दूर होती है ॥ १७ ॥

मानमण्डः ।

पुराणं मानकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृततण्डुलम् । साधितं क्षीरतोयाभ्यामभ्यसेत् पायसं तु तत् ॥ हन्ति वातोदरं शोथं ग्रहणीं पाण्डुतामपि । सिद्धो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः॥१८॥

भाषा-पुराना मानकन्द १ भाग और चावल २ भाग इनको दूध और जलमें पकाकर मांडको बनावे । इस मांडका सेवन करनेसे वातोदर, सूजन, संग्रहणी और पाण्डुरोग दूर होता है ॥ १८ ॥

पुनर्नवादिचूर्णम् ।

पुनर्नवा दार्व्यभया पाठा बिल्वं श्वदंष्ट्रिका । बृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पल्यौ चित्रकं वृषः ॥ समभागानि संचूर्ण्य गव्यं मूत्रेण वा पिबेत् । बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रविसारिणम् ॥ हन्ति शोथोदराण्यष्टौ व्रणांश्चैवोद्धतानपि ॥ १९ ॥

भाषा-पुनर्नवा, देवदारु, हरड, पाठ, बेल, गोखरु, कटाई, कटेरी, हलदी, दारुहलदी, पीपल, चीता और अडूसा ये सब समान भाग बारीक चूर्ण पीसकर गोमूत्रके साथ पान करनेसे सर्व प्रकारकी सूजन, आठ प्रकारके उदररोग और सर्व प्रकारके व्रण दूर होते हैं ॥ १९ ॥

पुनर्नवादिलेहः ।

पुनर्नवामृता दारु दशमूलरसाढके । आर्द्रकस्वरसप्रस्थे गुडस्य च तुलां पचेत् ॥ तत्सिद्धं व्योषपत्रैलात्वक्चव्यैः कार्षिकैः पृथक् । चूर्णीकृतैः क्षिपेत् शीते मधुनः कुडवं लिहेत् ॥ लेहः पौनर्नवो नाम शोथशूलनिषूदनः। कासश्वासारुचिहरो बलवर्णाग्निवर्द्धनः ॥ २० ॥

भाषा-पुनर्नवा, गिलोय, देवदारु और दशमूलका रस अथवा क्वाथ आठ सेर, अदरखका स्वरस दो सेर और पुराना गुड साढे बारह सेर सबोंको मिलाकर

यथाविधिसे पकावे जब पकते पकते गाढा हो जाय तब उसमें सोंठ, मिरच, पीपल, तेजपात, इलायची, दालचीनी और चव्य प्रत्येक एक एक लेकर पीसकर डाल देवे। जब सिद्ध होकर शीतल हो जाय तब एक सेर इसमें सहत मिला देवे। यह पुनर्नवादि लेह सूजन, शूल, खांसी, श्वास और अरुचिको दूर करे है तथा बल, वर्ण और अग्निको बढानेवाला है ॥ २० ॥

अग्निमुखमण्डूर।

पलद्वादश मण्डूरं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत्। पंचकोलं देवदारु मुस्तं व्योषं फलत्रयम् ॥ विडङ्गं पलमात्रं तु पाकान्ते चूर्णितं क्षिपेत्। पाययेदक्षमात्रन्तु तक्रेण सह बुद्धिमान् ॥ असाध्यं श्वयथुं हन्ति पाण्डुरोगं चिरोद्भवम्। स्वयमग्निमुखं नाम सर्पिः क्षौद्रेण मर्दयेत् ॥ २१ ॥

भाषा–बारह पल मण्डूरको आठगुने गोमूत्रमें पकावे जब पककर सिद्ध हो जाय तब पंचकोल, देवदारु, नागरमोथा, त्रिकुटा, त्रिफला और वायविडंग प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल मिला देवे। इस औषधिको घी और सहतमें खरल करके तक्रके साथ पान करनेसे असाध्य सूजन और बहुत दिनोंका पाण्डुरोग दूर होता है ॥ २१ ॥

बृहत् शुष्कमूलाद्यं तैलम्।

मूलकं दशमूलं च कणामूलं पुनर्नवा। प्रत्येकं प्रस्थमाहृत्य वारिण्यष्टगुणे पचेत् ॥ तेन पादावशेषेण तैलस्यार्द्धाढकं पचेत्। दापयेत्तैलतुल्यं च गोमूत्रं कुशलो भिषक् ॥ मूलकं चामृता शुण्ठी पटोलं चपला बला। पाठा पुनर्नवामूलं बालोशीरं च शिग्रुजम् ॥ निर्गुण्डीद्राशनं श्यामा करंजं वासकं तथा। कणा हरीतकी चैव वचा पुष्करमूलकम् ॥ रास्ना विडंगं चव्यं च द्वे हरिद्रे च धान्यकम्। द्विक्षारं सैन्धवं चैव देवदारु सपद्मकम् ॥ शठी कारिकणा बिल्वं मंजिष्ठा च ततः क्रमात्। प्रत्येकार्द्धपलं चैषां पेषयित्वा विनिःक्षिपेत् ॥ अभ्यङ्गेनास्य तैलस्य ये गुणास्तांस्ततः शृणु। नानाशोथा विनश्यन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ॥

मलोद्भवाश्च ये केचित् विशेषेण जलाश्रयाः । अवश्यं निर्जरा देहा भविष्यन्ति न संशयः ॥ २२ ॥

भाषा-सूखी मूली, दशमूल, पीपलामूल, पुनर्नवा प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेकर आठगुने जलमें पकावे। जब चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतार ले फिर इसमें तिलका तेल ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, कल्कके लिये मूली, गिलोय, सोंठ, पटोल, पीपल, खिरेटी, पाढ, पुनर्नवामूल, सुगंधवाला, खस, सहजनेके बीज, निर्गुण्डी, भांग, अनन्तमूल, करंज, अडूसा, पीपल, हरड, वच, पोहकरमूल, रायसन, वायविडंग, चव्य, हलदी, दारुहलदी, धनिया, जवाखार, सज्जी, सेंधानोन, देवदारु, पद्माख, कचूर, गजपीपल, बेलगिरी और मजीठ प्रत्येक दो दो तोले पीसकर डाल देवे। यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे। इस तेलका मालिस और नासकर्ममें प्रयोग करे। यह तैल अनेक प्रकारके वातपित्तकफोत्पन्न शोथ, मलसे उत्पन्न हुए, जलोद्भव शोथ आदि सर्व प्रकारके शोथोंको दूर करता है। इस तेलके प्रभावसे शरीर अवश्य जरारहित अर्थात् तरुण हो जाता है ॥ २२ ॥

शोथशार्दूलतैलम् ।

धत्तूरो दशमूलं च सिन्धुवारं जयन्तिका। पुनर्नवा करंजश्च षट् पलानि प्रगृह्य च ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् । प्रस्थं च कटुतैलस्य कल्कान्येतानि दापयेत् ॥ रास्ना पुनर्नवा दारु मूलकं नागरं कणा । सिद्धं तैलवरं ह्येतन्नाशयत्यस्य सेवनात् ॥ शोथं सुदारुणं घोरं वातपित्तकफोद्भवम् । असाध्यं सर्वदेहस्थं सन्निपातसमुद्भवम् ॥ श्लीपदं च ज्वरं पाण्डुं कृमिदोषं विनाशयेत् । छिन्नव्रणप्रशमनं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ शोथशार्दूलकं तैलं बलवर्णप्रसाधनम् ॥ २३ ॥

भाषा-धतूरा, दशमूल, संभालू, जयंती, पुनर्नवा और करंजुआ प्रत्येक छः छः पल लेकर ३२ सेर जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार ले फिर इसमें दो सेर तिलका तेल, कल्कके लिये रायसन, पुनर्नवा, देवदारु, सूखी मूली, सोंठ और पीपल प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले मिलाकर विधिपूर्वक तेलको सिद्ध करे। इस तेलका सेवन करनेसे वातपित्तकफोत्पन्न अत्यन्त भयंकर घोर सूजन, असाध्य सूजन, सर्व देहव्याप्त सूजन, त्रिदोषज शोथ, श्लीपदरोग, ज्वर, पाण्डुरोग, कृमिरोग, छिन्नव्रण और नाडीव्रणादि रोग दूर होते हैं। यह शोथशार्दूलतैल बल और वर्णको प्रसन्न करनेवाला है ॥ २३ ॥

शोथकालानलो रसः।

चित्रं कुटजबीजं च श्रेयसी सैन्धवं तथा। पिप्पली देवपुष्पं च सजातीफलटङ्कणम्॥ लौहमभ्रं तथा गन्धं पारदेनैव मिश्रितम्। एतेषां कर्षमात्रेण वटीं गुंजामितां शुभाम्॥ भक्षयेत् प्रातरुत्थाय कोकिलाक्षरसेन च। ज्वरमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा॥ कासं श्वासं तथा शोथं प्लीहानं हन्ति दुस्तरम्। मेहं मन्दानलं शूलं संग्रहग्रहणीं तथा॥ अवश्यं नाशयेच्छोथं कर्दमं भास्करो यथा। शोथकालानलो नाम रोगानीकविनाशनः२४

भाषा–चीता, कूडेके बीज, गजपीपल, सैंधानोन, पीपल, लौंग, जायफल, सुहागा, लोहा, अभ्रक, गंधक और पारा प्रत्येक एक एक तोला लेकर बारीक पीसकर एक रत्तीकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक गोली तालमखानेके रसके साथ खाय। यह शोथकालानलरस आठ प्रकारके ज्वर, साध्य या असाध्य खांसी, श्वास, शोथ, दुस्तर प्लीहारोग, प्रमेह, मंदाग्नि, शूल, संग्रहणी और विशेषकरके सूजनको नष्ट करे है। जिस प्रकार अंधकारके समूहको सूर्य नष्ट करे है। यह शोथकालानलरस सर्व प्रकारके रोगोंको हरनेवाला है॥ २४॥

दुग्धवटी।

अमृतं सूर्य्यगुञ्जं स्यादहिफेनं तथैव च। पंचरक्तिकलोहं च षष्टिरक्तिकमभ्रकम्॥ दुग्धैर्गुञ्जाद्वयमिता वटी कार्या भिषग्विदा। दुग्धानुपानं दुग्धैश्च भोजनं सर्वदा हितम्॥ शोथं नानाविधं हन्ति ग्रहणीं विषमज्वरम्। मन्दाग्निं पाण्डुरोगं च नाम्ना दुग्धवटी वरा॥वर्जयेल्लवणं वारि व्याधिनिःशेषितावधि॥२५॥

भाषा–अमृत (शुद्ध मीठा) १२ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, लोहा ५ रत्ती, अभ्रक ६ रत्ती इन सबोंको एकत्र दूधमें पीसकर दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे। अनुपान दूध है। पथ्य दूधके साथ भोजन। यह दुग्धवटी अनेक प्रकारकी सूजन, संग्रहणी, विषमज्वर, मंदाग्नि, पाण्डु आदि रोगोंको दूर करे है। जबतक अच्छे प्रकारसे आराम न हो जाय तबतक इसपर नोन और जल त्याग देवे॥२५॥

वैद्यनाथवटी।

पक्वेष्टकाहरिद्राभ्यामागारधूमकेन च। शोधितं सूतकं ग्राह्यं तोलकं तुल्या धृतम्॥ भृंगराजरसैः शुद्धं गन्धकं सूततुल्य-

कम् । हरितालं विषं तुल्यमेलवालुकताम्रकम् ॥ खर्परं माक्षिकं कान्तं सर्वमेकत्र कारयेत् । सर्वोद्धो कज्जली ग्राह्या भावयेच्च पुनः पुनः ॥ सिन्धुवाररसे चैव ज्योतिष्मत्या रसे तथा । रसेऽपराजितायाश्च जयन्त्याः स्वरसे तथा ॥ रक्तचित्रकमूलोत्थे रसे च परिभावयेत् । वटिकां सर्षपाकारां योजयेत् कुशलो भिषक् ॥ ततः सप्तवटीर्दद्याद्दुग्धेन वारिणा सह । अनुपानं च कर्तव्यं कज्जल्या कणया सह ॥ सन्निपातज्वरे चैव सशोथे ग्रहणीगदे । पाण्डुरोगेऽग्निमान्द्ये च विविधे विषमज्वरे ॥ शुक्रमज्जगते दद्यान्नतु कासे कदाचन । नित्यं दध्ना च भोक्तव्यं सिता नित्यं तथैव च ॥ स्नातव्यं ह्यभयान्नित्यं वयोदोषानुसारतः । अलवणं वारिहीनं दधि पथ्यं सदा भवेत् ॥ वैद्यनाथवटी नाम्ना वैद्यनाथेन निर्म्मिता ॥ २६ ॥

भाषा–उत्तम पकी हुई ईंटका चूर्ण, हलदी और घरका धूंआ इनसे शुद्ध किया पारा एक तोला, भांगरेके रसमें शुद्ध किया हुआ गंधक एक तोला, दोनोंको एकत्र खरल करके कजली बना लेवे। फिर शुद्ध हरिताल, शुद्ध अमृत विष, एलुआ, तांबेकी भस्म, शुद्ध खपरिया, शुद्ध सोना और कान्तिलोहकी भस्म प्रत्येक चार चार मासे लेकर उक्त कजलीमें मिलाकर निर्गुंडीके रसकी, मालकांगनीके रसकी, अपराजिताके रसकी, जयंतीके रसकी और लाल चीतेके रसकी अलग २ भावना देकर सरसोंकी बराबर गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन सात गोली दूध या गरम जलके साथ सेवन करे। अनुपान पीपलके चूर्णकी कजली। इसका सन्निपातज्वर, सूजन, संग्रहणी, पाण्डुरोग, मंदाग्नि, अनेक प्रकारके विषमज्वर, शुक्रगत ज्वर और मज्जागत ज्वरमें प्रयोग करे। परन्तु कासरोगमें इसको कदापि नहीं देवे। इसपर निरन्तर चीनीके साथ दही सेवन करे। रोगीकी अवस्था और दोषोंका विचार कर नित्य स्नान करावे। लवण और जलरहित दही सदैव पथ्य है। यह वैद्यनाथवटी वैद्यनाथने निर्माण की है ॥ २६ ॥

कंसहरीतकी ।

द्विपंचमूलस्य पचेत् कषाये कंसेऽभयानां च शतं गुडाच्च । लेहे सुशीते च विनीय चूर्णं व्योषं त्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च ॥

प्रस्थार्द्धमानं मधुनः सुशीते किञ्चिच्च चूर्णादपि यावशूकात्।
एकाभयां प्राश्य ततश्च लेहात् शुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम्॥
श्वासज्वरारोचकमेहगुल्मप्लीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगान्।
कार्श्यामवातमसृगम्लपित्तं वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान्॥ २७॥

भाषा-दशमूल ८ सेर, हरड १००, पाकके लिये जल ६४ सेर, शेष ८ सेर फिर इस क्राथको छानकर इसमें १२॥ सेर पुराना गुड मिलाकर फिर उन हरडोंकी गुठली निकालकर इसमें वे हरडे मिला देवे। तत्पश्चात् मृत्तिकाके पात्रमें पकावे जब पाक समाप्त हो जाय तब पीपल, सोंठ, मिरच, दालचीनी, इलायची, तेजपात प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले मिला देवे। शीतल होनेपर सेरभर सहत और दो तोले जवाखार मिला देवे। प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर एक हरड और दो तोले अवलेह भक्षण करे। यह अवलेह अत्यन्त बढे हुए शोथरोग, श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, त्रिदोषज उदररोग, पाण्डुरोग, कृशता, आमवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्ररोग, वातरोग और शुक्रके दोषोंको दूर करे है॥ २७॥

त्रिकट्वाद्यं लोहम्।

त्रिकटुत्रिफलादन्तीमार्गीत्रिमदशुण्ठकैः।
पुनर्नवासमायुक्तं शोथं हन्ति सुदुस्तरम्॥
लोहं शोथोदरं स्थौल्यं जलोदरनिवारणम्॥ २८॥

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला, दंती, चिरचिटा, नागरमोथा, चीता, वायविडंग, सोंठ और पुनर्नवा ये सब समान भाग और सबोंकी बराबर लोहेका चूर्ण लेवे। सबोंको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे घोर सूजन, शोथोदर, स्थूलता और जलोदररोगको दूर करता है॥ २८॥

सुवर्चलाद्यं लोहम्।

सुवर्चला व्याघ्रनखं चित्रकं कटुरोहिणी।
चव्यं च देवकाष्ठं च दीप्यकं लोहमेव च॥
शोथं पाण्डुं तथा कासमुदराणि निहन्ति च॥ २९॥

भाषा-काला नोन, व्याघ्रनख, चीता, कुटकी, चव्य, देवदारु और अजवायन ये सब समान भाग और सबोंकी बराबर लोहेका चूर्ण लेवे। सबोंको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे सूजन, पाण्डुरोग, खांसी और सर्व प्रकारके उदररोग दूर होते हैं॥ २९॥

क्षारगुटिका।

क्षारद्वयं स्याल्लवणानि पञ्च अयश्चतुष्कं त्रिफला च व्योषम्। सपिप्पलीमूलविडङ्गसारं मुस्ताजमोदामरदारुबिल्वम्॥ कलिङ्गकश्चित्रकमूलपाठा यष्ट्याह्वयं सातिविषं पलाशम्। सहिङ्गु कर्षन्त्वतिसूक्ष्मचूर्णं द्रोणं तथा मूलकशुण्ठकानाम्॥ स्याद्भस्मनस्तत् सलिलेन साध्यमालोड्य यावद् घनमप्यदग्धम्। स्त्यानं ततः कोलसमां च मात्रां कृत्वा तु शुष्कां विधिना प्रयुञ्ज्यात्॥ प्लीहोदरं श्वित्रहलीमकार्शःपाण्ड्वामयारोचकशोथशोषान्। विषूचिकागुल्मगराश्मरीं च सश्वासकासान् प्रणुदेत् सकुष्ठान्॥ ३०॥

भाषा-दोनों खार, पांचों नोन, चारों प्रकारके लोह, त्रिफला, त्रिकुटा, पीपलामूल, वायविडंग, नागरमोथा, अजमोद, देवदारु, बेल, इन्द्रजौ, चीतेकी जड, पाढ, मुलहठी, अतीस, ढाकके बीज और हींग प्रत्येक औषधिका चूर्ण दो दो तोले, सूखी मूलीकी भस्म ३२ सेर, प्रथम क्षारादि औषधियोंका चूर्ण करके अलग रख देवे, फिर इस मूलीके भस्मको जलमें डालकर पकावें जब पकते २ गाढा हो जाय तब ऊपरोक्त चूर्णको डालकर एक एक तोलेकी गोलियां बना लेवे। यह क्षारवटी प्लीहोदर, श्वित्रकुष्ठ, हलीमक, बवासीर, पाण्डुरोग, अरुचि, सूजन, शोष, विषूचिका, गुल्म, विषदोष, अश्मरी, श्वास, खांसी और कुष्ठरोगको नष्ट करे है॥३०॥

वंगेश्वरः।

सौवर्चलं सैन्धवं च विडमौद्भिदमेव च। सामुद्रलवणं चात्र जलमष्टगुणं भवेत्॥ सूतभस्म वंगभस्म भागैकैकं प्रकल्पयेत्। गन्धकं मृतताम्रं च प्रत्येकं च चतुर्गुणम्॥ अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्य सर्वन्तद् गोलकीकृतम्। रुध्वा तु भूधरे पक्त्वा पुटकेन समुद्धरेत्॥ एष वङ्गेश्वरो नाम्ना प्लीहगुल्मोदरान् जयेत्। घृतैर्गुञ्जाद्वयं लिह्यान्निष्कां श्वेतपुनर्नवाम्॥ गवां मूत्रैः पिबेच्चानु रजनीं वा गवां जलैः॥ ३१॥

भाषा-काला नोन, सैंधानोन, विरिया संचरनोन, औद्भिदनोन और समुद्रनोन इन सबोंको समान भाग लेकर आठगुने जलमें पकावे। जब गाढा हो जाय तब

उतारकर सुखा ले, पश्चात् इसमें रांगकी भस्म और पारेकी भस्म एक एक भाग, शुद्ध गंधक, तांबेकी भस्म प्रत्येक चार चार भाग, सबोंको एकत्र पीसकर एक दिन आकके दूधमें खरल करे, फिर गोला बनाकर भूधरयंत्रके द्वारा पुटपाक करे। स्वांगशीतल होनेपर चूर्ण कर ले, यह वंगेश्वररस दो रत्ती प्रमाण प्लीहा, गुल्म और उदररोगोंको दूर करे है। इसको घृतमें मिलाकर चाटे ऊपरसे पुनर्नवा और गोमूत्र अथवा हलदी और गोमूत्रका अनुपान करे ॥ ३१ ॥

इति शोथरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ अण्डवृद्धिब्रध्नरोगनिदानम् ।

संप्राप्ति ।

क्रुद्धोऽनूर्ध्वगतिर्वायुः शोथशूलकरश्चरन् । मुष्कौ वंक्षणतः प्राप्य फलकेशाभिवाहिनीः ॥ प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोशयोः । दोषास्रमेदोमूत्रांत्रैः स वृद्धिः सप्तधा गदः ॥ मूत्रांत्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलम् ॥ १ ॥

भाषा–अपने कारणोंसे कुपित हुई, नीचेको गमन करनेवाली, सूजन और शूलको उत्पन्न करनेवाली वायु कोखमें विचरण करती हुई अण्डकोश और वंक्षणमेंसे अंडमें प्राप्त होकर अंडकी वृद्धि और कोशके वहनेवाली धमनियोंको दूषित कर अंडको बढाती है उसको अंडवृद्धि कहते हैं। यह अंडवृद्धिरोग वातादि भेदोंसे तीन प्रकारका, रक्तसे चौथा, मेदसे पांचवा, मूत्रसे छठा और अंत्रज सातवां, है। तहां मूत्रज और अंत्रजवृद्धि वातसे होती है केवल इनके कारणभेदसे भेद माना गया है ॥ १ ॥

वातादि दोषसे वृद्धिका लक्षण ।

वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ।
कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिंगैश्च पित्तजः ॥
कफवन्मेदसो वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ॥ २ ॥

भाषा–वातज अंडवृद्धि स्पर्शमें वायुसे भरी हुई मसकी समान जान पडे, और विनाकारणही उसमें पीडा होती है। काले फोडोंवाली तथा जिसमें लक्षण मिलते हों उसको पित्तकी वृद्धि अथवा रक्तकी वृद्धि जानना। अंडवृद्धि कफकी अंडवृद्धिकी समान कोमल और ताडके फलकी समान हो

भाषा-गूगल और अंडीके तेलको गोमूत्रमें मिलाकर पान करनेसे बहुत दिनोंकी वातज अंडवृद्धि दूर होती है ॥ १० ॥

गोमूत्रसह हरीतकीभक्षण।

गोमूत्रसिद्धां रुबुतैलभृष्टां हरीतकीं सैन्धवसंप्रयुक्ताम् ।
खादेन्नरः कोष्णजलानुपानं निहन्ति वृद्धिं चिरजां प्रवृद्धाम् ॥ ११ ॥

भाषा-हरडको गोमूत्रमें पकाकर अंडीके तेलमें भूनकर किंचित् सेंधानोनके साथ मिलाकर गरम जलके अनुपानसे भक्षण करनेसे बहुत दिनोंका पुराना वृद्धि-रोग दूर होता है ॥ ११ ॥

प्रलेपादिप्रकारः।

चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम् । क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याद्दाहशोथरुजापहः ॥ पंचवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम् । सर्वपित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥ श्लेष्मवृद्धिमुष्णवीर्यैर्मूत्रपिष्टैः प्रलेपनम् । पीतदारुकषायं च पिबेन्मूत्रेण संयुतम् ॥ स्विन्नं मेदःसमुत्थं च लेपयेत् सुरसादिना । शिरोविरेकद्रव्यैर्वा सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलागोक्षुरसाधितः । क्वाथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुबुतैलेन मिश्रितः ॥ भृष्टो रुबुकतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः । कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोगहरः परः ॥ अत्यभिष्यन्दिगुर्वन्नसेवनान्निचयं गतः । करोति ग्रन्थिवच्छोथं दोषो वंक्षणसंधिषु ॥ ज्वरशूलांगदाहाढ्यं तं ब्रध्नमिति निर्दिशेत् । अजाक्षीरेण गोधूमकल्कं कुन्दुरुकस्य वा ॥ प्रलेपनं सुखोष्णं स्याद्ब्रध्नशूलहरं परम् । अजाजीहबुषाकुष्ठगोधूमबदराणि च ॥ कांजिकेन समं पिष्ट्वा कुर्याद्ब्रध्ने प्रलेपनम् ॥ १२ ॥

भाषा-चंदन, मुलहठी, कमलकेशर, खस और नीलोत्पल (नीलोफर) इन सबोंको समान भाग लेकर दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे अण्डकोषगत दाह, शोथ और यंत्रणा दूर होती है। पंचवल्कलोंको घीमें पीसकर प्रलेप करनेसे पित्तज अंडवृद्धि दूर होती है तथा पित्तज अंडवृद्धिमें सर्व पित्तनाशक कार्य करे। रक्तज वृद्धिरोगमें रक्तमोक्षण (फस्त) करावे। कफजन्य अंडवृद्धिरोगमें बृहत्पंचमूलादि गरम

औषधि गोमूत्रमें पीसकर प्रलेप करनेसे एवं देवदारुके काथमें गोमूत्र डालकर पान करनेसे अंडवृद्धि शांत होती है। मेदज अंडवृद्धिरोगमें कोषोंमें स्वेद देकर संभालू, तुलसी और पुनर्नवादि औषधियोंका प्रलेप करे। इस रोगमें गोमूत्रके साथ सैंधानोन और पीपल आदि औषधियोंके चूर्णका मंदोष्ण नास देवे । रायसन, मुलहटी, गिलोय, अंड, खिरैटी और गोखरूके काथमें अंडीका तेल डालकर पान करनेसे अन्त्रवृद्धिरोग दूर होता है। हरडको अंडीके तेलमें भूनकर कल्क बनाकर पीपल और सैंधानोनके साथ भक्षण करनेसे वृद्धिरोग दूर होता है। गेंहू अथवा कुन्दुरुको बकरीके दूधमें पीसकर मंदोष्ण प्रलेप करे तो ब्रध्नरोग और उसकी पीडा दूर होती है। काला जीरा, हाऊबेर, कूठ, गेंहू और बेरोंको कांजीमें पीसकर प्रलेप करनेसे ब्रध्नरोग दूर होता है॥ १२॥

बृहत्सैन्धवाद्यतैलम् ।

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वां निचुलं वचाम् । ह्रीवेरं मधुकं भार्ङ्गीं देवदारु सनागरम् ॥ कट्फलं पौष्करं मेदां चविकां चित्रकं शठीम् । विडंगातिविषे श्यामां रेणुकां नीलिनीं स्थिराम् ॥ बिल्वाजमोदे कृष्णां च दन्तीं रास्नां प्रपिष्य च । साध्यमेरण्डजं तैलं तैलं वा कफवातनुत् ॥ ब्रध्नोदावर्त्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमारुतान् । आनाहमश्मरीञ्चैव हन्यात्तदनुवासनात् ॥ १३ ॥

भाषा-सैंधानोन, मैनफल, कूठ, सोया, समुद्रफल, वच, सुगंधवाला, मुलहटी, भारंगी, देवदारु, सोंठ, कायफल, पोहकरमूल, मेदा, चव्य, चीता, कचूर, वायविडंग, अतीस, अनंतमूल, रेणुका, नील, शालिपर्णी, बेलगिरी, अजमोद, पीपल, दंती और रास्ना इन सबोंके कल्कके द्वारा अंडीके तेलको पकाकर मर्दन करनेसे ब्रध्न, उदावर्त्त, गुल्म, बवासीर, प्लीहा, प्रमेह, आढ्यवात, आनाह, अश्मरी एवं अन्यान्य कफवातोद्भवरोग दूर होते हैं॥ १३ ॥

गन्धर्वहस्ततैलम् ।

शतमेरण्डमूलस्य पलं शुण्ठ्या यवाढकम् । जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत् पादावशेषितम् ॥ तेन पादावशेषेण पयसा तत्समेन च । प्रस्थमेरण्डतैलस्य तन्मूलं च चतुःपलम् ॥ त्रिफलं शृंगवेरं च गर्भे दत्त्वा विपाचयेत् । तत् पिबेत् प्रयतः शुद्धो नरः क्षीरान्नभुक् सदा ॥ अण्डवृद्धिं जयत्याशु तैलं गन्धर्वहस्तकम् । हरी-

तर्की मूत्रसिद्धां सतैलां लवणान्विताम् ॥ प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहम् । सैन्धवं च घृताभ्यक्तं ताम्रभाजनमातपे ॥ प्रतप्तमुर्णया घृष्टं तन्मूलं च समाहरेत् । कुरण्डं प्रक्षयेत्तेन सनिर्विघ्नं दिवानिशम् ॥ कुरण्डं तेन संलिप्तं नास्तीत्याह पुनर्वसुः । ऐन्द्रीमूलभवं चूर्णं रुबुतैलेन मर्दितम् ॥ त्र्यहाद्गोपयसा पीतं सर्ववृद्धिहरं परम् । वचासर्षपकल्केन लेपो वृद्धिविनाशनः॥ बहुवारस्य बीजं च पिष्ट्वा तच्चार्द्रकैः सह । कुरण्डं नाशयेत् भद्रे लेपमात्रान्न संशयः॥घृतैर्नीलोत्पलमूलं पिष्ट्वा लिम्पेत् कुरण्डकम् । अथवा लेपनं कुर्याद् गृहमण्डूकशोणितैः ॥ १४ ॥

भाषा–अंडीका तेल ४ सेर, क्वाथके लिये अंडकी, जड १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, जौ १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध १६ सेर, कल्कके लिये अंडकी जड ४ पल, अदरख ४ पल सबोंको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे । इस तैलका पान करनेसे अंडवृद्धिरोग दूर होता है । इसपर दूधके साथ भोजन करे । इसको गन्धर्वहस्त तैल कहते हैं । हरडको गोमूत्रमें पकाकर अंडीका तैल और सैंधानोनके साथ प्रतिदिन प्रातःकाल भक्षण करनेसे कफवातोत्पन्न अंडवृद्धिरोग दूर होता है । तांबेके बासनमें सैंधानोन और घी मिलाकर धूपमें रख देवे । मेंढके बालोंको उसमें डालकर मर्दन करे । इसके घिसनेसे जो मैल निकले उसको दिनरात लगावे तो कुरण्डरोग दूर होवे । इन्द्रायनकी जडके चूर्णको अंडीके तेलमें मर्दन करनेसे अथवा वच और सरसोंको पीसकर कुरण्डपर प्रलेप करनेसे अंडवृद्धिरोग दूर होता है । लिहसोडेके बीजोंको अदरखके साथ पीसकर प्रलेप करनेसे कुरण्डरोग दूर होता है । नीले कुमुदकी जडको घीमें पीसकर प्रलेप करनेसे अथवा देशी मेंढकके रुधिरका प्रलेप करनेसे कुरण्डरोग दूर होता है ॥ १४ ॥

इति अण्डवृद्धिब्रध्नरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदरोगनिदानम् ।

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लंबते गले ।
महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगंडं तमादिशेत् ॥ १ ॥

भाषा-जिस मनुष्यके गलेमें स्थिर या निश्चल छोटी अथवा बडी अंडकोषकी समान सूजन होकर लटके उसको गलगण्डरोग कहते हैं ॥ १ ॥

गलगंडकी संप्राप्ति ।

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टौ मन्यां समाश्रित्य तथैव मेदः ।
कुर्वन्ति गण्डं क्रमशस्त्रिलिंगैः समन्वितं तं गलगंडमाहुः ॥ २ ॥

भाषा-गलेमें दूषित हुए वात, कफ तथा मेद गलेकी मन्यानाडियोंके आश्रित होकर अपने अपने लक्षणोंयुक्त गण्डको उत्पन्न करे है; उसको गलगण्ड कहते हैं । यह गलगण्डरोग वात, कफ और मेद इन भेदोंसे तीन प्रकारका है ॥ २ ॥

वातिकगलगंडके लक्षण ।

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः श्यावोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु ।
पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धिपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥
वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥ ३॥

भाषा-वातज गलगण्डमें सुई छेदनेसरीखी पीडा हो, काली नसोंसे व्याप्त हो, लाल अथवा धूसर रंग हो, रूखापन लिये, बहुत कालमें बढनेवाला और पकनेवाला, कभी स्वयंमी पक जाता है, मुखमें विरसता, तालु और गलेमें शोष होता है ॥ ३ ॥

कफज गलगंडके लक्षण ।

स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु ।
चिराभिवृद्धिं भजतेचिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् ॥
माधुर्य्यमास्यस्य च तस्य जंतोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ ४ ॥

भाषा-कफज गलगण्ड निश्चल, गलेकी त्वचाकी समान वर्णवाला, अल्प पीडायुक्त, अत्यन्त खुजली हो, शीतल, बडा, बहुत समयमें बढने और पकनेवाला तथा पाककालमें अल्पवेदना हो, मुखमें मधुरता, तालु और कंठमें कफ अटका रहे ॥ ४ ॥

मेदज गलगंडके लक्षण ।

स्निग्धो गुरुः पाण्डुरनिष्टगंधो मेदोभवः स्वल्परुजोतिकण्डूः ।
प्रलंबतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥
स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जंतोर्गलेऽनुशब्दं कुरुते च नित्यम् ॥५॥

भाषा-मेदसे उत्पन्न हुआ गलगण्ड चिकना, भारी, पांडुवर्ण, दुर्गंधसहित,

अल्पपीडायुक्त, खुजली चले, जडमें पतला और तूम्बीकी समान लटकता रहे, शरीरके अनुरूपसे छोटा बडा होता है। उससे मुख स्निग्ध और निरन्तर वह गलेमें घुरघुर शब्द करा करता है ॥ ५ ॥

असाध्य लक्षण ।

कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्त्तम् ।
क्षीणं च वैद्यो गलगंडजुष्टं भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेत्तु ॥ ६ ॥

भाषा-जो गलगण्डरोगी अत्यन्त कष्टसे श्वास लेवे, जिसका सर्व शरीर कोमल हो गया हो, जिसके गलगण्ड हुए एक वर्ष बीत गया और जो स्वरभंगरोगयुक्त हो उस गलगण्डरोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ ६ ॥

गंडमाला और अपचीके लक्षण ।

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु ।
मेदःकफाभ्यां चिरमंदपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिस्तु गण्डैः ॥
ते ग्रंथयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यंति भवन्ति चान्ये ।
कालानुबंधं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदंति केचित् ॥ ७ ॥

भाषा-मेद और कफसे उत्पन्न हुए कोख, कंधे, गरदन, कंठ और वंक्षणदेशमें, छोटे बेर या बडे बेर अथवा आमलेकी समान बहुत कालमें हौले हौले पकनेवाली ऐसी बहुतसी गांठें उत्पन्न होती हैं उनको गण्डमाला कहते हैं। अब गण्डमालाका भेद जो अपची है उसके लक्षण कहते हैं। ऊपरोक्त गण्डमालाकी ग्रंथी पके नहीं या पकनेपर उनमें राध बहे, कोई कोई नाशको प्राप्त हो और दूसरी नवीन उत्पन्न हो जावे ऐसी पीडायुक्त बहुत कालतक रहे उसको अपची रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

साध्य और असाध्य लक्षण ।

साध्या स्मृता पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुता न साध्या ॥ ८ ॥

भाषा-यह अपची साध्य है। यदि इसमें पीनस, पार्श्वशूल, खांसी, ज्वर और छर्दि ये उपद्रव होंय तो असाध्य जानना ॥ ८ ॥

ग्रंथिरोगकी संप्राप्ति और लक्षण ।

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः संदूष्य मेदश्च तथा शिराश्च ।
वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रंथिरिति प्रदिष्टः ॥ ९ ॥

भाषा-अत्यन्त दुष्ट हुए वातादिदोष मांस, रुधिर, मेद और नसोंको दूषित

करके गोल, ऊंची, गांठकी समान सूजनको उत्पन्न करे उसको ग्रंथिरोग कहते हैं ॥ ९ ॥

वातज ग्रंथिके लक्षण ।

आयम्यते वृश्चति तुद्यते च प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च ।
कृष्णो मृदुर्वस्तिरिवाततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥ १० ॥

भाषा–वातजग्रंथिरोगमें ग्रन्थी खींचती तथा बढती मालूम हो, कटतीसी जान पडे, छेदने सरीखी जान पडे, उठाकर फेंकतीसी जान पडे, मथनेकी समान मालूम हो, फोडने सरीखी पीडा हो, ग्रन्थि काली, कोमल एवं मसककी समान भरीसी दीखे और उसको तोडनेसे स्वच्छ रक्त निकले ॥ १० ॥

पित्तजग्रंथिके लक्षण ।

दंदह्यते धूम्यति चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ।
रक्तः सपीतोऽप्यथवापि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्णमतीव चास्रम् ॥ ११ ॥

भाषा–पित्तज ग्रंथिरोगमें दाह होती है, धुंआसा निकलता है, चूसनेसरीखी पीडा होती है एवं पकनेकी समान और जलनेकी सदृश पीडा होती है । फूटनेसे पित्तरक्त रंगकी राध अथवा दुष्ट रुधिर स्रवता है ॥ ११ ॥

कफकी ग्रंथिके लक्षण ।

शीतो विवर्णोऽल्परुजोतिकण्डूः पाषाणवत्संहननोपपन्नः ।
चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ १२ ॥

भाषा–कफजग्रंथि शीतल, शरीरके वर्णकी समान ग्रंथिका रंग, किंचित् पीडा, अत्यन्त खुजली, पत्थरकी समान कठिन और बडी, बहुत देरमें बढने और पकनेवाली एवं फूटनेसे उसमें श्वेत और गाढी राध निकलती है ॥ १२ ॥

मेदजग्रंथिके लक्षण ।

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान्कंडुयुतोऽरुजश्च ।
मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमं तु मेदः ॥ १३ ॥

भाषा–मेदजग्रंथी शरीरके बढनेसे बढे और शरीरके घटनेसे घटे तथा चिकनी, बडी खुजलीयुक्त, अल्पपीडावान् होती है । इसके फूटनेसे इसमेंसे खलकी समान और घृतकी सदृश मेद निकलता है ॥ १३ ॥

शिराजग्रंथिके लक्षण ।

व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुस्तु शिराप्रतानम् ।
संकुच्य संपीड्य विशोष्य चापि ग्रंथिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ १४ ॥

भाषा-निर्बल मनुष्य अत्यन्त बलके अर्थात् परिश्रमके कार्य करे तब उसके वायु कुपित होकर नसोंके जालको संकुचित, एकत्रित और सुखाकर ऊंची और गोल ग्रंथिको उत्पन्न करे है ॥ १४ ॥

साध्यासाध्य लक्षण ।

ग्रंथिः शिराजः स च कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च ।
अरुक्स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥ १५ ॥

भाषा-यदि शिराजन्यग्रंथी पीडायुक्त और चंचल होय तो कष्टसाध्य और जो पीडारहित निश्चल तथा बडी और मर्मस्थानमें उत्पन्न हुई हो तो असाध्य है॥१५॥

अर्बुदकी संप्राप्ति ।

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संमूर्च्छिता मांसमसृक् प्रदूष्य ।
वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्धिपाकम् ॥
कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ।
वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च ॥
तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ॥ १६ ॥

भाषा-शरीरके किसी भागमें दूषित हुए वातादिक दोषसे मांस और रक्तको दूषित करके गोल, कोमल, अल्पपीडायुक्त, बडी तथा गहरी जडवाली, देरमें बढने और पकनेवाली ऐसी मांसकी ग्रन्थिसी शरीरके ऊपर उत्पन्न करते हैं उसको वैद्य अर्बुद कहते हैं । वात, पित्त, कफ, मांस, रक्त और मेद इन भेदोंसे अर्बुदरोग छः प्रकारका होता है । इसके लक्षण ग्रंथिकी समान होते हैं ॥ १६ ॥

रक्तार्बुदके लक्षण ।

दोषः प्रदुष्टो रुधिरं शिरासु संकुच्य संपीड्य ततोऽस्य पाकम् ।
सास्रावमुन्नह्यति मांसपिंडं मांसांकुरैराचितमाशु वृद्धम् ॥
करोत्यजस्रं रुधिरप्रवृद्धिमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकन्तु ।
रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात् पाण्डुर्भवेत्सोर्बुदपीडितस्तु ॥ १७ ॥

भाषा-अपने कारणोंसे दुष्ट हुए दोष शिरागत रुधिरको संकुचित और पीडित कर मांसके गोलेको उत्पन्न करे । वह किंचित् पकनेवाला तथा अल्पस्रावयुक्त हो, एवं मांसांकुरोंसे व्याप्त और बहुत जल्दी बढता है । इसमें रुधिर स्रवे । इसको रक्तार्बुद कहते हैं । यह असाध्य है । रक्तार्बुदरोगी रुधिरके क्षयके उपद्रवोंके होनेसे उसके शरीरका रंग पीला पड जाता है ॥ १७ ॥

मांसजार्बुदकी संप्राप्ति और साध्यासाध्य विचार ।

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टं जनयेद्धि शोथम् ।
अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममं प्रचाल्यम् ॥
प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ।
मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमानि तु वर्जयेच्च ॥
संप्रस्रुतं मर्मणि यच्च जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम् ॥ १८ ॥

भाषा-मुष्टि आदिके प्रहारसे शरीरमें जो पीडा होती है उस पीडासे मांस दूषित होकर सूजनको उत्पन्न करे वह सूजन पीडारहित हो, चिकनी, शरीरके रंगकी समान हो, इसका पाक नहीं हो और पत्थरकी समान स्थिर हो । जिस मनुष्यका मांस दूषित हो जाय अथवा जो मनुष्य सदैव मांस खाते हैं उनके यह अर्बुदरोग उत्पन्न होता है । यह मांसार्बुद असाध्य है तथा साध्य अर्बुदोंमेंभी निम्नोक्त अर्बुद त्याज्य है।जिसमें स्राव हो, जो मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुआ हो अथवा नासिकादिमें छिद्रोंके उत्पन्न हुआ हो, जो अचल हो वह अर्बुद असाध्य है ॥१८॥

अध्यर्बुदके लक्षण ।

यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ॥ १९ ॥

भाषा-प्रथम जिस स्थानोंमें अर्बुद उत्पन्न हुआ हो उसीके ऊपर दूसरा अर्बुद उत्पन्न हो जाय उसको अध्यर्बुद कहते हैं ॥ १९ ॥

द्विरर्बुदके लक्षण ।

यद्वंद्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ २० ॥

भाषा-एकसाथ दो अर्बुद अथवा एकके पश्चात् दूसरा अर्बुद क्रमसे उत्पन्न हो उसको द्विरर्बुद कहते हैं । यह असाध्य है ॥ २० ॥

अर्बुद न पकनेका कारण ।

न पाकमायांति कफाधिकाद्वा मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु ।
दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ २१ ॥

भाषा-कफकी अधिकतासे या विशेषकरके मेदकी अधिकतासे एवं दोषोंकी स्थिरतासे अथवा दोषोंके ग्रन्थिरूप होनेसे सर्व प्रकारके अर्बुद पकते नहीं हैं ॥२१॥

इति गलगण्डगण्डमालापचीग्रंथ्यर्बुदरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदरोगचिकित्सा ।

लेपचूर्णादिभक्षणविधिः ।

शेफालिकाजटायाश्च चर्वणं गलगण्डनुत् । निर्गुण्डिकाशिफां पीत्वा गण्डमालाविनाशनः ॥ द्विजयष्टयाश्च वै मूलं पिष्टं तण्डुलवारिणा । गण्डमालां हरेल्लेपात् कुरण्डगलगण्डकान् ॥ रसाञ्जनं हरीतक्याश्चूर्णं तेनैव गुण्डनात् । नश्येद्वै पुरुषव्याधि नात्र कार्या विचारणा ॥ यवभस्म विडंगं च गन्धपाषाणमेव च । शुण्ठीरेपाश्चैव चूर्णं भावितं रुधिरेण च ॥ कृकलासस्य तल्लिप्तं अर्बुदं विद्रवेच्छिव । शोभांजनस्य बीजानि अतसीमसिना सह ॥ गोरसन्तु प्रपिष्टान्यद्ग्रन्थिकं नाशयेद्धि वै । अपराजिताया मूलञ्च गोमूत्रेण समन्वितम्॥पीतं चापि हरत्येव गण्डमालां न संशयः । चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी ॥ एततैलं शृतं पीतं समूलामपचीं जयेत् । यवमुद्गपटोलानि कटु रूक्षं च भोजनम् ॥ छर्दिं सरक्तमुक्तिं च गलगण्डे प्रयोजयेत् । तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपितः ॥ हस्तिकर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति । सर्षपान् शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान् ॥ मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् । गलगण्डग्रन्थयश्च गण्डमालाः सुदारुणाः ॥ प्रलेपात्तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति चाचिरात् । जीर्णकर्कारुकरसोबिडसैन्धवसंयुतम् ॥ नस्येन हन्ति तरुणं गलगण्डं न संशयः । जलकुम्भीकजं भस्म पक्वं गोमूत्रगालितम् ॥ पिबेत् कोद्रवभक्ताशी गलगण्डप्रशान्तये । तिक्तालाबुफले पक्के सप्ताहमुषितं जलम् ॥ मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात् पथ्यान्नसेविनः ॥ महिषीमूत्रविमि-

श्रं लोहमलं संस्थितं घटेन । अन्तर्धूमविदग्धं लिह्यान्मधुनाथ गलगण्डे ॥ जिह्वायाः पार्श्वतोऽधस्तात् शिरा द्वादश कीर्तिताः । तासां स्थूलशिरे द्वेऽधश्छिन्द्यात्ते च शनैः शनैः॥ बडिशेनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान् । स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन् दद्यात् सगुडमार्द्रकम् ॥ भोजनं चानभिष्यन्दि यूषः कौलत्थ इष्यते । कर्णयुग्मबहिःसन्धिमध्याभ्यासे स्थितं च यत् ॥ उपर्युपरि तच्छिन्द्यात् गलगण्डे शिरात्रयम् ॥ २२ ॥

भाषा—नीले संभालूकी जडको चाबनेसे गलगण्डरोग दूर होता है । निर्गुण्डीकी जडको पीसकर पान करनेसे गण्डमालारोग दूर होता है । भारंगीकी जडको चावलोंके जलके साथ पीसकर प्रलेप करनेसे गण्डमाला, कुरण्ड और गलगण्डरोग दूर होता है । रसोन और हरडके चूर्णको गलेमें मर्दन करनेसे गलगण्डरोग दूर होता है । जौकी भस्म, वायविडंग, गंधक और सोंठ इन सबोंका चूर्ण करके कृकलासजन्तुके रुधिरमें भावना देकर प्रलेप करनेसे अर्बुदरोग दूर होता है । सहजनेके बीज, सनके बीज और अलसीको दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे ग्रंथिरोग दूर होता है । अपराजिताकी जडको गोमूत्रमें पीसकर पान करनेसे गण्डमालारोग दूर होता है । लालचंदन, हलदी, लाख, वच और कुटकी इन सब द्रव्योंके कल्कके द्वारा तैलको पकाकर पान करनेसे अपचीरोग दूर होता है । जौ, मूग, पटोलपत्र, कटु और रूक्ष द्रव्योंका भोजन, वमन और रक्तमोक्षण ये सब गलगण्डरोगमें हितकारी हैं । हस्तिकर्ण, पलासकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर प्रलेप करनेसे गलगण्डरोग दूर होता है । सरसों, सहजनेके बीज, सनके बीज, अलसी, जौ और मूलीके बीजोंको खट्टे तक्रमें एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंकी गलगण्ड, ग्रंथि और गण्डमाल दूर होती है । पुराने पेठेके रसमें बिरिया संचरनोन और सैंधानोन डालकर नास देनेसे निःसंदेह तरुण गलगण्डरोग दूर होता है । जलकुम्भीकी भस्मको गोमूत्रमें पकाकर फिर वस्त्रमें छानकर पान करे और कोदों अन्नका भोजन करे तो निश्चय गलगण्डरोग दूर होता है । पकी कडवी तूम्बीको सात दिनतक जलमें या मदिरामें पडा रहने देवे, पश्चात् इस जलको अर्थात् मदिराको पान करे और पथ्यसे रहे तो निश्चय गलगण्डरोग दूर होता है । प्रथम एक घडेको लेकर भैंसके मूत्रसे भर देवे फिर उसमें मण्डूर डालकर एक महीनेतक रक्खा रहने देवे, पश्चात् मण्डूरको निकालकर अन्तर्धूपमें जलाकर सहतमें मिलाकर चाटे तो गलगण्डरोग दूर होवे । जीभके पार्श्वके अधोभागमें १२ नसें हैं, उनमेंकी दो शिराओंको

संडासीसे दवाकर कुशापत्रशस्त्रसे छेदन करे जब रुधिर निकलने लगे तब घावमें गुडके साथ मदरख मिलाकर लगावे तथा कफकारक पदार्थ और कुलथीका यूष पथ्य देवे; इससे गलगण्डरोग दूर होता है। दोनों कानोंकी बाहरकी संधिके निकटके ऊपर भागमें ३ शिरा हैं उनको छेदनेसे गलगण्डरोग दूर होता है॥ २२॥

धात्रीतैलम् ।

विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरास्नाग्निव्योषदारुभिः ।
कटुतुम्बीफलरसे कटुतैलं विपाचितम् ॥
चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत् ॥ २३ ॥

भाषा-वायविडंग, जवाखार, सैंधानोन, रायसन, चीता, त्रिकुटा और देवदारुके कल्कके द्वारा कडवी तूम्बीके रसमें कडवे तेलको पकाकर नास देनेसे गलगण्डरोग दूर होता है ॥ २३ ॥

अमृताद्यं तैलम् ।

तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिम्बाहिंस्राद्र्यीवत्सकपिप्पलीभिः ।
सिद्धं बला वेतसदेवदारु हिताय नित्यं गलगण्डरोगी ॥
पिष्टा ज्येष्ठाम्बुना पीताः कांचनालत्वचः शुभाः ।
विश्वभेषजसंयुक्ता गलगण्डापहाः पराः ॥ २४ ॥

भाषा-कडवे तेलमें गिलोय, नीम, कटेरी, कटाई, इन्द्रजौ, पीपल, खिरेटी, वेंत और देवदारुका कल्क डालके तेलको सिद्ध करके पान करनेसे गलगण्डरोग दूर होता है। कचनारकी छालको गरम चावलोंके जलमें पीसकर सोंठके साथ पान करनेसे गलगण्डरोग दूर होता है ॥ २४ ॥

सिन्दूरादितैलम् ।

चक्रमर्दकमूलस्य कल्कं कृत्वा विपाचयेत् । केशराजरसे तैलं कटुकं मृदुनाग्निना ॥ पाकशेषे विनिःक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत् । एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम्॥ अन्त्या वा गिरिकर्ण्यो वा मूलं गोमूत्रयोगतः । गण्डमालां हरेत् पीतं चिरकालोत्थितामपि ॥ गलगण्डं गण्डमालां कुरण्डञ्च विनाशयेत् । पिष्टं ज्येष्ठाम्बुना लेपात् मूलं ब्राह्मणयष्टिकम् ॥ गण्डमालापहं तैलं सिद्धं शाखोटकत्वचा । बिम्बाश्वमारनिर्गुण्डीसाधितं वापि

लावनम् ॥ निर्गुण्डीस्वरसे वाथ लांगलीमूलकल्कितम् । तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ वनकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजितम् । पक्त्वा पुपलिकाः खादेदपचीनाशनाय तु ॥ शोभाञ्जनं देवदारु कांजिकेन तु पेषितम् । कोष्णं प्रलेपतो हन्यादपचीमतिदुस्तराम् ॥ २५ ॥

भाषा-कडवा तेल २ सेर, कुकर भांगरेका रस ८ सेर, कल्कके लिये पमारके बीज आधसेर सबोंको मिलाकर यथाविधिसे तैलको पकावे। जब पाक समाप्त हो जाय तब आधसेर इसमें सिन्दूर मिलाकर देवे। पश्चात् उतार शीतल करके मर्दन करनेसे गण्डमाला रोग दूर होता है। अपराजिताकी जडको गोमूत्रमें पीसकर पान करनेसे बहुत पुरानी गण्डमाला दूर होती है। भारंगीको जडको चावलोंके गरम जलमें पीसकर प्रलेप करनेसे गलगण्ड, गण्डमाला और कुरण्डरोग दूर होता है। सिहोडेकी छालके काथ और कल्कके द्वारा तैलको पकाकर मर्दन करनेसे गण्डमाला रोग दूर होता है। कन्दूरी, कनेर और निर्गुण्डीके द्वारा तैलको सिद्धकरके नास लेनेसे गण्डमाला रोग दूर होता है। निर्गुण्डीका स्वरस और कलिहारीकी जडके कल्कके द्वारा तैलको पकाकर नास लेनेसे गण्डमालारोग दूर होता है। वनकपासकी जडको चावलोंमें पीसकर पूरी बनाकर भक्षण करनेसे अपचीरोग दूर होता है। सहजनेकी जड और देवदारुको कांजीमें पीसकर मंदोष्ण प्रलेप करनेसे दुस्तर अपचीरोग दूर होता है ॥ २५ ॥

व्योषाद्यं तैलम् ।

व्योषं विडंगं मधुकं सैन्धवं देवदारु च ।
तैलमेभिः शृतं नस्यात् कृच्छ्रमप्यपचीं जयेत् ॥ २६ ॥

भाषा-सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, मुलहठी, सैंधानोन और देवदारुके कल्कके द्वारा तैलको सिद्ध करके नास देनेसे कष्टसाध्य अपचीरोग दूर होता है॥२६॥

चन्दनाद्यं तैलम् ।

चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी ।
एभिस्तैलं शृतं पीतं समूलमपचीं जयेत् ॥ २७ ॥

भाषा-लाल चंदन, हरड, लाख, वच और कुटकीके कल्कके द्वारा तैलको सिद्ध करके पान करनेसे अपचीरोग दूर होता है ॥ २७ ॥

गुञ्जाद्यं तैलम् ।

गुञ्जाहयारिश्यामार्कसर्षपैर्मूत्रसाधितम् । तैलन्तु दशधा पश्चात्

कणा लवणपंचकम्॥ मरिचैश्चूर्णितैर्युक्तं सर्वावस्थागतां जयेत् ।
अभ्यंगादपचीं नाडीं वल्मीकार्शोर्बुदव्रणान् ॥ २८ ॥

भाषा-घुंघची, कनेर, विधायरा, आक और सरसों इन सब द्रव्योंके द्वारा तैलको क्रमसे दशवार पकावे, फिर उसमें पीपल, पांचों नोन और काली मिरचोंका चूर्ण डालकर मर्दन करनेसे अपची, नाडीव्रण, वल्मीक, अर्श, अर्बुद और व्रणरोग दूर होता है ॥ २८ ॥

शोथक्रिया ।

ग्रन्थिस्थानेषु कुर्वीत भिषक् शोथप्रतिक्रियाम् ।
पक्वानुत्पाद्य संशोध्य रोपयेद् व्रणभेषजैः ॥ २९ ॥

भाषा-अपक्वग्रन्थिरोगमें व्रणशोथोक्त चिकित्सा करे । जब वह पक जाय तब छेदकर राध आदि मवादको निकालकर घावमें औषधि भरे ॥ २९ ॥

प्रलेपः ।

हिंस्रा सरोहिण्यमृता तथैव शोणाकबिल्वागुरुकृष्णगन्धाः ।
गोपित्तपिष्टा सह तालपर्ण्या ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः॥ ३० ॥

भाषा-कटेरी, कुटकी, गिलोय, सोनापाठा, बेलगिरी, अगर, सहजनेकी छाल और सोंफ इन सबोंको एकत्र गोपित्तमें पीसकर प्रलेप करनेसे वातजन्य ग्रन्थिरोग दूर होता है ॥ ३० ॥

कषायप्रलेपादिक्रिया ।

जलाम्बुकाः पित्तकृते हितास्तु क्षारोदकाभ्यां परिसेवनञ्च । काकोलिवर्गस्य तु शीतलादि पिवेत् कषायाणि सशर्कराणि ॥ मधूकजम्ब्वर्ज्जुनवेतसानां त्वग्भिः प्रदेहानवतारयेच्च । कृतेषु दोषेषु यथानुपूर्वा ग्रन्थौ भिषक् श्लेष्मसमुद्भवेषु॥दन्ती चित्रकमूलत्वक् सौधार्कपयसी गुडः । भल्लातकास्थि काशीशं लेपाच्छिन्द्याच्छिलामपि ॥ ग्रन्थीनमर्म्मप्रभवानपक्वामुद्धृत्य चाग्निं विदधीत वैद्यः । क्षीरेण चैतान् प्रतिसारयेत्तु सर्वांश्च संलिख्य यथोपदेशम् ॥ वातार्बुदे चाप्युपनाहहानिः स्निग्धैश्च मांसैरथ वेशवारैः । स्वेदं विदध्यात् कुशलन्तु नाभ्याः शृङ्गेन रक्तं बहुशो हरेच्च ॥ स्वेदोपनाहा मृदवश्च पथ्याः पित्तार्बुदे कायविरेचनञ्च ।

विघृष्य चोदुम्बरशाकगोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥ श्लक्ष्णीकृतैः सर्जरसप्रियङ्गुपतङ्गलोध्राञ्जनयष्टिकाह्वैः । उपोदिकारसाभ्यक्तास्तत्पत्रपरिवेष्टिताः ॥ प्रणश्यन्त्यचिरान् नृणां पीडिकार्बुदजातयः ॥ ३१ ॥

भाषा-जलाम्बुक और सजल दूधका सेवन करनेसे अथवा काकोल्यादि गणके क्वाथमें मिश्री डालकर पान करनेसे पित्तज ग्रन्थिरोग दूर होता है। महुआ, जामुन, अर्जुन और बेत इन सबोंकी छालको पीसकर प्रलेप करनेसे श्लेष्मज ग्रंथिरोग दूर होता है। दंतीकी जड, चीतेकी जड, थूहरका दूध, आकका दूध, पुराना गुड, भिलावेके बीज और हीराकसीस इन सबोंको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे ग्रन्थिछिन्न होकर गिर जाती है। जो ग्रन्थि मर्म्मस्थानोंमें उत्पन्न नहीं हुई है, या पकी नहीं है, उन सबोंको छेद करके उस स्थानमें अग्निसे दग्ध अथवा क्षारादि कर्म प्रयोग करे। स्निग्धमांस अथवा वेशवार द्वारा प्रलेप, स्वेदप्रदान और सींग आदिके द्वारा रक्तमोक्षण आदि उपचार करनेसे वातज अर्बुदरोग दूर होता है। पित्तजन्य अर्बुदरोगमें मृदु स्वेद, मृदु प्रलेप, पित्तनाशक पथ्य और विरेचन औषधिप्रयोग करे। गूलर और गोजियाके पत्तोंको सहतमें मिलाकर प्रलेप करनेसे अर्बुदरोग दूर होता है तथा राल, फूलप्रियंगू, पतंग, लोध, रसोत और मुलहठी इन सबोंको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे विशेष लाभ होता है। व्रण और अर्बुदादि रोगमें पोईका रस लगाकर पोईके पत्तोंसे बांध देवे तो सर्व रोग दूर हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

रौद्ररसः ।

शुद्धसूतं समं गन्धं मर्द्य यामचतुष्टयम् । नागवल्लीरसैर्युक्तं मेघनादपुनर्नवैः ॥ गोमूत्रपिप्पलीयुक्तं मर्द्य रुद्ध्वा पुटेल्लघु । लिह्यात् क्षौद्रे रसो रौद्रो गुंजामात्रोऽर्बुदं जयेत् ॥ रामबाणादिकान् योगवाहिनोत्र प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥

भाषा-शुद्ध पारे और गंधकको एकत्र चार प्रहर खरल करे। फिर पानोंके रसमें, चौलाईके रसमें, पुनर्नवेके रसमें, गोमूत्रमें और पीपलके क्वाथमें पृथक् पृथक् सात सात बार भावना देवे, फिर लघुपुटमें रखकर मंद मंद अग्निसे पकावे। एक रत्ती प्रमाण इसको सहतके साथ सेवन करे तो अर्बुदरोग दूर होवे। इसको रौद्र रस कहते हैं। अर्बुदरोगमें रामबाणादि रस और सम्पूर्ण योगवाही रस प्रयुक्त करे ॥ ३२ ॥

इति गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ श्लीपदरोगनिदानम् ।

यः सज्वरो वंक्षणजो भृशार्त्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण ।
तच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नोष्ठनासास्वपि केचिदाहुः ॥ १ ॥

भाषा-जो सूजन प्रथम वंक्षणमें उत्पन्न होकर फिर धीरे धीरे पैरोंमें आ जावे और उसमें ज्वरभी हो। उसको श्लीपदरोग कहते हैं। यह श्लीपदरोग हाथ, कान, नेत्र, लिंग, होंठ और नासिकामेंभी होता है ऐसे कोई कोई आचार्य कहते हैं ॥१॥

वातज श्लीपद ।

वातजं कृष्णरूक्षं च स्फुटितं तीव्रवेदनम् ।
अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥ २ ॥

भाषा-वातज श्लीपदरोग काला, रूखा, फटा, तीव्र पीडायुक्त, विनाकारणही दूखे और ज्वर अधिक हो ॥ २ ॥

पित्तज श्लीपद ।

पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं मृदु ॥ ३ ॥

भाषा-पित्तका श्लीपद पीला, दाह और ज्वरसंयुक्त तथा कोमल होता है ॥३॥

श्लेष्मज श्लीपद ।

श्लैष्मिकं स्निग्धमर्णं च श्वेतं पाण्डु गुरु स्थिरम् ॥ ४ ॥

भाषा-कफका श्लीपद चिकना, सफेद, पीला, भारी और स्थिर होता है ॥४॥

असाध्य लक्षण ।

वल्मीकमिव संजातं कंटकैरुपचीयते । अब्दात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः ॥ त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् । गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्त्तुषु च शीतलाः । ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ यच्छ्लेष्मणाहारविहारजातं पुंसः प्रकृत्या च कफात्मकस्य । सास्रावमत्युन्नतसर्वलिंगं सकंडुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ५ ॥

भाषा-त्रिदोषज श्लीपद सांपकी बांबीकी समान ऊंचा नीचा कांटोंयुक्त होता है। यह श्लीपद तथा जिसको उत्पन्न हुए एक वर्ष बीत गया हो और जो बहुत

बढ गया हो उसको वैद्य त्याग देवे । तीन प्रकारके श्लीपदोंमें कफकी आधिक्यता है कारण यह है भारीपन और महत्तता कफके विना नहीं होते। जिन देशोंमें पुराना वर्षाका जल अधिक रहता और जो देश सर्वऋतुओंमें शीतल रहते हैं उन अनूपादि देशोंमें यह श्लीपदरोग विशेष करके होता है । जो श्लीपदरोग कफकारक आहार विहारोंसे उत्पन्न होता है तथा उस रोगीकीभी प्रकृति कफकी होय, श्लीपदमें पानी स्रवे, अत्यन्त ऊंचा, सर्व दोषोंके लक्षणोंयुक्त और जिसमें विशेष खुजली चले ऐसा श्लीपदरोग असाध्य जानना ॥ ५ ॥

इति श्लीपदरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ श्लीपदरोगचिकित्सा ।

अथ लेपविधिः ।

धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः । प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमतिदारुणम् ॥ निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् । प्रलेपात् श्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपि दृढम् ॥ मञ्जिष्ठां मधुकं रास्नां सहिंस्राः सपुनर्नवाः । पिष्ट्वारनालैर्लेपोऽयं श्लीपदस्य प्रशान्तये ॥ ६ ॥

भाषा-धतूरा, अंडकी जड, निर्गुण्डी, पुनर्नवा, सहजना और सरसों इन सबोंको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंका पुराना श्लीपदरोग दूर हो जाता है । आककी जड और अडूसेको कांजीमें पीसकर प्रलेप करनेसे अत्यन्त कठिन बद्धमूल श्लीपदरोग दूर होता है । मजीठ, मुलहठी, रायसन, खैरीशाक और पुनर्नवेको कांजीमें पीसकर प्रलेप करनेसे श्लीपदरोग दूर होता है ॥ ६ ॥

कृष्णाद्यमोदकः ।

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्द्धपलं पलम् ।
विंशतिश्च हरीतक्या गुडस्य तु पलद्वयम् ॥
मधुना मोदकं खादेत् श्लीपदं हन्ति दुस्तरम् ॥ ७ ॥

भाषा-पीपल १ तोला, चीता २ तोले, दंती ४ तोले, हरड २० और पुराना गुड ८ तोले लेवे । सबोंको एकत्र पीसकर लड्डू बना लेवे । इन लड्डुओंको सहतके साथ भक्षण करे तो दुस्तर श्लीपदरोग दूर होवे ॥ ७ ॥

लंघनरक्तमोक्षणादिप्रकारः ।

लंघनालेपनस्वेदरेचनै रक्तसेचनैः । प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ हितश्च लेपने नित्यं चित्रको देवदारु वा । सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥ स्नेहस्वेदोपनाहांश्च श्लीपदेऽनिलजे भिषक् । कृत्वा गुल्फोपरि शिरां विध्येत्तु चतुरंगुले ॥ गुल्फस्याधः शिरां विध्येत् श्लीपदे पित्तसम्भवे । पित्तघ्नीश्च शिरां कुर्यात् पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥ शिरां सुविदितां विध्येदङ्गुष्ठे श्लेष्मश्लीपदे । मधुयुक्तानि वा तीक्ष्णकषायाणि पिबेन्नरः ॥ ८ ॥

भाषा–श्लीपदरोगमें लंघन, प्रलेप, स्वेद, रेचन, रक्तमोक्षण और श्लेष्मनाशक उष्ण क्रिया ये सब उपचार करने चाहिये। चीता और देवदारु अथवा सफेद सरसों और सहजनेकी जडको गोमूत्रमें पीसकर किंचित् उष्ण करके प्रलेप करनेसे श्लीपदरोग दूर होता है। वातज श्लीपदरोगमें स्नेह, स्वेद और प्रलेप देकर गुल्फके ऊपर चार अंगुलके मध्यमें शिराको छेदकर रक्तमोक्षण करावे। पित्तजन्य श्लीपदरोगमें गुल्फकी नीचेकी शिराको वेधकर रक्तमोक्षण करावे तथा पित्तार्बुद और पित्तविसर्पोक्त चिकित्सा करे। कफज श्लीपदरोगमें पांवके अंगूठेकी शिराको वेधकर रक्तमोक्षण करावे तथा सहतके साथ तीक्ष्ण औषधियोंका क्वाथ पिलावे ॥८॥

सर्षपतैलादिभक्षणविधिः ।

पिबेत् सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये । पूतिकरंजच्छदजं रसं वापि यथाबलम् ॥ अनेनैव विधानेन पुत्रं जीवकजं रसम् । कांजिकेन पिबेच्चूर्णं मूत्रैर्वा वृद्धदारजम् ॥ रजनीं गुडसंयुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नरः । वर्षोत्थं श्लीपदं हन्ति दद्रुकुष्ठं विशेषतः ॥ धान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम् । दीपनं चामदोषघ्नमेतच्छ्लीपदनाशनम् ॥ ९ ॥

भाषा–दुर्गंध करंजके पत्तोंका स्वरस अथवा पतिजियाके पत्तोंका स्वरस सरसोंके तेलके साथ पान करनेसे श्लीपदरोग दूर होता है। विधायरेके चूर्णको कांजीके साथ अथवा गोमूत्रके साथ पान करनेसे या हलदीके चूर्णको गुडमें मिलाकर गोमूत्रके साथ पान करनेसे एक वर्षका पुराना श्लीपदरोग, दद्रु और कुष्ठरोग

दूर होता है। कांजी और कड़वे तेलको एकत्र मिलाकर पान करनेसे कफ और वातका नाश होता है। अग्नि दीपन होती है, आमदोष नष्ट होता है और श्लीपदरोग दूर होता है॥ ९॥

विडङ्गादितैलम्।

विडङ्गं मरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा।
भद्रदार्वेलकाख्ये च सर्वेषु लवणेषु च॥
तैलं पक्वं पिबेद्वापि श्लीपदानां निवृत्तये॥ १०॥

भाषा-वायविडंग, काली मिरच, आक, सोंठ, चीता, देवदारु, इलायची, काला जीरा और पांचों नोन इन सबोंको कल्कके द्वारा तेलको पकाकर पान करनेसे श्लीपदरोग दूर होता है॥ १०॥

श्लीपदगजकेसरी।

व्योषामृतयवानी च सूतोऽग्निर्गन्धकं शिला। सौभाग्यं जयपालं च चूर्णमेकत्र कारयेत्॥ भृंगगोक्षुरजम्बीरार्द्रकतोयैर्विमर्दयेत्। अस्य रक्तिद्वयं खादेदुष्णपेयानुपानतः॥ श्लीपदं दुस्तरं हन्ति प्लीहानं हन्ति सेवितः॥ ११॥

भाषा-सोंठ, मिरच, पीपल, विष, अजवायन, पारा, गंधक, चीता, मैनशिल, सुहागा और जमालगोटे इन सबोंको एकत्र पीसकर चूर्ण कर ले, फिर इस चूर्णको भांगरे, गोखरु, जम्भीरी नीबू और अदरखके रसकी भावना देवे। इसको दो रत्ती प्रमाण उष्ण जलके साथ सेवन करे। इससे दुस्तर श्लीपदरोग और प्लीहारोग दूर होता है॥ ११॥

श्लीपदारिः।

निम्बं खदिरसारं च मधुना चाष्टमाषकम्।
गव्यं मूत्रेण पिष्ट्वा तु पिबेत् श्लीपदशान्तये॥ १२॥

भाषा-नीमकी छाल और खैरसारको एकत्र मिलाकर सहत और गोमूत्रके साथ आठ मासे प्रमाण पान करे तो श्लीपदरोग शांत होता है॥ १२॥

इति श्लीपदरोगचिकित्सा समाप्ता।

अथ विद्रधिरोगनिदानम् ।

त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थि समाश्रिताः। दोषाः शोथं शनै-र्घोरं जनयंत्युच्छ्रिता भृशम् ॥ महाशूलं रुजावन्तं वृत्तं वाप्यथ वायतम् । स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः ॥ पृथ-ग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा । षण्णामपि हि तेषां तु लक्षणं संप्रचक्षते ॥ १ ॥

भाषा-अपने अपने कारणोंसे कुपित हुए वातादि दोष अत्यन्त बढकर हड्डियोंमें स्थित होकर त्वचा, मांस और मेदको दूषित करके शनैः शनैः अत्यन्त दारुण, ऊपरको उठी हुई सूजन उत्पन्न करे है । वह सूजन अत्यन्त शूलयुक्त और पीडासंयुक्त होती है तथा गोल या लम्बी होती है उसको विद्रधि कहते हैं। वह छः प्रकारकी है । जैसे वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, क्षतज और रक्तज ऐसे यह छः प्रकारकी विद्रधि होती है। अब छहोंके लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥

वातज विद्रधिके लक्षण ।

कृष्णोरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः ।
चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभवः ॥ २ ॥

भाषा-वातज विद्रधि काली, लाल, कमी छोटी, कभी मोटी ऐसे घटे बढे, अत्यन्त पीडायुक्त । इसका उत्पन्न होना और पकना अनेक प्रकारसे होता है ॥२॥

पित्तज विद्रधिके लक्षण ।

पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान् ।
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः ॥ ३ ॥

भाषा-पित्तज विद्रधि पके गूलरकी समान प्रभावाली हो या काली हो, ज्वर और दाहयुक्त हो, इसका उत्पन्न होना और पकना शीघ्र हो॥ ३ ॥

कफज विद्रधिके लक्षण ।

शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः ।
चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसंभवः ॥ ४ ॥

भाषा-कफज विद्रधि सिकोरेकी समान बडी हो, पांडुवर्ण हो, शीतल, स्निग्ध, अल्पपीडायुक्त हो, इसका उत्पन्न होना और पकना बहुत देरमें हो ॥ ४ ॥

पकनेके अनंतर उनका स्राव ।

तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्रमशः स्मृताः ॥ ५ ॥

भाषा-तहां वातज विद्रधिकी राध पतली, पित्तज विद्रधिकी राध पीली और कफज विद्रधिकी राध सफेद होती है ॥ ५ ॥

सन्निपातकी विद्रधिके लक्षण ।

नानावर्णरुजा स्रावो घंटालो विषमो महान् ।
विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सान्निपातिकः ॥ ६ ॥

भाषा-सन्निपातज विद्रधि अनेक प्रकारकी पीडायुक्त, जिसमें अनेक प्रकारकी मवाद बहे, घटकी समान ऊपरसे पतली और नीचेसे मोटी, कभी घटे कभी बढे और रहरहकर पकती है ॥ ६ ॥

आगंतुकविद्रधिके लक्षण ।

तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणः। क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ॥ ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायन्ते तस्य देहिनः । आगन्तुविद्रधिर्ज्ञेयः पित्तविद्रधिलक्षणः ॥ ७ ॥

भाषा-लाठी, पत्थर, शस्त्र आदिकी चोटके लगनेसे अथवा घावके हो जानेसे अपथ्य सेवी मनुष्यके उस चोट या धावकी गरमीसे वायु विस्तृत होकर रक्त और पित्तको कुपित करके विद्रधिको उत्पन्न करे है । इसमें ज्वर, तृषा और दाह होती है । विशेषकरके इसमें पित्तज विद्रधिके लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

रक्तजविद्रधिके लक्षण ।

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाकरः ।
पित्तविद्रधिलिंगस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ ८ ॥

भाषा-जो काले फोडोंसे घिरी हुई हो, काले रंगकी हो, तीव्र दाह, पीडा और ज्वरसंयुक्त हो तथा जिसमें पित्तविद्रधिके लक्षण मिलते हों उसको रक्तज विद्रधि कहते हैं ॥ ८ ॥

अंतर्विद्रधिके लक्षण ।

पृथक् संभूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ।
वल्मीकवत्समुन्नद्धमंतः कुर्वन्ति विद्रधिम् ॥ ९ ॥

भाषा-वातादिदोष पृथक् पृथक् कुपित होकर अथवा सब दोष एकत्र कुपित होकर शरीरके भीतर गोलेके और बांबीकी समान बडी अन्तर्विद्रधिको करते हैं ॥९॥

विद्रधिके स्थान ।

गुदे बस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वंक्षणयोस्तथा । वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदये क्लोम्नि चाप्यथ ॥ एषामुक्तानि लिंगानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः । गुदे वातनिरोधस्तु बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता ॥ नाभ्यां हिक्का तथाऽऽटोपः कुक्षौ मारुतकोपनम् । कटिपृष्ठग्रहस्तीव्रो वंक्षणोत्थे च विद्रधौ ॥ वृक्कयोः पार्श्वसंकोचः प्लीन्हुच्छ्वासावरोधनम् । सर्वांगप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कंपश्च जायते ॥ श्वासो यकृति हिक्का च क्लोम्नि पेपीयते पयः ॥ १० ॥

भाषा-गुदा, बस्ति, मुख, नाभि, कोख, वंक्षण, वृक्क, प्लीहा, यकृत्, हृदय और इन स्थानोंमें विद्रधि उत्पन्न होती है इनके लक्षण वातादि दोषके निमित्तसे बाह्यविद्रधिकी समान जानने। गुदामें विद्रधि होनेसे अधोवायुका अवरोध होता है। बस्तिस्थानमें होनेसे अत्यन्त कठिनतासे थोडा थोडा मूत उतरे । नाभिमें होनेसे हिचकी तथा पीडायुक्त पेटमें गुडगुड शब्द होता है । कोखमें होनेसे वायुका कोप होता है । वंक्षणमें होनेसे कमर और पीठ बहुत जकड जाती है । वृक्कमें होनेसे पसलियोंमें संकोच होता है । प्लीहामें होनेसे श्वासका अवरोध होता है । हृदयमें होनेसे सम्पूर्ण अंग जकड जाते हैं और कम्प होता है। यकृत्में होनेसे श्वास और हिचकी होती है और क्लोममें विद्रधि होनेसे वारंवार जल पीना पडता है ॥ १० ॥

स्रावनिर्गमः ।

नाभेरुपरिजाः पक्वा यांत्यूर्ध्वमितरे त्वधः ।
अधःस्रुतेषु जीवेत्तु स्रुतेषूर्ध्वं न जीवति ॥ ११ ॥

भाषा-नाभिके ऊपर जो विद्रधि उत्पन्न होती है उसके पकनेसे जो राध बहती है वह मुखके मार्गसे ही निकलती है । नाभिके नीचे उत्पन्न हुई विद्रधि उसमेंसे जो राध निकलती है वह गुदाके मार्गसे निकलती और नाभिमें उत्पन्न होनेवाली विद्रधियोंका स्राव मुख और गुदा दोनों मार्गोंसे होता है । जिन विद्रधियोंका स्राव गुदाके मार्गसे होवे वह रोगी साध्य और जिनका स्राव मुखके मार्गसे होता है वह रोगी असाध्य है ॥ ११ ॥

विद्रधिमें साध्यासाध्य ।

हृन्नाभिबस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः । जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ साध्या विद्रधयः पंच विवर्ज्यः सान्नि-

पातिकः। आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत् ॥ १२ ॥

भाषा-हृदय, नाभि और बस्ति इन स्थानोंके सिवाय अन्य स्थानोंमें उत्पन्न हुई जो विद्रधि बाहर फूटे तो कदाचित् रोगी जीवे और जो हृदय, नाभि तथा बस्ति स्थानकी विद्रधि बाहर फूटे तो रोगी निश्चय मरे। पहिली पांच विद्रधि साध्य हैं और सन्निपातकी विद्रधि असाध्य है। इन विद्रधियोंकी आम, पक्व और विदग्ध अवस्था शोफरोगकी समान जानना ॥ १२ ॥

असाध्यलक्षण।

आध्मातं बद्धनिष्पंदं छर्दिहिक्कातृषान्वितम्।
रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ १३ ॥

भाषा-जिस विद्रधिरोगमें पेट फूल गया हो, मूत्र रुक गया हो तथा हिचकी, वमन, तृषा, शूल और श्वास हो वह विद्रधिरोग मनुष्यको मार देता है ॥ १३ ॥

इति विद्रधिरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ विद्रधिरोगचिकित्सा।

काथकल्कादिलेपविधिः।

पुनर्नवाया शुक्लाया मूलं तण्डुलवारिणा। पीतं विद्रधिनाशाय नात्र कार्या विचारणा॥ यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैः प्रलेपयेत्। विलीयते क्षणेनैव अपक्वश्चैव विद्रधिः ॥ पुनर्नवादारुविश्वदशमूलाभयाम्भसा। गुग्गुलूरुबुतैलं वा पिबेन्मारुतविद्रधौ ॥ पैत्तिकं शर्करालाजामधुकैः शारिवायुतैः। प्रदिह्यात् क्षीरपिष्टैर्वा पयसोशीरचन्दनैः॥ पिबेद्वा त्रिफलाक्वाथं त्रिवृत्कल्काद्यसंयुतम्। पंचवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम् ॥ यष्ट्याह्वशारिवाद्राक्षानलमूलैः सचन्दनैः। क्षीरपिष्टैः प्रलेपस्तु पित्तविद्रधिशान्तये॥ इष्टकासिकतालोहगोशकृत्तुषपांसुभिः। मूत्रपिष्टैश्च सततं स्वेदयेत् श्लेष्मविद्रधिम् ॥ शोभांजनकनिर्यूहहिङ्गुसैन्धवसंयुतम्। अचिराद्विद्रधीन् हन्ति प्रातः प्रातर्निषे-

वितः ॥ जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ । मृदुर्विरेको लघ्वन्नं स्वेदः पित्तोद्भवं विना ॥ वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैल-घृतान्वितैः । सुखोष्णबहुलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ स्वेदोपनाहाः कर्त्तव्याः शिग्रुमूलसमन्विताः । यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैश्च लेपयेत् ॥ विलीयते क्षणेनैव न पकश्चैव विद्रधिः । पित्तविद्रधिवत् सर्वां क्रियां निरवशेषतः ॥ विद्रधौ कुशलः कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः । शिग्रुमूलं जले धौतं दरपिष्टं प्रगा-लयेत् ॥ तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः । श्वेतवर्षा-भूवोर्मूलं मूलं वरुणकस्य च ॥ जलेन क्थितं पीतमपकविद्रधिं जयेत् ॥ शमयति पाठामूलं क्षौद्रयुक्तं तण्डुलाम्भसा पीतम् । अन्तर्भूतं विद्रधिमुद्धतं महेश्वरमनुजस्य ॥ अपके त्वेतदुद्दिष्टं पक्के तु व्रणवत् क्रिया । स्रुतेष्वूर्ध्वमधश्चैव मैरेयाम्लं सुरासवैः ॥ पेयो वरुणकादिस्तु मधुशिग्रुद्रुमोथ वा ॥ १४ ॥

भाषा-सफेद पुनर्नवेकी जडको चावलोंके जलमें पीसकर पान करनेसे विद्रधिरोग दूर होता है । जौ, गेहूं और मूंगको पीसकर प्रलेप करनेसे क्षणभरमें अपकविद्रधि नष्ट हो जाती है । पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ और दशमूलके क्वाथमें गूगल तथा अंडीका तेल डालकर पान करनेसे वातकी विद्रधि दूर होती है । मिश्री, खीलोंका चूर्ण, मुलहठी और अनन्तमूलको पीसकर प्रलेप करनेसे अथवा क्षीरकाकोली, खस और चंदनको दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे अथवा त्रिफलेके क्वाथमें निसोतका चूर्ण डाल पान करनेसे अथवा आमके पत्ते, जामुनके पत्ते, कदमके पत्ते, बिजौरेके पत्ते और बेलके पत्ते इन सब पत्तोंको एकत्र पीसकर घृतमें मिलाकर लेप करनेसे किंवा मुलहठी, अनन्तमूल, दाख, खस और चन्दनको दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे पित्तज विद्रधि दूर होती है । ईंट, बालू, लोहा, गोबर, भूस और धूलको गोमूत्रमें पीसकर निरंतर स्वेद देनेसे श्लेष्मविद्रधि दूर होती है । सहजनेके क्वाथमें हींग और सैंधानोन डाल-कर प्रातःकाल पान करनेसे बहुत पुरानी विद्रधि दूर होती है । सर्व प्रकारकी विद्र-धियोंमें जोंक लगवाना, अल्प विरेचन और स्वेदकर्म हितकारक है परन्तु पित्तप्र-धान विद्रधिरोगमें स्वेदक्रिया वर्जित है । वातज विद्रधिरोगमें वातनाशक औषधि-योंकी जडको पीसकर वसा, तेल और घृत मिलाकर मंदोष्ण करके गाढ

प्रलेप करनेसे लाभ होता है । सहजनेके जडकी छालको पीसकर प्रलेप करनेसे और इसीके द्वारा स्वेद देनेसे आराम होता है तथा जौ, गेहूं और मूंगको पीसकर प्रलेप करनेसे तत्काल अपक्व विद्रधि नष्ट हो जाती है । रक्तज और आगन्तुक विद्रधिरोगमें पैत्तिक विद्रधिरोगकी समान चिकित्सा करनी चाहिये । सहजनेकी जडको जलमें धोकर फिर उसको पीसकर रसको निचोडकर सहतके साथ पान करनेसे अंतर्गत विद्रधि दूर होती है । श्वेत पुनर्नवेकी जड और वरनेकी जडको जलमें औटाकर पान करनेसे अपक्वविद्रधि दूर होती है । पाढकी जडको चावलोंके गरम जलमें पीसकर पान करनेसे अपक्व विद्रधि दूर होती है । विद्रधिरोगकी अपक्व अवस्थामें उत्तमरीतिसे चिकित्सा करे और पक्वावस्थामें व्रणशोथोक्त चिकित्सा करे॥१४॥

इति विद्रधिरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ व्रणरोगनिदानम् ।

व्रणका पूर्वरूप ।

एकदेशोत्थितः शोथो व्रणानां पूर्वलक्षणम् । षड्विधः स्यात्पृथक्सर्वरक्तागंतुनिमित्तजः ॥ शोथाः षडेते विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोथलक्षणैः । विशेषः कथ्यते तेषां पक्वापक्वविनिश्चये ॥ १ ॥

भाषा-शरीरके किसी एक देशमें सूजन उत्पन्न हो उसको व्रणका पूर्वरूप जानना । वह सूजन वातज, पित्तज, कफज, सान्निपातिक, रक्तज और आगन्तुज इन भेदोंसे छः प्रकारकी है । इन छहोंके लक्षण पूर्वोक्त शोथरोगकी समान जानने । इनके पक्वापक्व विनिश्चयमें विशेष लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥

व्रणपाक ।

विषमं पच्यते वातात्पित्तोत्थश्चाचिरं चिरम् ।
कफजः पित्तवच्छोफो रक्तागंतुसमुद्भवः ॥ २ ॥

भाषा-वातका शोथ विषम रीति अर्थात् रुकरुकके पकता है, पित्तका शीघ्र पकता है, कफका बहुत देरमें पकता है, रक्तका और आगन्तुज पित्तकी समान बहुत शीघ्र पकते हैं ॥ २ ॥

कच्चे फोडेके लक्षण ।

मंदोष्मताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता ।
मंदवेदनता चैव शोथानामामलक्षणम् ॥ ३ ॥

भाषा-जिस फोडेमें गरमी और सूजन थोडी हो, सूजन कठिन हो, शरीरकी त्वचाके समान वर्ण हो और अल्पपीडा हो उस सूजनको कचा जानना ॥ ३ ॥

पच्यमानव्रणके लक्षण ।

दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव च पच्यते । पिपीलिकागणेनेव दश्यते छिद्यते तथा ॥ भिद्यते चैव शस्त्रेण दंडेनेव च ताड्यते। पीड्यते पाणिनेवांतः सूचिभिरिव तुद्यते ॥ शोपश्चोपो विवर्णः स्यादंगुल्येवावपाड्यते । आसने शयने स्थाने शांतिं वृश्चिकविद्धवत् ॥ न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मानवस्तिवत् । ज्वरतृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ४ ॥

भाषा-फोडेके पकनेके समय जो लक्षण होते हैं उनको कहते हैं । जैसे कि अग्निसे जलानेकेसी जलन, क्षार लगनेकेसी चिनमिनाहट, चेंटीके काटनेकी समान, छेदनकी समान, शस्त्रसे चीरनेकी समान, दंडेसे मारनेकी समान, हाथसे मीतरको पीडित करनेकी समान, सुई चुमानेकी समान, पीडा शोथके एक स्थानमें दाह और चूसनेकी समान पीडा, वर्ण बदल जाय, अंगुलीसे चीरनेकी समान वेदना हो इन पीडाओंसे वह रोगी बैठते समय, सोते समय, उठते समय दुःखित होता है अर्थात् विच्छूके काटनेकी समान वह सदैव बेचैन रहता है और उसकी वह सूजन फूलकर जलसे भरी हुई मसककी समान हो जाती है फिर उसमें ज्वर, तृषा और अरुचि आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥

पक्वव्रणके लक्षण ।

वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः । प्रादुर्भावो वलीनां च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥ उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचः । बस्ताविवांबुसंचारः स्याच्छोथेऽगुलिपीडिते ॥ पूयस्य पीडयत्येकमंतमंते च पीडिते । भक्ताकांक्षा भवेच्चैव शोथानां पक्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

भाषा-व्रणशोथके पकनेपर पीडा कम हो जाती है, सूजनका रंग लाल और वह थोडी हो और ऊंची न हो, उसमें सिकुरन पड पडके सुई चुभानेकेसी पीडा, वारंवार खुजली हो, ज्वरादि उपद्रव शांत हों, खुजवानेसे बीचमें गहरा हो जाय और त्वचा फट जाय, सूजनको अंगुलीसे दवानेसे जैसे बस्तीके तलेका

पानी इधर उधर हो जाता है उसी प्रकार राध इधर उधर हो जाय और अन्नमें इच्छा हो ॥ ५ ॥

सूजनमें एक दोष उत्पन्न होनेके समय तीनोंका प्रादुर्भाव होता है ।

नर्तेऽनिलाद्रुङ् न विना न पित्तं पाकः कफं वापि विना न पूयः ।
तस्माद्धि सर्वे परिपाककाले पचन्ति शोथास्त्रिभिरेव दोषैः ॥ ६ ॥

भाषा-जैसे कि वातके विना पीडा नहीं होती, पित्तके विना पाक नहीं होता और कफके विना राध नहीं होती इस कारण पकते समय सर्व व्रणशोथ त्रिदोषान्वित हो जाते हैं ॥ ६ ॥

राध न निकलनेसे जो परिणाम होता है सो
दृष्टांतपूर्वक कहते हैं ।

कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वाय्वीरितः संदहति प्रसह्य ।
तथैव पूयोप्यविनिःसृतो हि मांसं शिराः स्नायु च खादतीह ॥ ७ ॥

भाषा-पक व्रणमेंसे राध न निकालनेका परिणाम, जैसे सूखी घासके समूहमें आग लगी हुई पवनकी सहायतासे उस घासको जलाकर भस्म कर देती है वैसेही व्रणमेंसे राध न निकालनेसे वह राध मांस, शिरा और नसोंको भक्षण कर लेती है ॥ ७ ॥

आमादि लक्षणज्ञानसे वैद्यके गुणदोष दिखाते हैं ।

आमं विदह्यमानं च सम्यक् पक्वं च लक्षणैः ।
जानीयात्स भवेत् वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ ८ ॥

भाषा-पकापकव्रणको न जाननेवाले वैद्यके गुण दोष । कच्चा, पकता हुआ और जो भले प्रकारसे पक गया हो, ऐसे व्रणके लक्षणोंको जो वैद्य जानते हैं वही पूर्ण वैद्य हैं । वही राजवैद्योंकी श्रेणीमें समझे जाते हैं, उनही वैद्योंका गुणी जन आदर सत्कार करते हैं, बाकी वैद्य तो रोगियोंको ठग ठगाकर पेट भरते हैं ॥ ८ ॥

अपक्कका छेदन और पकेकी उपेक्षा करनेमें दोष ।

यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते ।
श्वपचाविव मंतव्यौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ ९ ॥

भाषा-जो मूर्ख वैद्य कच्चे व्रणको पका जान चीर देते हैं और पकेको कच्चा समझकर नहीं चीरते उन दोनों अज्ञानी वैद्योंको चाण्डालकी समान जानना चाहिये ॥ ९ ॥

व्रणनिदानम् ।

द्विधा व्रणः परिज्ञेयः शारीरागन्तुभेदतः ।
दोषैराद्यस्तयोरन्यः शस्त्रादिक्षतसंभवः ॥ १० ॥

भाषा–शारीर और आगन्तुक इन भेदोंसे व्रण दो प्रकारका है। तहां शारीरिक वातादि दोषोंके कोपसे होता है और आगन्तुक शस्त्रादिकी चोटके लगनेसे होता है ॥ १० ॥

वातज व्रण ।

स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावो महारुजः ।
तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसम्भवः ॥ ११ ॥

भाषा–वातज व्रण देखने और छूनेमें कठिन मालूम हो, जकडासा हो, उसमें थोडा स्राव हो और पीडा अधिक हो, एवं सुई चुभानेकीसी पीडा हो, स्फुरे और उसका रंग लाली लिये काला हो ॥ ११ ॥

पित्तव्रणके लक्षण ।

तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुष्टयवदारणैः ।
व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गन्धैः स्रावैश्च पूतिकैः ॥ १२ ॥

भाषा–तृषा, मोह, ज्वर, क्लेद, जलन, सडना, फटना, वास आवे और स्राव हो ये पित्तव्रणके लक्षण जानने ॥ १२ ॥

कफव्रणके लक्षण ।

बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः ।
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदी चिरपाकी कफोद्भवः ॥ १३ ॥

भाषा–कफज व्रण अत्यन्त लिबलिबा, भारी, चिकना, अचल, मन्द पीडायुक्त, पांडुवर्ण, अल्प वहनेवाला और बहुत दिनोंमें पकनेवाला जानना ॥ १३ ॥

रक्तज द्वंद्वव्रण ।

रक्तो रक्तस्रुती रक्ताद्द्वित्रिजः स्यात्तदान्वयैः ॥ १४ ॥

भाषा–जो व्रण रक्तसे होता है वह रक्तव्रण उसमेंसे रुधिरहीका स्राव हो और रक्तहीमें दोष मिश्रित होनेसे वह द्वंद्वज और सन्निपातज जानना ॥ १४ ॥

सुखव्रणके लक्षण ।

त्वङ्मांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्रुतः ।
धीमतोऽभिनवः काले सुखं साध्यः सुखव्रणः ॥ १५ ॥

भाषा-जो व्रण त्वचा और मांसमें उत्पन्न हो एवं मर्मरहित स्थानमें हो, उपद्रवरहित हो, तरुण और बुद्धिमान् पुरुषोंके हो तथा हेमन्त, शिशिर और वसन्त ऋतुमें उत्पन्न हुआ ऐसा व्रण सुखसाध्य जानना ॥ १५ ॥

कृच्छ्रसाध्य और असाध्य व्रणके लक्षण।

गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः।
सर्वैर्विहीनो विज्ञेयः सोऽसाध्यो निरुपक्रमः ॥ १६ ॥

भाषा-जिस व्रणमें सुखसाध्य व्रणके कुछेक लक्षण न हों वह कष्टसाध्य और जिसमें सम्पूर्ण लक्षण न हों वह असाध्य जानना ॥ १६ ॥

दुष्टव्रणके लक्षण।

पूतिपूयातिदुष्टासृक्स्राव्युत्संगी चिरस्थितिः।
दुष्टव्रणोऽतिगंधादिः शुद्धलिंगविपर्ययः ॥ १७ ॥

भाषा-जिस व्रणमें दुर्गंधित पीव और दूषित रुधिर वहे, ऊंचा, बहुत दिनों का एवं अत्यन्त दुर्गंधादियुक्त और शुद्ध व्रणके लक्षणोंसे विपरीत लक्षणोंवाला हो उसको दुष्ट व्रण जानना ॥ १७ ॥

शुद्धव्रणलक्षण।

जिह्वातलाभोऽतिमृदुः श्लक्ष्णः स्निग्धोऽल्पवेदनः।
सुव्यवस्थो निरास्रावः शुद्धो व्रण इति स्मृतः ॥ १८ ॥

भाषा-जो व्रण जीभके तले भागकी समान अत्यन्त कोमल हो, साधा स्वच्छ, स्निग्ध, अल्पपीडायुक्त, सुन्दर व्यवस्थायुक्त और स्रावरहित हो वे व्रण शुद्ध जानना ॥ १८ ॥

भरनेवाले व्रणके लक्षण।

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः।
स्थिराश्च पिटिकावंतो रोहतीति तमादिशेत् ॥ १९ ॥

भाषा-जिस व्रणका रंग कबूतरके रंगकी समान हो, जिसमें स्राव न हो और व्रण स्थिर हो, जिसमें खेसे मालूम हो उसको जानना कि यह व्रण भरता है ॥ १९ ॥

भर गया हो उस व्रणके लक्षण।

रूढवर्त्मानमग्रन्थिमशूनमरुजं व्रणम्।
त्वक्सवर्णं समतलं सम्यग्रूढं तमादिशेत् ॥ २० ॥

भाषा–जिसका मार्ग वहनेसे बंद हो गया हो, गांठ बंधीसी हो गई हो, सूजन और पीडा जिसमें न हो, शरीरकी त्वचाके समान जिसका रंग हो गया हो, घावका गढ्ढा भरकर समासम हो गया हो वह व्रण भर गया जानना ॥ २० ॥

व्याधिविशेषकरके व्रण कष्टसाध्य होता है इसका लक्षण ।

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ।
व्रणाः कृच्छ्रेण सिद्ध्यन्ति येषां चापि व्रणे व्रणाः ॥ २१ ॥

भाषा–कुष्ठरोगी, विषरोगी, क्षयरोगी, मधुमेहरोगी ऐसे मनुष्योंका और जिनके व्रणमें व्रण उत्पन्न हो गया है ऐसे मनुष्योंका व्रण अत्यन्त कष्टसाध्य है॥२१॥

साध्यासाध्यलक्षण ।

वसा मेदोथ मज्जानं मस्तुलुंगं च यः स्रवेत् । आगन्तुजो व्रणः सिद्ध्येन्न सिद्ध्येद्दोषसम्भवः॥ मद्यागुर्वाज्यसुमनःपद्मचन्दनचम्पकैः । सुगंधा दिव्यगंधाश्च मुमूर्षूणां व्रणाः स्मृताः ॥ ये च मर्म्मस्वसंभूता भवन्त्यत्यर्थवेदनाः । दह्यन्ते चान्तरत्यर्थं बहिः शीताश्च ये व्रणाः ॥ प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः । प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषां च मर्म्मसु॥ क्रियाभिः सम्यगारब्धा न सिद्ध्यन्ति च ये व्रणाः । वर्जयेदेव तान्वैद्यः संरक्षन्नात्मनो यशः ॥ २२ ॥

भाषा–जिस व्रणमें वसा, मेद, मज्जा और मस्तिष्क स्नेह ये वहते हों वह आगन्तुज होय तो साध्य और वातादि दोषज होय तो असाध्य जानना । जिन व्रणोंमें मदिरा, अगर, घी, कमल और चम्पाके फूलोंकेसी तथा चंदन आदिकी सुगंध और दिव्यगंध आवे वह व्रण मरनेवाले रोगियोंके होते हैं । जो व्रण मर्म्मस्थानोंमें उत्पन्न हुए हैं और उनमें अधिक वेदना हो वह एवं जिन व्रणोंके भीतर दाह हो और ऊपरसे शीतल हो वह तथा जिनमें बाहर दाह हो और भीतर शीतल हो वह अथवा जिस व्रणरोगमें बल और मांसका क्षय हो, श्वास, खांसी और अरुचि इनसे व्रणरोगी पीडित हो वह तथा जो व्रण मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुए हैं और उनमें पीव, रक्त अत्यन्त वहे वह व्रण अथवा जिन व्रणोंकी उत्तम चिकित्सा करनेसेभी आराम न हो ऐसे व्रणोंको अपने यशकी इच्छा करनेवाले वैद्य छोड देवे ॥ २२ ॥

व्रणरोगमें अपथ्य।

व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात्।
तौ च रुक् च दिवास्वापात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ २३ ॥

भाषा-श्रम करनेसे व्रणमें सूजन उत्पन्न होती है, जागनेसे व्रणपर अरुणता होती है, दिनमें सोनेसे व्रणमें लालीयुक्त पीडा होती है और स्त्रीप्रसंग करनेसे सूजन लाली और पीडा होकर मरण होता है ॥ २३ ॥

आगन्तुव्रणनिदानम्।

नानाधारामुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः।
भवन्ति नानाकृतयो व्रणास्तांस्तान्निबोध मे ॥ २४ ॥

भाषा-नाना प्रकारकी धारवाले और नाना प्रकारके मुखवाले शस्त्र अनेक स्थानोंमें लगनेसे अनेक प्रकारकी आकृतिवाले व्रण होते हैं उनके लक्षणोंको कहते हैं ॥ २४ ॥

संख्यासंप्राप्ति।

छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च।
घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २५ ॥

भाषा-छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित और घृष्ट ऐसे ये आगन्तुज व्रण छः प्रकारके हैं। अब उनके लक्षण कहता हूं ॥ २५ ॥

छिन्नके लक्षण।

तिर्यक्छिन्न ऋजुर्वापि यो व्रणस्त्वायतो भवेत्।
गात्रस्य पातनं तद्धि च्छिन्नमित्यभिधीयते ॥ २६ ॥

भाषा-जो व्रण तिरछा, सीधा अथवा लम्बा हो और शरीरका एक अंग कटकर गिर जाय या नहींभी गिरे उसको छिन्नव्रण कहते हैं ॥ २६ ॥

भिन्नके लक्षण।

शक्तिकुंतेषुखड्गाग्रविषाणैराशयो हतः।
यत्किंचित्स्रवते तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ २७ ॥

भाषा-बर्छी, भाला, बाण, तलवारकी नोक और विषाण (दांत, सींग) इनसे जो कोठेमें आमाशयादिक छिदे और उसमेंसे कुछ रुधिरभी निकले उसको भिन्नव्रण कहते हैं ॥ २७ ॥

कोष्ठके लक्षण ।

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ।
हृदुंडुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ २८ ॥

भाषा-आमाशय, अग्न्याशय, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताशय, यकृत, प्लीहा, हृदय, मलाशय और फुप्फुस इन स्थानोंको कोष्ठ कहते हैं ॥ २८ ॥

इन भेदोंके लक्षण ।

तस्मिन् भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते । मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥ मूर्छाश्वासतृषाध्मानमभक्तच्छन्द एव च । विण्मूत्रवातसंगश्च स्वेदास्रावोऽक्षिरक्तता ॥ लोहगंधित्वमास्यस्य गात्रदौर्गन्ध्यमेव च । हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र मे शृणु ॥ २९ ॥

भाषा-उस कोष्ठमें शस्त्रसे छिद्र होनेसे उस कोठेमें रुधिर भर जाता है तब ज्वर और दाह हो, मूत्रमार्ग, गुदा, मुख और नाकके द्वारा रुधिर निकले, मूर्छा, श्वास, तृषा, अफरा, अन्नमें अरुचि, मल, मूत्र और अधोवायुका अवरोध, पसीना अधिक आवे, नेत्रोंमें लाली हो, मुखमें लोहेकी समान गंध आवे, शरीरमें दुर्गंधि आवे, हृदय और पसलियोंमें शूल हो ये सब लक्षण होते हैं । अब कुछ विशेष लक्षण कहते हैं ॥ २९ ॥

आमाशयस्थित रक्तके लक्षण ।

आमशयस्थे रुधिरे रुधिरं च्छर्दयत्यपि ।
आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम् ॥ ३० ॥

भाषा-आमाशयमें रुधिरके भर जानेसे रुधिरकी वमन हो, पेट फूल जाय और दारुण शूल हो ॥ ३० ॥

पक्वाशयस्थके लक्षण ।

पक्वाशयगते चापि रुजा गौरवमेव च ।
अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह ॥ ३१ ॥

भाषा-पक्वाशयमें रुधिरके भर जानेसे अत्यंत पीडा, शरीरमें भारीपन और कमरसे नीचेतक शरीर शीतल होता है ॥ ३१ ॥

विद्धव्रणके लक्षण ।

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदंगं त्वाशयं विना ।

उत्तुंडितं निर्गतं वा तद्विद्धमिति निर्दिशेत् ॥ ३२ ॥

भाषा-आशयको छोडकर अन्य जो अंग हैं उनमें बहुत बारीक नोकवाले शल्य अर्थात् सुई, कांटे छिद जानेसे वह अंग ऊपरको ऊंचा आ जाता है, वह शल्य निकल जाय अथवा उसीमें रह जाय उसको विद्धव्रण कहते हैं ॥ ३२ ॥

क्षतके लक्षण ।

नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् ।
विषमं व्रणमंगेषु तत्क्षतं त्वभिनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥

भाषा-जो व्रण न अत्यंत छिदा हो और न अत्यंत कटा हो एवं दोनों लक्षणोंसे युक्त हो तथा शरीरमें टेडामेडा हो उसको क्षत कहते हैं ॥ ३३ ॥

पिच्चितके लक्षण ।

प्रहारपीडनाभ्यां तु यदंगं पृथुतां गतम् ।
सास्थि तत्पिच्चितं विद्यात् मज्जारक्तपरिप्लुतम् ॥ ३४ ॥

भाषा-जो अंग हाडसहित चोटके लगनेसे अथवा किसी भारी बोझके ऊपर पडनेसे पिच जाय, उसमें मज्जा और रक्त संयुक्त हो उसको पिच्चितव्रण कहते हैं॥३४॥

घृष्टके लक्षण ।

घर्षणादभिघाताद्वा यदंगं विगतत्वचम् ।
उष्णस्रावान्वितं तद्धि घृष्टमित्यभिनिर्दिशेत् ॥ ३५ ॥

भाषा-घर्षणसे, अभिघातसे अथवा अन्य कारणोंसे जिस अंगकी त्वचा छिल जाय, अग्निकी समान गरम रुधिर निकले उसको घृष्टव्रण कहते हैं ॥ ३५ ॥

सशल्यव्रणके लक्षण ।

श्यावं सशोथं पिटिकान्वितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं च ।
मृदूद्गतं बुद्बुदतुल्यमांसं व्रणं सशल्यं सरुजं वदंति ॥ ३६ ॥

भाषा-जो व्रण कृष्णरक्तवर्णमिश्रित हो, सूजनसहित, जिसमें छोटी छोटी फुंसी अधिक हों, उनमेंसे वारंवार रक्त बहे, नरम और बबूलेकी समान, ऊपरको उठा हुआ जिसका मांस हो उस व्रणको शल्ययुक्त जानना अर्थात् उस व्रणमें कांटे आदि शल्य रह गया है ॥ ३६ ॥

कोष्ठभेदके लक्षण ।

त्वचोऽतीत्य शिरादीनि भित्त्वा वा परिहृत्य वा ।
कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्य्यादुक्तानुपद्रवान् ॥ ३७ ॥

भाषा-जो कांटाआदि शल्य सातों त्वचाओंको भेदकर और नसोंकोभी भेदकर अथवा नसोंको छोडकर कोठेमें जायकर स्थित हो वह पूर्वोक्त भिन्नकोष्ठके घोर उपद्रव उनको करे है ॥ ३७ ॥

असाध्य कोष्ठभेद।

तत्रान्तर्लोहितं पाण्डु शीतपादकराननम्।
शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्धं परिवर्जयेत् ॥ ३८ ॥

भाषा-जिसके शल्ययुक्त कोठेमें रुधिर रह गया हो और वह रोगी पीला पड जाय तथा उसके पांव, हाथ, मुख और उसास ठंडा हो, नेत्र लाल हो गये हों और पेटमें अफरा आ गया हो वह कोष्ठभेद असाध्य जानना ॥ ३८ ॥

मर्मोंमें चोट लगनेसे जो व्रण होता है उसका सामान्य लक्षण।

भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानिरथोष्णता च।
स्रस्तांगता मूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः ॥
मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत् सर्वेंद्रियार्थोपरमस्तथैव।
दशार्द्धसंख्येष्वथ विक्षतेषु सामान्यतो मर्म्मसु लिंगमुक्तम् ॥ ३९ ॥

भाषा-भ्रम, बकवाद करना, पतित होना, इन्द्रिय और मनमें मोह होना, हाथ पांवका फैलना, ग्लानि, गरमी, देहके अंगोंमें शिथिलता, मूर्च्छा, श्वासका ऊपरको चले जाना, वातकी तीव्र वेदना, धुले हुए मांसके जलकी समान रक्त बहे, सम्पूर्ण इन्द्रिय व्याकुल हों ये सब लक्षण मांसादि पांच मर्मविद्ध होनेसे होते हैं ॥ ३९ ॥

मर्मरहित शिराविद्धके लक्षण।

सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं स्रवेत्तत्क्षणजश्च वायुः।
करोति रोगान् विविधान्यथोक्तान् शिरासु विद्धास्वथ वा क्षतासु ४०

भाषा-शिराके बिध जाने अथवा शिरामें घावके हो जानेसे वीरबहूटीकी समान अरुणवर्ण एवं पुष्कर वर्ण रुधिर बहे और रुधिरके क्षय होनेसे वायु कुपित होकर अनेक प्रकारके रोगोंको उत्पन्न करे ये लक्षण मर्मरहित शिराविद्धके जानने ॥ ४० ॥

स्नायुविद्धके लक्षण।

कौब्जं शरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च।
चिराद् व्रणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ ४१ ॥

भाषा-कुब्जता (कुबडापन), शरीरमें ग्लानियुक्त पीडा, काम करनेमें सा-

मर्थ्यका न होना, बहुत वेदना हो और जिसका व्रण बहुत कालमें भरे उसको स्नायुविद्ध जानना ॥ ४१ ॥

संधिविद्धके लक्षण ।

शोथाभिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च बलक्षयः पर्वसु भेदशोथौ । क्षतेषु संधिष्वचलाचलेषु स्यात्सर्वकर्मोपरमश्च लिंगम् ॥ ४२ ॥

भाषा-जिस मनुष्यकी संधि चल अथवा निश्चल वेधी गई हो, उसके सूजन बढती जाय, अत्यन्त भयंकर वेदना हो, बलका नाश, संधियोंके जोडोंमें हडफूटन और सूजन और संधियोंके काममें असामर्थ्यता ये लक्षण संधिविद्धके जानने॥४२॥

हड्डीविद्धके लक्षण ।

घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्ववस्थासु च नैति शांतिम् । भिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धं पुरुषं व्यवस्येत्॥ ४३ ॥

भाषा-जिस मनुष्यके निरंतर रातदिन अत्यंत भयंकर वेदना हो, किसी समय चैन नहीं पडे उसके अस्थि विधी है ऐसा जानना ॥ ४३ ॥

मर्मविद्धके सामान्य लक्षण ।

यथास्वमेतानि विभावयेच्च लिंगानि मर्मस्वभिताडितेषु ॥ ४४ ॥

भाषा-मर्मस्थानोंमें चोटके लगनेसे पूर्वोक्त लक्षण जानने और च शब्दसे जो भ्रम मलापादिक सामान्य लक्षण हैं उनकोभी जानना ॥ ४४ ॥

मांसव्रणके लक्षण।

पाण्डुर्विवर्णः स्पृशितं न वेत्ति यो मांसमर्मस्वभिताडितः स्यात्४५

भाषा-जो मनुष्य मांसमर्मके स्थानमें विद्ध होता है उसका शरीर पाण्डुवर्ण तथा वेरंग और उस स्थानमें स्पर्शज्ञान न हो ॥ ४५ ॥

सर्वव्रणके उपद्रव ।

विसर्पः पक्षघातश्च शिरास्तम्भोपतानकः । मोहोन्मादव्रणरुजा ज्वरस्तृष्णा हनुग्रहः ॥ कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः । षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणानां व्रणचिन्तकैः ॥ ४६ ॥

भाषा-विसर्प, पक्षाघात (लकुवा), शिरका जकडना, अपतानक, मोह, उन्माद, ज्वर, व्रणमें पीडा, तृषा, हनुग्रह, खांसी, छर्दि, अतीसार, हिचकी, श्वास और कांपना ये व्रणरोगमें १६ उपद्रव होते हैं। ऐसे व्रणके जाननेवालोंने कहा है॥४६॥

इति व्रणरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ व्रणरोगचिकित्सा ।

लेपादिप्रकारः ।

आदौ विम्लापनं कुर्य्यात् द्वितीयमवसेचनम् । तृतीयमुपनाहं च चतुर्थी पाटनक्रियाम् ॥ पंचमं शोधनं चैव षष्ठं रोपणमिष्यते । एते क्रमाद् व्रणस्योक्ताः सप्तमो वैकृतापहः ॥ मातुलुंगाग्निमन्थौ च भद्रदारु महौषधम् । अहिंस्रा चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोथहा ॥ कल्कः काञ्जिकसम्पिष्टः स्निग्धः शाखोटकत्वचः । सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः ॥ दूर्वा च नलमूलं च मधुकं चन्दनस्तथा । शीतलाश्च गणाः सर्वे प्रलेपाः पित्तशोथहाः ॥ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः । ससर्पिष्कः प्रलेपः स्याच्छोथनिर्वापणः स्मृतः ॥ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसशोलुभिः । चन्दनं द्वयमंजिष्ठा यष्टीपूरणगैरिकैः ॥ शतधौतघृतोन्मिश्रो लेपो रक्तप्रसादनः । दाहपाकरुजास्रावशोथनिर्वापणः परः ॥ कंचटं तिलभृष्टं च पिष्ट्वा लेपं प्रदापयेत् । दाहक्लेदरुजास्रावशोथवैवर्ण्यनाशनम् ॥ अजगंधाश्वगंधा च काला सरलया सह । एकोपि चाजशृंग्याश्च प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥ निम्बपत्रं तिला दंती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् । दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेसरी ॥ सुवर्चीपत्रधत्तूरकर्णामोटकुठेरकाः । पृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोपणाः ॥ तिलकल्कः सलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद्द्र घृतम् । मधुकं निम्बपत्राणि प्रलेपः शोथशोधनः ॥ ये क्लेदपाकाः स्रुतिगंधवन्तो व्रणा महान्तः सरुजः सशोथाः । प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शांतिं त्रिफलारसेन ॥ ४७ ॥

भाषा—प्रथम विम्लापन, द्वितीय अवसेचन, तृतीय प्रलेप, चतुर्थ छेदन, पंचम शोधन, षष्ठ रोपण और सप्तम वैकृतनाश यह व्रणकी चिकित्सा करनेकी क्रिया क्रमसे कही है। बिजोरा नींबू, अरणी, देवदारु, सोंठ, रास्ना और अहिंस्रा इन सबों-

को समान भाग ले एकत्र पीसकर लेप करनेसे वातात्मक शोथरोग दूर होता है। सिहोडेकी छालको कांजीमें पीस घी मिलाकर लेप करनेसे वातजनित व्रणशोथ दूर होता है। दूब, नीलकी जड, मुलहठी, लाल चन्दन और उत्पलादि शीतलगणकी औषधियोंके द्वारा प्रलेप करनेसे पित्तज व्रणशोथ दूर होता है। वड, गूलर, पीपल, पाखर और वेतकी छालको पीसकर सौ वार धुले हुए पुराने घीमें मिलाकर लेप करनेसे पित्तज व्रणशोथ दूर होता है। वडकी छाल, गूलरकी छाल, पीपलकी छाल, पाखरकी छाल, मुलहठी, बिजोरेकी जड, वेतके जडकी छाल, लिहसोडेकी छाल, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, मजीठ और गेरु इन सब औषधियोंको समान भाग लेकर सौवार धुले पुराने घीमें मिलाकर लेप करनेसे पित्तज व्रणशोथजन्य दूषितरक्त शुद्ध होता है तथा व्रणकी दाह, पाक, वेदना, राध आदिका गिरना और सूजन दूर होती हैं। जलचौलाई और भुने हुए तिलोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे व्रणकी दाह, क्लेद, पीडा, स्राव, शोथ और विवर्णता दूर होती है। तिलवन, असगंध, कलम्बक और धूपसरल इनको एकत्र पीसकर अथवा केवल कांकडाशिंगीको पीसकर लेप करनेसे कफजन्य व्रणशोथ दूर होता है। नीमके पत्ते, तिल, दंती, निसोत और सैंधानोन इन सबोंको समान भाग लेकर जलके साथ पीसकर सहत मिलाकर लेप करनेसे दुष्टव्रण शुद्ध होकर आराम होता है। करेलेके पत्ते, शालिंच, कर्णमोरटलता और तुलसीके पत्ते इनमेंसे एक किसीके पत्तोंको पीसकर प्रलेप करनेसे गम्भीरव्रण भर जाता है। तिलोंका चूर्ण, सैंधानोन, हलदी, दारुहलदी, निसोत, मुलहठी और नीमके पत्तोंको पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे व्रणशोथ दूर होता है। त्रिफलेके क्वाथको गूगलके साथ सेवन करनेसे क्लेद, पाक, स्राव, वेदना और सूजनसहित व्रण नष्ट होता है॥ ४७॥

वटिकागुग्गुलुः।

विडंगं त्रिफला व्योषचूर्णं गुग्गुलुना समम्।
सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा हितभोजनः॥
दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठशोथव्रणापहः॥ ४८॥

भाषा-वायविडंग, त्रिफला, त्रिकुटा और गूगल इनको एकत्र कर घीमें मिलाकर गोली बना लेवे। इन गोलियोंको सेवन करनेसे दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह, कोढ और नाडीव्रण दूर होता है॥ ४८॥

अमृतागुग्गुलुः।

अमृतायाः पलशतं दशमूलशतं तथा। पाठा मूर्वा बले द्वे च

दार्वी गन्धर्वहस्तकः ॥ पृथग्दशपलान् भागाञ्छतं चापि हरीतकी । विभीतकशते द्वे च चत्वार्य्यामलकानि च॥ गुग्गुलुः प्रस्थसंयुक्तो द्रोणेऽपामुषितं निशि । पूर्वाह्णे क्राथयेद्धीमांश्चतुर्भागावशेषितम् ॥ उद्धृत्य स्राव्य विपचेद्यावल्लेहकमागतम् । शीते त्वेतानि संचूर्ण्य प्रक्षिपेत् पलिकानि च ॥ त्रिफला त्रिवृता व्योषदन्तीच्छिन्नाश्वगंधकाः । कृमिशत्रुदलं चोचं सूक्ष्मैला नागकेशरम् ॥ स्वच्छन्दाहारचेष्टस्य शीताम्भो वृष्यभोजनम् । अमृताग्गुलुर्नाम्ना सर्वव्रणविशोधनः ॥ दुष्टकुष्ठविसर्पाश्च हिक्कामेहगरोदरम् । प्लीहामयक्ष्महृद्रोगं पाण्डुशोपमसृग्दरम् ॥ गुल्मार्शो विद्रधीन् भग्ननाडीव्रणभगन्दरान् । अशीतिर्वातजान् रोगान् निहन्ति श्वासजित्परान् ॥ कण्डूकोष्ठाङ्गमर्दामवातशोणितवातहा । आत्रेयानुमतो ह्येष गुग्गुलुः परिकीर्तितः॥४९॥

भाषा-गिलोय १०० पल, दलमूल १०० पल, पाद, मूर्वा, खिरेंटी, गंगेरन, दारुहलदी और अण्ड प्रत्येक दश दश पल, हरड १००, बहेडे २००, आमले ४०० और चौसठ तोले गूगल पोटलीमें बांधकर सबोंको एक द्रोण जलमें रातको भिगो देवे। फिर सवेरेको क्राथ बनावे। जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे, पश्चात् इसमें हरड, बहेडे और आमलेकी गुठली निकालकर और गूगलको पीसकर मिला देवे, फिर इसको पकावे। जब पकते २ गाढा होकर शीतल हो जाय तब त्रिफला, निसोत, त्रिकुटा, दंती, गिलोय, असगंध, वायविडंग, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिला देवे, इसपर यथेष्ट और वृष्य भोजन करे और शीतल जलपान करे। यह अमृतागूगल सर्व प्रकारके व्रणोंको शुद्ध करे है तथा दुष्टकुष्ठ, विसर्प, हिक्कारोग, प्रमेह, विषविकार, उदररोग, प्लीहा, आम, राजयक्ष्मा, हृदयरोग, पाण्डु, शोष, रुधिरविकार, गुल्म, बवासीर, विद्रधि, भग्न, नाडीव्रण, भगन्दर, अस्सी प्रकारके वातरोग, श्वासरोग, कण्डू, अंगमर्द, आमवात और रक्तवात तथा अन्यान्यरोगोंको दूर करे है। यह आत्रेयमुनिने कहा है ॥ ४९ ॥

गुणवती वर्तिः ।

तुल्यं सर्जरसं लोध्रं सिन्दूरातिविषा निशा । अक्षकम्पिल्लश्रीवा-

सगुग्गुलुघृततैलकैः ॥ तुल्यांशं पेषयेत् पिण्डं तत्तुल्यं सिक्थकं भवेत्। मृद्वग्निना पचेत्पात्रे मिश्रितं तं समुद्धरेत् ॥ वर्त्तिर्गुणवती नाम्नी योज्या शीतजलान्विता। दुःसाध्यव्रणगण्डेषु हिता नाडीव्रणेषु च ॥ शोधने रोपणे चैव स्वास्थ्यमुत्पादयत्यलम् ॥ ८० ॥

भाषा-राल, लोध, सिन्दूर, अतीस, हलदी, वहेडा, कवीला, सरलका गोंद, गूगल, घृत और तैल ये सब समान भाग और सबोंकी बराबर मोम लेवे। इनको मंद मंद अग्निसे पकाकर बत्ती बना लेवे, यह बत्ती शीतल जलके साथ व्रणपर लगावे। इससे असाध्य व्रण, गण्डव्रण और नाडीव्रण शुद्ध होकर भर जाते हैं॥८०॥

धत्तूरलेपः।

धत्तूरपत्रमूलं सलवणमुष्णं व्रणोत्थितारम्भे।
दत्तं पान्नियतं व्रणशोथं हरति बहुदुष्टम् ॥ ८१ ॥

भाषा-धतूरेके पत्ते और धतूरेकी जडको पीसकर लवण मिलाके गरम कर व्रणके उत्पन्न होनेके पहिलेही लेप करनेसे व्रणशोथ आराम होता है ॥ ८१ ॥

कटुतैलयुक्तदरदगुटिका।

दरदः पार्वतीपुष्पं कुनटी पुरुषो रसः। शोणितं गंधको दैत्यः सैन्धवातिविषा चवी॥ शरपुंखा विडंगश्च यवानी गजपिप्पली। मरिचार्कं च वरुणा धूनकं च हरीतकी ॥ मर्दितं कटुतैलेन गुटिकां कारयेदिह। नाडीव्रणप्रवाहं च गण्डमालां विचर्चिकाम् ॥ चिरव्रणं दद्रुकुष्ठं पूतिकं तु शिरोगदम्। पादस्फोटं तथा हस्तं विचर्चीं बहुकीटजम् ॥ ८२ ॥

भाषा-सिंगरफ, वेंगामाटी, रसौत, मैनशिल, गूगल, पारा, तांबा, गंधक, लोहा, सेंधानोन, अतीस, चव्य, सरफोंका, विडंग, अजवायन, गजपीपल, काली मिरच, आक, वरना, राल, हरड इन सबोंको समान भाग ले कडवे तेलमें खरल कर गोली बना लेवे। इन गोलियोंको सेवन करनेसे नाडीव्रणप्रवाह, गण्डमाला, विचर्चिका, बहुत दिनोंका व्रण, दाद, कोढ, दुर्गंधित व्रण, शिरोरोग, पादस्फोट, हस्तस्फोट, विचर्चिका और कृमिरोग दूर होता है ॥ ८२ ॥

कर्कोटकाद्यं तैलम्।

वन्ध्या कर्कोटकी पाठा व्याघ्री कुष्ठपटोलिका। अंकोटहस्तिपर्णी

च तालगंधकसैन्धवम् ॥ मंजिष्ठा करवीरं च निशा हिंगु सुव-र्चेला । वचा सिन्दूरतुल्यांशं जलेन सह पेषयेत् ॥ कल्काच्चतु-र्गुणं तैलं तैलात्तोयं चतुर्गुणम् । पचेत्तैलावशेषं च लेपाद्दुष्टव्र-णापहम् ॥ ९३ ॥

भाषा-कडवा तेल दो सेर, जल ८ सेर और कल्कके लिये वांझ ककोडी, पाढ, कटेरी, कूट, कडवी तोरई, अंकोल, हस्तिपर्णी, हरिताल, सेंधानोन, गंधक, मजीठ, कनेरकी जड, हलदी, हींग, तुलसी, वच और सिन्दूर प्रत्येक दो दो तोले यथा-विधिसे तैलको सिद्ध करे। इस तैलका लेप करनेसे दुष्ट व्रण दूर होता है ॥ ९३ ॥

व्रणरोगहर गोदंतलेपादिक्रिया ।

परिपक्वं व्रणं वैद्यो दारयेदवधानतः । न छिन्द्यादाममज्ञानान्न तु पक्वमुपेक्षते ॥ गवां दंतं जले घृष्टं बिन्दुमात्रं प्रलेपतः । अत्यन्तकठिने चापि व्रणे पाचनभेदनम् ॥ कटुतैलान्वितेलेपात् सर्पनिर्म्मोकभस्मभिः । चयः शाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फु-टति द्रुतम् ॥ चिरबिल्वाग्निको दंती चित्रको हयमारकः । कपो-तकंकगृध्राणां पुरीषाणां च दारुणम् ॥ क्षारद्रव्याणि वा यानि क्षारो वा दारुणः परः । द्रव्याणां पिच्छिलानां तु त्वङ्मूलानि प्रलेपयेत् ॥ यवगोधूममाषाणां विचूर्णानि समासतः । पटोली-तिलयष्ट्याह्वत्रिवृद्दंती निशाद्वयम् ॥ निम्बपत्रान्वितो लेपः स पटुर्व्रणशोधनः ॥ ९४ ॥

भाषा-वैद्यको चाहिये कि अत्यंत चतुरताके साथ पके व्रणको चीरे और कच्चा व्रण कदापि न चीरे तथा पके व्रणको तर्क करके चीरनेमें देर न करे। गायके दांतोंको जलमें घिसकर एक बिन्दुमात्र लेप करनेसे अत्यंत शक्तव्रणभी पककर अपने आपही फट जाता है। सांपकी केंचलीकी भस्मको सरसोंके तेलमें मि-लाकर लेप करनेसे गलगण्डगत व्रण शीघ्रही फटकर नष्ट होता है । करंजुवा, कलिहारी, दंतीकी जड, चीतेकी जड, कनेरकी जड और कबूतर, कंक तथा गृध्र इन तीनों पक्षियोंकी विष्ठा इन सबोंको एकत्र अथवा अलग अलग तथा क्षार द्रव्य और जवाखार इन औषधियोंके द्वारा अथवा, पिच्छिल औषधियोंकी छाल या मूलके द्वारा लेप करनेसे व्रण विदीर्ण होकर आराम हो जाता है । जौ, गेहूं,

और उडदोंका चूर्ण तथा पटोल, तिल, मुलहठी, निसोत, दंती, हलदी, दारुहलदी, नीमके पत्ते और सैंधानोन इन सबोंको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे व्रण शुद्ध होता है ॥ ५४ ॥

विडंगादिवटिका ।

विडंगं त्रिफला व्योषचूर्णं गुग्गुलुना सह । सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेत् वा हितभोजनः ॥ दुष्टव्रणापचीमेहदुष्टनाडीविशोधनः ॥ अमृतापटोलमूलत्रिफलात्रिकटुकृमिघ्नानाम् । समभागानां चूर्णं सर्वसमो गुग्गुलोर्भागः ॥ प्रतिवासरमेकैकां खादेदक्षपरिमाणाम् । जेतुं व्रणवातासृग्गुल्मोदरश्वयथुपाण्डुरोगाणाम् ॥५५॥

भाषा-वायविडंग, त्रिफला, त्रिकुटेका चूर्ण और गूगल इनको एकत्र घृतमें पीसकर गोली बना लेवे। एक गोली प्रतिदिन खाय और इसपर हितकारक भोजन करे। यह गोली दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह और दुष्टनाडीव्रणको दूर करे है। गिलोय, परवलकी जड, त्रिकुटा, त्रिफला और वायविडंग प्रत्येकका चूर्ण एक भाग और सबोंकी बराबर गूगल लेवे। इन सबोंको एकत्र पीसकर दो तोलेकी गोलियां बना लेवे, फिर एक गोली प्रतिदिन खाय इससे व्रण, वातरक्त, गुल्म, उदररोग, सूजन और पाण्डुरोग दूर होता है ॥ ५५ ॥

जात्यादिघृत ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशासारिवामंजिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्मुक्ताह्वबीजैः समैः । सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्म्माश्रिता स्राविणो गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुद्ध्यन्ति रोहन्ति च ॥ ५६ ॥

भाषा-गायका घी २ सेर, जल ८ सेर, कल्कके लिये चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, पटोलपत्र, कुटकी, हलदी, दारुहलदी, अनन्तमूल, मजीठ, हरड, मोम, तूतिया, मुलहठी और मुक्ताबीज प्रत्येक दो दो तोले सबोंको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। इस घृतको सेवन करनेसे सूक्ष्ममुखवाले, मर्माश्रित, स्रावयुक्त, गम्भीर वेदनायुक्त नाडीव्रण समस्त शुद्ध होकर आराम हो जाते हैं ॥ ५६ ॥

यवभस्मलेपस्वेदादिविधिः ।

तिलतैलमग्निदग्धं यवभस्मसमन्वितम् । अग्निदग्धं व्रणं नश्येत् बहुशः कृतलेपनः ॥ नवनीतं माहिषं च दुग्धपिष्टं ति-

लानि च । भल्लातकं व्रणं नश्येत् हृच्छल्यं नस्यलेपतः ॥ शरपुंखा लज्जालुका पाठा एषां तु मूलकम् । जलपिष्टं तस्य लेपः शस्त्राघातः प्रशाम्यति ॥ मूलं च काकजंघायास्त्रिरात्रेणैव शोषतः । पाकपूतिवेदनां च हन्ति वैरोहिते व्रणे ॥ सजलं तिलतैलं च अपामार्गस्य मूलकम् । तत्सेकदानान्नश्येत प्रहारोद्भववेदना ॥ निर्व्रणः स्यात्पृथह्नः प्रहारो घृतपूरितः । अपामार्गस्य वै मूलं हस्ताभ्यां च विमर्दयेत् ॥ रुद्रलांगलिकामूलं हिज्जलस्य तथैव च । तेन व्रणमुखं लिप्त्वा शल्यो निःसरति व्रणात् ॥ चिरकालप्रविष्टेऽपि तेन मार्गेण शङ्कर । सह दध्ना माहिषेण जग्धं कोद्रवभक्तकम् ॥ तस्य मूलस्य वै चूर्णं दत्तं नाडीव्रणापहम् । ब्रह्मयष्टिफलं पिष्टं वारिणा तेन लेपतः ॥ व्रणयुक्तो रक्तदोषः प्रणश्यति न संशयः । पटोलपत्रं कटुकं मंजिष्ठा शारिवा निशा ॥ जाती शमी निम्बपत्रं मधुकं कथितं घृतम् । एभिर्लेपास्त्युररुजो व्रणा ये प्रविणाः शिव ॥ उदुम्बरवटप्लक्षं जम्बूद्वयमथार्जुनम् । पिप्पलीं च कदम्बं च पलाशं लोध्रतिन्दुकम् ॥ मधुकमाम्रसर्ज्जं च बदरं पद्मकेशरम् । शिरीषबीजं कतकमेतत् क्वाथेन साधितम् ॥ तैलं हन्ति व्रणान् लेपाच्चिरकालभवानपि । कल्कः कांजिकसंपिष्टः स्निग्धशाखोटकत्वचः ॥ सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः ॥ ससर्पिष्कैः प्रलेपः स्यात् शोथनिर्वापणः परः । न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तं च पतितं तथा ॥ न च पर्य्युषितं शुष्यमाणं नैवावधारयेत् । शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेयं पीडनं प्रति ॥ न चापि मुखमालिम्पेत्तेन दोषः प्रसिच्यते ॥ ८७ ॥

भाषा–तिलके तेलमें यव (जौ) की भस्मको डालकर पकावे फिर शीतल होनेपर उसका लेप करे तो अग्निसे जले हुए व्रण निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं। भैंसका नैनीघी, दूध, तिल और शुद्धभिलावोंको एकत्र पीसकर नास लेवे और इसीका

लेप करे तो व्रण और हृदयके रोग सब नष्ट हो जाते हैं। सरफोंका, लज्जावंती और पाढको एकत्रित करके जलमें पीसे, फिर उसका व्रणके ऊपर लेप करनेसे सब प्रकारके शस्त्रव्रण दूर होते हैं। कौआठोडीकी जडको पीसकर तीन दिनपर्यंत प्रलेप करनेसे पके व्रणकी राध और पीडा दूर हो जाती है। सुगन्धवाला, तिलका तेल और चिरचिटेकी जड इन सबोंको एकत्रित कर पीस ले, फिर उसका स्वेद देनेसे प्रहारसे उत्पन्न हुई पीडा दूर होती है। आघातजन्य व्रणकी राध आदिको निकालकर घीसे पूरित चिरचिटेकी जडको हाथमें घिसकर उस रसको मलनेसे व्रणरोग दूर होता है। शंकरजटाकी जड, कलिहारीकी जड और समुद्रफलकी जडको एकत्र पीसकर व्रणके मुखपर लेप करनेसे व्रणके कण्टकादि निकल जाते हैं। जिस मनुष्यके शरीरमें बहुत दिनोंसे नाडीव्रण है वह मनुष्य यदि भैंसके दहीसे कोदोंकी रोटी खाय और कोदोंकी जडको पीसकर नाडीव्रणमें भरे तो निश्चय आराम हो जायगा भारंगीके फलको जलमें पीसकर लेप करनेसे व्रणयुक्त रक्तदोष नष्ट हो जाता है। पटोलपात, कुटकी, मजीठ, अनंतमूल, हलदी, चमेली, छोंकर, नीमके पत्ते और मुलहटी इनके काथके द्वारा घृतको सिद्ध करके प्रलेप करनेसे क्लेद-युक्त व्रणकी पीडा दूर होती है। गूलर, बडकी छाल, पीपलवृक्षकी छाल, पाखर-की छाल, जामुन, छोटी जामुन, कोह, पीपल, कमदम, ढाक, लोध, तेंदू, मुलहठी, आमकी छाल, राल, बेर, नागकेशर, सिरसके बीज और निर्म्मलीफल इनके काथ-के द्वारा तेलको सिद्ध कर प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंका पुराना व्रण दूर होता है। सिहोडेके चिकनी छालको कांजीमें पीसकर प्रलेप करनेसे व्रणशोथ दूर होता है। वड, गूलर, पीपल, पाखर और बेंतकी छालको पीसकर घीमें मिलाकर प्रलेप करनेसे व्रणशोथ दूर होता है। लेप करनेके नियम लिखते हैं। रात्रिमें प्रलेप नहीं करना चाहिये, किया हुआ लेप यदि पतित हो जाय तो दूसरी बार उसका लेप न करे। किया हुआ लेप बहुत सूख जाय तो उसको छुटा डाले। व्रणके मुखपर लेपन करे और चहूं ओर लेप कर देवे॥ ९७॥

तिलाष्टकादिलेपः।

तिलकल्कः सलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद्घृतम्। मधुकं निम्बपत्रं च लेपः स्याद् व्रणशोधनः॥ सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं लेपात्। मधुयुक्ता शरपुंखा दुष्टव्रणरोपणी कथिता॥ लोहकुद्दाल-के घृष्टा लिम्पाकफलवारिणा। श्वेतार्कसम्भवं मूलं लेपं दद्यात् क्षतोपरि॥ अपि योगशतासाध्यं क्षतं हन्ति न संशयः। श्वेतक-

खीरमूलरसं च द्विपलोन्मितम् ॥ पलाष्टकमितं गव्यक्षीरमेकत्र मिश्रयेत् । दधि कृत्वा तदावर्यं निर्मथ्य नवनीतकम् ॥ गृहीत्वा तेन लेपेन क्षतं हन्ति चिरोत्थितम् । आस्फोतोद्भवनिर्यासः क्षतं हन्ति चिरोत्थितम् ॥ ५८ ॥

भाषा-काले तिल, हलदी, दारुहलदी, निसोत, मुलहठी और नीमके पत्ते इन सबोंको एकत्र पीसकर सेंधानोन और घी मिलाकर प्रलेप करनेसे व्रण विदीर्ण होकर राध निकल जाती है। सरफोंकेकी जडको सतोनेके रसके साथ अथवा सहतके साथ मिलाकर प्रलेप करनेसे दुष्टव्रण शांत होता है। सफेद आककी जडको लोहेके कोदालमें बिजोरे नीबूके रसके द्वारा खरल करके घावपर लगानेसे निश्चय आराम होता है । सफेद कनेरका रस ८ तोले, गायका दूध ८ पल इनको एकत्र मिलाकर दही जमावे, फिर उसको मथकर नैनीघी निकाल लेवे। उस नैनी घीका प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंका घाव दूर होता है । आस्फोता (नीली कोयल) के रसका प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंका व्रण दूर होता है ॥ ५८ ॥

सप्ताङ्गगुग्गुलुः ।

विडङ्गं त्रिफला व्योषचूर्णं गुग्गुलुना समम् ।
सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा हितभोजनः ॥
दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीविशोधनः ॥ ५९ ॥

भाषा-वायविडंग, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल ये सब समान भाग और गूगल सबोंकी समान भाग लेकर बारीक पीसकर घीके द्वारा गोलियां बना लेवे । इसको सेवन करनेसे दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह, कुष्ठ और नाडीव्रण शुद्ध होता है । इसपर हितकारक भोजन करे ॥ ५९ ॥

जात्याद्यं तैलं घृतञ्च ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशाशारिवामंजिष्ठाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः समैः । सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः स्राविणो गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुष्यन्ति रोहन्ति च ॥ ६० ॥

भाषा-चमेलीके पत्ते, नीम, पटोलपत्र, कुटकी, हलदी, दारुहलदी, अनन्तमूल, मजीठ, खस, मोम, तूतिया, मुलहठी और बडी करंज इन सब औषधियोंके कल्कके

द्वारा तेल अथवा घृतको सिद्ध करे। इस तेल अथवा घृतको क्षतके स्थानमें लगानेसे उसकी राध आदि निकलकर व्रण दूर हो जाता है ॥ ६० ॥

गौराद्यं तैलं घृतं च।

गौरा हरिद्रा मंजिष्ठा मांसी मधुकमेव च। प्रपौण्डरीकं ह्रीवेरं भद्रमुस्तं सचन्दनम्॥ जाती निम्बपटोलं च करंजं कटुरोहिणी। मधूच्छिष्टं समधुकं महामेदा तथैव च॥ पंचवल्कलतोयेन घृतप्रस्थं विपाचयेत्। एष गौरो महायोगः सर्वव्रणविशोधनः॥ आगन्तुसहजाश्चैव सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः। विषमामपि नाडीन्तु शोधयेत् शीघ्रमेव तु॥ गौराद्यं जातिकाद्यं च तैलमेवं प्रसाध्यते। तैलं सूक्ष्मानने दुष्टे व्रणे गम्भीर एव च॥ ६१॥

भाषा–बड, गूलर, पीपल, पाखर और वेत इन सबोंकी छाल ४ सेर लेकर १२ सेर जलमें पकावे। जब ८ सेर बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे, पश्चात् उसमें २ सेर तेल या घी डालकर पकावे और हलदी, दारुहलदी, मजीठ, बालछड मुलहटी, पुण्डरीक, सुगंधवाला, नागरमोथा, लाल चंदन, मालतीके पत्ते, नीमके पत्ते, पटोलपत्र, बडी करंजके बीज, कुटकी, मोम, सहत और महामेदा इनका कल्क डाल देवे। जब पककर तयार हो जाय तब उतार लेवे। यह गौरतैल अथवा घी सर्व प्रकारके व्रणोंको शुद्ध करे है तथा आगन्तुज, सहज, बहुत पुराने, विषमव्रण और नाडीव्रणको दूर करे है। गौराद्य और जातिकाद्य यह दोनों तेल सूक्ष्ममुखवाले, दुष्ट और गम्भीर व्रणमें अत्यन्त हितकारी हैं॥ ६१॥

बृहज्जातिकाद्यं तैलम्।

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः। सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी॥ मंजिष्ठा पद्मकं लोध्रं सभया पद्मकेशरम्। तुत्थकं शारिवाबीजं नक्तमालस्य दापयेत्॥ एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्। विषव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कुष्ठरोगिषु॥ सदा शस्त्रप्रहारेषु दंष्ट्रविद्धेषु चैव हि। नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसापकर्षणम्॥ म्रक्षणार्थमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम्॥ ६२॥

भाषा—चमेली, नीम, पटोलपत्र, बडी करंजके पत्ते, मोम, मुलहठी, कूठ, हलदी, दारु हलदी, कुटकी, मजीठ, पद्माख, लोध, हरड, नागकेशर, तूतिया, अनन्तमूल और करंजके बीज ये सब समान भाग लेकर कल्क बनावे । इस कल्कके द्वारा तैलको पकाकर प्रलेप करनेसे विषज व्रण, स्फोटक, कुष्ठरोग, शस्त्रज व्रण, दंष्ट्रज विष, नख और दांतसे उत्पन्न हुआ घाव और दुष्टमांसको दूर करे हैं ॥ ६२ ॥

विपरीतमल्लतैलम् ।

सिन्दूरकुष्ठविषहिङ्गुरसोनचित्रबालाम्रिलाङ्गलिककल्कविपक्वतैलम् । प्रसादमन्त्रयुतकृतकृतलूनफेनं क्लिन्नव्रणप्रशमने विपरीतमल्लः ॥ खड्गाभिघातगुरुगण्डमहोपदंशनाडीव्रणविचर्चिककुष्ठपामाः । एतानि हन्ति विपरीतकमल्लनाम तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य ॥ ६३ ॥

भाषा—विष, सिन्दूर, कूठ, सिंगरफ, लहसन, चीतेकी जड और कलिहारीकी जड इन सब औषधियोंके कल्कके द्वारा यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे । इसको मर्दन करनेसे नाडीव्रण, विचर्चिका, कुष्ठ और पामादिरोग दूर होते हैं ॥ ६३ ॥

व्रणराक्षसतैलम् ।

कुडवं सर्षपं तैलं तदर्द्धं गोघृतस्य च । एकीकृत्य पचेत्तत्तु सूर्य्यपत्ररसेन तु ॥ चित्रपत्रपलं कल्कं दत्त्वा तत्र विपाचयेत् । तत्कल्कं स्रावयित्वा तु चूर्णमेषां विनिःक्षिपेत् ॥ गन्धकं शुद्धसिन्दूरं हरितालं मनःशिला । हरिद्रा गैरिकं वाजीकर्पार्द्धं प्रतिभागिकम् ॥ भागार्द्धं पारदं चापि कज्जलीकृत्य मिश्रयेत् । सुतप्ते मिश्रयित्वा तु ततं कृत्वा प्रलेपयेत् ॥ कण्डूं विचर्चिकां पामां क्लेदं कुष्ठं सुदुस्तरम् । वातरक्तं व्रणान् सर्वान् विषविस्फोटदद्रुकम् ॥ निहन्त्याशु महाश्वित्रं तैलन्तु व्रणराक्षसम् ॥ ६४ ॥

भाषा—सरसोंका तेल ४ पल, गायका घी २ पल, चीतेके पत्ते ३ पल और आकके पत्तोंका स्वरस २० पल इन सबोंको एकत्र करके एक बासनमें पकावे और उस बासनको ढक देवे । जब पककर तैयार हो जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर इसमें एक तोला गंधक और अर्धा तोला पारेकी कजली बनाकर मिला देवे तथा मनशिल, हलदी, गेरू और सफेद सरसों इन प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला



लेकर मिला देवे । इस तेलको गरम करके व्यवहार करे । इस व्रणराक्षस तेलको मर्दन करनेसे खुजली, विचर्चिका, पामा, कुष्ठ, वातरक्त, सर्व प्रकारके व्रण-रोग, विस्फोटक, दद्रु और श्वित्ररोग ये दूर होते हैं ॥ ६४ ॥

घृतसेकः ।

सद्यःक्षतं व्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत् ।
यष्टीमधुकयुक्तेन किंचिदुष्णेन सर्पिषा ॥ ६५ ॥

भाषा-तत्कालके शस्त्रसे उत्पन्न हुए व्रणमें मुलहठीके चूर्णके साथ घी मिलाके किंचित् गरम करके सेचन करे ॥ ६५ ॥

अपामार्गरसः ।

अपामार्गस्य संसिक्तं पत्रोत्थेन रसेन तु ।
सद्योव्रणेषु रक्तन्तु प्रवृत्तं परितिष्ठति ॥ ६६ ॥

भाषा-तत्कालके शस्त्रादिकी चोटके लगनेसे उत्पन्न हुए व्रणमेंसे रुधिर निकले तो चिरचिटेके पत्तोंका रस लगावे, इससे रुधिरका निकलना बंद हो जाता है ६६॥

कर्पूरघृतचूर्णादि ।

कर्पूरपूरितं बद्धं सघृतं संप्ररोहति ।
सद्यः शस्त्रक्षतं पुंसां व्यथापाकविवर्जितः ॥
शुनो जिह्वाकृतश्चूर्णः सद्यः क्षतविरोहणः ॥ ६७ ॥

भाषा-सौवारके धुले हुए घीमें कपूरका चूर्ण मिलाकर शस्त्रके लगनेसे उत्पन्न हुए घावमें भरकर उसको बांध देवे, इससे पीडा और पकनेकी आशंका दूर हो जाती है । कुत्तेकी जीभको सुखाकर चूर्ण कर लेवे, उस चूर्णको व्रणमें भरनेसे व्रण भर जाता है ॥ ६७ ॥

अग्निदग्धव्रणरोगचिकित्सा ।

पित्तविद्रधिवीसर्पशमनं लेपनादिकम् । अग्निदग्धव्रणे सम्यक् प्रयुंजीत चिकित्सकः ॥ तिलतैलैर्यवान् दग्ध्वा समं कृत्वा तु लेपयेत् । तेनैव लेपनादाशु वह्निदग्धः सुखी भवेत् ॥ सद्यो दग्धश्च मधुना लेपं दत्त्वा भिषग्वरः । तत्पृष्ठे यवचूर्णेन लेपः स्याद्दाहशान्तये ॥ महिषीनवनीतेन क्षीरेण पेषयेत्तिलम् । तैललेपेन दग्धाङ्गं सदाहं सुखमश्नुते ॥ जीरकपक्कं पश्चात्

सिक्थकसर्जरसमिश्रितं हराति। घृतमभ्यंगात् पाददग्धजदुःखं क्षणार्द्धेन॥ ६८॥

भाषा–पित्तजनित विद्रधि और पित्तजन्य विसर्परोगोक्त प्रलेपादिकोंके द्वारा अग्निदग्ध व्रणकी चिकित्सा करे। तिलके तेलमें जौकी भस्म डालकर प्रलेप करनेसे शीघ्रही अग्निदग्धव्रणकी पीडा दूर होती है। अग्निदग्धके स्थानमें तत्काल सहतका प्रलेप कर ऊपरसे जौका चूर्ण बुरका देवे तो व्रणकी पीडा दूर होवे। भैंसके नैनी घी और दूधमें तिल पीसकर व्रणपर प्रलेप करनेसे दग्ध अंगकी दाह दूर होती है। घी २ सेर, जल ८ सेर, जीरा ८ पल इन सबोंको एकत्र यथाविधिसे पकावे जब सिद्ध हो जाय तब मोम ४ पल और राल, सहत ४ पल मिला देवे। इस घीको दग्धजनित क्षतमें लगानेसे शीघ्र आरोग्य होता है॥ ६८॥

इति व्रणरोगचिकित्सा समाप्ता।

अथ भग्नरोगनिदानम्।

संधिभग्नसामान्यलक्षण।

भग्नं समासाद्विविधं हुताशकाण्डे च सन्धौ च हि तत्र संधौ।
उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्त्तितं च तिर्यक् च विक्षिप्तमधश्च षोढा॥
प्रसारणाकुंचनवर्त्तनोग्रा रुक्स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम्।
सामान्यतः सन्धिगतस्य लिंगमुत्पिष्टसन्धेः श्वयथुः समन्तात्॥
विशेषतो रात्रिभवा रुजा च विश्लिष्टजंतौ च रुजातनित्यम्।
विवर्त्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्राः तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति॥
क्षिप्तेऽतिशूलं विषमा रुगस्थ्नौ क्षिप्ते त्वधोरुग्विघटश्च संधेः॥ १॥

भाषा–यहां अत्रिनन्दन आत्रेयजी अग्निवेशसे कहते हैं कि काण्डभग्न और संधिभग्न इन भेदोंसे भग्नरोग दो प्रकारका है। तहां संधिभग्न छः प्रकारका है। जैसे कि उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्त्तित, तिर्य्यक्, विक्षिप्त और अधःक्षिप्त। अब संधिभग्नके सामान्य लक्षण कहते हैं। पसारते समय, सिकोडते समय और इधर उधर करते समय अत्यन्त पीडा हो; स्पर्शभी न सह सके ये संधिभग्नके सामान्य लक्षण कहे। उत्पिष्टमें संधिके चारों ओर सूजन और रात्रिमें अधिक पीडा हो। विश्लिष्ट संधिमें सूजन और रातदिन नित्य पीडा होती है। विवर्त्तिमें पसलियोंमें तीव्र

वेदना होती है । अस्थिके तिर्यग् अर्थात् तिरछे हट आनेसे बहुत पीडा होती है और एक हड्डी संधिस्थानको छोडकर तिरछी हो जाती है । विक्षिप्तमें संधिका हाड ऊपरको सरक जाय और बहुत वेदना हो तथा हड्डियोंमें कम ज्यादे पीडा हो । अधःक्षिप्तमें संधिकी हड्डी नीचेको सरक जाय और पीडा हो तथा संधिकी हड्डी परस्पर घिसती रहे ॥ १ ॥

काण्डभग्नको कहते हैं ।

काण्डे त्वतः कर्कटकाश्वकर्णविचूर्णितं पिच्चितमस्थिछल्लिका । काण्डेषु भग्नं त्वतिपातितं च मज्जागतं च स्फुटितं च वक्रम् ॥ छिन्नं द्विधा द्वादशधापि काण्डे–॥ २ ॥

भाषा–काण्डभग्न, कर्कटक, अश्वकर्ण, विचूर्णित, पिच्चित, अस्थिछल्लिका काण्डभग्न, अतिपातित, मज्जागत, स्फुटित, वक्र और दो प्रकारका छिन्न ऐसे बारह प्रकारका है ॥ २ ॥

काण्डभग्नके सामान्यलक्षण ।

स्रस्तांगता शोथरुजातिवृद्धिः । संपीड्यमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहस्पंदनतोदशूलाः ॥ सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत् । भग्नं तु काण्डे बहुधा प्रयाति समासतो नामभिरेव तुल्यम् ॥ ३ ॥

भाषा–अंगोंमें शिथिलता, सूजन, अत्यन्त वेदना, टूटनेकी जगह दबानेसे शब्द हो, स्पर्श सहा न जाय, फटके, सुई चुभानेकीसी पीडा हो, शूल चले, कहींभी किसी समय किसी प्रकारसे चैन न पडे ये कांडभग्नके लक्षण हैं । काण्डशब्दसे नलक, कपाल, वलय, तरुण और रुचक ये पांच प्रकारके आकारसे हाडोंके नाम हैं । अब विशेष कहते हैं । जो हाड दोनों तरफसे दबकर बीचमें ऊंचा हो उसको कर्कट, घोडेके कानके समान जो हाड हो जाय उसको अश्वकर्ण, जो हाड भीतरही चूर्णित हो गया हो और हाथके दबानेसे चुर चुर करे उसको विचूर्णित, जो हाड पिचकर चिपटा हो जाय उसको पिच्चित, जिस हाडका कोई भाग छालकी समान अलग दीखने लगे उसको अस्थिछल्लिका, जिस हाडकी नली टूट जाय उसको कांडभग्न, जो सब हाड टूट जाय उसको अतिपातित, जिस हाडके टूटनेसे उसके भीतरकी मींग बाहर निकलने लगे उसको मज्जागत, जो हाड टूटके फूट फूट हो जाय उसको स्फुटित, जो हाड टेढा हो जाय उसको वक्र, हाडके टूटनेसे बहुतसे

छोटे छोटे टुकडे हो जांय उसको छिन्न और जो हाड एक ओरसे टूटकर दूसरी ओर निकले उसको दूसरे प्रकारका छिन्न कहते हैं। काण्डभग्नके बारह प्रकार हैं। उनके संक्षेपसे नाम कहे। अब कहते हैं कि इनके अतिरिक्त जिस जिस स्थानमें जैसी जैसी आकृतिका भग्न हो उसका उसी उसी आकृतिका नाम धरकर कहना चाहिये॥३॥

कष्टसाध्य ।

अल्पाशिनोनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य च।
उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिद्ध्यति॥ ४॥

भाषा-जो मनुष्य अल्पआहार करते हैं, कुपथ्य सेवन करते हैं, जिनकी प्रकृति वातकी है और जो ज्वरादि उपद्रवसंयुक्त हैं ऐसे मनुष्योंके भग्नरोग अत्यन्त कष्टसे साध्य होता है॥ ४॥

असाध्य लक्षण ।

भिन्नं कपालं कट्यां तु संधिमुक्तं तथाच्युतम्। जघनं प्रतिपिष्टं च वर्जयेत्तु विचक्षणः॥ असंश्लिष्टकपालं च ललाटे चूर्णितं च यत्। भग्नं स्तनान्तरे पृष्ठे शंखे मूर्ध्नि च वर्जयेत्॥ सम्यक् संधितमप्यस्ति दुर्निक्षेपनिबंधनात्। संक्षोभाद्वापि यद्गच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत्॥ तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि च। कपालानि विभज्यन्ते स्फुटंति रुचकानि च॥ ५॥

भाषा-जिस मनुष्यका कपाल नामक हाड किसी जगहका टूट गया हो, कमरका हाड टूट गया हो तथा संधिके निकटकी हड्डी टूट गई हो अथवा नीचेको सरक गई हो तथा जंघाकी हड्डी चूर्णित हो गई हो ऐसे रोगीको वैद्य त्याग देवे। जो कपालके स्थानोंका हाड टूटकर जोडने योग्य न रहे, ललाटकी हड्डी चूर चूर हो तथा स्तनके मध्यकी, एवं पीठकी तथा कनपटीकी अथवा मस्तककी हड्डी टूट जाय उसकी वैद्य चिकित्सा न करे। जो हड्डी अच्छे प्रकारसे जोड दी गई हो उसको अच्छी तरह न रक्खे तथा अच्छे प्रकारसे न बांधे, उसमें किसीका धक्का लगनेसे फिर जैसीकी तैसी हो जाय उसको वैद्य त्याग देवे, वह असाध्य है। तरुण हड्डी नव जाती अर्थात् टेढी हो जाती है, नलकी हड्डी फट जाती है, कपालकी हड्डी टूट कर फूट फूट हो जाती है और रुचक नामक हड्डी टूटकर टूक टूक हो जाती है॥ ५॥

इति भग्नरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ भग्नरोगचिकित्सा ।

अस्थिसंहारमेकेन भक्तेन सह खादितम् । पीतं मांसरसेनापि वातनुच्चास्थिभग्नहा ॥ रसोनमधुलाक्षाश्च सिताकल्कं समश्नुताम् । छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां संधानमचिराद्भवेत् ॥ ६ ॥

भाषा–हडसंघारीको पीसकर भातके साथ खावे और मांसरस (सोरुआ) पीवे तो वात और अस्थिभग्नरोग दूर होता है। लहसन, मुलहठी और लाखके क्वाथमें चीनी डालकर पान करनेसे छिन्न, भिन्न, स्थानाच्युत और संधिस्थानोंमेंकी हड्डी बहुत शीघ्र आरोग्य हो जाती है ॥ ६ ॥

लाक्षागुग्गुलुः ।

लाक्षास्थिसंहारककुभाश्वगन्धाचूर्णीकृता नागबला पुरश्च । संभग्नयुक्ताहिरुजं निहन्यादङ्गानि कुर्यात् कुलिशोपमानि ॥ ७ ॥

भाषा–लाख, हडसंधारी, अर्जुनवृक्षकी छाल, असगंध और गंगेरन ये सब समान भाग और सबोंकी बराबर गूगल लेवे, सबोंको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे अस्थिभग्नजन्य पीडा दूर होती है और शरीर वज्रकी समान दृढ होता है ॥ ७ ॥

चूर्णवर्गः ।

भग्ने पिबेत्त्वर्कपयसार्जुनस्य गोधूमचूर्णः सघृतेन वाथम्॥ आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेत् शीतलाम्बुना । पंकेनालेपनं कार्यं बन्धनं च कुशान्वितम्॥ सुश्रुतोक्तन्तु भग्नेषु वीक्ष्य बन्धादिमाचरेत् । अवनामितमुन्नह्येदुन्नतञ्चावपीडयेत् ॥ अञ्जेदतिक्षिप्तमध्ये गतं चोपरि वर्त्तयेत्। आलेपनाद्यं मञ्जिष्ठा मधुकं चाम्लपेषितम् ॥ शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टं च लेपनम् । सप्तरात्रात् सप्तरात्रात् सौम्येष्वृतुषु मोक्षणम् ॥ कर्त्तव्यं स्यात्त्रिरात्राच्च तत्राग्नेषु विजानता। काले च समशीतोष्णे पंचरात्राद्विमोक्षयेत् ॥ पीतं वराटिकाचूर्णं द्विगुञ्जं वा त्रिगुञ्जकम् । अपक्वक्षीरपीतं स्यादस्थिभग्नप्ररोहणम् ॥ क्षीरं सलाक्षा मधुकं ससर्पिः स्याज्जी-

वनीयं च सुखावहं च । भग्ने पिबेत्त्वक्पयसार्जुनस्य गोधूमचूर्णं सघृतेन वार्थम् ॥ ८ ॥

भाषा-भग्नरोगमें अर्जुनवृक्षकी छालके चूर्णको आकके दूधमें अथवा गेहूंके चूर्णको घीमें मिलाकर सेवन करनेसे अस्थिभग्नरोग आराम होता है । सुश्रुतोक्त नियमानुसार भग्नस्थानमें प्रथम जलसेचन, कर्दमलेपन और कुशादि द्वारा बंधन करे । उन्नत, अवनत, उत्क्षिप्त और अधोगत सम्पूर्ण हड्डियोंको दवाकर और मलकर यथास्थानमें कर देवे । मंजिष्ठ और मुलहठीको कांजीमें पीसकर अथवा शालिधानके चावलोंको पीसकर सौवार धुले हुए धीमें मिलाकर प्रलेप करके बांध देवे, पश्चात् उक्त प्रलेपपर शीतऋतुमें सात दिनके बाद, ग्रीष्मऋतुमें तीन दिनके बाद और समशीतोष्णकालमें पांच दिनके बाद उसको छुडाकर फिर नवीन प्रलेप कर देवे । दो या तीन रत्ती कौंडीकी भस्मको कच्चे दूधके साथ पान करनेसे अस्थि फिरसे यथास्थानमें स्थित हो जाती है। लाख और मुलहठी एकत्र पीसकर घी और दूधके साथ सेवन करनेसे भग्नरोग आराम होता है अथवा जीवन्तीका चूर्ण या गेहूंका चूर्ण, अर्जुन वृक्षकी छालके स्वरसके साथ पान करनेसे भग्नरोगी नीरोग होता है ॥ ८ ॥

गन्धतैलम् ।

रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासयेदस्थिरे जले । दिवा दिवैव संशोष्य क्षीरेण परिभावयेत् ॥ तृतीयं सप्तरात्रं तु भावयेन्मधुकाम्बुना । ततः क्षीरात् पुनः पीतान् शुष्कान् सूक्ष्मान् विचूर्णयेत् ॥ काकोल्यादिं सयष्ट्याह्वं मञ्जिष्ठां शारिवां तथा । कुष्ठं सर्जरसं मांसी सुरदारु सचन्दनम् ॥ शतपुष्पं च संचूर्ण्य तिलचूर्णानि योजयेत् । पीडनार्थं च कर्त्तव्यं सर्वगन्धैः शृतं पयः॥ चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं पाचयेत् पुनः । एलामंशुमतीं पत्रं जीवन्तीं तुरगं तथा ॥ लोध्रं प्रपौण्डरीकं च तथा कालानुसारिवाम् । शैलेयकं क्षीरशुक्लामनन्तां समधूलिकाम् ॥ पिष्ट्वा शृङ्गाटकं चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च । एभिश्च विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाग्निना ॥ एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्म्मसु । आक्षेपके पक्षघाते तालुशोषे तथार्दिते ॥ मन्यास्तम्भे

शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे। बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीपु क्षयं गताः॥ पथ्यं पाने तथाभ्यङ्गे नस्यवस्तिषु भोजने। ग्रीवास्यन्दो रसां वृद्धिरनेनैवोपजायते॥ मुखं च पद्मप्रतिमं ससुगन्धिसमीरणम्। गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत्॥ राजार्हमेतत् कर्त्तव्यं राज्ञामेव विचक्षणैः। तिलचूर्णसमन्त्वत्र मिलितं चूर्णमिष्यते॥ लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम्। व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च॥ सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तरैः। प्रतिसार्य्यकषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत्॥ भग्नं नैति यथा पक्कं प्रयतेत तथा भिषक्। वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहानत्र प्रयोजयेत्॥ ९॥

भाषा—काले तिलोंको एक उत्तम वस्त्रकी पोटलीमें बांधकर प्रत्येक रात्रिमें नदी आदिके बहते जलमें डुबोकर रक्खे और प्रतिदिन धूपमें सुखाकर दूधमें भिगोवे पश्चात् तीसरी अथवा सातवी रात्रिमें मुलहठीके काथमें भिगोवे, फिर निकालकर उनको दूधमें भिगोवे पश्चात् सुखाकर चूर्ण कर लेवे तथा काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, मुलहठी, मजीठ, अनंतमूल, कूठ, राल, कपूरकचरी, देवदारु, चंदन और सोया इनको समान भाग ले चूर्ण कर तिलोंके चूर्णमें मिलावे। इस चूर्णको तेल निकालनेके यन्त्र (कोलू) में डालकर तेल निकाले। तेल निकालते समय तेल निकालनेको और जल न डाले, परंतु सर्व गंधद्रव्योंसे बने हुए जलको डाले, जब तेल सिद्ध हो जाय तब उसमें चौगुना जल डालकर निम्नलिखित औषधियोंको कल्कके द्वारा यथाविधिसे तेलको पकावे। वे औषधि ये हैं। इलायची, शालिपर्णी, तेजपत्र, जीवन्ती, असगंध, लोध, पुण्डरीक, नगर, भूरिछरीला, सफेद विदारीकंद, अनन्तमूल, मूर्वा, सिंघाडे और पूर्वोक्त काकोली, क्षीरकाकोल्यादि। इनको शास्त्रको जाननेवाला वैद्य मंद मंद अग्निसे पकावे। यह तैल भग्नरोगमें सदैव पथ्य है। इसका पान, अभ्यंजन और नस्यादि सर्व कर्म्मोंमें प्रयोग करे। आक्षेपकवात, पक्षाघात, तालुशोष, आर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, हनुग्रह, बधिरता, तिमिर रोग और स्त्रीसंसर्गसे उत्पन्न हुई क्षीणतामें यह तैल हितकारी है। इसको पान, अभ्यंग, नस्य, बस्ति और भोजनमें देवे। इसको सेवन करनेसे ग्रीवा नहीं हिलती है तथा वृद्धता नहीं आती। मुख कमलकी समान सुन्दर और सुगंधित होता है। यह गंधतैल सर्व प्रकारके

वातके विकारोंको दूर करे है । यह तैल राजाओंको सेवन करना चाहिये । लवणरस, कटुरस, क्षाररस, अम्लरस, मैथुन, धूप अथवा गरमी और रूखा अन्न ये सब भग्नरोगी त्याग देवे । यदि भग्नरोगमें घाव हो जाय तो मधु और घीसंयुक्त काथसे धोवे, फिर भग्नरोगकी चिकित्सा करे। भग्नरोग न पके ऐसा विचार करे । वातव्याधिमें जो तैल घृतादि कहे हैं इन सब तैल घृतादिका भग्नरोगमें प्रयोग करे ॥९॥

इति भग्नरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ नाडीव्रणरोगनिदानम् ।

संप्राप्ति ।

यः शोथमाममतिपक्कमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः। अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः॥ तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी ॥ १ ॥

भाषा-जो मूर्ख वैद्य पके फोडेको कच्चा समझकर न चीरते फाडते अथवा राधसे भरे हुए व्रणकी चिकित्सा नहीं करते हैं उनके वह वढी हुई राध पूर्वोक्त त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, संधि, अस्थि, कोष्ठ और मर्म्मस्थानमें प्राप्त होकर उनको विदीर्ण करके भीतर प्रवेश करके उसमें एक रास्ता कर ले, उसमें वह राध नाडीकी समान बहे, इसी कारण इसको नाडीव्रण कहते हैं ॥ १ ॥

संख्यारूप ।

दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च संमूर्च्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ॥ २ ॥

भाषा-अलग अलग दोषोंसे तीन, सन्निपातसे चौथा और शल्यसे पांचवा ऐसे नाडीव्रण पांच प्रकारके हैं ॥ २ ॥

वातनाडीव्रणके लक्षण ।

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ॥ ३ ॥

भाषा-वातज नाडीव्रण रूखा, बारीक मुखवाला, शूलयुक्त, झागोंसहित बहे और रातमें अधिक बहे ॥ ३ ॥

पित्तनाडीव्रणके लक्षण ।

पित्तात्तु तृट्ज्वरकरी परिदाहयुक्ता पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहस्सु चापि ॥ ४ ॥

भाषा–पित्तज नाडीव्रणमें तृषा, ज्वर और दाह हो, पीले रंगकी और अत्यन्त उष्ण राध वहे तथा दिनमें अधिक स्रवे ॥ ४ ॥

कफज नाडीव्रणके लक्षण ।

ज्ञेया कफाद्बहुघनार्जुनपिच्छिलास्रा
स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा ॥ ५ ॥

भाषा–कफज नाडीव्रणमें अत्यन्त गाढी, सफेद, चिकनी राध बहे, वह कठोर, खुजलीयुक्त और रात्रिमें अधिक स्रवे ॥ ५ ॥

त्रिदोषज नाडीव्रणके लक्षण ।

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भवंति विहितानि च लक्षणानि । तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपात् घोरामसुक्षयकरीमिव कालरात्रिम् ॥ ६ ॥

भाषा–जिसमें दाह, ज्वर, श्वास, मूर्छा, मुखका सूखना और पूर्वोक्त वातपित्तादिके सब लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोषज (सन्निपातज) नाडीव्रण जानना। यह कालरात्रिकी समान प्राणसंहारक है ॥ ६ ॥

शल्यज नाडीव्रणके लक्षण ।

नष्टं कथंचिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति । सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं स्रावं करोति सहसा सरुजं च नित्यम् ॥ ७ ॥

भाषा–पूर्वोक्त व्रणके स्थानमें कण्टकादि शल्य अनजानमें लगके रह जाय तो वह थोडेही कालमें नाडीव्रणको उत्पन्न करे है उस नाडीव्रणमें झागोंयुक्त, मथेकी समान गरम रुधिरमिश्रित राध वहे, नित्य पीडा हो उसको शल्यज नाडीव्रण जानना ७

साध्यासाध्यलक्षण ।

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिद्ध्येच्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ ८ ॥

भाषा–इनमें त्रिदोषज नाडीव्रण तो साध्य नहीं है और बाकीके चार नाडीव्रण चिकित्सा करनेसे अच्छे हो जाते हैं ॥ ८ ॥

इति नाडीव्रणरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ नाडीव्रणरोगचिकित्सा।

घृतचूर्णादिसेवन।

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रपाटनकर्मवित्। सर्वव्रणक्रमं कुर्याच्छेदनं रोपणादिकम्॥ आरग्वधनिशा कालाचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता। सूत्रवर्त्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशिनी॥ घोण्टाफलत्वङ्मदनात् फलातिपूगस्य च त्वच लवणं च मुख्यम्। स्नुह्यर्कदुग्धेन सहैव कल्को वर्त्तीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम्॥ माहिषं दधि कोद्रवभक्तमिश्रितं हरति चिरविरूढाम्। भक्तं कुंकुलिकाभवमतिदारुणां नाडीं शमयेत्॥ कृशदुर्बलभीरूणां गतिमर्म्माश्रिता च या। क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यात् न शस्त्रेण कदाचन॥ गुग्गुलुत्रिफलाव्योपैः समांशैराज्ययोजितः। नाडीदुष्टव्रणशूलभगन्दरविनाशनः॥ सर्जिकासिन्धुदन्त्यग्निरूपिकानलनीलिकाः। खरमंजरिबीजानि तैलं गोमूत्रपाचितम्॥ दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम्॥ ९॥

भाषा—नाडीव्रण अर्थात् नासूरकी गतिको जानकर उस स्थानको शस्त्रसे चीरकर राध आदि निकाल देवे और व्रणरोगोक्त चिकित्सा करके अनुसार घावकी जगहको सुखावे। अमलतासके जडकी छाल, हलदी और तालमखाना इन सबोंका चूर्ण करके घी और सहतमें मिलाकर सूतमें लपेटकर वत्ती बना लेवे, इस बत्तीको नाडीव्रणमें प्रवेश करे, इससे पूयादि निकालकर नाडीव्रण साफ होकर सूख जाता है। बडे बेरकी छाल, मैनफल, सुपारीकी छाल और सैंधानोन इन सबोंको थूहर और आकके दूधमें खरल कर बत्ती बना लेवे, इसको नासूरमें प्रविष्ट करनेसे घाव सूख जाता है। भैंसके दहीके साथ कोदोंकी रोटी अथवा कांगनी नाजकी रोटी खानेसे नासूर आराम हो जाता है। कृश, दुर्बल और भयभीत मनुष्योंके अथवा मर्म्मस्थानमें उत्पन्न हुए नाडीव्रणवाले रोगियोंके कदापि शस्त्रद्वारा नाडीव्रणको न चीरे, इनकी क्षारसूत्रके द्वारा चिकित्सा करे। गूगल, त्रिफला और त्रिकुटा इन सबोंको समान भाग लेकर घीमें मिलाकर नाडीव्रणमें प्रयोग करे। इससे नाडीव्रण, दुष्टव्रण, वेदना और भगन्दररोग दूर होते हैं। सज्जी,

सैंधानोन, दंतीकी जड, चीतेकी जड, सफेद आककी जड, भिलावेकी गुठली, नीलकाठ और चिरचिटेके बीज इन सबोंका कल्क एक सेर, गोमूत्र १६ सेर, और तिलका तेल ४ सेर सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तेलको सिद्ध करे। इसको लगानेसे दुष्टव्रण और कफज नाडीव्रण दूर होता है ॥ ९ ॥

कुम्भीकाद्यं तैलम्।

कुम्भीकखर्ज्जूरकपित्थबिल्ववनस्पतीनां तु शलाटुवर्गे। कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैलमावाप्य मुस्तासरलप्रियङ्गुः॥ सौगन्धिकामोचरसाहिपुष्पलोध्राग्नि दत्त्वा खलु धातकीं च। एतेन शल्यप्रभवा हि नाडी रोहेद् व्रणो वै सुखमाशु चैव ॥ १० ॥

भाषा-पुन्नाग, खजूर, कैथ और बेल इन सबोंके कच्चे फलोंको और शलाटुवर्गकी सम्पूर्ण औषधियोंका विधिपूर्वक काथ बनावे, फिर इस काथमें तिलका तेल डालकर पकावे और पश्चात् नागरमोथा, धूपसरल, फूलप्रियंगू, सुगंधतृण, मोचरस, नागकेशर, लोध, चीतेकी जड और धायके फूल इन सबोंका कल्क करके डाल देवे। इस तेलको लगानेसे सद्योनाडीव्रण और अनेक प्रकारके व्रण दूर होते हैं॥ १० ॥

भल्लातकाद्यं तैलम्।

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन सिद्धं विडंगरजनीद्वयचित्रकैश्च। स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं नाडीं कफानिलकृतामपचीं व्रणांश्च ॥ ११ ॥

भाषा-तिलका तेल ४ सेर, भांगरेका रस १६ सेर, कल्कके लिये भिलावे, आककी जड, काली मिरच, सैंधानोन, वायविडंग, हलदी, दारुहलदी और चीतेकी जड ये सब १ सेरभर, पाकके लिये जल १६ सेर इन सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तेलको सिद्ध करे। इस तेलको लगानेसे कफज और वातज नाडीव्रण और अपचीव्रण दूर होता है ॥ ११ ॥

निर्गुण्डीतैलम्।

समूलपत्रां निर्गुण्डीं पीडयित्वा रसेन तु। तेन सिद्धं समं तैलं नाडीव्रणविशोधनम्॥ हितं पामापचीनां तु पानाभ्यंजननावनैः। विविधेषु च रोगेषु तथा सर्वव्रणेषु च ॥ १२ ॥

भाषा-तिलका तेल ४ सेर, मूलपत्र और शाखाओंसहित संभालूका रस ४

सेर इन दोनोंको एकत्र पकाकर पान या मर्दन किंवा नस्य ग्रहण करनेसे सब प्रकारके नाडीव्रण, पामा, अपची, नाना प्रकारके व्रण दूर होते हैं ॥ १२ ॥

हंसपादीतैलम् ।

हंसपाद्यरिष्टपात्रं जातीपत्रं ततो रसैः ।
तत्कल्कैश्च पचेत्तैलं नाडीव्रणविरोहणम् ॥ १३ ॥

भाषा-तिलका तेल ४ सेर, हंसपदीके पत्ते, नीमके पत्ते और चमेलीके पत्ते प्रत्येकका स्वरस १६ सेर, कल्कके लिये उक्त तीनों पत्र १ सेर, सबोंको यथाविधिसे मिलाकर सिद्ध करे । इस तैलको लगानेसे नाडीव्रण दूर होता है ॥ १३ ॥

इति नाडीव्रणरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ भगंदररोगनिदानम् ।

गुदस्य द्व्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिटिकार्त्तिकृत् ।
भिन्नो भगन्दरो ज्ञेयः स च पंचविधो मतः ॥ १ ॥

भाषा-गुदाके निकट एक बाजूपर दो अंगुल ऊंची एक फुडिया हो, उसमें पीडा हो और वह फूट जाय उसको भगन्दर कहते हैं । वह पांच प्रकारका है । वह भगाकार विदीर्ण होता है इसलिये उसको भगन्दर कहते हैं ॥ १ ॥

पूर्वरूप ।

कटीकपालनिस्तोददाहकण्डूरुजादयः ।
भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यन्ति भगन्दरे ॥ २ ॥

भाषा-कमरके समीप जो कपाल नामक हाड है उसमें सुईके चुभानेकी समान पीडा हो तथा उसमें दाह और खुजली हो एवं ज्वरादि रोग होते हैं । यह भगन्दर रोगका पूर्वरूप है ॥ २ ॥

शतपोनकके लक्षण ।

कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिडिकां करोति यः ।
उपेक्षणात् पाकमुपैति दारुणं रुजा च भिन्नारुणफेनवाहिनी ॥
तत्रागमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ॥ ३ ॥

भाषा-कषैले और रूखे पदार्थोंका भक्षण करनेसे वायु अत्यन्त कुपित होकर गुदाके समीप एक फुडिया उत्पन्न करती है, उसकी उपेक्षा करनेसे वह

फुडिया पके और फूट जाय, तब उसमें घोर पीडा हो और लाल एवं झागयुक्त राध बहे, फिर उसमें अनेक छिद्र हो जांय। उन छिद्रोंके द्वारा मूत्र, मल और शुक्र बहे, इसमें चलनीकेसे अनेक छिद्र होते हैं इस कारण इसको शतपोनक कहते हैं ॥ ३ ॥

उष्ट्रशिरोधरके लक्षण ।

प्रकोपनैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तां पिडिकां गुदाश्रिताम् । तदाशु पाकाद्दिमपूयवाहिनीं भगन्दरं तुष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥ ४ ॥

भाषा–अत्यन्त पित्तकारक पदार्थोंके सेवन करनेसे पित्त कुपित होकर गुदाके निकट लाल रंगकी फुडिया उत्पन्न करे, बहे, फुडिया शीघ्र पक जाय, उसमेंसे गरम राध बहे, यह फुडिया ऊंटकी गरदनकी समान होती है इसी कारण इसको उष्ट्रशिरोधर कहते हैं ॥ ४ ॥

परिश्राविभगंदरके लक्षण ।

कण्डूयनो घनस्रावी कठिनो मंदवेदनः । श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगन्दरः ॥ ५ ॥

भाषा–जिसमें खुजली हो, गाढी राध बहे, वह फुडिया कठिन, अल्प पीडायुक्त और उसका रंग सफेद हो उसको कफज परिस्रावी भगन्दर कहते हैं ॥ ५ ॥

शंबूकावर्तके लक्षण ।

बहुवर्णरुजा स्रावाः पिडिका गोस्तनोपमाः । शंबूकावर्त्तवन्नाडी शंबूकावर्त्तको मतः ॥ ६ ॥

भाषा–जिसमें गायके स्तनकी समान अनेक फुंसी हों, उनका रंग पीडा और स्राव नानाप्रकारका हो, एवं उसका छिद्र घोंघेके घेरेकी समान होता है। उसको त्रिदोषज शम्बुकावर्त्त कहते हैं ॥ ६ ॥

उन्मार्गिभगंदरके लक्षण ।

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्धते ह्युपेक्षणात्स्युः कृमयो विदार्यते । प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखैर्व्रणैस्तदुन्मार्गिभगंदरं वदेत् ॥ ७ ॥

भाषा–गुदाके निकट कांटे आदिके लगनेसे घाव हो जाय उसका उपाय न करनेसे वह बढते बढते गुदातक पहुँच जाता है इतनेपरभी उसका उपाय न किया जाय तो उसमें कीडे पड जाते हैं और वे कीडे उसमें अनेक छिद्र कर देते हैं उसको उन्मार्गिभगन्दर कहते हैं ॥ ७ ॥

साध्यासाध्यलक्षण ।

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्वे एव भगन्दराः । तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥ वातमूत्रपुरीषाणि कृमयः शुक्रमेव च । भगन्दराः प्रस्रवन्ति नाशयन्ति तमातुरम् ॥ ८ ॥

भाषा-सर्व प्रकारके भगन्दर अत्यन्त कष्टसाध्य हैं । उनमें त्रिदोषज असाध्य है और क्षतज विशेष करके असाध्य है । जिस भगन्दररोगमें अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, कीडे और वीर्य्य स्रवे उस रोगीका नाश होता है ॥ ८ ॥

इति भगन्दररोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ भगन्दररोगचिकित्सा ।

लेपरक्तमोक्षणादिप्रकारः ।

गुग्गुलुं त्रिफलायुक्तं पीत्वा नश्येत् भगन्दरम् । दन्तीमूलं हरिद्रा च चित्रकं तस्य लेपनात् ॥ भगन्दरविनाशः स्यादन्यं योगं वदाम्यहम् । जलौकाजगधरक्तन्तु भगन्दरमुमापते ॥ त्रिफलाजलघृष्टं च मार्जारास्थिविलेपितम् । ततश्च नाशयेत् रुद्र नात्र कार्य्या विचारणा ॥ स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्त्तिं कृत्वा विचक्षणः । भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्तां प्रयत्नतः ॥ एष सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यादसंशयः । त्रिफलापुरकृष्णाभ्यां पत्रं चैकांशयोजिताः ॥ गुटिकाः शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिताः ॥ ९ ॥

भाषा-त्रिफलेके क्वाथमें गूगल डालकर पान करनेसे भगन्दररोग दूर होता है । दंतीकी जड, हलदी और चीतेकी जडको जलमें पीसकर प्रलेप करनेसे भगन्दररोग दूर होता है । अब इसके आगे और योग कहते हैं । भगन्दररोगमें जोंक लगानेसे उक्त रोग शांत होता है । विलावकी हड्डीको त्रिफलेके क्वाथमें घिसकर प्रलेप करनेसे भगन्दररोग आराम होता है । थूहर और आकके दूधमें दारुहलदीका चूर्ण डालकर बत्ती बना लेवे, उस बत्तीको भगन्दरस्थानमें रखनेसे सर्वशरीरकी नाली दूर होती है । त्रिफला, गूगल, पीपल और बेलके पत्ते ये सब समान भाग लेकर चूर्ण करके गोलियां बनाकर सेवन करनेसे सूजन, गुल्म, बवासीर और भगन्दररोग दूर होता है ॥ ९ ॥

निशाद्यं तैलम् ।

निशार्कक्षीरसिन्धूत्थपुरदहनवत्सकैः । सिद्धमभ्यंजने तैलं भगन्दरविनाशनम् ॥ गुदस्य श्वयथुं दृष्ट्वा विशोष्य शोधयेत्ततः । रक्तावसेचनं कार्यं यथा पाकं न गच्छति॥ वटपत्रेष्टकाशुण्ठीगुडूच्यः सपुनर्नवाः । सुपिष्टाः पीडिकावस्थे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रं निशे वचा लोध्रमगारधूमम् । भगन्दरे नाड्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ भगन्दरं प्रत्यहन्तु सुधौतं त्रिफलाम्बुना । त्रिफलारसपिष्टेन मार्जारास्थ्ना च लेपयेत् ॥ खरास्रपक्वभूरोहचूर्णलेपो भगन्दरे । हस्तिदन्त्यग्न्यतिविषालेपस्तद्वच्छुनोऽस्थि वा ॥ १० ॥

भाषा-हलदी, आकका दूध, सेंधानोन, गूगल, चीता और कूडेकी छाल इनके कल्कके द्वारा तैलको पकाकर मर्दन करनेसे भगन्दररोग दूर होता है । गुदामें सूजन होय तो प्रथम उपवास, वमन और विरेचन कराकर पश्चात् जोंक लगावे, इससे वह सूख जाता है और पकता नहीं है । भगन्दररोगके व्रणके ऊपर वटपत्री, ईंटका चूरन, सोंठ और पुनर्नवा इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करे । तिल, हरड, लोध और नीमके पत्ते अथवा हलदी, दारुहलदी, वच, लोध और घरका धूँआ सबोंको समान भाग लेकर पीसकर प्रलेप करनेसे भगन्दर, नाडीव्रण, उपदंश और दुष्टव्रणमेंसे राध आदि निकालकर सूख जाते हैं । भगन्दरके घावको प्रतिदिन त्रिफलेके क्वाथसे धोकर पश्चात् बिलावकी हड्डीको त्रिफलेके क्वाथमें घिसकर प्रलेप करे। केंचुएको गधेके रुधिरमें पकाकर प्रलेप करनेसे भगन्दररोग दूर होता है ॥ १० ॥

भिष्यन्दनतैलम् ।

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मूलपूहयमारकौ । सुधां वचां लांगलिकां हरितालं सुवर्चिकाम् ॥ ज्योतिष्मतीं च संहृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् । एतद्भिष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे ॥ शोधनं रोपणं चैव सावर्ण्यकरणं परम् ॥ ११ ॥

भाषा-दंतीकी जड और अतीस अथवा कुत्तेकी हड्डियोंको त्रिफलेके रसमें पीसकर प्रलेप करनेसे भगन्दररोग आराम होता है । चीतेकी जड, आककी जड, निसोत, पाढ, कठूमर, कनेरकी जड, आकका दूध, वच, कलिहारी, हरिताल,

सज्जी और मालकांगनी इनके कल्कके द्वारा यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे । इस तैलका भगन्दररोगमें प्रयोग करे। यह भगन्दरके व्रणको शुद्ध करके भर देता है और उस स्थानको सुन्दर कर देता है ॥ ११ ॥

करवीराद्यं तैलम् ।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः ।
मातुलुङ्गार्कवत्साह्वैः पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ १२ ॥

भाषा-कनेर, हलदी, दंती, कलिहारी, सेंधानोन, चीता, बिजोरा, आक और इन्द्रजौ इनके कल्कके द्वारा तैलको सिद्ध करे इसको सेवन करनेसे सर्व प्रकारके भगन्दररोग आराम होते हैं ॥ १२ ॥

सैन्धवाद्यं तैलम् ।

सैन्धवं चित्रकं दन्ती पलाशश्चेन्द्रवारुणी । गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा ग्राह्यमष्टावशेषितम् ॥ क्वाथपादं पचेत्तैलं कल्कं कृष्णायसामृतम् । पचेत्तैलावशेषं च तेन लेप्यं भगन्दरम् ॥ असाध्यं साधयत्याशु पक्वं कृमिकुलान्वितम् ॥ १३ ॥

भाषा-कडुतैल २ सेर, क्वाथके लिये सेंधानोन, चीतेकी जड, दंती, ढाकके बीज और इन्द्रवारुणी ये सब आठ सेर, पाकके लिये गोमूत्र ६४ सेर, कल्कके लिये जारित और पुटित लोहेकी भस्म आध सेर, उपरोक्त तेल क्वाथ और लोहेकी भस्मको एकत्र मिलाकर पकावे जब केवल तेल शेष रह जाय तब उतार लेवे, फिर इसको छान लेवे इस तेलमें सेमलको भिगोकर घावमें लगावे तो कृमियुक्त भगन्दररोग आराम होता है ॥ १३ ॥

चित्रविभाण्डको रसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं कुमारीरसमर्दितम् । त्र्यहान्ते गोलकं कृत्वा ताम्रं तेन प्रलेपयेत् ॥ द्वयोः समं भस्म पूर्णपात्रे रुध्वा विपाचयेत् । द्वियामान्ते समुद्धृत्य स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् ॥ जम्बीरस्य रसैः पिष्ट्वा रुध्वा सप्तपुटे पचेत् । गुञ्जैकं मधुनाज्येन लिह्याद्धन्ति भगन्दरम् ॥ मुसली लशुनं चाम्लं चारनालयुतं पिबेत् । कर्त्तव्यो मधुराहारो दिवा स्वप्नं च मैथुनम् ॥ वर्जयेत् शीतलाहारं रसे चित्रविभाण्डके ॥ १४ ॥

भाषा-पारा २ तोले और गंधक २ तोले लेवे। दोनोंको एकत्र घीगुवारके रसमें तीन दिन खरल करके कजली बना लेवे, फिर इसको तीन तोले प्रमाण एक तांबेके पत्रपर लेप कर देवे, पश्चात् एक हांडीमें उपलोंकी राख भरकर उसमें इस औषधिको रखकर ऊपरसे फिर उपलोंकी राख भर देवे फिर हांडीके मुखको सिकोरेसे ढककर दो महरतक तीक्ष्ण अग्निसे पकावे। जब स्वांगशीतल हो जाय तब चूर्ण कर ले, फिर इसको जम्मीरी नीबूके रसमें खरल करके मूषामें रखकर सातवार गजपुटमें पकावे। फिर इसको प्रतिदिन एक रत्तीभर सहत और घीमें मिलाकर सेवन करे तो भगन्दररोग दूर होवे। ऊपरसे मुसली और लहसनको कांजीमें पीसकर भक्षण करे। इसपर मधुर आहार करे तथा दिनमें सोना, मैथुन और शीतल आहार त्याग देवे, इसको चित्रविभाण्डरस कहते हैं ॥ १४ ॥

इति भगन्दररोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथोपदंशरोगनिदानम् ।

कारण ।

हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनादत्यतिसेवनाद्वा ।
योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पंचोपदंशा विविधोपचारैः ॥ १ ॥

भाषा-हाथकी चोटके लगनेसे, नखके लगनेसे, दांतके लगनेसे, नहीं धोनेसे, अत्यंत स्त्रीप्रसंग करनेसे, दूषित योनिसे मैथुन करनेसे इत्यादि अनेक कारणोंसे लिंगमें पांच प्रकारके उपदंश उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

वातोपदंशके लक्षण ।

सतोदभेदस्फुरणैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम् ॥ २ ॥

भाषा-लिंगमें काले रंगके फोडे हों, उनमें सुई चुभाने सरीखी पीडा हो, फोडनेकेसी पीडा हो और लिंग फडके उसको वातज उपदंश कहते हैं ॥ २ ॥

पित्तोपदंश व रक्तोपदंशके लक्षण ।

पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तात्पिशितावभासैः ॥ ३ ॥

भाषा-पित्तज उपदंशमें पीले रंगके फोडे होते हैं, उनमें अधिक स्राव हो तथा दाह हो, रक्तज उपदंशमें फोडे मांसकी समान लाल होते हैं ॥ ३ ॥

कफोपदंशके लक्षण ।

सकण्डुरैः शोथयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्घनस्रावयुतैः कफेन ॥ ४ ॥

भाषा-कफज उपदंशमें सफेद बडे फोडे हों, उनमें खुजली हो, सूजन और गाढा स्राव हो ॥ ४ ॥

सन्निपातोपदंशके लक्षण ।

नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥ ५ ॥

भाषा-सन्निपातज उपदंशमें नाना प्रकारका स्राव और पीडा होती है ॥ ५ ॥

असाध्यलक्षण ।

विशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जयेत्तु ।
संजातमात्रेण करोति मूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः ॥
कालेन शोथकृमिदाहपाकैर्विशीर्णशिश्नो म्रियते स तेन ॥ ६ ॥

भाषा-जिस उपदंशमें लिंगका मांस गल जाय और लिंगको कीडे खा जांय, केवल अंडकोष बाकी रह जाय उसकी वैद्य चिकित्सा न करे । जो मूढ मनुष्य विषयमें आसक्त होकर उपदंशके उत्पन्न होतेही उसका उपाय न करे उसके लिंगमें सूजन आ जाय और कीडे पड जांय उसमें दाह हो तथा पके और फिर वह गल जाय तो वह रोगी मर जाता है ॥ ६ ॥

लिंगवर्तिके लक्षण ।

अंकुरैरिव संजातैरुपर्युपरिसंस्थितैः । क्रमेण जायते वर्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा ॥ कोशस्याभ्यन्तरे संधौ सर्वसंधिगतापि वा । लिंगवर्तिरिति ख्याता लिंगार्श इति चापरे ॥ कुलत्थाकृतयः केचित्केचित् पद्मदलोपमाः । मेढ्रसंधौ नृणां केचित् केचित्सर्वाश्रयाः स्मृताः ॥ रुजादाहार्तिबहुलास्तृष्णातोदसमन्विताः । स्त्रीणां पुंसां च जायन्ते ह्युपदंशाः सुदारुणाः ॥ ७ ॥

भाषा-धान्यके अंकुरोंकी समान लिंगके अग्रभागके त्वचाकी भीतरकी संधिमें अथवा ऊपरकी संधिमें मुरगेकी चोटीकी समान एकके ऊपर एक क्रमसे उत्पन्न होते हैं उसको लिंगवर्त्ति कहते हैं और कितनेक आचार्य्य उसको लिंगार्शभी कहते हैं । यह त्रिदोषज है उसमें वेदना होती है । इस रोगमें मांसके अंकुर कुलथीकी समान, कोई कमलपत्रकी समान, किसीके अंडकोशकी संधिमें और किसीके सर्व आशयमें होते हैं । पीडा, जलन अधिक हो, तृषा, सुईके चुभानेकीसी पीडा होवे । यह दारुण उपदंशरोग स्त्री और पुरुषों दोनोंके उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

फिरंगशब्दकी निरुक्ति और निदान ।

फिरंगसंज्ञके देशे बाहुल्येनैव यद्भवेत् ।
तस्मात्फिरंग इत्युक्तो व्याधिर्व्याधिविशारदैः ॥ ८ ॥

भाषा-यह फिरंग रोग प्रायः फिरंगदेश (लन्दन, फिरंगियोंके देश) में होता है इस कारण इसको फिरंग रोग कहते हैं ॥ ८ ॥

विप्रकृष्टनिदान ।

गन्धरोगफिरंगोयं जायते देहिनां ध्रुवम् ।
फिरंगिणेति संसर्गात् फिरंगिण्या प्रसंगतः ॥
भवेत्तं लक्षयेत्तेषां लक्षणैर्भिषजां वरः ॥ ९ ॥

भाषा-यह गंधरोग फिरंगियोंके संसर्गसे और फिरंगनोंके साथ विषय करनेसे होता है । इसको नीचे लक्षणोंसे कहते हैं ॥ ९ ॥

रूपमाह ।

फिरंगस्त्रिविधो ज्ञेयो बाह्याभ्यन्तरतस्तथा । बहिरन्तर्भवश्चापि तेषां लिंगानि च ब्रुवे ॥ तत्र बाह्यः फिरंगः स्याद्विस्फोटसदृशो-ल्परुक् । स्फुटितो व्रणवद्वेद्यः सुखसाध्योऽपि स स्मृतः ॥ संधिष्वाभ्यन्तरः स स्यादुभयोर्लक्षणैर्युतः । कष्टदोऽतिचिरस्थायी कष्टसाध्यतमश्च सः ॥ १० ॥

भाषा-बाहर होनेवाला, भीतर होनेवाला तथा बाहर भीतर दोनोंमें होनेवाला ऐसे फिरंगरोग तीन प्रकारका है। अब उनके अलग अलग लक्षण कहता हूं। इनमें बाहरका फिरंगरोग फोडेकी समान अल्पपीडा करे है और फोडेहीकी समान फूटे है । यह सुखसाध्य है । जो फिरंगरोग संधियोंके भीतर उत्पन्न होवे अथवा जिसमें बाहर और भीतर दोनोंके लक्षण मिलते हों, वह बहुत दिनोंतक रहनेवाला अत्यन्त कष्टदायक कष्टसाध्य है ॥ १० ॥

फिरंगरोगके उपद्रव ।

कार्श्यं बलक्षयो नासाभंगो वह्नेश्च मन्दता ।
अस्थिशोषोऽस्थिवक्रत्वं फिरंगोपद्रवा अमी ॥ ११ ॥

भाषा-शरीरकी कृशता, बल क्षीण हो जाय, नासिका टेढी पड जाय, मंदाग्नि हो जाय, हड्डियोंमें खुसकी हो और हड्डी टूटे ये सब फिरंगरोगके उपद्रव हैं ॥ ११ ॥

साध्यासाध्यकष्टसाध्य ।

बहिर्भवो भवेत्साध्यो नूतनो निरुपद्रवः । अभ्यन्तरस्तु कष्टेन साध्यः स्यादयमामयः ॥ बहिरंतर्भवो जीर्णः क्षीणस्योपद्रवै-र्युतः । बोध्यो व्याधिरसाध्योयमित्यूचुर्मुनयः पुरा ॥ १२ ॥

भाषा—जो फिरंगरोग बाहर उत्पन्न हुआ है तथा नवीन और उपद्रवरहित है वह साध्य समझना । जो भीतर हो वह कष्टसाध्य है तथा जो बाहर भीतर दोनों स्थानोंमें हो एवं पुराना हो गया हो और जिसमें सब उपद्रव हों वह फिरंगरोग असाध्य है ॥ १२ ॥

इति उपदंशरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथोपदंशरोगचिकित्सा ।

क्वाथचूर्णलेपादिक्रिया ।

पटोलनिम्बत्रिफलागुडूचीक्वाथं पिबेद्वा खदिराशनाभ्याम् । सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशापहरः प्रलेपः ॥ त्रिफलायाः कषायेण भृंगराजरसेन वा । व्रणप्रक्षालनं कुर्य्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ दहेत् कटाहे त्रिफलां समांशां मधुसंयुताम् । उपदंशप्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्ययापि समन्वितम् । सक्षौद्रं वा प्रलेपेन सर्वलिङ्गगदापहम् ॥ लेपः पूगफलेमाश्वमारमूलेन वा तथा । सेवेन्नित्यं यवान्नं च पानीयं कौपमेव वा ॥ स्निग्धस्विन्नशरीरस्य लिंगमध्ये शिराव्यधः । जलौकापातनं वा स्यादूर्ध्वाधःशोधनं तथा ॥ सद्यो निर्जितदोषं च रुक्शोथावुपशाम्यतः । पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ बबूलदलचूर्णेन दाडिम्बत्वग्भवेन वा । गुण्डनं नस्थिचूर्णेन उपदंशहरं परम् ॥ जयाजात्यश्वमारार्कसम्पाकानां दलैः पृथक् । कृतं प्रक्षालने क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥ बदरा-

कैमपामार्गस्तथा ब्राह्मणयष्टिका । हिंगुलं च समं चैषां तथा
कृष्णा च धूपनम् ॥ दोषजं कर्मजं हन्यादुपदंशादिकं व्रणम् ॥ १३ ॥

भाषा-पटोलपात, नीमकी छाल, हरड, बहेडा, आमला और गिलोय इनका काथ बनाकर पान करनेसे अथवा खैरके और शालके काथमें गूगल और त्रिफले-का चूर्ण डालकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारके उपदंशरोग आराम होते हैं। त्रिफलेके काथसे अथवा भांगरेके रससे उपदंशके व्रणोंको धोवे इससे उपदंशरोग शांत होता है। प्रथम लोहेकी कढाईमें त्रिफलेको भून लेवे, पश्चात् सहतमें पीस-कर उपदंशके व्रणोंपर प्रलेप करनेसे तत्काल व्रण भर जाते हैं। रसोतके चूर्ण-को सिरसके चूर्णके साथ अथवा हरडके चूर्णके साथ सहत मिलाकर प्रलेप करनेसे लिंगकी पीडा दूर होती है। सुपारी अथवा कनेरकी जडको पीसकर प्रलेप करे और प्रतिदिन जौका भोजन करे तथा कुएका जलपान करे। उपदंशरोगमें प्रथम स्वेद देकर लिंगके मध्यकी शिराको छेदे अथवा जौंक लगवावे या वमन और विरेचन कराकर रोगीकी देहको शुद्ध करे ऐसे करनेसे दोषोंकी लघुता होकर सूजन और पीडा दूर होती है। लिंग पके नहीं ऐसा विचार करना चाहिये, क्योंकि लिंग पककर गल जाता है। सूखे बबूरके पत्ते और सूखी अनारकी छाल और मनुष्य-की हड्डी इनको एकत्र पीसकर लगानेसे उपदंशरोग आराम होता है। जयंती, चमेली, कनेर, आक और अमलतास इनके पत्तोंका काथ बनाकर उपदंशके व्रणोंको धोवे। बेरी, आक, चिरचिटा, भारंगी और सिंगरफ इन सबोंको एकत्र पीसकर धूमपान करनेसे दोषज और कर्मज सर्व प्रकारके उपदंशोंके व्रण दूर होते हैं ॥ १३ ॥

भूनिम्बाद्यं घृतम्।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरंजजातीखदिराशनानाम्।
सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ १४ ॥

भाषा-चिरायता, नीमकी छाल, हरड, बहेडा, आमला, पटोलपात, करंज, चमेली, खैर और विजयसार इनके काथ और कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे। यह घृत सर्व प्रकारके उपदंशविकारोंको दूर करे है ॥ १४ ॥

आगारधूमाद्यं तैलम्।

आगारधूमो रजनी सुरा किट्टं च तैस्त्रिभिः।
भागोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् ॥
शोधनं रोपणं चैव सावर्ण्यकरणं परम् ॥ १५ ॥

भाषा-घरका धूंआ १ पल १ कर्ष ५ मासे ३ रत्ती, हलदी २ पल २ कर्ष १० मासे ५ रत्ती, मदिराका मैल ४ पल, जल १६ सेर इन सब औषधियोंके द्वारा ४ सेर तिलके तेलको पकाकर उपदंशके व्रणोंमें लगानेसे उसकी राध आदि निकलकर वह स्थान शुष्क और बराबर हो जाता है ॥ १५ ॥

लेपः।

विषतिन्दुं लोहपात्रे मलाक्ते निम्बुकद्रवैः। घर्षेत् कृष्णसुधामूलं प्रत्येकं माक्षिकं दृढम् ॥ तुत्थं तदनु सूतं च लोहदण्डेन तद्युतम्। सर्वं तदेकतां यातं तेन लिंगं प्रलेपयेत् ॥ लेपे शुष्के पुनर्लेपं दद्यात् शुष्के पुनस्तथा। शुष्कं न स्रंसयेल्लेपं शुष्कस्योपरि दापयेत् ॥ १६ ॥

भाषा-कुचलेको लोहके पात्रमें लोहेके दंडेसे नीबूके रसमें घोटे, फिर इसमें थूहरकी जड, सोनामक्खी, तूतिया और पारा इनको डालकर घोटे, सबोंको एकत्रित करके लिंगपर प्रलेप करे, जब लेप सूख जाय तब दूसरा लेप कर देवे, फिर जब वहभी सूख जाय तब उसको छुटाकर और लेप कर देवे, इस प्रकार वारंवार प्रलेप करे तो उपदंशरोग शमन होता है ॥ १६ ॥

रसशेखरः।

पारदं चाहिफेनं च द्विद्वांदशकरक्तिकम्। अयःपात्रे निम्बकाष्ठे मर्दयेत्तुलसीद्रवैः ॥ तस्मिन् संमूर्छिते दद्याद्दरदं रससम्मितम्। मर्दयेच्च तुलस्यैव ततश्चैतानि दापयेत् ॥ जातीकोषफले चैव पारसीययवानिकाम्। आकारकरभं चैव द्वात्रिंशद्रक्तिकां प्रति ॥ मर्दयेत्तुलसीतोयैरेतेषां द्विगुणं शुभम्। दद्यात् खदिरसत्वं च वटिका चणकप्रभा ॥ सायं द्वे द्वे प्रयोज्ये च लवणाम्लं च वर्जयेत्। गलकुष्टं तथास्फोटान् दुष्टान् गर्दभिकामपि ॥ ये स्युर्व्रणा नृणामन्ये उपदंशपुरःसराः। तान् सर्वान् नाशयत्याशु सिद्धोयं रसशेखरः ॥ १७ ॥

भाषा-पारा २ रत्ती और अफीम १२ रत्ती इन दोनों औषधियोंको लोहेके पात्रमें नीमके सोटेसे तुलसीके रसमें घोटे फिर उसमें दो रत्ती सिंगरफ मिलाकर दुबारा तुलसीके रसमें उत्तम प्रकारसे खरल करे फिर जाविची, जायफल, खुरासा-

नी, अजवायन और अकरकरा प्रत्येक ३२ रत्ती और सबोंसे दुगुना खैरसार लेवे। सबोंको एकत्र मिलाकर तुलसीके रसमें खरल करके चनेकी बराबर गोलियां बना लेवे, प्रतिदिन सायंकाल दो दो गोली खाय। इसपर निमक और खटाई त्याग देवे, इससे गलत्कुष्ठ, दुष्ट स्फोटक, गर्दभिका और सर्व प्रकारके उपदंशके व्रण दूर होते हैं। इसको रसेश्वररस कहते हैं ॥ १७ ॥

धूमः।

रसं वंगं च खदिरं हरीतक्याश्च भस्मकम्। कोमलीकदलीभस्म शुंबाकफलभस्म च ॥ एकतोलकमानं स्याद्धिङ्गुलं हरितालकम्। गन्धकं तुत्थकं चापि पद्मकं सरलं तथा ॥ द्वे चन्दने देवदारु वकमं काष्ठमेव च। तथा केशरकाष्ठं च माषमानं प्रकल्पयेत् ॥ एकीकृत्य चूर्णयित्वा सर्वं चाङ्गेरिकाद्रवैः। तुलसीपत्रजरसैः पुरातनगुडेन च ॥ घृतेन सह पट् कार्या वटिका मन्त्ररक्षिताः। वेदनायामुत्कटायां चतस्रः शुक्लवाससा ॥ वेष्टयित्वा च निर्धूमाङ्गारोपरि प्रदापयेत्। तं धूमं प्रतिगृह्णीयान्नरो वस्त्रादिवेष्टितः ॥ मुखनासाकर्णबहिर्निश्वासस्य निरोधतः। स्वेदे जातेऽस्य नैरुज्यं सायंप्रातर्दिनत्रयम् ॥ मासमात्रं तु पथ्याशी शाकाम्लदधिवर्जनम्। गुर्वन्नपायसादीनि अपथ्यानि विवर्जयेत् ॥ दिनत्रये व्यतीते तु स्नानमुष्णाम्बुना चरेत्। एवं धूमकृते शान्ति व्रणाश्च पीडका अपि ॥ तथा शोथश्चामवातः संजता पंगुतापि च। कुष्ठोपदंशशान्त्यर्थं भैरवेण प्रकीर्त्तितः ॥ १८ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, वंगकी भस्म, सफेद खैर, हरडकी भस्म, कोमल केलेके जडकी भस्म और सुपारीकी भस्म प्रत्येक एक एक तोला; सिंगरफ, हरिताल, गंधक, तूतिया, पद्माख, सरल, लाल चंदन, सफेद चंदन, देवदारु, अगस्तिया और नागकेशर प्रत्येक एक एक मासे इन सबोंको एकत्र पीसकर लोहेके पात्रमें लोहेके डंडेसे चांगेरीके रसमें, तुलसीके रसमें घोटकर पुराने गुड और घीमें मिलाकर ६ गोली बना लेवे। इन गोलियोंके द्वारा धूमपान करनेसे उपदंश और कुष्ठ आदिके समस्त विकार दूर होते हैं। धूमपान करनेकी विधि कहते हैं। रोगीके मुख, नासिका और कानोंको छोडकर सम्पूर्ण शरीर सफेद कपडेसे ढक देवे तथा

वस्त्रके बीचमें रोगीके सन्मुख सिकोरा आदि धरकर उसमें धूमरहित अंगारेकी अग्नि रखे, उसमें एक गोली डाल देवे, फिर धूमपान करे । इससे धूंआ सर्वशरीरमें फैल जाता है । यदि पीडा अधिक होय तो २ अथवा ४ गोलियोंको डाल धूंआ पीवे । तीन दिनपर्यंत प्रातः और सायंकाल इस प्रकार धूमपान करे । इससे जो पसीना निकले उसको सूखे कपडेसे भीतरही भीतर पूंछ लेवे । इसपर एक महिना पर्यंत पथ्यसे रहे और अत्यन्त सावधानीसे रहे । शाक, अम्ल, दही, अम्लपाकी पदार्थ और खीरका भोजन त्याग देवे । तीन दिनके पश्चात् गरम जलसे स्नान करे । यह धूमपान करनेसे उपदंशके व्रण, पिडिका, सूजन, आमवात, खंजता, पंगुता, कुष्ठ और उपदंश इन सबोंको दूर करे है । यह भैरवाचार्यने निर्माण किया है ॥ १८ ॥

रसगुग्गुलुः ।

ग्राह्यः पातनयन्त्रेण शुद्धश्चन्द्रसमो रसः । रक्तिकाशतमेतस्य शर्करा त्रिगुणा भवेत् ॥ ततश्चतुर्गुणो ग्राह्यो गुग्गुलुर्महिषाख्यकः । घृतं रससमं दद्यान्मर्दयेच्च प्रयत्नतः ॥ विंशतीर्वटिकाः कार्यास्तिस्रस्तिस्रो दिनत्रयम् । एकादशदिनैरन्या देया एकादशैव ताः ॥ सप्ताहद्वयमेवं च कारयेद्भिषजां वरः । लवणं वर्जयेत् पथ्ये पादोर्द्धाशनमिष्यते ॥ दिनद्वये व्यतीते तु पादोनं पथ्यमाचरेत् । मसूरसूपं सगुडव्यंजनं चाथ कल्पयेत् ॥ पुनर्नवापटोलानि तिक्तपत्रीं च गोक्षुरम् । पुटपत्रीं कोकिलाक्षं शाकार्थे घृतभर्जितम् ॥ शर्करालवणस्थाने वेशवारे धनीयकम् । लवंगाजाजिहिंगूनि धान्यकं जीरकाणि च ॥ पाकार्थे संप्रदातव्यं संस्कारार्थं भिषग्वरैः । भैरवस्य रसस्यान्याः क्रिया अत्र प्रयोजयेत् ॥ रसगुग्गुलुरेवं हि सर्वान् जित्वामयानयम् । कुष्ठोपदंशनामानं व्रणं वातादिसंयुतम् ॥ कामदेवप्रताकाराश्चिरजीवी भवेन्नरः ॥ १९ ॥

भाषा–पातनयंत्रमें शुद्ध किया हुआ पारा १०० रत्ती, चीनी ३०० रत्ती और शुद्ध भैंसिया गूगल ४०० रत्ती इन सबोंको एकत्र खरल करके २० गोलियां बना लेवें, इन गोलियोंके खानेकी विधि यह है कि प्रथम तो तीन दिनतक प्रतिदिन

तीन गोलियां भक्षण करे। चौथे दिन एक गोली खाय। इस प्रकार १४ दिनमें इस औषधिको समाप्त कर देवे। आहारकी विधि यह है कि पहिले दिन चौथाई, दूसरे दिन आधा और पश्चात् पौन पौन भाग आहार करे। इसपर गुडके साथ व्यंजन और मसूरका यूष पथ्य है। शाकोंमें पुनर्नवा, पटोल, ककोडे, गोखरू, पुटपत्री और तालमखाना इन सब शाकोंको घीमें भूनकर भोजन करे। चीनी और नमक वर्जित है। इनके स्थानमें वेशवार और धनिया सेवन करे और मसालोंमें लौंग, काला जीरा, हींग और जीरा इनका व्यवहार करे। यह रसगूगल सर्व प्रकारके उपदंश और कुष्ठादि तथा वातयुक्त रोगोंके व्रणोंको दूर करे है। इसका सेवन करनेसे शरीर कांतियुक्त होता है और वह मनुष्य बहुत कालतक जीता है १९.

रसकर्पूरप्राशनविधिः।

फिरंगसंज्ञकं रोगं रसः कर्पूरसंज्ञकः। अवश्यं नाशयेदेतदूचुः पूर्वचिकित्सकाः॥ लिख्यते रसकर्पूरप्राशने विधिरुत्तमः। अनेन विधिना खादेन्मुखे शोथं न विन्दति॥ २०॥

भाषा-फिरंग रोगको रसकपूर अवश्य दूर करता है ऐसे पहिले वैद्योंने कहा है। इसलिये प्रथम रसकपूरके खानेकी विधि कहते हैं इस प्रकार खानेसे मुह नहीं आता है॥ २०॥

कर्पूरगुटिका।

गोधूमचूर्णं सन्नीय विदध्यात् सूक्ष्मकूपिकाम्। तन्मध्ये निःक्षिपेत्सूतं चतुर्गुंजामितं भिषक्॥ ततस्तु गुटिकां कुर्य्याद्यथा न दृश्यते बहिः। सूक्ष्मचूर्णे लवंगस्य तां वटीमवधूलयेत्॥ दंतस्पर्शो यथा न स्यात्तथा तामम्भसा गिलेत्। ताम्बूलं भक्षयेत्पश्चात् शाकाम्ललवणान् त्यजेत्॥ श्रममातपमध्वानं विशेषात् स्त्रीनिषेवणात्॥ २१॥

भाषा-छाने हुए गेहूंके आटेको जलमें सानकर बहुत छोटी कुलियें बना लेवे, उसमें रसकपूर बारीक पीसकर चार चार रत्ती डालकर गोलियें बना लेवे, ऐसी गोली बना लेवे कि जिससे पारा बाहर न दीखे, पश्चात् उसको लौंगके बारीक चूरनमें फिरावे जिससे उसके चहूं ओर लौंगका चूरा लग जावे फिर इन गोलियोंको इस युक्तिसे मुखमें रक्खे कि दांत न लगे, फौरन जलसे निगल जाय, ऊपरसे ताम्बूल खाय। इसपर शाक, खटाई और निमक त्याग देवे एवं परिश्रम, धूप, मार्ग चलना और विशेष करके स्त्रीप्रसंगको त्याग देवे॥ २१॥

सप्तसालिवटी ।

पारदष्टंकमानः स्यात् खदिरष्टंकसम्मितः । आकारकरभश्चापि ग्राह्यष्टंकद्वयोन्मितः ॥ टंकत्रयोन्मितं क्षौद्रं खल्वे सर्वं विनिःक्षिपेत् । संमर्द्य तस्य सर्वस्य कुर्यात् सप्त वटीर्भिषक् ॥ स रोगी भक्षयेत् प्रातरेकैकामम्बुना वटीम् । वर्जयेदम्ललवणं फिरंगस्तस्य नश्यति ॥ २२ ॥

भाषा–रसकपूर ४ मासे, पपरिया कत्था ४ मासे, अकरकरा ८ मासे और सहत १२ मासे लेवे। सबोंको एकत्र खरल करके सात गोली बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली शीतल जलके साथ सेवन करे । इसपर खटाई और निमक त्याग देवे, इससे फिरंगरोग दूर होता है ॥ २२ ॥

पारदगुटिका ।

पारदः कर्षमात्रः स्यात् तावानेव हि गंधकः । तण्डुलाश्चाक्षमात्राः स्युरेषां कुर्वीत कज्जलीम् ॥ तस्याः सप्त वटीः कुर्यात् ताभिर्धूमं प्रयोजयेत् । दिनानि सप्त तेन स्यात् फिरंगान्तो न संशयः ॥ २३ ॥

भाषा–पारा १ तोला, गंधक १ तोला और चावल १ तोला लेवे । इन तीनोंका एकत्र खरल करके कजली बनावे, फिर पानीके योगसे इसकी सात गोली बनावे, प्रतिदिन एक एक गोलीकी धूनी देवे तो फिरंगरोग दूर होवे ॥ २३ ॥

रसद्वारा हस्तसेचनविधिः ।

पीतपुष्पाबलापत्ररसैष्टंकमितं रसम् । हस्ताभ्यां मर्दयेत्तावत् यावत्सूतो न दृश्यते ॥ ततः संस्वेदयेद्धस्तावेवं वासरसप्तकम् । त्यजेल्लवणमम्लं च फिरंगस्तस्य नश्यति ॥ २४ ॥

भाषा–सहदेई (पीले फूलकी खिरैटी) के पत्तोंके रसमें चार मासे पारा डालकर दोनों हाथोंसे तबतक मले जबतक पारा न दीखे । फिर हाथोंको अग्निसे सेके, इस प्रकार सात दिन पर्यंत करे । इसपर निमक और खटाई न खाय । इससे फिरंग रोग दूर होता है ॥ २४ ॥

चूर्णानि ।

चूर्णयेन्निम्बपत्राणि पथ्यानिम्बाष्टमांशिकाः । धात्री च तावती

रात्रिर्निम्बपोडशभागिकाः ॥ शाणमानमिदं चूर्णमश्नीयादंभसा सह । फिरंगं नाशयत्येव बाह्यमाभ्यंतरं तथा ॥ चोपचीनीभवं चूर्णं शाणमानं समाक्षिकम् । फिरंगव्याधिनाशाय भक्षयेल्लवणं त्यजेत् ॥ लवणं यदि वा त्यक्तुं न शक्नोति तदा नरः । सैन्धवं स हि भुंजीत मधुरं परमं हितम् ॥ २५ ॥

भाषा–नीमके पत्तोंके चूरनमें आठवां भाग हरडका चूर्ण, हरडके चूर्णकी समान आमलोंका चूर्ण और हलदीका चूर्ण नीमके चूरनसे सोलहवां भाग लेवे। सबोंको एकत्र करके प्रतिदिन ३ मासे पानीके साथ सेवन करे । इससे बाहर और भीतर दोनों प्रकारके फिरंग रोग दूर होते हैं । फिरंगरोगको दूर करनेके लिये ३ मासे चोपचीनीका चूर्ण सहतके साथ खाय । इसपर निमकको त्याग देवे । अगर निमक न छूट सके तो सैंधानोन खाय । इसपर मधुर पदार्थ अत्यन्त हितकारी हैं ॥ २५ ॥

इति उपदंशरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ शूकदोषरोगनिदानम् ।

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवांछति मूढधीः ।
व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः ॥ १ ॥

भाषा–जो मूर्ख मनुष्य शास्त्रक्रमको त्यागकर लिंगको स्थूल करना चाहे अर्थात् विषैली औषधियोंका लेप करे उसके अठारह प्रकारके शूकदोष उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

सर्षपिकाके लक्षण ।

गौरसर्षपसंस्त्याना शूकदुर्भग्नहेतुका ।
पिटिका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका च सा ॥ २ ॥

भाषा–दुष्ट जलजीवोंका लिंगपर लेप करनेसे कफ वात कुपित होकर सफेद सरसोंकी समान जो लिंगपर पिटिका उत्पन्न हो उसको सर्षपिका कहते हैं ॥ २ ॥

अष्ठीलाके लक्षण ।

कठिना विषमैर्भुग्नैर्वायुनाष्ठीलिका भवेत् ॥ ३ ॥

भाषा–छोटे, बडे और विषम शूकोंका लेप करनेसे वायु कुपित होकर करडी निहाईकी समान फुंसी उत्पन्न हो उसको अष्ठीला कहते हैं ॥ ३ ॥

ग्रंथितके लक्षण ।

शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रथितं नाम तत्कफात् ॥ ४ ॥

भाषा–निरन्तर लिंगपर लिंगवर्द्धक प्रलेप करनेसे इन्द्रीके ऊपर गांठसी हो जाती है उसको ग्रंथिक कहते हैं ॥ ४ ॥

कुंभिकाके लक्षण ।

कुम्भिका रक्तपित्तोत्था जांबवास्थिनिभाऽशुभा ॥ ५ ॥

भाषा–शूकदोषसे रक्तपित्त कुपित होकर जामुनकी गुठलीकी समान काली फुंसियोंको उत्पन्न करे उसको कुम्भिका कहते हैं ॥ ५ ॥

अलजीके लक्षण ।

तुल्यजां त्वलजीं विद्याद्यथा प्रोक्तं विचक्षणैः ॥ ६ ॥

भाषा–प्रमेहपिटिकामें जो अलजी पिटिकाके लक्षण कहे हैं उसी प्रकार प्रमेहरहित यह अलजीभी जाननी अर्थात् उसीके लक्षणोंकी समान इसके लक्षण जानने ॥ ६ ॥

मृदितके लक्षण ।

मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातकोपतः ॥ ७ ॥

भाषा–शूकदोष होनेपर लिंगको हाथोंसे पीडित अर्थात् दवानेसे जो सूजन होती है उसको मृदित कहते हैं ॥ ७ ॥

संमूढपिटिकाके लक्षण ।

पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढपिटिका भवेत् ॥ ८ ॥

भाषा–लेप करनेके पश्चात् जब लिंगमें खुजली उठे तब उसको दोनों हाथोंसे खूब रगडे तब उसमें जो फुंसी उत्पन्न हो उसको संमूढ ऐसा कहते हैं ॥ ८ ॥

अवमंथके लक्षण ।

दीर्घा बह्व्यश्च पिटिका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः ।
सोऽवमंथः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥ ९ ॥

भाषा–शूकदोषसे कुपित हुए कफ और रक्त उनसे लम्बी लम्बी बहुतसी और बीचमें फूटी हुई फुंसी लिंगमें उत्पन्न हो, उसमें रोमांच और पीडा होवे उसको अवमंथ कहते हैं ॥ ९ ॥

पुष्करिकाके लक्षण ।

पित्तशोणितसंभूता पिटिका पिडिकाचिता ।
पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका च सा ॥ १० ॥

भाषा-शूकदोषसे कुपित हुए पित्त और रक्त सो कमलकी भीतरकी केशरकी समान अनेक फुंसियोंसे घेरी हुई फुंसी होती है उसको पुष्करिका कहते हैं ॥१०॥

स्पर्शहानिके लक्षण ।

स्पर्शहानिं तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम् ॥ ११ ॥

भाषा-शूकदोषसे रुधिर दूषित होकर लिंगकी त्वचाके स्पर्शज्ञानको नष्ट करे उसको स्पर्शहानि कहते हैं ॥ ११ ॥

उत्तमाके लक्षण ।

मुद्गमाषोद्गमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवाश्च याः ।
व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजः ॥ १२ ॥

भाषा-शूकको अत्यन्त सेवन करनेसे शूकज अजीर्ण होता है उससे रक्त और पित्त कुपित होकर मूग या उडदकी समान तथा लाल रंगकी फुंसी होती है उसको उत्तमा कहते हैं ॥ १२ ॥

शतपोनकके लक्षण ।

छिद्रैरणुमुखैर्लिंगं चित्तं यस्य समंततः ।
वातशोणितजो व्याधिर्विज्ञेयः शतपोनकः ॥ १३ ॥

भाषा-शूकदोषसे वात और रुधिर कुपित होकर लिंगमें बारीक बारीक छिद्र हो जांय उसको शतपोनक कहते हैं ॥ १३ ॥

त्वक्पाकके लक्षण ।

वातपित्तकृतो यस्तु त्वक्पाको ज्वरदाहवान् ॥ १४ ॥

भाषा-शूकदोषसे कुपित होकर वात पित्त उनसे लिंगकी त्वचा पक जाती है उसमें ज्वर और दाह उत्पन्न होते हैं उसको त्वक्पाक कहते हैं ॥ १४ ॥

शोणितार्बुदके लक्षण ।

कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिटिकाभिर्निपीडितम् ।
यस्य वास्तु रुजा चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ॥ १५ ॥

भाषा-शूकदोषसे रुधिरके दूषित होनेसे लिंगपर काले फोडे और उनके साथ लाल फुंसी उत्पन्न होती हैं उनमें अधिक पीडा होती है उसको शोणितार्बुद कहते हैं ॥ १५ ॥

मांसार्बुदके लक्षण ।

मांसदोषेण जानीयादर्बुदं मांससंभवम् ॥ १६ ॥

भाषा-शूकदोषसे मांस दूषित होकर लिंगमें मांसार्बुद उत्पन्न करता है॥१६॥

मांसपाकके लक्षण ।

शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः ।
विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ १७ ॥

भाषा-शूकदोषसे त्रिदोष कुपित होकर मांसपाकको उत्पन्न करते हैं, उसमें लिंगका मांस गल जाता है और नानाप्रकारकी वेदना होती है ॥ १७ ॥

विद्रधिके लक्षण ।

विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ १८ ॥

भाषा-तीनों दोषोंके कुपित होनेसे लिंगमें विद्रधि उत्पन्न होती है उसके लक्षण विद्रधिरोगमें कहे हुए सन्निपातकी विद्रधिके लक्षणोंकी समान जानना॥१८॥

तिलकालकके लक्षण ।

कृष्णानि चित्राण्यथवा शूकानि सविषाणि तु । पातितानि पचं-
त्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ॥ कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यते य-
स्य देहिनः । सन्निपातसमुत्थांस्तु तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥१९॥

भाषा-काले या नानारंगके विष शूकोंके लेप करनेसे शीघ्रही सम्पूर्ण लिंग पक जाता है, तब उसका सब मांस तिलकी समान काला होकर पक जाता है उसको तिलकालक रोग कहते हैं ॥ १९ ॥

असाध्य लक्षण ।

तत्र मांसार्बुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः ।
विद्रधिश्च न सिद्ध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ २० ॥

भाषा-सर्व प्रकारके शूकदोषोंमें मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार असाध्य हैं ॥ २० ॥

इति शूकदोषरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ शूकदोषरोगचिकित्सा ।

घृतविरेचनादिप्रकार ।

शूकदोषेषु सर्वेषु विषघ्ना कारयेत् क्रिया । हितं च सर्पिषः
पानं पथ्यं चापि विरेचनम् ॥ हितः शोणितमोक्षश्च यच्चापि

लघुभोजनम् । सर्षपीं लिखितां सूक्ष्मैः कषायैरेव चूर्णयेत् ॥ तैरेवाभ्यंजनं तैलं साधयेद्व्रणरोपणम् । क्रियेयमवमन्थेपि रक्तं स्राव्यं तथोभयोः ॥ अष्ठीलायां कृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् । कुम्भिकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे ॥ तिन्दुकत्रिफला-लोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् । अलज्यां क्रूररक्तायामयमेव क्रिया-क्रमः ॥ स्वेदयेत् कथितं स्निग्धं नाडीस्वेदेन बुद्धिमान् । सुखोष्णैरुपनाहश्च सुस्निग्धैरुपनाहयेत्॥उत्तमाख्यां तु पिडिकां संच्छिद्य बडिशोद्धृताम् । कल्कैश्चूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरु-पाचरेत् ॥ क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः । त्वक्पाके स्पर्शहान्यं च सेचयेन्मृदितं पुनः ॥ बलातैलेन कोष्णेन मधुरै-श्चोपनाहयेत् । रसक्रिया विधातव्या लिखिता शतपोनके ॥ पृथक्पर्ण्यादिसिद्धन्तु तैलं देयमनन्तरम् ॥ २१ ॥

भाषा-सर्व प्रकारके शूकदोषोंमें विषनाशक औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करे । इसमें घृतको पीना हितकारी है और विरेचनभी पथ्य है । रक्तमोक्षण (फस्त खुलवाना) और हलका भोजन शूकदोषमें विशेष हितकारी है । सर्षपिका नामक शूकदोषको सिहांडे आदिके पत्तोंसे मर्दन कर ढाक, मजीठ, पीपल या वटादि कषाय द्रव्योंके चूर्णद्वारा व्याप्त करे तथा उपरोक्त वृक्षोंकी छालके काथ और कल्कके द्वारा तैलको पकाकर मर्दन करे । इस रोगमें रक्तमोक्षण कराकर अधिमं-थरोगोक्त सम्पूर्ण क्रिया करे । इन सब कर्मोंसे घाव सूखकर आराम हो जाता है । अष्ठीलारोगमें फस्त खुलवाकर श्लैष्मिकग्रंथिरोगोक्त चिकित्साके अनुसार उसकी चिकित्सा करे । कुम्भिकारोगमें रक्तमोक्षण करावे और जो वह पक जाय तो राध आदिको निकाल देवे पश्चात् तेंदू, त्रिफला और लोध इन सबोंको प्रलेप और व्रणशोधक तैलादि प्रयोग करे । अलजीरोगमें रुधिर दूषित होय तो कुम्भि-काकी समान चिकित्सा करे और स्वेदादि देकर स्निग्ध और सुखोष्ण प्रलेप करे । उत्तमानामक शूकदोषको संडासीसे उखाडकर छेदन करे तथा मधुसंयुक्त काथ कल्क और चूर्णद्वारा विधिपूर्वक चिकित्सा करे । पुष्करी और समूढ नामक शू-कदोषोंमें पित्तविसर्पकी समान चिकित्सा करे तथा पाक और स्पर्शहानिमें सेचन किया करे । मृदितरोगमें खिरेटीके काथ और कल्कके द्वारा तैलको पकाकर मर्दन

करे । लिखिता (ग्रथित) और शतपोनक पिडिकाओंमें रसक्रिया करे और पृश्निपर्णी आदि औषधियोंके द्वारा तैलको पकाकर प्रलेप करे ॥ २१ ॥

दार्वीतैलम् ।

दार्वीसुरसयष्ट्याह्वगृहधूमनिशायुगैः । तैलमभ्यंजने पाने मेढ्ररोगं निवारयेत् ॥ अर्बुदं मांसपाकं च विद्रधिं तिलकालकम् । प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक् तेषां प्रतिक्रियाम् ॥ सर्वेषां शूकदोषाणां क्रिया व्रणवदाचरेत् । उपदंशाधिकारोक्तमौषधं शूकदोषतः ॥ २२ ॥

भाषा–देवदारु, तुलसी, मुलहठी, घरका धूंआ, हलदी और दारुहलदी ये सब १ सेर, जल १६ सेर इन सबोंके कल्कके द्वारा ४ सेर तिलका तेल पकाकर मर्दन और पान करनेसे सर्व प्रकारके लिंगरोग दूर होते हैं । शूकदोषोंमें अर्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार रोग असाध्य हैं इसलिये इनको छोडकर शेष रोगोंकी चिकित्सा करे । सर्व प्रकारके शूकदोषोंमें व्रणकी समान चिकित्सा करे । एवं उपदंशरोगोक्त सम्पूर्ण औषधिका इस रोगमें प्रयोग करे॥२२॥

इति शूकदोषरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ कुष्ठरोगनिदानम् ।

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च । भजतामागतां च्छर्दिं वेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम् ॥ व्यायाममतिसंतापमतिभुक्त्वा निषेविणाम् । शीतोष्णलंघनाहारान् क्रमं मुक्त्वा निषेविणाम् ॥ घर्मश्रमभयार्त्तानां द्रुतं शीतांबुसेविनाम् । अजीर्णाध्यशनानां च पंचकर्मापचारिणाम् ॥ नवान्नदधिमत्स्यादिलवणाम्लनिषेविणाम् । माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडाशिनाम् ॥ व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा । विप्रान् गुरून्धर्षयतां पापं कर्म च कुर्वताम् ॥ वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग्रक्तं मांसमंबु च । दूषयन्ति सकुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः ॥ अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैव च ॥ १ ॥

भाषा-विरुद्ध (दूध मछली इत्यादि), पतले, चिकने और भारी अन्न पानको भक्षण करनेसे, आती हुई वमनको रोकनेसे तथा मलमूत्रादिकं वेगको रोकनेसे, अधिक भोजन करके व्यायाम करनेसे अथवा अग्नि तथा सूर्यके संतापका सेवन करनेसे, सरदी, गरमी, लंघन और आहार इनका विना क्रम सेवन करनेसे, पसीना, श्रम और भयसे पीडित होनेसे अथवा पसीने आये हुए, श्रमसे थके हुए और भयसे घबडाये हुए इन तीनों अवस्थामें तत्काळ जलपान करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे या भोजनके ऊपर भोजन करनेसे, वमन विरेचनादि पंच कर्मोका सेवन करते समय कुपथ्य करनेसे, नवीन अन्न, दही, मछली आदि, नमक और अत्यन्त खटाई सेवन करनेसे, उडद, मूली, पिष्टान्न (मिष्टान्न पकवान), तिल, दूध और गुड इनका अधिक भक्षण करनेसे, भोजनके अजीर्णमें स्त्रीप्रसंग करनेसे, दिनमें सोनेसे, ब्राह्मण और गुरुजनोंका अनादर करनेसे, एवं पापकर्म करनेसे वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष कुपित होकर त्वचा, रुधिर, मांस और शरीरस्थ जलको दूषित करते हैं। इस प्रकार तीन दोष और चार त्वचादि दूष्य ये सात दूषित होनेपर सात और ग्यारह प्रकारके कुष्ठरोगको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

प्रकारकथन ।

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः ।
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिको मतः ॥ २ ॥

भाषा-सब कुष्ठ सामान्यतासे सात प्रकारके हैं जैसे कि भिन्न भिन्न तीन प्रकार, द्वंद्वज तीन प्रकार और सन्निपातज एक प्रकार ऐसे सामान्यतासे कुष्ठ सात प्रकारके हैं। किन्तु कुष्ठमात्र सन्निपातजही हैं तोभी जिसमें जो दोष अधिक हो उसीसे उसको समझना चाहिये अर्थात् जिस कुष्ठमें जिस दोषके लक्षण मिलते हों उसी दोषका उसको कुष्ठ समझना चाहिये ॥ २ ॥

कुष्ठके पूर्वरूप ।

अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णता । दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिः क्लमः ॥ व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः । रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेपि कोपनम् ॥ रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ ३ ॥

भाषा-जिस स्थानमें कुष्ठरोग होनेका होता है वह स्थान छूनेसे अत्यन्त

चिकना या अत्यन्त खरखरा मालूम होता है । वहां पसीना अधिक आवे अथवा बिलकुल नहीं आवे तथा उस जगहका रंग बदल जाय, दाह हो, खुजली हो, छूनेसे मालूम न हो, सुई चुभानेकीसी पीडा हो, ददोरे उठें, बिना श्रम किये श्रम मालूम हो, व्रणमें अधिक वेदना हो, व्रण शीघ्र उत्पन्न हो और वहुत दिन तक रहे, वे भरनेके समय रूखे हो जांय और अल्पकारणोंसे कुपित हो जांय, रोमांच हो आवें और रुधिर काला हो जाय यह कुष्ठरोगका पूर्वरूप है ॥ ३ ॥

सप्त महाकुष्ठोंके लक्षण ।

कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु ।
कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥ ४ ॥

भाषा—अब प्रथम महाकुष्ठमें कापालकुष्ठके लक्षण कहते हैं । कापालकुष्ठके व्रण काले, लाल, कापाल (खीपडा) की समान, रूखे, कठिन और पतली त्वचावाले, एवं नोचनेसरीखी पीडासहित हों, वेही विषम हैं अर्थात् दुःसाध्य हैं । उसको कापालकुष्ठ कहते हैं ॥ ४ ॥

औदुंबरकुष्ठके लक्षण ।

रुग्दाहरागकण्डूभिः परीतं लोमपिंजरम् ।
उदुंबरफलाभासं कुष्ठमौदुंबरं वदेत् ॥ ५ ॥

भाषा—जिसमें पीडा, दाह, लाली और खुजली होय तथा रोम पीले रंगके हों, जिसका आकार गूलरके फलकी समान हो उसको औदुम्बरकुष्ठ कहते हैं ॥ ५ ॥

मंडलकुष्ठके लक्षण ।

श्वेतरक्तं स्थिररत्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् ।
कृच्छ्रमन्येन संयुक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते ॥ ६ ॥

भाषा—जिसका रंग सफेद और लाल हो, जो कठिन, गोल, चिकना तथा जिसका आकार मंडलकी समान हो और जो एक दूसरेसे परस्पर मिला हो उसको मंडलकुष्ठ कहते हैं । यह कष्टसाध्य है ॥ ६ ॥

ऋक्षजिह्वकुष्ठके लक्षण ।

कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तःश्यावं सवेदनम् ।
यदृक्षजिह्वासंस्थानमृक्षजिह्वं तदुच्यते ॥ ७ ॥

भाषा—जो कुष्ठ कर्कश, जिसके किनारे लाल हों, बीचमें काला और लाल मिले हुए रंगका हो, पीडासहित और रीछके जीभकी समान आकारवाला हो उसको ऋक्षजिह्व कहते हैं ॥ ७ ॥

पुंडरीककुष्ठके लक्षण ।

सश्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् ।
सोत्सेधं च सरागं च पुण्डरीकं प्रचक्षते ॥ ८ ॥

भाषा-जो कुष्ठ सफेद कमलके पत्तेकी समान बीचमें लाल और किनारेपर सफेद हो, कुछ ऊंचाई सहित और बीचमें किंचित् लाल हो उसको पुण्डरीक कहते हैं ॥ ८ ॥

सिध्मकुष्ठके लक्षण ।

श्वेतं ताम्रं च तनु यद्रजो घृष्टं विमुंचति ।
प्रायेणोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ॥ ९ ॥

भाषा-जिसके मण्डल सफेद और लाल तथा पतले हों, खुजवानेसे भूसीसी उडे, तूम्बीके फूलकी समान और वह छातीमें होता है उसको सिध्मकुष्ठ कहते हैं ॥ ९ ॥

काकणकुष्ठके लक्षण ।

यत्काकणंति कावर्णं सपाकं तीव्रवेदनम् ।
त्रिदोषलिंगं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिद्ध्यति ॥ १० ॥

भाषा-जो कुष्ठ घूंघचीकी समान लाल और काले मुखवाला हो, पाक और तीव्र पीडायुक्त और तीनों दोषोंके लक्षणोंयुक्त हो उसको काकणकुष्ठ कहते हैं ॥ १०॥

ग्यारह क्षुद्रकुष्ठोंके लक्षण ।

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् ।
तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहलं हस्तिचर्मवत् ॥ ११ ॥

भाषा-जिसके कुष्ठमें पसीना न आवे, जिसके चकत्ते बडे २ हों, मछलीकी त्वचाकी समान हो और जिसका हाथीके चर्मकी समान मोटा और कर्कश हो उसको चर्मकुष्ठ कहते हैं ॥ ११ ॥

किटिभकुष्ठके लक्षण ।

श्यावं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम् ॥ १२ ॥

भाषा-जो कुष्ठ लाली लिये काला, जिसका स्पर्श व्रणकी चटकी समान खरखरा हो और जो रूखा हो उसको किटिभ कुष्ठ कहते हैं ॥ १२ ॥

वैपादिककुष्ठके लक्षण ।

वैपादिकं पाणिपादस्फोटनं तीव्रवेदनम् ॥ १३ ॥

भाषा-जिसमें हाथ और पावोंके तलवे फट जांय तथा अधिक पीडा हो उसको वैपादिक कुष्ठ कहते हैं ॥ १३ ॥

अलसकुष्ठके लक्षण ।

कण्डूमद्भिः सरागैश्च गंडैरलसकं चितम् ॥ १४ ॥

भाषा-जिसमें अत्यन्त खुजली चले, लालीयुक्त और छोटी फुंसी अधिक हों उसको अलसककुष्ठ कहते हैं ॥ १४ ॥

दद्रुमंडलकुष्ठके लक्षण ।

सकंडू रागपिटिकं दद्रूमण्डलमुद्गतम् ॥ १५ ॥

भाषा-जिसमें खुजली अधिक हो, लाल हो, फोडे हों, ऊंचे उठ जांय, मण्डलाकार गोल हो उसको दद्रुमण्डलकुष्ठ कहते हैं ॥ १५ ॥

चर्मदलकुष्ठके लक्षण ।

रक्तं सशूलं कण्डूमत्स्फोटं यद्दलयत्यपि ।
तच्चर्मदलमाख्यातमस्पर्शासहमुच्यते ॥ १६ ॥

भाषा-जिसका रंग लाल हो, जिसमें शूल, खुजली और फोडोंसे युक्त होकर चर्म फट जाय और किसी पदार्थकाभी स्पर्श न सहा जाय उसको चर्मदल कुष्ठ कहते हैं ॥ १६ ॥

पामाकुष्ठके लक्षण ।

सूक्ष्मा बह्व्यः पीडिकाः स्रावन्त्यः
पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहाः ॥ १७ ॥

भाषा-जिसमें छोटी २ बहुतसी, स्रावयुक्त, खुजलीसहित और दाहसंयुक्त फुंसी हों उसको पामाकुष्ठ कहते हैं ॥ १७ ॥

कच्छुकुष्ठके लक्षण ।

सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिजोश्च १८॥

भाषा-वही पामाकी फुंसी बडी बडी तीव्र दाहसहित, हाथोंमें विशेष करके कमरमें हो उसको कच्छू कहते हैं ॥ १८ ॥

विस्फोटककुष्ठके लक्षण ।

स्फोटाः श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ॥ १९ ॥

भाषा-जिसमें फोडे काले या लाल रंगके हों और जिनकी त्वचा पतली हो उसको विस्फोटक कुष्ठ कहते हैं ॥ १९ ॥

शतारुकुष्ठके लक्षण ।

रक्तं श्यावं सदाहार्त्ति शतारुः स्याद्बहुव्रणम् ॥ २० ॥

भाषा-जिसका रंग लाल और श्याव हो, दाह तथा शूल हो, जिसमें बहुतसे फोडे हों उसको शतारुकुष्ठ कहते हैं ॥ २० ॥

विचर्चिकाके लक्षण ।

सकण्डूः पिटिका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ॥ २१ ॥

भाषा-जिसमें खुजलीयुक्त, धूसर रंगकी और स्रावयुक्त फुंसी हों उसको विचर्चिका कहते हैं ॥ २१ ॥

वातजादिकुष्ठोंके लक्षण ।

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातात्कुष्ठं सवेदनम् । पित्तात्प्रकुपितं दाहरागस्रावान्वितं स्मृतम् ॥ कफात्क्लेदि घनं स्निग्धं सकण्डू-शैत्यगौरवम् । द्विलिंगं द्वन्द्वजं कुष्ठं त्रिलिंगं सान्निपातिकम् ॥२२॥

भाषा-वायुकी अधिकतासे कुष्ठ खरखरा, श्यावरंगका, लालरंगका, रूखा और पीडायुक्त होता है । पित्तकी अधिकतासे दाहयुक्त हो, लालरंगका और स्रवे है । कफकी अधिकतासे गीला रहे, घन, चिकना, खुजली और शीतलतायुक्त तथा भारी होता है । जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको द्वंद्वज और जिसमें तीन दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातज कुष्ठ कहते हैं ॥ २२

सप्तधातुगत कुष्ठोंके लक्षण ।

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमंगेषु कुष्ठे रौक्ष्यं च जायते ।
त्वक्पाको रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्त्तनम् ॥ २३ ॥

भाषा-रसगत कुष्ठमें रूप कुरूप हो जाय, शरीरमें रूखापन, त्वचा शुन्न हो जाय, रोमांचोंका होना और पसीना अधिक आवे ॥ २३ ॥

रक्तगत कुष्ठके लक्षण ।

कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रये ॥ २४ ॥

भाषा-रक्तगतकुष्ठमें खुजली और पीव अधिकतासे वहे ॥ २४ ॥

मांसगत कुष्ठके लक्षण ।

बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडिकोद्गमः ।
तोदः स्फोटस्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ २५ ॥

भाषा-मांसगत कुष्ठमें मुखका अधिक सूखना, शरीरमें कर्कशता, देहमें अधिक फुंसी हों, सुई चुभानेकेसी पीडा हो और फोडे हों और बहुत दिनोंतक रहे ॥२५॥

मेदोगत कुष्ठके लक्षण ।

कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां संभेदः क्षतसर्पणम् ।
मेदःस्थानगते लिंगं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ २६ ॥

भाषा-मेदगत कुष्ठमें हाथ टेढे हो जांय, चलनेमें असमर्थ हो जांय, हड्डफूटन हो, घावोंका फैल जाना और पूर्वोक्त रस रक्त मांसगत कुष्ठोंके लक्षण होते हैं॥२६॥

अस्थिमज्जागत कुष्ठके लक्षण ।

नासाभंगोऽक्षिरागश्च क्षतेषु कृमिसंभवः ।
स्वरोपघातश्च भवेदस्थिमज्जासमाश्रिते ॥ २७ ॥

भाषा-अस्थि और मज्जागत कुष्ठमें नाक बैठ जाय, आंखें लाल हो जांय, घावमें कृमि पड जांय और स्वरभंग हो जाता है ॥ २७ ॥

शुक्रार्तवगत कुष्ठके लक्षण ।

दंपत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः ।
यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ २८ ॥

भाषा-कुष्ठकी आधिकतासे जिन स्त्री और पुरुषोंका वीर्य आर्त्तव दूषित होवे, उस दूषित वीर्य्य और आर्त्तवसे जो सन्तान उत्पन्न होती है वहभी कुष्ठी होती है । रसादिधातुगत सब कुष्ठोंके लक्षण कहे हैं वे सब लक्षण इसके जानने ॥ २८ ॥

साध्यासाध्यविचारः ।

साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत् । मेदसि द्वंद्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् ॥ कृमिहृल्लासमन्दाग्निसंयुक्तं यत्त्रिदोषजम् । प्रभिन्नं प्रसृतांगं च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥ पंचकर्म्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥ २९ ॥

भाषा-रस, रक्त और मांसगत कुष्ठ साध्य है तथा कफाधिक्य और वाताधिक्य कुष्ठभी साध्य है, एवं मेदोगत और द्वंदजकुष्ठ याप्य है तथा मज्जा, अस्थि और शुक्रगत कुष्ठ असाध्य है तथा जिस कुष्ठमें कीडे पड जांय, वमन और मंदाग्नि आदि उपद्रव हों और जो त्रिदोषोत्पन्न है वह कुष्ठ असाध्य है । जो कुष्ठ फूटकर बहता है, जिस कुष्ठमें रोगीके नेत्र लाल हो गये हैं या स्वरभंग हो गया हो और जिसके वमन विरेचनादि कुछ गुण नहीं करते वह रोगी मर जाता है ॥ २९ ॥

प्रधानदोषके लक्षण ।

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुम्बरं कफात् । मंडलाख्यं विच-

र्वी च ऋक्षाख्यं वातपित्तजम् ॥ चर्म्मैककुष्ठं किटिभं सिध्मालसविपादिकाः । वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ताद्दद्रुशतारुषी ॥ पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा । सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वं त्रिकं दद्रुः सकाकणा ॥ पुण्डरीकर्क्षजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥ ३० ॥

भाषा–कापालकुष्ठ वातज, औदुम्बर पित्तज, मण्डल और विचर्चिका कफज । ऋक्षजिह्व वातपित्तज; चर्मकुष्ठ, किटिभ, सिध्म, अलसक और विपादिका वातकफज; दद्रु, शतारु, पुण्डरीक, विस्फोटक, पामा और चर्म्मदल कफपित्तप्रधान एवं काकणकुष्ठ त्रिदोषज होता है । पहिले कापाल, औदुम्बर, मण्डल ये तीन और दद्रु, काकण, पुण्डरीक और ऋक्षजिह्व ये चार ऐसे सर्व मिलाकर ये सात महाकुष्ठ हैं ॥ ३० ॥

किलासनिदान ।

कुष्ठैकसम्भवं श्वित्रं किलासं चारुणं भवेत् ।
निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ३१ ॥

भाषा–श्वित्र और किलासकुष्ठ इनके उत्पन्न होनेके कारण पूर्वोक्त कुष्ठोंके कारणकी समान जानने अर्थात् येभी उनही कारणोंसे उत्पन्न होते हैं, ये पकने और बहते नहीं हैं । इसमें पीडाभी नहीं होती तथा त्रिदोषिक और रक्त, मांस और मेदमें रहते हैं ॥ ३१ ॥

वातादि भेदसे उनके लक्षण ।

वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् । सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥ सकंडूरं क्रमाद्रक्तमांसमेदस्सु चादिशेत् । वर्णेनैवेदृगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३२ ॥

भाषा–वातसे रूखा और लाल होता है, पित्तसे लाल कमलपत्रकी समान, दाहयुक्त और रुवें गिर जाते हैं । कफसे सफेद, घन, भारी और खुजलीसंयुक्त होता है । इसी क्रमानुसार रक्त, मांस और मेदके आश्रय जानना अर्थात् वातज रक्तगत, पित्तज मांसगत और कफज मेदगत है । इसी प्रकार व्रणमेंभी जानना अर्थात् रूखा और लालरक्तगत, लालकमलकी समान लाल मांसगत और सफेद मेदगत जानना । ये उत्तरोत्तर कष्टसाध्य हैं अर्थात् रक्तगतसे मांसगत, मांसगतसे मेदगत कष्टसाध्य है ॥ ३२ ॥

श्वित्रसाध्यासाध्यलक्षण ।

अशुक्लरोमा बहलमसंश्लिष्टमथो नवम् ।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ३३ ॥

भाषा–जिस श्वित्रकुष्ठमें रोम सफेद न हुए हों तथा जो पतले होकर परस्पर न मिले, नवीन हो, अग्निके जलनेसे न उत्पन्न हुआ हो, वह श्वित्रकुष्ठ साध्य है और इससे विपरीत असाध्य है ॥ ३३ ॥

किलासके असाध्य लक्षण ।

गुह्यपाणितलोष्ठेषु जातमप्यचिरंतनम् ।
वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ३४ ॥

भाषा–किलासकुष्ठ गुदस्थान, हाथ पावोंके तलुवे और होठोंमें बहुत नवीन उत्पन्न हुआ होय तोभी अपने यशकी इच्छा करनेवाला वैद्य उसकी चिकित्सा न करे ॥ ३४ ॥

सांसर्गिकरोग ।

प्रसंगाद्गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात् । सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च । औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्भवेत् । नातो निंद्यतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ॥ ३५ ॥

भाषा–अब कुष्ठके संसर्गसे संसर्गी रोगोंको कहते हैं । परस्पर प्रसंग अर्थात् मैथुनादि या सदैव साथ रहना, शरीरसे शरीर आलिंगन करना, परस्पर श्वाससे श्वासका लगना, एक साथ भोजन करनेसे, एक शय्यापर सोनेसे, एक आसनपर बैठना तथा पहिना हुआ कपडा पहननेसे, धारण की हुई मालाको धारण करनेसे, लगाये चंदनादि अनुलेपनोंको लगानेसे इत्यादि संसर्गके कारणोंसे कुष्ठ, ज्वर, शोष और नेत्राभिष्यन्दादि रोग औपसर्गिक हैं । ये एकसे उडकर एकको लग जाते हैं । यह कुष्ठरोगी यदि मर जाय तो उसके अगले जन्ममें फिर यह दुष्टरोग, उत्पन्न होता है । इसी कारण इस कुष्ठकी समान अन्य निन्द्य रोग नहीं है ॥३५॥

इति कुष्ठरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ कुष्ठरोगचिकित्सा।

अथ लेपादिप्रकारः।

सैन्धवं च विडंगानि सोमराजी तु सर्षपाः। रजनी द्वे विषं चैव गोमूत्रेण च पाचयेत्॥ कुष्ठनाशश्च तल्लेपान्निम्बपत्रादना-त्तथा। रजनीकदलीक्षारलेपः सिध्मविनाशनः॥ पीतं वृश्चिकमूलं तु पर्युषितजलेन वै। सार्द्धं विनाशयेद्दाहज्वरेण परमेश्वर॥ एतत् सकांजिकं पीतं रक्तकुष्ठज्वरादिनुत्। वास्योदकेन संपीतं तद्वद्विषहरं भवेत्॥ नित्यं निम्बदलानां च चूर्णमामलकस्य च। प्रत्यूषे भक्षयेच्चैव तस्य कुष्ठं विनश्यति॥ हरीतकी विडंगं च हरिद्रा सितसर्षपाः। सोमराजस्य बीजानि करंजस्य च सैन्धवम्॥ गोमूत्रपिष्टान्येतानि कुष्ठरोगहराणि च। एकश्च त्रिफलाभागस्तथा भागद्वयं शिवम्॥ सोमराजस्य बीजानां जग्धं पथ्यं च दद्रुनुत्। हरिद्रा हरितालं च दूर्वा गोमूत्रसैन्धवम्॥ अयं लेपो हन्ति दद्रुपामानं वै गरं तथा। सोमराजस्य बीजानि नवनीतयुतानि च॥ मधुनास्वादितानि स्युः शुक्लकुष्ठहराणि वै। तक्रानुपानतो रुद्र नात्र कार्य्या विचारणा॥ श्वेतापराजितामूलं वर्त्तितं वास्य वारिणा। तल्लेपो रुद्र मासेन शुक्लकुष्ठविनाशनः॥ शुष्कगाम्भारिकामूलं पक्कक्षीरेण संयुतम्। भक्षितं शुक्लकुष्ठस्य विनाशकरमीश्वर॥ मूलकस्य च बीजानि अपामार्गरसेन वै। पिष्टानि तेन लेपेन सिह्मिकां नाशयेद् ध्रुवम्॥ कदलीक्षारसंयुक्ता हरिद्रा सिह्मिकापहा। रम्भापामार्गयोः क्षारमेकत्र तैलमिश्रितम्॥ तदभ्यङ्गान्महादेव सद्यः सिध्मविनाशनः। पाठामूलं रुद्र पीतं पिष्टं तण्डुलवारिणा॥ पापरोगहरं स्याच्च पानमस्य तथैव च।

वास्योदकं च समधु पीतमन्तर्गतस्य वै ॥ पापरोगस्य सन्तापनिवृत्तिं कुरुते शिव । निम्बकुष्ठं हरिद्रे द्वे शिग्रुसर्षपजस्तरुः ॥ देवदारु पटोलं च धान्यं तक्रेण घर्षितम् । देहं तैलाक्तपात्रं वै अनेनोद्वर्त्तयेत्ततः ॥ पामाः कुष्ठानि नश्येयुः कण्डूः पिटकसिक्थकौ ॥ ३६ ॥

भाषा–सैंधानोन, वायविडंग, बावची, सरसों, हलदी, दारुहलदी और विष इन सबोंको समानभाग ले गोमूत्रमें पकाकर पान करनेसे अथवा नीमके पत्तोंका भक्षण करनेसे कुष्ठरोग दूर होता है । हलदी और केलेकी भस्मको एकत्र मिलाकर प्रलेप करनेसे सिध्मकुष्ठ (छीप) नष्ट होता है । बिछवावासकी जडको वासी जलमें पीसकर पीनेसे दाहज्वर दूर होता है और इसीको कांजीमें पीसकर रक्तकुष्ठ और ज्वरादिरोग दूर होते हैं तथा इसीको बासी जलमें मिलाकर पान करनेसे विषदोष दूर होते हैं । प्रतिदिन प्रातःकाल नीमके पत्तोंका चूर्ण और आमलोंका चूर्ण मिलाकर भक्षण करनेसे कुष्ठरोग दूर होता है । हरड, वायविडंग, हलदी, सफेद सरसों, बावचीके बीज, करंजके बीज और सैंधानोन इन सबोंको गोमूत्रमें पीसकर प्रलेप करनेसे कुष्ठरोग दूर होते हैं । आमले, हरड और बहेडे ये सब एकभाग, बावचीके बीज २ भाग इन सबोंको एकत्र मिलाकर पान करनेसे दद्रुरोग दूर होता है । हलदी, हरिताल, दूध, गोमूत्र और सैंधानोन इन सबोंको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे दद्रु, पामा और विषदोष दूर होता है । बावचीके बीजोंको पीसकर नैनी घी और सहतमें मिलाकर तक्रके अनुपानके साथ सेवन करनेसे श्वेतकुष्ठ नष्ट होता है । सफेद अपराजिताकी जडको सफेद अपराजिताके रसमें प्रलेप करनेसे एक महिनेमें श्वित्रकुष्ठ आरोग्य हो जाता है । कुम्मेरकी जडको सुखाकर दूधमें पकाकर भक्षण करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होता है । मूलीके बीजोंको चिरचिटेके रसमें पीसकर प्रलेप करनेसे सिंहिकानामक कुष्ठ दूर होता है । केलेकी भस्म हलदीका चूर्ण मिलाकर प्रलेप करनेसे सिंहिकारोग दूर होता है । केले और चिरचिटेका क्षार एकत्र तेलमें मिलाकर मर्दन करनेसे तत्काल सिध्मरोग दूर होता है । पाठकी जडका चूर्ण चावलोंके जलमें मिलाकर पान करनेसे कुष्ठरोग दूर होता है । सहतको वासी जलमें मिलाकर पान करनेसे कुष्ठजन्य अन्तर्दाह दूर होता है । नीम, कूठ, हलदी, दारुहलदी, सहजना, सरसों, देवदारु, पटोलपात और धानियां इन सबोंको तक्रमें पीसकर प्रथम शरीरपर तेलको मलकर पश्चात् उस औषधिका लेप करे । इससे पामा, कण्डू, पिटक और सिक्थकादि कुष्ठरोग दूर होते हैं ॥ ३६ ॥

उदयभास्करः ।

गन्धकेन मृतं ताम्रं दशभागं समुद्धरेत् । ऊषणं पञ्चभागं स्यादमृतञ्च द्विभागिकम् ॥ दातव्यं कुष्ठिने सम्यगनुपानानुयोगतः । गलिते स्फुटिते चैव विपुले मण्डले तथा ॥ विचर्चिकादद्रुपामासर्वकुष्ठप्रशान्तये ॥ ३७ ॥

भाषा-गंधकके द्वारा मरा हुआ तांवा दश भाग, काली मिरच ५ भाग और शुद्ध मीठा विष दो भाग सबोंको एकत्र जलमें पीसकर गोलियां बना लेवे । इनको उत्तम पानोंके साथ देवे । इससे गलित, स्फुटित, विपुल, मण्डल, विचर्चिका, दद्रु, पामा आदि सर्वकुष्ठ दूर होते हैं ॥ ३७ ॥

तालकेश्वरः ।

कुष्माण्डत्रिफलातैलं कन्याकांजिकभावितम् । तालकं तुलागन्धं स्यादर्द्धपारदमर्दितम् ॥ अजाक्षीरेण निम्बूककन्यातोयैर्दिनत्रयम् । प्रत्येकं भावयेत् शुष्कं चक्रिकाकारतां गतम् ॥ विपचेत् हण्डिकामध्ये पलाशक्षारमध्यगम् । यामद्वादशशीतेऽस्मिन् प्रयोज्यं रक्तिकाद्वयम् ॥ हन्त्याष्टादश कुष्ठानि रोमविध्वंसनं तथा । द्विविधं वातरक्तं च नाडीदुष्टव्रणानि च ॥ ३८ ॥

भाषा-प्रथम दो मासे हरिताल लेकर पेठेके रसमें, त्रिफलेके काथमें, तेलमें, घीगुवारके रसमें और कांजीमें अलग अलग भावना देकर फिर इसकी समान गंधक और आधा भाग पारा लेकर दोनोंको एकत्र बकरीके दूधमें नीबूके रसमें और घीगुवारके रसमें तीन तीन दिन भावना देकर चक्रिकाकार सुखा लेवे, फिर उस चक्रिकाको ढालकी राखसे भरी हुई हांडीमें रखकर १२ प्रहरतक पकावे, पश्चात् शीतल होनेपर तोडकर चूर्ण कर ले,इसको दो रत्ती प्रमाण यथानुपानके साथ सेवन करनेसे अठारह प्रकारके कोढ, दो प्रकारके वातरक्त और दुष्ट नाडीव्रण दूर होता है ॥३८॥

द्वितीयप्रस्थतालकेश्वरः ।

दद्रुमवालाम्रिरसं दत्त्वा तालं सुचूर्णितम् । पुनः पुनश्च संमर्द्य शुष्कं कृत्वा पुटे दहेत् ॥ दृढस्थाल्यां धृतं क्षारं पलाशस्याप्युपर्यधः । ततो ज्वाला प्रदातव्या दिनरात्रे मृतं भवेत् ॥ शुक्लवर्णो यदा च स्याद्वह्नौ दत्ते मधूनकम् । तदा ज्ञातं मृतं तालं

सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ पथ्यं मसूरचणकं मुद्गसूपं यथेच्छया ॥३९॥

भाषा-हरितालका चूर्ण करके पमाड और सुगंधवालेकी जडके रसमें खरल करके पुटपाक करे, फिर एक दृढ हांडीमें इस औषधिको भरकर ऊपर और नीचे ढाककी भस्म रखकर दिन रात अग्निसे पकावे, जब सफेद हो जाय या अग्निमें डालनेसे धूंआ निकले तब उसका सर्व रोगोंमें प्रयोग करे। यह तालकेश्वररस सर्व कुष्ठनाशक है। इसपर मसूर, चने और मूंगकी दाल इच्छानुसार पथ्य देवे ॥३९॥

महातालकेश्वरः ।

संमर्द्य तालकं शुष्कं वंशपत्राख्यमुत्तकैः । कुष्माण्डनीरैः सम्भाव्य त्रिदिनं शोधयेत् पुनः ॥ घृतकन्याद्रवैर्भूयो भावयेच्च दिनत्रयम् । संमर्द्य काञ्जिकेनैव दध्नाम्लेन विमर्दयेत् ॥ संमर्द्य चूर्ण सलिले रसे पौनर्नवे पुनः । त्रिदिनं मर्दयित्वा तु कारयेद्वटिकाकृतिम् ॥ स्थाल्यां दृढतरायान्तु पलाशक्षारसञ्चयम् । उपर्य्यधस्तालकस्य क्षारं दत्त्वा शरावकैः ॥ विधाय लेपयेद्यत्नात् पूरयेत् क्षारसंचयम् । पुनरूर्ध्वं शरावेण लेपयेत्तद् दृढं ततः ॥ द्वात्रिंशद्यामपर्य्यन्तं वह्निज्वाला प्रदीयते । एवं सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत् ॥ द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं वालुकायन्त्रगं पचेत् । अयं तालेश्वरो नाम लोके परमदुर्लभः ॥ हन्त्यष्टादशकुष्ठानि वातशोणितनाशनः । रक्तमण्डलमत्युग्रं स्फुटितं गलितं तथा ॥ बहुरूपं सर्वजातं नाशयेदविकल्पतः । दुष्टव्रणं च वीसर्पं त्वग्दोषं च विनाशयेत् ॥ दृष्टो वारसहस्रं च रोगवारणकेशरी ॥ ४० ॥

भाषा-वंशपत्री हरितालको पेठेके रसमें तीन दिन भावना देवे, फिर तीन दिन घीगुवारके रसमें भावना देवे फिर कांजी, खट्टे दही और चिरचिटेके रसमें तीन दिन खरल करके गोली बना लेवे, फिर एक मजबूत हांडीमें ढाककी राख भरकर उसमें इन गोलियोंको रखकर ऊपरसे सिकोरा ढककर फिर ढाककी राखको रखकर सिकोरा ढककर मृत्तिकासे संधियोंको बंद कर देवे, पश्चात् इसको ३२ प्रहर पकावे। जब यह सिद्ध हो जाय तब इसकी समान शुद्ध गंधक और दोनोंकी बराबर जी-

र्ण तांबा मिलाकर वालुकायंत्रमें पकावे। स्वांगशीतल हो जाय तब चूर्ण कर ले। यह तालकेश्वररस संसारमें परमदुर्लभ है। यह अठारह प्रकारके कुष्ठ, वातरक्त, अत्यन्त उग्र स्फुटित और गलित रक्तमण्डल, सर्वदोषोत्पन्न, अनेक प्रकारके कुष्ठ, दुष्टव्रण, वीसर्प और त्वचादि रोगरूपी गजराजको सिंहकी समान यह औषध तत्काल नष्ट करे है। यह हजारोंवार अजमाया हुआ है॥ ४०॥

रसमाणिक्यम्।

तालकं वंशपत्राख्यं कुष्माण्डसलिले क्षिपेत्। सप्तधा वा त्रिधा वापि दध्नाम्लेन तथैव च॥ शोधयित्वा पुनः शुष्कं चूर्णयेत्तण्डुलाकृति। ततः शरावके यन्त्रे स्थापयेत कुशलो भिषक्॥ बदरीपल्लवोत्थेन लेपनं कारयेत्ततः। अरुणाभमधःपात्रं तावज्ज्वाला प्रदीयते॥ स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य माणिक्याभो भवेद्रसः। घृतक्षौद्रेण संमर्द्य खादयेद्रक्तिकाद्वयम्॥ संपूज्य देवदेवेशं कुष्ठरोगाद्विमुच्यते। स्फुटितं गलितं कुष्ठं वातरक्तं भगन्दरम्॥ नाडीव्रणं व्रणं दुष्टमुपदंशं विचर्चिकाम्। नासास्यसम्भवान् रोगान् क्षतान् हन्यात् सुदारुणान्॥ पुण्डरीकं च चर्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा॥ ४१॥

भाषा-वंशपत्री हरितालको पेठेके रसमें डालकर खट्टे दहीमें सात वार या तीन वार शुद्ध करे, फिर इसका चावलोंकी समान चूर्ण कर ले, पश्चात् इसको एक सिकोरेमें रख ऊपरसे दूसरा सिकोरा ढक वेरीके पत्तोंसे लेप कर देवे। जबतक यह लाल न हो जाय तबतक इसको पकावे, जब स्वांगशीतल होकर माणिककी समान देदीप्यमान हो जाय तब चूर्ण करके इसमेंसे दो रत्ती प्रमाण घी और सहतमें मिलाकर प्रथम आदिनाथका पूजन कर इसका भक्षण करे। इससे सर्व प्रकारके कुष्ठरोग दूर होते हैं। यह स्फुटित, गलितकुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, नाडीव्रण, दुष्टव्रण, उपदंश, विचर्चिका, नासागत रोग, दारुण क्षतरोग, पुण्डरीक, चर्माख्य कुष्ठ, विस्फोट और मण्डलकुष्ठ दूर होते हैं॥ ४१॥

मरिचाद्यं तैलम्।

मरिचं त्रिवृतं कुष्ठं हरितालं मनःशिला। देवदारु हरिद्रे द्वे कुष्ठं मांसी च चन्दनम्॥ विशालकरवीरं च अर्कक्षीरशकृद्रसम्।

एषां च कार्षिको भागो विषस्यार्द्धपलं भवेत् ॥ प्रस्थं च कटुतैलस्य गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् । पामा विचर्चिका चैव दद्रुविस्फोटकानि च ॥ अभ्यंगेनैव नश्यन्ति कोमलत्वक् च जायते । प्रभूतान्यपि श्वित्राणि तैलेनानेन भक्षयेत् ॥ चिरोत्थितमपि श्वित्रं विवर्णं तत्क्षणाद्भवेत् ॥ ४२ ॥

भाषा-काली मिरच, निसोत, कूठ, हरिताल, मैनाशिल, देवदारु, हलदी, दारुहलदी, कूठ, बालछड, चन्दन, इन्द्रायण, कनेर, आकका दूध और गोवरका रस प्रत्येक एक एक तोला, विष २ तोले, तिलका तेल ६४ तोले, कडवा तेल इन सबोंसे आठवां भाग गोमूत्रमें पकावे । यह मरिचाद्यतैल पामा, विचर्चिका, दद्रु, विस्फोटक और विशेषकरके श्वित्रकुष्ठको नष्ट करे है । इस तेलकी मालिस करनेसे शरीरकी त्वचा कोमल और सुन्दर हो जाती है ॥ ४२ ॥

अमृतभल्लातकम् ।

भल्लातकानां पवनोद्धतानां वृक्षच्युतानां च यदाढकं स्यात् । तच्चेष्टकाचूर्णकणैर्विघृष्य प्रक्षालयित्वा विसृजेत् प्रवाते ॥ शुष्कं पुनस्तद्विदलीकृतं च ततः पचेदप्सु चतुर्गुणासु । तत्पादशेषं परिपूतशीतं क्षीरेण तुल्येन पुनः पचेत्तु ॥ तदर्द्धया शर्करया विकीर्णं ततः खलेनोन्मथितं विधाय । तत् सप्तरात्रादुपजातवीर्य्यं सुधारसादप्यधिकत्वमेति ॥ प्रातर्विबुद्धः कृतदेवकार्यो मात्रां च खादेत् स्वशरीरयोग्याम् । न चान्नपाने परिहार्यमस्ति न चातपे चाध्वनि मैथुने च ॥ यथेष्टचेष्टो विहितोपयोगाद् भवेन्नरः काञ्चनराशिगौरः । अनन्यमेधा नरसिंहतेजा हृष्टेन्द्रियोऽव्याहतबुद्धिसत्वः ॥ दन्ताश्च शुक्लाः पुनरुद्भवन्ति नीलांजनानि प्रतिमा भवन्ति । त्वचो विवर्णाः पुनरेव दिव्या विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि ॥ कृम्यर्दितो भिन्नगलोपि कुष्ठी सोऽपि क्रमादङ्कुरिताग्रशाखः । तरुर्यथा भाति नवाम्बुसिक्तः उष्ट्रान् मयूरान् जयति स्वरेण ॥ बलेन नागस्तुरगो जवेन रसायनस्यास्य नरः प्रसादात् । बृहस्पतेरप्य-

घिकोऽपि बुद्ध्या ग्रन्थान् विशालान् पुनरुक्तिदोषान् ॥ गृह्णाति शीघ्रं नच नश्यते तु कुर्वन्निमं कल्पमनल्पबुद्धिः। जीवेन्नरो वर्षशतानि पञ्च राजा ह्ययं सर्वरसायनानाम् ॥ चकार योगं भगवानगस्त्यः ॥ ४३ ॥

भाषा-उत्तम रीतिसे पके हुए, अपने आप हवासे टूटकर गिरे हुए आठसेर भिलावोंको लेकर उनके डंठल तोड देवे। फिर उनको ईंटोंसे घिसकर पानीसे धोकर पवनमें सुखावे, पश्चात् उनके दो दो टुकडे करके चौगुने जलमें पकावे। जब चौथाई भाग जल शेष रहे तब उतार लेवे, शीतल होनेपर छान लेवे, फिर इसमें बराबरका दूध मिलाकर पकावे, पश्चात् भिलावोंसे आधा भाग चीनी मिलाकर करछीसे एकमें एक कर सात दिनतक रक्खा रहने देवे। सात दिनके बाद यह औषधि अमृतकी समान अधिक गुणवाली हो जाती है। प्रातःकाल अपने इष्टदेवका पूजन कर और शरीरका बलाबल विचारकर मात्राका निश्चय करके इसका भक्षण करे। इसपर अन्नपानका कुछ विचार नहीं है तथा आतप, मार्ग चलना और मैथुनकाभी कुछ परहेज नहीं है। जिस पदार्थकी इच्छा हो उसको भक्षण करे। इसका सेवन करनेसे शरीर कांचनकी समान कांतियुक्त होता है। अत्यन्त मेधा, बुद्धि और बल बढता है, नरसिंहकी समान तेजस्वी होता है, इन्द्रिय तृप्त होती हैं, तथा दंत सफेद रंगके होते हैं, शरीरकी त्वचा नीलवर्ण होती है तथा कीडोंके पडनेसे गले हुए कान, अंगुली, नाक और गलित कुष्ठ रोगी फिरसे नवयौवन और सुन्दरशरीर युक्त होता है, जिस प्रकार सूखा हुआ वृक्ष पानीके मिलनेसे फिरसे अंकुरयुक्त होकर हरामरा हो जाता है। स्वर ऊंट और मोरकी समान सबल और सुंदर हो जाता है। हाथीकी समान बलवान् और घोडेकी समान वेगवान् होता है। इस उत्तम रसायनके प्रभावसे मनुष्य बृहस्पतिकी समान बुद्धिमान् होता है तथा बडे बडे ग्रंथोंको कंठाग्र धारण करनेवाला होता है, यह उत्तम कल्प मुझ अल्पबुद्धिने निर्म्माण किया है। इसके प्रभावसे मनुष्य १०५ वर्षपर्य्यंत जीता है। यह राजरसायन श्रीभगवान् अगस्त्यजीने निर्माण किया है। इससे अवश्य कुष्ठरोग दूर होता है ॥ ४३ ॥

महाभल्लातकगुडः।

निम्बं गोपारुणाकट्वी त्रायन्ती त्रिफला घनम्। पर्पटी वल्गुजानन्ता वचा खदिरचन्दनम् ॥ पाठा शुण्ठी शठी भार्ङ्गी वासा भूनिम्बवत्सकम्। श्यामेन्द्रवारुणी मूर्वा विडंगेन्द्रविषा नलम् ॥

हस्तिकर्णामृताद्रेका पटोलं रजनीद्वयम्। कणारग्वधसप्ताह्व-कृष्णवेत्रोच्चटाफलम्॥ भूकन्दं तृणपर्णं च जिङ्गी पद्माटमूपली। विश्वक्सेना च कैटर्य्यं शरपुंखाथ कंचुकी॥ एषां द्विपलिकान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत्। अष्टभागावशेषन्तु कषायमवतारयेत्॥ भल्लातकसहस्राणि त्रीणि छित्वार्म्मणेऽम्भसि। चतुर्भागावशेषं तु कषायमवतारयेत्॥ तौ कषायौ समादाय वस्त्रपूतौ च कारयेत्। गुडस्य तु तुलां ताभ्यां कषायाभ्यां पचेद्भिषक्॥ भल्लातकसहस्राणां मज्जनं तत्र दापयेत्। त्रिकटुत्रिफलामुस्तसैन्धवानां पलं पलम्॥ दीपकस्य पलं चैव चातुर्जातं पलांशिकम्। संचूर्ण्य प्रक्षिपेदत्र कन्दकं च चतुःपलम्॥ स्निग्धभाण्डे विनिःक्षिप्य स्थापयेत् कुशलो भिषक्। महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्म्मितः॥ जगतस्तु हितार्थाय जयेच्छीघ्रं न संशयः। श्वित्रमौदुम्बरं दद्रुमृक्षजिह्वं सकाकणम्॥ पुण्डरीकं च चर्माख्यं विस्फोटं मण्डलं तथा। कण्डूं कपालकण्डूं च पामानं सविपादिकाम्॥ वातरक्तमुदावर्त्तं पाण्डुरोगं व्रणक्रुमीन्। अर्शांसि षट्प्रकाराणि कासं श्वासं भगन्दरम्॥ तदभ्यासेन पलितमामवातं सुदुस्तरम्। अनुपाने प्रयोक्तव्यं छिन्नाक्वाथं पयोथ वा॥ भोजने च सदा भोज्यमुष्णश्चान्नं विशेषतः॥ ४४॥

भाषा—नीमकी छाल, अनन्तमूल, अतीस, कुटकी, त्रायमाण, आमले, हरड, बहेडा, नागरमोथा, पित्तपापडा, बावची, कारिया, वासाऊ, बच, खैर, लाल चन्दन, पाठ, सोंठ, कचूर, भारंगी, अडूसेकी जड, चिरायता, कूडेकी छाल, निसोत, इन्द्रायण, मूर्वा, वायविडंग, इन्द्रजौ, विष, चीता, हस्तिकर्ण, पलास, गिलोय, अदरख, पटोलपात, हलदी, दारुहलदी, पीपल, अमलतास, सोया, काला वेत, घुंघची, गोरखमुण्डी, सुगंध तृण, मजीठ, पमाडके बीज, मुसली, फूलप्रियंगू, कडवा नीम, सरफोंका और शिरसका पेड ये प्रत्येक आठ आठ तोले लेकर ३२ सेर जलमें पकावे जब चार सेर जल बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे। पश्चात् १०००

भिलावोंको लेकर टुकडे करके ३२ सेर जलमें पकावे जब आठ सेर जल बाकी रहे तब उतार लेवे, पश्चात् कपडेमें छानकर दोनों काथोंको मिला लेवे, इसमें ऊपरोक्त भिलावोंकी गिरी और सवा छः सेर गुड मिलाकर पकावे। जब पकते पकते लेहकी समान हो जाय तब सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा और सैंधानोन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, अजवायनका चूर्ण ४ तोले और चातुर्जातका चूर्ण ४ तोले तथा जमीकन्दका चूर्ण ४ पल डाल देवे। सिद्ध हो जानेपर इसको एक उत्तम चिकने घीके बासनमें भरके रख देवे। यह महाभल्लातक श्रीगिरिजापतिने संसारके प्राणियोंके हितके लिये निर्माण किया है। इसका सेवन करनेसे श्वित्रकुष्ठ, औदुम्बरकुष्ठ, दद्रु, ऋक्षजिह्व, काकण, पुण्डरीक, चर्मकुष्ठ, विस्फोट, मण्डल, कण्डू, कपालकुष्ठ, पामा, विपादिका, वातरक्त, उदावर्त्त, पाण्डुरोग, व्रण, कृमीरोग, छः प्रकारकी बवासीर, खांसी, श्वास, भगन्दर और बहुत दिनों अभ्यासकर सेवन करनेसे पलितरोग और दुस्तर आमवातरोग दूर होता है। अनुपान गिलोयका क्वाथ अथवा दूध है तथा सदैव उष्णद्रव्य और उष्णआहार भोजन करे ॥ ४४ ॥

वमनविरेचनादिक्रिया।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं श्रेष्ठम् ॥ ४५ ॥

भाषा–वातप्रधान कुष्ठरोगमें घृतपान, कफप्रधान कुष्ठरोगमें वमन और पित्तप्रधान कुष्ठरोगमें रक्तमोक्षण और विरेचन हितकारी है ॥ ४५ ॥

धान्यशाकादिभक्षण।

पुराणि धान्यानि च जाङ्गलानि मांसानि मुद्गाश्च पटोलयुक्ताः।
यवादयश्चात्र हिताः पुराणा घृतानि शाकानि च तिक्तकानि ॥४६॥

भाषा–इस रोगमें पुराने शालिधानोंके चावल, जांगलजीवोंका मांस, मूंग, पटोलपात, पुराने जौ, गेहूं आदि और तिक्तशाक तथा घृतका पीना ये सब कुष्ठरोगमें विशेष हितकारी हैं ॥ ४६ ॥

लेपप्रकारः।

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरसर्षपैः कृमिघ्नैः। कृमिसिध्मदद्रुमण्डलकुष्ठानां विनाशनो लेपः ॥ शिरीषरसेन सुपिष्टं मूलकबीजं प्रलेपितं सिध्मम्। क्षारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ गन्धपाषाणचूर्णेन यवक्षारेण लेपितम्। सिध्मं नाशं

व्रजत्याशु कटुतैलयुतेन च ॥ चक्राह्वयं सुहीक्षीरभावितं मूत्र-संयुतम् । रविप्रतप्तं किंचित्तल्लेपनं किट्टिभापहम् ॥ आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेषयेत् । दद्रुकिट्टिभकुष्ठानि हन्ति सिध्मा-नमेव च ॥ एडगजातिलसर्षपकुष्ठं मागधिकालवणत्रयमस्तु । पूतिकृतं दिवसत्रयमेतद्धन्ति विचर्चिकदद्रुककुष्ठम् ॥ पिबति सकटु तैलं गन्धपाषाणचूर्णं रविकिरणसुतप्तं पामनो यः पलार्द्धम् । त्रिदिनतदनुसिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं भवति कनकदीप्तिः कामरूपी मनुष्यः ॥ सिन्दूरमरिचचूर्णं महिषीनवनीतसंयुतं बहुशः । लेपान्निहन्ति पामानं तैलं करवीरसिद्धम् ॥ विषवरुण-हरिद्राचित्रकागारधूममदनमरिचदूर्वाक्षीरमर्कैस्नुहीभ्याम् । द-हति पतति मात्रं कुष्ठजातीरशेषाः कुलिशमिव सरोपाच्छक्रह-स्ताविमुक्तम् ॥ नारिकेलोदके न्यस्तास्तण्डुलाः पूतितां गताः । लेपाद्विपादिकां हन्ति चिरकालानुबंधिनीम् ॥ ४७ ॥

भाषा—पमारके बीज, कूठ, सैंधानोन, सफेद सरसों और वायविडंग इन सबों-को समानभाग लेकर कांजीमें पीसकर प्रलेप करनेसे कृमि, सिध्म, दद्रु और म-ण्डलकुष्ठ नष्ट होता है । चिरचिटेके पत्तोंके रसमें मूलीके बीजोंको पीसकर प्रलेप करनेसे अथवा केलेकी भस्ममें हलदीका चूर्ण मिलाकर प्रलेप करनेसे सिध्मकुष्ठ नष्ट होता है । गंधक और जवाखार बराबर भाग लेकर कडवे तैलमें पीसकर प्रलेप करनेसे सिध्मकुष्ठ नष्ट होता है । पमारके बीजोंको थूहरके दूधमें भिगोकर गोमूत्रमें पीसकर किंचित् धूपमें तप्त करके प्रलेप करनेसे किट्टिम कुष्ठ दूर होता है । अमल-तासके पत्तोंको कांजीमें पीसकर प्रलेप करनेसे दद्रु, किट्टिमकुष्ठ और सिध्मकुष्ठ नष्ट होते हैं । चकवडके बीज, तिल, सफेद सरसों, कूठ, पीपल, सेंधानोन, कालानोन और विरिया संचरनोन इन सबोंको समान भाग लेकर दहीके पानीमें तीन दिन-तक भिगो देवे । जब दुर्गंध आने लगे तो लेप करे । इससे विचर्चिका, दद्रु और कुष्ठरोग दूर होता है । कडवे तैलमें थोडासा गंधकका चूर्ण डालकर धूपमें गरम करके पान और मर्दन करनेसे पामारोग दूर होता है । इसपर दूधयुक्त भोजन करे । इसको तीन दिनतक सेवन करनेसे मनुष्य कांचनकी समान दीप्तिवान् और कामदेवकी समान सुन्दर होता है । सिन्दूर और काली मिरचोंके चूर्णको भैंसके

नैनी घीमें मिलाकर प्रलेप करनेसे अथवा कनेरके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर लेप करनेसे पामारोग दूर होता है। विष, वरना, हलदी, चीता, घरका धूंआ, मैनफल, काली मिरच और दूध इन सबोंको समान भाग लेकर आक और थूहरके दूधमें पीसकर प्रलेप करनेसे सर्व प्रकारके कुष्ठरोग दूर होते हैं। कचे नारियलमें चावल भरके रख देवे, जब चावलोंमें दुर्गंध आने लगे तब उनको पीसकर प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंकी विपादिका दूर होती है ॥ ४७ ॥

उन्मत्ततैलम्।

उन्मत्तकस्य बीजेन मानकक्षारवारिणा। कटुतैलं विपक्तव्यं शीघ्रं हन्ति विपादिकाम् ॥ क्षारो सदुग्धे गलगण्डजे च गजस्य मूत्रेण बहुसुते च। द्रोणप्रमाणं दशभागयुक्तं दत्त्वा पचेद्बीजमवल्गुजस्य ॥ एतद् यदा चिक्कणतामुपैति तदा सुसिद्धां गुटिकां प्रकुर्यात्। श्वित्रं प्रलिम्पेदथ तेन घृष्टं तदा व्रजत्याशु सुवर्णभावम् ४८

भाषा-धतूरेके बीजोंका कल्क और मानकन्दके क्षारजलके द्वारा कडवा तेल पकाकर लेप करनेसे शीघ्रही विपादिका कुष्ठ दूर होता है। हाथीकी विष्ठाकी भस्म ३२ सेर लेकर हाथीके मूत्रमें २१ बार नितारकर छान लेवे। वह क्षारजल ६४ सेर लेवे फिर उसमें ६। सेर बावचीके बीज मिलाके पकावे, जब पकते पकते गाढा हो जाय तब उतारकर गोलियां बना लेवे। इन गोलियोंको घिसकर श्वित्रकुष्ठमें लगानेसे वह आराम हो जाता है ॥ ४८ ॥

श्वित्रपंचाननतैलम्।

एरण्डतुलसीबीजं वाकुची चक्रमर्दकम्। तिक्तकोषातकीबीजं कृष्णाङ्कोठस्य बीजकम् ॥ गोमूत्रदधिदुग्धैश्च पचेदप्याजमूत्रकैः। कल्कं दत्त्वा शिलाकाशी पथ्या कुष्ठं विडङ्गकम् ॥ कटुतैलं च तल्लेपादीन् यद्घृष्टा विलेपनैः। पंचाननमिदं तैलं श्वेतकुष्ठकुलापहम् ॥ ४९ ॥

भाषा-कडवा तेल चार सेर, क्वाथके लिये गोमूत्र, दहीका तोड, गायका दूध और बकरीका दूध प्रत्येक चार चार सेर; कल्कके लिये अंडके बीज, तुलसीके बीज, बावचीके बीज, पमारके बीज, कडवी तोरईके बीज, पीपल, अंकोलके बीज, मैनशिल, हीराकसीस, हरड, कूठ और वायविडंग ये सब एक सेर इन सबोंको एकत्र पकाकर श्वित्रस्थानमें लगानेसे आराम होता है ॥ ४९ ॥

आरग्वधाद्यं तैलम् ।

आरग्वधं धवं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ।
रजनीद्वयसंयुक्तं पचेत्तैलं विधानवित् ॥
एतेनाभ्यञ्जनादेव क्षिप्रं श्वित्रं विनश्यति ॥ ५० ॥

भाषा-तिलका तेल चार सेर, कल्कके लिये अमलतासके बीज, धौं, कूठ, हरिताल, मैनाशिल, हलदी ये सब एक सेर इन सबोंके पाकके लिये जल ६४ सेर इसको यथाविधिसे पकाकर मर्दन करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ५० ॥

करवीरतैलम् ।

श्वेतकरवीरमूलं विषांशकं साधितं गोमूत्रे ।
चर्म्मदलसिध्मपामाविस्फोटकृमिकिटिभजित्तैलम् ॥ ५१ ॥

भाषा-सफेद कनेरकी जड और विष इनके द्वारा गोमूत्रमें तेलको सिद्ध कर प्रलेप करनेसे चर्मदल, सिध्म, पामा, विस्फोट, कृमि और किटिभकुष्ठ नष्ट होता है॥५१॥

पंचनिम्ब ।

निम्बस्य पत्रं मूलानि सत्वक्पुष्पफलानि च । चूर्णितानि घृतक्षौद्रसंयुतानि दिने दिने॥ लिह्याद् पिबेद्वा मूत्रेण समयुक्तान्युदकेन वा । मदिरामलत्तोयेन पयसा वा यथाबलम् ॥ भुञ्जीत घृतयूषाद्यैः शाल्यन्नं पयसापि वा । सर्वकुष्ठं विसर्पार्शो नाडीदुष्टव्रणानपि ॥ कामलां च गदानन्यांस्तथा पित्तकफास्रजान् । संवत्सरप्रयोगेण सर्ववर्जोविवर्जितः ॥ जयत्येतं पंचनिम्बं रसायनमनुत्तमम् ॥ ५२ ॥

भाषा-नीमके पत्ते, मूल, छाल, पुष्प और फल समान भाग लेकर चूर्ण करके घी, सहत, गोमूत्र, जल, मदिरा, आमलोंका काथ अथवा दूधके साथ सेवन करनेसे एक वर्षका कोढ, बवासीर, विसर्प, नाडीव्रण, कामला, कफ, पित्त और रुधिरके विकारोंसे उत्पन्न हुए रोग तथा अन्यान्य कुष्ठादि रोग दूर होते हैं। इसपर घी, दूध और शालिचावलोंका भात पथ्य है । तथा मछली, खटाई और शाकादि इसपर त्याग देवे । यह पंचनिम्ब उत्तम रसायन है ॥ ५२ ॥

कृष्णसर्पतैलम् ।

मृतस्य कृष्णसर्पस्य शिरःपुच्छान्त्रवर्जितम् ।

अन्तर्धूमकृतं भस्म वाकुचीतैलमिश्रितम् ॥
एतेन मर्दनादेव गलत्कुष्ठं विनश्यति ॥ ५३ ॥

भाषा-मरे हुए काले सांपके शिर, पूंछ और आंतोंको छोडकर शेष अंगको अन्तर्धूमकी रीतिसे जला लेवे, फिर उस भस्मको वावचीके तेलमें मिलाकर मर्दन करनेसे गलित्कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ५३ ॥

कुष्ठराक्षसतैलम् ।

सूतकं गन्धकं कुष्ठं सप्तपर्णं च चित्रकम् । सिन्दूरं च रसोनं च हरितालमवल्गुजम् ॥ आरग्वधस्य बीजानि जीर्णताम्रं मनःशिला । प्रत्येकं कर्षमेतेषां कटुतैलं पलाष्टकम् ॥ साधयेत् सूर्य्यतापेन सर्वकुष्ठविनाशनम् । श्वित्रमौदुम्बरं कच्छूं मांसवृद्धिं भगन्दरम् ॥ विचर्चिकां च पामानं नाशयेदस्य म्रक्षणात् । कुष्ठराक्षसनामेदं सावर्ण्यकरणं परम् ॥ अश्विभ्यां निर्म्मितं ह्येतल्लोकानुग्रहहेतवे ॥ ५४ ॥

भाषा-शुद्ध पारे और गंधककी कजली २ तोले, कूठ, सतवन, चीता, सिन्दूर, लहसन, हरिताल, वावचीके बीज, अमलतासके बीज, जारित तांबा और मैनशिल प्रत्येक एक एक तोला और कडवा तेल ३२ तोले लेवे । सबोंको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे सूर्य्यतापके द्वारा तेलको सिद्ध करे । यह तेल सर्व प्रकारके कोढ, श्वित्रकुष्ठ, औदुम्बरकुष्ठ, कच्छू, मांसवृद्धि, भगन्दर, विचर्चिका और पामारोगको दूर करे है । यह कुष्ठराक्षसतेल व्रणको सुन्दर करे है । यह संसारकी रक्षाके लिये अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है ॥ ५४ ॥

कुष्ठकालानलतैलम् ।

सूतं गन्धं शिला तालं काञ्जिकैर्मर्दयेद्दिनम् । तल्लिप्तं वस्त्रवर्तिं तां तैलाक्तां ज्वालयेदधः ॥ स्थिते पात्रे पचेत्तैलं गृहीत्वा लेपयेत्ततः । कुष्ठस्थानं विशेषेण सर्वकुष्ठं हरत्यलम् ॥ इदं कालानलं तैलं वातकुष्ठे महौषधम् ॥ ५५ ॥

भाषा-पारा, गंधक, मैनशिल और हरिताल प्रत्येक एक एक तोला लेकर एक दिन कांजीमें सबोंको एकत्र खरल करे, फिर उस खरल किये द्रव्यको कपडेपर लेपकर उस कपडेकी वत्ती बना लेवे । उन बत्तियोंको तेलमें भिगोकर आगेके

योगसे जलावे और नीचे एक पात्र रख देवे। जो तेलकी बूंदें उस बत्तीसे जलकर गिरें उनको उस पात्रमें ग्रहण करे। इस तेलको विशेषकरके कुष्ठस्थानोंमें लगावे। इससे सर्व प्रकारके कुष्ठ और विशेष करके वातज कुष्ठ दूर होता है॥ ५५॥

विषतैलम्।

नक्तमालं हरिद्रे द्वे अर्कं तगरमेव च। करवीरवचाकुष्ठमास्फोटरक्तचन्दनम्॥ मालती सिन्धुवारं च मंजिष्ठा सप्तपर्णकम्। एषामर्द्धपलान् भागान् विषस्य द्विपलं तथा॥ चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत्। श्वित्रविस्फोटकिटिभकटिलताविचर्चिकाः॥ कण्डूकच्छूरिकायाश्च ये व्रणा विषदूषिताः। ते सर्वे नाशमायान्ति तमः सूर्योदये यथा॥ विषतैलमिदं नाम्ना सर्वव्रणविशोधनम्॥ ५६॥

भाषा-बडी करंजके बीज, हलदी, दारुहलदी, आक, तगर, कनेर, वच, कूठ, अपराजिता, लाल चन्दन, मालती, संभालू, मजीठ और सतोना प्रत्येक दो दो तोले, विष दो पल, तिलका तेल ६४ तोले, इन सबोंको एकत्र चौगुने गोमूत्रमें पकाकर तेलको सिद्ध करे। यह तेल श्वित्रकुष्ठ, विस्फोट, किटिभकुष्ठ, विचर्चिका, कण्डू, कच्छूरिका, विषदूषित व्रण और सर्व प्रकारके कुष्ठरोग दूर होते हैं। जिस प्रकारसे सूर्यउदयसे अंधकार दूर होता है। यह विषतैल सर्व प्रकारके व्रणोंको शुद्ध करे है॥ ५६॥

सोमराजीतैलम्।

सोमराजी हरिद्रे द्वे सर्षपाः कुष्ठमेव च। करञ्जैडगजाबीजं पत्राण्यारग्वधस्य च॥ विपचेत् सार्षपं तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम्। अनेनाशु प्रशाम्यन्ति कुष्ठान्यष्टदशैव तु॥ नीलिका पीडका व्यङ्गा गम्भीरं वातशोणितम्। कण्डूकच्छूप्रशमनं दद्रुपामानिवारणम्॥ ५७॥

भाषा-बावची, हलदी, दारुहलदी, सरसों, कूठ, करंजके बीज, पमाडके बीज, अमलतासके पत्ते इन सबोंको कल्कके द्वारा सरसोंके तेलको पकाकर प्रलेप करनेसे नाडीव्रण, दुष्टव्रण, अठारह प्रकारके कोढ, नीलिका, पीडिका, व्यंग, अत्यन्त गम्भीर वातरक्त, कण्डू, दद्रु, कच्छू और पामारोग दूर होता है॥ ५७॥

अपरञ्च मरिचाद्यं तैलम्।

मरिचालशिलाब्दार्कपयोऽश्वरिजटात्रिवृत्। शकृद्रसविशाला-रुङ्निशायुग्दारुचन्दनैः॥ कटुतैलात् पचेत् प्रस्थं द्व्यक्षैर्विष-पलान्वितैः। सगोमूत्रस्तदभ्यंगाद् दद्रुश्वित्रविनाशनम्॥ सर्वे-ष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत् प्रशस्यते॥ ९८॥

भाषा–काली मिरच, हरिताल, मैनशिल, नागरमोथा, आकका दूध, कनेरकी जड, निसोत, गोबरका रस, इन्द्रायनकी जड, कूठ, हलदी, दारुहलदी, देवदारु, चन्दन प्रत्येक दो दो तोले और विष चार तोले, कडवा तेल १६ पल इन सबोंको चौगुने गोमूत्रमें डालकर पकावे। इस तेलको मर्दन करनेसे दाद और श्वित्रादि सम्पूर्ण कुष्ठ नष्ट होते हैं॥ ९८॥

कन्दर्पसारं तैलम्।

सप्तपर्णस्तथा काली गुडूची पिचुमर्दकम्। शिरीषं च महाति-क्ता जया तुम्बी मृगादनी॥ निशादलं पलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत्। तैलप्रस्थं समादाय गोमूत्रं च चतुर्गुणम्॥ आर-ग्वधो भृंगराजो जयाधुस्तुरत्रयः। इन्द्राशनाग्निखर्ज्जूरं गोमया-र्कस्नुहीच्छदम्॥ तैलतुल्यं प्रदातव्यं स्वरसं च पृथक् पृथक्। महाकालत्वचा ब्राह्मी तुम्ब्यग्निगृहपुत्रिका॥ कुचेला कुलका रा-त्रिर्मिषनामा च ग्रन्थिका। शम्याकमर्कक्षीरं च कासन्देश्वरमूल-कम्॥ आखुजिह्वीमहातिक्ताविशालच्छविपत्रकम्। पूतिका स्फोतमूर्वा च सप्तपर्णशिरीषकम्॥ कुटजं पिचुमर्दश्च महानि-म्बं तथैव च। गुडूची चन्द्ररेखा च सोमराट् चक्रमर्दकम्॥ तुम्बुरुर्भृंगयष्ट्याह्वकन्दकं कटुरोहिणी।शठी दार्वी त्रिवृत् पद्मग्र-न्थिकागुरुपुष्करम्॥ कर्पूरं कट्फलं मांसी मूर्वैलाटरूपाभयम्। एतेषां कार्षिकैः कल्कैर्नाम्ना कन्दर्प उच्यते॥ अष्टादशविधं कुष्ठं ग्रन्थिमज्जागतं तथा। हस्तपादाङ्गुलीसन्धिगलितं सर्वस-न्धिषु॥ अधिकानि च मांसानि यस्य गात्रे भविष्यति। नासाकर्णास्यवैकल्यं नेकाकारवपुस्त्वचः॥ श्वेतं रक्तं तथा

कुष्ठं नानावर्णं विपादिकाम् । पानादिस्फोटकानीलीकृमिवृद्धिं तथैव च ॥ कीटदद्रुमसूरी च किटिभं रक्तमण्डलम् । कुष्ठमौदुम्बरं पद्मं महापद्मं तथैव च ॥ गलगण्डार्बुदं हन्याद् गण्डमालां भगन्दरम् । वातजं पित्तजं चैव श्लेष्मजं सान्निपातिकम् ॥ एकोल्वणं द्व्युल्वणं च कुष्ठं हन्यान्न संशयः ॥ ५९ ॥

भाषा-सरसोंका तेल ४ सेर, काथके लिये सताना, नीलका वृक्ष, गिलोय, नीमकी छाल, सिरसकी छाल, कडवे परवल, जयंतीके पत्र, कडवी तूम्बी, गंगेरन और हलदी प्रत्येक दश दश पल, पाकके लिये जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, गोमूत्र १६ सेर, अमलतासके पत्तोंका रस, भांगरेका रस, जयंतीका रस, धतूरेके पत्तोंका रस, हलदीका रस, भांगके पत्तोंका रस, चीतेका रस, खजूरके पत्तोंका रस, गोबरका रस, आकके पत्तोंका रस और थूहरके पत्तोंका स्वरस प्रत्येक चार चार सेर, कल्कके लिके महाकाललता, वच, ब्राह्मी, कडवी तूम्बी, चीतेकी जड, घीगुवार, कुचिला, पटोलपात, हलदी, नागरमोथा, पीपरामूल, अमलतासकी मज्जा, आकका दूध, कसौंदी, कलिहारीकी जड, आककी जड, मजीठ, वंदाल, इन्द्रायनकी जड, विछुवाके पत्ते, करंजकी जड, कोयल, मूर्वाकी जड, सतौनेकी जड, शिरसकी छाल, कूडेकी छाल, नीमकी छाल, वकायन, गिलोय, बावचीके बीज, सोमराजीके बीज, पमाडके वीज, धनिया, मांगरा, मुलहठी, वनजमीकंद, कुटकी, कचूर, दारुहलदी, निसोतकी जड, पद्माख, गठिवन, अगर, कूठ, कपूर, कायफल, बालछड, इलायची, अडूसेकी छाल और खस प्रत्येक दो दो तोले; परन्तु सोमराजीके बीज दो भाग लेवे । इन सब द्रव्योंके द्वारा यथाविधिसे तेलको पकावे । इसको कन्दर्पतैल कहते हैं । यह तैल अठारह प्रकारके कोढ, ग्रंथि और मज्जागत कुष्ठ, हाथ पावकी अंगुली और संधियोंका गल जाना, शरीरके किसी अंगमें मांस अधिक बढ जाना, नासा और कानोंकी विकलता, मेंडककी समान त्वचाका हो जाना, श्वेतकुष्ठ, रक्तकुष्ठ, अनेक रंगके कुष्ठ, विपादिका, पानादिरोग, स्फोटकरोग, नीली, कृमिवृद्धि, कीट, दद्रु, मसूरिका, किटिभ, रक्तमण्डल, औदुम्बरकुष्ठ, पद्म, महापद्मकुष्ठ, गलगण्ड, अर्बुद, गंडमाला, भगन्दर, वातज कुष्ठ, पित्तज कुष्ठ, कफज कुष्ठ, सान्निपातिक कुष्ठ, एकोल्वणकुष्ठ, द्व्युल्वणकुष्ठ और सर्व प्रकारके कुष्ठोंको दूर करे है ॥ ५९ ॥

पंचतिक्तघृतम् ।

निम्बं पटोलं व्याघ्रीं च गुडूचीं वासकं तथा । कुर्याद्दशपलान् भागान् एकैकस्य सुकुट्टितान् ॥ जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्

पादावशेषितम्। घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम्॥ पंच-
तिक्तमिदं ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम्। अशीतिं वातजान्
रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान्॥ विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव पानादे-
वापकर्षति। दुष्टव्रणकृमीनर्शःपंचकासांश्च नाशयेत्॥ ६०॥

भाषा-घी २ सेर, क्वाथके लिये नीमकी छाल, पटोलपात, कटेरी, गिलोय और अडूसेकी छाल प्रत्येक दश दश पल; पाकके लिये जल ३२ सेर, शेष ८ सेर; कल्कके लिये त्रिफला आधा सेर सबोंको मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे। यह पंचतिक्तघृत कुष्ठरोग, अस्सी प्रकारके वातरोग, चालीस प्रकारके पित्तरोग, बीस प्रकारके कफरोग, दुष्टव्रण, कृमि और बवासीर ये सब पान करनेसे नष्ट हो जाते हैं॥ ६०॥

अमृतांकुरलोहम्।

हुताशमुखसंशुद्धं पलमेकं रसस्य वै। पलं लोहस्य ताम्रस्य
पलं भल्लातकस्य च॥ गन्धकस्य पलं चैकमभ्रकस्य च गुग्गु-
लोः। हरीतकी बिभीतक्योश्चूर्णं कर्षद्वयं द्वयोः॥ अष्टमाषा-
धिकं तत्र धात्र्याः पाणितलानि षट्। घृतं द्व्यष्टगुणं लोहाद्
द्वात्रिंशत्रिफलाजलम्॥ एवं कृत्वा पचेत् पात्रे लोहे च विधि-
पूर्वकम्। पाकमेतस्य जानीयात् कुशलो लोहपाकवित्॥
विबुद्धः प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः। रक्तिकादिक्रमेणैव
घृतभ्रामरमर्दितम्॥ लोहे लोहस्य दण्डेन कुर्यादेतद्रसायनम्।
अनुपानं च कुर्वीत नारिकेलोदकं पयः॥ सर्वकुष्ठहरं श्रेष्ठं
वलीपलितनाशनम्। पाण्डुं मेहामवातघ्नं वातरक्तं रुजापहम्॥
कृमिशोथाश्मरीशूलदुर्नामवातरोगनुत्। क्षयं हन्ति महाश्वा-
समत्यर्थं शुक्रवर्द्धनम्॥ विवर्ज्य शाकाम्लमपि स्त्रियं च सेव्यो
रसो जाङ्गलजाविकानाम्। शाल्योदनं षष्टिकमाज्यमुद्गक्षौद्रं
गुडक्षीरमिह क्रियायाम्॥ शालिंचगुर्वादिबृहत्करञ्जशिलाज-
तुक्षौद्रयुतं पयश्च। सर्पिर्युतान् भक्षयतो विहङ्गान् प्रपूर्यते
दुर्बलदेहधातुः॥ कृष्णस्य पक्षस्य सिते तु पक्षे त्रिपंचरात्रेण
यथा शशाङ्कः॥ ६१॥

भाषा-अग्निसे शुद्ध किया हुआ पारा १ पल, लोहा १ पल, तांबा १ पल, भिलावे १ पल, गंधक १ पल, अभ्रक १ पल, गूगल १ पल, हरड और बहेडा प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, आमले १२ तोले आठ मासे, घी ८ पल और त्रिफलेका काथ ३२ पल लेवे। यथाविधिसे तांबेके पात्रमें अथवा लोहेके पात्रमें पाककी जाननेवाला वैद्य लोहपाकके समान पकावे । बुद्धिमान् मनुष्य प्रातःकाल उठकर गुरु, देव और ब्राह्मणोंका पूजन करके लोहेके बासनमें करके लोहेके दण्डेसे इस उत्तम रसायनको मर्दन करे। इसको एक रत्तीके क्रमसे बढाकर खावे। अनुपान नारियलका जल। यह सर्व प्रकारके कुष्ठोंको नष्ट करे है। वलीपलितनाशक तथा पाण्डुरोग, प्रमेह, आमवात, वातरक्त, कृमि, सूजन, पथरी, शूल, बवासीर, वातकोप, क्षय और महाश्वास रोगको दूर करे है। शुक्रवर्द्धक, अग्निप्रदीपक, हृदयको हितकारी, कान्ति, आयु और बलको बढावे है। इसपर शाक, खटाई और स्त्रीप्रसंग त्याग देवे । जांगल और लावकादि पक्षियोंका मांस, शालिधानोंका भात, साठीधान, घी, मूंग, सहत और दूध सेवन करना हितकारी है और स्वभावके माफिक भारी पदार्थ, बृहत्करंज, शिलाजीत, दूधयुक्त सहत, दूधसहित घी सेवन करे। इससे दुर्बल और धातुक्षीणवाले मनुष्य धातुपूर्ण हो जाते हैं । जिस प्रकार कृष्णपक्षमें तीन दिनतक और शुक्लपक्षमें पांच दिनतक चन्द्रमा पूर्ण रहता है इसी प्रकार इसको सेवन करनेवाला मनुष्य पूर्णवीर्य होता है ॥ ६१ ॥

इति कुष्ठरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ शीतपित्तोदर्दकोठरोगनिदानम् ।

शीतपित्तनिदान संप्राप्ति ।

शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ ।
पित्तेन सह संभूय बहिरंतर्विसर्पतः ॥ १ ॥

भाषा-शीतल पवनके स्पर्शसे और कफ और वात दुष्ट होकर पित्तके साथ मिलकर बाहर त्वचामें और भीतर रक्तादिमें विचरण करते हैं ॥ १ ॥

पूर्वरूप ।

पिपासारुचिहृल्लासमोहसादांगगौरवम् ।
रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

भाषा-तृषा, अरुचि, उबकाई, मोह, बेहोशी, शरीरका शिथिल हो जाना तथा भारी होना, नेत्रोंमें लालीका होना यह शीतपित्तका पूर्वलक्षण है ॥ २ ॥

उदर्दके लक्षण ।

वरटीदष्टसंस्थानः शोथः संजायते बहिः । सकण्डूस्तोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥ उदर्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे । वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥ सोत्संगैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डलैः । शैशिरः कफजो व्याधिरुदर्दः परिकीर्त्तितः ॥ ३ ॥

भाषा-वरटी अर्थात् ततैयाके काटनेकी समान शरीरकी त्वचामें चकत्ते पड जांय, उनमें खुजली हो, सुई चुभानेकेसी पीडा अधिक हो, वमन, ज्वर और दाह हो, इसको संस्कृतमें उदर्द कोई वैद्य शीतपित्त और हिन्दीभाषामें पित्ती कहते हैं। शीतपित्तमें वाताधिक और उदर्दमें कफाधिक होता है । शीतसे कफ कुपित होकर शरीरके ऊपर लाल लाल चकत्तोंको उत्पन्न करे। उनमें अधिक खुजली हो तथा वे चकत्ते मण्डलाकार हों और बीचमें गहरे तथा किनारेपर ऊंचे होते हैं उसको उदर्दरोग कहते हैं ॥ ३ ॥

कोठके लक्षण ।

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ।
मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ॥
उत्कोठः सानुबंधश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ४ ॥

भाषा-अच्छे प्रकारसे वमनके न होनेसे अथवा वमनके वेगको रोकनेसे अर्थात् वमनके वेगके आनेसे निकलनेको हुए पित्त और कफ तथा अन्न उनको रोकनेसे लाल लाल बहुतसे खुजलीयुक्त चकत्ते उठें उसको कोठ कहते हैं । यही कोठरोग यदि क्षण क्षणभरमें हो होकर नष्ट हो जाय तो उत्कोठ कहा जाता है ॥ ४ ॥

इति शीतपित्तोदर्दकोठरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ शीतपित्तोदर्दकोठरोगचिकित्सा ।

वमनविरेचनरक्तमोक्षणप्रकारः ।

अभ्यङ्गः कटुतैलेन सेकश्चोष्णाम्बुभिस्ततः । उदर्दे वमनं कार्यं पटोलारिष्टवारिणा ॥ अग्निमन्थभवं मूलं पिष्टं पीतं च सर्पिषा । शीतपित्तोदर्दकोठान् सप्ताहादेव नाशयेत् ॥ निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रीविमिश्राण्यथ वोपयुञ्ज्यात् । विस्फोटकोठक्षतशीतपित्तं कफाम्लपित्तं वमनं च हन्यात् ॥ गाम्भारिकाफलं पक्वं शुष्कमुत्स्वेदितं पुनः । क्षीरेण शीतपित्तघ्नं खादितं पथ्यसेविना ॥ सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत् पथ्यान्नभुङ् नरः । तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः ॥ कुष्ठोक्तं च क्रमं कुर्यादम्लपित्तघ्नमेव च । सर्पिः पीतं महातिक्तं कार्यं रक्तस्य मोक्षणम् ॥ कर्षं गव्यघृतस्यापि कर्षार्द्धं मरिचस्य च । एकीकृत्य पिबेत् प्रातः शीतपित्तविनाशनम् ॥ ९ ॥

भाषा-उदर्दरोगमें कटुतैलके द्वारा अभ्यंग (मालिस), उष्ण जलके द्वारा स्वेद (पसीनेको निकालना) और पटोलपत्र तथा नीमके पत्तोंके क्वाथके द्वारा वमन करावे। अरणीकी जडको पीसकर घीके साथ मिलाकर पान करनेसे शीतपित्त, उदर्द और कोठरोग सात दिनमें आराम होता है । नीमके पत्तोंके चूर्णमें घी और आमलोंका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे विस्फोट, कोठ, क्षत, शीतपित्त, कण्डू, अम्लपित्त और वमनरोग दूर होता है । कुम्भेरके पके हुए फलको सुखाकर स्वेद देनेसे अथवा दूधमें पीसकर भक्षण करनेसे शीतपित्तरोग दूर होता है । इसका सेवन करके पथ्यसे रहे । सुपथ्यसे रहनेवाला मनुष्य गुडमें अजवायन मिलाकर यदि सात दिनतक भक्षण करे तो निश्चय सर्व शरीरमें व्याप्त हुआ उदर्दरोग दूर होवे । इस रोगमें कुष्ठरोगोक्त और अम्लपित्तनाशक संपूर्ण औषधि सेवन करनी चाहिये तथा महातिक्तघृतको पीना चाहिये और रक्तमोक्षण करना योग्य है । ६ मासे काली मिरचोंके चूर्णको एक तोले गायके घीमें मिलाकर प्रातःकाल पान करनेसे शीतपित्त रोग दूर होता है ॥ ९ ॥

हरिद्राखण्ड ।

हरिद्रायाः पलान्यष्टौ षट्पलं हविषस्तथा । क्षीराढकेन संयुक्तं खण्डस्यार्द्धं पलं तथा ॥ पचेन्मृद्वग्निना वैद्यो भाजने मृण्मये दृढे । त्रिकटु त्रिजातकं च कृमिघ्नं त्रिवृता तथा ॥ त्रिफला केशरं मुस्तं लोहं प्रतिपलं पलम् । संचूर्ण्य प्रक्षिपेत्तत्र कर्षमेकं तु भक्षयेत् ॥ कण्डूविस्फोटदद्रूणां नाशनं परमौषधम् । प्रतप्तकांचनाभासो देहो भवति नान्यथा ॥ शीतपित्तोदर्दकोठान् सप्ताहादेव नाशयेत् । हरिद्रानामतः खण्डः कण्डूनां परमौषधम् ॥६॥

भाषा—हलदी ८ पल, घी ६ पल, गायका दूध ८ सेर और चीनी ६ तोले इन सबोंको एकत्र मिलाकर उत्तम दृढ मट्टीके वासनमें मंद मंद अग्निसे पकावे फिर सोंठ, मिरच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, वायविडंग, निसोत, हरड, बहेडा, आमला, नागकेशर, नागरमोथा और लोहा प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल मिला देवे । इसको प्रतिदिन एक तोला प्रमाण भक्षण करे । इसको सेवन करनेसे कण्डू, दद्रु और विस्फोटकरोग दूर होता है तथा कांचनके समान सुंदर शरीर होता है । यह औषधि सात दिनमें शीतपित्त और उदर्दरोग तथा कोठरोगको शीघ्र नष्ट कर देती है । यह हरिद्राखंड खुजलीरोगकी परम औषधि है ॥ ६ ॥

इति शीतपित्तोदर्दकोठरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथाम्लपित्तरोगनिदानम् ।

निदानपूर्वक अम्लपित्तका स्वरूप ।

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् ।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

भाषा—स्वकारणोंसे कुपित हुआ पित्त वर्षाऋतुमें संचित होता है वही पित्त विरुद्ध और दुष्ट, खट्टे, दाहकारक और पित्तको बढानेवाले अन्नपानका सेवन करनेसे बिगड जाता है उसको अम्लपित्त कहते हैं ॥ १ ॥

अम्लपित्तके लक्षण ।

अविपाकक्लमोत्क्लेदतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः ।

हृत्कण्ठदाहरुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ २ ॥

भाषा-अन्नका न पचना, व्याकुलता, क्लेद हो, कडवी और खट्टी डकार आवे, शरीरमें भारीपन, हृदय और कंठमें जलन हो और अरुचि हो जिसमें ये सब लक्षण हों उसको अम्लपित्त कहते हैं ॥ २ ॥

प्रथम अधोगतके लक्षण ।

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् ।
हृल्लासकोठानलसादकर्णस्वेदांगपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ३ ॥

भाषा-ऊर्ध्वगत और अधोगत इन भेदोंसे अम्लपित्त रोग दो प्रकारका है । तहां प्रथम अधोगतके लक्षण कहते हैं । अधोगत अम्लपित्तमें तृषा, दाह, मूर्छा, भ्रम, मोह, उबकाई, मंदाग्नि, कोठ, कानोंमें पसीनेका आना और शरीरमें पीलापन ये सब लक्षण होते हैं और गुदाके मार्ग अनेक रंगके पित्त गिरते हैं ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वगत अम्लपित्तके लक्षण ।

वान्तं हरित्पीतकनीलकृष्णमारक्तरक्तं भवतीव चाम्लम् ।
मांसोदकाभं त्वतिपिच्छिलाच्छश्लेष्मानुयातं विविधं रसेन ॥
भुक्ते विदग्धे त्वथवाप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित् ।
उद्गारमेवंविधमेव कण्ठे हृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजं च ॥ ४ ॥

भाषा-ऊर्ध्वगत अम्लपित्तमें हरे, पीले, नीले, काले, किंचित् लाल, अत्यंत पिच्छिल, निर्मल, अत्यंत खट्टे, मांसके धोवनकी समान, अत्यंत पिच्छिल, निर्मल, कफयुक्त, खट्टे, मीठे, खारी, कषैले इत्यादि अनेक रसयुक्त वमनके द्वारा पित्त गिरते हैं । कभी भोजन किये हुए पदार्थ विदग्ध होते हैं । या भोजन करनेसे प्रथम कडवी और खट्टी वमन होती है और ऐसीही डकार आती है तथा कंठ, हृदय और कोखमें दाह और मस्तकमें पीडा होती है ॥ ४ ॥

कफपित्तजन्य अम्लपित्तके लक्षण ।

करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम् ।
जनयति कण्डूमण्डलपिडिकाशतनिचितगात्ररोगचयम् ॥ ५ ॥

भाषा-हाथ और पांवोंमें जलन, शरीरमें उष्णता, अन्नमें अरुचि, ज्वर, कण्डू, मण्डल, सैंकडों फुंसियोंका होना ये लक्षण कफपित्तसे अम्लपित्तरोगमें होते हैं॥५॥

साध्यासाध्यप्रकार ।

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः । चिरोत्थितो

भवेद्याप्यः कृच्छ्रसाध्यः स कस्यचित् ॥ सानिलं सानिलकफं
सकफं तच्च लक्षयेत् । दोषलिंगेन मतिमान् भिषङ्मोहकरं हितम् ६

भाषा-नवीन अम्लपित्त यत्न करनेसे साध्य और बहुत कालका याप्य और अपथ्यसेवी मनुष्यके कष्टसाध्य होता है । यह अम्लपित्त वातयुक्त, वातकफयुक्त और कफयुक्त होता है, इसको दोषोंके लक्षणसे जानना चाहिये । इसमें वैद्यभी भ्रममें आ जाते हैं कारण यह कि ऊर्ध्वगत अम्लपित्तमें छर्दि और अधोगत अम्लपित्तमें अतीसारकी आशंका होती है ॥ ६ ॥

वातयुक्त अम्लपित्तके लक्षण ।

कंपप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि ।
तमसो दर्शनविभ्रमविमोहहर्षाश्च वातयुते ॥ ७ ॥

भाषा-वातज अम्लपित्तमें कम्प, वृथा बकवाद, मूर्छा, चिमचिमाहट, शरीरमें शिथिलता, शूल, आंखोंके आगे अंधेरा मालूम हो, भ्रम, मोह (बेहोसी) और रोमांच हो आते हैं ॥ ७ ॥

कफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण ।

कफनिष्ठीवनगौरवजडताऽरुचिशीतसादवमिलेपाः ।
दहनबलसादकंडूर्निद्रा चिह्नं कफानुगते ॥ ८ ॥

भाषा-कफयुक्त अम्लपित्तमें कफका थूकना, शरीरमें भारीपन और जडता, अन्नमें अरुचि, सरदीका लगना, अंगोंमें ग्लानि हो, वमन, मुख कफसे लिहसा रहे, अग्निमंद, बलकी हीनता, खुजली और अधिक निद्रा होती है ॥ ८ ॥

वातकफयुक्ताम्लपित्तके लक्षण ।

उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवे भवत्यम्ले ॥ ९ ॥

भाषा-वातकफयुक्त अम्लपित्तमें ऊपरोक्त वात कफ दोनोंके लक्षण मिलते हैं९॥

कफपित्तके लक्षण ।

भ्रमो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजः ।
प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥ १० ॥

भाषा-कफपित्तयुक्त अम्लपित्तमें भ्रांति, मूर्छा, अरुचि, वमन, आलस, शिरमें पीडा, मुखसे लारका गिरना और मधुरता ये सब लक्षण होते हैं ॥ १० ॥

इति अम्लपित्तरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथाम्लपित्तरोगचिकित्सा।

क्वाथपानम्।

पटोलं नागरं धान्यं क्काथयित्वा जलं पिबेत् । कण्डूपामार्त्ति-शूलघ्नमम्लपित्ताग्निमान्द्यजित् ॥ यवकृष्णापटोलानां क्काथं क्षौद्रयुतं पिबेत्। नाशयेदम्लपित्तं च अरुचिं च वमिं तथा ॥ फलत्रिकं पटोलं च तिक्ताक्काथः सितायुतः । पीतं क्रीतकमध्वाक्तः ज्वरच्छर्द्यम्लपित्तजित् ॥ ११ ॥

भाषा-पटोलपात, सोंठ और धनियां इनका काथ बनाकर पान करनेसे खुजली, पामा, शूल, अम्लपित्त और मंदाग्नि दूर होती है। जौ, पीपल और पटोल इनके काथमें सहत डालकर पान करनेसे अम्लपित्त, अरुचि और वमन दूर होती है। त्रिफला, पटोलपात और कुटकी इनके काथमें चीनी, मुलहटीका चूर्ण और सहत डालकर पान करनेसे ज्वर, वमन और अम्लपित्तरोग दूर होता है ॥ ११ ॥

वांतिहरभृंगराजचूर्णम्।

पथ्याभृंगराजचूर्णं युक्तं जीर्णगुडेन तु।
जयेदम्लपित्तजन्यां छर्दिमन्नविदाहजाम् ॥ १२ ॥

भाषा-हरड और भांगरेके चूर्णको पुराने गुडमें मिलाकर भक्षण करनेसे अम्लपित्तजन्य वमन और अन्नविदाहजन्य वमन दूर होती है ॥ १२ ॥

क्षुधावती गुटिका।

रसायोगन्धकाभ्राणि त्र्यूषणं त्रिफला वचा। यवानी शतपुष्पा च चविका जीरकद्वयम् ॥ प्रत्येकं पलमेषान्तु घण्टाकर्णं पुनर्नवा। माणकं ग्रन्थिकश्चेन्द्रकेशराजसुदर्शनी ॥ दण्डोत्पला त्रिवृद्दन्ती जामातृरक्तचन्दनम् । भृंगापमार्गकुलका मण्डूकं च पलार्द्धकम् ॥ आर्द्रकस्वरसेनाथ गुटिकां संप्रकल्पयेत्। बदरास्थिसमां चैकां भक्षयित्वा पिबेदनु ॥ वारिभक्तं जलं चैव प्रातरुत्थाय मानवः । वटी क्षुधावती नाम्नी सर्वाजीर्णविनाशिनी ॥ अग्निं च कुरुते दीप्तं भस्मकं च नियच्छति । अम्ल-

पित्तं च शूलं च परिणामकृतं च यत् ॥ तत्सर्वं शमयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा। मधुरं वर्जयेदत्र विशेषात् क्षीरशर्करे॥१३॥

भाषा–पारा, लोहा, गंधक, अभ्रक, त्रिकुटा, त्रिफला, वच, अजवायन, सोया, चव्य, जीरा, काला जीरा ये प्रत्येक चार चार तोले, घण्टाकर्ण, पुनर्नवा, मानकंद, गठिवन, इन्द्रजौ, कुकुरमांगरा, सुदर्शन, दण्डोत्पल, निसोत, दंती, हुलहुल, लाल चंदन, भांगरा, चिरचिटा, पटोल और ब्रह्ममाण्डूकी प्रत्येक दो दो तोले लेवे। सबोंको एकत्र पीसकर एक दिन अदरखके स्वरसमें खरल करके बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली खाय ऊपरसे कांजीके साथ भात खाय। यह क्षुधावटी सर्व प्रकारके अजीर्णको दूर करे है। अग्निको दीपन करे है तथा भस्माग्नि, अम्लपित्त, शूल, परिणामशूल, इन सबोंको नष्ट करे है, जिस प्रकार सूर्य अंधकारको नष्ट करे है। इसपर दूध, बूरा और सम्पूर्ण मिष्टपदार्थ त्याग देवे॥ १३॥

वमनविरेचनादि प्रकार।

वान्तिं कृत्वाल्मपित्तेषु विरेकं मृदु कारयेत्। सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम्॥ आस्थापनं चिरोद्भूते देयं दोषाद्यपेक्षया। क्रियाशुद्धस्य शमनी ह्यनुबन्धव्यपेक्षया॥ दोषसंसर्गजा कार्या भेषजाहारकल्पना। ऊर्ध्वगं वमनैर्धीमानधोगं रेचनैर्हरेत्॥ अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टपत्रकैः। कारयेन्मदनक्षौद्रसिन्धुयुक्तं कफोल्वणे॥ विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः। तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानं चापि प्रकल्पयेत्॥ यवगोधूमविकृतिर्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिता। यथास्वं लाजसक्तून् वा सितामधुयुतान् पिबेत्॥ १४॥

भाषा–अम्लपित्तरोगमें वमन, मृदु रेचन, स्नेहपान और अनुवासन बस्ति करावे। बहुत दिनोंके अम्लपित्तरोगमें निरूहण बस्तिप्रयोग करना चाहिये। रोगीकी अवस्थाको विचार कर औषधि और आहारका निश्चय करे। ऊर्ध्वगत अम्लपित्तरोगमें वमन और अधोगत अम्लपित्तरोगमें विरेचन करानी चाहिये। कफप्रधान अम्लपित्तरोगमें पटोलपात, नीमके पत्ते, मैनफल, सहत और सैंधानोनके द्वारा वमन करावे। विरेचन करानी होय तो सहत और आमलोंके रसके साथ निसोतका चूर्ण भक्षण करे। अम्लपित्तरोगमें अधिक तिक्त रसवाले आहार और

पान सेवन करे । मिष्टपदार्थोंके साथ औ गेहूंके द्वारा खानेके पदार्थ बनावे इनके साथ नमक, मिरच और खटाई इत्यादि तीक्ष्ण द्रव्य न सेवन करे। वातप्रधान अम्लपित्तरोगीको चीनी और सहतके साथ खीलोंका चूर्ण भक्षण करावे ॥ १४ ॥

पंचनिम्बादिचूर्णम् ।

एकांशः पंचनिम्बानां द्विगुणो वृद्धदारकः । सक्तुर्दशगुणो देयः शर्करामधुरीकृतः ॥शीतेन वारिणा पीतं शूलं पित्तकफोत्थि-तम् । निहन्ति चूर्णं सक्षौद्रमम्लपित्तं सुदारुणम् ॥ पिप्पलीम-धुसंयुक्ता अम्लपित्तविनाशिनी । जम्बीरस्वरसं पीतः सायं हन्त्यम्लपित्तकम् ॥ १५ ॥

भाषा-नीमकी छाल, पत्ते, फूल, फल और जड ये सब एक भाग, विधायरा दो भाग, खीलोंके सत्तू दश भाग, इनमें चीनी मिलाकर इनको मीठाकर लेवे इसको शीतल जल और मधुके साथ दो तोले प्रमाण भक्षण करे। यह पंचनिम्बादि चूर्ण पित्तकफोत्पन्न शूल और दारुण अम्लपित्तरोग दूर करे है। सहतके साथ पीपलका चूर्ण खानेसे अथवा नीबूके रसमें चीनी मिलाकर सायंकालको सेवन करनेसे अम्लपित्तरोग दूर होता है ॥ १५ ॥

अविपत्तिकरं चूर्णम् ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं बिडं चैव विडङ्गकम् । एलापत्रं च चूर्णा-नि समभागानि कारयेत् ॥ सर्वमेकीकृतं यावल्लवङ्गं तत्समं भवेत् । सर्वचूर्णद्विगुणितं त्रिवृच्चूर्णं प्रदापयेत् ॥ सर्वमेकीकृतं यावत्तावच्छर्करयान्वितम् । भोजनादौ तथा मध्ये खादेन्माषा-ष्टकं शुभम् ॥ अम्लपित्तं निहन्त्याशु विबन्धं मलमूत्रयोः । अ-ग्निमांद्यभवान्रोगान्नाशयेदविकल्पतः ॥ प्रमेहान् विंशतिं चैव सर्वदुर्नामनाशनम् । अविपत्तिकरं चूर्णमगस्त्यविहितं शुभम्॥१६॥

भाषा-सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, नागरमोथा, विरिया संचरनोन, वायविडंग, इलायची, तेजपात इन सबोंका चूर्ण समानभाग, सबोंसे दुगुना लौंगका चूर्ण फिर सबसे दूना निसोतका चूर्ण लेवे । सबोंको एकत्र मिला लेवे और जितनी सब औषधियें हों उतनीही चिनी मिला लेवे, इसको भोजनके आदि और मध्यमें आठ मासे प्रमाण सेवन करे। यह औषधि अम्लपित्त, मलमू-त्रका विबन्ध, मंदाग्निसे उत्पन्न हुए रोग, बीस प्रकारके प्रमेह और सर्व प्रकारकी

बवासीरको दूर करे है। यह अविपत्तिकर चूर्ण अगस्त्यजीने निर्माण किया है १६॥

पिप्पलीखण्डः ।

कणाचूर्णस्य कुडवं षट्पलं हविषस्तथा । शतावरी रसस्याष्टौ पलान्यत्र प्रदापयेत्॥ खण्डप्रस्थं समादाय क्षीरप्रस्थद्वये पचेत्। त्रिजातमुस्तधन्याकशुण्ठीमांसीद्विजीरकम्॥ अभयामलकं चैव चूर्णं द्वादशमाषिकम् । तदर्द्धं मारिचं चूर्णं सारं खादिरमेव च ॥ पलत्रयं च मधुनः शीतीभूते प्रदापयेत् । ततो मात्रां प्रयुंजीत अम्लपित्तनिवृत्तये ॥ शूलारोचकहृल्लासछर्दिपित्ताम्लशूलनुत् । अग्निसन्दीपनो हृद्यः खण्डः पिप्पलिको मतः ॥ १७ ॥

भाषा-पीपलका चूर्ण ४ पल, घी ६ पल, शतावरका रस ८ पल, चीनी १६ पल और दूध ३२ पल लेवे । सबोंको यथाविधिसे पकावे। फिर दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोथा, धनिया, सोंठ, वंशलोचन, जीरा, काला जीरा, हरड और आमले प्रत्येकका चूर्ण बारह बारह मासे, काली मिरचोंका चूर्ण छः मासे और खैरसार छः मासे इन सबोंको मिला देवे । जब शीतल हो जाय तब तीन पल सहत मिला देवे । फिर इसकी मात्राका निश्चय करके इसको सेवन करे।इससे अम्लपित्त, शूल, अरुचि, हल्लास, वमन (उबकाई), पित्त, अम्लशूल आदि सब रोग दूर होते हैं । यह खण्डपिप्पली अग्निको दीपन करे और हृदयको हितकारी है ॥ १७ ॥

सौभाग्यशुण्ठीमोदकः ।

त्रिकटु त्रिफला भृङ्गजीरकद्वयधान्यकम् । कुष्ठाजमोदालोहाभ्रं शृङ्गीकट्फलमुस्तकम् ॥ एला जातीफलं मांसीपत्रं तालिसकेशरम्। गन्धमात्रा शठी यष्टिलवङ्गं रक्तचन्दनम्॥एतानि समभागानि शुण्ठीचूर्णन्तु तत्समम् । सिता द्विगुणिता तत्र गव्यक्षीरं चतुर्गुणम्॥तोलप्रमाणं दातव्यं दुग्धेनापि जलेन च । अम्लपित्तं निहन्त्येतदरोचकनिषूदनम् ॥ शूलं हृद्रोगशमनं कण्ठदाहं नियच्छति । हृद्दाहं च शिरःशूलं मन्दाग्नित्वं विनाशयेत् ॥ हृच्छूलं पार्श्वकुक्षिस्थबस्तिशूलं गुदे रुजम् । बलपुष्टिकरं चैव वशीकरणमुत्तमम्॥विशेषादम्लपित्तं च मूत्रकृच्छ्रं ज्वरं भ्रमम्। निहंति नात्र सन्देहो भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १८ ॥

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला, दालचीनी, जीरा, कालाजीरा, धनिया, कूट, अजमोद, लोहा, अभ्रक, कांकडाशिंगी, कायफल, नागरमोथा, इलायची, जायफल, बालछड, तेजपात, तालीशपत्र, नागकेशर, गंधमात्रा, कचूर, मुलहठी, लौंग, लाल चंदन ये सब समान भाग और सबोंकी बराबर सोंठका चूर्ण लेवे । चीनी सबसे दुगुनी और गायका दूध चौगुना लेवे । इन सबोंको एकत्र मिलाके यथाविधिसे पाक करे, फिर एक एक तोलेके मोदक बनाकर उत्तम घीके चिकने बासनमें भरके रख देवे । प्रतिदिन एक मोदक दूध अथवा जलके साथ सेवन करे । यह सौभाग्य शुंठी पाक अम्लपित्त, अरुचि, शूल, हृदयरोग, कण्ठदाह, हृदयकी दाह, शिरःशूल, मंदाग्नि, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल, गुदरोग इन सबोंको नष्ट करे है । बल और पुष्टिको उत्पन्न करे, उत्तम वशीकरण विशेषकरके अम्लपित्तरोग, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और भ्रमरोगको दूर करे है । जिस प्रकार सूर्य्य अंधकारको दूर करे है ॥ १८ ॥

पानीयभक्तवटी ।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तत्रिवृता चित्रकं तथा । प्रत्येकं कार्षिकं दद्यात् सूतगन्धौ तदर्द्धकौ ॥ लोहाभ्रकविडंगानां दद्यात् कर्षद्वयं तथा । त्रिफलायाः कषायेण शुद्धिं कृत्वा विधानतः ॥ तदेकां भक्षयेत् प्रातर्भक्तवारि पिबेदनु । हन्ति शूलं पार्श्वशूलं कुक्षिबस्तिगुदेरुजम् ॥ श्वासं कासं तथा कुष्ठं ग्रहणीदोषनाशिनी ॥ १९ ॥

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, निसोथ, चीता ये प्रत्येक एक एक तोला, पारे और गंधककी कजली १ तोला, लोहा अभ्रक और वायविडंग प्रत्येक दो दो तोले लेवे । इन सबोंको एकत्र पीसकर त्रिफलेके काथमें एक दिन खरल करके गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली खाय ऊपरसे कांजी पीवे यह अनुपान है । यह गोली शूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल, गुदशूल अथवा गुदरोग, श्वास, कुष्ठ, संग्रहणी इत्यादि अनेक रोगोंको दूर करे है ॥ १९ ॥

अम्लपित्तान्तकलोहः ।

मृतसूतार्कलोहानां तुल्यां पथ्यां विमर्दयेत् ।
माषमात्रं लिहेत् क्षौद्रैरम्लपित्तप्रशान्तये ॥ २० ॥

भाषा-रससिन्दूर, तांबा, लोहा और हरड ये सब समान भाग लेकर पी-

सकर एक एक मासेकी गोलियां बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली सहतके साथ खाय । इससे अम्लपित्तरोग दूर होता है ॥ २० ॥

त्रिफलामण्डूर ।

गोमूत्रशुद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् ।
विलिह्यान्मधुसर्पिभ्यां शूलं हन्त्यम्लपित्तकम् ॥ २१ ॥

भाषा-गोमूत्रमें शुद्ध किया हुआ मण्डूर २ तोले और त्रिफलेका चूर्ण २ तोले लेवे । इन दोनोंको एकत्र मिलाकर घी और सहतमें मर्दन कर ले, इसको शीतल जलके अनुपानसे सेवन करे । इससे अम्लपित्तोद्भव शूल दूर होता है ॥ २१ ॥

इति अम्लपित्तरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ विसर्परोगनिदानम् ।

निदानपूर्वकसंख्या संप्राप्ति ।

लवणाम्लकटूष्णादिसंसेवादोषकोपतः ।
विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥

भाषा-लवण (नमकीन), अम्ल (खट्टे), चरपरे और गरम आदि पदार्थोंका सेवन करनेसे वातादि दोष कुपित होकर सात प्रकारके विसर्प रोगको उत्पन्न करे हैं । यह सब जगह फैल जाय इसी कारण इसको विसर्प कहते हैं ॥ १ ॥

सप्तधातुगत विसर्पके कारण ।

रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः ।
विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ॥ २ ॥

भाषा-रुधिर, लसीका (मांसका पानी), त्वचा और मांस ये दूष्य, वातादि तीनों दोष और सप्त धातु ये विसर्प होनेके कारण हैं ॥ २ ॥

वातविसर्पके कारण ।

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमाकृतिः ।
शोफस्फुरणनिस्तोदभेदपामार्त्तिहर्षवान् ॥ ३ ॥

भाषा-वातज विसर्पके लक्षण वातजज्वरकी समान होते हैं । उसमें सूजन हो, फड़के, नोचने और तोड़ने सरीखी पीडा हो, दूखे और रोमांच हो ये लक्षण वातज विसर्पके हैं ॥ ३ ॥

पित्तविसर्पके लक्षण ।

पित्ताद् द्रुतगतिः पित्तज्वरलिंगोऽतिलोहितः ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तज विसर्प बहुत शीघ्र फैलता है, उसमें पित्तज्वरके लक्षण होते हैं और वह अत्यन्त लाल होता है ॥ ४ ॥

कफविसर्पके लक्षण ।

कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥ ५ ॥

भाषा-कफज विसर्प अत्यन्त खुजलीयुक्त हो, चिकना हो और उसमें कफज्वरकी समान पीडा हो ॥ ५ ॥

सन्निपातविसर्पके लक्षण ।

सन्निपातसमुत्थश्च सर्वरूपसमन्वितः ॥ ६ ॥

भाषा-सन्निपातज विसर्पमें वातादि दोषोंके समस्त लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

अग्निविसर्पके लक्षण ।

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः । अस्थिमेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥ करोति सर्वमंगं च दीप्तांगारावकीर्णवत् । यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेच्च सः ॥ शांतांगारासितो नीलो रक्तो वाऽऽशूपचीयते । अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद् द्रुतं च सः ॥ मर्म्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः । व्यथेतांगं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ॥ हिक्कां च सततोवस्थामीदृशीं लभते नरः । कचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥ चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहसमुद्भवाम् । दुर्बोधामश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥ ७ ॥

भाषा-वातपित्तज विसर्पमें ज्वर, अतीसार, तृषा, भ्रम, हड्डियोंमें तोडने सरीखी पीडा हो, अग्निकी मंदता, अंधकार दिखे, अन्नमें अरुचि, सर्व शरीर प्रज्वलित, अंगारोंसे भरासा मालूम हो, जिस जिस स्थानमें यह विसर्प फैलता है उसी उसी स्थानमें बूझे हुए अंगारोंकी समान काला, नीला और लाल रंगका होकर बहुत जल्दी सूज आवे, अग्निसे जलेकी समान ऊपर फफोले पडें, वह विसर्प शीघ्र फैलनेके कारण शीघ्र हृदयमें जाकर मर्मानुसारी विसर्प होता है। उससे यह अत्यन्त प्रबल हो जाता है, उस प्रबलतासे शरीरको पीडित करे है, संज्ञा और निद्रा जाती रहे, श्वास अधिक बढ जाय, हुचकी उत्पन्न हो जाय, ऐसी अवस्थाको प्राप्त होकर

वह मनुष्य रोगसे दुःखित हुआ पृथिवीमें कहींभी आसन शयनादिकोंमें सुख नहीं पाता (अर्थात् सदैव सब कालमें सब जगह बेचैन रहता है) तब उस क्लेशसे व्याकुल हुआ इधर उधर भ्रमता है फिर मन और शरीरके श्रमसे उत्पन्न हुई जो अज्ञाननिद्रा उसके वश होता है, उसको अग्निविसर्प कहते हैं ॥ ७ ॥

ग्रंथिविसर्पके लक्षण ।

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् । रक्तं च वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्नायुमांसगम् ॥ दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम् । ग्रंथीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ॥ श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः । मोहवैवर्ण्यमूर्च्छांगभंगाग्निसदनैर्युतम् ॥ इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥ ८ ॥

भाषा-अपने कारणोंसे कुपित हुआ कफ सो वायुको रोक कफको या रुधिरको छिन्नभिन्न कर त्वचा, नसें, नाडी और मांसमें प्राप्त होकर इनको दूषित करके लम्बी, गोल, स्थूल, खरदरी और लाल ऐसी गांठोंकी मालाको उत्पन्न करे, उत्तम गांठोंमें पीडा हो तथा ज्वर, श्वास, खांसी, अतीसार, मुखशोष, हुचकी, वमन, भ्रांति, मोह (बेहोशी), विवर्णता, मूर्छा, अंगोंका भंग होना और मंदाग्नि ये सब लक्षण होते हैं, इसको ग्रंथिविसर्प कहते हैं । यह कफ और वायुके कोपसे होता है ॥ ८ ॥

कर्दमविसर्पके लक्षण ।

कफपित्ताज्ज्वरः स्तम्भो निद्रा तन्द्रा शिरोरुजः। अंगावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः ॥ मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम् । आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स विसर्पति ॥ प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् । पिडकैरिव कीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरः ॥ स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोफवान् गुरुः । गंभीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते ॥ पंकवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुशिरागणः । शवगंधि च वीसर्पं कर्दमाख्यमुशंति तम् ॥ ९ ॥

भाषा-कफ और पित्तके कुपित होनेसे जो विसर्प होता है उसमें ज्वर, शरीरका जकड़ना, निद्रा, तन्द्रा, शिरमें पीडा, देहमें ग्लानि, हाथपांवादिकोंको इधर

उधर पटकना, वृथा बकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्छा, अग्निकी मंदता, हड्डियोंमें तोडने सरीखी पीडा, तृषा, इन्द्रियोंमें भारीपन, दस्तके साथ आमका आना, नासिकादि छिद्र लिद्रसेसे रहें ये सब लक्षण होते हैं तथा वह विसर्प प्रथम आमाशयमें उत्पन्न होवे। पश्चात् सब जगह फैल जाता है, उसमें अल्प पीडा हो तथा सब जगह पीत, लोहित और श्वेतरंगकी फुंसियें हों। वह विसर्प चिकना, स्याईकी समान काला, मैला, सूजनवाला, भारी, गम्भीरपाकी, छूनेसे अत्यन्त उष्ण जान पडे तथा दबानेसे मीगासा मालूम होय, सूखी कीचडकी समान फट जाय, उसके फटनेसे मोटी और पतली नसें अच्छे तरह दीखने लगें, उसमें मुरदेकी समान वास आने लगे इसको कर्दम विसर्प कहते हैं॥ ९॥

क्षतज विसर्पके लक्षण।

बाह्यहेतोः क्षतात्कुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन्।
विसर्पं मारुतः कुर्यात् कुलित्थसदृशैश्चितम्॥
स्फोटैः शोथज्वररुजादाहाढ्यं श्यावशोणितम्॥ १०॥

भाषा–बाहरके कारणोंसे जो उत्पन्न हुआ क्षत उसमें वायु कुपित होकर रक्तसहित पित्तको कुपित करके विसर्पको उत्पन्न करे है, उसमें कुल्थीकी समान काली बहुतसी फुंसियें होती हैं तथा उस विसर्पमें सूजन, ज्वर, वेदना और दाह हो, उसमेंसे लाल कालामिश्रित रुधिर निकलता है। यह पित्तज विसर्प अन्तर्गत है इससे संख्या नहीं बढी॥ १०॥

उपद्रव।

ज्वरातिसारवमथुस्तृण्मांसदरणं क्लमः।
अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः॥ ११॥

भाषा–ज्वर, अतीसार, उबकाई, तृषा, मांसका गलना, ग्लानि, अरुचि और अन्नका न पचना ये विसर्परोगके उपद्रव हैं॥ ११॥

साध्यासाध्यलक्षण।

सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वात्मकः कफकृतश्च न सिद्धिमेति। पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः कृच्छ्राश्च मर्मसु भवंति हि सर्व एव॥ १२॥

भाषा–वात पित्त और कफसे उत्पन्न हुए विसर्प साध्य हैं। सान्निपातज और

क्षतज विसर्प असाध्य हैं तथा पित्तज काले रंगका विसर्पभी असाध्य है और मर्मस्थानोंमें उत्पन्न हुए विसर्प कष्टसाध्य हैं ॥ १२ ॥

इति विसर्परोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ विसर्परोगचिकित्सा ।

विरेचनकाथादिप्रकारः ।

त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह । प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरशान्तये ॥ मदनं मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च । वमनं च विधातव्यं विसर्पे कफसम्भवे ॥ मुस्तारिष्टपटोलानां क्वाथः सर्वविसर्पनुत् । धात्रीपटोलमुद्गानामथवा घृतसंयुतः ॥ अमृतवृषपटोलं निम्बपत्रैरुपेतं त्रिफलखदिरसारं व्याधिघातं च तुल्यम् । क्वथितमिदमशेषं गुग्गुलुभागयुक्तं जयति विषविसर्पान् कुष्ठमष्टादशाख्यम् ॥ प्रपौण्डरीकं मधुकं पयस्या मञ्जिष्ठिकापद्मकचन्दनेन । सुगन्धिका चेति सुखाय लेपाः पैत्ते विसर्पे भिषजा प्रयोज्याः ॥ १३ ॥

भाषा–त्रिफलेके रसमें घी और निसोतका चूर्ण डालकर पान करनेसे विरेचन होकर विसर्परोगगत ज्वर दूर होता है । मैनफल, मुलहठी, नीमकी छाल और इन्द्रजौ इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे वमन होकर कफजन्य विसर्परोग दूर होता है । नागरमोथा, नीमके पत्ते और पटोलपात इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे अथवा आमले, पटोलपात और मूंगका क्वाथ बनाकर घीके साथ पान करनेसे सर्व प्रकारके विसर्परोग दूर होते हैं । गिलोय, अडूसा, पटोल, नीमके पत्ते, हरड, बहेडे, आमले, खैर और अमलतास ये सब समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर गूगल डालकर पान करनेसे विषजन्य विसर्प और अठारह प्रकारके कोढ दूर होते हैं । पुण्डरिया, मुलहठी, क्षीरकाकोली, मजीठ, पद्माख, लाल चन्दन और अनंतमूल इन सबोंको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे पित्तज विसर्प दूर होता है॥१३॥

इति विसर्परोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ विस्फोटकरोगनिदानम् ।

लक्षण ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च । तथर्तुदोषेण विपर्ययेण कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु ॥ त्वचमाश्रित्य ते रक्ता मांसास्थीनि प्रदूष्य च । घोरान् कुर्वन्ति विस्फोटान् सर्वान् ज्वरपुरःसरान् ॥ १ ॥

भाषा—चरपरे, खट्टे, तीक्ष्ण, गरम, दाहकारक, रूखे, खारी, अजीर्ण, भोजनपर भोजन करना, आतप, ऋतुदोष और ऋतुका बदलना इन सब कारणोंसे वातादि दोष कुपित होकर त्वचाका आश्रय लेकर रुधिर, मांस और अस्थिको दूषित करके घोर विस्फोटक रोगको उत्पन्न करे हैं। विस्फोटक होनेके प्रथम ज्वर आता है, ज्वरके साथही फफोलेसे पड जाते हैं इसको देशमें माता कहते हैं॥ १॥

विस्फोटस्वरूप ।

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः ।
क्वचित् सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति ते स्मृताः ॥ २ ॥

भाषा—रक्तपित्तसे उत्पन्न हुए अग्निसे जले हुएकी समान शरीरके एक अंगमें अथवा सम्पूर्ण शरीरमें फफोले पड जाते हैं, वे फफोले होनेसे ज्वर होता है उस रोगको विस्फोटक कहते हैं ॥ २ ॥

वातविस्फोटके लक्षण ।

शिरोरुक् शूलभूयिष्ठं ज्वरतृट्पर्वभेदनम् ।
सुकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ३ ॥

भाषा—शिरमें पीडा, शूल, शरीरमें वेदना, ज्वर, तृषा, संधियोंमें पीडा, फोडोंका रंग श्याम हो ये सब लक्षण वातज विस्फोटकमें होते हैं ॥ ३ ॥

पित्तविस्फोटकके लक्षण ।

ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् ।
पीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥

भाषा—ज्वर, दाह, दुःख, स्राव (बहना), पकना, तृषा, शरीरका रंग पीला और लाल हो ये सब लक्षण पित्तज विस्फोटकके हैं ॥ ४ ॥

कफविस्फोटके लक्षण ।

छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुताः ।
अवेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटः कफात्मकः ॥ ५ ॥

भाषा-छर्दि, अरुचि, जडता, फोडोंमें खुजली, कठिनता और वे फोडे पांडुवर्णके होंय, पीडारहित और बहुत दिनोंमें पके ये सब लक्षण कफज विस्फोटकके हैं ॥ ५ ॥

कफपित्तात्मकविस्फोटकके लक्षण ।

कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः ॥ ६ ॥

भाषा-कफपित्तज विस्फोटकमें खुजली, दाह, ज्वर और वमन होती है ॥६॥

वातपित्तात्मकके लक्षण ।

वातपित्तकृतो यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् ॥ ७ ॥

भाषा-वातपित्तज विस्फोटकमें अत्यन्त पीडा होती है ॥ ७ ॥

कफवातात्मकके लक्षण ।

कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥ ८ ॥

भाषा-कफवातज विस्फोटकमें खुजली, आलस्य और भारीपन होता है॥ ८ ॥

सन्निपातविस्फोटकके लक्षण ।

मध्ये निम्नोन्नतोंते च कठिनोऽल्पप्रपाकवान् ।
दाहरागतृषामोहछर्दिमूर्च्छारुजो ज्वरः ॥
प्रलापो वेपथुस्तन्द्रा सोऽसाध्यश्च त्रिदोषजः ॥ ९ ॥

भाषा-जिस विस्फोटकका बीच गहरा और किनारे ऊंचे हों, कठिन, किंचित् पकनेवाला, दाहयुक्त, लाल, तृषा, मोह, वमन, मूर्छा, पीडा, ज्वर, वृथा बकवाद, कम्प और जिसमें तन्द्रा हो उसको त्रिदोषज विसर्प जानना वह असाध्य है ॥ ९ ॥

रक्तज विस्फोटकके लक्षण ।

रक्तारक्तसमुत्थाना गुंजाफलनिभास्तथा ।
वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥
न ते सिद्धिं समायांति सिद्धैर्योगशतैरपि ॥ १० ॥

भाषा-रक्तसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक गुंजा (चोंटली) की समान लाल होता है, वह रुधिरके दूषित होनेसे वा पित्तके दूषित होनेसे होता है। वह सैंकडों अजमाये हुए प्रयोगोंसेभी कदापि आरोग्य नहीं होता ॥ १० ॥

साध्यासाध्यविचार ।

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषतः ।
सर्वरूपान्वितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ ११ ॥

भाषा-एक दोषसे उत्पन्न हुआ विस्फोटक साध्य, द्विदोषज विस्फोटक कष्टसाध्य, त्रिदोषज विस्फोटक और जिसमें अनेक उपद्रव हों वह असाध्य जानना ११॥

उपद्रव ।

हिक्का श्वासोऽरुचिस्तृष्णा अंगसादो हृदि व्यथा ।
विसर्पज्वरहृल्लासविस्फोटानामुपद्रवाः ॥ १२ ॥

भाषा-हुचकी, श्वास, अरुचि, तृषा, शरीरमें शिथिलता, हृदयमें पीडा, विसर्प, ज्वर, उबकाई ये सब विस्फोटक रोगके उपद्रव हैं ॥ १२ ॥

इति विस्फोटकरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ विस्फोटकरोगचिकित्सा ।

काथादिक्रिया ।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापर्पटैश्च शृतं जलम् । पटोलीमुस्तकाभ्यां च वासकेन च नाशयेत्॥ विस्फोटकानि व्यक्तानि नात्र कार्या विचारणा। चंदनं नागपुष्पं च तण्डुलीयकशारिवा ॥ शिरीषवल्कलं जातिलेपः स्याद्दाहनाशनः । शिरीषपूगमाञ्जिष्ठचव्यामलकयष्टिकाः ॥ सजातीपल्लवक्षौद्राविस्फोटकवडग्रहाः । शिरीषयष्टिनतचन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः ॥ लेपो दशांगः सघृतः प्रदिष्टो विसर्पकण्डूज्वरशोथहारी ॥१३ ॥

भाषा-चिरायता, नीम, त्रिफला, पित्तपापडा, कडवे परवल, नागरमोथा और अडूसा इनका काथ बनाकर पान करनेसे सर्व प्रकारके विस्फोट नष्ट होते हैं । चन्दन, नागकेशर, चौलाई, कालीसर, सिरसकी छाल और चमेलीके फूल इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे विस्फोटजन्य दाह दूर होता है । सिरसकी छाल, सुपारी, मजीठ, चव्य, आमले, मुलहठी और चमेलीके पत्ते इनके क्वाथमें सहत डालकर कवलग्रह धारण करनेसे विस्फोटक रोग दूर होता है । सिरस, मुल-

इठी, तगर, चन्दन, इलायची, बालछड, हलदी, दारुहलदी, कूठ, सुगंधवाला इन सबोंको एकत्र पीसकर घृत मिलाकर प्रलेप करनेसे विसर्प, कण्डू, ज्वर और शोथरोग दूर होता है ॥ १३ ॥

वृषाद्यं घृतम् ।

वृषखदिरपटोलनिम्बत्वगमृतामलकीकषायकल्कैः ।
घृतमभिनवमेतदाशु पक्कं जयति विसर्पगदान् सकुष्ठगुल्मान्॥१४॥

भाषा-अडूसा, खैर, पटोलपात, नीमकी छाल, गिलोय और आमले इनके काथ और कल्कके द्वारा नवीन घृतको पकाकर सेवन करनेसे विसर्परोग, कुष्ठ और गुल्मरोग दूर होता है ॥ १४ ॥

महापद्मकं घृतम् ।

पद्मकं मधुकं लोध्रं नागपुष्पस्य केशरम् । द्वे हरिद्रे विडंगानि सूक्ष्मैला तगरं तथा ॥ कुष्ठं लाक्षा पत्रकं च सिक्थकं तुत्थमेव च । बहुवारशिरीषश्च कपित्थफलमेव च ॥ तोयेनालोड्य तत्सर्वं घृतप्रस्थं विपाचयेत् । यांश्च रोगान्निहन्त्याद्रे तन्निबोध महामुने ॥ सर्पकीटाखुदंष्ट्रेषु लूतामूत्रकृच्छ्रेषु च । विविधेषु विस्फोटेषु तथा दुष्टविसर्पेषु ॥ नाडीषु गण्डमालासु प्रभिन्नासु विशेषतः । अगस्त्यविहितं धन्यं पद्मकं तु महाघृतम् ॥ १५ ॥

भाषा-पद्माख, मुलहठी, लोध, नागकेशर, हलदी, दारुहलदी, वायविडंग, छोटी इलायची, तगर, कूठ, लाख, तेजपात, मोम, तूतिया, लिहसोडे, सिरस और कैथ इनके काथके द्वारा दो सेर घृतको पकाकर सेवन करनेसे सर्पविष, कीटविष, मूषकविष, लूताविष, मूत्रकृच्छ्र, अनेक प्रकारके विस्फोटक, दुष्ट विसर्प, नाडीव्रण, गण्डमालादिरोग दूर होते हैं । यह महापद्मकघृत अगस्त्यभगवान्ने निर्माण किया है ॥ १५ ॥

इति विस्फोटकरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ मसूरिकारोगनिदानम्।

कारण और संप्राप्ति।

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः। दुष्टनिष्पावशाकादिप्रदुष्टपवनोदकैः॥ क्रुद्धग्रहे क्षणाद्वापि देहे दोषाः समुद्धताः। जनयन्ति शरीरेस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः॥ मसूराकृतिसंस्थानाः पिडिकाः स्युर्मसूरिकाः॥ १॥

भाषा–चरपरे, खट्टे, नमकीन, खारी, विरुद्ध और भोजनपर भोजन, दूषित अन्न, निष्पाव (लोबिया उडद इत्यादि), शाकादिक, दूषित पवन और दूषित जल इनका सेवन तथा क्रोधित ग्रहकी दृष्टि पडना इन सब कारणोंसे देहमें वातादि दोष कुपित होकर दुष्ट रुधिरसे मिलकर मसूरकी समान शरीरमें अनेक फुंसियां उत्पन्न करे हैं उनको मसूरिका कहते हैं॥ १॥

मसूरिकाके पूर्वरूप।

तासां पूर्वं ज्वरः कण्डूर्गात्रभंगोऽरुचिर्भ्रमः।
त्वचि शोफः सवैवर्ण्यो नेत्ररागस्तथैव च॥ २॥

भाषा–उस मसूरिका होनेसे प्रथम ज्वर, खुजली, शरीरका टूटना, अरुचि, भ्रम, त्वचामें सूजन, विवर्णता और नेत्र लाल होवें॥ २॥

वातमसूरिकाके लक्षण।

स्फोटाः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयान्विताः। कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसम्भवाः॥ संध्यस्थिपर्वणां भेदः कासः कंपोऽरतिः क्लमः।शोषस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता॥३॥

भाषा–वातज मसूरिकाकी फुडियें काली, लाल, रूखी, और तीक्ष्ण पीडायुक्त होती हैं तथा कठिन और बहुत कालमें पकती हैं। संधि, हड्डी और पर्वोंमें तोडने सरीखी पीडा होती है। खांसी, कम्प, मनमें व्याकुलता, विनाश्रमकेही श्रम मालूम होय, तालू, होठ और जीभमें खुस्की हो एवं तृषा और अरुचि हो ये सब लक्षण वातज मसूरिकाके जानने॥ ३॥

पित्तज मसूरिकाके लक्षण।

रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः। भवन्त्यचि-

रपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः । विड्भेदश्चांगमर्दश्च दाहस्तृ-
ष्णाऽरुचिस्तथा॥मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीक्ष्णः सुदारुणः॥४॥

भाषा-पित्तज मसूरिकाकी फुडियें पीली, लाल और सफेद रंगकी होती हैं। उनमें जलन और अत्यन्त पीडा होती है, शीघ्र पकती हैं, मल पतला उतरे, शरीरमें तोडनेसरीखी पीडा हो, दाह, तृषा, अरुचि, मुख और नेत्र पकें तथा अत्यन्त तीव्र ज्वर हो ॥ ४ ॥

रक्तज मसूरिकाके लक्षण ।

रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥ ५ ॥

भाषा-रक्तज मसूरिकामें पित्तज मसूरिकाके सम्पूर्ण लक्षण होते हैं ॥ ५ ॥

कफज मसूरिकाके लक्षण।

कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम् । हृल्लासः सारुचि-
र्निद्रा तन्द्रालस्यसमन्विता ॥ श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः
कण्डूरा मंदवेदनाः । मसूरिकाः कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकी-
र्तिताः ॥ ६ ॥

भाषा-कफज मसूरिकामें मुखसे पानी गिरे, शरीरमें गीलापन, शिरमें पीडा, देह भारी हो, उबकाई, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य हो, फुडियोंका रंग सफेद हो, वह चिकनी, मोटी और खुजलीयुक्त हो, पीडा कम हो और बहुत कालमें पकती हैं ॥ ६ ॥

त्रिदोषज मसूरिकाके लक्षण ।

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजः ।
चिरपाकाः पूतिस्रावाः प्रभूताः सर्वदोषजाः ॥ ७ ॥

भाषा-सन्निपात मसूरिकाकी फुडियें नीली, चपटी, विस्तीर्ण और बीचमें नीची हों, उनमें अत्यन्त वेदना हो, वे बहुत कालमें पकें और दुर्गंधित राध बहे तथा बहुतसी होती हैं ॥ ७ ॥

चर्मपिडिका ।

कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्रा प्रलापारतिसंयुताः ।
दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडिकाश्चर्मसंज्ञिताः ॥ ८ ॥

भाषा-जिनमें कंठका अवरोध, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप और बेकली हो तथा जिनकी चिकित्सा न हो सके उनको चर्मपिडिका कहते हैं ॥ ८ ॥

रोमांतिक ।

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः ।
कासारोचकसंयुक्ता रोमांत्या ज्वरपूर्विकाः ॥ ९ ॥

भाषा-जो मसूरिका रोमकूपों (बालोंके छिद्र) की समान ऊंची और लाल होंय, जिनमें खांसी और अरुचि हो तथा जिनमें पहिले ज्वर हो वह कफपित्तो-द्भव रोमांतिका मसूरिका जाननी ॥ ९ ॥

सप्तधातुगत मसूरिकाओंके लक्षण ।

तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गताश्च मसूरिकाः । स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च ॥ रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः । साध्या नात्यर्थदुष्टास्तु भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च ॥ मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः । गात्रशूलोऽरतिः कण्डूमूर्च्छादाहतृषान्विताः ॥ मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किंचिदुन्नताः । घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः कृष्णाः सवेदनाः ॥ संमोहारतिसंतापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् । अस्थिगात्रसमारूढाश्चिपिटाः किंचिदुन्नताः ॥ मज्जोत्था भृशसंमोहवेदनारतिसंयुताः । छिंदन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति ताः ॥ भ्रमरेणेव विद्धानि भवन्त्यस्थीनि सर्वतः । पक्वाभाः पिडिकाः स्निग्धाः श्लक्ष्णाश्चात्यर्थवेदनाः॥ स्तैमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः । शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति च ॥ निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते नतु जीवितम् । दोषमिश्रास्तु सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः ॥ त्वग्गता रक्तजाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा । पित्तश्लेष्मकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः ॥ एता विनापि क्रियया प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम् ॥ १० ॥

भाषा-जो मसूरिका पानीके बबूलेकी समान आकारवाली हों, जिनमें फूटनेसे पानी बहे वह रसगत मसूरिका जाननी । उसमें दोष स्वल्प हैं इस कारण वह त्वग्गत होती हैं । रक्तगत मसूरिका लोहित व्रण, शीघ्र पकनेवाली होती है । उसकी त्वचा पतली और वे अत्यन्त दुष्ट होनेसे साध्य न हों और फूटनेसे उनमें

रुधिर निकले है । मांसगत मसूरिका कठिन, चिकनी और बहुत कालमें पकती है, पतली त्वचावाली तथा शरीरमें पीडा, बेकली, खुजली, मूर्छा, दाह और तृषा होती है । मेदगत मसूरिका मण्डलकी समान गोल, नरम, कुछ ऊपरको उठी हुई, घोर ज्वरयुक्त, मोटी, काली तथा उनमें अत्यन्त वेदना हो, मोह (बेहोशी), बेकली, संताप ये सब होते हैं । इस मसूरिकासे कोई रोगी बचता है । अस्थि और मज्जागत मसूरिका छोटी, शरीरके वर्णकी समान, रूखी, चिपटी, कुछ ऊपरको उठी हुई तथा भ्रम, मोह, पीडा और बेकली होती है और उन मर्मस्थानोंको छेद करके शीघ्रही प्राणोंका नाश करती है और उनके होनेसे हड्डियोंमें भौंरेके काटने सरीखी पीडा होती है । शुक्रगत मसूरिकाकी फुडियें पकीकी समान, चिकनी, श्लक्ष्ण, अत्यन्त वेदनायुक्त, शरीरमें पीलापन, बेकली, मोह (बेहोशी), दाह, उन्माद ये सब लक्षण हों, रोगी आराम होनेके इसमें कोई चिह्न नहीं दीखते, इस कारण यह असाध्य है । यह सप्तधातुगत मसूरिका दोषमिश्रित है इसमें वातादि दोषोंके लक्षणोंसे निश्चय करना । रसगत, रक्तगत, पित्तज, कफज और पित्तकफज ये मसूरिका सुखसाध्य हैं । ये औषधि न करनेसेभी आराम हो जाती हैं ॥ १० ॥

साध्यासाध्यविचारः ।

वातजा वातपित्तोत्था वातश्लेष्मकृताश्च याः। कृच्छ्रसाध्या मतास्तास्तु यत्नादेता उपाचरेत् ॥ असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम्। प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिज्जंबूफलोपमाः॥ लोहजालसमाः काश्चिदतसीफलसन्निभाः। आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ॥ कासो हिक्काथ मोहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः। प्रलापारतिमूर्च्छाश्च तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता ॥ मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा । कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम् ॥ मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निःश्वसेत् । स भृशं त्यजति प्राणांस्तृष्णार्त्तो वायुदूषितः ॥ ११ ॥

भाषा-वातज, वातपित्तज और वातकफज ये मसूरिका कष्टसाध्य हैं; इनकी बडे यत्नोंसे चिकित्सा करे । सन्निपातज मसूरिका असाध्य है उनके लक्षण कहता हूं । उनमें कोई मूंगकी समान, कोई जामुनके फलकी समान, कोई लोहेकी जालीकी समान और कोई अलसीकी समान होती है और वह दोषोंके भेदोंसे

अनेक रंगकी होती है। जिस मसूरिका रोगीके खांसी, हिचकी, मोह, घोर तीव्र ज्वर, प्रलाप, बेकली, मूर्छा, तृषा, दाह, अतिशय घूमनी, मुख, नाक और नेत्रोंसे रुधिर गिरे, कंठमें घुर घुर शब्द हो, अत्यन्त घोर श्वास हो, बडे जोरसे नाकसे श्वास लेवे, तृषा और वातसे पीडित हो वह अवश्य प्राणोंका त्याग करेगा ॥ ११॥

मसूरिकाके उपद्रव।

मसूरिकांते शोथः स्यात्कूर्परे मणिबन्धके।
तथांसफलके वापि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ॥ १२ ॥

भाषा–अब मसूरिकाके उपद्रव कहते हैं। मसूरिकाके अंतमें कोनी, पहुँचे और कंधेमें सूजन आ जाय तो वह चिकित्सा करनेमें अत्यन्त कठिन है ॥ १२ ॥

इति मसूरिकारोगनिदानं समाप्तम्।

अथ मसूरिकारोगचिकित्सा।

वमनकाथचूर्णादिक्रिया।

सर्वासां वमनं पथ्यं पटोलारिष्टवासकैः। कषायैश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्पितैः॥ द्विपंचमूली रास्ना च दार्व्युशीरं दुरालभा। सामृतं धान्यकं मुस्तं जयेद्वातसमुत्थिताम्॥ निम्बं पर्पटकं पाठां पटोलं कटुरोहिणीम्। वासां दुरालभां धात्रीमुशीरं चन्दनद्वयम्॥ एष निम्बादिकः ख्यातः पीतः शर्करया युतः। हन्ति त्रिदोषमसूरीं ज्वरवीसर्पसम्भवाम्॥ उत्थिता प्रविशेद्या तु पुनस्तां बाह्यतो नयेत्। पटोलतण्डुलीमुस्तवृषधान्ययवासकैः॥ भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम्। मसूरिशान्तये दद्यात् पक्वाश्चैव विशोषयेत्॥ नातः परतरं किंचित् विस्फोटज्वरशान्तये। खदिरत्रिफलारिष्टपटोलामृतवासकैः॥ क्वाथोऽष्टकाख्यो जयति रोमान्तिकमसूरिकाम्। कुष्ठवीसर्पविस्फोटकण्ड्वादीनपि पानतः॥ सौवीरेण तु संपिष्टं मातुलुंगस्य केशरम्। प्रलेपात् पातयत्याशु दाहश्चाशु नियच्छति॥ लिहेद्वा वा-

दरं चूर्णं पाचनार्थं गुडेन तु। अनेनाशु विपच्यन्ते वातपित्तकफात्मिकाः॥ चैत्रासितभूतदीने वक्तपताकान्विताखुद्दीभवने। धवलितकलशे न्यस्ता पापरोगं च दूरतो धत्ते॥ नारीणां वामपार्श्वस्थं नराणामपसव्यगम्। पापरोगभयं दूरात् शिवास्थि विनिवारयेत्॥ उष्ट्रकण्टकमूलं वाप्यनन्तामूलमेव वा। विधिगृहीतं ज्येष्ठाम्बु पीतं हन्ति मसूरिकाम्॥ यावत् संख्यामसूर्य्यङ्के तावद्भिः शेलुजैर्दलैः। छिन्नैरातुरराम्ना तु गुडिकेति न वर्द्धते॥ तर्पणं वातजायां प्राक् लाजचूर्णैः सशर्करैः। भोजनं तिक्तयूषैश्च प्रतुदानां रसेन च॥ १३॥

भाषा-पटोलपात, नीम और अडूसेके काथमें वच, इन्द्रजौ, मुलहठी और मैनफलका चूर्ण मिलाकर रोगीको पिलाकर वमन करावे। दशमूल, रायसन, दारुहलदी, खस, धमासा, गिलोय, धनिया और नागरमोथा इनका काथ बनाकर पान करनेसे वातज मसूरिका दूर होती है। नीम, पित्तपापडा, पाढ, पटोलपात, कुटकी, अडूसा, धमासा, आमले, खस, चन्दन, लालचंदन इन सबोंका काथ बनाकर चीनी मिलाकर पान करे। इससे त्रिदोषज मसूरिका, ज्वर और विसर्परोग दूर होता है तथा जो मसूरिका भीतरको समा जाती है वह फिरसे प्रकाशित हो जाती हैं। पटोलपात, चौलाई, नागरमोथा, अडूसा, धनिया, जवासा, चिरायता, नीम, कुटकी और पित्तपापडा इनका काथ बनाकर पान करनेसे पक्व मसूरिका नष्ट होती है तथा विस्फोटक ज्वरभी अवश्य नष्ट होता है। खैर, त्रिफला, नीम, पटोलपात, गिलोय, अडूसा इन सबोंका काथ बनाकर पान करनेसे रोमान्तिक मसूरिका, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोट और कण्ड्वादि दोष दूर होते हैं। बिजेरे नीबूकी केशरको कांजीमें पीसकर प्रलेप करनेसे मसूरिका शीघ्र पक जाती है और उनकी दाह दूर होती है। बेरोंका चूर्ण गुडमें मिलाकर चाटनेसे वातपित्तज और कफज मसूरिका शीघ्र पक जाती है। चैत्रमासके कृष्णपक्षकी चौदशके दिन श्वेतकलसके ऊपर लाल पताका युक्त थूहरकी शाखा स्थापन करे, उसको पीसकर धारण करनेसे मसूरिका रोग उत्पन्न नहीं होता है। स्त्रियोंकी बांई पसलीपर और पुरुषकी दाहिनी पसलीपर हरडका बीज धारण करनेसे मसूरिका रोग दूर होता है। ऊंटकटेरीकी जडको अथवा अनंतमूलको चावलोंके जलमें पीसकर सेवन करनेसे मसूरिका रोग दूर होता है। रोगीके शरीरमें जितनी मसूरिकाकी फुंसी निकलें, उतनीही बार रोगी-

का नाम लेकर उतनेही लिहसोडेके पत्तोंको छेदता जावे, तो अधिक मसूरिका नहीं निकलती हैं । वातज मसूरिका रोगमें प्रथम तो चीनीके साथ खीलोंका चूर्ण भक्षण करे उससे जब तृप्ति हो जाय तब कडवे पदार्थोंका रस, परेवादि पक्षियोंका मांस यूषके साथ भोजन करे । इससे उक्तरोग शांत होता है ॥ १३ ॥

अमृतादिः ।

अमृतादिकषायं च विसर्पोक्तं प्रयोजयेत् ॥ अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे । विविधविषविसर्पान् कुष्ठविस्फोटकण्डूरपनयति मसूरी शीतपित्तं ज्वरं च॥ पाककाले तु सर्वास्ता विशोषयति मारुतः । तस्मात् संबृंहणं कार्य्यं नतु पथ्यं विशोषणम् ॥ पिबेदम्भस्तप्तशीतं भावितं खदिराशनैः । शौचे वारि प्रयुञ्जीत गायत्रीबहुवारजम् ॥ जातीपत्रं समञ्जिष्ठं दार्वी पूगफलं शमी । धात्रीफलं समधुकं कथितं मधुसंयुतम् ॥ मुखरोगे कण्ठरोधे गण्डूषार्थं प्रशस्यते । पंचवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमवचूर्णयेत् ॥ भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद् गोमयरेणुना । कृमिपातभयाच्चापि धूपयेत् सरलादिभिः॥ पंचतिक्तं प्रयुञ्जीत पानाभ्यञ्जनभोजनैः । कुर्याद् व्रणविधानं च तैलादीन् परिवर्जयेत् ॥ १४ ॥

भाषा-गिलोय, अडूसा, पटोलपात, नागरमोथा, सतवन, खैर, काला बेत, नीमके पत्ते, हलदी और दारुहलदी इनका काथ पान करनेसे नाना प्रकारके विष, विसर्प, कुष्ठ, विस्फोट, कण्डू, मसूरिका, शीतपित्त और ज्वर दूर होता है । मसूरिकाकी फुडियें पकनेके समय वायुसे सूखती हैं अतएव उस समय शुष्क भोजन न करे और पुष्टिकारक भोजन करे । खैर और विजयसारको जलमें औटावे जब शीतल हो जाय तो रोगीको पीनेको देवे तथा खैर और लिहसोडेके पत्तोंका औटाया हुआ जल शौचकर्मके लिये देवे । चमेलीके पत्र, मजीठ, दारुहलदी, सुपारी, छोंकर, आमले और मुलहठी इनका क्वाथ बनाकर सहत डालके मुखरोग और कण्ठरोधमें गण्डूष धारण करे । मसूरिकारोगमें राध अधिक होय तो बड, गूलर, पीपल, पाखर और बेत इनकी छालका चूर्ण करके मसूरिकाकी फुंसियोंपर बुरक देवे तथा अरनेउपलोंकी भस्म या चूर्ण घावमें लगावे । मसूरिकारोगमें कृमि प-

इनके मयसे सरल धूप, राल, देवदारु, चन्दन और अगर आदिके द्वारा रोगीको धूंआ देवे। मसूरिका रोगमें नीम, गिलोय, अडूसा और पटोलपात इनका पान, अभ्यंग और भोजनमें प्रयोग करे। इसके सिवाय व्रणरोगोक्त सम्पूर्ण उपचार और तैलादि प्रयोग करे॥ १४॥

इति मसूरिकारोगचिकित्सा समाप्ता।

अथ क्षुद्ररोगनिदानम्।

अजगल्लिका।

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा।
कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका॥ १॥

भाषा–जो फुंसी चिकनी, शरीरके व्रणकी समान व्रणवाली, गांठसी बंधी हुई, पीडारहित और मूंगकी समान बालकोंके उत्पन्न हो उसको अजगल्लिका कहते हैं। वह वातकफोत्पन्न जाननी॥ १॥

यवप्रख्याके लक्षण।

यवाकारासु कठिना ग्रथिता मांससंश्रिता।
पिडिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति चोच्यते॥ २॥

भाषा–जो फुंसी जौके आकार, कठिन, गठीली, मांसमिश्रित, वातकफसे उत्पन्न हो उसको यवप्रख्या कहते हैं॥ २॥

अंधालजी।

घनामवक्त्रां पिटिकामुन्नतां परिमण्डलम्।
अंधालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम्॥ ३॥

भाषा–जो फुंसी घन, मुखरहित, ऊंची, मण्डलाकार और अल्पराधयुक्त हो उसको कफवातोद्भव अंधालजी कहते हैं॥ ३॥

विवृतापिडिकाके लक्षण।

विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसन्निभाम्।
परिमण्डलां पित्तकृतां विवृतां नाम तां विदुः॥ ४॥

भाषा–जो फुंसी फैले मुखकी, अत्यन्त दाहयुक्त, पके गूलरकी समान और चारों ओर मण्डलाकार हो जावे उसको पित्तसे उत्पन्न हुई विवृता जानना॥ ४॥

कच्छपिकाके लक्षण ।

ग्रथिताः पंच वा षड् वा दारुणाः कच्छपोन्नताः ।
कफानिलाभ्यां पिडिका ज्ञेया कच्छपिका बुधैः ॥ ५ ॥

भाषा-पांच या छः फुंसी गठीली, अत्यन्त दारुण और कछुएकी समान ऊपरको उठी हुई एक जगह उत्पन्न हो उसको कफवातोत्पन्न कच्छपिका कहते हैं॥५॥

वल्मीकपिडिकाके लक्षण ।

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे सन्धौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः ।
ग्रन्थिः सवल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम् ॥
मुखैरनेकैः स्रुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः ।
वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥ ६ ॥

भाषा-गरदन, कंधे, कोख, हाथ, पांव, संधि और गलेमें तीनों दोषोंके कुपित होनेसे सांपकी बँवईकी समान गांठें उत्पन्न होवें, उनकी चिकित्सा न करनेसे वह शनैः शनैः बढकर फैल जाय तब उनके बहुतसे मुह हो जांय तथा उनमें राध बहे, तोडने सरीखी पीडा हो फिर वह मुखपर किंचित् ऊंची होकर विसर्पकी समान फैल जाती है उस वल्मीकरोगको वल्मीक कहते हैं । इसकी औषधि करना अत्यन्त कठिन है । यह पुराना हो जानेसे असाध्य हो जाता है ॥ ६ ॥

इन्द्रवृद्धाके लक्षण ।

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडिकाभिः समाचिताम् ।
इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ ७ ॥

भाषा-प्रथम बीचमें एक बडी फुंसी कमलकी कर्णिकाकी समान उत्पन्न हो फिर उसके चारों ओर बहुतसी छोटी छोटी फुंसी उत्पन्न हों उसको वातपित्तोद्भव इन्द्रवृद्धा कहते हैं ॥ ७ ॥

गर्दभिकाके लक्षण ।

मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिटिकाचितम् ।
रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ८ ॥

भाषा-जो फोडा मण्डलकी समान गोल, ऊंचा, लाल हो और जिसके चारों ओर छोटी छोटी फुंसी हों तथा जिसमें अत्यन्त पीडा हो उसको वातपित्तोत्पन्न गर्दभिका जानना ॥ ८ ॥

पाषाणगर्दभलक्षण ।

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसंधिजः ।
स्थिरो मंदरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥ ९ ॥

भाषा-वातकफसे ठोडीकी संधिमें सूजन उत्पन्न हो, वह कठिन हो, उसमें पीडा कम हो तथा चिकनी हो उसको पाषाणगर्दभ कहते हैं ॥ ९ ॥

पनसिकाके लक्षण ।

कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडिकामुग्रवेदनाम् ।
स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥ १० ॥

भाषा-कानके भीतर जो फुंसी अत्यन्त पीडायुक्त और कठिन उत्पन्न हो उनको वातकफोत्पन्न पनसिका कहते हैं ॥ १० ॥

जालगर्दभके लक्षण ।

विसर्पवत्सर्पति यः शोथस्तनुरपाकवान् ।
दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ ११ ॥

भाषा-विसर्पकी समान फैलनेवाली, पतली और पाकरहित सूजन हो, उसके होनेसे शरीरमें दाह और ज्वर हो उसको पित्तोद्भव जालगर्दभ कहते हैं ॥ ११ ॥

इरिवेल्लिकाके लक्षण ।

पिडिकामुत्तमांगस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम् ।
सर्वात्मिकां सर्वलिंगां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥ १२ ॥

भाषा-जो फुंसी मस्तकमें गोल, उग्रपीडा और ज्वरसहित उत्पन्न हो तथा जिसमें त्रिदोषके लक्षण मिलते हैं उसको त्रिदोषोद्भव इरिवेल्लिका जानना ॥ १२ ॥

कक्षाके लक्षण ।

बाहुकक्षांसपार्श्वेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् ।
पित्तकोपसमुद्भूतां कक्षामित्यभिनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

भाषा-जो बाहु, कोख, कंधे और पसलियोंमें काले रंगका वेदनायुक्त कृष्णव्रणका फोडा उत्पन्न हो उसको पित्तोद्भव कक्षा कहते हैं ॥ १३ ॥

गंधनाम्नीके लक्षण ।

एकामेतादृशीं दृष्ट्वा पिडिकां स्फोटसन्निभाम् ।
त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धनाम्नीं प्रचक्षते ॥ १४ ॥

भाषा-जो एकही पिडिका फोडेकी समान बडी त्वचामें उत्पन्न होती है उसको पित्तजन्य गंधनाम्नी कहते हैं ॥ १४ ॥

अग्निरोहिणीके लक्षण ।

कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारुणाः । अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः ॥ सप्ताहाद्वादशाहाद्वा पक्षाद्वा हन्ति मानवम् । तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सान्निपातिकीम् ॥ १५ ॥

भाषा-कांखके भागोंमें मांसको विदीर्ण करनेवाले जो फोडे उत्पन्न होते हैं उनके होनेसे अन्तर्दाह और ज्वर होता है तथा वे फोडे प्रज्वलित अग्निकी समान होते हैं। वह सात दिन या बारह दिन अथवा पन्द्रह दिनमें मनुष्यको मार देते हैं उसको सन्निपातोद्भव अग्निरोहिणी कहते हैं वह असाध्य है ॥ १५ ॥

चिप्यके लक्षण ।

नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तं च देहिनाम् ।
कुर्वाते दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्यमादिशेत् ॥
तदेवाल्पतरैर्दोषैः कुनखं परुषं वदेत् ॥ १६ ॥

भाषा-वात और पित्त मनुष्योंके नखोंके मांसमें प्राप्त होकर दाह और पाकको करते हैं, उसको चिप्य ऐसा कहते हैं। यदि इसमें दोषोंकी अल्पता होवे तो यह कुनख कहा जाता है ॥ १६ ॥

अनुशयके लक्षण ।

गम्भीरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरि स्थिताम् ।
पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादन्तःप्रपाकिनीम् ॥ १७ ॥

भाषा-जो पिडिका पैरमें उत्पन्न होती है वह भीतरही पके, उसमें किंचित् सूजन हो, शरीरके रंगकी समान उसका रंग हो उसको अनुशयी कहते हैं ॥१७॥

विदारिकाके लक्षण ।

विदारिकन्दवद् वृत्ता कक्षावंक्षणसंधिषु ।
विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा ॥ १८ ॥

भाषा-जो फोडा जांघ वंक्षणकी संधिमें विदारीकंदकी समान गोल और लाल रंगका उत्पन्न होता है वह त्रिदोषोद्भव विदारिका है। उसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हैं ॥ १८ ॥

शर्कराके लक्षण।

प्राप्य मांसं शिराः स्नायुः श्लेष्मा मेदस्तथानिलः। ग्रंथिं करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम्॥ स्रवत्यास्रावमनिलस्तत्र वृद्धिंगतः पुनः। मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्ततः॥१९॥

भाषा-कफ, मेद और वायु ये तीनों दोष मांस, शिरा और स्नायुमें जाकर गांठको उत्पन्न करते हैं। जब वह गांठ फूटती है तब उसमेंसे सहत, घी और चर्बीकी समान राध बहै फिर उसमें वायु बढकर मांसको सुखाके अनेक गांठें उत्पन्न करै उसको शर्करा कहते हैं॥ १९॥

शर्करार्बुदके लक्षण।

दुर्गन्धि क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः।
सृजंति रक्तं सहसा तद्विद्याच्छर्करार्बुदम्॥ २०॥

भाषा-शर्करा होनेके पश्चात् नाडियोंके द्वारा दुर्गंधित क्लिन्न विविधवर्णका रक्त बहै उसको शर्करार्बुद कहते हैं॥ २०॥

पाददारीके लक्षण।

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः।
पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रिताम्॥ २१॥

भाषा-अत्यन्त मार्ग चलनेवाले मनुष्यके पांव वायुके योगसे रूखे हो जाते हैं तब वह वायु पैरोंके तलुओंको विदीर्ण कर देती है, उसमें पीडा हो उसको पाददारी कहते हैं॥ २१॥

कदरके लक्षण।

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः।
ग्रंथिः कोलवदुत्पन्नो जायते कदरं तु तत्॥ २२॥

भाषा-पांवमें कंकर छिदनेसे अथवा कण्टकादिके लगनेसे छोटे बेरकी समान जो गांठ उत्पन्न होती है उसको कदर (ठेठ) कहते हैं॥ २२॥

अलसके लक्षण।

क्लिन्नांगुल्यंतरौ पादौ कण्डूदाहरुजान्वितौ।
दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत्॥ २३॥

भाषा-पांवोंकी अंगुलीके तळके मीगे रहनेसे और सडी हुई कीच तथा मेघादिकके जलमें बहुत फिरनेसे अंगुलियोंके बीचमें सफेद दादसे हो जांय उनमें अ-

स्यन्त खुजली, दाह और पीडा हो उसको अलस (खारुआ) कहते हैं ॥ २३ ॥

इंद्रलुप्त (चाई) के लक्षण ।

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम् । प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥ रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोन्येषामसंभवः । तदिंद्रलुप्तं खालित्यं प्राहुश्चाचेति चापरे ॥ २४ ॥

भाषा-वातके साथ पित्त कुपित होकर रोमकूपोंमें प्राप्त होके रोमोंको गिराता है । पश्चात् रुधिरके साथ कफ रोमके छिद्रोंको रोक देता है, उससे फिर बाल नहीं जमते इसको इन्द्रलुप्त (गंज), खालित्य और रुज्या कहते हैं ॥ २४ ॥

दारुणकके लक्षण ।

दारुणा कंडुरा रूक्षा केशभूमिः प्रजायते ।
कफमारुतकोपेन विद्याद्दारुणकं तु तम् ॥ २५ ॥

भाषा-बालोंके जमनेकी जमीन कफ और वातके कुपित होनेसे कठिन और रूखी होकर अत्यंत खुजाती है उसको दारुणक कहते हैं ॥ २५ ॥

अरूंषिकाके लक्षण ।

अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदानि मूर्धनि ।
कफासृक्कृमिकोपेन नृणां विद्यादरूंषिकाम् ॥ २६ ॥

भाषा-मनुष्योंके मस्तकमें कफ, रुधिर और कृमिके कोपसे बहुतसी अनेक मुखवाली फुंसी हो जांय उनमेंसे राध बहे उसको अरुंषिका कहते हैं ॥ २६ ॥

पलितके लक्षण ।

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ।
पित्तं च केशान् पचति पलितं तेन जायते ॥ २७ ॥

भाषा--अत्यंत क्रोध, शोक और परिश्रम करनेसे उत्पन्न हुई शरीरकी गरमी पित्तके साथ मिलकर मस्तकमें प्राप्त होकर बालोंको पका देती है अर्थात् सफेद कर देती है उसको पलितरोग कहते हैं ॥ २७ ॥

मुखदूषिकाके लक्षण ।

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतकोपजाः ।
जायन्ते पिडिका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः ॥ २८ ॥

भाषा-कफवातके कुपित होनेसे युवा मनुष्यके मुखपर सेमलके कांटोंकी समान पिडिका उत्पन्न होती हैं उनको मुखदूषिका (मुहासे) कहते हैं ॥ २८ ॥

पद्मिनीकंटकके लक्षण।

कण्टकैराचितं वृत्तं मण्डलं पाण्डुकण्डुरम्।
पद्मिनीं कण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम्॥ २९॥

भाषा-मण्डलकी समान गोल फोडा कमलके कांटोंकी समान चारों ओर कांटोंसे व्याप्त किंचित् पीलापनयुक्त हो उसमें खुजली चले उसको पद्मिनीकण्टक कहते हैं। वह कफवातसे होता है॥ २९॥

जंतुमणिके लक्षण।

समसुत्सन्नमरुजं मण्डलं कफरक्तजम्।
सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जंतुमणिः स्मृतः॥ ३०॥

भाषा-सम और ऊंचा, पीडारहित, मण्डलाकार, गोल ऐसा जन्मसेही मनुष्योंके शरीरमें चिह्न हो उसको जंतुमणि कहते हैं। यह कफरक्तज है। अंगभेदसे इसके शुभाशुभ फल कहते हैं॥ ३०॥

माषके लक्षण।

अवेदनं स्थिरं चैव यस्मिन् गात्रे प्रदृश्यते।
माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्माषमादिशेत्॥ ३१॥

भाषा-किसी अंगमें वातसे पीडारहित, स्थित, उडदकी समान काली और किंचित् ऊंची गांठ उत्पन्न हो उसको माष अर्थात् मस्सा कहते हैं॥ ३१॥

तिलकालकके लक्षण।

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च।
वातपित्तकफोत्सेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान्॥ ३२॥

भाषा-काले तिलकी समान, पीडारहित, त्वचाकी समान जो शरीरमें चिह्न होते हैं उनको तिलकालक अर्थात् तिल कहते हैं। यह वातपित्तकफज है॥ ३२॥

न्यच्छके लक्षण।

महद्वा यदि वाऽप्यल्पं श्यावं वा यदि वा सितम्।
नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते॥ ३३॥

भाषा-जो बडा अथवा छोटा, काला या धूसर, पीडारहित ऐसा किसी अंगमें मण्डल हो उसको न्यच्छ कहते हैं॥ ३३॥

व्यंग (झांई) के लक्षण।

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः।

मुखमागत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः ॥
नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यंगं तमादिशेत् ॥ ३४ ॥

भाषा-क्रोध और श्रमसे पित्तके साथ वायु कुपित होकर एक साथ मुखमें प्राप्त होकर मुखपर काला, पतला और पीडारहित मण्डल उत्पन्न करे है उसको व्यंग (झांई) कहते हैं ॥ ३४ ॥

नीलिकाके लक्षण ।

कृष्णमेवं गुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः ॥ ३५ ॥

भाषा-व्यंगकी समान लक्षणोंवाला जो काला मण्डल अंगमें अथवा मुखपरही होय उसको नीलिका कहते हैं । व्यंग और नीलिकामें केवल इतनाही अंतर है कि व्यंग ललाई लिये काला होता है और नीलिका विशेष कालाही होता है ॥ ३५ ॥

परिवर्तिकाके लक्षण ।

मर्दनात्पीडनाद्वापि तथैवाप्यभिघाततः । मेढ्रचर्म्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन् ॥ तदा वातोपसृष्टत्वात्तच्चर्म परिवर्तते । मणेरधस्तात्कोशस्तु ग्रंथिरूपेण लंबते॥ सवेदनं सदाहं च पाकं च व्रजति क्वचित्। परिवर्तिकेति तां विद्यात्सरुजां वातसंभवाम्॥ सकण्डूः कठिना वापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता ॥ ३६ ॥

भाषा-लिंगको मर्दन करनेसे या पीडित अर्थात् दबानेसे अथवा किसी तरहकी चोटके लग जानेसे, व्यानवायु कुपित होकर लिंगके चर्ममें प्राप्त होकर विचरती फिरे है, तब मणि और लिंगके अग्रभागका चर्म वायुके लगनेसे फिर जावे अर्थात् अलग हो जाय और सुपारीके नीचे गांठसी होकर लटके, उसमें पीडा और दाह होवे, कोई २ पकभी जाती है उसको परिवर्त्तिका कहते हैं । जो वह वातसे होय तो उसमें पीडा अधिक होती है और जो कफज होय तो खुजली अधिक हो और कठिनभी होती है ॥ ३६ ॥

अवपाटिकाके लक्षण ।

अल्पीयस्यां यदा हर्षाद्बलाद्गच्छेत्स्त्रियं नरः । हस्ताभिघातादथ वा चर्म्मण्युद्वर्तिते बलात् ॥ मर्दनात्पीडनाद्वापि शुक्रवेगविधारणात् । यस्यावपाट्यते चर्म्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥३७॥

भाषा-अखण्डितयोनिवाली स्त्रीसे हर्षके साथ बलपूर्वक प्रसंग करनेसे अथवा हाथकी चोटके लगनेसे या जोरसे लिंगके चर्मको उलटनेसे अथवा मर्दन करने-

से किंवा दबानेसे या वीर्य्यके वेगको रोकनेसे लिंगके बंद होनेका चर्म जगह २ से चिर जाय उसको अवपाटिका रोग कहते हैं ॥ ३७ ॥

निरुद्धप्रकाशकके लक्षण

वातोपसृष्टे मेढ्रे तु चर्म्म संश्रयते मणिम् । मणिश्चर्म्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च॥ निरुद्धप्रकाशके तस्मिन् मंदधारमवेदनम् । मूत्रं प्रवर्त्तते जंतोर्मणिर्विव्रीयते न च ॥ निरुद्धप्रकाशकं विद्यात्सरुजं वातसंभवम् ॥ ३८ ॥

भाषा–लिंगमें वातके कुपित होनेसे लिंगका चर्म सुपारीके ऊपर चढकर वैसाही स्थिर रह जाता है फिर वह सुपारी चर्मके सकुच जानेसे मूत्रके मार्गको रोक देती है, उससे मूत्र रुक रुककर धीरे धीरे पीडारहित निकले और सुपारी नहीं खुले, इसको निरुद्धप्रकाश कहते हैं । इसमें सुपारीके चर्ममें पीडा होती है यह वातज है ॥३८॥

सन्निरुद्धगुदके लक्षण

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदसंस्थितः । निरुणद्धि महास्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति । सन्निरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात्सुदारुणम् ॥ ३९ ॥

भाषा–मलके वेगको धारण करनेसे गुदामें रहनेवाली अपानवायु मल निकलनेवाले गुदाके छेदको रोककर गुदद्वारको छोटा कर देवे, उसके छोटे हो जानेसे मल अत्यन्त कष्टसे उतरे उस दारुणरोगको संनिरुद्धगुद कहते हैं ॥ ३९ ॥

अहिपूतनाके लक्षण ।

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् । स्विन्ने वा स्नाप्यमाने वा कण्डू रक्तकफोद्भवा ॥ ततः कण्डूयनात्क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते । एकीभूतं व्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥४०॥

भाषा–मल मूत्रसे सनी हुई बालककी गुदाको न धोनेसे या पसीना आनेसे अथवा न वाहनेसे रुधिर और कफ दूषित होकर खुजलीको उत्पन्न करे । फिर खुजानेसे तत्काल फुंसी हो जांय, उनमेंसे चेप निकले फिर वह फुंसी सब एकत्रित होकर छत्तासा हो जाय तब इस भयंकर रोगको अहिपूतना कहते हैं ॥४०॥

वृषणकच्छूके लक्षण ।

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः । यदा प्रक्लिद्यते स्वे-

दात्कण्डूः संजायते तदा॥ कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटाः स्रावश्च जायते। प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम्॥ ४१॥

भाषा–स्नान करते समय जो मनुष्य अंडकोषके मैलको नहीं धोता तब वह सूखकर जम जाता है, फिर पसीना आनेसे गीला हो जाता है तब अंडकोषोंमें अत्यंत खुजली उठती है उसको खुजानेसे शीघ्रही फुंसी हो जाती हैं; उनमेंसे स्राव होता है पश्चात् सब परस्पर मिलकर चकचेसे हो जाते हैं इसको वृषणकच्छू कहते हैं। यह कफवातसे उत्पन्न होती है॥ ४१॥

गुदभ्रंशके लक्षण।

प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं बहिः।
रूक्षदुर्बलदेहस्य गुदभ्रंशं तमादिशेत्॥ ४२॥

भाषा–रूखे और दुबले मनुष्योंके अतिसार और कोंचकरके मल निकालनेके कारण गुदा बाहरको निकल आती है उस रोगको गुदभ्रंश (कांच) कहते हैं॥४२॥

सूकरदंष्ट्रके लक्षण।

सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः।
कण्डूमान् ज्वरकारी च स स्यात्सूकरदंष्ट्रकः॥ ४३॥

भाषा–जो सूजन दाहसहित, लाल किनारोंवाली हो तथा जिसकी त्वचा पकनेवाली, जिसमें अत्यन्त पीडा और खुजली एवं ज्वर हो उसको शूकरदंष्ट्र (सुअरदाढ) कहते हैं॥ ४३॥

इति क्षुद्ररोगनिदानं समाप्तम्।

अथ क्षुद्ररोगचिकित्सा।

लेपविधिः।

तत्राजगल्लिकानाम्नीं जलौकाभिरुपाचरेत्। शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षीरकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः॥ अन्त्रजालीं कच्छपिकां तथा पाषाणगर्दभम्। सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत्॥ जयेद्विदारिकं लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः। पनसिकां कच्छपिकामनेन विधिना भिषक्॥ विजयेत् कठिनानन्यान् शोथान् दोषसमुद्भ-

वान् । एलामांसीकुष्ठसुरायुक्तमभ्यङ्गतः शिव ॥ गुञ्जाफलं समाप्यैव लेपनमिन्द्रलुप्तनुत् । आम्रास्थिचूर्णलेपाद्धि केशाः सूक्ष्मा भवन्ति वै॥बद्धमूला घना दीर्घाः स्निग्धाः स्युर्नोत्पतन्ति च। विडङ्गगन्धपाषाणसाधितं तैलमुत्तमम् ॥ गोमूत्रं सर्वमेकत्र समनःशिलमेव च। शिरोऽभ्यङ्गाच्छिरोजन्ययूकालिख्याः क्षयं नयेत् ॥ नवदुग्धशंखचूर्णघृष्टसीसकलेपिताः। कचाः श्लक्ष्णा महाकृष्णा भवन्ति वृषभध्वज ॥ ४४ ॥

भाषा–अपक्क अजगल्लिका रोगमें जोंक लगवावे तथा सींप और सोरठकी मट्टीको दूधमें पीसकर वारंवार प्रलेप करे। देवदारु, मैनशिल और कूठ इनको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर प्रथम स्वेद देकर फिर प्रलेप करे तो अन्धालजी, कच्छपिका और पाषाणगर्दभसंज्ञक पिडिका नष्ट होती है। सहजनेकी छाल और देवदारुको पीसकर प्रलेप करनेसे विदारिका पिडिका नष्ट होती है तथा इसी औषधिका पनसिका, कच्छपिका और अन्यान्य कठिन सूजनमेंभी प्रयोग करे। इलायची, बालछड, कूठ, कपूरकचरी और घुंघची इन सबोंको एकत्र पीसकर शिरमें लेप करनेसे इन्द्रलुप्तरोग (गंज) नष्ट होता है। आमकी गुठलीको बारीक पीसकर शिरपर लगानेसे बाल बारीक, दृढमूल, सघन, दीर्घ और सचिक्कण हो जाते हैं। वायविडंग, गंधक, तेल, गोमूत्र और मैनशिल इन सबोंको एकत्र करके तैलको पकाकर शिरसे मलनेसे शिरकी जूं और लीख नष्ट हो जाती हैं। तत्कालके दुहे हुए दूधमें शंखके चूर्णको सीसेके पात्रमें घिसकर लेप करनेसे सफेद बाल काले हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

भृङ्गराजतैलम्।

भृङ्गराजं लोहचूर्णं त्रिफला बीजपूरकम्। नीला च करवीरं च गुडमेतैः समैः भृतम् ॥ पतितानि च कृष्णानि कुर्याल्लेपान्महौषधम्। आम्रास्थि मज्जा त्रिफला नीली च भृङ्गराजकम् ॥ जीर्णं पक्वं लोहचूर्णं काञ्जिकं कृष्णकेशकृत्। सप्तरात्रात् प्रजायन्ते खल्वाटस्य कचाः शुभाः ॥ दग्धहस्तिदन्तलेपाद्वाक्षीररसाञ्जनात्। भृङ्गराजरसेनैव चतुर्भागेन साधितम् ॥ केशवृद्धिकरं तैलं गुञ्जाचूर्णस्थितेन च ॥ ४५ ॥

भाषा-भांगरा, लोहेका चूर्ण, आमला, हरड, बहेडा, बिजोरे नीबूकी जड, नील, कनेरकी जड और पुराना गुड इन सब पदार्थोंके द्वारा तेलको पकाकर बालोंमें लगानेसे सफेद बाल काले हो जाते हैं। आमकी गुठलीकी मींगी, त्रिफला, नीमके वृक्षकी जड, भांगरा और शुद्ध लोहेका चूर्ण इन सबोंको कांजीमें पीसकर प्रलेप करनेसे सफेद बाल काले हो जाते हैं। जले हुए हाथीदांतकी भस्म और रसौत इनको बकरीके दूधमें पीसकर लेप करनेसे गंजे मनुष्यके शिरपर बाल जम जाते हैं। भांगरेका रस ४ सेर, तिलका तेल १ सेर और घूंघचीके बीजोंका चूर्ण आधसेर इनको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे तेलको पकावे। इस तेलको मर्दन करनेसे केशोंकी वृद्धि होती है॥ ४५॥

कुंकुमाद्यं तैलम्।

कुङ्कुमं चन्दनं लाक्षा मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका। कालीयकमुशीरं च पद्मकं नीलमुत्पलम्॥ न्यग्रोधपादाः प्लक्षस्य शुङ्गाः पद्मस्य केशरम्। द्विपंचमूलसहितैः कषायैः पलिकैः पृथक्॥ जलाढके विपक्तव्यं पादशेषमथोद्धरेत्। मञ्जिष्ठा मधुकं लाक्षा पतङ्गमधुयष्टिका॥ कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं पचेत्। अजाक्षीरं तद्द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥ सम्यक् पक्वं परं ह्येतान् मुखवर्णप्रसादनम्। नीलिकाः पीडका व्यङ्गा अभ्यङ्गादेव नाशयेत्॥ सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत् काञ्चनसन्निभः। कुंकुमाद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा॥ ४६॥

भाषा-केशर, चंदन, लाख, मजीठ, मुलहठी, कलम्बक, खस, पद्माख, नीलोत्पल, पीपलकी जड, बडकी जड, कमलकेशर और दशमूलकी सम्पूर्ण औषधि ये प्रत्येक औषधि चार चार तोले लेकर आठ सेर जलमें पकावे, जब दो सेर जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे फिर इस क्काथमें मजीठ, महुआ, लाख, पतंग और मुलहठी प्रत्येकका कल्क एक एक तोला, तिलका तेल आध सेर और बकरीका दूध एक सेर मिलाकर शनैः शनैः मंद मंद अग्निसे पकावे। इस तेलको शरीरमें मर्दन करनेसे मुख और शरीरका रंग प्रसन्न होता है तथा नीलिका, व्यंग आदि अनेक प्रकारकी पिडिका दूर होती हैं। इसको सात दिनतक शरीरसे मर्दन करनेसे शरीरका रंग कांचनकी समान कांतियुक्त होता है। यह कुंकुमाद्य तैल अश्विनीकुमारोंने निर्माण किया है॥ ४६॥

मधुरौषधिसिद्धघृतम्।

श्लेष्मविद्रधिकल्पेन भवेदनुशयीं भिषक्। विवृतामिन्द्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्दभम्॥ इरिवेल्लिकां गन्धमालां जयेत् पित्तविसर्पवत्। मधुरौषधसिद्धेन सर्पिषा शमयेद्व्रणम्॥ ४७॥

भाषा–अनुशयी रोगमें कफज विद्रधिकी समान चिकित्सा करे तथा विवृता, इन्द्रवृद्धा, गर्दभी, जालगर्दभ, इरिवेल्लिका और गंधमालारोगमें पित्तविसर्पकी समान चिकित्सा करे। एवं मधुरऔषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए घृतसे उनके व्रणोंको शमन करे॥ ४७॥

रक्तमोक्षणादिप्रकारः।

रक्तावसेकैर्बहुभिः स्वेदनैरपतर्पणैः। जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः॥ पनसिकां कच्छपिकामनेन विधिना भिषक्। साधयेत् कठिनानन्यान् शोथान् दोषसमुद्भवान्॥ ४८॥

भाषा–विदारिकारोगमें वारंवार रक्तमोक्षण, स्वेदप्रदान, शोषणकर्म तथा सहजने और देवदारुको पीसकर प्रलेप देवे। पनसिका, कच्छपिका और अन्यान्य कठिन शोथरोगोंमेंभी इसी विधिसे चिकित्सा करे॥ ४८॥

शस्त्रक्रियाविधिः।

शस्त्रेणोद्धृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत्। मनःशिलालभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः॥ जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत्। वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुद्रवम्॥ ४९॥

भाषा–वल्मीकरोगमें शस्त्रसे चीरकर क्षार और अग्निकर्म प्रयोग करे तथा मनशिल, भिलावे, छोटी इलायची, अगर, लाल चंदन और चमेलीके पत्ते इन सब औषधियोंके कल्कके द्वारा नीमका तेल पकाकर लेप करे। इससे बहुछिद्र और अत्यन्त राधयुक्त वल्मीकरोग दूर होता है॥ ४९॥

स्वेदादिक्रिया।

सशोथं व्रणगन्धं च प्रवृद्धं मर्म्मसु स्थितम्। हस्तपादस्थितं चापि वल्मीकं परिवर्ज्जयेत्॥ पाददारीषु तु शिरां वेधयेत्तलशोधिनीम्। स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ चालेपयेन्मुहुः॥ मधूच्छिष्टवसामज्जघृतक्षारैर्विमिश्रयेत्॥ ५०॥

भाषा-सूजनयुक्त, दुर्गंधित, अत्यन्त बढा हुआ, मर्मस्थानमें उत्पन्न हुआ और हाथपांवोंमें उत्पन्न हुआ ऐसे वल्मीकरोगकी वैद्य चिकित्सा न करे। पाददारीरोगमें तलशोधिनी शिराको वेधकर स्नेह और स्वेद प्रदान करे तथा मोम, चर्बी, मज्जा, घी और जवाखार इनका लेप करे ॥ ५० ॥

क्षारजलप्रकारः ।

उपोदिकासर्षपनिम्बमोचककर्कारुकेर्वारुकभस्मतोये । तैलं विपक्कं लवणं सकल्कं तत्पाददारीं विनिहन्ति शीघ्रम् ॥ अलसेऽम्लैश्चिरं सिक्तौ चरणौ परिलेपयेत् । पटोलारिष्टकासीसत्रिफलाभिर्मुहुर्मुहुः ॥ दहेत् कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा । चिप्पमुष्णाम्बुना स्विन्नमुत्कृत्याभ्यज्य तं व्रणम् ॥ दत्वा सर्जरसं चूर्णं बुद्ध्या व्रणवदाचरेत् ॥ ५१ ॥

भाषा-पोईके पत्ते, सफेद सरसों, नीमके पत्ते, केलेका मोचा, पेठा और ककडी इनकी भस्म बनाकर क्षारजल बनावे। उस क्षारजलके द्वारा नमकके साथ तेलको पकाकर लेप करनेसे पाददारीरोग दूर होता है। अलसकरोगमें रोगीके दोनों पांवोंको बहुत समयतक कांजीमें डुबोय रक्खे फिर पटोलपात, नीम, कसीस और त्रिफला इनको पीसकर वारंवार प्रलेप करे। कदररोगमें शस्त्रसे चीरकर उष्ण तेल या अग्निसे दग्ध करे। चिप्परोगमें उष्ण जल, स्वेद तथा उस स्थानमें छेदन और तैलादिका लेप कर रालका चूर्ण बुरक देवे। फिर विचारकर व्रणकी समान चिकित्सा करे ॥ ५१ ॥

हरिद्रारसमक्षण ।

स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृष्णायसेऽभयाम् ।
घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्यं मुहुर्मुहुः ॥ ५२ ॥

भाषा-लोहेके पात्रमें हलदीका रस डालकर उसमें हरडको घिसकर वारंवार लेप करनेसे चिप्परोग दूर होता है ॥ ५२ ॥

घृतपानम् ।

निम्बोदकेन वमनं पद्मिनी कण्टके हितम् ।
निम्बोदककृतं सर्पिः सक्षौद्रं पानमिष्यते ॥ ५३ ॥

भाषा-नीमके काथको पान कराकर वमन करावे तथा नीमके काथके साथ घी पकाकर सहत मिलाकर पान करे ॥ ५३ ॥

घृतलेपः।

नीलीपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपनं हितम्। जालगर्द्दभरोगे तु सद्यो हन्ति च वेदनम्॥ अहिपूतनके धात्र्याः पूर्वं स्तन्यं विशोधयेत्। त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां धारणं सदा॥ करञ्जत्रिफलातिक्तैः सर्पिः सिद्धं शिशोर्हितम्। रसांजनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम्॥ गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्याशु प्रवेशयेत्। प्रविष्टे स्वेदयेच्चापि बद्धं गोष्फणया भृशम्॥ कोमलं पद्मिनीनालं यः खादेच्छर्करान्वितम्। एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः॥ वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीविश्वपाठयवाग्रजम्। क्षारेण शीलयेत् पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम्॥ मूषिकानां वसाभिर्वा गुदे सम्यक् प्रलेपनम्। स्विन्नमूषिकमांसेन अथवा स्वेदयेद् गुदम्॥ गोतैलाभ्यङ्गनाच्छीघ्रं प्रविशेन्निर्गतो गुदः॥ ५४॥

भाषा—नीलकी जड और पटोलपातकी जड दोनोंको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर प्रलेप करनेसे जालगर्दभ रोगकी पीडा दूर होती है। अहिपूतनरोगमें प्रथम धायके दूधको शुद्ध करे पश्चात् त्रिफला और खैरके क्वाथसे उसके व्रणको धोवे। करंजके बीज, त्रिफला और तिक्त औषधियोंके द्वारा सिद्ध किया हुआ घी बालकोंके भक्षण करावे तथा मर्दन करे तथा रसौतका पान और लेपमें प्रयोग करे। इससे अहिपूतनरोग नष्ट होता है। गुदभ्रंश (कांच) में तेल लगाकर भीतर कर देवे, फिर स्वेद देकर कौपीन खैंचकर बांध देवे, परन्तु कौपीनमें एक छेद कर देवे, जिससे कि उस छेदसे मल निकलता रहे। जो मनुष्य कमलकी कोमल नालको चीनीके साथ सेवन करता है उसके फिर कभीभी गुदभ्रंशरोग उत्पन्न नहीं होता तथा गुदभ्रंशजन्य संपूर्ण पीडा दूर हो जाती है। बिपांबिल, चीतेकी जड, बिजोरा, नीबू, सोंठ, पाढ और जवाखार इन सबोंको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे गुदभ्रंशरोग दूर होता है और अग्नि दीपन होती है। गुदभ्रंशरोगमें चूहेकी चर्बीसे गुदभ्रंश (कांच) को लेपे अथवा चूहेके मांसको सिद्ध करके स्वेद देवे तथा गायकी चर्बीसे मर्दन करनेसे बाहरको निकली हुई कांच भीतरको प्रविष्ट हो जाती है॥ ५४॥

मूषिकाद्यं तैलम्।

क्षीरे महत्पञ्चमूलं मूषिकामन्त्रवर्जिताम्।

पक्त्वा तस्मिन् पचेत्तैलं वातघ्नौषधसंयुतम् ॥
गुदभ्रंशमिदं तैलं पानाभ्यङ्गात् प्रसाधयेत् ॥ ५५ ॥

भाषा-बृहत्पंचमूल और आँतोंरहित चूहेके मांसको दूधमें पकावे, उस दूध और वातनाशक औषधियोंके द्वारा तैलको पकाकर पान और गुदादेशमें मर्दन करनेसे गुदभ्रंशरोग दूर होता है ॥ ५५ ॥

क्षाराग्निकर्म ।

चर्मकीलं जतुमणिं मशकांस्तिलकालकान् ।
उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत् क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥ ५६ ॥

भाषा-चर्मकीलक, जतुमणि, मशक और तिलकालक इन सब रोगोंको शस्त्रसे चीरकर क्षार और विशेष करके अग्निकर्म करे ॥ ५६ ॥

शिरावेधः ।

यूषान् पीडिकान्यच्छनीलिकाव्यङ्गशर्कराः ।
शिरावेधैः प्रलेपैश्च जयेदभ्यञ्जनैस्तदा ॥ ५७ ॥

भाषा-तरुणपीडिका, न्यच्छ, नीलिका, व्यंग और शर्करा इन सब रोगोंमें शिरावेध और ऊपरोक्त तैलादि मर्दन करे ॥ ५७ ॥

श्वेताश्वखुरभस्मलेपः ।

व्यङ्गेषु चार्जुनत्वग्वा मंजिष्ठा वा समाक्षिका ।
लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मसी ॥ ५८ ॥

भाषा-व्यंगरोगमें अर्जुनकी छाल या मजीठको सहतके साथ तथा सफेद घोडेके खुरकी भस्मको नैनीघीमें मिलाकर प्रलेप करे ॥ ५८ ॥

मसूरिकालेपः ।

रक्तचंदनमंजिष्ठाकुष्ठलोध्रप्रियङ्गवः । वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः ॥ मसूरैः सर्पिषा भृष्टैर्लिप्तमास्यं पयोन्वितैः ।
सप्तरात्राद्भवेत्सत्यं पुण्डरीकदलप्रभम् ॥ ५९ ॥

भाषा-लाल चंदन, मजीठ, कूठ, लोध, वडके अंकुर, फूलप्रियंगू और मसूरकी दाल इन सबोंको पीसकर प्रलेप करनेसे मुखकी व्यंग (झांई) दूर होकर मुखका रंग उज्ज्वल हो जाता है । मसूरकी दालको घीमें भूनकर दूधमें पीसकर सात दिनतक प्रलेप करनेसे मुख कमलकी समान प्रसन्न हो जाता है ॥ ५९ ॥

कनकतैलम्।

मधूकस्य कषायेण तैलस्य कुडवं पचेत्। कल्कैः प्रियंगुमञ्जिष्ठाचन्दनोत्पलकेशरैः॥ कनकं नाम तत्तैलं मुखकान्तिकरं परम्। आभीरुनीलिकाव्यङ्गशोधनं परमार्चितम्॥ ६०॥

भाषा–मुलहठीका काथ १ सेर, तिलका तेल पावभर, फूलप्रियंगू, मजीठ, लाल चन्दन और कमलकेशर इन सबोंको कल्क ४ तोले लेवे। सबोंको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे तेलको पकावे। इस तेलका प्रलेप करनेसे अभीरु, नीलिका और व्यंगरोग दूर होकर मुखकी कान्ति बढती है॥ ६०॥

मंजिष्ठाद्यं तैलम्।

मंजिष्ठा मधुकं लाक्षा मातुलुङ्गं सयष्टिकम्। कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा॥ आजं पयस्तद्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। नीलिकापिडिकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत्॥ मुखं प्रपन्नोपचितं वलीपलितवर्जितम्। सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत् कनकसन्निभम्॥
अरूंषिकायां रुधिरेऽवसिक्ते शिराव्यधेनाथ जलौकसा वा।
निम्बाम्बुसिक्ते शिरसि प्रलेपो देयोऽश्ववर्चोरससैन्धवाभ्याम्॥
पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य वा। मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरूंषिकाम्॥ ६१॥

भाषा–तिलका तेल पावभर, बकरीका दूध आधसेर, कल्कके लिये मजीठ, महुएके फूल, लाख, बिजोरे नीबू और मुलहठी प्रत्येक एक एक तोला लेवे। यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे। इस तेलको पकाकर पान और मर्दन करनेसे नीलिका, पिडिका और व्यंगरोग दूर होता है। मुखकमल प्रफुल्लित हो जाता है। वलि और पलितरोग नष्ट होते हैं। इसको सात दिनपर्यंत सेवन करनेसे शरीर कंचनकी समान दीप्तिमान् होता है। अरुंषिकारोगमें प्रथम शिराको वेधकर या जोंक लगवाकर रक्तमोक्षण करावे। पश्चात् नीमके काथसे शिरको धोकर घोडेकी लीदका रस और सेंधानोन एकत्र मिलाकर लेप करे, परंतु स्मरण रक्खो कि सबसे पहिले शिरको मुँडवाना अवश्य चाहिये। पुरानी सरसोंकी खली अथवा मुरगेकी विष्ठाको गोमूत्रमें पीसकर प्रलेप करनेसे अरुंषिका शीघ्र नष्ट होती है॥ ६१॥

द्विहरिद्राद्यं तैलम्।

हरिद्राद्वयभूनिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः। एतत्तैलमरूंषीणां सिद्ध-

मभ्यंजने हितम् ॥ दारुणे तु शिरां विध्येत् स्निग्धस्विन्नां ललाटजाम् । अवपीडशिरोबस्तिमभ्यङ्गांश्चावचारयेत् ॥ सहनीलोत्पलकेशरयष्टिमधुतिलसममामलकम् । चिरजातमपि शीर्षे दारुणरोगं शमयति ॥ ६२ ॥

भाषा-हलदी, दारुहलदी, चिरायता, त्रिफला, नीम और चन्दन इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर मर्दन करनेसे अरुंषिकारोग दूर होता है । दारुणकरोगमें मस्तकमें स्निग्ध स्वेद देकर फिर उस स्थानकी शिराको वेधकर रक्तमोक्षण करावे तथा अवपीड, शिरोबस्ति और तैलादि प्रयोग करे। नीलोत्पल, नागकेशर, मुलहठी और तिल तथा आमले इन सबोंको एकत्र जलमें पीसकर प्रलेप करनेसे बहुत दिनोंका दारुणरोग दूर होता है ॥ ६२ ॥

त्रिफलाद्यं तैलम् ।

त्रिफलायोरजोयष्टिमार्कवोत्पलशारिवैः ।
ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गाद्रूक्षिकां जयेत् ॥ ६३ ॥

भाषा-त्रिफला, लोहेका चूर्ण, मुलहठी, भांगरा, कमल, अनन्तमूल और सेंधानोन इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर मर्दन करनेसे रूक्षता नष्ट होती है॥६३॥

गुञ्जातैलम् ।

गुञ्जाफलैः पचेत्तैलं भृंगराजरसेन तु ।
कण्डूदारुणजित्कुष्ठकपालव्याधिनाशनः ॥ ६४ ॥

भाषा-घुंघचीके कल्क और भांगरेके क्वाथके द्वारा तेलको पकाकर मर्दन करनेसे खुजली, दारुण और कपालकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६४ ॥

प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम् ।

प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः ।
कार्षिकैस्तैलकुडवस्तैर्द्विरामलकीरसः ॥
साध्यः सप्रतिमर्षः स्यात् सर्वशीर्षगुदापहः ॥ ६५ ॥

भाषा-पुण्डरिया, मुलहठी, पीपल, चन्दन और कमल प्रत्येकका कल्क एक एक तोला, तिलका तेल आधसेर, आमलोंका स्वरस १ सेर सबोंको मिलाकर यथाविधिसे तैलको पकावे । इस तेलका नास लेनेसे सर्व प्रकारको शिरके रोग और गुदाके रोग दूर होते हैं ॥ ६५ ॥

मालत्याद्यं तैलम्।

मालतीकरवीराग्निनक्तमालविपाचितम्।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापहं परम्॥
इदं हि त्वरितं हन्ति दारुणं नियमं नृणाम्॥ ६६॥

भाषा-मालतीके फूल, कनेर, चीता और करंज इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर मलेप करनेसे इन्द्रलुप्तरोग दूर होता है। तथा यही तेल तत्काल दारुणरोगको दूर करे है॥ ६६॥

चन्दनाद्यं तैलम्।

चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नीलमुत्पलम्। कान्ता वटावरोहश्च गुडूची विषमेव च॥ लोहचूर्णं तथा केशी शारिवे द्वे तथैव च। मार्कवस्वरसेनैव तैलं मृद्वग्निना पचेत्॥ शिरस्युपचिताः केशा जायन्ते घनकुंचिताः॥ स्निग्धाश्च दृढमूलाश्च तथा भ्रमरसन्निभाः॥ नस्येनाकालपलितं निहन्यात्तैलमुत्तमम्॥ ६७॥

भाषा-चन्दन, मुलहठी, मूर्वा, त्रिफला, नीलोत्पल, फूलप्रियंगू, बडके अंकुर, गिलोय, मीठा विष, लोहेका चूर्ण, भूकेशी, कालीसर और गौरीसर इनके कल्क और भांगरेके काथके द्वारा तिलके तेलको मंदमंद अग्निसे पकावे। इस तेलको शिरमें डालनेसे तथा नास लेनेसे पके हुए बाल सघन, कुंचित, सचिक्कन, दृढमूल और भौंरेकी समान कृष्णवर्ण हो जाते हैं तथा विना समयमें सफेद हुए बाल काले हो जाते हैं॥ ६७॥

यष्टिमध्वाद्यं तैलम्।

तैलं सयष्टिमधुकैः क्षीरे धात्रीफलैः शृतम्।
नस्यं दत्तं जनयति केशान् श्मश्रूणि चाप्यथ॥ ६८॥

भाषा-तिलका तेल, मुलहठीका कल्क, गायका दूध और आमलोंका काथ इन सबोंको एकत्र मिलाकर यथाविधिसे तेलको सिद्ध कर नास देनेसे तथा मर्दन करनेसे बाल और डाढी मूछ उत्पन्न होती है॥ ६८॥

केशरञ्जकः।

त्रिफला नीलिनीपत्रं लोहभृंगरजः समम्। अविदुग्धेन संयुक्तं कृष्णीकरणमुत्तमम्॥ उत्पलं पयसा सार्द्धं मासं भूमौ निधापयेत्। केशानां कृष्णीकरणं स्नेहनं च विधीयते॥ ६९॥

भाषा-त्रिफला, नीलके पत्ते, लोहेका चूर्ण और भांगरा ये सब समान भाग लेकर भेडके दूधमें पीसकर बालोंमें लगानेसे बाल काले हो जाते हैं। नीलोत्पलको दूधमें पीसकर एक पक्षतक जमीनमें गाड देवे फिर निकालकर बालोंमें लगानेसे बाल काले और चिकने हो जाते हैं ॥ ६९ ॥

महानीलतैलम्।

आदानीवल्ल्या मूलानि कृष्णशैरीयकस्य च। सुरतस्य च पत्राणि फलं कृष्णशणस्य च॥ शर्करा काकमाची च मधुकं देवदारु च। पृथक् दशपलं शालिपिप्पल्यस्त्रिफलांजनम्॥ प्रपौण्डरीकमंजिष्ठा लोध्रं कृष्णागुरूत्पलम्। आम्रास्थिकर्दमः कृष्णो मृणाली रक्तचन्दनम्॥ नीली भल्लातकास्थीनि कासीसं मदयन्तिका। सोमराज्यशनं शस्त्रं कृष्णौ पिण्डीतचित्रकौ॥ पुष्पाण्यर्ज्जुनकाश्मर्योराम्रजम्बूफलानि च। पृथक् पंचपलैर्भागैः सुपिष्टं राढकं पचेत्॥ बिभीतकस्य तैलस्य धात्रीरसचतुर्गुणम्। कुर्य्यादादित्यपकं वा यावत् शुष्को भवेद्रसः॥ लोहपात्रे ततः पूतं संशुद्धमुपयोजयेत्। पाने नस्ये क्रियायाश्च शिरोऽभ्यङ्गे तथैव च॥ एतच्चक्षुष्यमायुष्यं शिरसः सर्वरोगनुत्। महानीलमिति ख्यातं पलितघ्नमनुत्तमम्॥ ७० ॥

भाषा-देवदालीकी जड (या कडवी तोरईकी जड), काले पियेवांसकी जड, तुलसीके पत्ते, कालीशनके फल, भांगरा, मकोय, मुलहठी और देवदारु प्रत्येक दश दश पल; पीपल, त्रिफला, रसोत, पुण्डेरिया, मजीठ, लोध, काली अगर, निलोत्पल, आमकी, गुठली, काली कींच, मृणाल, लाल चन्दन, नीलकाठ, मिलावेकी मींगी, कासीस, मोतियाके फूल, बावची, विजयसार, लोहा, मैनफल, चीतेकी जड, अर्जुनके फूल, कुम्भेरके फूल, आमके फल और जामुन प्रत्येक पांच पांच पल लेकर पीस लेवे। बहेडेका तेल आठ सेर, आमलोंका स्वरस बत्तीस सेर, सबोंको यथाविधिसे मिलाकर जबतक रस न सूख जाय तबतक सूर्यपाक करे। तैल तैय्यार हो जाय तब छानकर लोहेके बासनमें कर देवे। इसको पान नस्य और शिरसे मर्दन करे। यह तेल नेत्रोंको अत्यन्त हितकारी है तथा सम्पूर्ण शिरके रोगोंको दूर करें है। यह महानीलतैल पलितनाशक है॥ ७० ॥

शय्यामूत्रचिकित्सा ।

कृतमूत्रार्द्रभूभागमृदमाकृष्य खोलके । संभज्य मधुसर्पिर्भ्यां लेहयेन्मूत्रितं जनम् ॥ शय्यायां मूत्ररोधः स्यान्मूत्रितस्य न संशयः । निम्बमूलरसः पानात् शय्यामूत्रं प्रशाम्यति ॥ अहिफेनप्रयोगेण मूत्ररोधो भवेद् ध्रुवम् ॥ ७१ ॥

भाषा–जो मनुष्य खाटपर मूत रहते हैं उनको चाहिये कि उसी खाटके तलेकी मट्टी लेकर सहत और घीमें मिलाकर चाटे तो उक्तरोग दूर होता है । कन्दूरीकी जडके रसका पान करनेसे शय्यामूत्ररोग (खाटपर मूत रहना) दूर होता है अथवा संध्यासमय एक रत्ती या आधी रत्ती अफीमको खानेसे शय्यामूत्ररोग दूर होता है ॥ ७१ ॥

लोमशातनविधिः ।

हरितालचूर्णकणिकालेपसप्तेन वारिणा सद्यः । निपतन्ति लोमनिचयाः कौतुकमिदमद्भुतं मन्ये ॥ कर्पूरभल्लातकशंखचूर्णक्षारो यवानां च मनःशिला च । तैलं सुपक्वं हरितालमिश्रं रोमाणि निर्मूलयति क्षणेन ॥ ७२ ॥

भाषा–हरिताल और चूनेको गरम जलमें पीसकर बालोंके स्थानमें लगानेसे तत्काल बाल गिर जाते हैं । कपूर, भिलावे, शंखका चूना, जवाखार, मैनशिल और हरिताल इन सबोंको कल्कके द्वारा तेलको पकाकर बालोंके स्थानमें लगानेसे रोम निर्मूल हो जाते हैं ॥ ७२ ॥

इति क्षुद्ररोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ मुखरोगनिदानम् ।

संख्यारूपसंप्राप्ति ।

दन्तेष्वष्टावोष्ठयोश्च मूलेषु दश पंच च ।
नव तालुनि जिह्वायां पंचसप्तदशामयाः ॥
कण्ठे त्रयः सर्वसरा एकषष्टिचतुःपरे ॥ १ ॥

भाषा–दंतरोगोंमें आठ, होठोंमें रोग आठ, दंतमूलोंमें पन्द्रह, तालुमें नव,

जिह्वामें पांच, कंठमें सत्तरह और सब मुहमें फैलनेवाले तीन रोग इस प्रकार ये सब ६५ मुखरोग हैं ॥ १ ॥

होठोंके रोगोंकी संप्राप्ति ।

आनूपपिशितक्षीरदधिमाषादिसेवनात् ।
मुखमध्ये गदान्कुर्य्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः ॥ २ ॥

भाषा–आनूप (खादर) देशके जीवोंके मांस, दूध, दही और उडद आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे कफादिक दोष कुपित होकर मुखमें रोगोंको उत्पन्न करे हैं॥२॥

वातिक ओष्ठरोगके लक्षण ।

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ कृष्णौ तीव्ररुजान्वितौ ।
दाल्येते परिपाट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः ॥ ३ ॥

भाषा–वातके कुपित होनेसे होंठ कठिन, खरखरे, सूजे हुए, काले, अत्यन्त पीडायुक्त, मानो दो टूक हो जांयगे और किंचित् फट जाते हैं ॥ ३ ॥

पैत्तिकके लक्षण ।

चीयते पिडिकाभिस्तु सरुजाभिः समंततः ।
सदाहपाकपिडिकौ पीताभासौ च पित्ततः ॥ ४ ॥

भाषा–पित्तके कुपित होनेसे होठमें चारों तरफ फुंसी हों, उनमें पीडा, दाह और पाक तथा होठोंमें पीलापन होता है ॥ ४ ॥

श्लेष्मिकके लक्षण ।

सवर्णाभिस्तु चीयेते पिडिकाभिरवेदनौ ।
भवतस्तु कफादोष्ठौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरू ॥ ५ ॥

भाषा–कफके कुपित होनेसे होठोंमें त्वचाके रंगकी बहुतसी फुंसी हों, किंचित् पीडा हो, चिकने, ठंडे और भारी होते हैं ॥ ५ ॥

सान्निपातिकके लक्षण ।

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च ।
सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिडिकान्वितौ ॥ ६ ॥

भाषा–एक साथ तीनों दोषोंके कुपित होनेसे होंठ कभी काले, कभी पीले, कभी सफेद और अनेक फुंसियोंसहित होते हैं ॥ ६ ॥

रक्तजके लक्षण ।

खर्जूरीफलवर्णाभिः पिडिकाभिर्निपीडितौ ।

रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ७॥

भाषा-रुधिरके कुपित होनेसे होठोंमें खजूरके रंगकी फुंसी हों, उनमेंसे रुधिर चुहे और होठोंका रंग रक्तकी समान लाल होता है ॥ ७॥

मांसजके लक्षण ।

मांसदुष्टौ गुरुस्थूलौ मांसपिंडवदुद्गतौ ।
जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखम् ॥ ८ ॥

भाषा-मांसके दूषित होनेसे होंठ भारी, मोटे, मांसके पिंडकी समान ऊंचे होते हैं। इस मांसज ओष्ठरोगमें मनुष्यके दोनों गलफुओंमें कीडे पड जाते हैं॥८॥

मेदोजके लक्षण ।

सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ गुरू ।
स्वच्छं स्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतो भृशम् ॥
तयोर्व्रणो न संरोहेन्मृदुत्वं च न गच्छति ॥ ९ ॥

भाषा-मेदके दूषित होनेसे होंठ घी और मांडकी समान होते हैं, उनमें खुजली चले तथा भारी होते हैं, फटिक मणिकी समान निर्मल, अधिक स्राव हो और उनमें उत्पन्न हुआ व्रण न नरम होता है और न भरे है ॥ ९ ॥

अभिघातजके लक्षण ।

ओष्ठौ पर्यवदीर्येते पीड्येते चाभिघाततः ।
ग्रथितौ च तदा स्यातां कण्डूक्लेदसमन्वितौ ॥ १० ॥

भाषा-अभिघातज ओष्ठरोगमें होंठ चिर जावें या फट जांय, उनमें पीडा हो, गांठ हो जाय, खुजली चले और क्लेद होता है ॥ १० ॥

शीतादके लक्षण ।

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते । दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥ दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम् । शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ॥ ११ ॥

भाषा-अब दंतमूलगत रोगोंको कहते हैं। उनमें प्रथम शीतादरोगको कहते हैं। जिसके दंतमूल अर्थात् मसूडोंसे अकस्मात् रुधिर वहे और मसूडोंका मांस दुर्गंध, काला, क्लेदयुक्त, कोमल होकर गलके गिरे । एक मसूढा पककर दूसरेको परस्पर पकावे इसको शीताद कहते हैं। यह कफरुधिरसे उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥

दन्तपुप्पुटके लक्षण ।

दन्तयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथुर्जायते महान् ।
दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥ १२ ॥

भाषा-जिसके दो या तीन दांतोंमें महासूजन हो उसको दंतपुप्पुट कहते हैं। वह कफरक्तज है ॥ १२ ॥

दन्तवेष्टके लक्षण।

स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च ।
दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसम्भवः ॥ १३ ॥

भाषा-जिसके दांतोंमेंसे रुधिर या राध बहे और दांत हिलें उसको दंतवेष्ट-रोग कहते हैं ॥ १३ ॥

सौषिरके लक्षण ।

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफरक्तजः ।
लालास्रावी स विज्ञेयः सौषिरो नाम नामतः ॥ १४ ॥

भाषा-कफरक्तके कुपित होनेसे दांतोंकी जडमें पीडायुक्त सूजन हो और उसमेंसे लारसी बहे उसको सौषिररोग कहते हैं ॥ १४ ॥

महासौषिरके लक्षण ।

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ।
यस्मिन्स सर्वतो व्याधिर्महासौषिरसंज्ञकः ॥ १५ ॥

भाषा-जिसमें त्रिदोषके कुपित होनेसे दांत मसूढोंसे अलग हो जांय और तालुवा फट जावे उसको महासौषिररोग कहते हैं ॥ १५ ॥

परिदरके लक्षण ।

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्ष्ठीव्यति चाप्यसृक् ।
पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ॥ १६ ॥

भाषा-जिसमें मसूढोंका मांस गल जाय और थूकते समय रुधिर गिरे उसको परिदररोग कहते हैं। वह पित्तरक्त और कफज है ॥ १६ ॥

उपकुशके लक्षण ।

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च । अघाकृकृताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनाः ॥ आध्मायन्ते युते रक्ते मुखे पूतिश्च जायते । यस्मिन्नुपकुशो नाम पित्तरक्तकृतो मदः ॥ १७ ॥

भाषा-मसूढोंमें दाह और पाक हो तथा दांत हलने लगे, मसूढोंके घिसनेसे रुधिर गिरने लगे, अल्प पीडा हो, रुधिरके गिरनेसे मसूढे तत्काल सूज जांय और मुखमें दुर्गंध आवे उस रोगको उपकुश कहते हैं। वह पित्तरक्तसे होता है ॥१७॥

वैदर्भके लक्षण ।

घृष्टेषु दन्तमूलेषु सरम्भो जायते महान् ।
भवन्ति चपला दन्ताः स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ १८ ॥

भाषा-जिसमें मसूढोंके रगडे जानेसे अधिक सूजन आ जाय और दांत हिलने लगें उसको वैदर्भ कहते हैं। वह अभिघातज है ॥ १८ ॥

खल्लीवर्धके लक्षण ।

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः ।
खल्लीवर्द्धनसंज्ञो वै जाते रुक् च प्रशाम्यति ॥ १९ ॥

भाषा-वातके कुपित होनेसे दांतके ऊपर दांत जमें, जमती समय उसमें पीडा हो और जब जम जाय तब पीडा शमन हो जाय उस रोगको खल्लीवर्द्धन कहते हैं ॥ १९ ॥

करालके लक्षण ।

शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः ।
करालान्विकटान् दन्तान्करालो न च सिद्धयति ॥ २० ॥

भाषा-दांतोंमें स्थित वायु शनैः शनैः दांतोंको ऊंचा नीचा टेढा तिरछा कर देवे उसको कराल कहते हैं। वह रोग असाध्य है ॥ २० ॥

अधिमांसके लक्षण ।

हानव्ये पश्चिमे दन्ते महाञ्छोथो महारुजः ।
लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयो ह्यधिमांसकः ॥ २१ ॥

भाषा-जिसमें पीछेकी डाढके नीचे महासूजन हो और तीव्र पीडा हो और अत्यन्त लार गिरे उस रोगको अधिमांस कहते हैं। यह कफज है ॥ २१ ॥

नाडीव्रणके लक्षण ।

दन्तमूलगता नाड्यः पंच ज्ञेया यथेरिताः ॥ २२ ॥

भाषा-दांतोंकी जडमें पांच प्रकारके नाडीव्रण होते हैं उनके लक्षण पूर्वोक्त नाडीव्रणके लक्षणोंकी समान जानने ॥ २२ ॥

दालनके लक्षण ।

दीर्यमाणेष्विव रुजा यस्य दन्तेषु जायते ।

दन्तपुप्पुटके लक्षण।

दन्तयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथुर्जायते महान्।
दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः॥ १२॥

भाषा-जिसके दो या तीन दांतोंमें महासूजन हो उसको दंतपुप्पुट कहते हैं। वह कफरक्तज है॥ १२॥

दन्तवेष्टके लक्षण।

स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च।
दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसम्भवः॥ १३॥

भाषा-जिसके दांतोंमेंसे रुधिर या राध बहे और दांत हिलें उसको दंतवेष्टरोग कहते हैं॥ १३॥

सौषिरके लक्षण।

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफरक्तजः।
लालास्रावी स विज्ञेयः सौषिरो नाम नामतः॥ १४॥

भाषा-कफरक्तके कुपित होनेसे दांतोंकी जडमें पीडायुक्त सूजन हो और उसमेंसे लारसी बहे उसको सौषिररोग कहते हैं॥ १४॥

महासौषिरके लक्षण।

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते।
यस्मिन्स सर्वतो व्याधिर्महासौषिरसंज्ञकः॥ १५॥

भाषा-जिसमें त्रिदोषके कुपित होनेसे दांत मसूढोंसे अलग हो जांय और तालुवा फट जावे उसको महासौषिररोग कहते हैं॥ १५॥

परिदरके लक्षण।

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्ष्ठीव्यति चाप्यसृक्।
पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः॥ १६॥

भाषा-जिसमें मसूढोंका मांस गल जाय और थूकते समय रुधिर गिरे उसको परिदररोग कहते हैं। वह पित्तरक्त और कफज है॥ १६॥

उपकुशके लक्षण।

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च। अघट्टिताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनाः॥ आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखे पूतिश्च जायते। यस्मिन्नुपकुशो नाम पित्तरक्तकृतो मदः॥ १७॥

भाषा-मसूढोंमें दाह और पाक हो तथा दांत हलने लगे, मसूढोके घिसनेसे रुधिर गिरने लगे, अल्प पीडा हो, रुधिरके गिरनेसे मसूढे तत्काल सूज जांय और मुखमें दुर्गंध आवे उस रोगको उपकुश कहते हैं। वह पित्तरक्तसे होता है ॥१७॥

वैदर्भके लक्षण ।

घृष्टेषु दन्तमूलेषु सरम्भो जायते महान् ।
भवन्ति चपला दन्ताः स वैदर्भोऽभिघातजः ॥ १८ ॥

भाषा-जिसमें मसूढोंके रगडे जानेसे अधिक सूजन आ जाय और दांत हिलने लगें उसको वैदर्भ कहते हैं। वह अभिघातज है ॥ १८ ॥

खल्लीवर्धके लक्षण ।

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः ।
खल्लीवर्द्धनसंज्ञो वै जाते रुक् च प्रशाम्यति ॥ १९ ॥

भाषा-वातके कुपित होनेसे दांतके ऊपर दांत जमें, जमती समय उसमें पीडा हो और जब जम जाय तब पीडा शमन हो जाय उस रोगको खल्लीवर्द्धन कहते हैं ॥ १९ ॥

करालके लक्षण ।

शनैः शनैः प्रकुरुते वायुर्दन्तसमाश्रितः ।
करालान्विकटान् दन्तान्करालो न च सिद्ध्यति ॥ २० ॥

भाषा-दांतोंमें स्थित वायु शनैः शनैः दांतोंको ऊंचा नीचा टेढा तिरछा कर देवे उसको कराल कहते हैं। वह रोग असाध्य है ॥ २० ॥

अधिमांसके लक्षण ।

हानव्ये पश्चिमे दन्ते महाञ्छोथो महारुजः ।
लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयो ह्यधिमांसकः ॥ २१ ॥

भाषा-जिसमें पीछेकी डाढके नीचे महासूजन हो और तीव्र पीडा हो और अत्यन्त लार गिरे उस रोगको अधिमांस कहते हैं। यह कफज है ॥ २१ ॥

नाडीव्रणके लक्षण ।

दन्तमूलगता नाड्यः पंच ज्ञेया यथेरिताः ॥ २२ ॥

भाषा-दांतोंकी जडमें पांच प्रकारके नाडीव्रण होते हैं उनके लक्षण पूर्वोक्त नाडीव्रणके लक्षणोंकी समान जानने ॥ २२ ॥

दालनके लक्षण ।

दीर्यमाणेष्विव रुजा यस्य दन्तेषु जायते ।

दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ २३ ॥

भाषा-जिसके दांतोंमें चीरने सरीखी पीडा हो उसको दालनरोग कहते हैं। वह वातके निमित्तसे होता है ॥ २३ ॥

कृमिदन्तके लक्षण ।

कृष्णच्छिद्रश्चलस्रावी ससंरम्भो महारुजः ।
अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञेयः कृमिदन्तकः ॥ २४ ॥

भाषा-वायुके कुपित होनेसे दांतोंमें काले छिद्र पड जांय, दांत हलने लगें, उनमेंसे स्राव हो, पीडा अधिक हो, सूजन हो, विनाकारण दूखे उसको कृमिदंत कहते हैं ॥ २४ ॥

भंजनके लक्षण ।

वक्त्रं वक्रं भवेद्यस्य दन्तभंगश्च जायते ।
कफवातकृतो व्याधिः स भंजनकसंज्ञितः ॥ २५ ॥

भाषा-जिसमें मुख टेढा हो जाय और दांत टूट जांय उसको दंतभंजन कहते हैं। वह कफवातज जानना ॥ २५ ॥

दन्तहर्षके लक्षण ।

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः ।
पित्तमारुतकोपेन दन्तहर्षः स नामतः ॥ २६ ॥

भाषा-जिसमें दांत शीत, रूक्ष, खटाई और वात आदिके स्पर्शको नहीं सह सकें उसको दंतहर्ष कहते हैं। वह पित्तवातके कोपसे होता है ॥ २६ ॥

दन्तशर्कराके लक्षण ।

मलो दन्तगतो यस्तु पित्तमारुतशोणितः ।
शर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ २७ ॥

भाषा-दांतोंमें मैल पित्तवातके योगसे सूखकर रेतेकी समान खरखरा स्पर्श मालुम हो उस रोगको दंतशर्करा कहते हैं ॥ २७ ॥

कपालिकाके लक्षण ।

कपालेष्विव दीर्णेषु दन्तानां सैव शर्करा ।
कपालिकेति सा ज्ञेया सदा दन्तविनाशिनी ॥ २८ ॥

भाषा-उसी दंतशर्करारोगमें मैलसहित दांत कपाल अर्थात् खिपडेकी समान फटें और टूटें उसको कपालिका कहते हैं। वह दांतोंको सदैव तोड तोडकर गेरे है॥२८

श्यावदन्तके लक्षण ।

योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः ।
श्यावतां नीलतां वापि गतः स श्यावदन्तकः ॥ २९ ॥

भाषा-जिसमें दांत रुधिरसे मिले हुए पित्तसे दग्ध होकर काले लाल मिश्रित रंगके हो जांय उसको श्यावदंत कहते हैं ॥ २९ ॥

हनुमोक्षके लक्षण ।

वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसंधिर्विसंहतः ।
हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः ॥ ३० ॥

भाषा-वातकरके तिस तिस हनुसंधिमें अभिघात लगनेसे दांत हलने लगें उसको हनुमोक्ष कहते हैं । उसके लक्षण अर्दितरोगकी समान जानने ॥ ३० ॥

वातज जिह्वारोगके लक्षण ।

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ॥३१॥

भाषा-वातके कोपसे जिह्वा फटीकी समान शून्य और सागोनके पत्तेकी समान खरखरी होती है ॥ ३१ ॥

पित्तजके लक्षण ।

पित्तेन पीता परिदह्यते च दीर्घैः सरक्तैरपि कंटकैश्च ॥ ३२ ॥

भाषा-पित्तके कोपसे जिह्वा पीली, दाहयुक्त और बडे बडे लाल लाल कांटों संयुक्त होती है ॥ ३२ ॥

कफजके लक्षण ।

कफेन गुर्वी बहलाचिता च मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाभैः३३॥

भाषा-कफके कोपसे जिह्वा भारी और मोटी होती है तथा उसमें सेमलके कांटोंकी समान कांटे होते हैं ॥ ३३ ॥

अलासके लक्षण ।

जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ।
जिह्वां स तु स्तंभयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम्३४॥

भाषा-कफरक्तके कोपसे जिह्वाके नीचे अत्यन्त कठोर सूजन हो, उसको अलास कहते हैं । वह यदि अधिक बढ जाय तो जिह्वा जकड जाय और जडमें पकने लगती है ॥ ३४ ॥

उपजिह्वाके लक्षण ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः स जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तमूर्त्तिः ।
लालाकरः कण्डुयुतः सचोषः सा तूपजिह्वा कथिता भिषग्भिः ३५

भाषा–कफरक्तके कोपसे जिह्वाकी नोकके समान जीभके तले जो सूजन उत्पन्न हो उसमें लार अधिक बहे, खुजली चले और जलन हो उसको उपजिह्वा कहते हैं ॥ ३५ ॥

तालुगत कंठशुण्डीरोगके लक्षण ।

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोथो ध्मातबस्तिप्रकाशः ।
तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कण्ठशुंडीति नाम्ना३६॥

भाषा–कफ रुधिरके कोपसे तालुवेकी जडमें भरी हुई मसककी समान महासूजन हो तथा उसमें तृषा, खांसी और श्वास हो उसको कंठशुण्डी कहते हैं ॥३६॥

तुंडिकेरीके लक्षण ।

शोथः शूलस्तोददाहप्रपाकी प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मता तु ३७॥

भाषा–कफरक्तके कोपसे तालुवेमें कपासकी समान महासूजन हो, उसमें सुई चुभाने सरीखी पीडा हो तथा दाह और पाक होय उसको तुण्डिकेरी कहते हैं ॥३७॥

अध्रुवके लक्षण ।

शोथः स्तब्धो लोहितस्तालुदेशे रक्तो ज्ञेयः सोऽध्रुवो रुग्ज्वरश्च३८॥

भाषा–रुधिरके कोपसे तालुवेमें स्तब्ध अर्थात् तनी हुई और लालरंगकी सूजन होय उसमें पीडा और ज्वर हो उसको अध्रुव कहते हैं ॥ ३८ ॥

कच्छपके लक्षण ।

कूर्मोत्सन्नोऽवेदनो शीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा वा ३९

भाषा–कफके कोपसे तालुमें कछुएकी पीठकी समान ऊंची, पीडारहित और विलम्बसे बढनेवाली सूजन होय उसको कच्छपरोग कहते हैं ॥ ३९ ॥

अर्बुदके लक्षण ।

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिंगम् ॥ ४० ॥

भाषा–रुधिरके कोपसे तालुमें कमलके आकार सूजन हो उसको अर्बुद कहते हैं । उसके लक्षण रक्तार्बुदकी समान जानने ॥ ४० ॥

मांससंघातके लक्षण ।

दुष्टं मांसं नीरुजं तालुमध्ये कफाच्छूनं मांससंघातमाहुः ॥ ४१ ॥

भाषा-कफसे मांस दूषित होकर तालुमें पीडारहित सूजन उत्पन्न करे उसको मांससंघात कहते ॥ ४१ ॥

तालुपुप्पुटके लक्षण ।

नीरुक्स्थायी कोलमात्रः कफात्स्यान्मेदोयुक्तः पुप्पुटस्तालुदेशे ४२

भाषा-मेद और कफके योगसे तालुमें पीडारहित स्थिर और बेरकी समान जो सूजन उत्पन्न होय उसको तालुपुप्पुट कहते हैं ॥ ४२ ॥

तालुशोषके लक्षण ।

शोषोत्यर्थं दीर्यते चापि तालु श्वासश्चोग्रस्तालुशोषोऽनिलाच्च ४३॥

भाषा-वातके कोपसे तालु अत्यन्त सूखकर फटे और उग्र श्वास होय उसको तालुशोष कहते हैं ॥ ४३ ॥

तालुपाकके लक्षण ।

पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येवं तालुपाकं वदन्ति ॥ ४४ ॥

भाषा-पित्तके कोपसे तालुमें अत्यन्त दारुण पाक होय अर्थात् तालु पके उसको तालुपाक कहते हैं ॥ ४४ ॥

कंठगत रोहिणीरोगकी सामान्य संप्राप्ति ।

गलेनिलः पित्तकफौ च मूर्छितौ प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम् ।
गलोपसंरोधकरैस्तथांकुरैर्निहन्त्यसून्व्याधिरयं हि रोहिणी ॥ ४५॥

भाषा-कंठगत रोगमें प्रथम रोहिणीरोगके लक्षण कहते हैं । गलेमें वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष दूषित होकर मांस और रुधिरको दूषित करके गलेमें मांसके अंकुरोंको उत्पन्न करे, उन अंकुरोंसे गला रुक जाय, उसको रोहिणी कहते हैं । यह रोहिणी प्राणनाशक है ॥ ४५ ॥

वातजाके लक्षण ।

जिह्वासमन्ताद्भृशवेदनास्तु मांसांकुराः कण्ठनिरोधनाय ।
सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ॥ ४६ ॥

भाषा-जिसमें जिह्वाके चारों ओर अत्यन्त पीडायुक्त और कंठको रोकनेवाले मांसके अंकुर उत्पन्न हों उसको वातज रोहिणी कहते हैं । उसमें वातके अनेक उपद्रव होते हैं ॥ ४६ ॥

पित्तजाके लक्षण ।

क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता ॥ ४७ ॥

भाषा-पित्तजरोहिणी शीघ्र बढे, शीघ्र दाहयुक्त पके और तीव्र ज्वरयुक्त होती है ॥ ४७ ॥

कफजाके लक्षण ।

स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका स्थिरांकुरा या कफसंभवा सा॥४८॥

भाषा-कफज रोहिणी कंठके मार्गको रोक दे, शनैः शनैः पके और उसके अंकुर स्थिर होते हैं ॥ ४८ ॥

त्रिदोषजाके लक्षण ।

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिंगा त्रितयोत्थिता सा ॥४९॥

भाषा-सन्निपातज रोहिणी गम्भीररूपसे पकनेवाली और तीनों दोषोंके लक्षणयुक्त होती है तथा वह असाध्य है ॥ ४९ ॥

रक्तजाके लक्षण ।

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिंगा साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका तु॥५०॥

भाषा-रक्तज रोहिणी छोटी छोटी फुडियोंसे व्याप्त और पित्तज रोहिणीकी समान लक्षणोंवाली होती है तथा साध्य है ॥ ५० ॥

कंठशालूकके लक्षण ।

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः ।
खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति॥५१॥

भाषा-कफके कोपसे कंठमें बेरकी गुठलीकी समान गांठ उत्पन्न हो, उसमें सूक्ष्म कांटे हों तथा वह खरदरी और स्थिर हो उसको कंठशालूक कहते हैं । वह शस्त्रसाध्य है ॥५१ ॥

अधिजिह्वके लक्षण ।

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्टादपि रक्तमिश्रात् ।
ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ ५२ ॥

भाषा-रक्तमिश्रित कफसे जीभके नोककी समान जीभपर सूजन होवे उसको अधिजिह्व कहते हैं । वह पकनेसे असाध्य हो जाता है ॥ ५२ ॥

वलयके लक्षण ।

बलास एवायतमुन्नतं च ग्रंथिं करोत्यन्नगतिं निवार्य ।
तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ ५३ ॥

भाषा-कंठगत कफके योगसे कंठमें लंबी, चौडी और ऊंची ऐसी गांठ उत्पन्न

होय, उसके होनेसे कंठसे ग्रास न उतरे, उसमें कोई औषधि काम न करे उस रोगको वलय कहते हैं ॥ ५३ ॥

बलासके लक्षण।

गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम्।
मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुर्बलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ ५४ ॥

भाषा-कफवातके कोपसे गलेमें सूजन हो, उसमें श्वास और कंठमें अत्यन्त पीडा हो, वह मर्मभेदक है। उस दुश्चिकित्स्यरोगको बलास कहते हैं ॥ ५४ ॥

एकवृंदके लक्षण।

वृत्तोन्नतोऽन्तः श्वयथुः सदाहः सकण्डुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च।
नाम्नैकवृंदः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ ५५ ॥

भाषा-कफ और रक्तके कोपसे गलेमें गोल और ऊंचे किनारोंकी सूजन उत्पन्न हो, उसमें दाह और खुजली हो, वह कुछ कुछ पके और कुछेक नरम हो, एवं भारी हो उस रोगको एकवृन्द कहते हैं ॥ ५५ ॥

वृंदके लक्षण।

समुन्नतं वृत्तममंददाहं तीव्रज्वरं वृंदमुदाहरन्ति।
तं चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदं पवनात्मकं तु ॥ ५६ ॥

भाषा-पित्तरक्तके कोपसे गलेमें ऊंची, गोल, दाह और तीव्र ज्वरयुक्त सूजन हो उसको वृन्द कहते हैं। उसमें जो सुई चुभानेकीसी पीडा होती है वह वातात्मक है ॥ ५६ ॥

शतघ्नीके लक्षण।

वर्तिर्घना कण्ठनिरोधिनी या चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः।
अनेकरुक् प्राणहरी त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नी तु शतघ्निरूपा ॥ ५७ ॥

भाषा-गलेमें वत्तीकी समान लम्बी, घन और कंठमें रोकनेवाली सूजन हो, उस सूजनपर मांसके अंकुर अधिक हों, उसमें अनेक उपद्रव हों, वह प्राणनाशक शतघ्नीशस्त्रके समान होती है। इसीसे उसको शतघ्नी कहते हैं और वह त्रिदोषज है ॥ ५७ ॥

गिलायुकके लक्षण।

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोल्परुक्स्यात्कफरक्तमूर्तिः।
संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः ॥ ५८ ॥

भाषा-कफरक्तके कुपित होनेसे गलेमें आमलेकी गुठली प्रमाण, स्थिर और अल्पपीडावाली गांठ उत्पन्न हो, उसके होनेसे खाया हुआ अन्नका ग्रास गलेमें अटकतासा मालूम हो उस शस्त्रसाध्यको गिलायुरोग कहते हैं ॥ ५८ ॥

गलविद्रधिके लक्षण ।

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोथो रुजः संति च यत्र सर्वाः ।
स सर्वदोषो गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ ५९ ॥

भाषा-जो सूजन समस्त गलेमें हो, जिसमें सब तरहकी पीडा हो उसको त्रिदोषज गलविद्रधि कहते हैं। उसके लक्षण सन्निपातज विद्रधिकी समान होते हैं॥५९॥

गलौघके लक्षण ।

शोथो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता ।
कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्यतेसौ ॥ ६० ॥

भाषा-कफरक्तके योगसे गलेमें भोजनपानको रोकनेवाली तीव्र ज्वरयुक्त, वायुकी गतिकोभी रोकनेवाली जो सूजन उत्पन्न होती है उसको गलौघरोग कहते हैं ॥ ६० ॥

स्वरघ्नके लक्षण ।

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः ।
कफोपदिग्धेष्वनिलायतेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः ॥ ६१ ॥

भाषा-जिसमें वायु निकलनेके मार्ग कफसे परिपूर्ण हो जाते हैं उससे रोगी निरन्तर अत्यन्त कष्टसे श्वास लेता है तथा स्वरभंग और कंठ सूखने लगता है और स्वाधीन न रहता उसको स्वरघ्नरोग कहते हैं । वह वातज है ॥ ६१ ॥

मांसतानके लक्षण ।

प्रतानवान्यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण ।
स मांसतानेति बिभर्ति संज्ञां प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥ ६२ ॥

भाषा-जो सूजन गलेमें क्रमसे फैलकर अत्यन्त कष्टके साथ गलेको रोक देवे उस त्रिदोषज और प्राणनाशक रोगको मांसतान कहते हैं ॥ ६२ ॥

विदारीके लक्षण ।

सदाहतोदं श्वयथुं सुताम्रमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम् ।
पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते ॥ ६३ ॥

भाषा-पित्तके कोपसे गलेमें दाह और तोडने सरीखी पीडायुक्त जो सूजन

हो, उसमें दुर्गंधित गला हुआ मांस गिरे, उसके योगसे रोगी करवटसे सोवे उसको विदारीमुखरोग कहते हैं ॥ ६३ ॥

वातज मुखपाकके लक्षण ।

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समंताद्यस्याचितं सर्वसरः स वातात् ॥ ६४ ॥

भाषा—वातज सर्वसर अर्थात् मुखपाकरोगमें सकल मुखमें छाले हो जाते हैं और उनमें नोचनेसरीखी पीडा होती है ॥ ६४ ॥

पित्तजके लक्षण ।

रक्तैः सदाहैः पिडिकैः सपीतैर्यस्याचितं चापि स पित्तकोपात्॥६५॥

भाषा—पित्तज मुखपाकमें लाल और पीले छाले हों और उनमें दाह होती है॥६५॥

कफजके लक्षण ।

अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यस्याचितं चापि स वै कफेन ॥ ६६ ॥

भाषा—कफज मुखपाकमें पीडारहित, खुजलीसहित और त्वचाके रंगके छाले उत्पन्न होते हैं यह रोग समस्तमुखमें होता है इस कारण इसको सर्वसररोग कहते हैं ॥ ६६ ॥

असाध्य मुखरोगके लक्षण ।

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्याः स्युर्मांसरक्तप्रकोपजाः । दन्तमूलेषु वर्ज्यौ तु त्रिलिंगगतिसौषिरौ ॥ दन्तेषु न च सिध्यन्ति श्यावदालन-भंजनाः । जिह्वातलेष्वलासश्च ताल्व्येष्वर्बुदं तथा ॥ स्वरघ्नो वलयो वृन्दो वलासश्च विदारिका । गलौघो मांसतानश्च शत-घ्नी रोहिणी गले ॥ असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा नव दशैव तु । तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ ६७ ॥

भाषा—ओष्ठरोगोंमें मांसज, रक्तज और त्रिदोषज, दंतमूलरोगोंमें सन्निपातज, नाडीव्रण और सौषिररोग, दंतरोगोंमें श्यावदंत, दालन और भंजन, जिह्वारोगोंमें अलास, तालुरोगोंमें अर्बुद, गलरोगोंमें स्वरघ्न, वलय, वृन्द, वलास, विदारी, गलौघ, मांसतान, शतघ्नी और रोहिणी ये उन्नीस रोग मुखरोगोंमें असाध्य हैं । इनकी चिकित्सा करे तो कह देवे कि यह रोग असाध्य है । कदाचित् औषधि करनेसे आरोग्य होही जाय असाध्य जानकर छोड न देवे ॥ ६७ ॥

इति मुखरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ मुखरोगचिकित्सा ।

चर्वणपानादि क्रिया ।

मुस्तकं कुष्ठमेला च यष्टिमधुकवालकम् । धन्याकमेतद्दना-न्मुखदुर्गन्धनुद्धर ॥ कषायं कटुकं वापि तिक्तं वै तस्य भक्षणात् । तैलयुक्तस्य निम्बस्य मुखदुर्गन्धिताक्षयः ॥ ताम्बूलचूर्णदग्धं च मुखस्य व्याधिनुच्छिव । हरितालाक्तश्लेष्मगणः शुण्ठ्याश्चर्वणतो यथा ॥ मातुलुंगदलान्येला यष्टिमधु च पिप्पली । जाती-पत्रमथैषां च चूर्णं लीढं तथा कृतम् ॥ लोध्र कुंकुममंजिष्ठालोह-कालीयकानि च । यवतण्डुलमेतैश्च यष्टिमधुसमन्वितैः ॥ वारिपिष्टैर्वेकलेपः स्त्रीणां शोभनवक्त्रकृत् । द्विभागं छागदुग्धेन तैलप्रस्थं तु साधितम् ॥ रक्तचन्दनमंजिष्ठालाक्षाणां कर्षकेण च । यष्टिमधुकुंकुमाभ्यां सप्ताहान्मुखकांतिकृत् ॥ ६८ ॥

भाषा-नागरमोथा, इलायची, मुलहठी, मुगंधवाला और धनिया इन सबोंको मिलाकर चाबनेसे मुखकी दुर्गंध दूर होती है । काली मिरच, पीपल, सोंठ और नीमकी छाल इनके क्वाथमें तेल डालकर पान करनेसे मुखरोग दूर होता है । पानको जलाकर भस्म करके मुखमें धारण करनेसे मुखरोग दूर होता है । सोंठको चाबनेसे अथवा मुखमें धारण करनेसे कफज मुखरोग दूर होता है । बिजौरेके पत्ते, छोटी इलायची, मुलहठी, पीपल और मालतीके पत्ते इनको समान भाग लेकर चूर्ण करके लेहन करनेसे मुखरोग दूर होता है । लोध, मजीठ, केशर, लोहा, काला चन्दन, जौके चावल (घाट) और मुलहठी इनको एकत्र जलमें पीसकर मुखपर लेप करनेसे स्त्रियोंका मुख शोभायमान होता है । तिलका तेल २ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, लाल चंदन, मजीठ, लाख, मुलहठी और केशर प्रत्येकका कल्क दो दो तोले, सबोंको मिलाकर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे । इस तेलको सात दिन तक मुखपर प्रलेप करनेसे मुख कांतियुक्त होता है ॥ ६८ ॥

महासहाचरतैलम् ।

तुलयां धृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽम्भसः संस्नपयेद्यथावत् । पूते चतुर्भागरसे तु तैलं पचेत् शनैरर्द्धपलं प्रयुक्तैः ॥

कल्कैरनन्ताखदिरारिमेदजम्ब्वाम्रयष्टिमधुकोत्पलानाम् ।
तत्तैलमाश्वेव धृतं मुखेन स्थैर्य्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ ६९ ॥

भाषा–१२॥ सेर नीली कटसरैयाको लेकर ६४ सेर जलमें पकावे। जब सोलह सेर जल बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे, फिर उसमें तेल ४ सेर, अनन्तमूल, खैर, मेदा, महामेदा, जामुन, आमकी छाल, मुलहठी और नीलोत्पल प्रत्येकका कल्क दो २ तोले मिलाकर यथाविधिसे तैलको पकावे। इस तैलको मुखमें धारण करनेसे हिलते हुए दांत स्थिर हो जाते हैं ॥ ६९ ॥

लाक्षाद्यं तैलम् ।

तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक् प्रस्थसमं पचेत् । चतुर्गुणैररिमेः क्वाथैर्द्रव्यैश्च पलसम्मितैः ॥ लोध्रकट्फलमंजिष्ठापद्मकेशरपद्मकैः । चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तैलं गण्डूषधारणम् ॥ दालनं दन्तचालञ्च दन्तमोक्षं कपालिकाम् । शीतादं पूतिवक्त्रञ्च अरुचिं विरसास्यताम् ॥ हन्यादाशु गदानेतान् कुर्य्याद्दन्तानपि स्थिरान् । ओष्ठप्रकोपे वातोत्थे सान्त्वने नोपनाहयेत् ॥ मस्तिष्के चैव नस्येन तैलं वातहरैः शृतम् । स्वेदोऽभ्यङ्गस्नेहपानं रसायनमिहेष्यते॥७०॥

भाषा–तैल २ सेर, लाखका रस (अभावमें क्वाथ) २ सेर, दूध २ सेर, लोध, कायफल, मजीठ, कमलकेशर, पद्माख, लालचंदन, नीलोत्पल और मुलहठीका क्वाथ चौगुना और इनही औषधियोंका कल्क आधसेर लेवे। सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तैलको सिद्ध करे। इस तैलका मुखमें गण्डूष धारण करनेसे दालन, दन्तचल, दन्तमोक्ष, कापालिका, शीतादि, पूतिवक्त्र, अरुचि और मुखकी विरसताको दूर करे है तथा हिलते हुए दांत स्थिर हो जाते हैं। पित्तजन्य ओष्ठरोगमें शिरावेध, वमन, विरेचन, तिक्तरसको पीना, मांसादिकके यूषका भक्षण, शीतल प्रलेप और शीतलपरिसेक ये सब करने चाहिये। वातजनित ओष्ठरोगमें मृदु प्रलेप, वातनाशक औषधियोंके द्वारा बनाये हुए तैलका नस्य, स्वेद, अभ्यंग और घृतादिका पान यह क्रिया करनी चाहिये ॥ ७० ॥

रक्तमोक्षणादिनस्यविधिः ।

वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनस्य ।
शीतान् प्रलेपान् परिषेचनञ्च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥

शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवलधारणम् ।
हृतरक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके ॥ ७१ ॥

भाषा-कफजन्य ओष्ठरोगमें रक्तमोक्षण कराकर नस्य, धूम, स्वेद और कषाय द्रव्योंके द्वारा कवलधारण यह सब विधि हितकारी है ॥ ७१ ॥

अग्निसंतापनादिक्रिया ।

मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनो हितः ।
प्रियंगु त्रिफला लोध्रं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥
हितं च त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं प्रलेपनम् ॥ ७२ ॥

भाषा-मेदजन्य ओष्ठरोगमें स्वेद, भेद, शोधन और अग्निका सन्ताप देवे तथा इसमें फूलप्रियंगू, त्रिफला और लोधका चूर्ण सहतमें मिलाकर होठोंको घिसे तथा त्रिफलेका चूर्ण सहतमें मिलाकर होठोंमें प्रलेप करे ॥ ७२ ॥

गंडूषादिलेपविधिः ।

शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान् ।
निःक्वाथ्य त्रिफलाश्चापि कुर्याद् गण्डूषधारणम् ॥
प्रियंगवश्च मुस्ता च त्रिफला च प्रलेपनम् ॥ ७३ ॥

भाषा-शीतादनामक मुखरोगमें रक्तमोक्षण कराकर सोंठ और त्रिफलेके क्वाथका गण्डूष धारण करे और फूलप्रियंगू, नागरमोथा एवं त्रिफला इन तीनोंको एकत्र पीसकर प्रलेप करे ॥ ७३ ॥

रक्तमोक्षणादिप्रकार ।

भद्रमुस्ताभयाव्योषविडंगारिष्टपल्लवैः । गोमूत्रपिष्टां गुटिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥ तां विधाय मुखे सुप्याचलदन्तातुरो नरः । नातः परतरं किंचिच्चलदन्तस्य भेषजम् ॥ दन्तपुप्पुटके कार्य्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् । सपंचलवणक्षारं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥ ७४ ॥

भाषा-मोथा, हरड, त्रिकुटा, वायविडंग और नीमके पत्ते इन सबोंको गोमूत्रमें पीसकर गोलियां बनाकर छायामें सुखा लेवे। सोते समय इन गोलियोंको मुखमें धारण करनेसे हिलते हुए दांत दृढ हो जाते हैं। नवीन दन्तपुप्पुटरोगमें रक्तमोक्षण करावे तथा पंचलवण और जवाखारको सहतमें मिलाकर दांतोंको घिसे ७४॥

गंडूषादिक्रिया।

विस्फारिते दन्तवेष्टे व्रणन्तु प्रतिसारयेत् । लोध्रपतंगमधुकं लाक्षाचूर्णैर्मधूत्तरैः ॥ गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः । शैशिरे हृतरक्ते तु लोध्रमुस्तारसाञ्जनैः ॥ सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः । क्रियां परिदरे कुर्यात् शीतादोक्तां विचक्षणः ॥ संशोध्योभयतः कायं शिरश्चोपकुशे ततः । काकोदुम्बरिकागोजीपत्रैर्निस्रावयेदसृक् ॥ क्षौद्रयुक्तैश्च लवणैः सव्योषैः प्रतिसारयेत् । पिप्पल्यः सर्षपाः श्वेता नागरं नैचुलं फलम् ॥ सुखोदकेन संमर्द्य कवलं तस्य योजयेत् ॥ ७५ ॥

भाषा-मसूढोंमें घाव होय तो लोध, लालचन्दन, मुलहठी और लाखका चूर्ण सहतमें मिलाकर घावमें प्रतिसारण करे अर्थात् घिसे । इसके अतिरिक्त बड और पीपल आदिके क्काथमें घी, सहत और चीनी डालकर गण्डूष धारण करे । शैशिरोगमें रक्तमोक्षण कराकर लोध, नागरमोथा और रसौनको सहतमें मिलाकर प्रलेप करे तथा बटादिके क्वाथका गण्डूष धारण करे । परिदररोगमें शीतादरोगकी समान चिकित्सा करे । उपकुशरोगमें वमन, विरेचन और नस्य देकर गूलरके पत्ते और गोजियाके पत्तोंसे घिसकर रुधिर निकाले, तत्पश्चात् सहत और पांचों नमक इनसे दांतोंको घिसे तथा पीपल, सफेद सरसों, सोंठ और समुद्रफल इनको किंचित् गरम जलमें मर्दन करके उसका रोगीको कवल धारण करावे ॥ ७५ ॥

क्षारादिक्रिया।

शस्त्रेण दन्तवैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत् ।
ततः क्षारं प्रयुंजीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ ७६ ॥

भाषा-दन्तवैदर्भरोगमें शस्त्रके द्वारा दांतोंको शुद्ध करके क्षारप्रयोग करे और सम्पूर्ण शीतलक्रियाप्रयोग करे ॥ ७६ ॥

काथादिद्वारा तैलविधिः।

कषायजातीमदनकटुकस्वादुकण्टकैः ।
लोध्रखदिरमंजिष्ठायष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम् ॥
तैलं संशोधनं तद्धि हन्याद्दन्तगतां गतिम् ॥ ७७ ॥

भाषा-चमेलीके पत्ते, मैनफल, कुटकी, कटाई, लोध खैर मजीठ और मुलहठीके क्वाथके द्वारा तैलको सिद्ध करके दंतनाडीकी चिकित्सा करे ॥ ७७ ॥

स्नेहकवललेपादिक्रिया ।

सुखोष्णाः स्नेहकवलाः ससर्पिस्त्रिवृतस्य वा । निर्व्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥ स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च । दन्तहर्षक्रियाश्चापि कुर्यान्निरवशेषतः ॥ कपालिका कृच्छ्रसाध्या तत्राप्येषा क्रिया हिता । जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदन्तकम् ॥ तथावपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः । भद्रदार्व्यादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः ॥ हिङ्गु सोष्णन्तु मतिमान् कृमिदन्तेषु दापयेत् ॥ ७८ ॥

भाषा–दन्तहर्षरोगमें मंदोष्ण स्नेहकवल, घीके साथ निसोतका कवल, वातनाशक काथ, स्नेहयुक्त धूमपान और स्नेहयुक्त नस्यप्रयोग करे । कपालिकारोग अत्यन्त कष्टसाध्य है । कष्टसाध्य होनेपरभी इसमें दन्तहर्षोक्त चिकित्सा करे । कृमिदंतरोगमें दांतोंमें स्वेदप्रदान, वातनाशक अवपीडा, वातनाशक गण्डूषका धारण, पुनर्नवा और देवदारु आदि औषधियोंका लेप करे तथा हींगको गरम करके कृमिदंतमें धारण करे ॥ ७८ ॥

कल्कादिद्वारा तैलनिर्माणविधि और संशोधनगंडूषादिक्रिया ।

चलमुद्धृत्य वा स्थानं दहेत्तु सुशिरस्य वा । ततो विदारीयष्ट्याह्वशृंगाटककशेरुभिः ॥ तैलं दशगुणक्षीरं सिद्धं नस्ये तु पूजितम् । ओष्ठकोपे त्वनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम् ॥ कण्ठरोगेष्वनिलोत्थे तत्कार्यं भिषजा खलु । पित्तजेषु निघृष्टेषु निःस्रुते दुष्टशोणिते ॥ प्रतिसारणगण्डूषं नस्यं च मधुरं हितम् । कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये ॥ पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्यस्तु प्रतिसारणः । गृह्णीयात् कवलान् चापि गौरसर्षपसैन्धवैः ॥ पटोलनिम्बवार्ताकुक्षारयूषैश्च भोजयेत् ॥ जिह्वाजाड्यं माणकभस्म लवणतैलघर्षणं हन्ति । ईषत् स्नुक्क्षीरोक्तं जम्बीराद्यम्लचर्वणं वापि ॥ चरणौ कर्कटस्यापि गोक्षीरेण विपाचयेत् । घनतां च गते तस्मिन् रात्रौ चरणलेपनात् ॥ दन्तानां कडमर्डी हन्ति सत्यं सत्यं च पार्वति । व्योषाक्षाराभ-

यावद्विचूर्णमेतत् प्रघर्षणम् ॥ उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेतत्तैलं विपाचयेत् । वचामतिविषां पाठां रास्नां कटुकरोहिणीम् ॥ निःक्वाथ्य पिचुमर्द्द च कवलं तत्र योजयेत् । क्षारसिद्धेषु मुद्गेषु यूषश्चाप्यशने हितः ॥ तुण्डिकेर्य्यध्रुवे कूर्म्मे संघाते तालुपुप्पुटे । एष एव विधिः कार्य्यो विशेषः शस्त्रकर्म्म च ॥ तालुपाके तु कर्त्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् । स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ साध्यानां रोहिणीनां तु हितं शोणितमोक्षणम् । छर्द्दनं धूम्रपानं च गण्डूषो नस्यकर्म्म च ॥ विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् । एककालं यवान्नं च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥ उपजिह्विकवच्चापि साधयेदधिजिह्विकाम् । उन्नाम्य जिह्वामाकृष्य बडिशेनाधिजिह्वकम् ॥ छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादिभिः । स्वल्पशोणितविस्राव्यविधिशोधनमाचरेत् ॥ ७९ ॥

भाषा-शुषिररोगमें हिलते हुए दांतोंको उखाडकर उस स्थानको अग्निसे दग्ध करे फिर विदारीकंद, मुलहठी, सिंघाडे और कशेरु इन सबोंके कल्कके द्वारा दशगुने दूधमें तेलको पकाकर नास देवे। वातजन्य कंठरोगमें वातज ओष्ठरोगोक्त चिकित्सा करे। पित्तजन्य कंठरोगमें दुष्ट रुधिर निकालकर मधुर औषधियोंके द्वारा घर्षण, गण्डूष और नस्यप्रयोग करे। कफजन्य कंठरोगमें रक्तमोक्षण, मधुयुक्त पीपलके चूर्णके द्वारा घर्षण, सफेद सरसों और सेंधानोनके द्वारा कवल धारण तथा परोल, नीम, बैंगन और क्षारयूप भोजन करे। यदि जिह्वामें जडता होय तो मानकंदकी भस्म, लवण और तेलके द्वारा जिह्वाको घिसे तथा किंचित् थूहरके दूधके साथ जम्मीरी आदि नीबूकी खटाईको चावे। केकडेके दोनों पांवोंको पीसकर गायके दूधमें पकावे जब दूध गाढा हो जाय तब उसको रात्रिमें पांवोंपर प्रलेप करे, इससे दांतोंकी कडमडी दूर होती है। उपजिह्वारोगमें त्रिकुटा, जवाखार, हरड और चीतेकी जड इन सब औषधियोंसे जिह्वाको घिसे तथा ऊपरोक्त औषधियोंके द्वारा तैलको पकाकर प्रलेप करनेसे उक्त रोग दूर होता है। गलशुण्डीरोगमें वच, अतीस, पाढ, रास्ना और कुटकी इन औषधियोंके क्वाथके द्वारा कवलग्रहण और जवाखारके साथ सिद्ध किया हुआ मूंगका यूष पान करे। तुण्डिकेरी, अध्रुव, कूर्म्म, संघात और तालुपुप्पुटरोगमें ऊपरोक्त रीतिके अनुसार चिकित्सा करनी

चाहिये यदि आवश्यकता होय तो शस्त्रप्रयोग करे। तालुपाकरोगमें पित्तनाशक चिकित्सा करे तथा तालुशोषमें स्नेह और वातनाशक क्रिया करे। यत्नसाध्य रोहिणीरोगमें रक्तमोक्षण, वमन, धूमपान, गण्डूष धारण और नस्य ग्रहण करे। कण्ठशालुकरोगमें दुष्ट रुधिर आदिको निकालकर तुण्डिकेरी रोगकी समान चिकित्सा करे तथा एक वार कुछ थोडासा स्निग्ध जौका भोजन करे। इरिवेल्लिकारोगमें उपजिह्विका रोगकी समान चिकित्सा करे। अधिजिह्विकारोगमें जिह्वाके ऊपरके भागको बडिशयंत्रसे आकर्षण करके मण्डलाग्रशस्त्रके द्वारा रोगका स्थान छेदकर तथा तीक्ष्ण और उग्र द्रव्योंसे घर्षण करे। अल्प रुधिरस्राव कराकर संशोधन कर्म करे ॥७९॥

कालकचूर्णम्।

गृहधूमो यवक्षारः पाठा व्योषं रसांजनम्। तेजोह्वात्रिफला लोहं चित्रकं चेति चूर्णितम् ॥ सक्षौद्रं धारयेदेतत् गलरोगविनाशनम्। कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तास्यगलरोगनुत् ॥ ८० ॥

भाषा-घरका धूंआ, जवाखार, पाढ, त्रिकुटा, रसोत, तेजबल, त्रिफला, लोहा और चीता इन सबोंको समान भाग लेकर चूर्ण करके सहतमें मिलाकर मुखमें धारण करनेसे गलरोग, दंतरोग और मुखरोग दूर होता है ॥ ८० ॥

पीतकचूर्णम्।

मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्धवम्। दार्वी त्वक् चेति तच्चूर्णं माक्षिकेण समायुतम् ॥ मूर्च्छितं घृतमण्डेन कण्ठरोगेषु धारयेत्। मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्तितम् ॥ वातात् सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत्। तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः। सर्वपित्तहरः कार्य्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ प्रतिसारणगण्डूषान् धूमसंशोधनानि च। कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात् कफापहम् ॥ पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवैः। पंचपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने ॥ पंचवल्ककषायो वा त्रिफलाक्काथ एव वा। मुखपाकेषु सक्षौद्रैः प्रयोज्या मुखधावने ॥ कृष्णाजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतस्त्र्यहम्। मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥ तैलेन कांजिकेनाथ गण्डूषश्चूर्णदाहहा ॥ ८१ ॥

भाषा-मैनशिल, जवाखार, हरिताल, सैंधानोन, दारुहलदी और दालचीनी इन सबोंको पीसकर सहतमें मिलाकर और घृतसे मूर्छित करके मुखमें धारण करनेसे कण्ठरोग और मुखरोग नष्ट होता है। वातिक सर्वसररोगमें सैंधानोनके प्रतिसारण और वातनाशक औषधियोंके द्वारा सिद्ध किये हुए तेलका कवल और नस्य ग्रहण करे। पित्तजनित सर्वसररोगमें वमन और विरेचनादिके द्वारा शरीरको शुद्ध करके मधुर और शीतल तथा पित्तनाशक औषधि प्रयोग करे। कफज सर्वसररोगमें प्रतिसारण, गण्डूषधारण, धूम, संशोधनक्रिया और कफनाशक औषधियोंसे चिकित्सा करे। पटोलपात, नीम, जामुन, आम और मालती इनके नवीन पत्तोंका क्वाथ अथवा वड, गूलर, पीपल, पाखर और वेत इनकी छालका क्वाथ अथवा त्रिफलेके क्वाथमें सहत डालके मुखको धोनेसे अथवा कुल्ला करनेसे मुखपाकरोग दूर होता है। पीपल, जीरा, कूठ और इन्द्रजौ इन सबोंको चाबनेसे तीन दिनमें मुखके घाव, क्लेद और दुर्गंध दूर होती है। तेल या कांजीका कुल्ला करनेसे चूनेसे फटा हुआ मुख आराम होता है॥ ८१॥

अरिमेदाद्यं तैलम्।

अरिमेदत्वक्पलशतमभिनवमापोथ्यखण्डशः कृत्वा। तोयाढकैश्चतुर्भिर्निःक्वाथ्य चतुर्थशेषेण॥ क्वाथेन तेन मतिमान् तैलस्यार्द्धाढकं शनैर्विपचेत्। कल्कैकसमांशैर्मंजिष्ठालोध्रमधुकानाम्॥ अरिमेदखदिरकट्फललाक्षान्यग्रोधमुस्तसूक्ष्मैलाः। कर्पूरागरुपद्मकलवङ्गकङ्कोलजातीनाम्॥ फलपतंगगैरिकवराङ्गनागकुसुमधातकीनां च। सिद्धं भिषग्विदध्यादिदं मुखोत्थेषु रोगेषु॥ कृमिदन्तदरणचलितप्रदुष्टमांसावशीर्णेषु। मुखदौर्गन्ध्येषु च कार्य्यं प्रागुक्तेष्वामयेषु तैलमिदम्॥ ८२॥

भाषा-तिलका तेल ८ सेर, क्वाथके लिये दुर्गंध खैरकी छाल १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, कल्कके लिये मजीठ, लोध, मुलहठी, दुर्गंध खैर, खैर, कायफल, लाख, बडकी छाल, छोटी इलायची, कपूर, अगर, पद्माख, लौंग, शीतलचीनी, जायफल, त्रिफला, पतंग, गेरु, दालचीनी, नागकेशर और धायके फूल प्रत्येक दो दो तोले लेवे। सबोंको यथाविधिसे मिलाकर तैलको सिद्ध करे। इस तेलका सेवन करनेसे मुखरोग, कृमिदंत, दांतोंका टूटना, हिलना, मुखके मांसका गलना और मुखकी दुर्गंधता दूर होती है॥ ८२॥

दशनसंस्कारचूर्णम् ।

शुण्ठी हरीतकी मुस्ता खदिरं घनसारकम् । गुवाकुभस्म मरिचं देवपुष्पं तथा त्वचम् ॥ एतेषां समभागेन चूर्णमेव विनिर्दिशेत् । तत्समं प्रक्षिपेत्तत्र चूर्णं कठिनिसम्भवम् ॥ चूर्णं दशनसंस्कारं दन्तरोगविनाशनम् ॥ ८३ ॥

भाषा-सोंठ, हरड, नागरमोथा, खैर, कपूर, सुपारीका भस्म, मरिच, लौंग और दालचीनी ये सब समान भाग और सबोंकी बराबर सेलखडी, सबोंका एकत्र चूर्ण कर दांतोंमें मलनेसे सर्व प्रकारके दंतरोग दूर होते हैं ॥ ८३ ॥

बकुलाद्यं तैलम् ।

बकुलस्य फलं लोध्रं वज्रवल्ली कुरंटकम् । चतुरङ्गुलवब्बोलवाजिवर्णारिनाशनम् ॥ एषां कषायकल्काभ्यां तैलं पक्वं मुखे धृतम् । स्थैर्यं करोति चलतां दन्तानां नावनेन च ॥ ८४ ॥

भाषा-मौलसिरीके फल, लोध, हडसंघारी, नीली कटसरैया, अमलतासके पत्ते, बबूरकी छाल, सालवृक्षकी छाल और खैर इनके कल्क और काथके द्वारा तेलको पकाकर मुखमें धारण करनेसे अथवा नास देनेसे हिलते हुए दांत स्थिर हो जाते हैं ॥ ८४ ॥

चर्वणात् केशरबीजस्य दन्ताः स्युश्चलिताः स्थिराः । दन्तव्रणादिसर्वाणि क्षयं गच्छन्त्यनेन तु ॥ कांजिकस्य सतैलस्य गंडूषकवलास्थितः । दन्तकीटविनाशः स्यात् गुंजामूलस्य चर्वणात ॥ काकजंघाक्षुद्रीनीलीकषायाम्रकमूलकम् । दन्ताक्रान्तं दन्तजांश्च कृमिं नाशयते शिव ॥ घृतकर्कटके पादे दुग्धोन्मिश्रेण साधितम् । तेन चाभ्यंगिता दन्ताः कुर्य्युः कटकटान्न हि ॥ हरितालं यवक्षारं पत्राङ्गं रक्तचन्दनम् । जातीं हिङ्गुलकं लाक्षापक्वतैलेन पेषयेत ॥ हरीतकीकषायेण घृष्ट्वा दन्तान् प्रलेपयेत् । दन्ताः स्युर्लोहिताः पुंसः श्वेता रुद्र न संशयः॥शंखमामलकीपत्रं धातक्याः कुसुमानि च । पिष्ट्वा तत्पयसा सार्द्धं सप्ताहं धारयेन्मुखे ॥ स्निग्धाः श्वेताश्च दन्ताश्च भवन्ति विमला प्रभो । सतंककका-

शमूलं वा बाकुचीमूलमेव वा ॥ कांजिकेन च बाकूच्या मूलं वै दन्तरोगनुत् । काकजंघाशिग्रुमूले मुखेन विधृते शिव ॥ चर्विता दन्तरोगाणां विनाशो हि भवेद्धर । गोरक्षककर्कटीमूलं पिष्टं वास्योदकेन च ॥ पीतं दिनत्रयेणैव नाशयेद्दन्तशर्कराम् । मूलं गोक्षुरकस्यैव चर्वणान्नीललोहित ॥ दन्तकीटव्यथां नश्येद्न्धासुरविमर्द्दन ॥ ८९ ॥

भाषा–नागकेशरके बीजको चावनेसे हिलते हुए दांत स्थिर हो जाते हैं। कांजी और तेलके कुल्ले करनेसे सर्व प्रकारके दांतोंके व्रण दूर हो जाते हैं। घूंघचीकी जडको चबानेसे दांतोंके कृमि दूर होते हैं। काकजंघा (मसी), थूहरका दूध, नील, आमकी छाल और मूंडी इनका क्काथ बनाकर उससे कुल्ले करनेसे दांतोंके कीडे कृमि दूर हो जाते हैं। घी और कांकडाशिंगीके चूर्णको दूधमें औटाकर दांतोंमें मलनेसे दांतोंकी कडमडी दूर होती है। हरिताल, जवाखार, पतंग, लाल चन्दन, चमेलीके फूल, सिंगरफ और लाख इन सब औषधियोंके कल्कको हरडके क्काथमें मिलाकर दांतोंको घिसनेसे दांतोंकी लाली दूर होकर दंत सफेद हो जाते हैं। शंखनाभि, आमके पत्ते और धायके फूल इनको एकत्र दूधमें पीसकर सात दिनतक मुखमें रखनेसे दांत चिकने और स्फटिकमणिकी समान उज्ज्वल तथा सफेद हो जाते हैं। कांसकी जड घोलमें पीसकर अथवा बावचीकी जडको कांजीमें पीसकर कुल्ले करनेसे दंतरोग दूर होता है। काकजंघा (मसी) अथवा सहजनेकी जडको मुखमें रखकर चबानेसे दंतरोग दूर होते हैं। गोरक्षककडीकी जडको बासी जलमें पीसकर पान करनेसे तीन दिनमें दंतशर्करारोग दूर होता है। गोखरूओंकी जडको चावनेसे दांतोंमें कीडोंके खानेसे उत्पन्न हुई पीडा दूर होती है और दांत दृढ हो जाते हैं ॥ ८९ ॥

इति मुखरोगचिकित्सा समाप्ता।

अथ कर्णरोगनिदानम् ।

कर्णशूलके लक्षण ।

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथा चरन्समंततः शूलमतीव कर्णयोः । करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुरासदः ॥१॥

भाषा-कुपित हुई वायु कानमें दोषोंके साथ मिलकर कानोंमें विपरीत गतिसे घूमे, उससे कानोंमें अत्यंत शूल हो उसको कर्णशूल कहते हैं। वह दुश्चिकित्स्य अर्थात् कठिनतासे आरोग्य होता है ॥ १ ॥

कर्णनादके लक्षण ।

कर्णस्रोतःस्थिते वाते शृणोति विविधान्स्वरान् ।
भेरीमृदंगशंखानां कर्णनादः स उच्यते ॥ २ ॥

भाषा-वायु कानके छिद्रमें स्थित होकर विविध प्रकारके स्वर तथा भेरी, मृदंग, शंख इत्यादि अनेक प्रकारके शब्दोंको सुनावे अर्थात् अनेक प्रकारके शब्द सुनाई देवे उसको कर्णनाद कहते हैं ॥ २ ॥

बाधिर्यके लक्षण ।

यदा शब्दवहं वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति ।
शुद्धश्लेष्मान्वितो वापि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ३ ॥

भाषा-शब्द वहनेवाली नाडियोंमें जब वायु अथवा कफके साथ वायु स्थित होता है तब बधिरता अर्थात् बहरापन होता है ॥ ३ ॥

कर्णक्ष्वेडके लक्षण ।

वायुः पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषसमं स्वनम् ।
करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स उच्यते ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तादिके साथ वायु कानमें प्राप्त होकर बंसीसरीखा शब्द करता है तो उसको कर्णक्ष्वेड कहते हैं ॥ ४ ॥

कर्णस्रावके लक्षण ।

शिरोभिघातादथवा निमज्जतां जले प्रपाकादथवापि विद्रधेः ।
स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दितः स कर्णसंस्राव इति प्रकीर्त्तितः॥५॥

भाषा-शिरमें चोटके लगनेसे या जलमें गोता मारकर स्नान करनेसे अथवा कानमें विद्रधिके पकनेसे वायु कुपित होकर कानोंमें राधको बहाती है उसको कर्णस्राव कहते हैं ॥ ५ ॥

कर्णकंडूके लक्षण ।

मारुतः कफसंयुक्तः कर्णकण्डूं करोति च ॥ ६ ॥

भाषा-कफसंयुक्त वायु कानमें खुजली उत्पन्न करे उसको कर्णकण्डू कहते हैं ॥ ६ ॥

कर्णगूथके लक्षण ।

पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा जायते कर्णगूथकः ॥ ७ ॥

भाषा-पित्तकी उष्णतासे कफ कानमें सूख २ मलरूप हो जाता है उसको कर्णगूथक कहते हैं ॥ ७ ॥

कर्णप्रतिनाहके लक्षण ।

स कर्णगूथो द्रवतां यदागतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते । तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्द्धभेदकृत् ॥८॥

भाषा-वही कर्णगूथ अर्थात् कानका मैल तैलादि स्नेहके डालनेसे पतला होकर मुख और नासिकामें प्राप्त होता है तब उसको कर्णप्रतिनाह कहते हैं । वह अर्द्धावभेदक (आधाशीशी) को उत्पन्न करे है ॥ ८ ॥

कृमिकर्णके लक्षण ।

यदा तु मूर्च्छन्त्यथवापि जंतवः सृजन्त्यपत्यान्यथवापि मक्षिकाः । तदंजनत्वाच्छ्रवणो निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥ ९ ॥

भाषा-जब कानमें कृमि पड जाते हैं फिर वे छोटे छोटे कीडोंको उत्पन्न करते हैं या कानमें मक्खी बैठनेसे जो कीडे पड जाते हैं तब उसको कृमिके लक्षणोंसे कृमिकर्ण कहते हैं ॥ ९ ॥

कानमें पतंगादि कीडा घुसनेके लक्षण ।

पतंगाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि । अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥ कर्णो निस्तुद्यते तस्य तथा फुरफुरायते । कीटे चरति रुक्तीव्रा निस्पन्दे मन्दवेदना ॥ १० ॥

भाषा-पतंग, कानखजूरा, कानसलाई आदिके कानमें घुस जानेसे बेचैनी, वेकली और पीडा होती है, एवं छेदनेसरीखी पीडा हो । जब वे कृमि कानके भीतर कुडकुडावे और चले उस समय अत्यन्त पीडा हो। जब वह स्थिर हो जाय तब पीडाभी कम हो जाती है ॥ १० ॥

द्विविध कर्णविद्रधिके लक्षण ।

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः । सरक्तपीतारुणरक्तमास्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ ११ ॥

भाषा-घावके हो जानेसे अथवा चोटके लग जानेसे कानमें विद्रधि होती है

वैसेही दूसरे प्रकारकी वातादि दोषोंसे विद्रधि होती है उसमेंसे लाल, पीला और गुलाबी रंगका स्राव हो, चीरने सरीखी पीडा हो, धूंआसा निकले, दाह और चूसने सरीखी पीडा होती है ॥ ११ ॥

कर्णपाकके लक्षण ।

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् ।
कर्णे विद्रधिपाकाद्वा जायते चांबुपूरणात् ॥ १२ ॥

भाषा—पित्तके कुपित होनेसे या कानके पकनेसे अथवा कानमें जल भर जानेसे कर्णपाकरोग होता है । उससे कान बहने लगता है और गीला रहता है ॥१२॥

पूतिकर्णके लक्षण ।

पूयं स्रवति वा पूति स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ॥ १३ ॥

भाषा—कानमेंसे दुर्गंधयुक्त राध बहे उसको पूतिकर्ण कहते हैं ॥ १३ ॥

कर्णशोथादिकोंके लक्षण ।

कर्णशोथार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १४ ॥

भाषा—कर्णशोथ, कर्णअर्बुद और कर्णअर्श इनके लक्षण शोथअर्बुद और अर्शरोगके लक्षणोंकी समान जानने ॥ १४ ॥

वातजके लक्षण ।

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोषः स्रावस्तनुश्चाश्रवणं च वातात् ॥१५॥

भाषा—अब चरकने जो कर्णरोग चार प्रकारके कहे हैं उनको कहते हैं । तहां वातज कर्णरोगमें शब्द होता है, वेदना होती है, कानका मैल सूख जाता है, पोंसा बहे और सुनाई नहीं आती है ॥ १५ ॥

पित्तजके लक्षण ।

शोथः सरागो दरणं विदाहः सपीतपूतिस्रवणं च पित्तात् ॥ १६ ॥

भाषा—पित्तज कर्णरोगमें लाल सूजन हो, दाह हो, फटसा जाय और पीला स्राव होता है ॥ १६ ॥

कफजके लक्षण ।

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्ला स्निग्धा स्रुतिः श्लेष्मभवेतिरुक् च १७

भाषा—कफज कर्णरोगमें विपरीत सुनना अर्थात् कहे कुछ और सुने कुछ, खुजली हो, कठिन सूजन हो तथा सफेद और चिकनी राध बहती है ॥ १७ ॥

सन्निपातके लक्षण ।

सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात्स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ॥ १८ ॥

भाषा-त्रिदोषज कर्णरोगमें सब लक्षण मिलते हैं, सर्व प्रकारका स्राव हो अथवा जौनसा दोष अधिक हो उसी दोषके अनुसार उसी रंगका स्राव होता है॥१८॥

कर्णशोथ और परिपोटके लक्षण ।

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसापि प्रवर्धिते ।
कर्णशोथो भवेत्पाल्यां सरुजः परिपोटवान् ॥
कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात्परिपोटकः ॥ १९ ॥

भाषा-सुकुमार समझकर जो स्त्री अथवा पुरुष कानके छिद्रको नहीं बढाते, पश्चात् एक साथ बढावे तो कानकी पालीमें सूजन उत्पन्न होती है। उसमें पीडा होती है और वह सूज जाती है, वातसे वही स्थान काला, लाल और स्तब्ध हो जाता है उसको परिपोटक कहते हैं ॥ १९ ॥

उत्पातके लक्षण ।

गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्वर्षणादपि ।
शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजान्वितः ॥
रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः ॥ २० ॥

भाषा-कानमें भारी आभूषण पहननेसे या किसी प्रकारकी चोटके लगनेसे अथवा कानके रगडे जानेसे रक्तपित्त कुपित होकर नाककी पालीमें हरी, नीली तथा लाल रंगकी दाह, पीडा और पाकयुक्त सूजनको उत्पन्न करे है उसको कर्णपात कहते हैं ॥ २० ॥

उन्मंथके लक्षण ।

कर्णं बलाद्वर्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति ।
स कफं गृह्य कुरुते सशोफं स्तब्धवेदनम् ॥
उन्मंथकः सकण्डूको विकारः कफवातजः ॥ २१ ॥

भाषा-कानको जोरसे बढानेसे कानकी पालीमें वायु कुपित होकर कफके साथ मिलकर कठिन और अल्पपीडायुक्त सूजनको उत्पन्न करे, उसमें खुजली हो उस रोगको उन्मंथ कहते हैं। वह कफवातज है ॥ २१ ॥

दुःखवर्धनके लक्षण ।

संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः ।
शोफो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्द्धनः ॥ २२ ॥

भाषा-कुविधिसे कानको छेदनेसे और बढानेसे खुजली, दाह और पीडासंयु-

क्त सूजन होती है फिर वह पक जाती है उसको त्रिदोषज दुःखवर्द्धन कहते हैं ॥ २२ ॥

परिलेहीके लक्षण ।

कफासृक्कृमिसंभूतः स विसर्पन्नितस्ततः ।
लिहेच्च शष्कुलीं पालिं परिलेहीत्यसौ स्मृतः ॥ २३ ॥

भाषा-कफ, रुधिर और कृमिसे उत्पन्न हुई सूजन इधर उधर सर्वत्र फैलकर कानकी पालीको खुजाती है उसको परिलेही कहते हैं ॥ २३ ॥

इति कर्णरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ कर्णरोगचिकित्सा ।

कल्कादिक्रिया ।

सैन्धवश्च वचा हिङ्गु कुष्ठश्च नागकेशरम् । शतपुष्पा देवदारु एभिस्तैलं प्रसाधितम् ॥ गोपुरीषरसेनैव चतुर्भागेन संयुतम् । तत्कर्णभरणाद्बुद्ध कर्णशूलं क्षयं नयेत् ॥ मेषमूत्रसैन्धवाभ्यां कर्णयोर्भरणाच्छिव । कर्णयोः पूतिनाशः स्यात्कृमिस्रावादिकस्य च ॥ मूलकं स्वेदमग्नौ तु रसं तस्य प्रपेप्रयेत् । कर्णयोः पूरणात्तेन कर्णस्रावो विनश्यति ॥ कर्णयोः कृमिनाशः स्यात कटुतैलस्य पूरणात् । वास्योदकमृतं मूलं शिरीषस्य यथा तथा ॥ रक्तचित्रकमूलस्य शमनं भरणाद्धर । कर्णयोः कामलाव्याधिविनाशः स्यान्न संशयः ॥ हिङ्गुतुम्बुरुशुण्ठ्या च साध्यं तैलं तु सार्षपम् । एतद्धि पूरणं श्रेष्ठं कर्णशूलापहं परम् ॥ शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिंगुलनागरम् । शुक्तं चतुर्गुणं दद्यात् तैलमेतैर्विपाचयेत् ॥ बाधिर्यं कर्णशूलं च स्रावश्च कर्णयोस्तथा । कृमयश्च विनश्यन्ति तैलस्यास्य प्रपूरणात् ॥२४॥

भाषा-सैंधानोन, वच, हींग, कूठ, नागकेशर, सोया और देवदारु इनका कल्क और चौगुने गायके गोबरके रसके द्वारा तेलको पकाकर कानमें डालनेसे कर्णशूल

दूर होता है। सैंधानोनको मेढके मूत्रमें पीसकर कानमें डालनेसे कानकी दुर्गंध कृमि और स्रावादिक दूर होते हैं। मूलीको अग्निमें भूनकर उसका रस निचोडकर कानमें डालनेसे कानका बहना बंद हो जाता है। कानमें कडवा तेल डालनेसे कानके कृमि नष्ट होते हैं। सिरसकी जड अथवा लाल चीतेकी जडको बासी जलमें पीसकर कानमें डालनेसे कानकी कामला व्याधि दूर होती है। हींग, तुम्बुरु और सोंठको सरसोंके तेलमें डालकर पकावे, पश्चात् उस तेलको कानमें डालनेसे कानका शूल दूर होता है। सूखी मूलीका क्षार, सोंठका क्षार, सिंगरफ और सोंठ इनको चौगुने तेलमें पकावे जब तेल सिद्ध हो जाय तब कानमें डाले। इसके डालनेसे बधिरता, कर्णशूल, कर्णस्राव और कृमि ये सब नष्ट होते हैं॥ २४॥

शुष्कमूलाद्यं तैलम्।

शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिंगुलनागरम्। शतपुष्पी वचा कुष्ठं दारु शिग्रुरसाञ्जनम्॥ सौवर्चलं यवक्षारं सामुद्रं सैन्धवं तथा। भुजङ्गग्रन्थिकं विडं मुस्तं मधु चतुर्गुणम्॥ मातुलुङ्गरसं चैव कदलीरसमेव च। तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलापहं परम्॥ बाधिर्यं कर्णनादश्च पूयस्रावश्च दारुणः। पूरणादस्य तैलस्य कृमयः कर्णयोः खिलाः॥ क्षिप्रं विनाशमायान्ति शशाङ्ककृत-शेखर॥ २५॥

भाषा-सूखी मूली और सोंठका खार, सिंगरफ, सोंठ, सोया, वच, कूठ, देवदारु, सहजना, रसोत, काला नोन, जवाखार, समुद्रनोन, सैंधानोन, नागकेशर, गठिवन, बिडनोन और नागरमोथा इन सबोंका कल्क बनाकर चौगुने बिजोरे निबूका रस और केलेके रसके द्वारा तेलको पकाकर उसमें सहत मिलाकर कानमें डालनेसे कर्णशूल, बधिरता, कर्णनाद, पूयस्राव और कृमि आदि सकल कर्णरोग दूर हो जाते हैं॥ २५॥

दीपिकातैलम्।

महतः पंचमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि च। क्षौमेनावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः॥ यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तं प्रयोजयेत्। ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम्॥ एवं कुर्याद्भद्रकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च सारले। मतिमान् दीपिकातैलं कर्णशूलनिवारणम्॥ २६॥

भाषा-बृहत्पंचमूलकी आठ अंगुल प्रमाण लकडी लेकर उनको छेदकर पट्टवस्त्रमें बांध और तेलमें भिगोकर दीवेके योगसे जलावे। उसमेंसे टपक टपककर जो बूंद गिरे उनको सुहाता सुहाता कानमें डाले, इसके डालनेसे तत्काल कानकी पीडा दूर हो जाती है। इसी प्रकार देवदारु, कूठ और सरलकाठका दीपका तेल बनाकर कानमें डाले उससे अवश्य कानका शूल दूर होगा ॥ २६ ॥

अपामार्गक्षारतैलम् ।

अपामार्गक्षारजलेन तत्कृतकल्केन साधितं तैलम् ।
अपहरति कर्णनादं बाधिर्यञ्चापि पूरणतः ॥ २७ ॥

भाषा-चिरचिटेके क्षार जल और चिरचिटेके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर कानमें डालनेसे कर्णनाद और बधिरता दूर होती है ॥ २७ ॥

सर्जिकाद्यं तैलम् ।

सर्जिका मूलकं शुष्कं हिङ्गु कृष्णा महौषधम् ।
शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वशुक्तं चतुर्गुणम् ॥
प्रणादशूलं बाधिर्यं स्राव्यमाशु व्यपोहति ॥ २८ ॥

भाषा-सज्जी, सूखी मूली, हींग, पीपल, सोंठ और सोया इनके कल्क और चौगुनी कांजीके द्वारा तेलको पकाकर कानमें डालनेसे कर्णनाद, कर्णशूल और कर्णस्राव दूर होता है ॥ २८ ॥

दशमूलीतैलम् ।

दशमूलीकषायेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
एतत्कल्कं प्रदायैव बाधिर्ये परमौषधम् ॥ २९ ॥

भाषा-दशमूलके क्वाथ और कल्कमें एक प्रस्थ तेलको पकाकर कानमें डालनेसे बधिरता निश्चय दूर होती है ॥ २९ ॥

लशुनाद्यं तैलम् ।

लशुनमानकं तालं पिष्ट्वा तैले चतुर्गुणे ।
तैलाच्चतुर्गुणं क्षीरं पाच्यं तैलावशेषकम् ॥
तत्तैलं पूरयेत्कर्णे बाधिर्यं परिनाशयेत् ॥ ३० ॥

भाषा-तिलका तेल १ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, कल्कके लिये लहसन, मानकंद और हरिताल प्रत्येक आठ २ तोले यथाविधिसे तेलको पकावे। इस तेलको कानमें डालनेसे बधिरता दूर होती है ॥ ३० ॥

शम्बूकतैलम् ।

शम्बूकस्य च मांसेन कटुतैलं विपाचितम् ।
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ ३१ ॥

भाषा-शम्बूकके मांसको तेलमें पकाकर कानमें डालनेसे कर्णनाडीरोग दूर होता है ॥ ३१ ॥

निशातैलम् ।

निशागन्धपले पक्वं कटुतैलं पलाष्टकम् ।
धुत्तूरपत्रजरसे कर्णनाडीजिदुत्तमम् ॥ ३२ ॥

भाषा-कडवा तेल १ सेर, धतूरेके पत्तोंका स्वरस ४ सेर, कल्कके लिये हलदी और गंधक प्रत्येक एक २ पल लेवे । यथाविधिसे तेलको पकाकर कानमें डालनेसे कर्णनाडीरोग दूर होता है ॥ ३२ ॥

कुष्ठाद्यं तैलम् ।

कुष्ठहिङ्गुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः ।
पूतिकर्णापहं तैलं बस्तमूत्रेण साधितम् ॥ ३३ ॥

भाषा-कूठ, हींग, वच, देवदारु, सोया, सोंठ और सैंधानोन इनका कल्क और बकरीके मूत्रके द्वारा तेलको पकाकर कानमें डालनेसे पूतिकर्णरोग नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

इति कर्णरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ नासारोगनिदानम् ।

पीनसके लक्षण ।

आनह्यते यस्य विशुष्यते च प्रक्लिद्यते धूप्यति चैव नासा ।
न वेत्ति यो गंधरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्स तु पीनसेन ॥
तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिंगम् ॥ १ ॥

भाषा-अब नासारोगकी निदानपूर्वक चिकित्सा कहते हैं । तहां प्रथम पीनसका निदान कहते हैं । जिसकी नासिका बंद हो जाय, सूखे या भीगी रहे, तथा उसमेंसे धूंआ निकले और वह मनुष्य गंध और रसको भूल जाय उसके पीनस हुई जानना । वह वातकफज है और उसके लक्षण प्रतिश्यायकी समान हैं ॥ १ ॥

पूतिनस्यके लक्षण ।

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले संमूर्च्छितो यस्य समीरणस्तु ।
निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनस्यं प्रवदंति रोगम् ॥ २ ॥

भाषा-जिसके कफ, पित्त और रुधिरके दग्ध होनेसे गलेमें और तालुमें वायु बढ जाती है तब उसके मुख और नासिकासे दुर्गंध निकलने लगती है उसको पूतिनस्य कहते हैं ॥ २ ॥

नासापाकके लक्षण ।

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश्च पाकः ।
तन्नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावथ वापि यत्र ॥ ३ ॥

भाषा-जिसकी नासिकामें पित्त दुष्ट होकर छोटी छोटी फुंसियोंको उत्पन्न करे और भीतरसे अत्यन्त पके और क्लेदयुक्त हो उसको नासापाक कहते हैं ॥ ३ ॥

पूयरक्तके लक्षण ।

दोषैर्विदग्धैरथ वापि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः ।
नासा स्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ४ ॥

भाषा-वातादिदोषोंके दुष्ट होनेसे अथवा ललाटमें चोटके लगनेसे नाकमेंसे राध और रुधिर बहे उसको पूयरक्त कहते हैं ॥ ४ ॥

क्षवथुके लक्षण ।

घ्राणाश्रिते मर्मणि संप्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति ।
कफानुयातो बहुशोऽतिशब्दं तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः ॥ ५ ॥

भाषा-नासिकाके आश्रय जो शृंगाटक मर्म है उसमें वायु दुष्ट होकर कफके साथ अत्यन्त जोरसे शब्दको नाकके बाहर निकालती है उसको क्षवथु (छींक) कहते हैं ॥ ५ ॥

आगंतुज क्षवथुके लक्षण ।

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावान्कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा ।
सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्घाटितेऽन्यक्षवथुर्निरेति ॥ ६ ॥

भाषा-तीक्ष्ण राई आदि पदार्थको खानेसे या चरपरे पदार्थोंको खानेसे अथवा सूंघनेसे, सूर्य्यके देखनेसे, किंवा कपडे आदिकी बत्ती बनाकर नाकमें चढानेसे जो छींक आती है उसको आगन्तुज छींक कहते हैं ॥ ६ ॥

भ्रंशथुके लक्षण ।

प्रभ्रश्यते नासिकया हि यस्य सांद्रो विदग्धो लवणः कफश्च । प्राक्संचितो मूर्द्धनि सूर्यतप्ते तं भ्रंशथुं व्याधिमुदाहरन्ति ॥ ७ ॥

भाषा–सूर्यकी तपनसे मस्तक संतप्त होकर उसमें जो पूर्वसंचित कफ है वह विदग्ध गाढा और खारी कफ नाकके द्वारा गिरे उसको भ्रंशथुरोग कहते हैं ॥ ७ ॥

दीप्तके लक्षण ।

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिश्चरेद्धूम इवेह वायुः । नानाप्रदीप्तेव च यस्य जन्तोर्व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ॥ ८ ॥

भाषा–जिसकी नासिका अत्यन्त दाहसंयुक्त हो और उसमें वायु धूंएकी समान विचरण करे और ऊपरसेभी गरम रहे उसको दीप्तरोग कहते हैं ॥ ८ ॥

प्रतिनाहके लक्षण ।

उच्छ्वासमार्गं तु कफः सवातो रुंध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥ ९ ॥

भाषा–जब वायुके साथ कफ श्वासके मार्गको रोक लेता है तब नाकसे स्वर अच्छे प्रकारसे नहीं चलता उस रोगको प्रतिनाह कहते हैं ॥ ९ ॥

नासास्रावके लक्षण ।

घ्राणाद्घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम् ॥ १० ॥

भाषा–नाकके द्वारा गाढा, पीला, सफेद अथवा पतला कफ गिरता है उसको नासास्राव कहते हैं ॥ १० ॥

नासापरिशोषके लक्षण ।

घ्राणाश्रिते स्रोतसि मारुतेन गाढं प्रतप्ते परिशोषिते च । कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमधश्च जंतुर्यस्मिन्स नासापरिशोष उक्तः ॥ ११ ॥

भाषा–नासिकाके छिद्र वायुसे अत्यन्त संतप्त होकर सूख जांय तब वह मनुष्य अत्यन्त कठिनतासे ऊपर नीचेको श्वास लेवे उसको नासापरिशोष कहते हैं ॥ ११ ॥

आमपक्कके लक्षण ।

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुः स्वरः । क्षामः ष्ठीवेत्तथाऽभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥ आमलिंगान्वितः श्लेष्मा घनश्चाप्सु निमज्जति । स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्कपीनसलक्षणम् ॥ १२ ॥

भाषा–शिर भारी, अरुचि, नाकसे पानी गिरे, स्वरहीन हो, शरीरमें मलीनता

और वारंवार थूकना यह लक्षण आम अर्थात् कचे पीनसके हैं और जिसमें येही सब आम पीनसके लक्षण हों, कफ गाढा हो तथा जलमें डालनेसे बैठ जाय, स्वर निर्मल और वर्ण शुद्ध हो तो उसको पक्वपीनस कहते हैं अर्थात् ये पक्वपीनसके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

प्रतिश्यायकी संप्राप्ति ।

संधारणाजीर्णरजोतिभाष्यक्रोधर्तुवैषम्यशिरोभितापैः ।
प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतावश्यायतो मैथुनबाष्पशोषैः ॥
संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धे वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेच्च ॥ १३ ॥

भाषा-मलमूत्रादिके वेगको धारण करनेसे, अजीर्णसे, नाकमें धूल आदिके गिरनेसे, अत्यन्त भाषणसे, क्रोध करनेसे, ऋतुकी विषमतासे, ग्रीष्मकालमें सूर्यकी धूपके शिरपर पडनेसे, रात्रिमें अत्यन्त जागनेसे, दिनमें अत्यन्त सोनेसे, नवीन जलको पीनेसे, शीतल पदार्थोंका अधिक सेवन करनेसे, तुषारका सेवन करनेसे, अतिशय स्त्रीसंसर्गसे और हर्षशोकके आंसुओंको रोकनेसे मस्तकमें दोष एकत्रित होकर फिर वायु बढकर प्रतिश्यायरोगको उत्पन्न करती है ॥ १३ ॥

चयादिक्रमसे इसका दूसरा निदान ।

चयं गता मूर्द्धनि मारुतादयः पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् ।
प्रकुप्यमाना विविधैः प्रकोपनैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति॥१४॥

भाषा-अब वातादिदोषोंके संचय क्रमसे प्रतिश्यायका निदान कहते हैं। मस्तकमें वातादिदोष पृथक् पृथक् तथा सब एकत्र एवं रुधिर संचय होकर अर्थात् इकट्ठे होकर अपने अपने कोप होनेके कारणोंसे कुपित होकर प्रतिश्यायको उत्पन्न करे है॥ १४ ॥

पूर्वरूपके लक्षण ।

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽतिपूर्णता स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता ।
उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः॥१५॥

भाषा-छींकोंका आना, शिरमें भारीपन, शरीरका जकडना और टूटना, रोमांचोंका खडे हो जाना तथा नाकमेंसे धूंआसा निकलना इत्यादि औरभी उपद्रव होते हैं। यह प्रतिश्यायका पूर्वरूप है ॥ १५ ॥

वातिकप्रतिश्यायके लक्षण ।

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी ।

गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शंखयोरपि ॥
भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मजे ॥ १६ ॥

भाषा-जिसमें नाक भारी और बंद रहे, पतला स्राव हो, गला, तालु और होंठ सूखे, कनपटीमें तोडनेसरीखी पीडा हो और स्वरभंग हो उसको वातज प्रतिश्याय कहते हैं ॥ १६ ॥

पैत्तिकप्रतिश्यायके लक्षण।

उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात्स्रवति पैत्तिके।
कृशोतिपाण्डुः सन्तप्तो भवेदुष्णाभिपीडितः ॥
सधूममग्निं सहसा वमतीव च नासया ॥ १७ ॥

भाषा-नाकमेंसे गरम और पीला स्राव हो तथा वह मनुष्य कृश, पांडुवर्ण हो जाय, उसका शरीर गरम हो और गरमीसे पीडित हो और नाकमेंसे अग्निकी समान धूंआ निकले, उसको पित्तज प्रतिश्याय कहते हैं ॥ १७ ॥

श्लैष्मिकके लक्षण।

घ्राणात्कफः कफकृते श्वेतः पीतः स्रवेद्बहुः।
शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा नरः॥
कण्ठताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरभिपीडितः ॥ १८ ॥

भाषा-जिसमें नाकके द्वारा सफेद और पीला बहुतसा स्राव हो, उस मनुष्यका शरीर सफेद हो जाय, नेत्रोंमें सूजन हो, शिर भारी हो; कंठ, तालु और ओष्ठ तथा शिर इनमें अधिक खुजली हो उसको कफज प्रतिश्याय कहते हैं ॥ १८ ॥

सन्निपातके लक्षण।

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो यस्याकस्मान्निवर्तते।
स पक्वो वाप्यपक्वो वा स तु सर्वभवः स्मृतः ॥ १९ ॥

भाषा-जिसमें पूर्वोक्त सब लक्षण मिलते हों और वह वारंवार होकर पका अथवा कचाही नष्ट हो जावे उसको सन्निपातज प्रतिश्याय जानना ॥ १९ ॥

दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण।

प्रक्लिद्यते पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति । पुनरानह्यते चापि पुनर्विव्रियते तथा ॥ निश्वासो वाति दुर्गन्धो नरो गंधं न वेत्ति च। एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥ २० ॥

भाषा-जिसमें वारंवार नाक वहे और सूखे, नाकके द्वारा अच्छी रीतिसे श्वास न लिया जाय, वारंवार नाक बंद हो जाय और वारंवार खुल जाय, श्वास लेते समय दुर्गंध आवे और उस मनुष्यको सुगंध दुर्गंधका ज्ञान न रहे ये लक्षण जिसमें हों उसको दुष्टप्रतिश्याय कहते हैं ॥ २० ॥

रक्तप्रतिश्यायके लक्षण ।

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्त्तते ।
ताम्राक्षश्च भवेज्जंतुरुरोघातप्रपीडितः ॥
दुर्गन्धोच्छ्वासवदनो गंधानपि न वेत्ति सः ॥ २१ ॥

भाषा-जिसमें नाकके द्वारा रुधिर गिरे, नेत्र लाल हों, उरःक्षतकी समान पीडा हो, श्वास या मुखमें दुर्गंध आवे और उस मनुष्यके सुगंध दुर्गंधका ज्ञान न रहे उसको रक्तज प्रतिश्याय कहते हैं ॥ २१ ॥

असाध्यलक्षण ।

सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः । दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवंति च ॥ मूर्च्छन्ति क्रमयश्चात्र श्वेताः स्निग्धास्तथाऽणवः । क्रमिजो यः शिरारोगस्तुल्यं तेनास्य लक्षणम् ॥ २२ ॥

भाषा-यदि प्रतिश्यायकी चिकित्सा न की जाय तो वे दुष्ट होकर असाध्य हो जाते हैं । तब उसमें सफेद, चिकने और महीन महीन कीडे पड जाते हैं उसके लक्षण क्रमिशिरोरोगकी समान जानने ॥ २२ ॥

अन्यविकारः ।

बाधिर्यमांध्यमन्धत्वं घोरांश्च नयनामयान् ।
शोथाग्निसादकासादीन् वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ॥ २३ ॥

भाषा-इस प्रतिश्याय अर्थात् पीनसके अधिक बढनेसे जो विकार होते हैं उनको कहते हैं । जैसे कि बहरापन, कम दीखना, सुगंधादिका ज्ञान न रहना, दारुण नेत्ररोग हो, सूजन, मंदाग्नि और खांसी आदि विकार होते हैं ॥ २३ ॥

इति नासारोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ नासारोगचिकित्सा ।

नस्यविधिः ।

दूर्वा दाडिमपुष्पन्तु अलक्तकहरीतकी। नासाशिरारक्तनुत् स्यान्नस्याद्धे स्वरसेन हि ॥ पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः । दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं संपक्वपीनसे ॥ व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसव्योषसैन्धवैः । पाचितं नावनं तैलं पूतिनासागदं जयेत् ॥ कलिंगहिङ्गुमरिचलाक्षासुरसकट्फलैः । कुष्ठोग्राशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ तैरेव मूत्रसंयुक्तैः कटुतैलं विपाचयेत् । अपीनसे पूतिनस्ये शमनं कीर्तितं परम् ॥ शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककषायवत् । साधितं तैलमाज्यं वा नस्यं क्षवथुरुक्प्रणुत् ॥ यः पिबति शयनकाले शयनारूढः शीतं भुवि । सलिलं पीनससंयुक्तः स मुच्यते तेन रोगेण ॥ २४ ॥

भाषा-दूबकी जड, अनारके फूल, आल और हरड इनको पीसकर रस निकालकर नाकमें डालनेसे नासिकागत रुधिर दूर होता है । पाठ, हलदी, दारुहलदी, मूर्वा, पीपल, चमेलीके पत्ते और दंती इनको तेलमें पकाकर नास लेनेसे पक्वपीनस दूर होता है । कटेरी, दंती, वच, सहजना, तुलसी, काली मिरच, पीपल, सोंठ और सैंधानोन इनके द्वारा तेलको पकाकर नास देनेसे पूतिनासा अर्थात् नाककी दुर्गंध दूर होती है। इन्द्रजौ, हींग, काली मिरच, लाख, तुलसी, कायफल, कूठ, वच, सहजना और बायविडंग इनको पकाकर रस निचोडकर नास देनेसे अथवा इन सब औषधियोंके कल्क और गोमूत्रके द्वारा कडवे तेलको पकाकर नास देनेसे अपीनस और नाककी दुर्गंध दूर होती है । सोंठ, कूठ, पीपल, बेलगिरी और दाख इनके कल्क और काथके द्वारा तेल अथवा घीको पकाकर नास देनेसे क्षवथु (छींक) रोग दूर होता है । जो मनुष्य रात्रिमें सोते समय खाटपर लेटकर शीतल जल पीते हैं वे मनुष्य पीनसरोगरहित हो जाते हैं ॥ २४ ॥

आगारधूमाद्यं तैलम् ।

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः ।
सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ॥ २५ ॥

भाषा-घरका धूंआ, पीपल, देवदारु, जवाखार, हलदी, सैंधानोन और चिरचिटेके बीजोंके द्वारा तेलको पकाकर नास देनेसे नासार्शरोग दूर होता है ॥ २५ ॥

चित्रकतैलम् ।

चित्रकचविकादीप्यकनिदिग्धिकाकरञ्जबीजलवणार्कैः । गोमूत्रयुक्तं सिद्धं तैलं नासार्शसां हितम् ॥ वासो गुरूष्णं शिरसः सुघनं परिवेष्टितम् । लघूष्णं लवणं स्निग्धमुष्णभोजनमद्रवम् ॥ पंचमूलीशृतं क्षीरं स्याच्चित्रकं हरीतकी । सर्पिर्गुडपडंगश्च यूषपीनसशान्तये ॥ २६ ॥

भाषा-चीता, चव्य, अजवायन, कटेरी, करंजके बीज, सैंधानोन और आक इनके कल्क और गोमूत्रके द्वारा तेलको पकाकर नास देनेसे नासागत अर्शरोग दूर होता है । पीनसरोगमें भारी और गरम कपडेसे शिरको ढक देवे तथा हलका, गरम और लवणरससंयुक्त स्निग्ध पदार्थोंका भोजन करे । पंचमूलके द्वारा पकाया दूध, चीतेकी जड, हरड, घी, पुराना गुड और पडंग यूष ये सब पदार्थ पीनसरोगमें अत्यन्त हितकारी हैं ॥ २६ ॥

व्योषाद्यं चूर्णम् ।

व्योषाचित्रकतालीसतिन्तिडीकाम्लवेतसम् । सचव्यजाजीतुल्यांशमेलात्वक् पत्रपादिकम् ॥ व्योषादिकं चूर्णमिदं पुराणगुडसंयुतम् । पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ २७ ॥

भाषा-त्रिकुटा, चीतेकी जड, तालीसपत्र, इमली, अमलवेत, चव्य और काला जीरा प्रत्येक एक एक तोला; इलायची, तेजपात और दालचीनी प्रत्येक दो २ मासे; पुराना गुड ८ तोले ६ मासे लेवे, इन सबोंको एकत्र पीसकर गरम जलके साथ सेवन करनेसे पीनस, श्वास, खांसी आदि रोग दूर होते हैं तथा रुचि उत्पन्न होती है और स्वर निर्मल होता है ॥ २७ ॥

घृतलेपः ।

नासापाके पित्तहरं विधानं कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरञ्च । हृत्वा रक्तं क्षीरिवृक्षत्वचश्च योज्याः सेके सर्पिषश्च प्रदेहाः ॥ २८ ॥

भाषा-नासापाकरोगमें बाह्य और आभ्यन्तरिक पित्तनाशक क्रिया करे तथा बटादि दूधवाले वृक्षोंकी छालको पीसकर घीमें मिलाकर प्रलेप करे ॥ २८ ॥

स्नेहपानादिक्रिया ।

दीप्ते रोगे पैत्तिके पैत्तिकन्तु कार्यं कुर्य्यान्मधुरं शीतलञ्च । नासादाहे स्नेहपानं प्रधानं स्निग्धे धूमो मूर्द्धबस्तिश्च नित्यम्॥२९॥

भाषा–पित्तजन्य दीप्तरोगमें पित्तनाशक, मधुर और शीतल क्रिया करे। नासिकामें दाह होय तो स्नेहपान, स्निग्ध धूम और शिरोबस्ति प्रयोग करे॥ २९ ॥

चित्रकहरीतकी ।

चित्रकस्यामलक्याश्च गुडूच्या दशमूलजम् । शतं शतं रसं दत्त्वा पथ्याचूर्णाढकं गुडात् ॥ शतं पचेद्घनीभूते पलद्वादशकं क्षिपेत् । व्योषत्रिजातयोः क्षारात् पलार्द्धमपरेऽहनि ॥ प्रस्थार्द्धं मधुनो दत्त्वा यथाग्न्यद्यादयन्त्रणः । वृद्धयेऽग्नेः क्षयं कासं पीनसं दुस्तरं कृमिम् ॥ गुल्मोदावर्त्तदुर्नामश्वासान् हन्ति सुदारुणान् ॥ ३० ॥

भाषा–चीतेकी जडका रस १२॥ सेर, आमलोंका स्वरस १२॥ सेर, गिलोयका रस १२॥ सेर, दशमूलका क्वाथ १२॥ सेर, हरडका चूर्ण ८ सेर और गुड १२॥ सेर सबोंको मिलाके पकावे। जब देखे कि खूब गाढा हो गया तब सोंठका चूर्ण, पीपलका चूर्ण, काली मिरचोंका चूर्ण, छोटी इलायचीका चूर्ण, तेजपातका चूर्ण और दालचीनीका चूर्ण प्रत्येक १२ पल और जवाखार दो तोले मिला देवे। फिर एक दिनके बाद १ सेर सहत मिला देवे। इस औषधिको सेवन करनेसे अग्नि बढती है तथा क्षय, खांसी, पीनस, दुस्तरकृमि, गुल्म, उदावर्त्त, बवासीर और श्वासको नष्ट करे है ॥ ३० ॥

करवीराद्यं तैलम् ।

रक्तकरवीरपुष्पं जात्यास्तथाशनमल्लिकाश्च । एतैः समन्तु तैलं नासार्शो नाशनं पक्वम् ॥ प्रतिश्याये नवे शस्तो यूपश्चिञ्चासमुद्भवः । ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः ॥ शिरसोऽभ्यञ्जनस्वेदनस्यकट्वम्लभोजनैः । वमनैर्घृतपानैश्च तान् यथास्वमुपाचरेत् ॥ भक्षयेत्तु भुक्तमात्रे सलवणसुस्विन्नमाषमत्युष्णम् । स जयति सर्वसमुत्थं चिरजातञ्च प्रतिश्यायम् ॥ ३१ ॥

भाषा–लाल कनेरके फूल, चमेलीके फूल, विजयसारके फूल और मोतियाके फूल

इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर नास देनेसे नासार्शरोग दूर होता है। इमलीका यूष पान करनेसे नवीन प्रतिश्यायरोग दूर होता है। यदि कफ पक जाय तो नस्य, कफको निकालनेवाले तैलादिक शिरसे मलना। स्वेद, कटु और खट्टे पदार्थोका भोजन वमन और घृतपान करना चाहिये। आहारके पश्चात् निमक डालकर पकाये हुए अत्यन्त गरम उड़द भक्षण करे तो सर्व प्रकारके प्रतिश्यायरोग दूर होते हैं॥३१॥

इति नासारोगचिकित्सा समाप्ता।

अथ चक्षूरोगनिदानम् ।

कारण और संप्राप्ति ।

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ।
स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥
द्रवान्नपानातिनिषेवणाच्च विण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च ।
प्रसक्तसंरोदनशोककोपाच्छिरोभिघातादतिमद्यपानात् ॥
तथा ऋतूनां च विपर्ययेण क्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च ।
बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकारान् जनयंति दोषाः ॥ १ ॥

भाषा–गरमीसे व्याकुल होकर अर्थात् धूपादिसे संतप्त होकर जलमें घुसनेसे, दूरकी वस्तुको बहुत देखनेसे, दिनमें सोनेसे, रात्रिमें जागनेसे, नेत्रोंमें पसीने, धूल अथवा धूंएके जानेसे, आये हुए वमनके वेगको रोकनेसे, या बहुत वमन कारनेसे, पतले अन्नपानका अधिक सेवन करनेसे; मल, मूत्र और अधोवायुके वेगको रोकनेसे, निरन्तर रोनेसे, शोक और क्रोध करनेसे, शिरमें चोटके लगनेसे, अत्यन्त मदिरा पीनेसे, ऋतुविपरीत कर्म्म करनेसे, क्लेशित कर्म्मोंके करनेसे जो दुःख होता है उससे, अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करनेसे, आंसुओंको रोकनेसे और बहुत देरतक बहुत बारीक वस्तुओंको देखनेसे इत्यादि कारणोंसे वातादि दोष नेत्रोंमें अनेक प्रकारके दारुणरोगोंको उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

अभिष्यंदके लक्षण ।

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः ।
प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥ २ ॥

भाषा–वात, पित्त, कफ और रुधिरके दोषसे अभिष्यन्दरोग चार प्रकारका

होता है। इसमें अत्यन्त भयंकर पीडा होती है । प्रायः यह सर्व नेत्ररोगोंका कारण है । इसको देशभाषामें " आंखें दूखनी " ऐसा कहते हैं ॥ २ ॥

वाताभिष्यंदके लक्षण ।

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोभितापाः । विशुष्कभावाः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ३ ॥

भाषा-वाताभिष्यन्दरोगमें सुई चुभाने सरीखी पीडा हो, जडता, रोमांच हो आवें, नेत्रोंमें रेतीके पडने सरीखी खडक हो, रूक्षता हो, शिरमें दर्द हो, नेत्रोंमें कीचडका न आना और नेत्रोंमेंसे शीतल आंसू गिरे ॥ ३ ॥

पित्ताभिष्यंदके लक्षण ।

दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा धूमायनं वाष्पसमुच्छ्रयश्च । उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ४ ॥

भाषा-पित्तज अभिष्यन्दरोगमें नेत्रोंमें दाह हो, पाक हो, शीतल पदार्थोंका नेत्रोंसे स्पर्श करनेकी इच्छा हो, नेत्रोंमें धूंआ लगनेकेसी पीडा हो, आंखोंमेंसे आंसू अधिक बहे और वह आंसू गरम होय तथा आंख पीली होती है ॥ ४ ॥

कफाभिष्यंदके लक्षण ।

उष्णाभिनन्दो गुरुताक्षिशोथः कण्डूपदेहावतिशीतता च । स्रावो बहुःपिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ५ ॥

भाषा-कफज अभिष्यन्दरोगमें गरम पदार्थ लगानेकी इच्छा हो, नेत्र भारी हो, सूजन हो, खुजली हो, अधिक कीचड आवे, अत्यन्त शीतल, चिकटे हों, उनमेंसे बहुत और पिच्छिल स्राव हो ॥ ५ ॥

रक्ताभिष्यंदके लक्षण ।

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समंतादतिलोहिताश्च । पित्तस्य लिंगानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ६ ॥

भाषा-रक्तज अभिष्यंदरोगमें नेत्रोंमेंसे लाल आंसू गिरे, नेत्रोंका रंग लाल हो, नेत्रोंके चहुँ ओर लाल रेखा दीखे तथा इसमें पित्तज अभिष्यंदके सम्पूर्ण लक्षण होते हैं ॥ ६ ॥

अभिष्यंदसे अधिमंथकी उत्पत्ति ।

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् । तावंतस्त्वधिमंथाः स्यु-

नयने तीव्रवेदनाः ॥ उत्पाट्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा।
शिरसोऽर्द्धं च तं विद्यादधिमंथं स्वलक्षणैः ॥ ७ ॥

भाषा-अभिष्यन्दसे अधिमंथरोग होता है उसके लक्षण कहते हैं। अभिष्यन्दरोगकी चिकित्सा न करनेसे वह अभिष्यन्दरोग बढकर उतनीही पीडायुक्त उसी प्रकार चार प्रकारके अधिमंथरोग होते हैं। नेत्रोंमें उखाडने सरीखी पीडा हो तथा मथनेसरीखी पीडा हो और आधे शिरमें वेदना होवे ये लक्षण अधिक होते हैं। बाकीके वाताभिष्यन्दादिकोंके जो लक्षण हैं उन सब लक्षणोंयुक्त वाताधिमंथ, पित्ताधिमंथ आदिके लक्षण जानने ॥ ७ ॥

दोषभेदसे कालमर्यादाके लक्षण।

हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्राद्योऽधीमंथो रक्तजः पंचरात्रात्।
षड्रात्राद्वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकः सद्य एव ॥ ८ ॥

भाषा-मिथ्या आचरण करनेसे कफज अधिमंथ सात दिनमें, रक्तज पांच दिनमें, वातज सात दिनमें और पित्तज अधिमंथ तत्काल दृष्टिका नाश करे है ॥ ८ ॥

नेत्ररोगके सामान्यलक्षण।

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागोद्रेकसमन्वितम्।
घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥ ९ ॥

भाषा-अब नेत्ररोगके आमपक्व लक्षण कहते हैं। जिसमें नेत्रोंमें अत्यन्त भयंकर पीडा हो, लाली अधिक हो, करकराहट हो, सुई चुभाने सरीखी पीडा हो, शूल हो और पानी बहे ये लक्षण आमयुक्त नेत्ररोगके जानने ॥ ९ ॥

निरामके लक्षण।

मन्दवेदनता कण्डूः संरम्भाश्रुप्रशान्तता।
प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोः संपक्वं दोषमादिशेत् ॥ १० ॥

भाषा-नेत्रोंमें पीडा मंद होवे, खुजली हो, सूजन और आंसुओंकी शांति हो अर्थात् कम हो तथा नेत्रोंका वर्ण प्रसन्न अर्थात् निर्मल हो ये लक्षण पक्वदोषके हैं ॥ १० ॥

शोथसहित नेत्रपाकके लक्षण।

कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुंबरसन्निभः।
संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः स शोफजः ॥
शोथहीनानि लिंगानि नेत्रपाके त्वशोथजे ॥ ११ ॥

भाषा-नेत्रोंमें खुजली चले, चिपके और आंसू बहे तथा पके गूलरकी समान लाल सूजनयुक्त जो पके वह शोफज नेत्ररोग है और जिसमें ये लक्षण न हों उसको शोथरहित नेत्रपाक जानना ॥ ११ ॥

हताधिमंथके लक्षण ।

उपेक्षणादक्षि यदाधिमंथो वातात्मकः सादयति प्रसह्य ।
रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमंथः खलु नेत्ररोगः ॥ १२ ॥

भाषा-वातज अधिमंथकी अच्छे प्रकार औषधि न करनेसे नेत्रोंमें अत्यन्त तीव्र पीडा और दाहादि उत्पन्न होती है तथा नेत्र तेजहीन हो जाते हैं उसको हताधिमंथ कहते हैं ॥ १२ ॥

वातपर्ययके लक्षण ।

वारं वारं च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः ।
रुजश्च विविधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातपर्ययः ॥ १३ ॥

भाषा-जिसमें वायु कभी भौंओंमें और कभी नेत्रोंमें जाकरके अनेक प्रकारकी तीव्र पीडाको उत्पन्न करती है उसको वातपर्य्ययनेत्ररोग कहते हैं ॥ १३ ॥

शुष्काक्षिपाकके लक्षण ।

यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म संदह्यते चाविलदर्शनं च ।
सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥१४॥

भाषा-जिस रोगमें नेत्र खुले नहीं अर्थात् मिचे रहें, नेत्रोंके पलक कठोर और रूखे हों, नेत्रोंमें दाह हो, साफ न दीखे, खोलनेमें अत्यन्त कष्ट हो उसको शुष्काक्षिपाकरोग कहते हैं ॥ १४ ॥

अन्यतोवातके लक्षण ।

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाप्यनिलोऽन्यतो वा ।
कुर्याद्रुजं वै भ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥ १५ ॥

भाषा-घाटी, कान, शिर, ठोडिया, गरदन, पीठ आदि स्थानोंमें स्थित जो वायु सो नेत्र और भौंओंमें पीडा करे उसको अन्यतोवात कहते हैं । यह वायु अन्यत्र रहके अन्यत्र पीडा करे है इस कारण इसको अन्यतोवात कहते हैं ॥१५॥

अम्लाध्युषितके लक्षण ।

श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वं चाक्षि प्रपच्यते ।
सदाहशोथं सास्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥ १६ ॥

भाषा-जो नेत्ररोग बीचमें नीला और किनारेपर लाल होकर सर्वत्र नेत्रोंको पकावे तथा उसमें दाह, सूजन और नेत्रोंमेंसे पानी बहे अम्ल अर्थात् खटाई आदिके खानेसे होता है इस कारण उसको अम्लाध्युषित कहते हैं ॥ १६ ॥

शिरोत्पातके लक्षण ।

अवेदना वापि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः ।
मुहुर्विरज्यंति च याः सदा हक्व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः १७॥

भाषा-पीडासहित या पीडारहित जिसकी आंखोंकी नसें तांबेकी समान लाल हों और वारं वार अधिक लालरंगकी होती जांय उसको शिरोत्पातरोग कहते हैं ॥ १७ ॥

शिराहर्षके लक्षण ।

मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रागस्तु शिराप्रहर्षः ।
ताम्राक्षमस्रं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च ॥ १८ ॥

भाषा-यदि अज्ञानतासे शिरोपातका यत्न न किया जाय तो शिराप्रहर्षरोग होता है । उसमें नेत्रोंमें तांबेकी समान लाल और निर्मल आंसू गिरते हैं और वह रोगी देखनेको असमर्थ होता है ॥ १८ ॥

सव्रणशुक्रलक्षण ।

निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै ।
स्रावं स्रवेदुष्णमतीव यच्च तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥ १९ ॥

भाषा-नेत्रकी काली पुतलीमें फूलासा पड गया हो और वह भीतरसे गहरा हो अर्थात् सुई छेदनेकी समान गढ्ढासा हो जाय, नेत्रोंमेंसे अत्यन्त गरम बहुत स्राव हो । उसको सव्रणशुक्र कहते हैं ॥ १९ ॥

सव्रणशुक्रके साध्यासाध्यलक्षण ।

दृष्टेः समीपेन भवेत्तु यत्तु न चावगाढं न च संस्रवेद्धि ।
अवेदनं वा न च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ २० ॥

भाषा-जो फूला नेत्रकी पुतलीसे दूर हो, गहरा न हो, अधिक स्रवे नहीं, पीडा न हो और एक स्थानमें दो फूले उत्पन्न हों ऐसा फूला कदाचित् आरोग्यमी हो जाय नहीं तो असाध्य तो हैही ॥ २० ॥

अव्रणशुक्रके लक्षण ।

स्यन्दात्मिकं कृष्णगतं सचोषं शंखेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् ।
वैहायसाभ्रप्रतनु प्रकाशमथाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥ २१ ॥

भाषा-जो फूला नेत्राभिष्यन्द अर्थात् आंखोंके दूखनेसे उत्पन्न हुआ हो, काली पुतलीमें चूसनेसरीखी पीडा हो तथा शंख, चंद्र और कुंदके फूलकी समान सफेद एवं आकाशके समान निर्मल और पतला हो वह अव्रणशुक्र सुखसाध्य है॥२१॥

अव्रणशुक्रके कृच्छ्रसाध्यलक्षण ।

गम्भीरजातं बहलं च शुक्रं चिरोत्थितं चापि वदन्ति कृच्छ्रम्॥२२॥

भाषा-जो शुक्र (फूला) गहरा हो तथा मोटा हो और बहुत दिनोंका हो उसको कष्टसाध्य जानना ॥ २२ ॥

अव्रण अवस्थाभेदकरके असाध्य होता है उसको कहते हैं ।

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं शिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च ।
द्वित्वग्गतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ॥
उष्णाश्रुपातः पिडिका च नेत्रे यस्मिन्भवेन्मुद्गनिभं च शुक्रम् ।
तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचिदन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ २३ ॥

भाषा-फूलके बीचमें गट्टासा पड जाय या उसके चारों ओर मांस बढकर उसको घेर लेवे, अचल न रहे अर्थात् एक जगहसे दूसरी जगहमें चला जाय, सूक्ष्म शिराओंसे व्याप्त हो, दृष्टीका नाशक, दूसरे परदेमें उत्पन्न और चारों ओरसे लाल हो तथा बहुत दिनोंका हो ऐसे शुक्रको वैद्य त्याग देवे । नेत्रोंमें गरम आंसू गिरे तथा छोटी छोटी फुंसी हो और मूंगकी समान शुक (फूला) हो ऐसा तथा तीतरके पंखकी समान श्यामवर्णभी शुक (फूला) असाध्य होता है ॥ २३ ॥

अक्षिपातात्ययके लक्षण ।

श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डलन्तु ।
तमक्षिपाकात्ययमक्षिपाकं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ॥ २४ ॥

भाषा-तीनों दोषोंसे जिसके नेत्रोंके काले भागमें चहुँ ओरसे सफेदी छा जाती है उस नेत्रपाकको त्रिदोषज अक्षिपाकात्यय कहते हैं । वह असाध्य है इस कारण उसकी चिकित्सा न करनी चाहिये ॥ २४ ॥

अजकाजातके लक्षण ।

अजापुरीषप्रतिमो रुजावान् सलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रुः ।
विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तच्चाजकाजातमिति व्यवस्येत्॥२५॥

भाषा-काले भागमें बकरीकी मेंगनकी समान, पीडासहित, लाल तथा लाल और पिच्छिल, आंसुओंसे युक्त जो फूला होता है उसको अजकाजात कहते हैं॥२५॥

प्रथमपटलस्थ दृष्टिदोषके लक्षण ।

प्रथमे पटले यस्य दोषो दृष्टिं व्यवस्थितः ।
अव्यक्तानि च रूपाणि कदाचिदथ पश्यति ॥ २६ ॥

भाषा-पहिले पटल (परदा) में दोष प्राप्त होनेसे वह मनुष्य कभी कभी अव्यक्तरूप अर्थात् वातसे काले नीले, पित्तसे पीले, कफसे सफेद और सन्निपातसे अनेक प्रकारके चित्रविचित्रित रंग दीखते हैं ॥ २६ ॥

द्वितीयपटलस्थित दोषके लक्षण ।

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते । मक्षिकामशकान्केशान् जालकानि च पश्यति ॥ मण्डलानि पताकाश्च मरीचीन् कुण्डलानि च । परिप्लवांश्च विविधान्वर्षमभ्रं तमांसि च ॥ दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते च समीपतः । समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात्॥यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति॥२७

भाषा-दूसरे पटलमें दोषके प्राप्त होनेसे दृष्टि अत्यन्त विह्वल हो जाती है तथा मक्खी, मच्छर, केश और जालकी समान दीखता है। मंडल, पताका, किरण और कुण्डल ये झिलमिलातेसे दीखते हैं और वर्षा, मेघ एवं धूपादि पदार्थोंको देखता है, भ्रमसे दृष्टि दूरके रूपोंको निकट और निकटके रूपोंको दूर देखे और अनेक यत्न करनेसेभी सुईका नकुआ न दीखे है ॥ २७ ॥

तृतीयपटलगत दोषके लक्षण ।

ऊर्द्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते । महांत्यपि च रूपाणि छादितानीव चाम्बरैः ॥ कर्णनासाक्षिहीनानि विकृतानि च पश्यति । यथादोषं च रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि ॥ अधःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते । पार्श्वस्थिते पुनर्दोषे पार्श्वस्थं नैव पश्यति ॥ समन्ततः स्थिते दोषे संकुलीनीव पश्यति । दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्ध्रस्वं च पश्यति ॥ द्विधा स्थिते द्विधा पश्येद्बहुधा वाऽनवस्थिते । दोषे दृष्टिस्थिते तिर्यगेकं वै मन्यते द्विधा ॥ २८ ॥

भाषा-तीसरे पटलमें दोष प्राप्त होनेसे ऊपरके पदार्थ दीखे और नीचेके पदार्थ न दीखे, अत्यन्त बडे स्वरूप मेघसे आच्छादित दीखे; कान, नाक और

आंख इनसे रहित विकृतमनुष्यको देखे। जो दोष बलवान् होय वैसाही उस दोषके अनुसार दृष्टिका रंग दीखे, दोष नीचेके भागमें स्थित होय तो निकटकी वस्तु न दीखे और ऊपर स्थित होय तो दूरकी वस्तु न दीखे, दोष अगल बगल होय तो अगल बगलकी वस्तु न दीखे, चहुँ ओर दोष स्थित होय तो सकल पदार्थ मिश्रित दीखें, दृष्टिके मध्यमें दोष स्थित होय तो बडा पदार्थ छोटा दीखे, दो भागोंमें दोषके स्थित होनेसे एकके दो दीखें, दोष स्थित न होय तो अनेक प्रकारके रूप दीखें और जो दोष तिरछे स्थित होय तो एकके दो टुकडे दीखें ॥ २८॥

चतुर्थपटलगत तिमिरके लक्षण ।

तिमिराख्यः स वै रोगश्चतुर्थपटलं गतः । रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिंगनाशमतः परम् ॥ अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे । चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावंतरिक्षे च विद्युतः ॥ निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति । स एव लिंगनाशस्तु नीलिका काचसंज्ञितः ॥ २९ ॥

भाषा–चौथे पटलमें दोष प्राप्त होनेसे उसको तिमिर कहते हैं वह जब चहुँ ओरसे दृष्टिको रोक लेता है तब उसको कोई वैद्य लिंगनाशक कहते हैं । उसमें कुछभी नहीं दीखता, जो उसमें अधिक अंधकार न हुआ हो और वह अधिक बढाभी नहीं हो तब केवल चन्द्र, सूर्य्य, नक्षत्र, आकाश और विजली इनका तेज दीखता है । तीसरे पटलमें जो काचसंज्ञक रोग है उसकी चिकित्सा न करनेसे वह लिंगनाशक और नीलिका कहा जाता है ॥ २९ ॥

दोषविशेषकरके रूपका दीखना ।

तत्र वातेन रूपाणि भ्रमन्तीव हि पश्यति । आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः ॥ पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गुणान् । नृत्यन्तश्चैव शिखिनः सर्वं नीलं च पश्यति ॥ कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च । सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः ॥ पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च । ससितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ॥ सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति । बहुधा च द्विधा वापि सर्वाण्येव समंततः ॥ हीनांगान्यधिकांगानि ज्योतींष्यपि च पश्यति ॥ ३० ॥

भाषा-वातसे गदले, लाल, कुटिल और भ्रमते हुए रूप दीखते हैं । पित्तसे सूर्य्य, पटवीजने, इन्द्रधनुष, बिजली, नाचते हुए मोर और सम्पूर्ण पदार्थ नीले रंगके दीखते हैं । कफसे चिकने, सफेद, जलसे भीगेकी समान और जड ऐसे रूप दीखते हैं । रक्तसे लाल और अनेक प्रकारके अंधकाररूप, गदले, काले और पीले रंगके पदार्थ दीखते हैं । सन्निपातसे अनेक प्रकारके चित्रविचित्र रंग, विपरीत अनेक या एकके दो अथवा अंगहीन या अधिक अंगवाले और ज्योतिस्वरूप रूपोंको देखता है ॥ ३० ॥

परिम्लायसंज्ञक तिमिरके लक्षण ।

पित्तं कुर्यात्परिम्लायि मूर्च्छितं रक्ततेजसा ।
पीता दिशस्तथोद्द्योतान्रवीनपि स पश्यति ॥
विकीर्यमाणान् खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव च ॥ ३१ ॥

भाषा-रुधिरके तेजसे युक्त पित्त परिम्लायिरोगको उत्पन्न करता है, उससे रोगीको दिशा, आकाश और सूर्य ये सब पीले दीखते हैं तथा उदय हुआ सूर्य, पटवीजने और तेजसे युक्त वृक्षोंको देखे है ॥ ३१ ॥

लिंगनाशका षड्विधत्वकथन ।

वक्ष्यामि षड्विधं रागैर्लिंगनाशमतः परम् ॥
रोगोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात् ।
कफात्सितः शोणितजः सरक्तो समस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥३२॥

भाषा-वातसे लालरंग, पित्तसे पिलाईलिये नीला अथवा केवल नीला रंग दीखता है । कफसे सफेद, रुधिरसे लाल और सन्निपातसे चित्रविचित्ररंग दीखते हैं ॥ ३२ ॥

वातिकरोगके लक्षण ।

अरुणं मण्डलं दृष्टयां स्थूलकाचारुणप्रभम् ।
परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लायि नीलं च मण्डलम् ॥
दोषक्षयात् कदाचित्स्यात् स्वयं तत्र प्रदर्शनम् ॥ ३३ ॥

भाषा-परिम्लायिरोगमें दृष्टिभागमें स्थूल कालकी समान लाल मण्डल होता है, वह लाल पीला मिश्रित और नीला होता है । उसमें किसी समय दोषोंके कम होनेसे अपने आप दीखनेभी लगता है ॥ ३३ ॥

दृष्टिमंडलगत रोगके लक्षण ।

अरुणं मण्डलं वाताच्चंचलं परुषं तथा । पित्तान्मण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव च ॥ श्लेष्मणा बहलं स्निग्धं शंखकुन्देन्दुपाण्डुरम् । चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो विन्दुरिवांभसः ॥ मृद्यमाने च नयने मण्डलं तद्विसर्पति । प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ दृष्टिरागो भवेच्चित्रो लिङ्गनाशे त्रिदोषजे । यथास्वं दोषलिंगानि सर्वेष्वेव भवंति हि ॥ ३४ ॥

भाषा-वातसे दृष्टिमंडल लाल, चंचल और खर होता है । पित्तसे दृष्टिमंडल नीला, कांसेकी समान और पीला होता है । कफसे बडा, चिकना, शंख,कुन्दपुष्प और चन्द्रमाकी समान श्वेत तथा जिस प्रकार कमलके पत्तेपर हिलती हुई पानीकी बूंद सफेद दीखती है उसी प्रकार नेत्रोंको मलनेसे वह मण्डल फैल जाता है । रक्तसे मूंगेकी समान अथवा लालकमलकी समान लाल होता है और त्रिदोषज लिंगनाशमें दृष्टिका मण्डल चित्रविचित्रित अनेक रंगका अथवा जो दोष अधिक हो या उसका रंग या सब दोषोंका रंग दीखता है ॥ ३४ ॥

दृष्टिरोगोंकी संख्या ।

षड् लिंगनाशाः षडिमे च रोगा दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव च स्युः ॥ ३५ ॥

भाषा-पूर्वोक्त लिंगनाशरोग छः और आगेको विदग्धदृष्टयादि जो कहेंगे वे छः इस प्रकार सब मिलाकर दृष्टिरोगोंकी संख्या १२ होती है ॥ ३५ ॥

पित्तविदग्धके लक्षण ।

पित्तेन दुष्टेन गतेन वृद्धिं पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः ।
पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत्स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टिः ॥ ३६ ॥

भाषा-दूषित हुआ पित्त बढनेसे उस रोगीकी दृष्टि पीली होती है तब उसको सम्पूर्ण पदार्थ पीले दीखते हैं उसको पित्तविदग्ध दृष्टि कहते हैं ॥ ३६ ॥

दिवान्धके लक्षण ।

प्राप्ते तृतीयं पटलं च दोषे दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते सः ।
रात्रौ स शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताल्पभावादपि तानि पश्येत् ॥ ३७ ॥

भाषा-जब पित्त तीसरे पटलमें प्राप्त होता है तो उस रोगीको दिनमें सूर्यकी गरमीसे नहीं दीखता और रात्रिमें पित्तकी अल्पतासे शीतलताके होनेसे दीखने लगता है उसको दिवांध कहते हैं ॥ ३७ ॥

कफविदग्धके लक्षण ।

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मंयते तु ॥ ३८ ॥

भाषा-जब कफसे दृष्टि दूषित हो जाती है तब उस मनुष्यको सम्पूर्ण पदार्थ सफेदही सफेद दीखते हैं उसको कफविदग्ध दृष्टि कहते हैं ॥ ३८ ॥

रक्तान्धके लक्षण ।

त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो नक्तांध्यमापादयति प्रसह्य ।
दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्यंतु रूपाणि कफाल्पभावात्॥३९॥

भाषा-वही कफ जब नेत्रोंके तीनों पटलोंमें प्राप्त होता है तब रात्र्यंधरोग उत्पन्न होता है । उस रोगमें सूर्यके सन्तापसे दिनमें जब कफ कम हो जाता है तब दीखता है किन्तु रात्रिमें नहीं दीखता उस रोगको रात्र्यंध और हिन्दीभाषामें रतौंधा कहते हैं ॥ ३९ ॥

धूमदर्शीके लक्षण ।

शोकज्वरायासशिरोभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ।
धूम्रांस्तथा पश्यति सर्वभावान् स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः॥४०॥

भाषा-शोक, ज्वर, परिश्रम और शिरस्ताप इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर दृष्टि बिगड जाती है तब उस मनुष्यको सम्पूर्ण पदार्थ धूंएके रंगके दीखते हैं उसको धूमदर्शी कहते हैं । धूमदर्शी दृष्टि दिनमेंही होती है रात्रिमें नहीं कारण इसमें पित्त प्रधान है । रात्रिमें पित्त शांत हो जाता है तब दृष्टिभी निर्मल हो जाती है ॥ ४० ॥

ह्रस्वदृष्टिके लक्षण ।

यो ह्रस्वजात्यो दिवसेषु कृच्छ्राद्ध्रस्वानि रूपाणि च तेन पश्येत्॥४१॥

भाषा-जो ह्रस्वजात्य मनुष्य होता है उसको बडे पदार्थभी दिनमें अत्यन्त कष्टसे छोटे दीखते हैं ॥ ४१ ॥

नकुलान्ध्यके लक्षण ।

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् ।
चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत्स वै विकारो नकुलांध्यसंज्ञः॥४२॥

भाषा-जिस मनुष्यकी दृष्टि दोषोंसे दूषित होकर नौलेके नेत्रकी समान चमकती है और वह मनुष्य दिनमें चित्रविचित्रित रूपोंको देखता है उसको नकुलान्ध्य रोग कहते हैं ॥ ४२॥

गंभीरदृष्टिके लक्षण ।

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमभ्यन्तरतश्च याति । रुजावगाढं च तमक्षिरोगं गम्भीरकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ४३ ॥

भाषा-जिस मनुष्यकी दृष्टि वायुसे विरूप होकर भीतरको संकुच जाती है और उसमें अत्यन्त पीडा होती है उसको गम्भीरदृष्टि कहते हैं ॥ ४३ ॥

आगंतुजलिंगनाशके लक्षण ।

बाह्यौ पुनर्द्वाविह संप्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च । निमित्ततस्तत्र शिरोभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनः सः ॥४४॥

भाषा-एक निमित्तज और दूसरा अनिमित्तज इनमें जो शिरोभितापादि कारणोंसे उत्पन्न होता है उसको निमित्तज कहते हैं । उसमें रक्ताभिष्यन्दनके लक्षण होते हैं ॥ ४४ ॥

अनिमित्तके लक्षण ।

सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां सन्दर्शनेनापि च भास्करस्य । हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिंगनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः । तत्राक्षिविस्पष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः ॥ ४५ ॥

भाषा-देव, ऋषि, गन्धर्व, महासाप और सूर्य इनके सामने दृष्टि लगाकर देखनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि नष्ट हो जाती है उसको अनिमित्तज लिंगनाश कहते हैं। उस रोगमें नेत्र निर्मल और दृष्टि वैदूर्यमणिकी समान साफ हो जाती है ॥ ४५ ॥

अर्मरोगका पंच प्रकारकथन ।

प्रस्तार्यमतनुस्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सिते । सश्वेतं मृदुशुक्लार्मं शुक्ले तद्वर्धते चिरात् ॥ पद्माभं मृदु रक्तार्मं यन्मांसं चीयते सिते । पृथुमृद्वधिमांसार्मं बहलं च यकृन्निभम् ॥ स्थिरं प्रस्तारिमांसाढ्यं शुष्कं स्नाय्वर्म पंचमम् ॥ ४६ ॥

भाषा-नेत्रोंके सफेद भागमें पतला, चौडा, काला और लाल मण्डलाकार जो होता है उसको प्रस्तारिअर्म्म कहते हैं । नेत्रोंके सफेद भागमें सफेद और कोमल तथा बहुतकालमें बढनेवाला जो होता है उसको शुक्लार्म्म कहते हैं । लाल कमलकी समान लाल और नरम जो मांस नेत्रोंके सफेद भागमें होता है उसको रक्तार्म्म कहते हैं । जो विस्तीर्ण, कोमल, लाली लिये काला, स्थूल, नेत्रके सफेदभागमें

मण्डल होता है उसको अधिमांसार्म्म कहते हैं। जो स्थिर, फैलनेवाला, सूखा ऐसा मांस नेत्रके सफेद भागमें बढता है उसको स्नाय्वर्म्म कहते हैं ॥ ४६ ॥

शुक्तिरोगके लक्षण ।

श्यावाः स्युः पिशितनिभास्तु बिंदवो ये शुक्त्याभा सितिनियताः स शुक्तिसंज्ञः ॥ ४७ ॥

भाषा–नेत्रोंकी सफेदीमें काले रंगका मांसकी समान सीपके आकार जो बिंदु होय उसको शुक्ति कहते हैं ॥ ४७ ॥

अर्जुनके लक्षण ।

एको यः शशरुधिरोपमश्च बिन्दुः शुक्लस्थो भवति तदर्जुनं वदन्ति॥

भाषा–नेत्रके सफेद भागमें खरगोशके रुधिरकी समान जो एकही बिन्दु उत्पन्न हो उसको अर्जुन कहते हैं ॥ ४८ ॥

पिष्टकके लक्षण ।

श्लेष्ममारुतकोपेन शुक्ले मांसं समुन्नतम् ।
पिष्टवद् पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसन्निभम् ॥ ४९ ॥

भाषा–कफवातके कुपित होनेसे नेत्रके सफेद भागमें पिट्ठीकी समान जो मांस ऊंचा हो और मलयुक्त दर्पनकी समान दीखे उसको पिष्टक कहते हैं ॥ ४९ ॥

जालके लक्षण ।

जालाभः कठिनशिरो महान् सरक्तः
संतानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु ॥ ५० ॥

भाषा–नेत्रके सफेद भागमें जालकी समान, कठिन शिराओंसे व्याप्त, लाल और बडा हो उसको जाल कहते हैं ॥ ५० ॥

शिराजपिटिकाके लक्षण ।

शुक्लस्थाः सितपिडिकाः शिरावृता या-
स्ता ब्रूयादसितसमीपजाः शिराजाः ॥ ५१ ॥

भाषा–नेत्रके सफेद भागमें शिराओंसे आवृत ऐसी सफेद फुंसी कृष्णभागके समीप होती है उसको शिराज पिडिका कहते हैं ॥ ५१ ॥

बलासके लक्षण ।

कांस्याभोऽमृदुरथ वारिबिन्दुकल्पो
विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः ॥ ५२ ॥

भाषा-नेत्रके सफेद भागमें कांसीकी समान, कठिन या जलकी बूंद कुछ ऊंची जो गांठसी उत्पन्न हो उसको बलास कहते हैं ॥ ५२ ॥

पूयालसके लक्षण ।

पक्कः शोथः संधिजो यः सतोदः स्रवेत्पूयं पूतिपूयालसाख्यः॥५३॥

भाषा-नेत्रकी संधिमें सूजन होकर पके उसमें सुई चुभाने सरीखी पीडा हो तथा उसमेंसे दुर्गंधित राध वहे उसको पूयालस कहते हैं ॥ ५३ ॥

उपनाहकके लक्षण ।

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसंधावपाकी कण्डुप्रायो नीरुजस्तूपनाहः॥५४॥

भाषा-नेत्रकी संधिमें वडी अल्प पकनेवाली खुजलीसहित पीडारहित ऐसी जो गांठ उत्पन्न हो उसको उपनाह कहते हैं ॥ ५४ ॥

स्राव अथवा नेत्रनाडीके लक्षण ।

गत्वा संधीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावाल्लक्षणैः स्वैरुपेतान् ।
तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके तस्या लिंगं कीर्त्तयिष्ये चतुर्धा ॥
पाकः संधौ संस्रवेद्यस्तु पूयं पूयास्रावोऽसौ गदः सर्वजस्तु । श्वे-
तं सांद्रं पिच्छिलं संस्रवेद्धि श्लेष्मास्रावोऽसौ विकारो मतस्तु ॥
रक्तास्रावः शोणिताद्यो विकारः स्रवेदुष्णं तत्र रक्तं प्रभूतम् ।
हरिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा पित्तास्रावः संस्रवेत्संधिमध्यात् ॥५५॥

भाषा-अश्रुमार्गसे वातादिदोष सन्धियोंमें जाकर अपने अपने लक्षणोंयुक्त नेत्रोंमेंसे स्राव उत्पन्न करे उस स्रावको कोई वैद्य नेत्रनाडी कहते हैं। वह नेत्रस्राव चार प्रकारका है उसके लक्षण नीचे लिखते हैं। जो संधिके पकनेसे दुर्गंधित राध वहे उसको पूयास्राव कहते हैं वह त्रिदोषज जानना। जो सफेद, गाढा और स्निग्ध स्रवे उसको कफास्राव कहते हैं। जिसमेंसे बहुत गरम रुधिर वहे उसको रुधिरस्राव कहते हैं। संधिमेंसे हलदीकी समान पीला गरम या केवल पानीही स्रवे उसको पीतास्राव कहते हैं ॥ ५५ ॥

पर्वणी व अलजीके लक्षण ।

ताम्रा तन्वी दाहपाकोपपन्ना ज्ञेया वैद्यैः पर्वणी वृत्तशोथा ।
जाता सन्धौ शुक्लकृष्णेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव ख्यापिता पूर्वलिंगैः॥५६॥

भाषा-नेत्रकी संधियोंमें तांबेकी समान लाल, छोटी और गोल ऐसी जो फुंसी उत्पन्न हो और उन फुंसियोंमें सूजन, दाह और पाक हो उसको पर्वणी

कहते हैं तथा नेत्रोंकी सफेद और काली संधियोंमें जो पूर्वोक्त लक्षणोंवाली फुंसी उत्पन्न हो उसको अलजी कहते हैं ॥ ५६ ॥

कृमिग्रंथिके लक्षण ।

कृमिग्रंथिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युः कृमयः संधिजाताः ।
नानारूपा वर्त्मशुक्लांतसंधौ चरंत्यंतर्नयनं दूषयंतः ॥ ५७ ॥

भाषा–जो सफेद भागकी संधिमें और पलकोंकी संधिमें खुजली करते हुए अनेक प्रकारके कृमि उत्पन्न होते हैं, वे आंखोंके पलक और सफेद भागकी संधिमें विचरते हुए नेत्रके भीतरके भागको दूषित करते हैं इसको कृमिग्रंथि कहते हैं । यह त्रिदोषज है ॥ ५७ ॥

उत्संगपिडिकाके लक्षण ।

आभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मतश्च या ।
सोत्संगोत्संगपिडिका सर्वजा स्थूलकण्डुरा ॥ ५८ ॥

भाषा–नेत्रसे पलकके भीतर फुंसी उत्पन्न हो उसका मुखभी भीतरही हो वह लाल और बडी हो और उसके चहुँ ओर औरभी छोटी २ फुंसी हों तथा उसमें खुजली हो उसको उत्संगपिडिका कहते हैं । वह त्रिदोषज है ॥ ५८ ॥

कुंभिकाके लक्षण ।

वर्त्मांते पिडिका ध्माता भिद्यंते च स्रवंति च ।
कुम्भीकबीजसदृशाः कुम्भीकाः सन्निपातजाः ॥ ५९ ॥

भाषा–पलकके किनारेपर जो जलकुम्भीके बीजकी समान फुंसी उत्पन्न हो वह फूटकर बहे उसको कुंभिका कहते हैं। वह सन्निपातज है ॥ ५९ ॥

पोथकीके लक्षण ।

स्राविण्यः कण्डुरा गुर्व्यो रक्तसर्षपसन्निभाः ।
रुजावंत्यश्च पिडिकाः पोथक्य इति कीर्त्तिताः ॥ ६० ॥

भाषा–नेत्रोंके पलकोंमें जो फुंसी लाल सरसोंकी समान, बहनेवाली, खुजलीसहित, भारी और पीडा करनेवाली हो उसको पोथकी कहते हैं ॥ ६० ॥

वर्त्मशर्कराके लक्षण ।

पिडिका या खरा स्थूला सूक्ष्माभिरभिसंवृता ।
वर्त्मस्था शर्करा नाम स रोगो वर्त्मदूषकः ॥ ६१ ॥

भाषा–नेत्रके कोयेमें एक बडी और कठिन फुंसी हो और छोटी छोटी फुंसियोंसे व्याप्त हो उसको वर्त्मशर्करा कहते हैं। वह कोयोंको बिगाड देती है ॥ ६१ ॥

अर्शोवर्त्मके लक्षण ।

उर्वारुबीजप्रतिमाः पिडिका मंदवेदनाः ।
श्लक्ष्णाः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ॥ ६२ ॥

भाषा-ककडीके बीजकी समान मंद पीडावाली चिकनी और कठोर ऐसी जो फुंसी नेत्रके पलकमें उत्पन्न हो उसको अर्शोवर्त्म कहते हैं ॥ ६२ ॥

शुष्कार्शके लक्षण ।

दीर्घांकुरः खरः स्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः ।
व्याधिरेषोऽतिविख्यातः शुष्कार्शो नामनामतः॥६३ ॥

भाषा-नेत्रके पलकके भीतर दीर्घ अंकुरवाली, खरदरी, कठिन और दारुण ऐसी जो फुंसी उत्पन्न हो उस रोगको शुष्कार्श कहते हैं ॥ ६३ ॥

अंजनाके लक्षण ।

दाहतोदवती ताम्रा पिडिका वर्त्मसंभवा ।
मृद्वी मंदरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्जननामिका ॥ ६४ ॥

भाषा-जो फुंसी दाह, सुई चुभाने सरीखी पीडायुक्त,लाल, कोमल, छोटी और मंद पीडावाली नेत्रके पलकमें उत्पन्न होती है उसको अंजना कहते हैं ॥ ६४ ॥

बहलवर्त्मके लक्षण ।

वर्त्मोपचीयते यस्य पिडिकाभिः समंततः ।
सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्बहलवर्त्म तत् ॥ ६५ ॥

भाषा-नेत्रका पलक चहुँ ओरसे त्वचाके समान वर्णवाली और कठिन ऐसी फुंसियोंसे भर जाय उसको बहलवर्त्म कहते हैं ॥ ६५ ॥

वर्त्मबंधके लक्षण ।

कण्डूमताऽल्पतोदेन वर्त्मशोथेन यो नरः ।
न संप्रच्छादयेदक्षि यत्रासौ वर्त्मबंधकः ॥ ६६ ॥

भाषा-नेत्रके पलकोंमें नेत्रकी समान सूजन हो जाय उससे वह नेत्रोंको बंद करनेमें असमर्थ हो उसको वर्त्मबंध कहते हैं । इस सूजनमें खुजली और कुछेक सुई चुभाने सरीखी पीडा होती है ॥ ६६ ॥

क्लिष्टवर्त्मके लक्षण ।

मृद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्म सममेव च ।
अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्लिष्टवर्त्मेति तद्विदुः ॥ ६७ ॥

भाषा-नेत्रके दोनों पलक नरम, किंचित् पीडायुक्त और एकसाथ अकस्मात् लाल हो जांय उसको क्लिष्टवर्त्म कहते हैं ॥ ६७ ॥

वर्त्मकर्दमके लक्षण ।

क्लिष्टं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा ।
तदक्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमः ॥ ६८ ॥

भाषा-ऊपरोक्त क्लिष्टवर्त्म जब पित्तसहित रुधिरको दहन करता है तब वह गीला हो जाता है । गीलेपनसे उसको वर्त्मकर्दम कहते हैं ॥ ६८ ॥

श्याववर्त्मके लक्षण ।

वर्त्म यद्बाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् ।
तदाहुः श्याववर्त्मेति वर्त्मरोगविशारदाः ॥ ६९ ॥

भाषा-नेत्रके पलकके बाहर और भीतर काली सूजन हो और उसमें पीडा हो वर्त्मरोगको जाननेवाले उसको श्याववर्त्म कहते हैं ॥ ६९ ॥

प्रक्लिन्नवर्त्मके लक्षण ।

अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि ।
प्रक्लिन्नवर्त्म तद्विद्यात् क्लिन्नमत्यर्थमंततः ॥ ७० ॥

भाषा-जो नेत्रका पलक पीडारहित और बाहर सूजा हुआ हो और भीतरसे बहुत भीजा हो उसको प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं ॥ ७० ॥

अक्लिन्नवर्त्मके लक्षण ।

यस्य धौतान्यधौतानि संबध्यंते पुनः पुनः ।
वर्त्मान्यपरिपक्कानि विद्यादक्लिन्नवर्त्म तत् ॥ ७१॥

भाषा-जिसके नेत्रके पलक वारंवार धोनेसेभी फिर फिर चिपट जाते हैं और वे पकतेभी नहीं तौभी वारंवार कीचड आनआनकर चिपक जाते हैं उसको अक्लिन्नवर्त्म कहते हैं ॥ ७१ ॥

वातहत वर्त्मके लक्षण ।

विमुक्तसंधि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य न मील्यते ।
एतद्वातहतं वर्त्म जानीयादक्षिचिन्तकः ॥ ७२ ॥

भाषा-जिसके नेत्रकी संधि चेष्टारहित हो गई हैं उससे नेत्रके पलक खुलें और मीचें नहीं तथा नेत्रके कोये न मिलें उसको वातहत वर्त्मरोग कहते हैं ॥ ७२ ॥

अर्बुदके लक्षण।

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम्।
आचक्षतेऽर्बुदमिति सरक्तमविलंबितम् ॥ ७३ ॥

भाषा-नेत्रके पलकके भीतर टेढी मेढी, अल्पपीडावाली, लाल और शीघ्र बढनेवाली ऐसी गांठ हो उसको अर्बुद कहते हैं ॥ ७३ ॥

निमेषके लक्षण।

निषेमिणीः शिरा वायुः प्रविष्टो वर्त्मसंश्रयः।
प्रचालयति वर्त्मानि निमेषं नाम तं विदुः ॥ ७४ ॥

भाषा-पलकोंमें स्थित जो वायु सो निमेषणी अर्थात् जो नस नेत्रको खोलती और बंद करती है उसमें प्रविष्ट होकर वारंवार पलकोंको चलाती रहती है उसको निमेष कहते हैं ॥ ७४ ॥

शोणितार्शके लक्षण।

वर्त्मस्थो यो विवर्द्धेत लोहितो मृदुरंकुरः।
तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं च्छिन्नं प्रवर्द्धते ॥ ७५ ॥

भाषा-जो नेत्रके कोयेमें लाल और नरम मांसका अंकुर उत्पन्न होकर बढे उसको रक्तज शोणितार्श कहते हैं। यह वारंवार काटनेसे वारंवार फिर बढता जाता है ७५

लगणके लक्षण।

अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रंथिर्वर्त्मभवो रुजः।
सकण्डूः पिच्छिलः कोलसंस्थानो लगणस्तु सः ॥ ७६ ॥

भाषा-पाकरहित, कठिन, पीडारहित, बडी खुजलीसहित, चिकनी, झड-बेरकी समान ऐसी जो गांठ नेत्रके पलकमें होती है उसको लगण कहते हैं ॥७६॥

बिसवर्त्मके लक्षण।

त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः।
प्रस्रवत्यंतरुदकं बिसवद्बिसवर्त्म तत् ॥ ७७ ॥

भाषा-वातादि तीनों दोष कुपित होकर नेत्रोंके पलकके ऊपर सूजन और छिद्रोंको उत्पन्न करे उन छिद्रोंमेंसे कमलकंद (भसीडे) के छिद्रोंकी समान जल झरता रहता है उसको बिसवर्त्मरोग कहते हैं ॥ ७७ ॥

कुंचनके लक्षण।

वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति यदा मलाः।

तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुंचनं नाम तद्विदुः ॥ ७८ ॥

भाषा-जब वातादिदोष नेत्रोंके दोनों पलकोंको संकोचित करते हैं तब वह मनुष्य देखनेको असमर्थ हो जाता है उसको कुंचन कहते हैं ॥ ७८ ॥

पक्ष्मकोपके लक्षण।

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि विशंति हि।
घृष्यंत्यक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयंति च ॥
असिते सितभागे च मूलकोशात्पतंत्यपि।
पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥ ७९ ॥

भाषा-वायुसे चलाये हुए कोयेके बाल नेत्रमें घुसें और वारंवार नेत्रसे घिसे जांय, इसके योगसे नेत्रके काले या सफेद भागमें सूजन हो और वे बाल जडसे टूट जांय उस दारुण रोगको पक्ष्मकोप कहते हैं ॥ ७९ ॥

पक्ष्मशातके लक्षण।

वर्त्म पक्षाशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत्।
कण्डूं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥ ८० ॥

भाषा-पलक और कोयेकी जडमें प्राप्त हुआ पित्त नेत्रोंके बालोंको गिरा देता है उससे नेत्रोंमें खुजली और दाह होती है उसको पक्ष्मशात कहते हैं ॥ ८० ॥

नेत्ररोगोंकी संख्या।

नव संध्याश्रयास्तेषु वर्त्मजास्त्वेकविंशतिः।
शुक्लभागे दशैकश्च चत्वारः कृष्णभागजाः ॥
सर्वाश्रयाः सप्तदश दृष्टिजा द्वादशैव तु।
बाह्यजौ द्वौ समाख्यातौ रोगौ परमदारुणौ ॥
भूय एतान्प्रवक्ष्यामि संख्यारूपचिकित्सितैः ॥ ८१ ॥

भाषा-संधिमें उत्पन्न होनेवाले नेत्ररोग ९, पलकमें उत्पन्न होनेवाले रोग २१, नेत्रके सफेद भागमें उत्पन्न होनेवाले रोग ११, काले भागमें उत्पन्न होनेवाले ४, सब नेत्रमें उत्पन्न होनेवाले १७, दृष्टिमें उत्पन्न होनेवाले १२ और नेत्रके बाहर होनेवाले रोग दो प्रकारके होते हैं। यह सम्पूर्ण नेत्ररोगोंकी संख्या वैद्योंने ७६ प्रकार कही है ॥ ८१ ॥

इति नेत्ररोगनिदानं समाप्तम्।

अथचक्षूरोगचिकित्सा ।

अंजनगुटिका ।

अतसीतिलपुष्पाणि जात्याश्च कुसुमानि च ।
तथा निम्बामला शुण्ठी पिप्पली तण्डुलीयकम् ॥
छायाशुष्कां वटीं कुर्यात् पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
मधुना सह सा चाक्ष्णोरञ्जनात्तिमिरादिनुत् ॥ ८२ ॥

भाषा–अलसीके फूल, तिलके फूल, चमेलीके फूल, हरड, नीम, आमले, पीपल और चौलाई इन सबोंको एकत्र पीसकर गोली बनाकर छायामें सुखा देवे, फिर इन गोलियोंको चावलोंके पानीमें घिसकर सहतमें मिलाकर नेत्रोंमें आंजनेसे नेत्रोंके तिमिर आदि रोग दूर होते हैं ॥ ८२ ॥

अक्षयोगः ।

बिभीतकास्थिमज्जा तु शंखनाभिर्मनःशिला ।
निम्बपत्रमरीचानि अजामूत्रेण पेषयेत् ॥
पुष्पं रात्र्यन्धतां हन्ति तिमिरं पटलं तथा ॥ ८३ ॥

भाषा–बहेडेकी मींगी, शंखकी नाभि, मैनशिल, नीमके पत्ते और काली मिरच इन सबोंको बकरीके मूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रका फूला, रतौंधा, तिमिर और पटलरोग दूर होता है ॥ ८३ ॥

नेत्रांजनगुटिका ।

चतुर्भागानि शंखस्य तदर्द्धेन मनःशिला ।
सैन्धवं च तदर्द्धेन एतत्पिष्टोदकेन च ॥
छायाशुष्कां तु वटिकां कृत्वा नयनमञ्जयेत् ।
तिमिरं पटलं हन्ति पिटकस्य महौषधम् ॥ ८४ ॥

भाषा–शंखनाभि ४ भाग, मैनशिल दो भाग और सैंधानोन एक भाग इन सबोंको एकत्र जलमें पीसकर गोली बनाकर छायामें सुखा लेवे । इनको घिसकर नेत्रोंमें आंजनेसे तिमिर और पटलरोग दूर होता है ॥ ८४ ॥

लेपविधिः ।

अटरूपकमूलन्तु कांजिकापिष्टमेव च ।

तेनाक्षिभुवि लेपाच्च चक्षुःशूलं विनश्यति ॥ ८५ ॥

भाषा–अडूसेकी जडको कांजीमें पीसकर नेत्रोंमें लेप करनेसे नेत्रशूल दूर होता है ॥ ८५ ॥

तक्रपानम् ।

सतक्रं बदरीमूलं पीतमक्षिव्यथां जयेत् ॥ ८६ ॥

भाषा–बेरीकी जडको तक्रमें पीसकर पान करनेसे आंखोंकी पीडा दूर होती है ८६॥

नेत्रांजन ।

बिल्वनीलीकारमूलं पिष्टमश्वजलेन च ।
अनेनाञ्जितमात्रेण नश्यन्ति तिमिराणि हि ॥ ८७ ॥

भाषा–बेलगिरी और नीलवृक्षकी जडको घोडेके मूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें अंजन करनेसे तिमिरादिरोग दूर होते हैं ॥ ८७ ॥

अंजनवर्तिका ।

पिप्पली कतकं चैव हरिद्रामलकं वचा ।
खदिरपिष्टवर्तिश्च अञ्जनं नेत्ररोगनुत् ॥
नीरपूर्णमुखधौतस्यायते चैव योऽक्षिणी ।
प्रभाते नेत्ररोगैश्च नित्यं सर्वैः प्रमुच्यते ॥
चन्दनं सैन्धवं वृद्धपलाशश्च हरीतकी ।
पटोलकुसुमं नीली वार्त्तिका हरतेऽञ्जनात् ॥ ८८ ॥

भाषा–पीपल, निर्म्मलीफल, हलदी, आमले, वच और खैर इन सबोंको समान भाग लेकर पीसकर वत्ती बनाकर नेत्रोंमें आंजनेसे संपूर्ण नेत्ररोग दूर होते हैं। प्रातःकाल मुखमें जल भरकर उससे नेत्रोंको सींचनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं। लालचन्दन, सैंधानोन, हस्तिकर्ण, पलाश, हरड, पटोल और नीलकी जड इनको एकत्र पीसकर वत्ती बनाकर नेत्रोंमें आंजनेसे नेत्रका फूला दूर होता है॥८८॥

शंकरीवर्त्तिः ।

हरिद्रा निम्बपत्राणि पिप्पली मरिचानि च ।
विडङ्गं भद्रमुस्तञ्च सप्तमं विश्वभेषजम् ॥
गोमूत्रेण च पिष्ट्वैव कृत्वा च वटिकां हर ।
अजीर्णहा भवेच्चैका द्वयं विष्टम्भिकापहम् ॥

भाषा-दारुहलदीक हन्ति गोमूत्रेण तथार्बुदम् ।
चौथा भाग शेष र शंकरीवर्त्तिः सर्वनेत्रामयापहा ॥ ८९ ॥
अत्यन्त हि-
-हलदी, नीमके पत्ते, पीपल, काली मिरच, वायविडंग, नागरमोथा और सोंठ इन सबोंको समान भाग लेकर गोमूत्रमें पीसकर गोली बना लेवे। एक गोली खानेसे अजीर्णरोग दूर होता है, दो गोली खानेसे विद्यम्भिका रोग दूर होता है। सहतके साथ सेवन करनेसे पटलनामक नेत्ररोग दूर होता है और गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे अर्बुदरोग दूर होता है। यह शंकरीवर्त्ति सर्व प्रकारके नेत्ररोगोंको नष्ट करे है ॥ ८९ ॥

देवदारुचूर्ण ।

देवदारोश्च वै चूर्णं अजामूत्रेण भावयेत् ।
एकविंशति वै वारमक्षिणी तेन चाञ्जयेत् ॥
रात्र्यन्धता पटलता नश्येदिति विनिश्चयः ॥ ९० ॥

भाषा-देवदारुके चूर्णको २१ इक्कीसवार बकरीके मूत्रमें भावना देकर आंखोंमें आंजनेसे रात्र्यंधता और पटलरोग नष्ट होते हैं ॥ ९० ॥

क्षीरांजनम् ।

पिप्पली केतकं रुद्र हरिद्रामलके वचा ।
सर्वाक्षिरोगा नश्येयुः सक्षीरादञ्जनात्ततः ॥ ९१ ॥

भाषा-पीपल, केवडेके पत्ते, हलदी, आमले और वच इन सबोंको समान भाग लेकर दूधमें पीसकर आंखोंमें आंजनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ ९१ ॥

महिषीदुग्धलेपः ।

जग्धन्तु त्रिफलायुक्तं चक्षुष्यन्तं करोति वै ।
अन्धः पश्येत्तु चूर्णस्य साज्यस्यैव च भक्षणात् ॥
महिषक्षीरसंयुक्तं तल्लेपं कृष्णकेशकृत् ।
खल्वाटकस्य वै केशा भवन्ति वृषभध्वज ॥
तैलयुक्तेन चूर्णेन वलीपलितवर्जितम् ।
तदुद्वर्त्तनमात्रेण सर्वरोगैः प्रमुच्यते ॥
सच्छागक्षीरचूर्णेन दृष्टिः षण्मासतोऽञ्जनात् ॥ ९२ ॥

भाषा-त्रिफला (हरड, बहेडा, आमला) का चूर्ण भक्षण करनेसे नेत्ररोग दूर

होता है। घीके साथ खानेसे अंधे मनुष्यको दीखने लगे॥ ८९ ॥
लेप करनेसे सफेद बाल काले हो जाते हैं और गंजे मनुष्य...रनेसे नेत्रशूल दूर
हैं। तिलके तेलमें मिलाकर शरीरसे मर्दन करनेसे वली और पा...
हैं। इसका उबटन करनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं। इसके ...
बकरीके दूधमें मिलाकर छः महिनेतक आंखोंमें लगानेसे आंखोंकी ज्योति
बढती है ॥ ९२ ॥

तिमिरनाशकवर्ति।

कतकस्य फलं शंखं सैन्धवं त्र्यूषणं वचा।
फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला ॥
एषां वर्त्तिर्हन्ति काचं तिमिरं पटलं तथा ॥ ९३ ॥

भाषा-निर्म्मलीफल, शंख, सेंधानोन, त्रिकुटा, वच, समुद्रफेन, रसोन, सहत, बायविडंग और मैनशिल इनकी बत्ती बनाकर नेत्रोंमें आंजनेसे काच, तिमिर और पटलरोग दूर होता है ॥ ९३ ॥

पुष्पनाशकअजाक्षीरयोगः।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पल्यो मरिचानि च।
बिभीतकस्य बीजानि हरितालं मनःशिला॥
सर्वाक्षिरोगा नश्येयुरजाक्षीरसमन्विताः।
तत्क्षणात् पुष्पनाशः स्यात् मालतीकुसुमांजनात् ॥ ९४ ॥

भाषा-हरड, वच, कूठ, पीपल, मरिच, बहेडेकी गिरी, हरिताल, मैनशिल, इन सबोंको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे तत्काल नेत्रका फूला दूर होता है तथा मालतीके फूलोंको घिसकर नेत्रोंमें आंजनेसे नेत्रका फूला दूर होता है ॥ ९४ ॥

रसांजनम्।

दार्वीक्वाथसमं क्षीरं पादं पक्त्वा यथा घनम्।
तदा रसाञ्जनाख्यं तन्नेत्रयोः परमं हितम्॥
रसाञ्जनं तार्क्ष्यशैलं रसगर्भञ्च तार्क्ष्यजम् ।
रसांजनं कटु श्लेष्मविषनेत्रविकारनुत् ॥
उष्णं रसायनं तिक्तं छेदनं व्रणदोषहृत् ॥ ९५ ॥

भाषा-दारुहलदीका काथ और दूध समान भाग लेकर एकत्र पकावे। जब चौथा भाग शेष रह जाय तब उतार लेवे। इसको रसौन कहते हैं। यह नेत्रोंको अत्यन्त हितकारी है। रसांजन, तार्क्ष्यशैल, रसगर्भ, तार्क्ष्यज, यह रसौनके संस्कृत नाम हैं। रसौत कटु (तीखा), गरम, रसायन, कडवा, छेदन, व्रण-दोषनाशक तथा विषविकार, नेत्ररोग इनको दूर करे है॥ ९५॥

क्षुद्राञ्जनम्।

गोमूत्रपित्तमदिराशकृद्धात्रीरसे पचेत्। क्षुद्राञ्जनं रसे चान्यत् यत्कृतस्त्रैफलेऽपि वा॥ गोमूत्राज्योर्णवफलपिप्पलीक्षौद्रकट्फल-म्। सैन्धवोऽपि हितं युञ्ज्यान्निहितं वेणुगर्भरे॥ मेदोयकृद्घृतश्चाजं पिप्पल्यः सैन्धवं मधु। रसमामलकश्चापि पक्वं सम्यङ्निधाप-येत्॥ कोषे खदिरनिर्माणे तद्वत् क्षुद्राञ्जनं हितम्॥ ९६॥

भाषा-गोमूत्र, गोपित्त और मदिराका मल इनको एकत्र आमलोंके रसमें पकावे जब गाढा हो जाय तब उतार ले इनको क्षुद्राञ्जन कहते हैं। तथा गोयकृत, त्रिफलेका रस, गोमूत्र, घी, समुद्रफेन, पीपलका चूर्ण, सहत, कायफल और सैंधानोन इनको एकत्र पकाकर पोले बांसके भीतर भर देवे तो क्षुद्राञ्जन होता है। एवं बकरीकी मेदा, यकृत्, घी और सहत इनको एकत्र आमलेके रसमें पकाकर खैरके कोष (पोला) में भर देवे तो क्षुद्राञ्जन होता है। यह क्षुद्राञ्जन सब नेत्र-रोगोंमें अत्यन्त हितकारी है॥ ९६॥

बिल्वाञ्जनम्।

बिल्वपत्ररसः पूतः सैन्धवाज्यसमन्वितः। शुल्वे वराटिकाघृष्टो धूपितो गोमयाग्निना॥ पयसालोडितश्चाक्ष्णोः पूरणाच्छोथशू-लनुत्। अभिष्यन्देऽधिमन्थे च स्रावे रक्ते च शस्यते॥ ९७॥

भाषा-बेलके पत्तोंका रस ४ मासे, सैंधानोन २ रत्ती और गायका घी ४ रत्ती सबोंको एकत्र तांबेके पात्रमें डालकर कौडीसे अच्छे प्रकारसे घिसकर गाढा कर लेवे। फिर अरने उपलोंकी आगसे गरम कर स्त्रीके दूधमें मिलाकर आंखोंमें लगावे। इससे नेत्रोंकी सूजन, शूल, अभिष्यन्द, अधिमंथ और रक्तस्राव दूर होता है॥ ९७॥

व्रणशुक्रहरी वर्त्ति।

चन्दनं गैरिकं लाक्षामालतीकर्णिकाः समाः।
व्रणशुक्रहरी वर्त्तिः शोणितस्य प्रसादनी॥ ९८॥

भाषा–चन्दन, गेरु, लाख और मालतीकी कली इन सबोंको पीसकर बत्ती बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे व्रणशुक्र दूर होता है तथा रुधिर साफ होता है ॥ ९८॥

दन्तवर्त्तिः।

दन्तैर्दन्तिगवाजाश्ववराहोष्ट्रखरोद्भवैः।
सशंखमौक्तिकाम्भोधिफेनैर्मरिचपादिकैः॥
क्षतशुक्रमपि व्याधिं दन्तवर्त्तिर्निवर्तयेत्॥ ९९॥

भाषा–हाथी, गाय, बकरी, घोडा, सूअर, ऊंट और गधा इन सबोंके दांत और शंखका चूर्ण ये सब समानभाग, काली मिरच, मोती और समुद्रफेन प्रत्येक चौथाई भाग, इन सबोंको एकत्र पीसकर बत्ती बना लेवे। उस बत्तीको आंखोंमें आंजनेसे क्षत और शुक्ररोग दूर होता है॥ ९९॥

कृष्णाद्यं तैलम्।

कृष्णाविडङ्गमधुयष्टिकसिन्धुजन्मविश्वौषधैः पयसि सिद्धमिदं छगल्याः। तैलं नृणां तिमिरशुक्रशिरोऽक्षिशूलपाकात्ययान् जयति नस्यविधौ प्रयुक्तम्॥ १००॥

भाषा–पीपल, वायविडंग, मुलहटी, सेंधानोन और सोंठ इनके कल्क और बकरीके दूधके द्वारा तेलको पकाकर नास लेनेसे तिमिररोग, शुक्ररोग, शिरःशूल और नेत्रशूल दूर होता है॥ १००॥

शशकाद्यं घृतम्।

शशकस्य शिरःकल्के शेषाङ्गक्वथिते जले।
घृतस्य कुडवं पक्वं पूरणश्चाजकापहम्॥ १०१॥

भाषा–खरगोशके शिरके कल्क और बाकीके अंगके क्वाथके द्वारा आधसेर घीको पकाकर नेत्रोंमें भरनेसे अजकारोग दूर होता है॥ १०१॥

बृहच्छशकाद्यं घृतम्।

शशकस्य कषाये तु सर्पिषः कुडवं पचेत्।
यष्टिप्रपौण्डरीकस्य कल्केन पयसा समम्॥
छगल्याः पूरणाच्छुक्रक्षतपाकात्ययाजकाः।
हन्ति भ्रूशंखशूलञ्च दाहरोगं विशेषतः॥ १०२॥

भाषा–घी आधसेर, क्वाथके लिये खरगोशका मांस एक सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, बकरीका दूध २ सेर, कल्कके लिये मुलहटी और पुण्डेरियाकाठ प्रत्येक

चार चार तोले यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। इस घृतको नेत्रोंमें भरनेसे क्षत, पाकात्यय, अजकाजात, भ्रूशूल, शंखशूल और विशेषकरके दाह दूर होते हैं ॥१०२॥

सुखावती वर्तिः।

कतकस्य फलं शंखं त्र्यूषणं सैन्धवं सिता। फेनो रसांजनं क्षौद्रं विडंगानि मनःशिला॥ कुक्कुटाण्डकपालानि वर्तिरेषा व्यपोहति। तिमिरं पटलं काचमर्म शुक्रं तथैव च॥ कण्डुक्लेदार्बुदं हन्ति मलं चाशु सुखावती॥ १०३॥

भाषा-निर्म्मलीफल, शंख, त्रिकुटा, सैंधानोन, चीनी, समुद्रफेन, रसोत, सहत, वायविडंग, मैनशिल और मुरगेके अंडेका वकल इन सबोंको समानभाग पीसकर वत्ती बना लेवे। इस वत्तीको नेत्रोंमें आंजनेसे तिमिर, पटल, काच, अर्म्म, शुक्र, कण्डू, क्लेद, अर्बुद और मलको दूर करे है। इसको सुखावती वर्त्ति कहते हैं॥१०३॥

हरीतक्यादिवर्त्तिः।

हरीतकी हरिद्रा च पिप्पल्यो लवणानि च।
कण्डूतिमिरजिद्वर्त्तिर्न क्वचित् प्रतिहन्यते॥ १०४॥

भाषा-हरड, हलदी, पीपल और पांचों नमक इन सबोंकी समान भाग लेकर वत्ती बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंकी खुजली और तिमिरादि रोग दूर होते हैं॥ १०४॥

चन्दनाद्या वर्त्तिः।

चन्दनत्रिफलापूगपलाशतरुशोणितैः।
जलपिष्टैरियं वर्त्तिरशेषतिमिरापहा॥ १०५॥

भाषा-चन्दन, त्रिफला, सुपारी और ढाकका गोंद इन सबोंको समान भाग लेकर जलमें पीसकर वत्ती बनाकर आंखोंमें आंजनेसे तिमिररोग दूर होता है॥१०५॥

त्र्यूषणाद्या वर्त्तिः।

त्र्यूषणत्रिफलावल्कसैन्धवानि मनःशिला।
क्लेदोपदेहकण्डूघ्नी वर्त्तिः शस्ता कफापहा॥ १०६॥

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला, दालचीनी, सैंधानोन और मैनशिल इन सबोंको समान भाग लेकर पीसकर वत्ती बना लेवे। इस वत्तीको नेत्रोंमें आंजनेसे क्लेद, कण्डू और कफादिरोग दूर होते हैं॥ १०६॥

चन्द्रप्रभा वर्त्तिः ।

अञ्जनं श्वेतमरिचं पिप्पली मधुयष्टिका । विभीतकस्य मध्यन्तु शंखनाभिर्मनःशिला॥ एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत्। छायाशुष्कां कृतां वर्त्तिं नेत्रेषु च प्रयोजयेत् ॥ अर्बुदं पटलं काचं तिमिरं रक्तराजिकाम् । अधिमांसार्म्मणी चैव यश्च रात्रौ न पश्यति ॥ वर्त्तिश्चन्द्रप्रभा नाम रात्र्यन्ध्यमपि नाशयेत् ॥ १०७ ॥

भाषा-अंजन, सहजनेके बीज, पीपल, मुलहठी, बहेडेकी मज्जा, शंखनाभि और मैनशिल इन सबोंको समान भाग लेकर बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनाकर छायामें सुखा लेवे । इन बत्तियोंको नेत्रोंमें लगानेसे अर्बुदरोग, पटल, काच, तिमिर, रक्तराजि, अधिमांस, अर्म्मण, रात्र्यंधता इत्यादि रोग दूर होते हैं । इसको चन्द्रप्रभावर्त्ति कहते हैं ॥ १०७ ॥

नयनसुखावर्त्तिः ।

एकगुणा मागधिका द्विगुणा च हरीतकी सलिलपिष्टा ।
वर्त्तिरियं नयनसुखा तिमिरार्म्मपटलकाचाश्रुहरी ॥ १०८ ॥

भाषा-पीपल एक भाग और दो भाग हरड लेवे । दोनोंको एकत्र जलमें पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे तिमिररोग, अर्म्म, पटल, काच और अश्रुरोग दूर होते हैं ॥ १०८ ॥

पंचशतावर्त्तिः ।

नीलोत्पलपत्रशतं मुद्गशतं यवशतञ्च निस्तुषं ग्राह्यम् ।
मालत्याः कुसुमशतं पिप्पली तण्डुलशतं च ॥
पञ्चशतैर्वर्त्तिर्विहिताञ्जनं कुर्यात् सर्वात्मके नयने ।
तिमिराश्रुकाचपटले नास्त्यतः परः साधनोपायः ॥ १०९ ॥

भाषा-नीलोत्पलके पत्ते १००, मूग १००, तुषरहित जौ १००, मालतीके फूल १०० और पीपलके चावल १०० इन सबोंको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं । विशेषकरके तिमिर, अश्रुरोग, और पटलरोग दूर होता है ॥ १०९ ॥

नागार्जुनाञ्जनम् ।

त्रिफला व्योषसिन्धूत्थयष्टितुत्थरसांजनम् । प्रपौण्डरीकं जन्तुघ्नं

लोध्रं ताम्रं चतुर्दश॥द्रव्याण्येतानि संचूर्ण्य वर्त्तिः कार्या नभोऽम्बुना । नागार्जुनेन लिखिता तन्त्रे पाटलिपुत्रके ॥ नाशिनी तिमिराणाञ्च पटलानां विशेषतः । सद्यः प्रकोपं स्तन्येन स्त्रिया विजयते ध्रुवम् ॥ किंशुकस्वरसेनाथ पैन्यः पुष्पञ्च रक्तताम् । अंजनाल्लोध्रतोयेन आसन्नतिमिरं जयेत् ॥ चिरं संछादिते नेत्रे बस्तमूत्रेण संयुता। उन्मीलयत्यकृच्छ्रेण प्रसादं चाधिगच्छति११०

भाषा–त्रिफला, त्रिकुटा, सैंधानोन, मुलहठी, तूतिया, रसौत, पुण्डेरिया, वायविडंग, लोध और तांबा इन चौदह औषधियोंकी वर्षाके जलमें पीसकर बत्ती बना लेवे । इन बत्तियोंको स्त्रीके दूधमें घिसकर आंखोंमें आंजनेसे तिमिररोग और विशेष करके पटलरोग दूर होता है । ढाकके स्वरसमें घिसकर लगानेसे पैन्यपुष्प और नेत्रोंकी लाली दूर होती है । लोधके काथमें घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे तत्काल तिमिररोग दूर होता है और बकरीके मूत्रमें घिसकर आंखोंमें आंजनेसे नेत्रसंछादितरोग तथा कठिनतासे आंखोंका मीचना दूर होता है ॥ ११० ॥

कज्जलम् ।

भूमौ निघृष्टयाङ्गुल्याञ्जनं संशमनं तयोः ।
तिमिरकाचार्म्महरं धूमिकयोश्च नाशनम् ॥ १११ ॥

भाषा–प्रथम अंगुलीको जमीनमें घिसकर फिर उस अंगुलीसे नेत्रोंमें अंजन लगानेसे तिमिर, काच, अर्म्म और धूमिकदृष्टिरोग दूर होता है ॥ १११ ॥

त्रिफलाद्यं घृतम् ।

त्रिफलाक्काथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम् ।
तिमिराण्यचिराद्धन्ति पीतमेतन्निशामुखे ॥ ११२ ॥

भाषा–त्रिफलेका कल्क और काथके द्वारा दूधमें घीको पकाकर सायंकाल पान करनेसे बहुत दिनोंका तिमिररोग दूर होता है ॥ ११२ ॥

महात्रिफलाद्यं घृतम् ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृंगरजस्य च । वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥ अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा । प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥ कल्कः कणा सिता द्राक्षा त्रिफला नीलमुत्पलम् । मधुकं क्षीरकाकोली

मधुपर्णी निदिग्धिका ॥ तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् । ऊर्द्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानं च शस्यते ॥ यावन्तो नेत्ररोगास्तान् पानादेवापकर्षति । रक्तजे रक्तदुष्टे च रक्ते चातिस्रुतेऽपि च ॥ नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे । अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्षकोपे च दारुणे ॥ नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च । अदृष्टि मन्ददृष्टि च कफवातप्रदूषिताम् ॥ स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकण्ड्वासन्नदूरदृक् । गृध्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ सर्वनेत्रामयं हन्यात् त्रिफलाद्यं महद् घृतम् ॥ ११३ ॥

भाषा–त्रिफलेका रस २ सेर, भांगरेका स्वरस २ सेर, अडूसेका स्वरस २ सेर, शतावरका रस २ सेर, बकरीका दूध २ सेर, गिलोयका स्वरस २ सेर, आमलोंका स्वरस २ सेर, गायका घी २ सेर, कल्कके लिये पीपल, दालचीनी, दाख, त्रिफला, नीलोत्पल, मुलहठी, क्षीरकाकोली, कुम्मेर और कटेरी इन सबोंका कल्क आधसेर लेवे । यथाविधिसे घृतको पकाकर उत्तम बासनमें भरके रख देवे। इसको भोजनके पहिले, भोजनके पश्चात् और भोजनके मध्यमें पीवे। इस घृतका पान करनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर हो जाते हैं। यह बृहत् त्रिफलाघृत रक्तयुक्त नेत्ररोग, अतिरक्तयुक्त, दुष्टरक्तयुक्त, अतिस्रुतरोग, रात्र्यंधरोग, तिमिररोग, काच, नीलिका, पटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अभिमंथ, दारुणपक्ष्मकोप, वात पित्त और कफसे उत्पन्न हुए नेत्ररोग, अदृष्टि, मंददृष्टि, कफवातसे दूषित दृष्टि, नेत्रस्राव, वात और पित्तसे उत्पन्न हुई नेत्रोंमें कण्डू तथा समीपकी वस्तु दूर दीखे इन सब रोगोंको दूर करे है । एवं दृष्टिको गीधकी समान करे है, बल वर्ण और अग्निको बढावे है और सर्व प्रकारके नेत्ररोगोंको दूर करे है ॥ ११३ ॥

भृङ्गराजतैलम् ।

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टिमधुपलेन च । तैलस्य कुडवं पक्वं सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत् ॥ नस्याद्वलीपलितघ्नं मासेनैतन्न संशयः ॥ ११४ ॥

भाषा–तिलका तैल आध सेर, भांगरेका रस २ सेर और कल्कके लिये मुलहठी चार तोले, यथाविधिसे तैलको पकाकर शरीरादिकसे मलनेसे तत्काल दृष्टि प्रसन्न होती है । इस तैलका नास लेनेसे एक महीनेमें वली और पलितरोग दूर होता है ॥ ११४ ॥

गोमयतैलम् ।

गवां शकृत्क्वाथविपक्वमुत्तमं हितं च तैलं तिमिरेषु नस्ततः॥११५॥

भाषा-गोबरके काथके द्वारा तैलको पकाकर नास लेनेसे तिमिररोग दूर होता है ॥ ११५ ॥

नृपवल्लभतैलं घृतं च ।

जीवकर्षभकौ मेदा द्राक्षांशुमती निदिग्धिका बृहती । मधुकं बला विडंगं मञ्जिष्ठा शर्करा रास्ना ॥ नीलोत्पलं श्वदंष्ट्रा प्रपौण्डरीकं पुनर्नवा लवणम् । पिप्पल्यः सर्वेषां भागैरक्षांशिकैः पिष्टैः॥तैलं वा यदि वा सर्पिर्दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणं पक्वम्। आत्रेयनिर्म्मितमिदं तैलं नृपवल्लभं सिद्धम्॥तिमिरं पटलं काचं नक्तान्ध्यं चार्बुदं दिवान्ध्यञ्च । श्वेतं च लिंगनाशं नाशयति च नीलिकाव्यंगम् ॥ मुखनासादौर्गन्ध्यं पलितं चाकालजं हनुस्तम्भम् । श्वासं कासं शोषं हिक्कां तथात्ययं नेत्रे ॥ मुखजिह्वामर्द्धभेदं रोगं बाहुग्रहं शिरःस्तम्भम् । रोगानथोर्द्ध्वजत्रोः सर्वानचिरेण नाशयति॥ पक्वव्यं कुडवं तैलं नरशार्थं नृपवल्लभम्। अक्षांशैः शाणिकैः कल्कैरन्यैर्भृङ्गादितैलवत् ॥ ११६ ॥

भाषा-तिलका तेल या गायका घी दो सेर, गायका दूध आठ सेर और कल्कके लिये जीवक, ऋषभक, मेदा, दाख, शालिपर्णी, कटेरी, बृहती, मुलहठी, खिरैटी, वायविडंग, मजीठ, चीनी, रास्ना, नीलेकमल, गोखरू, पुण्डेरिया, पुनर्नवा, सैंधानोन और पीपल यह सब पीसी हुई औषधि आधसेर । यथाविधिसे तैलको पकावे । इसको नृपवल्लभ तेल कहते हैं । यह श्रीमान् आत्रेयजीने कहा है । यह तेल या घी तिमिर, पटल, काच, नक्तान्ध्य, अर्बुद, आन्ध्य, श्वेतलिंगनाश, नीलिका, व्यंग, मुख और नाककी दुर्गंध, अकालज पलितरोग, हनुस्तम्भ, कास, श्वास, हिक्का, स्तम्भरोग, नेत्रोंमें अंधकार, मुखकी जडता, अर्द्धभेद, बाहुग्रह, शिरःस्तम्भ, और ऊर्द्ध्वजत्रुको दूर करे है । इसका नास लेना चाहिये ॥ ११६ ॥

सप्तामृतलोह ।

त्रिफलारस आयसं चूर्णसहयष्टिमधुकं समांसयुक्तम् । मधुना सर्पिषा दिनान्ते पुरुषो निष्परिहारमाददीत ॥ तिमिरक्षतरक्त-

राजिकण्डूक्षणदान्ध्यार्बुदतोयदाहशूलान् । पटलं सहकाचपिछ्कं शमयत्येव निवेशितः प्रयोगः ॥ न च केवलमेव लोचनानां विहितो रोगनिबर्हणाय पुंसाम् । दशनश्रवणोर्ध्वकण्ठजानां प्रशमे हेतुरयं महागदानाम् ॥ पलितानि विनाशयेत्तथाग्निं चिरनष्टं कुरुते रविप्रचण्डम् । दयिता भुजसञ्चयोपगूढः स्फुटचन्द्राभरणासु यामिनीषु ॥ सुरतानि चिरं निषेवतेऽसौ पुरुषो योगवरं निषेवमानः । मुखेन नीलोत्पलचारुगन्धिना शिरोरुहैरञ्जनमेचकप्रभैः ॥ भवेच्च गृध्रस्य समानलोचनः सुखैर्नरो वर्षशतञ्च जीवति ॥ ११७ ॥

भाषा—त्रिफला और मुलहठी प्रत्येक एक एक भाग और लोहा चार भाग, इनको एकत्र जलमें पीसकर सहत और घी मिलाकर संध्यासमय सेवन करे तो तिमिर, क्षत, रक्तराजि, कण्डू, अंधता, अर्बुद, जलस्राव, दाह, शूल, पटल, काच, पिछ्क इत्यादि रोगोंको दूर करे है । यह केवल नेत्ररोगोंकोही नहीं दूर करता, इसके अतिरिक्त दंतरोग, कर्णरोग, ऊर्द्धरोग, कण्ठरोग, महारोग, पलितरोग इन रोगोंकोभी दूर करे है । बहुतकालकी मंद हुई अग्निको सूर्य्यकी समान दीपन करे है । इसके प्रभावसे मुखमें नीलोत्पलकी समान सुगंध आती है । शिरके बाल अत्यन्त सुंदर श्याम हो जाते हैं । गीधकी समान तेज दृष्टि होती है और वह मनुष्य १०० वर्षपर्य्यंत जीता रहता है ॥ ११७ ॥

नयनचन्द्रलोहम् ।

त्रिकटु त्रिफला शृङ्गी शठी रास्ना महौषधम् । द्राक्षा नीलोत्पलञ्चैव काकोली मधुयष्टिका ॥ वात्यालकं केशरं च कण्टकारीद्वयं तथा । लोहाभ्रयोः पलं दत्त्वा भावयेदौषधैरिमैः ॥ त्रिफलाक्वाथतैलेन भृंगराजरसेन च । भावयित्वा वटी कार्या बदरास्थिमिता शुभा॥यावन्तो नेत्ररोगाश्च तान्निहन्ति न संशयः ११८॥

भाषा—त्रिकुटा, त्रिफला, काकडासींगी, कचूर, रायसन, सोंठ, दाख, नीलोत्पल, काकोली, मुलहठी, खिरेंटी, कुकुरभांगरा, कटेरी, बडी कटेरी इन सर्वोका चूर्ण ८ तोले, लोहेकी भस्म ४ तोले और अभ्रककी भस्म ४ तोले लेवे । इन सबोंकी एकत्र मिलाकर त्रिफलेका काथ, तेल और भांगरेके रसमें भावना देकर बेरकी गुठ-

लीकी बराबर गोलियां बना लेवे । इस औषधिको सेवन करनेसे सर्व प्रकारके नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ ११८ ॥

इति नेत्ररोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ शिरोरोगनिदानम् ।

संख्याकथनम् ।

शिरोरोगाश्च जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः ।
सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण कृमिभिस्तथा ॥
सूर्यावर्त्तानंतवातार्द्धावभेदकशंखकैः ॥ १ ॥

भाषा-वात, पित्त, कफ, सन्निपात, रक्त, क्षय और कृमि इन सात कारणोंसे सात, सूर्य्यावर्त्त १, अनंतवात १, अर्द्धावभेदक १ और शंखक १ इन भेदोंसे शिरोरोग ग्यारह प्रकारका है ॥ १ ॥

वातजके लक्षण ।

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् ।
बन्धोपतापैः प्रशमश्च यत्र शिरोभितापः स समीरणेन ॥ २ ॥

भाषा-जिस मनुष्यके विना कारणही शिरमें पीडा हो और रात्रिमें अधिक बढ जाय तथा बांधने और सेकनेसे कम हो जाय उसको वातज शिरोरोग कहते हैं ॥ २ ॥

पैत्तिकके लक्षण ।

यस्योष्णमंगारचितं तथैव भवेच्छिरो दह्यति वाऽक्षिनासा ।
शीतेन रात्रौ च भवेच्छमश्च शिरोभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ३ ॥

भाषा-जिसका शिर अंगारोंसे तपाये हुएकी समान गरम होवे तथा नेत्र और नाकमेंसे दाह निकले, रात्रिमें शीतके कारण शांति हो जाय उसको पित्तज शिरोरोग कहते हैं ॥ ३ ॥

श्लैष्मिकके लक्षण ।

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिस्तब्धमथो हिमं च ।
शूनाक्षिकूटं वदनं च यस्य शिरोभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ४ ॥

भाषा-जिस मनुष्यका शिर कफसे भरासा मालूम हो, भारी, जकडासा और शीतल हो तथा नेत्र और मुख सूज जाय उसको कफज शिरोरोग कहते हैं ॥ ४॥

सन्निपातके लक्षण।

शिरोभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिंगानि समुद्भवन्ति ॥ ५ ॥

भाषा-त्रिदोषज शिरोरोगमें तीनों दोषोंके लक्षण लिखते हैं ॥ ५ ॥

रक्तजके लक्षण।

रक्तात्मकः पित्तसमानलिंगः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ६ ॥

भाषा-रक्तज शिरोरोगमें सम्पूर्ण लक्षण पित्तज शिरोरोगके होते हैं और मस्तक छूनेसे अत्यन्त दूखता है ॥ ६ ॥

क्षयजके लक्षण।

असृग्वसाश्लेष्मसमीरणानां शिरोगतानामिह संक्षयेण।
क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥
संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥ ७ ॥

भाषा-शिरमें स्थित रुधिर, चरबी, कफ और वात इनके क्षय होनेसे छींकें आती हैं तथा शिर अत्यन्त तपता है और अत्यन्त कष्टदायक तीव्र पीडा होती है। स्वेदन, वमन, धूमपान, नस्य और रुधिरमोक्षण करानेसे अधिक पीडा होती है उसको क्षयज शिरोरोग कहते हैं ॥ ७ ॥

कृमिजके लक्षण।

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं स्फुरतीव चांतः।
घ्राणाच्च गच्छेद्रुधिरं सपूयं शिरोभितापः कृमिभिः स घोरः ॥८॥

भाषा-जिसके शिरमें सुई चुभाने सरीखी अत्यन्त पीडा हो तथा कीडे मस्तकको भीतरसे खाकर खाली कर दें तब मस्तक भीतरसे फडके और नाकके द्वारा रुधिर और राध तथा कृमि गिरें उसको कृमिज शिरोरोग कहते हैं ॥ ८ ॥

सूर्यावर्तके लक्षण।

सूर्योदयं या प्रति मंदमन्दमक्षिभ्रुवं रुक्समुपैति गाढा।
विवर्द्धते चांशुमता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्त्तते च ॥
शीतेन शांतिं लभते कदाचिदुष्णेन जंतुः सुखमाप्नुयाद्वा।
सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यापवृत्तं तमुदाहरन्ति ॥ ९ ॥

भाषा-जो सूर्य्यके उदयसे आरम्भ होकर धीरे धीरे नेत्र और भ्रुकुटीमें पीड़ा करता है फिर जैसे २ सूर्य अधिक बढ़ता जाता है वैसे वैसे रोगभी अधिक बढ़ने लगता है। जब सूर्य्यकी तेजी कम हो जाती है तब पीड़ाभी कम हो जाती है। जब सूर्य्य अस्त हो जाता है तो रोगभी शांत हो जाता है। इसमें कभी शीतल और कभी गरम उपचार करनेसे रोगीको सुख होता है। उसको त्रिदोषजन्य सूर्य्यावर्त्त रोग कहते हैं ॥ ९ ॥

अनन्तवातके लक्षण।

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां संपीड्य गाढं सरुजां सुतीव्राम्।
कुर्वन्ति साक्षिभ्रुविशंखदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥
गण्डस्य पार्श्वे च करोति कंपं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान्।
अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥ १० ॥

भाषा-जिसमें तीनों दोष दूषित होकर ग्रीवाकी नसोंको पीडित करके नेत्र, भौंह और कनपटीमें अत्यन्त पीडा करते हैं तथा गण्डस्थल और पसलियोंमें कम्प उत्पन्न करते हैं, ठोडीको जकड देते हैं और नेत्रोंमें रोग उत्पन्न करते हैं उस त्रिदोषोद्भव शिरोरोगको अनंतवात कहते हैं ॥ १० ॥

अर्धावभेदके लक्षण।

रूक्षाशनात्यध्यशनप्राग्वातावश्यमैथुनैः। वेगसंधारणायासव्यायामैः कुपितोनिलः ॥ केवलः सकफो वार्द्धं गृहीत्वा शिरसो बली। मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटेर्धेति वेदनाम् ॥ शस्त्रारणिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोर्धावभेदकः। नयनं वाथवा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥ ११ ॥

भाषा-अत्यंत रूखे पदार्थोंका भक्षण करनेसे, अधिक भोजन करनेसे, भोजनके ऊपर भोजन करनेसे, पूरवकी पवनका सेवन करनेसे, बर्फका सेवन करनेसे, अधिक मैथुन करनेसे, मलमूत्रादिकके वेगोंको रोकनेसे, अधिक श्रम और कसरत करनेसे इत्यादि कारणोंसे केवल वायु कुपित होकर अथवा कफसंयुक्त वायु कुपित होकर आधे शिरको ग्रहण करके मन्यानाड़ी, भौंह, कनपटी, कान, नेत्र और ललाट इनमें एक ओरसे पीड़ा करती है। वह पीड़ा शस्त्र और आरीसे काटने चीरने सरीखी होती है उसको संस्कृतमें अर्धावभेदक और हिन्दीभाषामें आधासीसी कहते हैं। यह रोग जब अधिक बढ जाता है तब एक ओरके कान और नेत्रको नष्ट कर देता है ॥ ११ ॥

शंखके लक्षण ।

पित्तरक्तानिला दुष्टाः शंखदेशे विमूर्छिताः । तीव्ररुग्दाहरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ सशिरो विषवद्वेगी निरुध्याशु गलं तथा । त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शंखको नाम नामतः ॥ त्र्यहाज्जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत् ॥ १२ ॥

भाषा-पित्त, रुधिर और वात दुष्ट होकर कनपटीमें अत्यंत पीड़ा और भयंकर दाहयुक्त लाल सूजनको उत्पन्न करते हैं। यह विषके वेगकी समान बहुत शीघ्र बढकर मस्तक और गलेको जकड़ देता है । यह शंखकरोग तीनही दिनमें मनुष्यको मार देता है। कदाचित् तीनही दिनमें उत्तम वैद्यकी चिकित्सा करनेसे रोगी बचभी जाता है, किन्तु कहकर और निश्चयकरके चिकित्सा करनी चाहिये॥ १२ ॥

इति शिरोरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ शिरोरोगचिकित्सा ।

लेपनस्यक्वाथादिक्रिया ।

श्वेतापराजितामूलं पिप्पलीशुण्ठिसंयुतम् । परिपिष्टशिरोलेपात् शिरःशूलविनाशनम् ॥ शिरोरोगहरं लेपाद्गुंजामूलं सकांजिकम् । पंचमूलीशृतं क्षीरं नस्यं दद्याच्छिरोगदे ॥ आशिरो व्यायतं चर्म्म कृत्वाष्टाङ्गुलमुच्छ्रितम्।तेनावेष्टय शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत् ॥ निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैरुष्णैः प्रपूरयेत् । धारयेद्यो रुजः शान्त्यै यामं यामार्द्धमेव वा ॥ शिरोबस्ति जयत्येषा शिरोरोगं मरुद्भवम् । हनुमन्याक्षिकर्णार्तिमर्दितं शीर्षकम्पनम्॥देवदारु नतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम्।लेपः कांजिकसंपिष्टस्तैलयुक्तः शिरोर्त्तिनुत् ॥ त्रिकटुपुष्करजीरकारजनीरास्नातुरङ्गगंधानाम् । क्वाथः शिरोऽर्त्तिजालं नासापीते निवारयति ॥ १३ ॥

भाषा-सफेद कोयलकी जड़, पीपल और सोंठ इनको जलमें पीसकर शिरपर

लेप करनेसे शिरःशूल नष्ट होता है। घूंघचीकी जड़को कांजीमें पीसकर शिरपर प्रलेप करनेसे शिरोरोग दूर होता है। पंचमूलको दूधमें औटाकर उस दूधका नास लेनेसे शिरोरोग दूर होता है। आठ अंगुल चौड़ा और शिरकी बराबर लम्बा एक चमड़ेका टुकड़ा लेकर उससे शिरको वेष्टित कर देवे और संधि अर्थात् जोड़ोंको उड़दके आटेसे लेप देवे, फिर स्थिरभावसे बैठकर शिरके ऊपर गरम तैलको छोड़े, जबतक सहा जाय तबतक तैलको धारण करे अर्थात् १॥ या २ घंटे धारण करे; इससे शिरःपीडा, हनु, नेत्र, कर्ण और अर्दितरोग तथा शिरःकम्प दूर होता है। देवदारु, तगर, कूठ, खस और सोंठ इनको कांजीमें पीसकर तेलमें मिलाकर शिरपर प्रलेप करनेसे शिरकी पीडा दूर होती है। त्रिकुटा, पोहकरमूल, जीरा, हलदी, रायसन और असगंध इनका क्वाथ बनाकर नाकसे पान करनेसे शिरकी पीडा दूर होती है ॥ १३ ॥

बृहज्जीवकाद्यतैलम् ।

जीवकर्षभकौ द्राक्षा मधूकं मधुकं बला । नीलोत्पलं चन्दनं च विदारी शर्करा तथा ॥ तैलप्रस्थं पचेदेभिः शनैः पयसि षड्गुणे। जाङ्गलस्य च मांसस्य तुलार्द्धस्य रसेन तु ॥ सिद्धमेतद् भवेन्नस्यं तैलमर्द्धावभेदकम् । बाधिर्यं कर्णशूलं च तिमिरं गलशुण्डिकाम् ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव शीर्षरोगं नियच्छति । दन्तजालं शिरःशूलमर्दितं चापकर्षति ॥ १४ ॥

भाषा-जीवक, ऋषभक, दाख, महुआ, मुलहठी, खिरेटी, नीलोत्पल, चन्दन, विदारीकंद और शर्करा ये सब आधसेर २ लेवे। दूध ३ सेर, जांगल पशुओंके मांसका रस ४ सेर और तिलका तेल २ सेर लेवे । सबोंको यथाविधिसे शनैः २ तेलको सिद्ध करे । इस तेलका नास लेनेसे अर्द्धावभेदक, बधिरता, कर्णशूल, तिमिर, गलशुण्डिका, वातज और पित्तज शिरोरोग, दंतरोग, शिरःशूल और अर्दितरोग दूर होता है ॥ १४ ॥

अपामार्गतैलम् ।

अपामार्गो फलव्योपनिशाक्षारकरामठैः ।
सविडंगैर्गवां मूत्रे तैलं नस्यं कृमीन् जयेत् ॥ १५ ॥

भाषा-चिरचिटेके बीज, त्रिकुटा, हलदी, जवाखार, हींग और बायविडंग इनके कल्क और गोमूत्रके द्वारा तेलको पकाकर नास लेनेसे शिरके कीडे नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

मयूराद्यं घृतम्।

दशमूलबलारास्नामधुकैस्त्रिपलैः सह। मयूरं पक्षपित्तान्त्रशकृत्पादास्यवर्जितम्॥ जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत्। मधुरैः कार्षिकैः कल्कैः शिरोरोगार्दितापहम्॥ कर्णनासाक्षिजिह्वास्यगलरोगविनाशनम्॥ १६॥

भाषा-दशमूलकी सम्पूर्ण औषधि, खिरेटी, रायसन और मुलहठी प्रत्येक तीन तीन पल, पंख, पित्त, आंतें, विष्ठा, पांव और चोंच रहित मोरका मांस सब औषधियोंके बराबर, घी २ सेर और दूध दो सेर लेवे। इन सबोंको चौगुने जलमें यथाविधिसे पकावे तथा जीवकादि औषधियोंका आठ तोले कल्क मिलाकर पकावे। जब घी सिद्ध हो जाय तब एक उत्तम बासनमें भरके रख देवे। इस घृतका सेवन करनेसे शिरोरोग, अर्दितरोग, कर्णरोग, नासिकारोग, नेत्ररोग, जिह्वारोग, मुखरोग और गलरोग दूर होते हैं॥ १६॥

शारिवादिलेपः।

शारिवोत्पलकुष्ठानि मधूकं चाम्लपेषितम्। सर्पिस्तैलयुतो लेपः सूर्यावर्त्तार्द्धभेदयोः॥ सूर्य्यावर्त्तभवं बीजं तद्रसेन सुपेषितम्। वेदनानाशनो लेपः सूर्य्यावर्त्तार्द्धभेदयोः॥ दग्धचुल्लीमृत्तिका च चूर्णं मरिचचूर्णयोः। समांशं मिलितं कृत्वा नस्यं हन्त्यर्द्धभेदकम्॥ १७॥

भाषा-अनंतमूल, कमल, कूठ और मुलहठी इनको कांजीमें पीसकर घी और तेल मिलाकर लेप करनेसे सूर्यावर्त्त और अर्द्धावभेदक रोग दूर होता है। हुलहुलके बीजोंको हुलहुलके रसमें पीसकर मस्तकपर प्रलेप करनेसे सूर्य्यावर्त्त और अर्द्धावभेदक रोग दूर होता है। चूलेकी जली हुई मिट्टी, चूना और काली मिरच इन तीनोंको बारीक पीसकर नास लेनेसे अर्द्धावभेदक रोग दूर होता है॥ १७॥

षट्बिन्दुतैलम्।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्तिरास्नासह सैन्धवं च।
भृंगं विडंगं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम्॥
आजं पयस्तैलविमिश्रितं च चतुर्गुणे भृंगरसे विपक्वम्।
षट् बिन्दवो नासिकया विधेया निहन्ति शीघ्रं शिरसो विकारान्॥

च्युतांश्च केशान् चलितांश्च दन्तान् दुर्बद्धमूलांश्च दृढीकरोति । सुपर्णदृष्टिप्रतिमं च चक्षुर्बाह्वोर्बलं चाप्यधिकं ददाति ॥ १८ ॥

भाषा–तिलका तेल १ सेर, बकरीका दूध १ सेर, भांगरेका रस ४ सेर और कल्कके लिये अंडकी जड़, तगर, सोया, जीवंती, रायसन, सेंधानोन, भांगरा, वायविडंग, मुलहठी और सोंठ इन सबोंका कल्क पावभर। यथाविधिसे इन सबोंको मिलाकर तैलको सिद्ध करे । इसको षड्बिन्दु तैल कहते हैं। इसका नास देनेसे तत्काल सर्वप्रकारके शिरोरोग दूर हो जाते हैं तथा शिथिल केश और हिलते हुए दांत दृढमूल हो जाते हैं । एवं नेत्रोंकी दृष्टि और बाहुका बल अधिक बढता है १८

अपरं च मयूराद्यं घृतम् ।

दशमूलीबलारास्नामधुकैस्त्रिफलैः सह । मयूरं पक्षपित्तान्त्रयकृत्पादास्यवर्जितम् ॥ जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरं समं पचेत् । मधुरैः कार्षिकैः कल्कैः शिरोरोगार्दितापहम् ॥ कर्णनासाक्षिजिह्वास्यगलरोगविनाशनम् । आखुभिः कुक्कुटैर्हंसैः शशैश्चापि हि बुद्धिमान् ॥ कल्केनानेन विपचेत् सर्पिरूर्ध्वगदापहम् । मयूराद्यमिदं सर्पिरूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ दशमूलादिना तुल्यो मयूर इह गृह्यते । अन्ये त्वाकृतिमानेन मयूरग्रहणं विदुः १९

भाषा–उत्तम गायका घी २ सेर, दशमूल, खिरैटी, रायसन, त्रिफला और जीवनीय दशक इन सब औषधियोंका काथ ४ सेर, पक्ष, पित्त, आंतें, विष्ठा, पाद और मुखको छोडकर मोरके शेष अंगोंके मांसका काथ ४ सेर और कल्कके लिये जीवनीय दशक आधा सेर, यथाविधिसे घृतको पकावे । यह घृत शिरोरोग, कर्णरोग, नासिकारोग, नेत्ररोग, जिह्वारोग और गलरोगको दूर करे है । मूसा, मुरगा, हंस और शशकके मांसके कल्कसेभी घृतको पकाना चाहिये। वह सब घृत ऊर्ध्वजत्रु रोगोंको दूर करे है । जिस प्रकार यह मयूराद्यघृत सम्पूर्ण जत्रुरोगोंको दूर करे है । यहां दशमूलादि औषधियोंके समान मोरका मांस लिया जाता है और वैद्य एक मोरको लेते हैं ॥ १९ ॥

गुंजातैलम् ।

विशुद्धं तिलतैलं च तत्समं कांजिकं भवेत् । आरनालसमं भृंगद्रवं कृत्वा प्रदापयेत् ॥ मन्दाग्निना ततः पाच्यं यावत्तैलं स्थितं भवेत् । तैलमध्ये प्रदातव्यं पिष्ट्वा गुंजापलद्वयम् ॥ उत्तार्य तैलशे-

षं तु दिनैकं तत्तु रक्षयेत् । शिरोरोगेषु दुष्टेषु अर्द्धशीर्षे सुदारुणे ॥ भ्रूशङ्खकर्णपीडाश्च नश्यन्ति नात्र संशयः । गुंजातैलमिति ख्यातं दत्तं हन्ति शिरोव्यथाम् ॥ २० ॥

भाषा–तिलका तेल १ सेर, कांजी १ सेर और भांगरेका रस १ सेर इन सब द्रव्योंका काथ करके मंद मंद अग्निसे पकावे, फिर घूंघची १६ तोले पीसकर इसमें मिला देवे, इस प्रकार पकावे । जब केवल तेल मात्र बाकी रह जाय तब उतारकर एक दिन रख देवे । पश्चात् इस तेलका प्रयोग करनेसे दुष्ट शिरोरोग, दारुण अर्द्धशीर्षरोग, भौंह, कनपटी और कानकी पीडा और शिरकी पीडाको दूर करै है २०

दशमूलतैलम् ।

दशमूलीकषायेण अष्टाङ्गकल्कसंयुतम् । क्षीरं च द्विगुणं दत्त्वा तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ शिरोर्त्ति नाशयेदेतद्भास्करस्तिमिरं यथा । वातशूलं पित्तशूलं कफशूलं त्रिदोषजम् ॥ दशमूलमिदं तैलं शिरोरोगनिषूदनम् । सूर्य्यावर्त्तमभिष्यन्दजलदोषं च नाशयेत् ॥ २१ ॥

भाषा–तैल २ सेर, दूध ४ सेर, दशमूलका काथ ८ सेर और कल्कके लिये अष्टवर्ग आधसेर, यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे । इस तेलका व्यवहार करनेसे सर्व प्रकारके शिरोरोग दूर होते हैं तथा वातशूल, पित्तशूल, कफशूल, त्रिदोषज शिरःशूल, सूर्य्यावर्त्तरोग, अभिष्यन्द रोग और जलदोषको नष्ट करै हैं ॥ २१ ॥

स्वल्पदशमूलतैलम् ।

दशमूलकाथकल्काभ्यां कटुतैलं विपाचयेत् ।
सन्निपातज्वरश्वासकासं हन्ति सुदारुणम् ॥ २२ ॥

भाषा–दशमूलकी औषधियोंके काथ और कल्कके द्वारा कडवे तेलको पकाकर नास लेनेसे सन्निपातज्वर, श्वास, दारुण खांसी और विशेष करके शिरोरोग दूर होता है ॥ २२ ॥

मध्यमदशमूलतैलम् ।

दशमूली करञ्जश्च निर्गुण्डी च जयन्तिका । धत्तूरः षट्पलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत्॥ पादशेषे रसे तैलं कटुप्रस्थं विपाचयेत्।तत्कल्कान् दापयेत्तत्र भागान् षट्तोलकान् पृथक्॥

वातश्लेष्मसमुद्भूतं शिरोरोगं व्यपोहति। कासं पंचविधं शोथं जीर्णज्वरमपोहति॥ दशमूलमिदं तैलं शिरःकर्णाक्षिरोगनुत्। मन्यास्तम्भमन्त्रवृद्धिं श्लीपदं च विनाशयेत्॥ दशमूलमिदं तैलमश्विभ्यां निर्म्मितं पुरा॥ २३॥

भाषा-दशमूल, करंज, निर्गुण्डी, जयंती और धतूरा प्रत्येक छः छः पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग शेष रह जाय तब उतार लेवे, फिर उसमें कड़वा तेल २ सेर और ऊपरोक्त सम्पूर्ण औषधियोंका कल्क १६ तोले मिलाकर पकावे। जब तेल सिद्ध हो जाय तब उतारकर छान लेवे। यह दशमूल तैल वात और कफोत्पन्न शिरोरोग, पांच प्रकारकी खांसी, सूजन, जीर्णज्वर, शिरोरोग, कर्णरोग, नेत्ररोग, मन्यास्तम्भ, अंत्रवृद्धि, श्लीपदरोग इत्यादि रोगोंको दूर करे है। यह दशमूल तैल पूर्वकालमें अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है॥ २३॥

महादशमूलतैलम्।

दशमूलपलशतं जलद्रोणे विपाचयेत्। तेन पादावशेषेण कटुतैलाढकं पचेत्॥जम्बीरार्द्रकधत्तूरस्वरसं तैलतुल्यतः। कल्कः कणा मृता दार्वी शतपुष्पा पुनर्नवा॥ शिग्रु पिप्पलिका तिक्ता करंजं कृष्णजीरकम्। सिद्धार्थकं वचा शुण्ठी पिप्पली चित्रकं शठी॥देवदारु बला रास्ना सूर्यावर्त्तककट्फलम्। निर्गुण्डी चविका गैरी ग्रन्थिकं शुष्कमूलकम्॥ यवानी जीरकं कुष्ठमजमोदा च ताडकम्। एतेषां पलिकैर्भागैर्विपचेन्मतिमान् भिषक्॥ हन्ति श्लेष्माणमभ्यङ्गात् पानात्कासं व्यपोहति। निहन्ति विविधान् व्याधीन् कफवातसमुद्भवान्॥ शिरोमध्यगतान् रोगान् शोथान् हन्ति व्रणानपि॥ २४॥

भाषा-दशमूलकी औषधि १०० पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावे जब चौथाई भाग जल शेष रह जाय तब उतार लेवे फिर उसमें कड़वा तेल १ आढकप्रमाण, जम्बीरी नींबूका रस १ आढक, अदरखका स्वरस १ आढक, धतूरेका स्वरस १ आढक तथा पीपल, गिलोय, दारुहलदी, सोया, पुनर्नवा, सहजना, पीपल, कुटकी, करंज, काला जीरा, सरसों, वच, सोंठ, पीपल, चीता, कचूर, देवदारु, खिरैंटी, रायसन, हुलहुल, कायफल, निर्गुण्डी, चव्य, गेरू,

गठिवन, सूखी मूली, अजवायन, जीरा, कूठ, अजमोद और विधायरा प्रत्येक औषधिका कल्क चार चार तोले मिलाकर यथाविधिसे बुद्धिमान् वैद्य पकावे। इस तेलकी मालिस करनेसे कफज रोग दूर होता है और इसका पान करनेसे खांसी, नाना प्रकारके कफवातोद्भवरोग, सर्व प्रकारके शिरोरोग, सूजन और व्रणादिरोग दूर होते हैं ॥ २४ ॥

बृहद्दशमूलतैलम् ।

दशमूलीशतं ग्राह्यं तथा धत्तूरकस्य च । शतं पुनर्नवायाश्च निर्गुण्ड्याश्च शतं तथा ॥ एतैः कषायैर्विपचेत् कटुतैलाढकं भिषक् । वासा वचा देवदारु शठी रास्ना सयष्टिका॥मरिचं पिप्पली शुण्ठी कारवी कट्फलं तथा । करञ्जशिग्रु कुष्ठं च चिञ्चा च वनशिम्बिका ॥ चित्रकं च पृथग्भागान् दत्त्वा चैषां पलोन्मितान् । श्लैष्मिकं सन्निपातोत्थं वातश्लेष्मभवं तथा ॥ कर्णशूलं शिरःशूलं नेत्रशूलं च दारुणम् । निहन्ति दशमूलाख्यं तैलमेतन्न संशयः ॥ २५ ॥

भाषा—दशमूल १०० पल, धतूरा १०० पल, पुनर्नवा १०० पल और निर्गुण्डी १०० पल लेवे । इसको चौगुने जलमें पकावे, जब चौथा भाग जल शेष रह जाय तब उतार लेय, फिर क्वाथको छानकर चूलेपर चढा देवे । पश्चात् इसमें कडवा तेल १ आढक तथा अडूसा, वच, देवदारु, कचूर, रायसन, मुलहठी, मरीच, पीपल, सोंठ, काला जीरा, कायफल, करंज, सहजना, कूठ, इमली, वनसेम और चीता प्रत्येक औषधि चार चार तोले मिलाकर यथाविधिसे पकावे। यह महादशमूल तेल कफज, त्रिदोषज, वातकफज, कर्णशूल और नेत्रशूल विशेषकरके दारुण शिरोरोगको दूर करे है ॥ २५ ॥

रुद्रतैलम् ।

जैपालद्रोणधत्तूरशिग्रुशकाशनस्य च । सूर्य्यावर्त्तस्य सूर्य्यस्य पत्राणां स्वरसं पृथक् ॥ जम्बीरशृङ्गवेरस्य रसं दत्त्वा समं समम् । कटुतैलस्य पात्रं तु शोधयित्वा पचेद्भिषक् ॥ रजनीद्वयमञ्जिष्ठा कट्फलं कृष्णजीरकम् । त्रिकटुः पिप्पलीमूलं शारिवे द्वे विडङ्गकम् ॥ रास्ना दारु बला निम्बं मुस्तकं चन्दनं

तथा । परशू द्रौ स्नुहीमूलं दूर्वापामार्गमूलकम् ॥ सरसद्रव्यमेतेषां कल्कं दत्त्वा तु पादिकम् । मृत्पात्रे सुदृढे चैव पाचयेत्तीव्रवह्निना ॥ बलासमूर्ध्वगं चैव नाशयेत्रिदिनाद् ध्रुवम् । मुखनासाक्षिरोगांश्च कफशोणितसंस्रवान् ॥ शिरोरोगं सन्निपातं श्लीपदं गलगण्डकम् । अभ्यङ्गान्नाशयेदेतान् पानात्कासं व्यपोहति ॥ कालाग्निरुद्रेण प्रोक्तं रुद्रतैलमिदं पुरा ॥ २६ ॥

भाषा—सरसोंका तेल १६ सेर, जमालगोटेके पत्ते, गूमा, धतूरा, सहजना, भांग, हुलहुल और आक इन प्रत्येकके पत्तोंका स्वरस १६ सेर, कल्कके लिये हलदी, दारुहलदी, मजीठ, कायफल, काला जीरा, त्रिकुटा, पीपलामूल, अनंतमूल, कालीसर, वायविडंग, रायसन, देवदारु, खिरेटी, नीम, नागरमोथा, लालचन्दन, टेंकारी, बडी टेंकारी, थूहरकी जड, दूब, चिरचिटा, मूली, जमालगोटेकी जड, गूमा, धतूरके पत्ते, सहजनेके पत्ते, भांग, हुलहुल और आकके पत्ते इन सबोंका कल्क १ सेर लेवे । सबोंको यथाविधिसे मिलाकर मिट्टीके पात्रमें तीव्र अग्निसे पकावे । इस तेलको शरीरादिकपर मलनेसे ऊर्ध्वगतरोग और बलासरोग तीन दिनमें नष्ट होते हैं । तथा मुखरोग, नासिकारोग, नेत्ररोग, कफरोग, रक्तस्राव, शिरोरोग, सन्निपात, श्लीपद, गलगण्डरोगादि रोग नष्ट होते हैं । इसका पान करनेसे खांसी आदि उपद्रव दूर होते हैं । यह रुद्रतेल पूर्वकालमें कालाग्निरुद्रदेवने निर्म्माण किया है ॥२६॥

तप्तराजतैलम् ।

धत्तूरं पूतिकं पीत्वा जयन्ती सिन्धुवारकम् । शिरीषं हिज्जलं शिग्रु दशमूलं समं भवेत् ॥ प्रस्थं प्रस्थं समादाय कटुतैलं समांशकम् । जलद्रोणे विपक्तव्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ गोमूत्रं चाढकं दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । मदनं त्र्यूषणं कुष्ठमजाजी विश्वभेषजम् ॥ कट्फलं वरुणं मुस्तं हिज्जलं बिल्वमेव च । हरितालजवापुष्पममृतं कुनटी तथा ॥ कर्कटं चन्दनं शिग्रु यवानी व्याघ्रपादपि । एतेषां कार्षिकैर्भागैः समभागं प्रकल्पयेत् ॥ तप्तराजमिति ख्यातं महादेवेन निर्मितम् । सन्निपातं महाघोरं शिरोरोगं महत्तरम् ॥ शिरःशूलं नेत्ररोगं कर्णशूलं च दारुणम् ।

ज्वरं दाहं महाघोरं स्वेदं चैव महत्तरम् ॥ कामलां पाण्डुरोगं च हलीमकसपीनसम् । त्रयोदश सन्निपातं हन्ति सद्यो न संशयः२७॥

भाषा-धतूरा, दुर्गंध करंज, कटसैरया, जयंती, संभालू, सिरस, समुद्रफल, सहजना और दशमूल प्रत्येक औषधि दो दो सेर लेकर६४ सेर जलमें पकावे। जब १६ सेर जल शेष रह जाय तब उतार लेवे,पश्चात् इसमें कडवा तेल २ सेर, गोमूत्र १ आढक तथा मैनफल, त्रिकुटा, कूठ, काला जीरा, सोंठ, कायफल, वरना, नागरमोथा, समुद्रफल, वेलगिरी, हरिताल, ओडहुलके फूल, विष, मैनशिल, काकडाशिंगी, चन्दन, सहजना, अजवायन और विकंकतकी जड प्रत्येकका कल्क एक एक तोला मिलाकर यथाविधिसे तेलको सिद्ध करे। यह तन्नराज तेल महादेवने निर्म्माण किया है। यह तेल घोर सन्निपात, दारुण शिरोरोग, शिरःशूल, नेत्ररोग, दारुण कर्णशूल, ज्वर, दाह, बहुत पसीनेका आना, कामला, पाण्डुरोग, हलीमक, पीनसरोग और तत्काल १३ प्रकारके सन्निपातोंको नष्ट करे है ॥ २७ ॥

शिरःशूलाद्रिवज्ररसः ।

पलं रसं पलं गन्धं पलं लोहं पलं त्रिवृत् । गुग्गुलोः पलचत्वारि तदर्द्धं त्रिफलारजः ॥ क्वाथेन दशमूल्याश्च यथास्वं परिभावयेत् । घृतयोगात् प्रकर्त्तव्या माषिका वटिका शुभा ॥ छागीदुग्धानुपानेन पयसा मधुनाथवा । शिरःशूलाद्रिवज्रोऽयं चन्द्रनाथेन भाषितः ॥ एकजं द्वन्द्वजं चैव त्रिदोषजनितं तथा । वातिकं पैत्तिकं सर्वं शिरोरोगं विनाशयेत् ॥ २८ ॥

भाषा-पारा ४ तोले, गंधक ४ तोले, लोहा ४ तोले, निसोत ४ तोले, गूगल १६ तोले, त्रिफलेका चूर्ण ८ तोले इन सबोंको एकत्र पीसकर दशमूलके क्वाथमें खरल करे, फिर घीके योगसे एक एक मासेकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली बकरीके दूध, जल अथवा सहतके साथ भक्षण करे। यह शिरःशूलादि वज्ररस चन्द्रनाथने निर्म्माण किया है। यह एकदोषज, द्विदोषज, त्रिदोषज, वातज, पैत्तिक और अन्यान्य सर्व प्रकारके शिरोरोगोंको नष्ट करे है ॥ २८ ॥

इति शिरोरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ स्त्रीरोगांतर्गतप्रदररोगनिदानम्।

संप्राप्ति।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च।
यानातिशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च॥
तं श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुःप्रकारं प्रदरं वदन्ति॥ १॥

भाषा–विरुद्ध भोजन करनेसे, मदिरा पीनेसे, अधिक भोजन करनेसे अथवा भोजनके ऊपर भोजन करनेसे, अजीर्णके होनेसे तथा गर्भके पतित हो जानेसे, अत्यंत मैथुन करनेसे, अत्यंत मार्ग चलनेसे, अतिशोकके होनेसे, बहुत उपवासादिके करनेसे, बोझके ढोनेसे, चोटके लगनेसे और दिनमें सोनेसे इत्यादि कारणोंसे स्त्रियोंके कफ, पित्त, वात और सन्निपातज ऐसे चार प्रकारके प्रदररोग उत्पन्न होते हैं॥ १॥

प्रदररोगके सामान्य लक्षण।

असृग्दरं भवेत्सर्वं सांगमर्दं सवेदनम्॥ २॥

भाषा–सर्व प्रकारके प्रदररोगमें शरीरका टूटना और पीड़ा होती है॥ २॥

उपद्रवके लक्षण।

तस्यातिवृद्धौ दौर्बल्यं श्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा।
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तंद्रा रोगाश्च वातजाः॥ ३॥

भाषा–इस प्रदरके अधिक बढ जानेसे दुर्बलता, विना श्रम करनेसे श्रमका मालूम होना, मूर्च्छाका आना, मद (नशासा हो), पियासका अधिक लगना, दाहका होना, वृथा बकवाद करना, शरीरका रंग सफेदी लिये पीला पड जाय, नेत्रोंमें औंगका आना तथा वातज रोगोंका होना इत्यादि उपद्रव होते हैं॥ ३॥

श्लैष्मिकके लक्षण।

आमं सपिच्छं प्रतिमं सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु॥ ४॥

भाषा–जिसमें आमसंयुक्त, चिकना, पिलाई लिये सफेद और चावलोंके मांडकी समान सफेद स्राव हो उसको कफज प्रदर कहते हैं॥ ४॥

पैत्तिकके लक्षण।

सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात्॥ ५॥

भाषा-जिसमें पीला, नीला, काला, लाल और गरम ऐसा स्राव हो तथा वेगसे वहे और पित्तकी पीडाओंसे सहित हो उसको पित्तज प्रदर कहते हैं ॥ ५ ॥

वातिकके लक्षण ।

रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातार्त्तिवातात्पिशितोदकाभम् ॥ ६ ॥

भाषा-जिसमें रूखा, लाला, झागोंसहित, थोडा थोडा मांसके धोवनकी समान स्राव हो तथा जिसमें वातकी पीडा हो उसको वातज प्रदर कहते हैं ॥६॥

त्रिदोषजके लक्षण ।

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जाप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् ।
तच्चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्साम् ॥ ७ ॥

भाषा-जिसमें सहत, घी, हरिताल और मज्जाके रंगका तथा मुरदेकी समान दुर्गंधित स्राव हो उसको सन्निपातज प्रदर कहते हैं । वह असाध्य है उसकी वैद्यको चिकित्सा करनी उचित नहीं ॥ ७ ॥

विशुद्धार्तवके लक्षण ।

मासान्निःपिच्छदाहार्त्ति पंचरात्रानुबंधि च । नैवातिबहुलं नाल्पमार्त्तवं शुद्धमादिशेत् ॥ शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् । तदार्तवं प्रशंसन्ति यच्चाप्सु न विरज्यते ॥ ८ ॥

भाषा-जो आर्त्तव महीनेके महीने निकले, जिसमें चिकनापन, दाह और शूल न हो तथा पांच दिनतक निकलता रहे और वह न बहुत निकले और थोडा निकले ऐसा आर्त्तव शुद्ध होता है । जो आर्त्तव खरगोशके रुधिरकी समान लाल हो तथा लाखके रसकी समान हो और जिसके सने हुए कपडेको पानीमें धोनेसे उसका रंग छूट जाय उसको शुद्ध आर्त्तव कहते हैं ॥ ८ ॥

इति प्रदररोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ प्रदररोगचिकित्सा ।

दधिकाथपथ्यपानादिक्रिया ।

दध्ना सौवर्चलाजाजी मधूकं नीलमुत्पलम् । पिबेत् क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरपीडिता ॥ अशोकवल्कलक्काथशृतं दुग्धं सुशी-

तलम् । यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥ रोहीतका-न्मूलकल्कं पाण्डुरेऽसृग्दरे पिबेत् । जलेनामलकं बीजं कल्कं वाथ सिता मधु॥ दार्वीरसांजनवृषाब्दकिरातबिल्वभल्लातकैरव-कृतो मधुना कषायः । पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं पीता-सितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥ कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डु-लाम्बुना । एतत्पीत्वा त्र्यहान्नारी प्रदरात् परिमुच्यते ॥ मधुय-ष्टिं च तैर्दब्राह्मीक्षीरं कण्टकारिका । एतानि समभागानि पिबेदु-ष्णेन वारिणा ॥ चतुर्भागावशेषेण गर्भसम्भवमुत्तमम् । मातु-लुंगस्य बीजानि मूलान्येरण्डकस्य च ॥ घृतेन सह संयोज्य पा-ययेत् पुत्रकांक्षिणीम् । बला चातिबला यष्टिशर्करा मधुसंयुता॥ वन्ध्यागर्भकरं पीतं नात्र कार्य्या विचारणा । अटरूषकमूलेन भगं नाभिं च लेपयेत् ॥ सुखं प्रसूयते नारी नात्र कार्य्या विचार-णा । एकं पुनर्नवामूलमपामार्गस्य वा शिव ॥ स्वरसं योनिवि-क्षिप्तं वराङ्गस्य व्यथां हरेत् । प्रसूतिवेदनाश्चैव तरुणीनां व्यथां हरेत् ॥ भूमिकूष्माण्डमूलं वै शालितण्डुलवारिणा । सप्ताहं दुग्धपीतं स्यात् स्त्रीणां बहु पयस्करम् ॥ रुद्रेंद्रमूलसंलेपात् स्त्रीस्तनस्य च वेदना । नश्येद् घृतविपक्वा च कार्यावश्यं तु पालिका ॥ भक्षिता सा महादेव योनिशूलं विनाशयेत् ॥ ९ ॥

भाषा—काला नोन, काला जीरा, मुलहठी और नीलोत्पल ये सब समान भाग लेकर एकत्र पीसकर दही और सहतमें मिलाकर पान करें तो स्त्रियोंका वातजनित रक्तप्रदर रोग दूर होवे । अशोककी छालको दूधमें औटाकर उस दूधको शीतल करके बलानुसार प्रातःकाल पान करनेसे अत्यन्त तीव्र रक्तप्रदररोग दूर होता है। रोहिडेके वृक्षकी जडका चूर्ण जलके साथ पान करनेसे श्वेतप्रदर नष्ट होता है। अथवा आमलोंके जलमें चीनी और सहत मिलाकर पान करनेसे श्वेतप्रदररोग नष्ट होता है। दारुहलदी, अडूसा, नागरमोथा, चिरायता, बेल और भिलावे इनके काथमें रसोत और सहत मिलाकर पान करनेसे अत्यन्त बलवान् शूलसंयुक्त पीला, काला, लोहित, लाल, नीला और सफेद रंगका प्रदर दूर होता है । कुशाकी

जडको चावलोंके जलमें पीसकर पान करनेसे स्त्री तीन दिनमें प्रदररोगसे छूट जाती है । मुलहठी और कटेरीको समान भाग लेकर गायके दूधमें औटावे, जब चार भागका एक भाग रह जाय तब गरम जलके साथ पान करे तो उत्तमरीतिसे गर्भ रह जाता है । बिजौरेके बीज और अंडकी जड इनको एकत्र पीसकर घीमें मिलाकर पुत्रकी इच्छा करनेवाली स्त्री पान करे । खिरेटी, कंघी, मुलहठी, शर्करा और सहत इनको एकत्र मिलाकर पान करनेसे वंध्या स्त्रीभी गर्भवती होती है । अडूसेकी जडको पीसकर योनि और नाभिपर प्रलेप करनेसे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव होती है । इकले पुनर्नवेकी जडके अथवा चिरचिटेकी जडके रसको योनिमें डालनेसे प्रसवकी वेदना दूर होती है । विदारीकंदकी जडको शालिचावलोंके जलमें पीसकर दूधके साथ सात दिनतक पान करनेसे स्त्रियोंके अधिक दूधकी वृद्धि होती है । इन्द्रायनकी जडको पीसकर स्तनपर प्रलेप करनेसे स्त्रियोंके स्तनोंकी वेदना दूर होती है तथा इसको घीमें पकाकर भक्षण करनेसे योनिशूल नष्ट होता है ॥ ९ ॥

अशोकाद्यघृतम् ।

अशोकवल्कलप्रस्थं तोयाढकविपाचितम् । पादस्थेन घृतप्रस्थं जीरकं क्वाथसंयुतम् ॥ तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरघृततुल्यं प्रदापयेत् । तथैव केशराजस्य प्रस्थमेकं भिषग्वरः ॥ जीवनीयैः प्रियालैस्तु परुषैः सरसाञ्जनैः । यष्ट्याह्वाशोकमूलं च मृद्वीका च शतावरी ॥ तण्डुलीयकमूलं च कल्कैरेभिः पलार्द्धकैः । शर्करायाः पलान्यष्टौ सिद्धशीतं प्रदापयेत् ॥ पीतमेतद् घृतं हन्ति सर्वदोषसमुद्भवम् । श्वेतं नीलं तथा कृष्णं प्रदरं हन्ति दुस्तरम् ॥ कुक्षिशूलं कटीशूलं योनिशूलं च सर्वगम् । मन्दाग्निमरुचिं पाण्डुं कृशतां श्वासकामलाम् ॥ आयुःपुष्टिकरं बल्यं बलवर्णप्रसादनम् । देयमेतत् परं सर्पिर्विधिना परिकीर्त्तितम् ॥ १० ॥

भाषा—गायका घी २ सेर, काथके लिये अशोककी छाल १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, जीरा १ सेर, जल ८ सेर, शेष २ सेर, चावलोंका जल २ सेर, बकरीका दूध २ सेर, कुकुरभांगरेका रस २ सेर, कल्कके लिये जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, मुलहठी, जीवंती, चिरौंजी, फालसे, रसौत, मुलहठी, अशोककी छाल, दाख, सतावर और चौलाई प्रत्येक दो दो तोले, सबोंको मिलाकर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । जब घृत सिद्ध हो जाय

तब आठ पल मिश्री मिला देवे। इस घृतका पान करनेसे सर्व दोषोद्भव प्रदररोग, सफेद प्रदर, नील प्रदर, कृष्णप्रदर, कुक्षिशूल, कटीशूल, योनिशूल, मंदाग्नि, अरुचि, पांडु, कृशता, श्वास और कामला रोग दूर होता है। अवस्थास्थापक, पुष्टिकारक, बलकारक, बल और वर्णको प्रसन्न करनेवाला है ॥ १० ॥

न्यग्रोधाद्यघृतम्।

न्यग्रोधाश्वत्थपार्थामृतवृषकटुकालपक्षजम्बूप्रियालाः श्योनाकोदुम्बराख्या मधुकतरुबलावेतसः कन्दुनीपाः। रोहीतं पीतसारं विधिविहितहुतं सर्वमेषां तरूणां प्रत्येकं वल्कलं तद्युगपलसखिलं क्षोदयित्वा भिषग्भिः॥ क्वाथं द्रोणाम्भसा तद्दृढविमलकटाहेऽपि पादावशेषं सर्पिःप्रस्थं तु वाच्यं पठनकुशलिना मन्दमन्दानलेन। प्रस्थं धात्रीरसानां विधिविहितजलप्रस्थमेकं च शालेर्दत्त्वा त्र्यक्षं तु कल्कं मधुकमपि मधोः पुष्पखर्जूरदार्वीः॥ जीवन्तीकाश्मरीणां फलमपि युगलं क्षीरकाकोलियुग्मं रक्ताख्यं चन्दनं यत्तदपरविमलं चांजनं शारिवा च॥ न्यग्रोधाद्यं घृतं ह्येतदेहं प्राप्यामृतायते। दुस्तरं प्रदरं हन्ति नीलं रक्तं सितासितम्॥ योनिशूलं कुक्षिशूलं बस्तिशूलं सुदुःसहम्। अङ्गदाहं योनिदाहमक्षिकुक्षिभवं च यत्॥ मन्ददृष्टिमश्रुपातं तिमिरं वातसम्भवम्। आध्मानानाहशूलघ्नं वातपित्तप्रकोपजित्॥ अम्लपित्तं च पित्तं च योनिरोगं विनाशयेत्। दृष्टिप्रसादजननं बलवर्णाग्निकारकम्॥ ११॥

भाषा—बड, पीपल, अर्जुन, गिलोय, अडूसा, कुटकी, पाखर, जामुन, चिरौंजी, श्योनाक, गूलर, खिरैंटी, बेत, कुचिला, कदम, रोहिड़ा और शाल प्रत्येककी कूटी हुई छाल आठ आठ तोले लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब आठ सेर जल बाकी रह जाय तब उतार लेवे, फिर उसमें घी २ सेर, आमलोंका स्वरस २ सेर, शालिचावलोंका काथ २ सेर, कल्कके लिये मुलहठी, महुएके फूल, पिण्डखजूर, दारुहलदी, जीवन्ती, कुम्भेर, काकोली, क्षीरकाकोली, लाल चंदन, सफेद चंदन, रसौत और अनंतमूल प्रत्येक तीन तीन तोले यथाविधिसे सबोंको मिलाकर घृतको सिद्ध करे। इस घीको उत्तम चिकने बासनमें भरके रख देवे। इस घृतका पान करनेसे

दुस्तर प्रदररोग, नीलप्रदर, लालप्रदर, सफेदप्रदर, कृष्णप्रदर, योनिशूल,कुक्षिशूल, बस्तिशूल, शरीरकी दाह, योनिगत दाह, नेत्रदाह, कुक्षिदाह, दृष्टिकी हीनता, अश्रुपात, वातसम्भव तिमिररोग, आध्मान, आनाह, शूल, वातपित्त, अम्लपित्त, पित्त और योनिरोग नष्ट होते हैं। दृष्टि प्रसन्न होती है, बल, वर्ण और अग्नि बढती है॥ ११॥

पुष्यानुगं चूर्णम्।

पाठा जम्ब्वाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदं रसांजनम्।अम्बष्ठकी मोचरसः समङ्गा पद्मकेशरम्॥ बाह्लीकातिविषा मुस्तं बिल्वं लोध्रं सगैरिकम्। कट्फलं मरिचं शुण्ठी मृद्विका रक्तचन्दनम्॥ कट्वङ्ग-वत्सकानन्ता धातकी मधुकार्ज्जुनम्। पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ तानि क्षौद्रेण संयोज्य पाययेत्तण्डुलाम्बुना। अर्शःसु चातिसारेषु रक्तं यच्चोपवेश्यते॥ दोषागन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत्। योनिदोषं रजोदोषं श्वेतं नीलं सपीतकम्॥ स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च तत् प्रसह्य विवर्तयेत्। चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम्॥ अम्बष्ठा दक्षिणे ख्याता गृह्णन्त्यन्ये तु लक्ष्मणाः॥ १२॥

भाषा-पाढ, जामुनके गुठलीकी मींगी, आमके गुठलीकी मींगी, भूरिछरीला, रसौत, मोईया, मोचरस, बड़ी खिरैटी, कमलकेशर, केशर, अतीस, नागरमोथा, बेल, लोध, गेरु, कायफल, काली मिरच, सोंठ, दाख, लालचंदन, श्योनाक, इन्द्रजौ, अनन्तमूल, धायके फूल, मुलहठी, अर्जुन ये सब समान भाग पुष्यनक्षत्रमें लेकर एकत्र पीसकर चूर्ण कर ले। इस चूर्णको सहतमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ पान करे। इसको पुष्यनक्षत्रसे सेवन करना आरंभ करे। यह पुष्यानुग चूर्ण बवासीर, रक्तातिसार, रुधिरविकार, बालकोंके आगन्तुक दोष, योनिदोष, श्वेत, नील, लालमिला, सफेद, पीला, लाल काला मिले रंगका और लाल रंगके प्रदरको दूर करे है यह पुष्यानुगचूर्ण आत्रेयजीकरके पूजित है॥ १२॥

प्रदरारिलोहम्।

वत्सकस्य तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत्। अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत्॥ वस्त्रपूते घनीभूते द्रव्याणीमानि

दापयेत्।समंगा शाल्मलं पाठा बिल्वं मुस्तं च धातकी॥अरुणा व्योमकं लोहं प्रत्येकं तु पलं पलम्। तिलमात्रं प्रयुञ्जीत कुशमूलपयो ह्यनु॥ श्वेतं रक्तं तथा नीलं पीतं प्रदरदुस्तरम्। कुक्षिशूलं कटीशूलं देहशूलं च सर्वगम्॥प्रदरारिरयं लोहो हन्ति रोगान् सुदुस्तरान्। आयुःपुष्टिकरश्चैव बलवर्णाग्निवर्द्धनः॥ १३॥

भाषा-कूडेकी छाल १२॥ सेर लेकर ६४ सेर जलमें पकावे जब आठ सेर जल बाकी रह जाय तब उतार लेवे, फिर उसको छानकर दूसरी बार पकावे। जब पकते पकते गाढा हो जाय तो बडी लज्जावंती, मोचरस, पाढ, वेलगिरी, नागरमोथा, धायके फूल, अतीस, अभ्रक और लोहा प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिला देवे। कुशाकी जडको जलमें पीसकर उस जलके साथ इस औषधिका सेवन करे। यह प्रदरारिलोह श्वेतप्रदर, रक्तप्रदर, नीलप्रदर, पीतप्रदर, कुक्षिशूल, कटिशूल, सर्व शरीरगत शूल और सर्व प्रकारके दुस्तर प्रदर रोगको दूर करे है। अवस्थास्थापक, पुष्टिकारक, बल और वर्ण तथा अग्निको दीपन करे है॥ १३॥

शीतकल्याणकं घृतम्।

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमं रक्तशालयः। मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका॥ बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम्। विदारी शतपुत्री च शालिपर्णी सजीवका॥ फलं त्रपुषबीजानि प्रत्यग्रं कदलीफलम्। एषामर्द्धपलान् भागान् गव्यक्षीरं चतुर्गुणम्॥ पानीयं द्विगुणं दत्त्वा घृतं प्रस्थं विपाचयेत्। प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके॥ बहुरूपं च यत्पित्तं कामलायाश्च शोणिते। अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे॥ तरुणी याल्पपुष्पा च या च गर्भं न विन्दति। अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम्॥ १४॥

भाषा-कुमोदिनी, कमल, खस, गेहू, लाल शालिधानोंके चावल, मुगवन, काकोली, कुम्भेर, मुलहठी, खिरेटी, कंधी, उत्पल, ताडका मस्तक, विदारीकंद, शतावर, शालिपर्णी, जीवक, त्रिफला, खीरेके बीज और केलेकी कची फली प्रत्येक दो दो तोले लेकर कल्क बना लेवे। गायका दूध आठ सेर, जल ४ सेर और गायका घी दो सेर लेवे। सबोंको मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे। यह घी प्रदर, रक्तगुल्म,

रक्तपित्त, हलीमक, बहुरूप, पित्तकामला, रुधिरविकार, अरुचि, जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, मद, भ्रम इन सब रोगोंको दूर करे है। जिन स्त्रियोंके अल्प पुष्प है और जो गर्भको नहीं ग्रहण करती है उनके इस घृतके प्रभावसे गर्भ रह जाता है और दिन प्रतिदिन स्त्रियोंमें प्रीति बढती है ॥ १४ ॥

प्रदरान्तको रसः ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं शुद्धवङ्गकरूप्यकम् । खर्परं च वराटं च शाणमानं पृथक् पृथक् ॥ तृतीयतोलकं ग्राह्यं लोहचूर्णं क्षिपेत्सुधीः । कन्यानीरेण संमर्द्य दिनमेकं भिषग्वरः ॥ असाध्यं प्रदरं हन्ति भक्षणान्नात्र संशयः ॥ १५ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, वंग, चांदीकी भस्म, खपरिया और कौड़ीकी भस्म प्रत्येक चार मासे, लोहेका चूर्ण तीन तोले, सबोंको एकत्र पीसकर एक दिन घीगुवारके रसमें खरल करे। इसका भक्षण करनेसे असाध्य प्रदर रोग दूर होता है १५

इति स्त्रीरोगांतर्गतप्रदररोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ योनिव्यापत्तिरोगनिदानम् ।

संख्यारूपसंप्राप्तिः ।

विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसंग्रहे । मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तवेन च ॥ जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च शृणु ताः पृथक् । सा फेनिलमुदावृत्ता रजः कृच्छ्रेण मुंचति ॥ वंध्यां नष्टार्तवां विद्याद्विप्लुतां नित्यवेदनाम् । परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग्भृशम् ॥ वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता ॥ चतसृष्वपि चाद्यासु भवंत्यनिलवेदनाः ॥ सदाहं क्षीयते रक्तं यस्याः सा लोहितक्षया । सवातमुद्गमेद्बीजं वामिनी रजसान्वितम् ॥ प्रस्रंसिनी स्रंसते तु क्षोभिता दुष्प्रजायिनी । स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्षयात् ॥ अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता । चतसृष्वपि चाद्यासु पित्तलिंगोच्छ्रयो भवेत् ॥

अत्यानन्दा न संतोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति । कर्णिन्यां कर्णिकायोनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥ मैथुनाचरणात्पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते । बहुशश्चातिचरणात्तयोर्बीजं न विंदति ॥ श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूयुक्ताऽतिशीतला । चतसृष्वपि चाद्यासु श्लेष्मलिंगोच्छ्रयो भवेत् ॥ १ ॥

भाषा-मिथ्या आहार और विहार करनेसे, आर्त्तवके दूषित होनेसे, बीजके दोषसे तथा प्रारब्धसे स्त्रियोंकी योनिमें वीस प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं ऐसा रोगसंग्रहमें कहा है । अब उनके लक्षण पृथक् पृथक् कहते हैं । जिसमेंसे झागोंयुक्त मासिक धर्म्मका रुधिर अत्यंत कष्टसे निकले उसको उदावर्त्ता योनि कहते हैं । जिसका रजोधर्म नष्ट हो गया हो उसको वंध्या कहते हैं । जिसकी योनिमें सदैव पीडा होती है उसको विप्लुता कहते हैं । जिसकी योनिमें मैथुनके समय अत्यंत वेदना हो उसको परिप्लुता कहते हैं । वातला योनि सूखी तथा कठोर होती है तथा सुई चुभानेसरीखी पीडा होती है । पहिले जो उदावृत्तादि चार योनि कहीं उनमें वातसम्बन्धी पीडा होती है और इस वातलामें वातकी अधिक पीडा होती है । जिस योनिमेंसे दाहसहित रक्त निकले उसको लोहितक्षया कहते हैं । जिसमेंसे वायु रजके साथ पुरुषके वीर्यको वाहर निकाल देवे उसको वामिनी कहते हैं । जो योनि मैथुनके समय अत्यंत घर्षित होनेसे बाहरको निकल आवे उसको स्रंसिनी कहते हैं और वह अत्यंत कष्टसे प्रसव होती है । जो रुधिरके क्षय होनेसे गर्भको गिरा देवे उसको पुत्रघ्नी कहते हैं । जो योनि अत्यंत दाह, पाक और ज्वरसंयुक्त हो उसको पित्तला कहते हैं । पहिली जो लोहितक्षयादि चार योनि कहीं उनमें पित्तके लक्षण होते हैं और पित्तलामें पित्तके लक्षण अधिक होते हैं । जो अत्यंत मैथुन करनेसेभी संतोषित नहीं होती उसको अत्यानन्दा योनि कहते हैं । जिसमें रक्त और कफसे कमलकी कर्णिकाकी समान कर्णिका होती है उसको कर्णिनी कहते हैं । जो योनि मैथुनके समय पुरुषसे पहिले स्खलित हो जाती है उसको चरणा कहते हैं । जो योनि अनेकवार मैथुन करनेसे पुरुषके पीछे स्खलित होय उसको अतिचरणा कहते हैं । ये दोनों योनि वीर्यको ग्रहण नहीं करती हैं । जो योनि चिकनी, खुजलीसहित और अत्यंत शीतल हो उसको श्लेष्मला योनि कहते हैं । पहिले जो अत्यानन्दादिक चार योनि कहीं वे कफज हैं और श्लेष्मला योनिमें कफ अधिक होता है ॥ १ ॥

स्राव और पातके लक्षण ।

आचतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः ।
ततः स्थिरशरीरः स्यात्पातः पंचमषष्ठयोः ॥ २ ॥

भाषा-गर्भधारणके दिनसे चौथे महीनेतक जो गर्भ गिरता है उसको गर्भस्राव कहते हैं । कारण उस समयतक गर्भ पतला होता है पश्चात् पांचवें और छठे महीनेके पश्चात् जो गर्भ पतित हो उसको गर्भपात कहते हैं। कारण उस अवस्थामें गर्भका शरीर स्थिर (कठिन) होता है ॥ २ ॥

गर्भ अकालमें कैसे गिरे इस विषयमें निदानपूर्वक दृष्टांत ।

गर्भोभिघातविषमाशनपीडनाद्यैः
पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ॥ ३ ॥

भाषा-जिस प्रकार वृक्षसे फल पककर तत्काल गिर जाता है उसी प्रकार चोटके लगनेसे, विषम भोजन करनेसे और पेटके दबानेसे गर्भ तत्काल पतित हो जाता है ३

मूढगर्भके लक्षण ।

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं
शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसंगम् ॥ ४ ॥

भाषा-अपने कारणोंसे वायु कुपित होकर गर्भाशयमें प्राप्त होकर गर्भकी गतिको रोक देती है उसको मूढगर्भ कहते हैं । उसके योगसे योनि और उदरादिकमें शूल होता है तथा मूत्रका अवरोध होता है ॥ ४ ॥

मूढगर्भकी आठ प्रकारकी गति ।

भुग्नोनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् । द्वारं निरुध्य शिरसा जठरेण कश्चित् कश्चिच्छरीरपरिवर्तितकुब्जदेहः ॥ एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोन्यः । पार्श्वप्रवृत्तगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा गतिरियं हि परा चतुर्धा ॥ संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीजस्तेषूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनिम् । संगी च यो भवति कीलकवत्स कीलो दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसंगी॥ गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो योनौ स्थितः स परिघः परिघेण तुल्यः ॥ ५ ॥

भाषा-दुष्टवातसे गर्भ टेढा होकर अनेक प्रकारसे योनिके मुखपर आकर अड जाता है तहां कोई गर्भ योनिके मुखको मस्तकसे रोक लेता है। कोई उदरसे योनिद्वारको रोक लेता है। कोई अपने शरीरको गोल घुमाकर कुबडेपनसे योनिद्वारको रोकता है। कोई एक हाथसे, कोई दोनों हाथोंसे योनिद्वारको रोकता है। कोई तिरछा होकर योनिद्वारको रोकता है। कोई नीचा मुख होकर योनिद्वारको रोकता है। कोई पसलियोंको टेढा करके योनिद्वारको रोकता है ऐसे आठ प्रकारसे विकृत गर्भकी गति होती है। अब दूसरे प्रकारसे जो गर्भकी चार गति होती हैं उनको कहते हैं। जैसे संकील, प्रतिखुर, परिघ और बीज। तहां जो गर्भ हाथ और पांवोंको ऊपरको करके शिरसे योनिको कीलकी समान रोक देता है उसको संकील कहते हैं। जो गर्भ हाथ और पांवोंको योनिके बाहर निकाल देवे और शरीर योनिके भीतर अटक जावे उसको प्रतिखुर कहते हैं। जो गर्भ दोनों हाथोंमें मस्तकको रखकर योनिद्वारपर अटक जाय उसको बीजक कहते हैं। जो द्वारके अर्गलकी समान योनिद्वारपर अटक जाय उसको परिघ मूढगर्भ कहते हैं ॥ ५ ॥

असाध्य मूढगर्भ और गर्भिणीके लक्षण।

अपविद्धशिरा या तु शीतांगी निरपत्रपा ।
नीलोद्धतशिरा हन्ति सा गर्भं स च तां यथा ॥ ६ ॥

भाषा-मूढ गर्भ और गर्भिणीके असाध्य लक्षण कहते हैं। जिस गर्भिणीका शिर नम गया हो अर्थात् शीर ऊपरको न उठा सके, शरीर शीतल हो गया हो, लाज जाती रही हो और कोलकी नसें नीले रंगकी हो जांय वह गर्भिणी गर्भको और गर्भ गर्भिणीको नष्ट कर देता है ॥ ६ ॥

मृतगर्भके लक्षण।

गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता ।
भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूनतांतर्मृते शिशौ ॥ ७ ॥

भाषा-गर्भ फडके नहीं, प्रसवकी पीडा न हो, शरीरका रंग काला, पीला, हरा हो जाय, श्वासमें दुर्गंध आवे और पेटमें सूजन हो ये मृत गर्भके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

गर्भमरणहेतु।

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ।
गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ ८ ॥

भाषा-माताके शोक वियोगादि जो मानसिक दुःख और प्रहार आदि जो आगन्तुक दुःख उनसे दुःखित होनेसे तथा रोगोंसे पीडित होनेसे बालक गर्भमें मर जाता है ॥ ८ ॥

असाध्य लक्षण।

योनिसंवरणं संगः कुक्षौ मक्कल्लमेव च ।
हन्युः स्त्रियं मूढगर्भा यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ ९ ॥

भाषा–जिस गर्भिणीकी योनिमें संवरण रोग हो जाय अथवा योनि सकुच जाय, गर्भ योनिद्वारपर अड जावे तथा मक्कल्लशूल उत्पन्न हो। जब वातके विकार और खांसी श्वासादि जिसमें उपद्रव हों वह मूढगर्भ गर्भिणीको नष्ट कर देता है ॥९॥

इति योनिव्यापत्तिरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ योनिव्यापत्तिरोगचिकित्सा ।

लेपक्षारादिकल्पना ।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म्म वातजित्।वस्त्यभ्यङ्गपरिषेकप्रलेपाः पिचुधारणम् ॥ वचोपकुञ्चिकाजाजीकृष्णावृषकसैन्धवम् । अजमोदां यवक्षारं चित्रकं शर्करान्वितम् ॥ पिष्ट्वा प्रसन्नयालोड्य खादेत्तद् घृतभर्जितम् । योनिव्यापत्तिहृद्रोगगुल्माशोंविनिवृत्तये ॥ गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्च परिषेचनम् । नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः॥तैलात् प्रसाधितात् कार्यः पिचुर्योनौ रुजापहः । पित्तलानि तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ॥ शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च । योन्यां बलासदुष्टायां सर्वरूक्षोष्णमौषधम् ॥ पिप्पल्या मरिचैर्म्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः । वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्य्या योनिविशोधिनी ॥ आखोर्मांसं सपदि बहुधा खण्डखण्डीकृतं तत् तैले पाच्यं भवति नियतं यावदेतन्न सम्यक् । तैलेनाक्तं वमनमनिशं योनिभागे दधाना हन्ति व्रीडाकरभगफलं नात्र संदेहबुद्धिः ॥ लोध्रतुम्बीफलालेपो योनिदार्ढ्यं करोति च । वेतसमूलनिःक्वाथक्षालनेन तथैव च ॥ वचा नीलोत्पलं कुष्ठं म-

रिचानि तथैव च । अश्वगन्धा हरिद्रा च गाढीकरणमुत्तमम् ॥१०॥

भाषा-योनिव्यापद्रोगमें वायुनाशक चिकित्सा तथा बस्ति, अभ्यंग (मालिस), परिषेक (सींचना), प्रलेप और पिचु (फाया) आदि प्रयोग करे । वच, काला जीरा, जीरा, पीपल, अडूसा, सेंधानोन, अजमोद, जवाखार और चीतेकी जड इन सबोंका चूर्ण घीमें भूनकर चीनी और सुराके मांडके साथ सेवन करनेसे योनिव्यापत्, पसलियोंकी पीडा, हृदयरोग, गुल्म और बवासीर आदि रोग दूर होते हैं । गिलोय, त्रिफला और दंती इनके काथसे योनिको सींचे तथा तगर, कटाई, कूठ, सेंधानोन और देवदारु इन सब औषधियोंका तेल बनाकर उस तेलका योनिमें फाया रखे तो योनिव्यापत् रोग दूर होता है । पित्तजनित योनिव्यापद् रोगमें सेक, अभ्यंग, पिचुक्रिया और पित्तनाशक शीतल क्रिया और स्नेहके लिये घृतप्रयोग करे । कफज योनिव्यापद्रोगमें सर्व रूखी और गरम औषधिप्रयोग करे तथा पीपल, काली मिरच, उडद, सोया, कूठ और सेंधानोन इन सबोंको एकत्र पीसकर बत्ती बनाकर योनिको शुद्ध करनेके लिये योनिमें धारण करे । चूहेके मांसके टुकडे करके उसके द्वारा तैलको पकाकर उस तैलको योनिमें लगानेसे योनिकंद रोग दूर होता है । लोध और तूम्बीके बीजोंको एकत्र पीसकर योनिमें लेप करनेसे शिथिलता दूर होकर योनि दृढ हो जाती है । इसी प्रकार बेतकी जडके काथसे योनिको धोनेसे योनि दृढ होती है । वच, नीले कमल, कूठ, काली मिरच, असगंध और हलदी इनको एकत्र पीसकर योनिमें प्रलेप करनेसे योनि दृढ होती है ॥ १० ॥

इति योनिव्यापत्तिरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ सूतिकारोगनिदानम् ।

लक्षण और उत्पत्ति ।

अंगमर्दो ज्वरः कंपः पिपासा गुरुगात्रता । शोथः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात् । सूतिकायाश्च ये रोगा जायन्ते दारुणास्तु ते ॥ ज्वरातिसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः । तन्द्रारुचिप्रसेकाद्याः कफवातामयोद्भवाः॥ कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाश्रितः । ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ १ ॥

भाषा-देहका टूटना, ज्वरका होना, कम्प हो, शरीरका भारी होना, सूजन और शूल तथा अतीसारका होना ये सूतिका रोगके लक्षण हैं। (हिन्दी जच्चा) स्त्रीके मिथ्या आहार विहार करनेसे, क्लेशके करनेसे तथा विषमभोजनके करनेसे और अजीर्णसे इत्यादि कारणोंसे अनेक दारुणरोग उत्पन्न होते हैं। ज्वर, अतीसार, सूजन, शूल, पेटका फूलना, बलकी हानि, नेत्रोंमें तन्द्राका होना, अरुचि और प्रसेक (जुखाम) आदि कफ और वातजरोग उत्पन्न होते हैं। वे रोग मांस, बल और अग्निके क्षीण होनेसे कष्टसाध्य होते हैं। ये सब रोग प्रसूतिकानामसे कहे जाते हैं। इनमें एक मुख्यरोग होता है शेष उसकेसाथ उपद्रव होते हैं ॥१॥

इति सूतिकारोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ सूतिकारोगचिकित्सा ।

पारावतशकृत्पीतं शालितण्डुलवारिणा ।
गर्भपातानन्तरोत्थरक्तस्रावनिवारणम् ॥ २ ॥

भाषा-गर्भपातके पश्चात् यदि रक्तस्राव होय तो कबूतरकी विष्ठाको शालिचावलोंके जलमें पीसकर पीवे इससे रुधिरका गिरना बंद होता है ॥ २ ॥

सूतिकादशमूलम् ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।
दासी प्रसारणी विश्वगुडूची मुस्तकं तथा ॥
निहन्ति सूतिकारोगं ज्वरं दाहसमन्वितम् ॥ ३ ॥

भाषा-शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कटाई, कटेरी, गोखरू, नीली कटसरैया, पसरन, सोंठ, गिलोय और नागरमोथा इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे ज्वर और दाहसंयुक्त सूतिकारोग दूर होता है ॥ ३ ॥

सौभाग्यशुंठी ।

कशेरुशृंगाटवराटमुस्तं द्विजीरकं जातिफलं सकोषम् । लवंगशैलेयसनागपुष्पं पत्रं वराङ्गं शठि धातकी च ॥ एला शताह्वा धनिकेथ पिप्पली सपिप्पली घोषणका शतावरी । प्रत्येकमेषामिह कर्षयुग्मं लौहं तथाभ्रं पलभागयुक्तम् ॥ महौषधीचूर्ण-

पलानि चाष्टौ पलानि त्रिंशत् सितशर्करायाः। पलानि चाष्टावपि सर्पिषश्च प्रस्थद्वयं क्षीरमिह प्रयुक्तम् ॥ पचेद्विधिज्ञः परमादरेण खादेदिदं कर्षमथार्धकर्षम्। कर्षद्वयं वापि समीक्ष्य शस्तं सौभाग्यशुण्ठी कथिता भिषग्भिः॥ अग्निप्रदा सूतिगदापहा च सर्वातिसारग्रहणीहरा च ॥ ४ ॥

भाषा—कशेरु, सिंघाडे, कमलगट्टा, नागरमोथा, जीरा, काला जीरा, जायफल, जावित्री, लौंग, भूरिछरीला, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी, कचूर, धायके फूल, इलायची, सोया, धनिया, गजपीपल, पीपल, काली मिरच और शतावर प्रत्येक दो दो तोले, लोहा चार तोले, अभ्रक चार तोले, सोंठका चूर्ण बत्तीस तोले, सफेद बूरा ३॥ सेर, घी १ सेर, गायका दूध ८ सेर। यथाविधिसे इसको पकाकर प्रतिदिन इसमेंसे एक तोला या आधा तोला अथवा दो तोले प्रमाण भक्षण करे। यह सौभाग्यशुंठीपाक अग्निजनक, सूतिकारोगनाशक, सर्व प्रकारके अतिसार और संग्रहणीरोगको दूर करे है ॥ ४ ॥

सूतिकारिरसः।

रसं गन्धं मृताभ्रं च मृतताम्रं च तुल्यकम्। चूर्णितं मर्दयेद्यत्नाद्रेकपर्णीरसेन च ॥ छायाशुष्का गुटी कार्या कलायसदृशी ततः। मात्रया कटुना देया सूतिकातङ्कनाशिनी ॥ ज्वरतृष्णारुचिहरी शोथघ्नी वह्निदीपनी ॥ ५ ॥

भाषा—शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, तांबेकी भस्म और अभ्रककी भस्म ये सब समान भाग लेकर मूसाकानीके रसमें खरल करे। फिर मटरकी बराबर गोलियां बनाकर छायामें सुखा लेवे। इसका सेवन करनेसे सूतिकारोग, ज्वर, तृषा, अरुचि, सूजन और मंदाग्नि नष्ट होती है ॥ ५ ॥

क्वाथदुग्धादिक्रियाः।

मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च। अश्मन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ वृक्षादनी पयस्या च तथैवोत्पलशारिवा। अनन्तशारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥ बृहतीद्वयकाश्मर्यक्षीरिशुङ्गास्त्वचो घृतम्।पृथक्पर्णी बला शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुयष्टिका॥ यथाक्रमं प्रयोक्तव्या रक्तस्रावे पयोऽन्विताः। कपित्थ-

बृहतीबिल्वपटोलेक्षुनिदिग्धिकाः॥ मूलानि क्षीरपिष्टानि दापये- दष्टमे भिषक्। नवमे मधुकानन्ता पयस्या शारिवाः पिबेत्॥ पयस्तु दशमे शुण्ठ्याः शृतं शीतं प्रशस्यते। सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं देवदारु च॥ एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् च प्रशाम्यति ॥ कशेरुशृङ्गाटकजीवनीयपद्मोत्पलैरण्डशतावरी- भिः। सिद्धं पयः शर्करया विमिश्रं संस्थापयेद्गर्भमुदीर्णवेगम्॥ कशेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्गपर्णीमधुकं सशर्करम्। सशू- लगर्भस्रुतिपीडिताङ्गना पयोविमिश्रं पयसान्नभुक् पिबेत्॥ गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां चापि शुष्यताम् । सितामधुक- काश्मर्यैर्हितमुत्थापने पयः॥ ६॥

भाषा–पहिले महीनेमें मुलहठी, शागोनके बीज, क्षीरकाकोली और देवदारु; दूसरे महीनेमें कुलथी, काले तिल, मजीठ और शतावर; तीसरे महीनेमें गिलोय, क्षीरकाकोली, नीलोत्पल और अनन्तमूल; चौथे महीनेमें अनंतमूल, कालीसर, रायसन, भारंगी और मुलहठी; पांचवें महीनेमें कटाई, कटेरी, कुम्मेर, वडके अंकुर, दालचीनी और घी; छठे महीनेमें पृश्निपर्णी, खिरेटी, सहजनेके बीज, गोखरु और मुलहटी और सातवें महीनेमें सिंघाडे, मृणाल, दाख, कशेरु, मुलहठी और चीनीके क्वाथमें दूध मिलाकर पान करनेसे गर्भिणीकी पीडा और रक्तस्राव दूर होता है। आठवें महीनेमें कैथ, कटाई, पटोल, ईख और कटेरी इन सबोंकी जडको दूधमें पीसकर पान करनेसे गर्भिणीकी पीडा और रक्तस्रावादि दूर होते हैं। नवमें महीनेमें मुलहठी, अनंतमूल, क्षीरकाकोली और कालीसर ये प्रत्येक दो दो तोले लेकर पावभर दूध और एकसेर जलमें औटावे जब औटते औटते पावभर बाकी रह जाय तब उतारकर छान लेवे। इस क्वाथका पान करनेसे गर्भके उपद्रव दूर होते हैं। दशमें महीनेमें यदि गर्भशूल होय तो सोंठको दूधमें औटाकर गर्भिणीको पिलावे अथवा सोंठ, मुलहठी और देवदारुको दूधमें औटा- कर पिलावे। इस प्रकार करनेसे पीडा दूर होकर गर्भ स्वस्थ हो जाता है। जो गर्भ- स्रावके लक्षण मालूम होय तो कशेरु, सिंघाडे, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगवन, मषवन, जीवंती, मुलहठी, कमलकेशर, कमल, अंडकी जड और शतावर इन सबोंको दूधमें औटाकर चीनी मिलाकर पान करनेसे गर्भस्रावादि उपद्रव दूर होते हैं तथा कशेरु, सिंघाडे, कमल, कुमुद, मुगवन,

मुलहटी और चीनी इनको दूधमें पीसकर पीवे। इससे गर्भस्राव और गर्भशूल नष्ट होता है। इसपर दूधके साथ भोजन करे। यदि वातसे गर्भ सूखने लगे तो चीनी, कुम्मेर और मुलहटीको दूधमें औटाकर पीवे तो शुष्कगर्भ पुष्ट होता है ॥ ६ ॥

एरण्डादिः।

एरण्डमूलममृता मंजिष्ठा रक्तचंदनम्।
दारुपद्मयुतः क्वाथो गर्भिण्या ज्वरनाशनम् ॥ ७ ॥

भाषा-अंडकी जड, गिलोय, मजीठ, लालचंदन, देवदारु और पद्माख इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे गर्भिणी स्त्रीका ज्वर दूर होता है ॥ ७ ॥

ह्रीबेरादिः।

ह्रीबेरारलुरक्तचन्दनबलाधन्याकवत्सादनी-
मुस्तोशीरयवासपर्पटविषक्वाथं पिबेद्गर्भिणी।
नानावर्णरुजातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामयेषूत्तमः ॥ ८ ॥

भाषा-सुगंधवाला, श्योनाक, लालचंदन, खिरैटी, धनिया, गिलोय, नागरमोथा, खस, जवासा, पित्तपापडा और अतीस इनका क्वाथ बनाकर गर्भिणीस्त्रीको पिलानेसे अनेक प्रकारका अतीसार, रक्तस्राव, ज्वर और सूतिकारोग दूर होता है॥८॥

गर्भचिंतामणिरसः।

रसं तालं तथा लोहं प्रत्येकं कर्षमात्रकम्। कर्षद्वयं तथा चाभ्रं कर्पूरं वङ्गताम्रकम् ॥ जातीफलं तथा कोषं गोक्षुरं च शतावरी। बलातिबलयोर्मूलं प्रत्येकं तालकं शुभम् ॥ वारिणा वटिका कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः। सन्निपातं निहन्त्याशु स्त्रीणां चैव विशेषतः ॥ गर्भिण्या ज्वरदाहं च प्रदरं सूतिकामयम् ॥ ९ ॥

भाषा-पारा १ कर्ष, हरिताल १ कर्ष, लोहा १ कर्ष, अभ्रक २ कर्ष, कपूर १ तोला, वंग १ तोला, तांबा १ तोला, जायफल १ तोला, जावित्री १ तोला, गोखरु १ तोला, शतावर १ तोला, खिरेंटी १ तोला और कंघीकी जड १ तोला लेवे। सबोंको एकत्र पीसकर जलके योगसे दो दो रत्तीकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली खावे। इससे सन्निपात, गर्भिणी स्त्रियोंका ज्वर, दाह, प्रदर और सूतिकारोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

गर्भपीयूषवल्लीरसः ।

सूतं गन्धं तथा स्वर्णं लोहं रजतमाक्षिकम् । हरितालं वङ्गभस्माप्यभ्रकं समभागिकम्॥भावना खलु दातव्या रसैरेषां पृथक् पृथक् । ब्राह्मी रास्ना भृङ्गराजपर्पटं दशमूलकम्॥ सप्तधा भावयेद्वैद्यो गुंजामानं वटीं चरेत् । गर्भपीयूषवल्ल्याख्यो गर्भिणीरोगहृत्परः ॥ १० ॥

भाषा–पारा, गंधक, सोना, लोहा, चांदी, सोनामुखी, हरिताल, वंग और अभ्रक ये सब समान भाग लेवे, सबोंको एकत्र पीसकर ब्राह्मी, रायसन, भांगरा, पित्तपापडा और दशमूल प्रत्येकका रस (अभावे काथ) में पृथक् पृथक् सात सात वार भावना देकर एक एक रत्तीकी गोलियां बना लेवे । यह गर्भपीयूषवल्लीरस गर्भिणीके सब रोगोंको दूर करे है ॥ १० ॥

गर्भविलासतैलम् ।

विदारी दाडिमं पत्रं रजनी च फलत्रयम् । शृङ्गाटकस्य पत्रं च जातीकुसुममेव च ॥ वरी नीलोत्पलं पद्म तैलमेतैः पचेत्सुधीः । एतद्गर्भविलासाख्यं गर्भसंस्थापनं परम् ॥ निहन्ति गर्भशूलं च शोणितस्रुतिसंहरम् । परं वृष्यतरं ह्येतत् काशीराजेन निर्मितम् ॥ ११ ॥

भाषा–विदारीकंद, अनारके पत्ते, हलदी, त्रिफला, सिंघाडेके पत्ते, चमेलीके फूल, शतावर, नीलोत्पल और कमल इन सब औषधियोंके द्वारा विधिपूर्वक तैलको सिद्ध करे । इसको गर्भविलास कहते हैं । यह तैल गर्भको स्थापन करे है तथा गर्भशूल और रुधिरस्रावको दूर करे है । यह अत्यंत वृष्य है । यह काशीराज (दिवोदास) ने कहा है ॥ ११ ॥

प्रसवकारकयोगाः ।

पाठालाङ्गलिसिंहास्यमयूरकजटैः सह । नाभिबस्तिभगालेपात् सुखं नारी प्रसूयते ॥ मातुलुङ्गस्य मूलानि मधूकं मधुसंयुतम् । घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ पुटदग्धसर्पकंचुकमसृणमसीकुसुमसारसहिताक्षी । झटिति विशल्या जायते गर्भिणी मूढगर्भापि ॥ स्नुहीक्षीरं तथा स्तोकं गर्भिण्याः शिरसि क्षिपेत् । मृतगर्भं तदा सूते गर्भिणी रमणी द्रुतम् ॥१२॥

भाषा-पाढकी जड, कलिहारीकी जड, अडूसेकी जड और चिरचिटेकी जड इन सबोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर नाभि, बस्ति और योनिपर लेप करनेसे अथवा बिजौरेकी जड और मुलहठीको घृत और सहतके साथ पान करनेसे गर्भिणी सुखपूर्वक प्रसव होती है। सांपकी कैंचलीको अन्तर्धूममें जलाकर उस भस्मको सहतमें मिलाकर गर्भिणी स्त्रीके नेत्रोंमें अंजन लगावे तो प्रसवकी पीडा दूर होती है। गर्भिणीके मस्तकमें कुछ थोडासा थूहरका दूध डालनेसे मृतगर्भ बाहर निकलता है ॥ १२ ॥

इति सूतिकारोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ स्तनरोगनिदानम् ।

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा दोषः प्राप्य स्तनौ स्त्रियः। प्रदूष्य मांसरुधिरे स्तनरोगाय कल्पते ॥ पंचानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना । लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ १ ॥

भाषा-प्रसूत स्त्रीके वातादि दोष दूधसंयुक्त अथवा दूधहीन स्तनोंमें प्राप्त हो मांस और रुधिरको दूषित करके स्तनरोगको उत्पन्न करते हैं। वात, पित्त, कफ, सन्निपात और आगन्तुज इन भेदोंसे स्तनरोग पांच प्रकारका है इसके लक्षण रक्तज विद्रधिको छोडकर बाह्यविद्रधिकी समान जानने ॥ १ ॥

स्तन्यदुग्धरोग ।

गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम् । क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ॥ कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् । कट्वम्ललवणं पीतराजिमत्पित्तसंज्ञितम् ॥ कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सुपिच्छलम् । द्विलिंगं द्वन्द्वजं विद्यात् सर्वलिंगं त्रिदोषजम् ॥ २ ॥

भाषा-अनेक प्रकारके भारी आदि अन्नको खानेसे वातादि दोष दूषित होकर धात्री (धाय या माता) के दूधको दुष्ट करते हैं तब उस दूधको पीनेवाले बालकके अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। जो दूध स्वादमें कषैला और जलमें डालनेसे जलके ऊपर उतराने लगे उसको वातदूषित जानना। जो दूध कटु, खट्टा और खारा हो तथा जिसमें पीले रंगकी लकीरें पडती हैं उसको पित्तसे दूषित

जानना। जो दूध गाढा, पिच्छिल और जलमें डालनेसे डूब जाय उस दूधको कफसे दूषित जानना । जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिलें उसे द्वंद्वज और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उस दूधको त्रिदोषदूषित जानना ॥ २ ॥

इति स्तनरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ स्तनरोगचिकित्सा ।

क्वाथलेपादिक्रिया ।

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद्विधा त्रिधा च विहितं बहुधा विधानम् । आमे विदह्यति तथैव गते च पाकं तस्याः स्तनौ सततमेव च निर्गृहीतम्॥विशालामूललेपेन हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम् । निशाकनकफलाभ्यां लेपश्चातिस्तनार्त्तिहा ॥ कुकुन्दरमेचकमूलचर्वितमास्यविधारितं जयति । सप्ताहात्स्तनकाशतुल्यतैकान्ततः कुरुते ॥ तन्मूलं धावयित्वा धारयेन्मुखे रसं पिबेच्च। निर्वाप्य लौहं पिप्पल्याः पीतः क्वाथः स्तनार्तिजित्॥ क्रियां शीतां प्रयुंजीत न स्तनावुपनाहयेत्॥ पक्के च दुग्धहरणीः परिहृत्य नाडीः कृष्णां च चूचुकयुगं निदधीत शस्त्रम् ॥ महिषीभवनवनीतव्याधिबलोग्रा तथैव नागबला । पिष्ट्वा मर्दनयोगात्पीनं कठिनस्तनं कुरुते ॥ ३ ॥

भाषा—जो स्त्रियोंके स्तन सूज जांय तो दो वार या तीन वार अथवा बहुत वार उनपर प्रलेपादि तथा अन्यान्य चिकित्सा करे । स्त्रियोंके स्तनगत अपक्व अथवा पक्व शोथकी चिकित्सा करते समय सदैव स्तनोंमेंसे दूध निकाल देवे । इसमें कदापि भूले नहीं । इन्द्रायनकी जडको जलमें पीसकर लेप करनेसे सर्व प्रकारके स्तनरोग दूर होते हैं । हलदी और धतूरेके फलोंको एकत्र पीसकर स्तनपर प्रलेप करनेसे सर्व प्रकारकी स्तनोंकी पीडा दूर होती है । कुकरौंदेकी जड या सहजनेकी जडको जलमें धोकर दातोंसे चाबकर रसको मुखमें धारण करनेसे या पीनेसे सात दिनमेंही सर्व प्रकारके स्तनरोग दूर हो जाते हैं । पीपलके क्वाथमें लोहेको बुझाकर पान करनेसे स्तनोंकी पीडा दूर होती है । स्तनरोगमें सदैव शीतल क्रियाका प्रयोग

करे, कदापि उपनाह स्वेद न देवे। स्तन पक जांय तो दुग्धहरणी नाडीको बचाकर कुचोंके कृष्ण मुखपर नस्तर लगावे। भैंसका माखन, कूठ, खिरैटी, बच और गंगेरन इन सब औषधियोंको एकत्र पीसकर स्तनोंपर मलनेसे दोनों स्तन पुष्ट और कठिन हो जाते हैं ॥ ३ ॥

श्रीपर्णीतैलम्।

श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तथोपरि। तूलकेन घृतं कुर्यात् पतितावुत्थितौ स्तनौ ॥ शीतार्त्तिके स्तनरोगे पीडा भवति दारुणा। मूलमेरण्डवृक्षस्य शीततोयेन पेषयेत् ॥ कफे प्रतिविषा कुष्ठं तोयलेपः सुखावहः। षष्टी निम्बहरिद्रा च निर्गुण्डी धातकी समम् ॥ चूर्णं स्तनव्रणे देयं रोपणं कुरुते भृशम् ॥ ४ ॥

भाषा—कुम्मेरके क्वाथ और कल्कके द्वारा तैलको पकाकर दोनों स्तनोंको मलनेसे अथवा घीको पकाकर स्तनोंको मलनेसे गिरे हुए स्तन उठ आते हैं। शीतार्त्तस्तनरोगमें दारुण पीडा उत्पन्न होती है। अंडवृक्षकी जडको शीतल जलमें पीसकर स्तनोंपर प्रलेप करनेसे शीघ्रही ऊपरोक्त रोग दूर होता है। फस्त खुलवानेसेभी स्तनरोग शांत होता है। कफजन्य स्तनरोगमें अतीस और कूठको जलमें पीसकर स्तनोंपर प्रलेप करे। मुलहठी, नीमकी छाल, हलदी, संभालू और धायके फूल ये सब समान भाग ले चूर्ण कर घावमें बुरके तो स्तनोंके घाव भर जाते हैं ॥ ४ ॥

क्वाथप्रलेपतैलादिक्रिया।

वचोदुम्बरजाश्वत्थच्युतमर्जुनकत्वचः। जलैश्चतुर्गुणैः क्वाथं पादशेषं समुद्धरेत् ॥ तेन प्रक्षालयेन्नित्यं व्रणं पूयान्वितं स्तने। स्तनरुजा प्रशाम्यति शोणितार्कविधावनात् ॥ आकाशस्तोपलं भृंगी सर्पाक्षी तिलपुष्पकम्। लांगली मेघनादं च जलेन सह लेपयेत् ॥ अपक्के सर्वदोषोत्थे स्तनपीडाहरं भवेत्। बला चातिबला कुष्ठं वचाचूर्णं विलेपयेत् ॥ महिषीनवनीतेन स्तनपीडा स्थिरा भवेत्। मुण्डीमूलं दशपलं जले पच्याच्चतुर्गुणे ॥ अर्धशेषं हरेत्क्वाथं क्वाथार्द्धं तिलतैलकम्। तैलशेषं भवेत्तच्च नस्ये पाने च दापयेत् ॥ पतितं यौवनं स्त्रीणां मासादुत्तिष्ठति स्वयम् ॥ ५ ॥

भाषा—वच, गूलरकी छाल, पीपलकी छाल, आमकी छाल और अर्जुनकी

छाल ये सब समान भाग ले चौगुने जलमें पकावे। जब चौथा भाग जल शेष रहे तब उतारकर छान लेवे। इस क्राथसे राधसहित स्तनोंके व्रणोंको धोनेसे विशेष लाभ होता है। बरफ, अतीस, सर्पाक्षी, तिलके फूल, कलिहारी और चौलाई इनको जलमें पीसकर प्रलेप करनेसे सर्वदोषजात अपक्वस्तनरोग दूर हो जाता है। खिरैटी कंघी, कूठ, वच इनको एकत्र पीसकर भैंसके माखनमें मिलाकर प्रलेप करनेसे स्तनोंकी पीडा शांत होती है। गोरखमुंडीकी जड १० पल, पाकके लिये जल ४० पल, शेष २० पल और तिलका तेल १० पल, सबोंको मिलाकर पकावे जबतक तैल शेष न रहे तबतक पकाता रहे। इस तेलका नस्य और पानमें व्यवहार करनेसे स्त्रियोंके गिरे हुए स्तन फिर एक महीनेमें उठ आते हैं॥ ५॥

श्यामाद्यतैलम्।

श्यामा निशा बला लाजा लवणं क्राथयेत्समम्। तोये चतुर्गुणे पाच्यं पादशेषं समाहरेत्॥ तिलतैलं क्राथपादं तैलार्द्धं माहिषं घृतम्। स्नेहशेषं पचेत्तैलं नस्यैश्च मासमात्रकैः॥ बालास्त्री-वृद्धनारीणां यौवनं कुरुते ध्रुवम्॥ काशीशतुरगगंधासावरगज-पिप्पलीविपक्केन। तैलेन यान्ति वृद्धिं स्तनव्रणवरांगलिंगानि॥ प्रथमर्तौ विडंगं स्त्री नस्यं कुर्यात् स्तनौ स्थिरौ। दीपास्यभ-स्मतास्यानां येषान्नवहुलौ स्तनौ॥ घोलेन माधवीमूलं पीतं स्त्रीमध्यकार्श्यकृत्॥ ६॥

भाषा–तिलका तेल चार सेर, भैंसका घी २ सेर, क्राथके लिये श्यामलता, हलदी, खिरैटी, खीलें और सेंधानोन ये सब औषधि १२॥ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर; जब केवल स्नेह बाकी रहे तब उतार लेवे। इस तेलका एक महीनातक नास लेनेसे वृद्धा स्त्रीभी फिरसे यौवनवती हो जाती है। हीराकसीस, असगंध, लोध और गजपीपलके साथ तेलको पकाकर नास लेनेसे स्त्रियोंके स्तन, कर्ण और योनि बढती है। प्रथम ऋतुकालमें स्त्रियें वायविडंगका नास लेवे तो उनके दोनों स्तन बहुत दिनोंतक दृढ रहते हैं। दीपकके मुखकी भस्मके द्वारा नास लेनेसे स्त्रियोंके दोनों स्तन ऊंचे हो जाते हैं। माधवीलताकी जडको घोलमें पीसकर पान करनेसे स्त्रियोंके मध्यदेश क्षीण हो जाते हैं और स्तन बढ जाते हैं॥ ६॥

स्तन्यरोगहरदशमूलादिक्राथः।

तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलीजलं पिबेत्। पित्तदुष्टेऽमृता भीरु

पटोलं निम्बचन्दनम् ॥ धात्री कुमारश्च पिबेत्काथं पीत्वा सुसाधितम् । कफदुष्टे घृतं पेयं यष्टीसैन्धवसंयुतम् ॥ द्वन्द्वजे द्वन्द्वशः कुर्य्यात् सर्वजे सर्वशः क्रमम् । शतावरी क्षीरपिष्टा पीता स्तन्यविवर्द्धिनी ॥ कवोष्णां कणया पीतं क्षीरं वा क्षीरवर्द्धनम् । पीता क्षीरविदारी वा क्षीरेण क्षीरवर्द्धिनी ॥ ७ ॥

भाषा-वातसे दूषित स्तन्यरोगमें दशमूलका क्वाथ; पित्तसे दूषित स्तन्यरोगमें गिलोय, शतावर, पटोल, नीम और चन्दनका क्वाथ धाय और बालकको पिलावै; कफसे दूषित स्तन्यरोगमें मुलहटी और सेंधानोन मिलाकर घृतपान करे; द्वन्द्वजमें दो दो दोषोंकी मिली हुई औषधि और त्रिदोषजमें तीनों दोषोंकी मिली हुई औषधि देनी चाहिये । शतावरको दूधमें पीसकर पान करनेसे स्तनोंमें दूध बढता है या मंदोष्ण दूधके साथ पीपलके चूर्णका पान करनेसे दूध बढता है अथवा विदारीकंदको दूधके साथ पान करनेसे स्तनोंमें दूध बढता है ॥ ७ ॥

इति स्तनरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ बालरोगनिदानम् ।

बालकका त्रिविध कथन ।

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्त्तनः ।
स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः ॥ १ ॥

भाषा-पहिले दूधको पीनेवाले, दूसरे दूध और अन्नको खानेवाले और तीसरे अन्नको खानेवाले होते हैं । दूध और अन्नके दूषित न होनेसे बालक निरोगी रहते हैं । दूध और अन्नके दूषित होनेसे बालक रोगी हो जाते हैं ॥ १ ॥

वातदूषित दूधके लक्षण ।

वातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन्वातगदातुरः ।
क्षामस्वरः कृशांगः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥ २ ॥

भाषा-जो बालक वातदूषित दूधको पीता है वह वातके रोगोंसे पीडित होता है, उसका स्वर क्षीण हो जाता है, शरीर कृश हो जाता है तथा मल, मूत्र और अधोवायुका अवरोध होता है ॥ २ ॥

पित्तदूषित दूधके लक्षण ।

स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान् ।
तृष्णालुरुष्णसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन् ॥ ३ ॥

भाषा-जो बालक पित्तदूषित दूध पीता है उसको पसीना अधिक आता है, मल पतला उतरता है, कामला और पित्तके रोगोंसे पीडित होता है, तृषा अधिक लगती है और उसका सर्व शरीर गरम रहता है ॥ ३ ॥

कफदूषित दूधके लक्षण ।

कफदुष्टं पिबन् क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् ।
निद्रार्दितो जडः शूनः शुक्लाक्षश्छर्दनः शिशुः ॥ ४ ॥

भाषा-जो बालक कफदूषित दूध पीता है उसके मुखसे लार अधिक गिरती है, वह कफके रोगोंसे पीडित रहता है, निन्द्रा अधिक आती है, शरीरमें जडता होती है, सूजन होती है, नेत्र सफेद होते हैं और वमन होती है ॥ ४ ॥

बालकोंकी अंतर्गत पीडा जाननेके उपाय ।

शिशोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम् । स यं स्पृशेद् भृशं देशं यत्र च स्पर्शनाक्षमः॥तत्र विद्याद्रुजं मूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात् । कोष्ठे विबंधवमथुस्तनदंशांत्रकूजनैः ॥ आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि । वस्तौ गुह्ये च विण्मूत्रसंगो त्रासदिगीक्षणैः ॥ स्रोतांस्यंगानि संधीश्च पश्येद्यत्नान्मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥

भाषा-अब जो बालक बोल नहीं सकते उनके अन्तर्गत रोगोंके जाननेका उपाय कहते हैं । बालकोंके रोनेसे कम या ज्यादे पीडा जाननी अर्थात् बालक सहजसे रोवे तो कम और बहुत जोरसे चिल्लाकर रोवे तो अधिक पीडा है ऐसा जानो । वह बालक जिस स्थानमें हाथ लगाकर रोवे अथवा उस स्थानमें अन्य किसीके हाथ लगानेसे रो पडे तो उसके उसी स्थानमें पीडा जाननी । बालक नेत्र मीचे तो उसके मस्तकमें पीडा जाननी । मलरोध, वमन, माताके स्तनको काटना, आंतोंका सूजना, अफारेका होना, पीठका नवना और पेटका उछलना ये लक्षण होय तो बालकके पेटमें पीडा जाननी । जो बालककी बस्ति और गुदामें पीडा होय तो मलमूत्रका अवरोध और वह बालक डरकर चारों ओरको देखता है । इन लक्षणोंके अतिरिक्त बालकके कान, नाक, मुख, नेत्र आदि स्रोतोंको, हाथ पांव आदि अंगोंको और सम्पूर्ण संधियोंको यत्नपूर्वक वारंवार देखकर रोगोंका निश्चय करो॥५॥

कुकूणरोगके लक्षण।

कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि। जायते तेन नेत्रं च कण्डूरं च स्रवेन्मुहुः॥ शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासाविघर्षणम्। शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः॥ ६॥

भाषा–बालकोंके नेत्रके पलकोंमें दूधके दोषसे कुकूणरोग उत्पन्न होता है। उसके योगसे नेत्र खुजाते हैं और उनमेंसे वारंवार पानी बहे तथा ललाट, नेत्र और नाकको घिसे, सूर्यके तेजको न देख सके और नेत्रोंको खोलने और बंद करनेमें असमर्थ होता है॥ ६॥

पारिगर्भिकके लक्षण।

मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तनं प्रायः पिबन्नपि। कासाग्निसादवमथुतंद्राकार्श्यारुचिभ्रमैः॥ युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः पारिगर्भिकम्। रोगं परिभवाख्यं च दद्यात्तत्राग्निदीपनम्॥ ७॥

भाषा–प्रायः गर्भिणी माताका दूध पीनेसे बालकके खांसी, मंदाग्नि, वमन, तन्द्रा, अन्नमें अरुचि, शरीरमें दुर्बलता और भ्रांति होती है तथा पेट बढ जाता है। इस रोगको पारिगर्भिक रोग कहते हैं अथवा परिभव रोग कहते हैं। इसमें अग्निको दीपन करनेवाली औषधियोंके द्वारा चिकित्सा करे॥ ७॥

तालुकंटकके लक्षण।

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम्। तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते॥ तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद् द्रवम्। तृडक्षिकंठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः॥ ८॥

भाषा–तालुवेके मांसमें कफ कुपित होकर तालुकण्टकरोगको उत्पन्न करे है। इसमें तालुके ऊपरका भाग नीचे आ जाता है और मस्तकमें गड्ढा पड जाता है, इसके योगसे बालक दूधको नहीं पीता, जो कभी पीवे तो अत्यन्त कष्टसे, मल पतला हो, तृषा हो, नेत्र कंठ और मुखमें पीडा हो, गरदन झुकीसी जाय और दूधको पीकर वमन कर दे॥ ८॥

महापद्मविसर्पके लक्षण।

विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः। पद्मवर्णो महापद्मो रोगदोषत्रयोद्भवः॥ शंखाभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं व्रजेत्॥ ९॥

भाषा-बालकोंके वस्ति (पेडू) और मस्तकमें महापद्म विसर्प उत्पन्न होता है वह प्राणनाशक है। उसका आकार और वर्ण कमलकी समान होता है और त्रिदोषजनित है। वह कनपटीमें उत्पन्न होकर हृदयतक चला जाता है तथा हृदयमें उत्पन्न होकर गुदातक चला जाता है ॥ ९ ॥

और जो बालकोंके विकार होते हैं उनको कहते हैं ।

क्षुद्ररोगे च कथिते अजगल्यहिपूतने । ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेरिताः॥ बालदेहेपि ते तद्वद्विज्ञेयाः कुशलैः सदा॥१०॥

भाषा-क्षुद्ररोगोंमें जो अजगल्लिका और अहिपूतना कहे हैं वैसी बालकोंके होते हैं और ज्वरादिकरोग जो बडे मनुष्योंको होते हैं वे सबभी बालकोंको होते हैं। ऐसे कुशलवैद्योंको जानना योग्य है ॥ १० ॥

सामान्यग्रहजुष्टके लक्षण ।

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात्त्रस्यति रोदिति । नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ॥ ऊर्द्धं निरीक्षते दन्तान् खादेत्कूजति जृम्भते । भ्रुवौ क्षिपति दन्तोष्ठं फेनं वमति चासकृत् ॥ क्षामोऽतिनिशि जागर्त्ति शूनां गोभिन्नविट्स्वरः । मांसशोणितगन्धिश्च न चाश्नाति यथा पुरा ॥ सामान्यग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥ ११ ॥

भाषा-क्षणमें बालक विकल हो जाय, क्षणमें भयभीत होकर रोने लगे, नखून और दांतोंसे अपने और माताके शरीरको विदारण करे, ऊपरकी ओर देखे, दांतोंको चावे, किल्ली मारे, जम्भाई लेवे, भौंह दांत और होठोंको चलाता रहे, वारंवार मुखसे झाग डाले, अत्यन्त कृश हो जावे, रात्रिमें जागता रहे, शरीरमें सूजन हो, मल पतला उतरे, स्वर मंद हो जाय, शरीरमें रुधिर और मांसकी समान दुर्गंध आवे, पहिलेकी अपेक्षा भोजन कम करे अर्थात् भूंख घट जाय ये सामान्यग्रहजुष्ट बालकके लक्षण कहे। अब विशेष ग्रहग्रसित बालकके लक्षण कहते हैं ॥ ११ ॥

स्कन्दग्रहगृहीतके लक्षण ।

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः स्यन्दनकंपनम् ।
अर्द्धदृष्ट्या निरीक्षेत वक्रास्यो रक्तगंधिकः ॥

दन्तान् खादति वित्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति ।
स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चाल्पमेव च ॥ १२ ॥

भाषा-बालककी एक आंखमेंसे पानी बहे, एक ओरका अंग फडके और कांपे, आधी दृष्टिसे देखे, मुख तिरछा हो जावे, शरीरमें रुधिरके समान दुर्गंध आवे, दांतोंको चावे, शरीर शिथिल हो जाय, माताके दूधको नहीं पीवे और थोडा रोवे ये स्कंदग्रहगृहीत बालकके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

स्कन्दापस्मारके लक्षण ।

नष्टसंज्ञो वमेत्फेनं संज्ञावानतिरोदिति ।
पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ १३ ॥

भाषा-जो बालक बेहोश हो जाय, मुखसे झागोंको गेरे, होस होनेपर अत्यंत जोरसे रोवे तथा जिसके शरीरमें राध और रुधिरकी समान बास आवे उसको स्कन्दापस्मार ग्रहकरके ग्रसित जानना ॥ १३ ॥

शकुनिग्रहके लक्षण ।

स्रस्तांगो भयचकितो विहंगगन्धिः संस्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात् । स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥ १४ ॥

भाषा-जिसका शरीर शिथिल हो, जो भयसे चकित हो जाय, जिसके शरीरमें पक्षीकी समान गंध आवे, चहुँ ओर व्रणोंसे पीडित हो, उन व्रणोंमें स्राव, दाह और पाक हो उस बालकको शकुनिग्रहग्रसित जानना ॥ १४ ॥

रेवतीग्रहका लक्षण ।

व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पंकगंधमसृक् स्रवेत् ।
भिन्नवर्चा ज्वरो दाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ १५ ॥

भाषा-जिसके शरीरमें व्रण और फोडे हों, उनमेंसे रक्त बहे, उसमें कीचकी समान दुर्गंध आवे, मल पतला हो, ज्वर और दाह हो उस बालकको रेवतीग्रहसे पीडित जानना ॥ १५ ॥

पूतनाग्रहके लक्षण ।

नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नः स्रस्तः पूतनया शिशुः ।
अतिसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् ॥ १६ ॥

भाषा-जिस बालकको पूतना ग्रह ग्रहण करे है उसके अतीसार, ज्वर और तृषा होती है, तिरछी दृष्टिसे देखे, रोवे, निद्रा न आवे, विह्वल हो जाय और शिथिल हो जाता है ॥ १६ ॥

अंधपूतनाके लक्षण ।

छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागंधोऽतिरोदनम् ।
स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च अन्धपूतनया भवेत् ॥ १७ ॥

भाषा-जिस बालकको अंधपूतना ग्रहण करती है उसके वमन, खांसी, ज्वर, तृषा और शरीरमें चर्बीकी समान गंध होती है तथा वह बालक बहुत रोता है, दूध नहीं पीता और उसको दस्त होते हैं ॥ १७ ॥

शीतपूतनाग्रहके लक्षण ।

वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगो विगंधिता ।
छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः ॥ १८ ॥

भाषा-जिस बालकके शीतपूतना ग्रहण करती है । वह कांपे, खांसे, क्षीण होजाय, नेत्ररोगोंसे पीडित हो, उसके शरीरमें दुर्गंध आवे तथा वमन और अतिसारसे दुःखित होता है ॥ १८ ॥

मुखमण्डिकाग्रहके लक्षण ।

प्रसन्नवर्णवदनः शिराभिरिव संवृतः ।
मूत्रगन्धिश्च बह्वाशी मुखमण्डिकया भवेत् ॥ १९ ॥

भाषा-जिसको मुखमण्डिका ग्रह ग्रहण करता है उसका मुख प्रसन्न और उज्ज्वल वर्ण हो जाता है और वह बालक उभरी हुई नसोंसे व्याप्त हो जाय, शरीरमें मूत्रकी समान दुर्गंध आवे और अत्यंत भक्षण करे ॥ १९ ॥

नैगमेयग्रहके लक्षण ।

छर्दिस्यन्दनकण्ठास्यशोषमूर्च्छाविगन्धिताः ।
ऊर्ध्वं पश्येद्दशेद्दन्तान्नैगमेयग्रहं वदेत् ॥ २० ॥

भाषा-जिसको नैगमेय ग्रह ग्रहण करता है वह बालक वमन और कम्पयुक्त होता है, उसका कंठ और मुख सूखा रहता है, वह मूर्छित रहता है, उसके शरीरमें दुर्गंध आती है, वह ऊपरको देखता रहता है और दांतोंको चाबता है ॥२०॥

क्षुद्ररोगलक्षण ।

वातेनाध्मायिता नाभिः सरुजा तुण्डिरुच्यते । बालस्य गुदपा-

काख्यो व्याधिः पित्तेन जायते ॥ दन्तोद्भेदः शिशोः सर्वरोगाणां कारणं स्मृतम् । विशेषाद् ज्वरविड्भेदकासच्छर्दिशिरोरुजा ॥ अभिष्यन्दस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते ॥ २१ ॥

भाषा-पित्तसे बालककी नाभि फूल जाय और उसमें पीडा हो उसको तुण्डि कहते हैं। पित्तसे बालककी गुदा पकती है उसको गुदपाक कहते हैं। बालकोंके दांतोंका निकलना सब रोगोंका कारण है। दांतोंके निकलनेसे ज्वर, अतीसार, खांसी, वमन, शिरमें पीडा, आंखोंका दूखना, पलकरोग और विसर्परोग होता है ॥ २१ ॥

इति बालरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ बालरोगचिकित्सा ।

दुग्धपानम् ।

क्षीरपथ्यौषधं धात्र्याः क्षीरान्नादस्यतोभयोः । अन्नादस्य शिशोर्देयमौषधं भिषजा सदा ॥ यथादोषं स्तनौ लिप्त्वा चौषधं पाययेच्छिशुम् । मात्रया लंघयेद्धात्री शिशोर्नोक्तं विशोधनम्॥ सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यं न प्रतिवार्य्यते । स्तन्यभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ॥ २२ ॥

भाषा-इसी बालरोगके निदानमें पहिले यह कह चुके हैं कि दूध और अन्नके शुद्ध होनेसे बालक नीरोगी रहते हैं और दूध तथा अन्न दूषित होनेसे बालक रोगी रहते हैं। अतएव बालकोंको सदैव अदूषित दूध और अन्न भोजनार्थ देवे। दूधको पीनेवाले और दूध तथा अन्न दोनोंको खानेवाले बालकोंकी धाय (दूध पिलानेवाली) को दूध और अन्नका पथ्य देवे। अन्नको खानेवाले बालकोंको औषधि देवे। धाय या माताके स्तनोंपर औषधियोंका लेपकर बालकको दूध पिलावे। बालकके रोग उत्पन्न होय तो बालककी धात्री (धाय या माता) को लंघन करावे और बालकोंको दस्त न करावे। बालककी सर्व वस्तुओंसे वर्जित करे, परन्तु दूध पीना कदापि वर्जित नहीं करे, कारण यह है कि दूधही बालकका जीवन है और दूधके विना बालकोंके प्राण नष्ट हो जाते हैं। जो माता या धायके दूधका अभाव होय तो बकरीका दूध या गायका दूध पिलावे ॥ २२ ॥

काथमक्षणम् ।

तत्रादौ स्तन्यशुद्ध्यर्थं धात्रीं स्नेहोपपादिताम् । प्रातः पेयां घृताभ्यक्तां वमनेनोपपादयेत् ॥ वचाप्रियंगुयष्ट्याह्वफलवत्सकसर्षपैः । कल्कैर्निम्बपटोलानां क्वाथैर्वा लवणैर्वमेत् ॥ २३ ॥

भाषा–जो बालक केवल दूधही पिता है उसकी धायके दूधको शुद्ध करनेके लिये प्रथम धायको स्नेहपानादि करावे । पश्चात् घृतयुक्त पेया देकर वमन करावे । वच, फुलप्रियंगु, मुलहटी, मैनफल, इंद्रजौ और सरसों इनके कल्क एवं नीम और कडवे परवलके काथमें लवण मिलाकर वमन करावे ॥ २३ ॥

यूषपानम् ।

सम्यग्वांतां यथान्यायं कृतसंसर्जनां पुनः । ततो दोषावशेषघ्नैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥ शालयः षष्टिका वा स्युः श्यामाका भोजने हिताः । प्रियंगवः कोरदूषा यवा वेणुयवास्तथा ॥ वंशवेत्रकलायाश्च सस्नेहा यूषसंस्कृताः । मुद्गान्मसूरान् यूषार्थे कुलत्थांश्च प्रकल्पयेत् ॥ निम्बवेत्राग्रकुलकवार्त्ताकामलकैः शृतान् । सव्योषसैन्धवान् यूषान् कारयेत्स्तन्यशोधनान् ॥ शशान् कपिंजलानेणान् संस्कृतांश्च प्रकल्पयेत् ॥ २४ ॥

भाषा–जब धाय अच्छे प्रकारसे वमन कर चुके तो फिर विरेचनादिसे शुद्ध करे फिर जो दोष शेष रह जाय तो इसमें हितकारक अन्नपानादिक देवे । शालिधान, साठीधान, समा, कंगनी, कोदों, जौ और बांसके चावल ये सब भोजनमें हितकारी हैं । बांसके बीज, वेत और मटर इनका संस्कार किया हुआ यूष घृतसंयुक्त हितकारी है । मूग, मसूर और कुलथी येभी यूषके लिये अत्यंत हितकारी हैं । नीमकी छाल, वेतका अग्रभाग, बेर, बैंगन और आमले इनके यूषमें सोंठ, मिरच, पीपल और सेंधानोन मिलाकर देवे, ये दूधको शुद्ध करनेवाले हैं । खरगोस, कपिंजल (सफेद तीतर) और हिरनका मांस संस्कारकरके खानेको देवे ॥ २४ ॥

काथदुग्धादि सामान्य प्रकार ।

शार्ङ्गेष्टाप्तसप्तवर्णत्वगश्वगंधाशृतं जलम् । पाययेद्वथवा स्तन्यशुद्ध्ये कटुरोहिणीम् ॥ अमृतासप्तपर्णत्वक्क्काथं वैरसनागरम् ।

किराततिक्तकं क्वाथं श्लोकपोदरितान् पिबेत् ॥ त्रीनेतान् स्तन्यशुद्ध्यर्थमिति सामान्यभेषजम् । कीर्तितं स्तन्यदोषाणां पृथगन्यन्निबोधत ॥ २५ ॥

भाषा-करंजुवेकी मींगी, सतोनेकी छाल और असगंधका काथ पिलावे अथवा दूध शुद्ध करनेके लिये कुटकीका काथ पिलावे। गिलोय, सतवन और सोंठका काथ पान करे अथवा चिरायतेका काथ पान करे। ये दूधको शुद्ध करनेके लिये सामान्य प्रयोग कहे। अब विशेषतासे पृथक् पृथक् कहते हैं ॥ २५ ॥

अथ लेपविधिः।

प्रपिबेद्विरसक्षीरा द्राक्षामधुकसारिवाः। श्लक्ष्णपिष्टां पयस्यां च समालोड्य सुखाम्बुना ॥ पंचकोलकुलत्थैश्च पिष्टैरालेपयेत्स्तनौ। शुष्कौ प्रक्षाल्य तौ दुग्ध्वा तथा स्तन्यं विशुद्ध्यति॥ फेनसंघातवत्क्षीरं यस्यास्तां पाययेत च। पाठानागरशार्ङ्गेष्ठा मूर्वाः पिष्टाः सुखाम्बुना॥अञ्जनं तगरं दारु बिल्वमूलं प्रियंगवः। स्तनयोः पूर्ववत्कार्य्यं लेपनं क्षीरशोधनम् ॥ २६ ॥

भाषा-जिसका दूध नीरस अर्थात् बेसवाद हो वह स्त्री दाख, मुलहठी और अनंतमूलका काथ पीवे। एवं दुद्धीको पीसकर मंदोष्ण जलके साथ पान करे। पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और कुलथीको पानीमें पीसकर स्तनोंपर प्रलेप करे। सूखे स्तनोंको गरम पानीसे धोकर पश्चात् उनमेंसे दूधको दूह डाले तो दूध शुद्ध हो जाता है। जिसके दूधमें झाग अधिक होता हो तो उसको पाढ, सोंठ, करंजके बीज, सागरगोटा और मूर्वा इन सबोंको मंदोष्ण जलमें पीसकर पान करावे। रसोत, तगर, देवदारु, बेलकी जड और कुटकी इनको एकत्र पीसकर स्तनोंपर प्रलेप करे तो दूध शुद्ध हो जाता है ॥ २६ ॥

घृतपानम्।

षड्विरेकाश्रितीयोक्तैरोषधैः स्तन्यशोधनैः।
रूक्षक्षीरा पिबेत्क्षीरं तैर्वा सिद्धं घृतं पिबेत् ॥ २७ ॥

भाषा-जिसका दूध रूखा हो वह स्त्री षड्विरेकाश्रितीय अध्यायोक्त (पाढ, सोंठ, देवदारु, नागरमोथा, मूर्वा, गिलोय, इन्द्रजौ, चिरायता, कुटकी और सारिवा) औषधियोंको दूधमें औटाकर पान करे अथवा उनके द्वारा घृतको सिद्ध करके पीवे तो दूध शुद्ध हो जाता है ॥ २७ ॥

कल्कलेपादिक्रिया ।

पूर्ववज्जीवकाद्यं च पंचमूलं प्रलेपनम् । स्तनयोः संविधातव्यं सुखोष्णं स्तन्यशोधनम् ॥ यष्टी मधुकमृद्वीके पयस्या सिन्धुवारिका । शीताम्बुना पिबेत्कल्कं क्षीरवैवर्ण्यनाशनम् ॥ द्राक्षामधुककल्केन स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत् । स्निग्धक्षीरा दारु मुस्तपाठाः पिष्ट्वा सुखाम्बुना ॥ पीत्वा स सधवाः क्षिप्रं क्षीरशुद्धिमवाप्नुयात् । किराततिक्तकं वापि सामृतं क्वथितं पिबेत् ॥ स्तनौ चालेपयेत् पिष्टैर्यवगोधूमसर्षपैः। प्रपिबेत्पिच्छिलक्षीरा शाङ्गर्येष्टामभयावचाम् ॥ मुस्तनागरपाठाश्च पीताः स्तन्यविशोधनाः । विदारीबिल्वमधुकैः स्तनौ चास्याः प्रलेपयेत् ॥ २८ ॥

भाषा–जिस प्रकार प्रथम दूध शुद्ध करनेके लिये प्रलेप कहे उसी प्रकार जीवकादि गणकी सम्पूर्ण औषधि और पंचमूलकी सम्पूर्ण औषधियोंको पीसकर स्तनोंपर लेप करे तो दूध शुद्ध हो जाता है । जिसका दूध चिकना हो वह स्त्री देवदारु, नागरमोथा और पाठको गरम जलमें पीसकर सैंधानोन मिलाकर पान करे अथवा चिरायता और गिलोयका क्वाथ पान करे एवं जौ, गेहूं और सरसोंको जलमें पीसकर स्तनोंपर लेप करे तो दूध शुद्ध होता है । जिसका दूध विवर्ण अर्थात् बेरंग हो जाय वह स्त्री मुलहठी, दाख, दुद्धी और संभालू इनके कल्कको शीतल जलमें मिलाकर पान करनेसे दूध अपने रंगका हो जाता है अथवा दाख और मुलहटीको पीसकर स्तनोंपर लेप करे तो दूध अपने रंगका हो जाता है । जिस स्त्रीका दूध चिकट हो गया हो वह करंज, हरड, बच, नागरमोथा, सोंठ और पाढ इनका क्वाथ पान करे, इससे दूध शुद्ध हो जाता है तथा विदारीकंद, बेलगिरी और मुलहठी इनको एकत्र पीसकर स्तनोंपर लेप करनेसे दूध शुद्ध हो जाता है ॥ २८ ॥

अवलेहादिमात्राप्रकारः ।

भेषजं पूर्वमुद्दिष्टं नराणां यज्ज्वरादिषु । कार्य्यं तदेव बालानां मात्रा चात्र कनीयसी॥प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका। अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥ एकैकां वर्द्धते यावत् यावत्संवत्सरो भवेत् । तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्यात् यावत् षोडश

वत्सराः ॥ ततः स्थिरा भवेत्तावत् यावत् वर्षाणि सप्ततिः। ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः ॥ चूर्णकल्कावलेह्यानामियं मात्रा प्रकीर्त्तिता। कषायस्य पुनः सैव विज्ञातव्या चतुर्गुणा ॥ रसलोहादिकं सर्वं महतां यज्ज्वरादिषु। युंज्यात्तदेव बालानां बुद्ध्या मात्रा कनीयसी ॥ २९ ॥

भाषा-पहिले जो मनुष्योंके ज्वरादिक रोगोंमें औषधि कही हैं वही औषधि बालकोंके ज्वरादिक सम्पूर्ण रोगोंमें मात्राको घटाकर देनी चाहिये। पहिले महीनेमें बालकको औषधिकी एक रत्तीकी मात्रा देवे तथा उस औषधिको सहत, दूध, चीनी और घीमें मिलाकर अवलेह बनावे। फिर एक वर्षतक बराबर प्रत्येक महीनेमें एक एक रत्ती बढाता जावे। फिर एक वर्षसे सोलह वर्ष प्रत्येक वर्षमें एक एक मासा बढाता जावे अर्थात् सोलह वर्षकी अवस्थामें १६ मासे औषधिकी मात्रा देवे पश्चात् सोलह वर्षसे सत्तर वर्षतक मात्रा स्थिर हो जाती है अर्थात् सोलह वर्षसे लेकर सत्तरवर्षतक १६ मासे औषधिकी मात्रा देवे। फिर सत्तर वर्षके पश्चात् बालककी प्रमाण धीरे धीरे मात्रा कम करता जाय। यह मात्रा चूर्ण, कल्क और अवलेहकी कही और क्राथकी चौगुनी मात्रा देवे। बडे मनुष्योंके ज्वरादिक रोगोंमें जो रस लोहादिक कहे हैं वे सब मात्राको घटाकर बालकोंके रोगोंमें देने चाहिये ॥ २९ ॥

कल्कस्वेदादिक्रिया।

यो बालोऽचिराज्जातः स्तनं गृह्णाति न सहसैव। धात्री मधु घृतं पथ्या कल्केनोद्घर्षयेज्जिह्वाम् ॥ मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा। स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ दुग्धेन च्छागशकृता नाभिपाकेऽवचूर्णयेत्। त्वक्चूर्णैः क्षीरिणां वापि कुर्य्याच्चन्दनरेणुना ॥ नाभिपाके निशालोध्रप्रियंगुमधुकैः शृतम्। तैलमभ्यंजने शस्यमेभिर्वाप्यवचूर्णनम् ॥ मूर्वाव्योपवचाकोलजम्बुत्वग्दारुसर्षपाः। सपाठा मधुना लीढा स्तन्यदोषनिवर्हणाः ॥ प्रियंगवश्च सिन्धूत्थं मधुना लेहयेच्छिशुम्। क्षीरामयं निहन्त्याशु विडंगेन युतान् कृमीन् ॥ ३० ॥

भाषा-अल्प दिनोंका बालक दूध न पीवे तो आमला, सहत, घृत और हरडके

चूर्णको एकत्र मिलाकरके बालककी जिह्वाको घिसे, इससे दूध पीने लगता है। मट्टीके पिंडको अग्निमें गरम करके दूधमें बुडावे, पश्चात् गरमागरम उसको बालककी उत्थित नाभिपर स्वेद देनेसे सूजन दूर हो जाती है। दूधके साथ बकरीकी विष्ठाको या वटादि क्षीर वृक्षोंकी छालके चूर्णको अथवा लाल चंदनके चूर्णको नाभिपर घिसनेसे नाभिपाक दूर होता है। हलदी, लोध, फूलप्रियंगू और मुलहठी इनके साथ तेलको पकाकर नाभिपर मलनेसे अथवा उक्त औषधियोंके चूर्णको नाभिपर घिसनेसे निश्चय नाभिपाक दूर होता है। मूर्वा, सोंठ, पीपल, मिरच, वच, बेर, जामुनकी छाल, देवदारु, सरसों और पाठ इन सबोंके चूर्णको सहतमें मिलाकर बालकको चटानेसे स्तन्यरोग दूर होता है। फूलप्रियंगू और सैंधेनोनका चूर्ण सहतमें मिलाकर बालकोंको चटानेसें स्तन्यरोग दूर होता है तथा वायविडंगका चूर्ण सहतमें मिलाकर बालकोंको चटानेसे बालकोंका कृमिरोग दूर होता है ॥ ३० ॥

तैलाक्तवर्त्तिका ।

तैलस्य भागमेकं सूत्रं तु द्वौ द्वौ च शिम्बिदलरसस्य । छागं पयश्चतुर्गुणमेवं दत्त्वा पचेत्तैलम् ॥ तैलाभ्यंगगः सततं रोगमनासकाख्यमपहरति । अर्कजदुग्धकमाविकरोमाण्यादाय केशराजस्य ॥ स्वरसेनाक्ते वस्त्रे कृत्वा वर्त्ति च तैलाक्तम् । तज्जातकज्जलाञ्छितलोचनयुगलोऽप्यलंकृतो बालः ॥ नष्टमनासकरोगं भूतादिकं चापि ॥ ३१ ॥

भाषा-तेल १ भाग, गोमूत्र २ भाग, सेमके पत्तोंका स्वरस २ भाग और बकरीका दूध ४ भाग इन सबोंको एकत्र करके पकावे, इस तेलका मालिस करनेसे बालकका अनासक रोग दूर होता है। आकका दूध और भेडके रोम कुकुरभांगरेके रसमें मिलाकर वस्त्रपर लेप कर देवे, पश्चात् उस वस्त्रकी बत्ती बनाकर तेलमें भिगो लेवे, उन बत्तियोंके काजलको बालककी आंखोंमें लगानेसे अनासक रोग और भूतादिजनित सम्पूर्ण दोष दूर हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

लेहः ।

लाजांजनसिता ब्राह्मी मधुश्लक्ष्णकचूर्णितैः ।
बालस्य लेहो मधुना देयः सर्वज्वरापहः ॥ ३२ ॥

भाषा-खीलें, अंजन, बूरा और ब्राह्मीको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर बालकोंको चटानेसे सर्व प्रकारके ज्वर दूर होते हैं ॥ ३२ ॥

काथादिक्रिया।

भद्रमुस्ताभयानिम्बपटोलामलकैः कृतः। काथः सोष्णोम्बु-बालानामशेषज्वरनाशनः॥ यष्टीमधुतुगाक्षीरीलाजाञ्जनसिताकृतः। लेहः प्रदत्तो बालानामशेषज्वरनाशनः॥ काथः स्थिरागोक्षुरविश्ववालक्षुद्रादयश्छिन्नरुहाकिरातैः। वातज्वरं वा शमयेत्प्रपीतो बालेन धात्र्या च कृपानुकारी॥ पञ्चमूलीकृतः काथः पीतो वातज्वरापहः। तद्वच्छिन्नरुहाद्राक्षागोपकन्याबलाभवः॥ सारिवोत्पलकाश्मर्या छिन्नापद्मकपर्पटैः। काथः पीतो निहंत्याशु शिशूनां पैत्तिकं ज्वरम्॥ मुस्तापर्पटकोशीरवारिपद्मकसाधितम्। शीतं वारि निहंत्याशु प्रभवो व्यसनं यथा॥ निम्बपत्रामृतानन्तापटोलेन्द्रयवैः कृतः। काथः सततं हन्त्याशु प्रभवो व्यसनं यथा॥ गुडूचीचन्दनोशीरधान्यनागरतः कृतः। काथस्तृतीयकं हन्याच्छर्करामधुमिश्रितः॥ पलंकषा वचा कुष्ठं गजचर्म्मा विचर्म्म च। निम्बस्य पत्रं माक्षीकं सर्पियुक्तं तु धूपकम्॥ ज्वरवेगं निहन्त्याशु बालानां तु विशेषतः। कन्याकर्तितसूत्रेण बद्धापामार्गमूलिकाम्॥ एकाहिकं ज्वरं हन्ति शिखायामपि वेगतः। मुस्ता पर्पटकं छिन्ना किरातो विश्वभेषजम्॥ एषां कषायो दातव्यो वातपित्तज्वरापहः। उशीरं मधुकं द्राक्षा काश्मरी नीलमुत्पलम्॥ परूषकं पद्मकं च मधूकं मधुकं बला। एभिः शृतः कषायोऽयं वातपित्तज्वरं जयेत्॥ प्रलापमूर्च्छासंमोहतृष्णापित्तज्वरापहः। मूर्वानिशासर्षपरामसेनश्वेतासमङ्गार्बुदकारवीणाम्॥ छागोपयोभिः सह पेषितानामुद्वर्त्तनं स्याज्ज्वरजिच्छिशूनाम्। त्रिफलापिचुमन्दश्च पटोलं मधुकं बला॥ एभिः काथः कृतः पीतः पित्तश्लेष्मज्वरापहः। अमृतेन्द्रयवारिष्टपटोलं कटुरोहिणी॥ नागरं

चन्दनं मुस्ता पिप्पलीचूर्णसंयुतम् । अमृताष्टकमित्येतत् पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ हृल्लासारोचकच्छर्दितृष्णादाहनिवारणम् ॥ धान्यकचन्दनपद्मकमुस्ताशक्रयवामलकैः सपटोलैः । शीतकषायमिदं खलु दद्यात् बालकपित्तकफज्वरहंतृ ॥ आरग्वधः सातिविषः समुस्तस्तिक्तकाकषायो ज्वरमाशु हन्यात् । सामं सशूलं सवमिं सदाहं सकामलं हन्ति सरक्तपित्तम् ॥ वासाव्याधिकणालेहः शीतज्वरविनाशनः । तद्वत् क्षुद्रामृताऽनन्तातिक्ताभूनिम्बसाधितः ॥ कटुकीविहितः क्वाथः कणाचूर्णसमन्वितः । एकाहिकं ज्वरं हन्ति कासश्वासादिदूषितम् ॥ द्राक्षापटोलत्रिफलापिचुमन्दवृषैः कृतः । क्वाथ एकाहिकं हन्ति परार्थमिव दुर्जनः॥ किराततिक्तकं मुस्ता गुडूची विश्वभेषजम्। चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥ मुद्गतण्डुलसंसिद्धं केवलैर्वा मकुष्ठकैः। पथ्यमत्र इदं दद्यात् दुःखं वातकफज्वरम्॥ दशमूलीयुतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः । संमोहतन्द्रासमये सन्निपातज्वरं हरेत् ॥ मुस्तकं चन्दनं वासा ह्रीवेरं यष्टिकामृता। एषां क्वाथस्तु पित्तघ्नस्तृषादाहज्वरापहः ॥ वासापर्पटकोशीरनिम्बभूनिम्बसाधितः । क्वाथो हंति वमिश्वासकासपित्तज्वरान् शिशोः ॥ अभयामलकी कृष्णा चित्रकोयं गणो मतः। दीपनः पाचनो भेदी सर्वश्लेष्मज्वरापहः ॥ कट्फलं पुष्करं शृंगी पिप्पली मधुना सह । एषां लेहो ज्वरं श्वासं कासं मन्दानलं जयेत् ॥ मधुकं सारिवा द्राक्षा मधुकं चन्दनोत्पलम् । काश्मरी पद्मकं लोध्रं त्रिफला पद्मकेशरम् ॥ परूषकं मृणालं च सेव्यं तु तप्तवारिणा । मधुजातसितायुक्तं तत् पीतं पुष्टिदं निशि ॥ वातं पित्तं ज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छारुचिभ्रमान् । शमयेद्रक्तपित्तं च जीमूतमिव मारुतः ॥ बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं

सलोध्रं गजपिप्पली च। क्काथोवलेहो मधुना विमिश्रो बालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥ काकोली गजकृष्णा च लोध्रमेषां समांशतः। क्काथो मध्वन्वितः पीतो बालातीसारहन्मतः॥ लाजाः सैन्धवमाम्रास्थि चूर्णमेषां समांशतः। हन्ति छर्दिमतीसारं मधुना सह भक्षितम्॥ आम्रबीजं तथा लोध्रं धात्रीफलरसं तथा। पीत्वा माहिषतक्रेण बालातीसारनाशनम्॥ ३३॥

भाषा—नागरमोथा, हरड, नीम, पटोलपात और आमले इनका क्काथ बनाकर गरमागरम पीनेसे बालकोंके सर्व प्रकारके ज्वर दूर होते हैं। मुलहठी, वंशलोचन, खीलें, रसोत और मिश्री इनका अवलेह बनाकर बालकोंको चटानेसे सर्व प्रकारके ज्वर दूर होते हैं। शालिपर्णी, गोखरु, सोंठ, सुगंधवाला, कटेरी, कटाई, गिलोय और चिरायता इनका क्काथ बनाकर बालक अथवा बालकको दूध पिलानेवाली पान करे तो बालकका वातज्वर दूर होय और अग्नि दीपन हो। पंचमूलका क्काथ पान करनेसे बालकोंका वातज्वर नष्ट होता है तथा गिलोय, दाख, गौरी या बासाऊ और खिरेंटीका क्काथ पान करनेसेभी बालकका वातज्वर नष्ट होता है। अनंतमूल, कमल, कुम्भेर, गिलोय, पद्माख और पित्तपापडा इनका क्काथ बनाकर पान करनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है। नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, सुगंधवाला और पद्माख इनका क्काथ शीतल करके पान करनेसे तीन प्रकारकी दाह, वमन और ज्वर दूर होते हैं। नीमके पत्ते, गिलोय, अनंतमूल, पटोलपात और इन्द्रजौ इनका क्काथ बनाकर पान करनेसे बालकोंका सतत ज्वर नष्ट होता है। गिलोय, चन्दन, खस, धनिया और सोंठ इनके क्काथमें मिश्री और सहत मिलाकर पान करनेसे बालकोंका तृतीयक ज्वर नष्ट होता है। गूगल, वच, कूठ, हाथीका चमडा, मेढका चमडा, नीमके पत्ते, सहत और घी सबोंको एकत्र मिलाकर धूप देनेसे बालकोंके ज्वरका वेग शांत होता है। कन्याके काते हुए सूतसे चिरचिटेकी जडको बांधकर चोटीमें बांधनेसे एकाहिक ज्वर दूर होता है। नागरमोथा, पित्तपापडा, गिलोय, चिरायता, सोंठ इन सबोंका क्काथ बनाकर पान करनेसे बालकोंका वातपित्तज्वर दूर होता है। खस, दाख, कुम्भेर, नीलोत्पल, फालसे, पद्माख, महुआ, मुलहठी, खिरेंटी इनका क्काथ बनाकर पान करनेसे वातपित्तज्वर, प्रलाप, मूर्छा, मोह, तृषा और पित्तज्वर नष्ट होता है। मूर्वा, हलदी, सरसों, चिरायता, सफेद कोयल, खिरेंटी, नागरमोथा और सौंफ इनको बकरीके दूधमें पीसकर शरीरपर मलनेसे बालकोंका ज्वर दूर होता है। त्रिफला, नीमकी छाल, परवल, मुलहठी, खिरेंटी इनका क्काथ

बनाकर पान करनेसे पित्तकफज्वर दूर होता है। गिलोय, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, पटोलपात, कुटकी, सोंठ, चन्दन और नागरमोथा इनके काथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पान करे। यह अमृताष्टक काथ पित्तकफज्वर, हृल्लास, अरुचि, वमन, तृषा और दाहको दूर करे है। धनिया, चन्दन, पद्माख, नागरमोथा, इन्द्रजौ, आमले और पटोलपात इनका काथ शीतल करके पान करनेसे बालकोंका पित्तकफज्वर दूर होता है। अमलतास, अतीस, नागरमोथा और कुटकी इनका काथ बनाकर पान करनेसे आम, शूल, वमन, दाह, कामला और रक्तपित्तसंयुक्त बालकोंका ज्वर दूर होता है। अडूसा, अमलतास और पीपल इनकी चटनी बनाकर चाटनेसे बालकोंका शीतज्वर दूर होता है। कटेरी, गिलोय, अनंतमूल, कुटकी और चिरायता इनका अवलेह बनाकर चाटनेसे बालकोंका शीतज्वर नष्ट होता है। कुटकीके काथमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे कासश्वासादिसे दूषित एकाहिक ज्वर नष्ट होता है। दाख, पटोलपात, त्रिफला, नीम, अडूसा इनका काथ बनाकर पान करनेसे एकाहिक ज्वर दूर होता है। चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ इनका काथ बनाकर पान करनेसे बालकोंका वातकफज्वर दूर होता है इसको धातुर्भेद्रक कहते हैं। मूग और चावलोंका यूष अथवा केवल मोठका यूष यहां पथ्य देना चाहिये। यह वातकफज्वरको नष्ट करे है। दशमूलके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे मोह और तन्द्राके समय सन्निपातज्वर दूर होता है। नागरमोथा, चन्दन, अडूसा, सुगंधवाला, मुलहटी और गिलोय इनका काथ बनाकर पान करनेसे पित्त, तृषा, दाह और ज्वर दूर होता है। अडूसा, पित्तपापड़ा, खस, नीम, चिरायता इनका काथ बनाकर पान करनेसे वमन, श्वास, खांसी और पित्तज्वर नष्ट होता है। हरड, आमले, पीपल और चीता इस चित्रकादिगणका काथ बनाकर पान करनेसे अग्नि दीपन होती है और आमदोष पचता है और सर्व प्रकारके कफज्वर दूर होते हैं। यह काथ मेदकभी है। कायफल, पोहकरमूल, काकडाशिंगी और पीपल इनको सहतमें मिलाकर चाटनेसे ज्वर, श्वास, खांसी और मंदाग्नि नष्ट होती है। मुलहठी, सारिवा, दाख, महुआ, चन्दन, कमल, कुम्भेर, पद्माख, लोध, त्रिफला, कमलकेशर, फालसा और कमलकी नाल इनका काथ बनाकर उसमें सहतकी खांड मिलाकर रात्रिमें पान करनेसे पुष्टि उत्पन्न होती है तथा वातपित्तज्वर, दाह, तृषा, मूर्छा, अरुचि, भ्रम और रक्तपित्तरोग नष्ट होता है। जैसे वायुसे बादल नष्ट होते हैं। बेलगिरी, धायके फूल, सुगंधवाला, लोध और गजपीपल इनके काथमें अथवा अवलेहमें सहत मिलाकर पान करनेसे बालकोंका अतीसाररोग दूर होता है। काकोली, गजपीपल और लोध इनके काथमें सहत डालकर पान करनेसे बालकोंका अतीसार दूर होता है। जीरे, सैंधानोन

और आमकी गुठली इनका समानभाग चूर्ण लेकर सहतमें मिलाकर भक्षण करनेसे बालकोंका वमन और अतीसार दूर होता है। आमकी गुठली, लोध, आमलोंका स्वरस इनको एकत्र मिलाकर भैंसके तक्रके साथ पान करनेसे बालकोंका अतीसाररोग दूर होता है ॥ ३३ ॥

चूर्णवर्गः।

फलिन्यंजनमुस्तानां चूर्णं पीतं समाक्षिकम्। तृष्णां छर्दिमतीसारं बालानां तत्वतो हरेत् ॥ श्यामा रसाञ्जनं चूतफलास्थि समचूर्णितम्। हन्ति छर्दिमतीसारं बालानां मधुनाशितम् ॥ धातकीबिल्वधन्याकलोध्रेन्द्रयववालकैः। लेहक्षौद्रेण बालानां ज्वरातिसारकं जयेत् ॥ लोध्रेण पिप्पली बालो बालकातिसृतौ हितः। क्षीरसो माक्षिकयुतो धातकीकुसुमैः समः ॥ विडंगान्यजमोदा च पिप्पलीचूर्णिकानि च। एषामालिह्य चूर्णानि सुखं तप्तेन वारिणा ॥ आमे प्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं पाययेद्भिषक्। यवानी जीरकं व्योषं कुटजं विश्वभेषजम् ॥ एतन्मधुयुतं पीतं बालानां ग्रहणीं जयेत्। पिप्पली विजया शुंठीचूर्णं मधुयुतं भिषक् ॥ दत्त्वा निहृत्य ग्रहणीं रुजा नियतमाप्नुयात्। कृष्णा महौषधं बिल्वं नागरः सयवानिकः ॥ मधुसर्पिर्युतं लीढं बालानां ग्रहणीं हरेत्। नागरं मुस्तकं बिल्वं चित्रकं ग्रंथिकं शिवाम् ॥ चूर्णमेतन्मधुयुतं कफजां ग्रहणीं हरेत्। सगुडं नागरं बिल्वं यः खादेत हिताशनः ॥ त्रिदोषग्रहणीरोगान् मुच्यते नात्र संशयः। मुस्तकातिविषा बिल्वं चूर्णितं कौटजं तथा ॥ क्षौद्रेण लीढं ग्रहणीं सर्वदोषोद्भवां जयेत् ॥ ३४ ॥

भाषा-फूलप्रियंगु, रसौत और नागरमोथा इनके चूर्णमें सहत मिलाकर भक्षण करनेसे बालकोंकी तृषा, वमन, अतीसार इत्यादिरोग शमन होते हैं। पीपल, रसौत और आमकी गुठली इनके चूर्णमें सहत मिलाकर खानेसे बालकोंका वमन और अतीसार दूर होता है। धायके फूल, बेलगिरी, धनियां, लोध, इन्द्रजौ और सुगंधवाला इनको एकत्र पीसकर सहत मिलाकर चाटनेसे बालकोंका ज्वरातीसार

दूर होता है । लोध, पीपल और सुगंधवाला इनका चूर्ण सहतमें मिलाकर अथवा गंधपिरोजा और धायके फूलोंका चूर्ण सहतमें मिलाकर खानेसे बालकोंका अतीसार दूर होता है । वायविडंग, अजमोदा, पीपल इनका चूर्ण मन्दोष्ण जलके साथ सेवन करनेसे बालकोंका आमातीसाररोग दूर होता है । अजवायन, जीरा, त्रिकुटा, इन्द्रजौ, सोंठ इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंका संग्रहणीरोग दूर होता है । पीपल, भांग और सोंठ इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर भक्षण करनेसे बालकोंका संग्रहणीरोग दूर होता है । पीपल, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा और अजवायन इन सबोंको एकत्र पीसकर सहत और घीमें मिलाकर खानेसे बालकोंका संग्रहणीरोग दूर होता है । सोंठ, नागरमोथा, बेलगिरी, चीता, गठिवन और हरड इनका चूर्ण कर सहतमें मिलाके खानेसे कफकी संग्रहणी दूर होती है । सोंठ और बेलगिरी इनके चूर्णको गुडमें मिलाकर भक्षण करनेसे बालकोंका त्रिदोषज संग्रहणीरोग दूर होता है । नागरमोथा, अतीस, बेलगिरी और इन्द्रजौ इनका चूर्ण करके सहतमें मिलाकर चाटनेसे सर्वदोषोत्पन्न बालकोंका संग्रहणीरोग दूर होता है ॥ ३४ ॥

अथ यवागुपानादिक्रिया ।

मोचरसं समंगा च धातकी पद्मकेशरम् । पिष्टैरेतैर्यवागूः स्यात् रक्तातीसारनाशनी ॥ नागरातिविषामुस्तावालकेन्द्रयवैः कृतम् । कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ लाजा सयष्टिमधुका शर्करा क्षौद्रमेव च । तण्डुलोदकयोगेन क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ लोध्रेन्द्रयवधन्याकधात्रीह्रीवेरमुस्तकम् । मधुना लेहयेद्बालं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ रजनी सरलो दारुर्बृहती गजपिप्पली । पृष्ठिपर्णी शताह्वा च लीढा माक्षिकसर्पिषा ॥ दीपनं ग्रहणीं हन्ति मारुतार्त्तिं सकामलाम् । ज्वरातीसारपाण्डुत्वं बालानां सर्वरोगनुत् ॥ ह्रीबेरं शर्करा क्षौद्रं पीतं तण्डुलवारिणा । शिशो रक्तातिसारघ्नं कासश्वासवमिं हरेत् ॥ अजाजी पौष्करं पाठा त्र्यूषणं दहनं शिवा । गुडेन गुटिका ग्राह्या सर्वार्शःशोधनी यतः ॥ यवानी नागरं पाठा दाडिमं कुटजं तथा । चूर्णोयं गुडतक्राभ्यां पीतोर्शःस्तम्भनः परः ॥ नवनीततिलाभ्यासात्

केशरनवनीतशर्कराभ्यासात् । दधिसारमथिताभ्यासाद्वृद्वाः शाम्यंति रक्तवहाः॥ एवं वा कौटजं बीजं रक्तार्शो मधुना हरेत्। तद्वन्मुस्ता मोचरसः कपिकच्छूभवं रजः॥ धान्यनागरजः क्वाथः शूलामाजीर्णनाशनः। चूर्णस्तत्र शुभः पीतस्तद्वद् व्योषाग्निजीरकैः॥ पिप्पली रुचकं पथ्या चूर्णं मस्तुजलं पिबेत्। सर्वाजीर्णहरः शूलगुल्मानाहाग्निमांद्यजित्॥ त्वक्पत्रराम्रागुरुशिग्रुकुष्ठैरम्लप्रपिष्टैः सवलासिताह्वैः। अजीर्णकघ्नं च विषूचिकाघ्नं तैलं विपक्वं च तदर्थकारि॥ अन्नपानैर्गुरुस्निग्धैर्मंदस्तान्द्रहिमस्थिरैः। पित्तघ्नैः रेचनैर्धीमान् भस्मकं प्रशमं नयेत्॥ औदुम्बरत्वचं पिष्ट्वा नारीक्षीरयुतं पिबेत्। ताभ्यां च पयसा सिद्धं भुक्तं जयति भस्मकम्॥ धन्याकं शर्करायुक्तं तण्डुलोदकसंयुतम्। पानमेतत् प्रदातव्यं कासश्वासापहं शिशोः॥ दुरालभा कणा द्राक्षा पथ्या क्षौद्रेण लेहयेत्। त्रिरात्रं पंचरात्रं वा कासश्वासहराः शिशोः॥ हिंगुकर्कटशृंगी च गैरिकं मधुयष्टिका। त्रुटिक्षौद्रं नागरं च हिक्काश्वासनिवारणम्॥ कृष्णा दुरालभा द्राक्षा कर्कटाख्या गजाह्वया। चूर्णिता मधुसर्पिर्भ्यां लीढ्वा हन्ति शिशोर्गदान्॥ कासः श्वासश्च तमको ज्वरो वापि विनंक्ष्यति॥ ३८॥

भाषा–मोचरस, लाललज्जावतीकी जड, धायके फूल और कमलकेशर इन सबोंको एकत्र पीसकर यवागू बनाकर खानेसे रक्तातीसार दूर होता है। सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगंधवाला और इन्द्रजौ इनका क्वाथ बनाकर प्रातःकाल पान करनेसे बालकोंके सर्व प्रकारके अतीसार दूर होते हैं। खीलें, मुलहठी, मिश्री और सहत इनको एकत्र करके चावलोंके जलके साथ पान करनेसे बालकोंका प्रवाहिका रोग दूर होता है। लोध, इन्द्रजौ, धनिया, आमले, सुगंधवाला और नागरमोथा इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंका ज्वरातीसार दूर होता है। हलदी, सरल, देवदारु, कटाई, गजपीपल, पिठवन और सौंफ इन सबोंको पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंके अग्नि दीपन होती है, संग्रहणी नष्ट होती है,

वातकी पीडा दूर होती है तथा कामलारोग, ज्वरातीसार, पाण्डुरोग और बालकोंके सर्व रोग दूर होते हैं । सुगंधवाला, चीनी, सहत इनको चावलोंके जलके साथ पान करनेसे बालकोंका रक्तातीसार, खांसी, श्वास और वमन दूर होता है । जीरा, पुष्करमूल, पाढ, त्रिकुटा, चीता और हरड इनको एकत्र पीसकर गुडमें मिलाकर गोली बनावे । यह गोली सर्व प्रकारकी बवासीर शुद्ध करे है । अजवायन, सोंठ, पाढ, अनारदाना और इन्द्रजौ इनको एकत्र कूट पीसकर गुड और तक्रके साथ पान करनेसे बवासीर स्तम्भन होती है । नैनी घी और तिलोंके चूर्णको एकत्र मिलाकर भक्षण करनेसे या नागकेशर, नैनी घी और चीनी इन तीनोंको एकत्र मिलाकर भक्षण करनेसे अथवा गाढे मट्ठेको सदैव पान करनेसे रुधिरको बहानेवाली बवासीर दूर होती है । इन्द्रजौके चूर्णको सहतमें मिलाकर चाटनेसे अथवा नागरमोथा, मोचरस और कौंछके बीज इन सबोंके चूर्णको सहतमें मिलाकर चाटनेसे रुधिरकी बवासीर दूर होती है । धनिया और सोंठका क्राथ बनाकर पान करनेसे अथवा इस काथमें सोंठ, मिरच, पीपल, चीता और जीरेका चूर्ण मिलाकर पान करनेसे आमशूल अजीर्णदोष नाश होता है । पीपल, काला नोन और हरड इनका चूर्ण दहीके तोडके साथ पान करनेसे सर्व प्रकारके अजीर्ण, शूल, गुल्म, आनाह और मन्दाग्नि नष्ट होती हैं । दालचीनी, तेजपात, रायसन, अगर, सहजना, खिरैटी और मिश्री इन सबोंको समान भाग लेकर कांजीमें अथवा नींबूके रसमें पीसकर पान करनेसे किंवा इन औषधियोंके द्वारा तैलको पकाकर सेवन करनेसे अजीर्णरोग और विषूचिकारोग दूर होता है । भारी, स्निग्ध, मन्द, गीले, शीतल और कठिन ऐसे अन्नपानोंकरके तथा पित्तनाशक विरेचन करके बुद्धिमान् वैद्य बालकोंके भस्मकरोगको दूर करे है । गूलरकी छालके चूर्णको स्त्रीके दूधमें औटाकर पान करनेसे बालकोंका भस्मकरोग दूर होता है । धनियेको पीसकर चीनीमें मिलाकर चावलोंके जलके साथ पान करनेसे बालकोंका खांसी और श्वासरोग दूर होता है । जवासा, पीपल, दाख और हरड इनके चूर्णको सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंका खांसी और श्वासरोग दूर होता है । हींग, काकडाशिंगी, गेरू, मुलहटी, इलायची छोटी और सोंठ इनके चूर्णमें सहत मिलाकर चाटनेसे बालकोंका हिक्का और श्वासरोग दूर होता है । पीपल, धमासा, दाख, काकडाशिंगी और गजपीपल इनका चूर्ण करके सहत और घीमें मिलाकर भक्षण करनेसे बालकोंकी खांसी, श्वास, तमकश्वास और ज्वर दूर होता है ॥ ३५ ॥

अथ लेहपानादिविधिः ।

शृंगी समुस्तातिविषं विचूर्ण्य लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् ।

कासज्वरछर्दिसमन्वितानां समाक्षिकं वातिविषासमेतम् ॥ गुडोदकं वा क्वथितं व्योषसैन्धवसंयुतम् । सुखोष्णं पाययेद्बालं कासरोगोपशांतये ॥ विहितो मधुना लेहो व्याघ्रीकुसुमकेशरैः। लीढो हि नाशयत्याशु कासं पंचविधं शिशोः ॥ एका शृंगी निहंत्याशु मूलकस्य फलान्विता। घृतेन मधुना लीढा कासं बालस्य दुस्तरम् ॥ तुंगा च क्षौद्रैः संलिह्यात् श्वासकासौ शिशोर्जयेत् । विडंगं मधुना लीढं पुष्करं बालशिशुकम् ॥ आखुपर्णी तथैका वा कृमिभ्यो मुच्यते शिशोः । पौष्करातिविषा शृंगी मागधी धन्वयासकैः॥ कृतं चूर्णं तु सक्षौद्रं शिशूनां पंचकासजित् । मुस्तकातिविषावासाकणाशृंगीरसं लिहन् ॥ मधुना मुच्यते बालः कासैः पंचभिरुच्छ्रितैः । सुवर्णगैरिकं पिष्ट्वा मधुना सह लेहयेत्॥ शीघ्रं सुखमवाप्नोति तेन हिक्कार्दितः शिशुः । पिप्पलीरेणुकाक्वाथः सहिंगुः समधुः कृतः ॥ हिक्कां बहुविधां हन्यादिदं धन्वन्तरेर्वचः । चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत् ॥ हिक्कां प्रशमयेत्क्षिप्रं छर्दिं चापि चिरोत्थिताम्। यवानीकुटजारिष्टसप्तपर्णपटोलकैः ॥ लेहश्छर्दिमतीसारं ज्वरं बालस्य नाशयेत् । हरीतक्याः कृतं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ॥ अधस्ताद्विहिते दोषे शीघ्रं छर्दिः प्रशाम्यति । अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्धं निर्वापितं जले ॥ तज्जलं पानमात्रेण छर्दिं जयति दुर्जयाम् । पद्माक्षविषमौरा च चूर्णं वै वारिणा पिबेत् ॥ तृष्णां छर्दिमतीसारं शिशूनामुद्धतां हरेत् । आम्रास्थिलाजासिन्धूत्थं सक्षौद्रं छर्दिनुद्भवेत् ॥ घनशृंगीविषाणां च चूर्णं हन्ति समाक्षिकम् । वान्तिज्वरं तथा योगो मधुनातिविषारजः ॥ पीतं पीतं वमेद्यस्तु स्तन्यं तं मधुसर्पिषा । द्विवार्त्ताकीफलरसं पंचकोलं च लेहयेत् ॥ पिप्पलीमधुकानां च चूर्णं समधुशर्क-

रम् । मातुलिंगरसेनैव हिक्काछर्दिनिवारणम् ॥ पिप्पली मधुकं जम्बू रसालतरुपल्लवाः । चूर्णोयं मधुना चेति तृष्णाप्रशमनः शिशोः ॥ हिंगुसैंधवपालाशचूर्णं माक्षिकसंयुतम् । लीढं निवारयत्याशु शिशूनामुद्धतां तृषाम् ॥ घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिंगुभार्ङ्गीरजो लिहन् । आनाहवातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशोः ३६॥

भाषा-काकड़ाशिंगी, नागरमोथा और अतीसके चूर्णको सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकका ऊपरोक्त रोग दूर होता है। त्रिकुटा और सैंधेनोनके चूर्णको गुडके सरवतमें मिलाकर गरम करके बालकोंको पिलानेसें खांसी दूर होती है। कटेरीके फूलके जीरेको सहतमें पीसकर चाटनेसे बालकोंकी पांच प्रकारकी खांसी दूर होती है। काकडाशिंगी और मूलीके बीज इनको एकत्र पीसकर घी और सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालककी दुस्तर खांसी दूर होती है। वंशलोचनको पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे श्वास और खांसी दूर होती है। वायविडंगके चूर्णको अथवा पोहकरमूल और सहजनेकी जडको किंवा मूसाकर्णीके चूर्णको सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकका कृमि रोग दूर होता है। पोहकरमूल, अतीस, काकडाशिंगी, पीपल, धमासा इन सबोंको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंकी पांच प्रकारकी खांसी दूर होती है। नागरमोथा, अतीस, अडूसा, पीपल और काकडाशिंगी इनके रसमें सहत मिलाकर चाटनेसे बालकोंकी पांच प्रकारकी खांसी दूर होती है। पीले गेरूको पीसकर सहतमें मिलाकर बालकोंको चटानेसे बालकोंका हिक्कारोग दूर होता है। पीपल और रेणुकाके क्वाथमें हींग और सहत डालकर पान करनेसे बहुत प्रकारकी हिक्का दूर होती है। कुटकीके चूर्णको सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंका वमन और हिचकी दूर होती है। अजवायन, इन्द्रजव, नीमकी छाल, सतवन और पटोलपात इनका अवलेह बनाकर भक्षण करनेसे बालकोंका वमन, अतिसार और ज्वर दूर होता है। हरडके चूर्णको सहतमें मिलाकर बालकोंको चटानेसे दोष नीचे जाकर वमन शीघ्रही शांत हो जाता है। पीपलकी सूखी छालको आगमें जलाकर भस्म कर ले फिर उस भस्मको जलमें नितारकर उस जलको पान करनेसे बालकोंकी दुर्जर वमन दूर होती है। कमलगट्टेकी गिरी और जहरमोरा इन दोनोंको जलमें पीसकर पान करनेसे बालकोंकी तृषा, वमन और अतीसार दूर होता है। आमकी गुठली, खीलें और सैंधानोन इनको पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंका वमन दूर होता है। नागरमोथा, काकडाशिंगी और अतीस इन सबोंको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे अथवा सहतमें अतीसका चूर्ण मिलाकर चाटनेसे वमन और

ज्वर दूर होता है। जो बालक माताके दूधको बारंवार पीपीकर वमन कर देता है उसको घी और सहतमें दोनों कटेरीका रस तथा पंचकोलका चूर्ण मिलाकर पिलावे। पीपल और मुलहठीके चूर्णको सहत और घीमें मिलाकर बिजौरे नींबूके रसके साथ सेवन करनेसे बालकोंकी हिचकी और वमन दूर होती है। पीपल, मुलहठी तथा जामुन और आमके पत्ते इन सबोंको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंकी तृषा दूर होती है। हींग, सैंधानोन और ढाकका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटनेसे बालकोंकी तृषा दूर होती है। सैंधानोन, सोंठ, इलायची, हींग और भारंगीके चूर्णको घी अथवा जलके साथ सेवन करनेसे बालकका अफरा और वातजशूल नष्ट होता है ॥ ३६ ॥

रेचनादिक्रिया।

पिप्पली त्रिफलाचूर्णं घृतक्षौद्रं परिप्लुतम्। बालो रोदिति यस्तस्मै लेढुं दद्यात् सुखावहम् ॥ पिष्टा गंधर्वबीजानि त्वाखुविड् निम्बवारिणा। नाभौ गुदे वा लेपेन शिशूनां रेचनं परम् ॥ त्रुटिगंधककंकुष्ठशतपुष्पा विचूर्णिताः । माषद्वयं गवां दुग्धैः सेवयेद्दिनपंचकम् ॥ रचयेन्मृत्तिकां शुद्धां शिशूनां हितमौषधम् ॥ हत्वैकदातिशरणं वमनं तथैव ध्मानघूर्णनरुजश्च शिशोर्विधाय यः। श्वासमात्रपरिरक्षितजीवयोगा रोगा वधूभिरुदितः स हि चोरनामा ॥ शीर्षाग्रिहस्ततलयोः सितकुक्कुटाण्डमज्ञाघृतो हरति चोरकरोगमाशु । एवं न शाम्यति शिशुं परिपालयेत्तं पूतात्मना किल विधेयमिदं जलेन ॥ यथा सुदुर्बलो बालः खादन्नपि च वह्निमान्। विदारीकंदगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम् ॥ खादयेत्तदनु क्षीरं शृतं समधुशर्करम्। सौवर्णसुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा ॥ मत्स्याक्षकः शंखपुष्पी मधुसर्पिस्सकांचनम्। अर्कपुष्पीघृतं क्षौद्रं चूर्णितं कनकं वचा॥सहेमचूर्णं कैटर्य्यं श्वेतदूर्वा घृतं मधु। चत्वारोभिहिताः प्राश्या अर्धश्लोकसमापनाः ॥ कुमाराणां वपुर्मेधाबलपुष्टिकराः स्मृताः ॥ ३७ ॥

भाषा-जो बालक अधिक रोवे उसको पीपल और त्रिफलेका चूर्ण घी और सहतमें मिलाकर चटावे। अंडके बीज और चूहेकी विष्ठाको नीमके जलमें पीसकर

बालककी नाभि अथवा गुदापर लेप करनेसे अच्छे प्रकारसे दस्त हो जाते हैं। छोटी इलायची, गंधक और मुरदाशङ्ख तथा सोया इन सबोंको एकत्र पीसकर प्रति-दिन दो मासे गायके दूधके साथ सेवन करे। इसप्रकार पांच दिनतक सेवन करनेसे उत्तम विरेचन हो जाती है। एकसाथ बालक अतीसार, वमन, आध्मान और घूर्णरोगमें जडताको प्राप्त हो जाय, केवल श्वासही बाकी रह जाय और मृतक समान दीखे उसको चोरकरोग कहते हैं। इस रोगवाले बालकके मस्तकमें पांवोंमें और हाथोंमें सफेद मुरगेके अंडेकी मज्जाको मले, इससे निश्चय चोरकरोग दूर होता है। जो बालक भोजनभी करे और जिसकी अग्निभी दीपन हो तोभी वह दुर्बल होता जाय, उसको विदारीकंद, गेहूं और जौ इनका चूर्ण घीमें मिलाकर खिलावे और ऊपरसे औटे हुए दूधमें चीनी और सहत मिलाकर पिलावे अथवा धतूरेकी छालका चूर्ण, कूठ, सहत, घी, वच इनको या मछछी, शङ्खपुष्पी, सहत, घी, धतूरा इनको अथवा अर्कपुष्पी, घी, सहत, धतूरा और वच इनको किंवा धतूरा, नीम, सफेद दूब, घी और सहत इनको एकत्र मिलाकर खिलावे। इससे बालकों-की देह, बुद्धि, बल और पुष्टि बढती है ॥ ३७ ॥

घृतपान।

पादकल्केऽश्वगंधायाः क्षीरेष्टगुणिते पचेत्।
घृतं देयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्द्धनम् ॥ ३८ ॥

भाषा-गायका घी १ सेर, कल्कके लिये असगंध पावभर, पाकके लिये दूध ८ सेर। यथाविधिसे घृतको पकावे। यह घी बालकोंको पुष्टि और बलको देता है ॥ ३८ ॥

कुमारकल्याणघृत।

द्राक्षा सशर्करं शुण्ठी जीवन्ती जीरकं बला। शठी दुरालभा बिल्वं दाडिमं सुरसः स्थिरा ॥ मुस्तं पुष्करमूलं च सूक्ष्मैला गजपिप्पली। एषां कर्षसमैर्भागैः घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ कषाये कण्टकार्य्यास्तु क्षीरे तस्माच्चतुर्गुणे। एतत् कुमारकल्याणं घृत-रत्नं सुखप्रदम् ॥ ३९ ॥

भाषा-गायका घी २ सेर, कटेरीका स्वरस दो सेर, गायका दूध आठ सेर और कल्कके लिये दाख, बूरा, सोंठ, जीवन्ती, जीरा, खिरैटी, कचूर, धमासा, बेल, अनारकी छाल, तुलसी, शालिपर्णी, नागरमोथा, पोहकरमूल, छोटी इलायची और गजपीपल प्रत्येक दो दो तोले, यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। यह कुमार-कल्याणघृत बालकोंको सुख देनेवाला है और सर्व रोगशोकोंको हरनेवाला है ॥ ३९ ॥

अष्टमंगलघृत ।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि वा । शारिवा सैन्धवं चैव पिप्पली वेल्लमुस्तकम् ॥ मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यं च दिने दिने । दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधा कुमारो बुद्धिमान् भवेत् ॥ ४० ॥

भाषा–उत्तम गायका घी २ सेर, जल ८ सेर तथा कल्कके लिये वच, कूठ, ब्राह्मी, सफेद सरसों, अनन्तमूल, सेंधानोन, पीपल, वायविडंग और नागरमोथा यथाविधिसे घृतको पकावे । यह अष्टमंगलघृत बालकोंको प्रतिदिन पिलावे, इससे बालकोंकी मेधा बढती है, स्मरणशक्ति दृढ होती है और बुद्धिमान् होते हैं॥४०॥

लाक्षादितैलम् ।

लाक्षारससमं सिद्धं तैलमस्तु चतुर्गुणम् । रास्नाचन्दनकृष्णाब्द-वाजिगंधानिशायुगैः ॥ शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणु-भिः । बालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यंगाद्बलवर्णकृत् ॥ ४१ ॥

भाषा–तिलका तेल २ सेर, लाखका काथ २ सेर, दहीका तोड ८ सेर तथा कल्कके लिये रास्ना, लालचन्दन, पीपल, नागरमोथा, असगंध, हलदी, दारुहलदी, सोया, देवदारु, मुलहठी, मूर्वा, कुटकी और रेणुका प्रत्येक दो दो तोले । इस तैलको यथाविधिसे पकाकर मलनेसे बालकोंके ज्वरादिरोग दूर होते हैं तथा बल और वर्णकी वृद्धि होती है ॥ ४१ ॥

शोथहरलेप ।

मुस्ताकूष्माण्डबीजानि भद्रदारुकलिंगकान् । पिष्टा तोयेन संलिप्येल्लेपोऽयं शोथहृत् शिशोः ॥ ४२ ॥

भाषा–नागरमोथा, पेठेके बीज, देवदारु और इन्द्रजौ इनको एकत्र जलमें पीसकर लेप करनेसे बालकोंकी सूजन दूर होती है ॥ ४२ ॥

पानकाथादिक्रिया ।

गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत् क्रियाम् । रसांजनविशे-षेण पानलेपनयोर्हितम् ॥ शंखयष्ट्यञ्जनैश्चूर्णं शिशूनां गुद-पाकनुत् । पारिगर्भिकरोगे तु युज्यते वह्निदीपनम् ॥ पटोल-त्रिफलारिष्टहरिद्राक्वथितं पिबेत् । क्षतविस्फोटज्वराणां शांतये बालकस्य च ॥ गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शिशोः । लेप-

स्तकेण हंत्याशु सिध्मपामविचर्चिकाः॥ तालुपाके यवक्षारमधुभ्यां प्रतिसारणम् ॥ ४३ ॥

भाषा–बालकोंके गुदापाकरोगमें पित्तनाशक क्रिया करे तथा विशेषकरके रसोतको घिसकर पिलावे और गुदापर लेप करे । शंख, मुलहठी और रसोत इनका चूर्ण गुदापाकरोगको दूर करे है । पारिगर्भिकरोगमें अग्निको दीपन करनेवाली क्रिया करे । पटोलपात, त्रिफला, नीम और हलदी इनके क्वाथका पान करनेसे बालकोंके क्षत, विस्फोटक और ज्वर शांत होता है । घरका धूंआ, हलदी, कूठ, राई और इन्द्रजौ इनको तक्रमें पीसकर लेप करनेसे सिध्म (सीप), पामा (औंधी-खुजली) और विचर्चिका रोग दूर होता है । तालुपाकरोगमें जवाखार और सहत मिलाके तालुएको घिसे ॥ ४३ ॥

दन्तरोगनाशक क्रिया ।

दंतपालीं तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् । धातकीपुष्पपिप्पली धात्रीफलरसेन वा ॥ दंतोत्थानभवा रोगाः पीडयंति न बालकम् । जाते दंते हि शाम्यंति यतस्तद्धेतुका गदाः ॥ प्राचीगतं पाण्डुरसिन्धुवारमूलं शिशूनां गलके निबद्धम् । हन्त्याशु दन्तोद्भववेदनां च निःशेषमेकांडकुरंडमेव ॥ ४४ ॥

भाषा–दांतोंके निकलते समय जो बालकोंके रोग होता है उस समय धायके फूल और पीपलके चूर्णको सहतमें मिलाकर अथवा आमलोंके स्वरसमें मिलाकर मसूडोंपर मले इससे वह रोग बालकोंके पीडित नहीं करते तथा दांतोंके निकलतेही वे रोग शांत हो जाते हैं । कारण कि दांतोंके उत्पन्न होनेसेही ये रोग होते हैं । पूर्व दिशामें उत्पन्न हुए सफेद रंगके संभालूकी जडको लेकर बालकके गलेमें बांधनेसे दांतोंके उत्पन्न होते समयकी पीडा, अंडकोषोंका छिडकना और कुरण्डरोग ये सब रोग दूर हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

मुखपाकहर क्वाथादिप्रकार ।

जातीपत्रामृतं द्राक्षा पाठाद्रव्यैः फलत्रिकैः । क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतः गण्डूषामुखपाकजित् ॥ सारिवातिक्तलोध्राणां कषायो मधुकस्य च । संस्रावी विमुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा ॥ मुखपाके तु बालानामाम्रसारमयो रजः । गैरिकं क्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम् ॥ दार्वीयष्टिचभयाजातीपत्रक्षौद्रैस्तु धाव-

नम् । अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम् ॥ हरीतकी वचा कुष्ठं कल्कं माक्षिकसंयुतम् । पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकण्टकात् ॥ ४५ ॥

भाषा-चमेलीके पत्ते, दाख, पाढ और त्रिफला इनको दूधमें औटाकर शीतल करके सहत मिलाके कुल्ले करनेसे मुखपाकरोग दूर होता है । अनंतमूल, चिरायता, लोध और मुलहठी इनके काथके द्वारा मुखको धोनेसे बालकोंके मुखसे लारका गिरना बंद हो जाता है । बालकोंके मुखपाकरोगमें आमका सार, लोहेका चूर्ण, गेरु और रसोत इनको पीसकर सहत मिलाके मुखमें लगावे। दारुहलदी, मुलहठी, हरड, चमेलीके पत्ते इनको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाके मुखमें लगावे तो मुखपाकरोग दूर होवे अथवा पीपलकी छाल और पीपलके पत्तोंको सहतमें पीसकर मुखमें लगावे तो मुखपाक रोग दूर होवे । हरड, वच, कूठ इनको एकत्र सहतमें पीसकर दूधके साथ पान करनेसे बालकोंका तालुकंटकरोग दूर होता है ॥ ४५ ॥

मूत्रकृच्छ्रहर काथादिकथन ।

मेघामृतानागरवाजिगंधाधात्रीत्रिकण्टैर्विहितः कषायः । क्षौद्रेण पीतः शमयत्यवश्यं मूत्रस्य कृच्छ्रं पवनप्रभूतम् ॥ यवक्षारयुतः क्राथः स्वादुकण्टकसम्भवः । पीतः प्रणाशयत्याशु मूत्रकृच्छ्रं कफोद्भवम् ॥ एरण्डतैलं सपयः पिबेद्यो गव्येन मूत्रेण तदेव पीत्वा । सगुग्गुलुः प्रौढरुजं प्रवृद्धं स वातव्याधिं सहसा निहंति॥४६॥

भाषा-नागरमोथा, गिलोय, असगंध, आमले, गोखरु इनके काथमें सहत डालकर पान करनेसे बालकोंका वातज मूत्रकृच्छ्र दूर होता है । गोखुरुओंके काथमें जवाखारका चूर्ण डालकर पान करनेसे कफज मूत्रकृच्छ्र दूर होता है । अंडीके तेलमें दूध मिलाकर पीनेसे अथवा अंडीके तेलमें दूध, गोमूत्र और गूगल मिलाकर पान करनेसे अत्यन्त बढी हुई वातव्याधि और मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ४६ ॥

मूत्ररोधहर कर्पूरवर्तिका ।

कर्पूरवर्ती मृदुना लिंगच्छिद्रे निधारयेत् ।
शीघ्रं तथा महाघोरान्मूत्रबंधात् प्रमुच्यते ॥ ४७ ॥

भाषा-नरम कपडेसे कपूरकी बत्ती बनाकर उस बत्तीको लिंगके छिद्रमें धारण करनेसे अत्यंत दारुण मूत्ररोध नष्ट होकर अच्छे प्रकारसे मूत्र उतरता है ॥ ४७ ॥

मूत्रग्रहे लेहः ।

कणोषणसिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृतः ।
मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह उत्तमः ॥ ४८ ॥

भाषा–पीपल, काली मिरच, चीनी, छोटी इलायची और सेंधानोन इन सबों‑को एकत्र पीसकर सहतमें मिलाके चाटनेसे बालकोंका मूत्रग्रह नष्ट होता है ॥४८॥

पोलिकास्वरसक्काथादि भक्षण ।

वनकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजितम् । पक्त्वा तु पोलिकां खादेदपचीनाशकारिणीम् ॥ शिरीषनक्तमालानां बीजैरंजितलोचनः । चित्तोन्मादं निहन्त्याशु सापस्मारापतंत्रिकम् ॥ वासायाः स्वरसः पीतः सितामधुसमन्वितः । चूर्णैश्च वटरोहाणां रक्तपित्तं विनाशयेत् ॥ पलाशपुष्पक्काथेन वासायाः स्वरसेन वा । चतुर्गुणेन संसिद्धं रक्तपित्तहरं घृतम् ॥ ४९ ॥

भाषा–वनकपासकी जडको चावलोंके संग पीसकर रोटी बनाकर भक्षण करनेसे अपचीरोग दूर होता है । सिरस और करंजके बीजोंको बारीक पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे चित्तोन्माद, अपस्मार और अपतंत्रकरोग दूर होता है । अडूसेके स्वरसमें वडके अंकुरोंका चूर्ण, चीनी और सहत डालकर पान करनेसे बालकोंका रक्तपित्तरोग दूर होता है । घीको चौगुने पलाशके फूलोंके काथमें और अडूसेके रसमें पकाकर सेवन करनेसे रक्तपित्तरोग दूर होता है ॥ ४९ ॥

नस्यविधिः ।

रसो दाडिमपुष्पाणां दूर्वायाः स्वरसेन वा ।
नस्येन नाशयेत्तूर्णं नासिकारक्तमुद्धतम् ॥ ५० ॥

भाषा–अनारके फूलोंका रस और अडूसेके स्वरसका नास लेनेसे नासिकासे अत्यन्त रुधिरका गिरना बंद होता है ॥ ५० ॥

हिंग्वाष्टकचूर्णम् ।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरकद्वे समचरणघृतानामष्टमो हिंगुभागः । प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेतत् जनयति जठराग्निं वातगुल्मं निहन्ति ॥ ५१ ॥

भाषा–सोंठ, मिरच, पीपल, अजमोदा, सेंधानोन, जीरा, काला जीरा और हींग

यह समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण कर ले। इस चूर्णको घीमें मिलाकर भोजनके पहिले ग्रासमें भक्षण करे। यह हिंगाष्टकचूर्ण अग्निको दीपन करे है और वातगुल्मको नष्ट करे है ॥ ५१ ॥

स्वेदादिकथन।

पुनर्नवैरण्डनवातसीभिः कार्पासजैरस्थिभिरारनालैः । स्विन्ने-रमीभिरिति सद्भिरेव स्वेदः समीरात्तिहरो नराणाम् ॥ कूष्मा-ण्डकरसं कृत्वा मधुकं परिपेषयेत् । अपस्मारविनाशाय तत् पिबेत् सप्तवासरान् ॥ गोसर्पिःसाधितं पूतं दधिक्षीरशकृद्रसैः । चातुर्थिकज्वरोन्मादसर्वापस्मारनाशनम् ॥ ५२ ॥

भाषा-पुनर्नवा, अंडकी जड़, नवीन अलसी और कपासके बिनौले इनको कांजी-में पीसकर बालकको स्वेद देनेसे अत्यन्त पसीनेका आना और वातकी पीड़ा दूर होती है। मुलहठीको पेठेके रसमें पीसकर सात दिन तक पान करनेसे अपस्माररोग शांत होता है। गायका दही, दूध, गोबर रसके द्वारा गायके घीको सिद्ध करके सेवन करनेसे बालकोंका चातुर्थिकज्वर, उन्माद और अपस्माररोग दूर होता है ॥ ५२ ॥

वर्त्तिका।

हिंगुमाक्षिकसिन्धूत्थैः कृत्वा वर्त्तिं सवर्त्तिताम् ।
घृताभ्यक्तां गुदे दद्यात् उदावर्त्तविनाशिनीम् ॥ ५३ ॥

भाषा-हींग, सहत और सैंधानोन इनकी बत्ती बनाकर घीमें भिगोकर बालक-की गुदामें चढानेसे उदावर्त्तरोग दूर होता है ॥ ५३ ॥

लेह्यलेपहारादिक्रिया।

शुंठीकणापुष्करकेतकीनां विधाय चूर्णं ककुभत्वचो वा। रास्ना-न्विता वा मधुनावलीढं हृद्रोगमेतच्छमयत्युदग्रम् ॥ कोला-स्थिपद्मकोशीरचंदनं नागकेशरम् । लीढं क्षौद्रेण बालानां मूर्च्छानाशनमुत्तमम् ॥ द्राक्षामामलके स्विन्नं पिष्ट्वा क्षौद्रेण संयुतम्। सर्वदोषभवां मूर्छां सज्वरां नाशयेद् ध्रुवम् ॥ शीताः प्रदेहा मणयः सहाराः सेकावगाहा व्यजनस्य वाताः । लेह्या-न्नपानादिसुगंधशीतं मूर्च्छासु सर्वासु परं प्रशस्तम् ॥ मागधी मागधीमूलं नागरं मरिचान्वितम् । क्षौद्रेण लीढं कफजं स्वर-

भेदं व्यपोहति ॥ गर्दभीदुग्धपानेन तुलसीपत्रभक्षणात् । शीतलातोयपानेन नाभिसेकश्च शस्यते ॥ भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद्रोमयरेणुना । कृमिपातभयाच्चापि धूपयेत्सुरसादिभिः ॥ चन्दनं वासकं मुस्ता गुडूची द्राक्षया सह । एतच्छीतकषायस्तु शीतलाज्वरनाशनः ॥ ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम् । आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्य्यात् कण्डूं च दाहं च रुजं च हन्यात् ॥ चन्दनं मधुकं लोध्रं जातिपुष्पाणि गैरिकैः । प्रलेपो दाहरोगघ्नस्तोयाभिष्यन्दनाशनः ॥ शंखस्य भागाश्चत्वारस्तदर्द्धेन च पिप्पली ।वारिणा तिमिरं हन्ति अर्बुदं हन्ति मस्तुना ॥ ८४ ॥

भाषा-सोंठ, पीपल, पोहकरमूल, केतकी और अर्जुनकी छालका चूर्ण तथा रायसन इन सबोंको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर चाटनेसे अत्यन्त उग्र हृदयरोग शांत होता है । बेरकी गुठली, कमल, खस, चंदन और नागकेशर इनको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाके चाटनेसे मूर्छारोग शांत होता है । दाख और आमलोंको उसेकर सहतके साथ पीसकर सेवन करनेसे सर्व दोषोत्पन्न और ज्वरसहित मूर्छा दूर होती है। चंदनादि शीतल पदार्थोंका लेप,रत्नहार आदिका धारण, सेचन, जलमें घुसकर स्नान करना, पंखेकी पवन, शीतल और सुगंधित लेह, अन्नपान ये सब मूर्छारोगमें अत्यन्त हितकारी हैं । पीपल, पीपलामूल, सोंठ और काली मिरच इनके चूर्णमें सहत मिलाकर अवलेह करनेसे कफज स्वरभेदरोग दूर होता है । गधीके दूधको पीनेसे, तुलसीके पत्तोंका भक्षण करनेसे, शीतल जलको पीनेसे, शीतल पदार्थोंके खानेसे और शीतलादेवीका स्तवन तथा पूजन करनेसे बालकोंका मातारोग दूर होता है । कोई वैद्य उपलोंकी राख और कोई वैद्य उपलोंके चूर्णको मातावाले बालकके तले बिछाते हैं । इसमें कीडे पड जानेके भयसे तुलसी आदिकी धूप देवे । चन्दन, अडूसा, नागरमोथा, गिलोय और दाख इनके शीतल काथका पान करनेसे शीतलाका ज्वर नष्ट होता है । सेंधानोन, लोध, सहत और घी इनको कांजीमें पीसकर सफेद कपडेकी पोटली बांधकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंकी खुजली, दाह और पीडा शांत होती है । चन्दन, मुलहठी, लोध, चमेलीके फूल और गेरु इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे दाहरोग, नेत्रोंका दूखना और नेत्रोंसे पानीका गिरना बंद होता है । शंख ४ भाग और पीपल २ भाग इन दोनोंको

जलमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे तिमिररोग दूर होता है। दहीके तोडके साथ नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रअर्बुदरोग दूर होता है ॥ ५४ ॥

नेत्ररोगहर दुग्धांजनादिक्रिया।

चिपटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तदुन्नतम् ॥ व्योषं च शृंगं च मनःशिलां च करंजबीजं च सुपिष्टमेतत्। कण्डूर्दितानामथ वर्त्मनां तु श्रेष्ठं शिशूनां नयने विदध्यात्॥ कपिलामातुलिंगोत्थशृंगवेररसः शुभः। सुखोष्णाः पूरयेत्कोष्णाः कर्णशूलोपशांतये ॥ अर्कस्य पत्रं परिणामपीतं तैलेन लिप्तं सशिखाग्नितप्तम्। आपिड्य तोयं श्रवणेतिषिक्तं विनिर्हरेद्वै बहुवेदनां च ॥ घृष्टं रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम्। प्रशस्यते शिरोरोगस्रावे वा पूतिकर्णिके ॥ जम्बूकनासा वायसजिह्वा नाभिर्वराहसम्भूता। कांस्यरसोऽथ गरलं प्रावृषभेदकस्य वामजंघास्थि ॥ इत्येकशोऽथ मिलितं विधृतं जीवादिकटिदेशे। अहिंडिकाप्रशमनमभ्यंगो नातिपथ्यविधिः ॥ सोमग्रहणे विधिवत् केकिशिखामूलमुद्धृतं बध्वा। जघनेऽथ कन्धरां क्षपयति बालानामहिंडिकां नियतम् ॥ सप्तदलपुष्पं मरीचपिष्टं गोरोचनया सहितम् ॥ पीतं निहन्ति तदहिण्डिकारोगं शिशोर्नियतम्। उदुम्बरमूलं बालककटीबंधनादहिण्डिकां हन्ति ॥ स्कन्दग्रहोपसृष्टानां कुमाराणां प्रशस्यते। वातघ्नद्रुमपत्राणां निःक्वाथः परिषेचनम् ॥ तेषां मूलेषु सिद्धं च तैलमभ्यंजने हितम्। सर्वगंधसुरामंडकैटर्य्योवापमिष्यते ॥ ५५ ॥

भाषा-सहतके साथ मिलाकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्र चिपटरोग दूर होता है और स्त्रीके दूधमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रोंकी सूजन दूर होती है। त्रिकुटा, सींग, मैनशिल और करंजके बीज इन सबोंको समान भाग लेकर पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे नेत्रोंकी खुजली नेत्र अर्दित पलकोंके रोग दूर होते हैं। कवीला, बिजौरेकी केशर और अदरखका रस इनको एकत्र मिलाके सुखोष्ण कानोंमें डालनेसे कर्णशूल नष्ट होता है। अपने आप पीला हुआ ऐसा आकका पत्ता लेकर उसको तैलसे चिपिड-

कर उसको दीवेकी लोहसे सेके, फिर उसको कूटकर रस निचोडकर बालके कानमें डालनेसे कानकी पीड़ा दूर होती है। रसौतको स्त्रीके दूधमें घिसकर सहतमें मिलाके कानोंमें डालनेसे कर्णस्राव, पूतिकर्णरोग और शिरोरोग दूर होता है। गीदड़की नाक, कौवेकी जीभ, सूअरकी नाभि, कांसा, पारा, विष और वर्षाऋतुके मेंढककी बांयी जांघकी हड्डी इनमेंसे एक किसीको अथवा सबोंको एकत्र मिलाके बालकोंकी कमर अथवा गलेमें बांधनेसे अहिंडिका रोग दूर होता है इसमें अभ्यंग कराना चाहिये। विशेष पथ्यकी आवश्यकता नहीं। चन्द्रग्रहणमें मोरशिखाकी जडको उखाडकर बालकोंकी जांघों और कन्धोंमें बांधनेसे ग्रहदोषजनित अहिण्डिकारोग दूर होता है। सतवनके फूल और काली मिरचोंको पीसकर गोरोचनके साथ पीनेसे बालकोंका अहिण्डिका रोग दूर होता है। गूलरकी जडको बालककी कटिमें बांधनेसे अहिंडिका रोग दूर होता है। स्कन्दग्रहसे ग्रसित बालकोंको वातनाशक वृक्षोंके पत्तोंके काथसे सींचन हितकारी है और वातनाशक वृक्षोंकी जडके द्वारा सिद्ध किया हुआ तेल अभ्यंगमें हितकारी है अथवा सर्वगंधयुक्त सुराके मांडको नीमके जलमें मिलाकर बालकोंके शरीरसे मले यहभी अभ्यंग उत्तम है ॥ ९५ ॥

घृतपानम् ।

देवदारुणि रास्नायां मधुरेषु द्रवेषु च ।
सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पानमस्मै प्रयोजयेत् ॥ ९६ ॥

भाषा-देवदारु, रास्ना और मधुर रसवाले द्रव्य और दूधके द्वारा सिद्ध किया हुआ घी बालकको पीनेको देवे ॥ ९६ ॥

धूपप्रकार ।

सर्षपाः सर्पनिर्मोको वचा काकादनी घृतम् ।
उष्ट्राजाविगवां चैव रोमाण्युद्धूपनं शिशोः ॥ ९७ ॥

भाषा-सरसों, सांपकी कैंचुली, वच, कौवाठोंडी, घी, ऊंट, गाय और भेडके रोम इनकी धूप बालकको देनी चाहिये ॥ ९७ ॥

घंटाबलिदानादि हवनप्रकार ।

सोमवल्लीमिंद्रवल्लीं शमीं बिल्वस्य कंटकान् । मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितान्येव धारयेत् ॥ रक्तानि माल्यानि तथा पताका रक्ताश्च गंधा विविधाश्च भक्ष्याः । घंटा च देवाय बलिर्निवेद्यः सकुक्कुटः स्कन्दग्रहे हिताय ॥ स्नानं त्रिरात्रं निशि चत्वरेषु

कुर्य्यात्पुनः शालियवैर्नवैस्तु । आभिश्च गायत्र्यभिमंत्रिताभिः प्रज्वालनं चाहुतिभिश्च वह्नेः ॥ ५८ ॥

भाषा-सोमलता, इन्द्रायन, छोंकरके कांटे, बेलके कांटे और सहदेईकी जड इनको एकत्र करके बालककी गांठमें बांध देवे । लाल फूलोंकी माला, लाल झंडी, गंधक, लोबान, गूगल इत्यादि गंधद्रव्य, नाना प्रकारके भक्ष्यपदार्थ, घंटा और मुरगेका बलि अर्द्धरात्रिके समय चौराहेमें बालकको नन्हावे, पश्चात् शालिधानके चावल और जौंको मिलाकर गायत्रीसे शुद्ध किये जलसे उनको धोकर साफ करके निवेदन करे फिर आगको जलाकर आहुती देवे ॥ ५८ ॥

रक्षामंत्रः।

रक्षामतः प्रवक्ष्यामि बालानां पापनाशिनीम् । अहन्यहनि कर्तव्या याभिरङ्गिरतंद्रितैः॥"तपसां तेजसां चैव यशसां वपुषां तथा । निधानं योऽव्ययो देवः स ते स्कन्दः प्रसीदतु ॥ ग्रहः सेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः । देवसेनारिपुहरः पातु त्वां भगवान् गुहः ॥ देवदेवस्य महतः पावकस्य च यः सुतः । गंगोमाकृत्तिकानां च स ते शर्म प्रयच्छतु॥ रक्तमाल्यांबरधरो रक्तचन्दनभूषितः । रक्तदिव्यवपुर्देवः पातु त्वां क्रौञ्चसूदनः"॥ ५९ ॥

भाषा-जो कि वैद्योंको प्रतिदिन करनी चाहिये । "तपसां तेजसां इत्यादि" इस मन्त्रको पढकर बालककी रक्षा करे ॥ ५९ ॥

सुरसादिगणः।

बिल्वः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो गणः । परिषेकः प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्मारशांतये ॥ सुरसा श्वेतसुरसा पाठा फंजी फणिज्झकः । सौगन्धिकं भूस्तृणको राजिका श्वेतबर्बरी॥ कट्फलं खरपुष्पा च कासमर्दश्च शल्लकी । विडंगमथ निर्गुण्डी कर्णिकार उदुम्बरः ॥ बला च काकमाची च तथा च विषमुष्टिका । कफकृमिहरः ख्यातः सुरसादिरयं गणः ॥ ६० ॥

भाषा-बेलकी जड, सिरसकी छाल, सफेद दूब और सुरसादिगणकी समस्त औषधियोंके जलसे छींटा देनेसे स्कन्दापस्मारग्रह शांत होता है । तुलसी, सफेद तुलसी, पाठ, भारंगी, मरुआ, कमोदिनी, सुगंधित तृण, राई, सफेद वनतुलसी,

कायफल, काली वनतुलसी, कसौंदी, शालई, वायविडंग, संभालू, कनेर, गूलर, खिरेटी, मकोय और मकरतंदू इन सब औषधियोंके समूहको सुरसादिगण कहते हैं । यह सुरसादिगण कफ और कृमिनाशक है ॥ ६० ॥

मूत्राष्टकतैलकथनम् ।

अष्टमूत्रविपक्कं च तैलमभ्यंजने हितम् ।
गोजाविमहिषाश्वानां खरोष्ट्रकरिणां तथा ॥
मूत्राष्टकमिति ख्यातं सर्वशास्त्रेषु सम्मतम् ॥ ६१ ॥

भाषा-अष्टमूत्रके द्वारा तेलको पकाकर मालिस करनेसे स्कन्दापस्मार शांत होता है । गाय, बकरी, भेड, भैंस, घोडा, गधा, ऊंट और हाथी इन आठ पशुओंके मूत्रको मूत्राष्टक कहते हैं ॥ ६१ ॥

काकोल्यादिगणकथनम् ।

क्षीरवृक्षकषायेण काकोल्यादिगणेन च । विपक्कव्यं ततः पश्चात् दातव्यं पयसा सह ॥ काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभक- स्तथा । ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा मेदा महामेदा गुडूचिका ॥ मुद्गपर्णी माषपर्णी पद्मकं वंशलोचना । शृंगी प्रपौण्डरीकं च जीवन्ती मधुयष्टिका ॥ द्राक्षा चेति गणो नाम्ना काकोल्यादिरुदीरितः । स्तन्यकृत् बृंहणो वृष्यः पित्तरक्तानिलापहः ॥ ६२ ॥

भाषा-क्षीरी वृक्षोंके क्वाथ और काकोल्यादि द्रव्योंके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर दूधमें मिलाकर इसमें प्रयोग करे । काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, गिलोय, मुगवन, मषवन, पद्माख, वंशलोचन, काकडाशिंगी, पुंडेरिया, जीवन्ती, मुलहठी और दाख इन सब औषधियोंके समुदायको काकोल्यादि गण कहते हैं । काकोल्यादि गण स्तनोंमें दूधको बढानेवाला, वीर्य्यवर्द्धक, पुष्टिकारक तथा पित्त, रक्त और वातको नष्ट करे है ॥ ६२ ॥

स्कन्दापस्मारनाशकमंत्रः ।

उत्सादनं वचा हिंगु युक्तमत्र प्रकीर्तितम् । गृध्रोलूकपुरीषाणि केशा हस्तिनखोद्धृतम्॥वृषभस्य च रोमाणि योज्यान्युद्धूपने सदा। अनन्तां कुक्कुटीं बिम्बीं मर्कटीं चापि धारयेत् ॥ पक्कान्यन्नानि मांसानि प्रसन्ना रुधिरं पयः । मुद्गौदनं निवेद्याथ स्कन्दापस्मारि-

णे वटे ॥ चतुष्पथे कारयेच्च स्नानं तेन ततः पठेत्। "स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः स्कन्दस्य दयितः सखा। विशाखः स शिशोरस्य शिवायास्तु शुभाननः" ॥ ६३ ॥

भाषा-इसमें वच और हींगका उबटन हितकारी है। गीध और उल्लूकी विष्ठा तथा बाल, हाथीका नख, बैलके बाल इन सबोंको एकत्र करके बालकको धूनी देवे। अनंतमूल, सेमल, कंदूरी और कौंछकी जड इन सबोंको बालकके गले आदिमें बांध देवे। अनेक प्रकारके पकवान, मिष्टान्न, मांस, मदिरा, रुधिर, दूध, मूंग और भात इन सबोंको एक सैनकमें रखके रातके समय वडवृक्षके तले बलि देवे और बालकको स्नान करावे। एवं "स्कन्दापस्मार इत्यादि" इस मंत्रको पढे ॥६३॥

सेचनधूपादिप्रकारः।

शकुनीग्रहजुष्टस्य कार्य्यं वैद्येन जानता। वेतसाम्रकपित्थानां क्वाथेन परिषेचनम् ॥ ह्रीवेरमधुकोशीरसारिवोत्पलपद्मकैः। लोध्रप्रियंगुमंजिष्ठागैरिकैः प्रदिहेत् शिशुम् ॥ स्कन्दग्रहोक्ता धूपाश्च हिता अत्र भवंति हि। स्कन्दापस्मारशमनं घृतमत्रापि पूजितम् ॥ शतावरीमृगेर्वारुनागदंतीनिदिग्धिकाम्। लक्ष्मणां सहदेवीं च बृहतीं चापि धारयेत् ॥ तिलतण्डुलकं माल्यं हरितालं मनःशिलाम्। बलिरेषां करंजे तु निवेद्यो नियतात्मना ॥ निकटे च प्रयोक्तव्यं स्नानमस्य यथाविधि। कुर्याच्च विविधां पूजां शकुन्याः कुसुमैः शुभैः॥ निकुम्भोक्तेन विधिना स्नापयेत्तं ततः पठेत् ॥ ६४ ॥

भाषा-शकुनीग्रहग्रसित बालकको वैद्य वेत, आम और कैथके क्काथसे सींचे। सुगंधबाला, मुलहठी, खस, सारिवा, कमल, पद्माख, लोध, फूलप्रियंगू, मजीठ और गेरु इन सबोंको एकत्र पीसकर बालकके शरीरसे मले। स्कन्दग्रहमें कही हुई धूपभी इसमें हितकारी है और स्कन्दापस्मार ग्रहको शमन करनेवाले घृतकाभी इसमें प्रयोग करना चाहिये। शतावर, बडी इन्द्रायन, नागदन्ती, कटेरी, लक्ष्मणा, सहदेवी और बृहती इन सबोंको एक जगह करके बालकके गले आदिमें बांध देवे। तिल, चावल, माला, हरिताल और माला इन सबोंको एकत्र करके करंजके वृक्षके नीचे बलि देवे और विधिपूर्वक बालकको स्नान करावे। अनेक प्रकारके

फूलोंसे विविध प्रकारसे शकुनीग्रहकी पूजा करके निकुम्भोक्त विधिसे बालकको स्नान करावे ॥ ६४ ॥

बालकका रक्षामंत्र ।

"अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालंकारभूषिता । अधोमुखी सूक्ष्मतुण्डा शकुनी ते प्रसीदतु ॥ दुर्दर्शना महाकाया पिंगाक्षी भैरवस्वरा । लम्बोदरी शंकुकर्णी शकुनी ते प्रसीदतु " ॥ ६५ ॥

भाषा–और " अन्तरिक्ष इत्यादि " इस मंत्रको पढकर बालककी रक्षा करे ॥ ६५ ॥

क्राथकल्कतैलादिक्रिया ।

अश्वगंधाजशृंगी च सारिवाथ पुनर्नवा । सहा विदारी द्वेतासां क्राथेन परिषेचनम् ॥ तैलमभ्यंजने कार्य्यं कुष्टे सर्जरसे तथा । पलं कषायं नलदे तथा गौरकदम्बके ॥ धवाश्वकर्णककुभशल्ल-कीतिन्दुकेषु च । काकोल्यादौ गणे चापि सिद्धं सर्पिः पिबेत् शिशुः ॥ ६६ ॥

भाषा–असगंध, मेढाशिंगी, सारिवा, पुनर्नवा, पियाबांसा और बिदारीकंद इनके काथसे बालकको तडका देवे । कूठ, राल, लाल, खस और गौर कदम्ब इनके कल्कके तेलको पकाकर शरीरसे मले । धव, साल, अर्जुन, शालई, तेंदू, काकोल्यादि गणकी समस्त औषधियोंके द्वारा घृतको पकाकर बालकको पान करावे ॥ ६६ ॥

धूपस्नानादिरक्षामंत्रः ।

कुलत्थं शंखचूर्णं च प्रदेहः पूर्वगंधकः । गृध्रोलूकपुरीषाणि यवा-न्यवफलो घृतम् ॥ संध्ययोरुभयोः कार्य्यमेतदुद्धूपनं शिशोः । शुक्लाः सुमनसो लाजाः पयः शाल्योदनं दधि ॥ बलिर्निवेद्यो गोतीर्थे रेवत्यै प्रयतात्मनः । स्नानं धात्रीकुमाराभ्यां संगमे का-रयेद्भिषक् ॥ " नानाशस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना । चल-त्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु ॥ उपासते यां सततं देव्यो विविधभूषणाः । लम्बा कराला विनता तथैव बहुपुत्रिका ॥ रेवती शुष्कनासा च तुभ्यं देवी प्रसीदतु " ॥ ६७ ॥

भाषा-कुलथी, शंखका चूर्ण और असगंध इसके द्वारा उवटन करे । गीध, उल्लूकी विष्ठा, जौ, बांसके अंकुर और घी इनकी प्रातःकाल और संध्याको धूनी देवे। सफेद फूल, खीलें, दूध, भात और दही इनका बलि रेवतीग्रहके लिये गायके स्थानमें देकर जहां दो नदी मिली हों वहां बालक और धायको स्नान करावे। " नानाशस्त्रधरा देवी " इत्यादि मंत्रसे बालककी रक्षा करे ॥ ६७ ॥

स्नानधूपादिरक्षामंत्रः ।

कपोतवङ्का श्योनाको वरुणः पारिभद्रकः । आस्फोता चैव योज्याः स्युर्बालानां परिषेचने॥ नवा पयस्या गोलोमी हरितालं मनःशिला । कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थे कल्क इष्यते ॥ हितं घृतं तु गोक्षीर्य्योः संसिद्धं मधुकेऽपि च । कुष्ठतालीसखदिराः स्यन्दनोऽर्जुन एव च ॥ पनसः ककुभश्चापि मज्जानो बदरस्य च । कुक्कुटास्थि घृतं चापि धूपनं सह सर्षपैः॥ काकादनीं चित्रफलां बिम्बीं गुंजां च धारयेत् । मत्स्योदनं बलिं दद्यात् कृशरां पललं तथा॥ शरावसंपुटे कृत्वा तस्य शून्ये गृहे भिषक् । उत्सृष्टान्नाभिषिक्तस्य शिशोः स्नपनमिष्यते ॥ कुष्ठतालीसखदिरं चन्दनं स्यन्दनं तथा। देवदारु वचा हिंगु कुष्ठं गिरिकदम्बकम्॥ एला हरेणवश्चापि योज्या उद्धूपने सदा॥ " मलिनाम्बरसंवीता मलिना रूक्षमूर्द्धजा॥ शून्यागाराश्रया देवी दारकं पातु पूतना"॥६८॥

भाषा-ब्राह्मी, सोनापाठा, वरना, नीम और कोइली इनके क्वाथसे बालकको स्नान करावे नवीन दुद्धी, सफेद दूब, हरिताल, मैनशिल, कूठ और राल इनके कल्कके द्वारा तैलको पकाकर बालकके शरीरसे मालिस करे। वंशलोचन और मुलहठीसे घीको सिद्ध करके बालकको पीनेको देवे । कूठ, तालीसपत्र, खैर, तेंदू, अर्जुन, कटैल, कोह, बेरकी गिरी, मुरगेकी हड्डी, घी और सरसों इन सबोंको एकत्र करके धूप देवे। कौवाठोडी, इन्द्रायन, कन्दूरी और घुंघचीकी जड इनको बालकके धारण करावे । मछली, भात, खिचडी और तिलकुट इन सबोंको एक सैनकमें रखकर और उसके ऊपर दूसरी सैनक ढककर सूने घरमें बलिदान करे । जूंठे बचे भोजनको तलमें डालकर बालकको स्नान करावे। कूठ, तालीसपत्र, खैर, चन्दन, तेंदू, देवदारु, वच, हींग, कूठ, पहाडी कदम्ब, इलायची और रेणुका इन सबोंको मिलाकर सदैव धूनी देवे और " मलिनाम्बरसंवीता इत्यादि " इस मंत्रसे बालककी रक्षा करे॥६८॥

पंचतिक्तगणादिरक्षामंत्रः ।

तिक्तद्रुमाणां पत्रेषु क्काथः कार्य्योऽभिषेचने । निम्बः पटोलः क्षुद्रा च गुडूची वासकस्तथा ॥ विसर्पकुष्ठनुत्त्याती गणोऽयं पंचतिक्तकः । पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको मधुको मधु ॥ शालिपर्णी बृहत्यौ च घृतार्थं च समाहरेत् । सर्वगंधैः प्रदेहश्च गात्रे चाक्ष्णोश्च शीतलैः ॥ पुरीषं कौकुटं केशाश्चर्म सर्पभवं तथा । जीर्णं चाभीक्ष्यधोवासो धूपनायोपकल्पयेत् ॥ कुक्कुटीं मर्कटीं बिम्बीमनन्तां चापि धारयेत् । मांसमामं तथा पक्कं शोणितं च चतुष्पथे ॥ निवेद्यमंतश्च गृहे शिशोः स्नपनमिष्यते ॥ " कराला पिंगला मुण्डा कषायाम्बरसंवृता । देवि बालमिमं प्रीता रक्ष त्वं गंधपूतने " ॥ ६९ ॥

भाषा–तिक्त (कडवे) वृक्षोंके पत्तोंके काथसे बालकको धोवे । नीम, पटोल, कटेरी, गिलोय और अडूसा इन सबोंको पंचतिक्त कहते हैं । यह पंचतिक्तगण विसर्प और कुष्ठरोगको नष्ट करे है । पीपल, पीपलामूल, चीता, मुलहटी, सहत, शालिपर्णी, कटेरी और बडी कटेरी इनके कल्कसे घीको पकाकर बालकको खानेको देवे । सम्पूर्ण सुगंधित पदार्थोंका शरीरपर लेप करे और शीतल पदार्थोंका नेत्रोंपर लेप करे । मुरगेकी विष्ठा, बाल, सांपका चमडा और बालकका पुराना पोतडा इन सबोंको मिलाकर धूनी देवे । सेमल, कोंछ, कन्दूर और अनंतमूल इनको धारण करे । कच्चा और पक्का मांस तथा रुधिर इनको अभिमंत्रित करके चौराहेमें बलि देवे और बालकको घरके भीतर स्नान करावे । " कराला पिंगला मुण्डा इत्यादि " इस मंत्रसे बालककी रक्षा करे ॥ ६९ ॥

तैलबालदानस्नानादिरक्षामंत्रः ।

गोमूत्रं चाश्वमूत्रं च मुस्ता चामरदारु च । कुष्ठं च सर्वगंधाश्च तैलार्थमवधारयेत् ॥ रोहिणीनिम्बखदिरपलाशककुभत्वचः । निःक्वाथ्य तस्मिन्क्काथे सक्षीरे विपचेद् घृतम् ॥ गृध्रोलूकपुरीषाणि बस्तिगंधामहित्वचम् । निम्बपत्राणि च तथा धूपनार्थं समाहरेत् ॥ धारयेदपि गुंजां च बलां काकादनीं तथा ।

नद्यां मुद्गौदनैश्चापि तर्पयेत शीतपूतनाम् ॥ जलाशयान्ते बालस्य स्नपनं चोपदिश्यते। देव्यै देयश्चोपहारो वारुणी रुधिरं तथा॥ "मुद्गौदनाशिनी देवी सुराशोणितपायिनी। जलाशयरता नित्यं पातु त्वां शीतपूतना" ॥ ७० ॥

भाषा-गोमूत्र, घोडेका मूत्र, नागरमोथा, देवदारु, कूठ और सर्वगंधा (वृक्षविशेष) इनके कल्कके द्वारा तेलको पकाकर बालकके शरीरमें मले। कुटकी, नीम, खैर, ढाक और अर्जुन वृक्षकी छाल इनके काथ और दूधके द्वारा घृतको पकाकर बालकको भक्षण करावे। गीध और उल्लूकी विष्ठा, तिलवन, सांपकी खाल और नीमके पत्ते इन सबोंको एकत्र मिलाकर धूप देवे। घूंघची, खिरेटी और कौआठोडी इनको धारण करे। मूग और भातका नदीके निकट बलि देवे तथा तर्पण करे और बालकको नदीके भीतर स्नान करावे। शीतपूतनाके लिये मदिरा और रुधिरकी धारा देवे। "मुद्गौदनाशिनी इत्यादि" इस मंत्रसे बालककी रक्षा करे ७०

तैलमर्दनादिबालकरक्षामंत्रः।

कपित्थं बिल्वतर्कारी वासा गन्धर्वहस्तकः। कुबेराक्षी च योज्याः स्युर्बलिनां परिषेचने ॥ स्वरसैर्भृंगवृक्षाणां तथैव हयगंधया। तैलंपचां च संयोज्य पचेदभ्यंजनं शिशोः॥ वचा सर्जरसं कुष्ठं सर्पिश्चोद्धूपने हितम्। वर्णकं चूर्णकं माल्यमंजनं पारदं तथा॥ मनःशिलां चोपहरेद्गोष्ठमध्ये बलिं ततः। पायसं सपुरोडाशं तद्बलयर्थमुपाहरेत्॥ मंत्रपूताभिरद्भिश्च तत्रैव स्नपनं हितम्॥ "अलंकृता कामवती सुभगा कामरूपिणी। गोष्ठमध्यालया या तु पातु त्वां मुखतुण्डिका" ॥ ७१ ॥

भाषा-कैथ, बेलगिरी, अरणी, अडूसा, अंड और वनतुलसी इनके काथसे बालकको स्नान करावे। भांगरेका स्वरस और असगंधके रसके द्वारा तेलको पकाकर बालकके शरीरसे मर्दन करे। वच, राल, कूठ और घी इन सबोंको एकत्र करके धूनी देवे। चन्दन, चूर्ण, माला, अंजन, पारा, मैनसिल, खीरा और पुरोडाश इनका गोष्ठके बीचमें बलिदान करे। जलको मंत्रसे अभिमंत्रित करके बालकको स्नान करावे। "अलंकृता कामवती इत्यादि" इस मंत्रसे बालककी रक्षा करे॥७१॥

धूपस्नानादिरक्षामंत्रः।

बिल्वाग्निमंथपूतीकैः कार्यं स्यात्परिषेचनम्। प्रियंगुसरलानन्ता-

शतपुष्पाकुटन्नटैः ॥ पचेत्तैलं सगोमूत्रं दधिमस्त्वम्लकांजिकैः । वचां वयस्थां जटिलां गोलोमीं चापि धारयेत् ॥ उत्सादनं हितं चात्र स्कन्दापस्मारनाशनम् । मर्कटोलूकगृध्राणां पुरीषाणि प्रधूपनम् ॥ धूमः सुप्तजने कार्य्यो बालस्य हितमिच्छता । तिलतण्डुलकं माल्यं भक्ष्यांश्च विविधानपि ॥ कौमारभृत्यमेपाय प्लक्षमूले निवेदयेत् । अधस्तात् क्षीरवृक्षस्य स्नपनं चोपदिश्यते ॥ " अजाननश्चलाक्षिभ्रूः कामरूपी महायशाः । बालं पालयिता देवो नैगमेयोऽभिरक्षतु" ॥ ७२ ॥

भाषा-बेल, अरणी, दुर्गंधकरंज इनके क्काथसे बालकको सींचे । फूलप्रियंगू, धूपसरल, अनंतमूल, सोया, श्योनाक, गोमूत्र, दहीका तोड और खट्टी कांजी इन सब पदार्थोंके द्वारा तेलको पकाकर बालकके शरीरसे मर्दन करे । वच, हरड, बालछड और सफेद दूब इनको धारण करे । स्कन्दापस्मारनाशक औषधियोंकी मालिस करे । वन्दर, उल्लू और गीधकी धूनी देवे, जब घरके सब मनुष्य सो जावें तब धूनी देवे । तिल, चावल, माला और विविध प्रकारके भक्ष्यपदार्थ नैगमेय गृहकी शांतिके लिये पाखरकी जडमें बलि देवें और जलको मंत्रसे पवित्र करके क्षीरवृक्षके तले बालकको स्नान करावे और " अजानन इत्यादि " इस मंत्रसे बालककी रक्षा करे ॥ ७२ ॥

सर्वरोगहरबालो रसः ।

पलं शुद्धस्य सूतस्य गंधकस्य च तत्समम् । सुवर्णमाक्षिकस्यापि चार्द्धभागं नियोजयेत् ॥ ततः कज्जलिकां कृत्वा लोहपात्रे मये दृढे । केशराजस्य भृंगस्य निर्गुण्ड्याः पर्णसम्भवम् ॥ स्वरसं काकमाच्याश्च ग्रीष्मसुन्दरकस्य च। सूर्य्यावर्त्तकवर्षाभूभेकपर्णीरसैस्तथा ॥ श्वेतापराजितायाश्च रसं दद्याद्विचक्षणः । देयं रसार्द्धभागेन चूर्णं मरिचसम्भवम् ॥ शुभे शिलामये पात्रे यामदण्डेन मर्दयेत् । शुष्कमातपसंयोगात् गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ प्रमाणं सर्षपाकारं बालानां च प्रयोजयेत् । हन्ति त्रिदोषसम्भूतं ज्वरं चैव सुदारुणम् ॥ कासं च विविधं चैव सर्वरोगं निहन्ति च ॥ ७३ ॥

भाषा-शुद्ध पारा ४ तोले, शुद्ध गंधक ४ तोले और शुद्ध सोनामक्खी २ तोले लेवे। इन तीनोंको एकत्र मिलाकर उत्तम दृढ लोहेके पात्रमें इनकी कज्जली करे, फिर कुकुरभांगरा, भांगरा, निर्गुण्डी, पान, मकोय, ग्रीष्मसुन्दर, हुलहुल, सांठ, मण्डूकपर्णी और सफेद कोयल प्रत्येकके रसमें अलग अलग भावना देवे। पश्चात् इसमें दो तोले काली मिरचोंका चूर्ण मिलाकर एक प्रहरतक खरल करे। फिर थोडी देर धूपमें रख देवे। जब गाढा पड जाय तब सरसोंकी बराबर गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली बालकको लेवे। यह गोली त्रिदोषज दारुण ज्वर और अनेक प्रकारकी खांसीको दूर करे है ॥ ७३ ॥

इति बालरोगचिकित्सा समाप्ता।

अथ विषरोगनिदानम्।

विषरोगकी संख्यारूप संप्राप्ति।

स्थावरं जंगमं चैव द्विविधं विषमुच्यते । मूलात्मकं तदाद्यं स्यात्परं सर्पादिसम्भवम् ॥ दशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम्। मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक्क्षीरं सार एव च ॥ निर्यासो धातवश्चैव कन्दश्च दशमः स्मृतः । दृष्टिनिश्वासदंष्ट्रा च नखमूत्रमलानि च ॥ शुक्रं लाला मुखं स्पर्शः संदंशश्चावमर्दितः। गुदास्थिपित्तशृंगाणि दश षट् जंगमाश्रयः ॥ १ ॥

भाषा-स्थावर और जंगम इन भेदोंसे विष दो प्रकारका है। वृक्षकी मूलादिकसे उत्पन्न हुए विषको स्थावर और सर्पादिके विषको जंगमविष कहते हैं। तहां स्थावरविषके दश और जंगमविषके सोलह स्थान हैं। मूल, पत्र, पुष्प, फल, त्वक्, क्षीर, सार, गोंद, धातु और कंद ये स्थावर विषके दश स्थान हैं। दृष्टि, श्वास, डाढ, नख, मूत्र, मल, शुक्र, लार, मुख, स्पर्श, डसना, मसलना, गुदा, हड्डी, पित्त और शींग ये जंगम विषके १६ स्थान हैं ॥ १ ॥

जंगमविषके सामान्यलक्षण।

निद्रा तन्द्रा क्लमं दाहमपाकं रोमहर्षणम्।
शोथं चैवातिसारं च कुरुते जंगमं विषम् ॥ २ ॥

भाषा-निद्रा, तन्द्रा, क्लम (ग्लानि), दाह, अन्नका न पचना, रोमांच हो आना, सूजन और अतिसार ये कार्य्य जंगमविषके हैं ॥ २ ॥

स्थावरविषके सामान्यलक्षण ।

स्थावरं तु ज्वरं हिक्कां दन्तहर्षं गलग्रहम् ।
फेनच्छर्द्यरुचिश्वासं मूर्च्छां च कुरुते भृशम् ॥ ३ ॥

भाषा-ज्वर, हिचकी, दन्तहर्ष, गलेमें पीडा, मुखसे झागोंका गिरना, वमन, अरुचि, श्वास और मूर्छा ये कार्य्य स्थावरविषके हैं अर्थात् स्थावरविष यह लक्षण करता है ॥ ३ ॥

विष देनेवालेके लक्षण ।

इंगितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः । जानीयाद्विषदातारमेतैर्लिङ्गैश्च बुद्धिमान् ॥ न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च । अपार्थं बहुसंकीर्णं भाषते चापि मूढवत् ॥ हसत्यकस्मात्स्फोटयत्यंगुलीं विलिखेन्महीम् । वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चान्योन्यमीक्षते ॥ विवर्णवक्त्रः क्षामश्च नखैः किंचिच्छिनत्त्यपि । आलभेतासनं दीनः करेण च शिरोरुहम् ॥ वर्त्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः ॥ ४ ॥

भाषा-मनुष्यके अन्तःकरणके अभिप्राय पहचाननेवाला वैद्य वचन, चेष्टा और मुखकी विकृतिसे तथा अन्योन्य और नीचे लिखे लक्षणोंसे विष देनेवाले मनुष्योंको जाने। विष देनेवाले मनुष्यसे कोई बात पूछे तो वह उत्तर न देवे, यदि उत्तर देयभी तो घबडा जावे और जो धीरज धरके बोले तोभी व्याकुल हो जाय, जो व्याकुलभी न होवे तो कुछका कुछ बोले और शब्दभी न बोल सके, अचानक हँसने लगे, अंगुलियोंको चटकावे, जमीनमें अंगुली और तुनकेसे लिखे, कभी कांपे, कभी भयभीत होकर चारों ओरको वारंवार देखे, मुखका रंग बदल जाय, काला पड जाय, नखोंसे तुनके आदिको तोडे, दीन होकर एकही जगह बैठा रहे, वारंवार हाथसे बालोंको छुवे, इधर उधर घूमकर वारंवार बैठ जाय तथा चित्त स्थिर न रहे, कभी भागनेको चाहे, कभी चुप होकर एक जगह बैठ जाय । ये लक्षण विष देनेवाले मनुष्यके हैं ॥ ४॥

स्थावरविषके लक्षण ।

उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च । जृम्भणं वेपनं श्वासो

मोहः पत्रविषेण तु ॥ मुखशोथः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च । भवत्युपविषैश्छर्दिराध्मानं श्वास एव च ॥ त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्ति हि । आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंस्रवाः ॥ फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुजिह्वता । हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि॥ प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ ५ ॥

भाषा-मूलविषको खानेसे रोगीका शरीर ऐंठे वृथा बकवाद करे और बेहोश हो जाता है । पत्रविषको खासे जम्भाइयोंका आना, कंप, श्वास और बेहोशी होती हैं । फलविषको भक्षण करनेसे मुखपर सूजन, दाह और अन्नमें अरुचि होती है । पुष्पविषको भक्षण करनेसे वमन, अफरा और श्वास होता है । त्वचा, सार और गोंदके विषको भक्षण करनेसे मुखमें दुर्गंध, शरीरमें रूखापन, शिरमें पीडा और मुखके द्वारा कफ गिरता है । दूधविषको भक्षण करनेसे मुखमें झागोंका आना, दस्तोंका होना और जिह्वामें जडता होती है । धातुविषको भक्षण करनेसे हृदयमें पीडा, मूर्छा और तालुमें दाह होती है । ये सब विष प्रायः कुछ समयमें मनुष्यको मार देते हैं ॥ ५ ॥

विषलिप्तक्षतहतके लक्षण ।

सद्यः क्षतं पच्यते तस्य जन्तोः स्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम् । कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति क्षतान्मांसं शीर्यते यस्य चापि ॥ तृष्णा मूर्च्छा ज्वरदाहौ च यस्य दिग्धाहतं मनुजं तं व्यवस्येत् । लिङ्गान्येतान्येव कुर्यादमित्रैर्व्रणे विषं यस्य दत्तं प्रमादात् ॥ ६ ॥

भाषा-जिस मनुष्यका घाव तत्काल पक जाय, घावमें रुधिर बहे और बारंबार पके, उस घावमेंसे काला सडा हुआ और दुर्गंधित ऐसा मांस गलकर गिरे एवं जिसमें तृषा, मूर्छा, ज्वर और दाह हो, उसके विषमें बुझाये हुए या विषसे लिप्त हुए शस्त्रका घाव जानना । जिसके व्रणमें शत्रुने कपट करके विष लगा दिया हो उस घावकेभी ऐसेही लक्षण जानने ॥ ६ ॥

अब जंगमविषोंको कहते हैं तिनमें प्रथम सर्पविषके लक्षण कहते हैं ।

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलिराजिलाः ।
यथाक्रमं समाख्याता व्यन्तरा द्वन्द्वरूपिणः ॥ ७ ॥

भाषा-तहां भोगी सर्प (जिनका फन चौडा हो) वातात्मक, मण्डलिसर्प

(जिनके शरीरका मंडल हो) पित्तात्मक, राजिलसर्प (जिनके शरीररेखा पडती हों) कफात्मक और संकर (जिसकी माता अन्यजातिकी और पिता अन्यजातिका हो) ऐसे सर्प द्वन्द्वज अर्थात् मिश्रित प्रकृतिके होते हैं ॥ ७ ॥

दंशलक्षण ।

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत् । पीतो मण्डलजः शोथो मृदुः पित्तविकारवान् ॥ राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः । पाण्डुः स्निग्धोऽतिसांद्रासृक् सर्वश्लेष्मविकारवान् ॥ ८ ॥

भाषा—भोगीसर्पका काटा हुआ काला और सर्ववातके विकारोंको करे है, मण्डलिसर्पका काटा हुआ पीला, सूजनयुक्त, नरम और सर्व पित्तके विकारोंको करे है और राजिलसर्पका काटा हुआ कठिन, सूजनयुक्त, पिच्छिल, पांडुवर्ण, चिकना और उसमेंसे गाढा रुधिर निकले एवं वह सब कफके विकारोंको करे है ॥ ८ ॥

देश और कालकी विशेषतासे सर्पदंशका असाध्यत्व कहते हैं ।

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसंध्यासु चतुष्पथेषु । याम्ये च दष्टाः परिवर्जनीया ऋक्षे शिरामर्मसु ये च दष्टाः ॥ दर्वीकराणां विषमाशु हन्ति सर्वाणि चोष्णे द्विगुणीभवन्ति । अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु ॥ क्षीणक्षते मेहिनि कुष्ठदुष्टे रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि।शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमस्ति राज्यो लताभिश्च न सम्भवन्ति ॥ शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् । जिह्मं मुखं यस्य च केशशातो नासावसादश्च सकण्ठभङ्गः॥ रक्तः सकृष्णश्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वं च विवर्जनीयः । वर्तिर्घना यस्य निरेति वक्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य ॥ दंष्ट्राभिघाताश्चतुरस्य यस्य तं चापि वैद्यः परिवर्जयेत्तु । उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं चाप्यथवा विवर्णम् ॥ सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च जह्यान्नरं तत्र न कर्म कुर्यात् ॥ ९ ॥

भाषा—पीपलके पेडके नीचे, देवमन्दिरमें, श्मशानमें, बांबीमें, संध्याके समयमें, चौराहेमें एवं भरणी, मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल और कृत्तिकादि नक्षत्रोंमें तथा

पंचमी आदि तिथिमें और शिरानाडीके मर्ममें सांप काटे तो वह मनुष्य नहीं जीता है। दर्वीकरका काटा हुआ मनुष्य तत्काल प्राणोंको त्याग देता है। प्रायः सम्पूर्ण विष उष्णतासे अर्थात् गरमीसे दूना जोर करते हैं। जो मनुष्य अजीर्ण, पित्त और सूर्य्यकी तपनसे पीडित हो तथा बालक, वृद्ध, भूखा, क्षीण, क्षतरोगी, प्रमेहरोगी, कुष्ठरोगी, रूखे शरीरवाला, निर्बल, गर्भवती स्त्री, जिसके शस्त्र लगनेसे रुधिर नहीं निकले, चाबुक मारनेसे शरीरपर न उछले और जिसके शरीरपर शीतल जल डालनेसे रोमांच न हों उस सर्पसे डसे हुए मनुष्यकी चिकित्सा न करे अर्थात् उसको असाध्य समझकर वैद्य त्याग देवे। जिस मनुष्यका मुख टेढा हो जाय, केशस्पर्श करनेसे टूट टूटकर गिरे, नाक टेढी पड जाय, गरदन झुक जाय, डसनेकी जगह लाल अथवा काली सूजन हो तथा कठिन हो उसको वैद्य त्याग देवे। जिस मनुष्यके मुखसे लारकी गाढी बत्तीसी गिरे, ऊर्ध्व (मुख, नासिका, कर्ण, नेत्र इत्यादि) और अधो (गुदा, लिङ्ग, योनि इत्यादि) मार्गसे रुधिर गिरे और जिसके बराबर चार दांत लगे हों उसको वैद्य त्याग देवे। जो मनुष्य विषकी बेकलीसे मत्त अर्थात् बावलासा हो जावे तथा ज्वर, अतीसारादि उपद्रवयुक्त हो, जिसका स्वर क्षीण हो गया हो, शरीरका रंग बदल गया हो, मरणके लक्षणोंयुक्त और जिसके मलमूत्र बंद हो गये हों अथवा वेग अर्थात् लहर न उठे ऐसे सांपके काटे हुए मनुष्यको वैद्य त्याग देवे ॥ ९ ॥

अब दूषीविषको कहते हैं।

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा। स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥ वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं वर्षगणानुबंधि। तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगंधिवैरस्ययुतः पिपासी ॥ मूर्च्छां भ्रमं गद्गदवाग्वमित्वं विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा। आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी॥ भवेत्समुद्धस्तशिरोरुहांगो विलूनपक्षस्तु यथा विहंगः। निद्रा गुरुत्वं च विजृम्भणं च विश्लेषहर्षावथवांगमर्दः ॥ ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठजन्म। मांसक्षयं पादकरप्रशोथं मूर्च्छां तथा छर्दिमथातिसारम् ॥ दूषीविषं श्वासतृषौ च कुर्यात् ज्वरप्रवृद्धिं जठरस्य चापि। उन्मादमन्यज्जनयेत्तथान्यद्दाहं तथान्यत्क्षपयेच्च

शुक्रम् ॥ गाद्द्व्यमन्यं जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ दूषितं देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः । यस्मात्संदूषयेद्धातूंस्तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥ सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदरजोनानांगजान्मलान् । शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान्प्रयच्छंत्यन्नमिश्रितान् ॥ तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्ज्वरश्चास्योपजायते । मर्मप्रधमनाध्मानं हस्तयोः शोथलक्षणम् ॥ जाठरं ग्रहणीदोषो यक्ष्मगुल्मक्षयज्वराः । एवंविधस्य चान्यस्य व्याधेर्लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥ १० ॥

भाषा–जो विष पुराना या विषनाशक औषधियोंसे तेजहीन किया गया हो अथवा दावानलसे जला हुआ या पवन और धूपसे सुख गया हो अथवा सरदी गरमीसे बिगड गया हो, किंवा जो स्वभावसेही गुणहीन हो उसको दूषीविष कहते हैं । वह दूषीविष अल्पवीर्य होनेके कारण मनुष्यको मारता नहीं है क्योंकि बहुत दिनोंका विष कफयुक्त हो जाता है । दूषीविषसे पीडित मनुष्यका मल पतला हो जाता है तथा उसके शरीरका रंग बदल जाता है, मुखमें दुर्गंधि और विरसता होती है, तृषा, मूर्छा, भ्रांति हो, गद्गद वचन बोलता है, वमन होती है, विपरीत चेष्टा करता है और बेचैनी होती है । जो दूषीविष आमाशयगत होय तो कफवातके रोगोंको उत्पन्न करे और पक्वाशयगत होय तो वातपित्तके रोगोंको उत्पन्न करे है । तथा उस मनुष्यके सम्पूर्ण शरीरके बाल गिरकर वह पंखरहित पक्षीकी समान हो जाता है । दूषीविषको खानेसे निद्राका आना, शरीरमें भारीपन, जम्भाइयोंका आना, शरीरमें शिथिलता, रोमांचोंका हो आना, अंगोंका टूटना ये लक्षण होकर पश्चात् रसाजीर्ण, अन्नका न पचना, अरुचिका होना, शरीरमें मण्डल, पिंची, मांसक्षय, हाथ पांवोंमें सूजन, मूर्छा, छर्दि, अतीसार, श्वास, तृषा, ज्वर और उदररोगादि उपद्रव उत्पन्न होते हैं तथा किसी रोगीके उन्मादरोग, किसीके दाह, किसीके नपुंसकता, किसीके वचन गद्गद हो जांय, किसीके कुष्ठरोग उत्पन्न हो तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुतसे उपद्रव उत्पन्न होते हैं । देश, काल, अन्न और दिनमें सोना इनसे दूषित हुआ विष रसादि धातुओंको दूषित करता है इस कारण इसको दूषीविष कहते हैं । वह दूषीविष कृत्रिम और गर इन भेदोंसे दो प्रकारका है । तहां जो विष दो पदार्थोंके योगसे बनता है उसको कृत्रिम और जो निर्विष पदार्थोंसे बनाया जाता है उसको गर कहते हैं । अब इन दोनों-

के लक्षण कहते हैं । मूर्ख स्त्री पतिको वशमें करनेके लिये धूर्त्त मनुष्योंके कहनेसे अपना पसीना, रज और अनेक प्रकारके अपने शरीरके मल भोजनमें मिलाकर पतिको खिलाती हैं उसके योगसे अथवा शत्रु जो गर विषको अन्नमें मिलाकर खिला देते हैं उसके योगसे वह मनुष्य पांडुवर्ण और कृश हो जाय, अग्नि मंद हो जाय, ज्वर हो जाय, मर्म्मस्थानोंमें पीडा हो जाय, पेटमें अफरा, हाथोंमें सूजन हो जाय तथा उदररोग, राजयक्ष्मा, गुल्म, क्षय और ज्वर एवं अन्यान्य रोगोंके लक्षण होते हैं ॥ १० ॥

दूषीविषके साध्यासाध्य लक्षण ।

साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोषितम् ।
दूषीविषमसाध्यं तु क्षीणस्याहितसेविनः ॥ ११ ॥

भाषा-पथ्यसेवी मनुष्यके दूषीविष नवीन होय तो साध्य और वर्ष दिनके बीत जानेपर याप्य हो जाता है, एवं क्षीण और अपथ्य सेवन करनेवाले मनुष्योंको दूषीविष असाध्य हो जाता है ॥ ११ ॥

लूताके सामान्य लक्षण ।

यस्माल्लूनं तृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिंदवः । तस्माल्लूताः प्रभाष्यन्ते संख्यया तास्तु षोडश ॥ ताभिर्दष्टे दंशकोथ प्रवृत्तिः क्षतजस्य च । ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥ पिडिका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च । शोथा महान्तो मृदवो रक्तश्यावाश्चलास्तथा ॥ सामान्यं सर्वलूतानामेतद्दंशस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

भाषा-जब वसिष्ठकी गायको विश्वामित्र बलात्कार लेकर चले तब वसिष्ठके कोधसे मस्तकमें पसीना आया उस पसीनेके बिन्दु जो घासपर गिरे उनसे लूता अर्थात् मकडी उत्पन्न हुई वह मकडी सोलह प्रकारकी है । उन मकडियोंके काटनेसे वह स्थान सड जाय, उसमेंसे रक्त बहे, ज्वर, दाह, अतीसार तथा अन्यान्य त्रिदोषजरोग, अनेक प्रकारकी फुडियें, बडे बडे मंडल, कोमल, लाल, लाल काले मिले रंगकी और फैलनेवाली सूजन हो । ये सर्व लूताओंके काटनेके सामान्य लक्षण हैं ॥ १२ ॥

लूताके दंशलक्षण ।

दंशमध्ये तु यत्कृष्णं श्यावं वा जालकावृतम् । ऊर्ध्वाकृति

भृशं पाकं क्लेदकोथज्वरान्वितम् ॥ दूषीविषाभिर्लूताभिः संदष्टमिति निर्दिशेत् । सर्पाणामेव विण्मूत्रशवकोथसमुद्भवाः ॥ दूषीविषाः प्राणहरा इति संक्षेपतो मताः । शोथाः श्वेताऽसिता रक्ताः पीताः सपिटिका ज्वराः॥ प्राणान्तिकाभिर्जायन्ते दाहहिक्काशिरोग्रहाः ॥ १३ ॥

भाषा-जो काटा हुआ स्थान काला, लाल काले पीले मिले हुए तीनों रंगका हो, जालकी समान ढका हुआ, ऊंचा, शीघ्र पकनेवाला, सदैव भीजा रहे और उसमेंसे सफेद राध बहे तथा ज्वर हो, उसको दूषीविषवाली लूताने काटा जानना। सांपके मलमूत्रके संयोगसे अथवा मरे हुए सांपके शरीरके सड जानेसे दूषीविषके कृमि उत्पन्न होते हैं वे प्राणनाशक हैं। उनकी काटी हुई जगह सूजनयुक्त, सफेद, काली, लाल, पीली और फुडियोंयुक्त होती है तथा ज्वर, दाह और हिचकी होती है अथवा शिरमें पीडा होती है ॥ १३ ॥

आखुदूषीविषके लक्षण ।

आदंशाच्छोणितं पाण्डु मण्डलानि ज्वरोऽरुचिः ।
लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते ॥
मूर्च्छाङ्गशोथवैवर्ण्यं क्लेदो मन्दश्रुतिर्ज्वरः ।
शिरोगुरुत्वं लालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूषकैः ॥ १४ ॥

भाषा-जिस चूहेके काटनेसे रुधिर वह निकले, शरीरमें सफेद चकत्ते पड जांय, ज्वर, अरुचि, रोमांच हो आवे और दाह हो उसको दूषीविषवाले मूसेने काटा है ऐसा जानना। जिस मूसेके काटनेसे मूर्च्छा, शरीरमें सूजन, विवर्णता, वमन होनेकी इच्छा हो, कमसुनाई देवे, ज्वर, शिरमें भारीपन, लारका गिरना और वमनमें रुधिर गिरे ये लक्षण होंय तो जानना कि विषैले मूसेने काटा है ॥ १४ ॥

कृकलासके लक्षण ।

कार्ष्ण्यं श्यावत्वमथवा नानावर्णत्वमेव च ।
व्यामोहो वर्चसो भेदो दष्टे स्यात्कृकलासकैः ॥ १५ ॥

भाषा-गिरगिटके काटनेसे काटनेकी जगह काली, लाल काली मिश्रित तथा अनेक रंगकी हो और वह रोगी बेहोश हो जाय, दस्त आने लगे ॥ १५ ॥

वृश्चिकविषके लक्षण ।

दहत्यग्निरिवादौ तु भिनत्तीवोर्ध्वमाशु वै ।
वृश्चिकस्य विषं याति पश्चाद्दंशेऽवतिष्ठति ॥ १६ ॥

भाषा-डंक मारनेके साथही प्रथम तो अग्निसी जले फिर शीघ्रही ऊपरको फाडता हुआ चढ जावे पश्चात् काटनेकी जगह आनके रुक जावे ॥ १६ ॥

वृश्चिकविषके असाध्य लक्षण ।

दष्टो साध्यस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः ।
मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तो जहात्यसून् ॥ १७ ॥

भाषा-जिस मनुष्यके हृदय, नासिका और जिह्वामें बीछू डंक मारे तो उसके मांस गलकर गिरने लगे और अत्यंत पीडा हो तो वह मनुष्य प्राणोंको त्याग देता है ॥ १७ ॥

कणभदष्टके लक्षण ।

विसर्पः श्वयथुः शूलो ज्वरश्छर्दिरथापि वा ।
लक्षणं कणभेदष्टे दंशश्चैव विशीर्य्यते ॥ १८ ॥

भाषा-कणभके काटनेसे विसर्प, सूजन, शूल, ज्वर और वमन हो तथा काटनेकी जगहका मांस गल जाता है ॥ १८ ॥

झींगरविषके लक्षण ।

हृष्टरोमोच्चिटिंगेन स्तब्धलिंगो भृशार्त्तिमान् ।
दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यंगानि मन्यते ॥ १९ ॥

भाषा-उच्चिटिंगन अर्थात् झींगरके काटनेसे रोमांच हो आवे, लिंग जकड जाय, अत्यंत वेदना हो तथा सम्पूर्ण शरीर शीतल जलसे भीजा मालूम होता है ॥ १९ ॥

मंडूकविषके लक्षण ।

एकदंष्ट्रार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट् ।
छर्दिर्निद्रा च सविषैर्मण्डूकैर्दष्टलक्षणम् ॥ २० ॥

भाषा-मेंडकके काटनेसे मेंडकका एकही दांत लगता है, उस स्थानमें पीडायुक्त पीली सूजन होती है तथा तृषा, वमन और निद्रा होती है । ये विषैले मण्डूकके लक्षण जानने ॥ २० ॥

मछलीविषके लक्षण ।

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं रुजं तथा ॥ २१ ॥

भाषा-विषैली मछलीके काटनेसे दाह, सूजन और पीडा होती है ॥ २१ ॥

जलौकाविषके लक्षण ।

कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्च्छां सविषास्तु जलौकसः ॥ २२ ॥

भाषा-विषैली जोंकके काटनेसे खुजली, सूजन, ज्वर और मूर्च्छा होती है॥२२॥

गृहगोधिकाके लक्षण ।

विदाहं श्वयथुं तोदं स्वेदं च गृहगोधिका ॥ २३ ॥

भाषा-छपकलीके काटनेसे दाह, सूजन, सुई चुभानेसरीखी पीडा हो और पसीना आवे इसी प्रकार विषखपरेके विषके लक्षण जानने ॥ २३ ॥

शतपदीविषके लक्षण ।

दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ २४ ॥

भाषा-शतपदी अर्थात् कानखजूरेके काटनेसे काटनेकी जगह पसीना, पीडा और दाह होता है ॥ २४ ॥

मशकविषके साध्यासाध्य लक्षण ।

कण्डूमान्मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ।

असाध्यकीटसदृशमसाध्यमशकक्षतम् ॥ २५ ॥

भाषा-मच्छरके काटनेसे सूजन, खुजली और अल्पपीडा हो उसको असाध्य कीटककी समान असाध्य जानना॥ २५ ॥

मक्खीविषके लक्षण ।

सद्यः प्रस्राविणी स्यावा दाहमूर्च्छाज्वरान्विता ।

पिडिका मक्षिकादंशे तासां तु स्थविकाऽसुहृत् ॥ २६ ॥

भाषा-विषैली मक्खीके काटनेसे काटनेकी जगह धूसररंगकी फुंसी उत्पन्न होकर तत्क्षण बहने लगे तथा उस जगह दाह हो, मूर्छा और ज्वर हो इनमें स्थविका नामवाली मक्खी प्राणनाशक है ॥ २६ ॥

चतुष्पदादिकोंके विषके साधारण लक्षण ।

चतुष्पद्भिर्द्विपद्भिर्वा नखदन्तविषं च यत् ।

शूयते पच्यते चापि स्रवति ज्वरयत्यपि ॥ २७ ॥

भाषा-चतुष्पाद (चौपाये बाघ, भेडिया, गीदड, कुत्ता इत्यादि), द्विपाद (जंगली मनुष्यादि) इनके नख और दांतोंके लगनेसे सूजन हो, पके, बहे और ज्वर आ जावे ॥ २७ ॥

विष उतर गया हो उसके लक्षण ।

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकांक्षं सममूत्रविट्कम् । प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥२८॥

भाषा-जिस मनुष्यके वातादिदोष प्रसन्न अर्थात् ठीक हों, रसादिधातु यथास्थित हो, अन्न खानेकी अभिलाषा हो, मलमूत्र साफ हो, आरोग्य अवस्थाकी समान जहां तहां आवे जावे, देहका रंग, इन्द्रिय, मन और शरीरकी चेष्टा प्रसन्न हो उसको विषरहित अर्थात् उसका विष उतर गया ऐसा जानना ॥ २८ ॥

इति विषरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ विषरोगचिकित्सा।

तत्रादौ स्थावरं विषम् ।

स्थावरस्योपयुक्तस्य वेगे तु प्रथमे नृणाम् । श्यावा जिह्वा भवेत्स्तब्धा मूर्च्छा श्वासश्च जायते ॥ द्वितीये वेपथुः स्वेदो दाहः कण्डू रुजास्तथा । विषमामाशयप्राप्तं कुरुते हृदि वेदनाम् ॥ तालुशोषं तृतीये तु शूलं चामाशये भृशम् । दुर्वर्णे हरिते शूने जायते चास्य लोचने ॥ पक्वाशयगते तोदो हिक्का कासोऽन्त्रकूजनम् । चतुर्थे जायते वेगे शिरसश्चातिगौरवम् ॥ कफप्रसेको वैवर्ण्यं पर्वभेदश्च पंचमे । सर्वदोषप्रकोपश्च पक्वाधाने च वेदना ॥ षष्ठे प्रज्ञाप्रणाशश्च भृशं वाप्यतिसार्यते । स्कन्धपृष्ठकटीभंगः सन्निरोधश्च सप्तमे ॥ २९ ॥

भाषा-सर्व प्रकारके स्थावर विषोंको भक्षण करनेसे सात वेग उत्पन्न होते हैं तहां प्रथम वेगमें जीभ श्याव (काले पीले मिले रंगकी) वर्ण और जकड जाती है तथा मूर्च्छा और श्वास उत्पन्न होता है । दूसरे वेगमें कम्प, पसीना, दाह, खुजली और पीडा होती है तथा विष आमाशयमें प्राप्त होकर हृदयमें पीडा करता है । तीसरे वेगमें तालुशोष, आमाशयमें पीडा, नेत्र विकृतरंग, हरे और सूजनयुक्त होते हैं । चौथे वेगमें विष पक्वाशयमें प्राप्त होकर सुई चुभनेसरीखी पीडा, हिचकी, खांसी आंतोंका कूंजना और शिरमें भारीपन होता है । पांचवें वेगमें मुखसे कफ गिरने

लगता है, शरीरका रंग बदल जाता है, सब दोष कुपित होते हैं और पक्वाशयमें पीडा होती है । छठे वेगमें बुद्धि नष्टहो जाती है और अत्यन्त दस्त होने लगते हैं। सातवें वेगमें कंधे, पीठ और कमर टूट जाती है एवं मृत्युभी होती है ॥ २९ ॥

वेगादिकोंपर स्नानकाथादिक्रिया ।

प्रथमे विषवेगे तु वांतं शीताम्बुसेचितम् । अगदं मधुसर्पिर्भ्यां पाययेत समायुतम् ॥ द्वितीये पूर्ववद्वांतं पाययेत विरेचनम् । तृतीये गदपानं तु हितं नस्यं तथाञ्जनम् ॥ चतुर्थे स्नेहसंयुक्तं पाययेतागदं भिषक् । पंचमे क्षौद्रमधुकक्काथयुक्तं प्रदापयेत् ॥ षष्ठेऽतीसारवत् सिद्धिरवपीडश्च सप्तमे । मूर्ध्नि काकपदं कृत्वा सासृग्वा पिशितं क्षिपेत् ॥ वेगांतरे त्वन्यतमे कृते कर्म्मणि शीतलाम् । यवागूं सघृतक्षौद्रामिमां दद्याद्विचक्षणः ॥ ३० ॥

भाषा–पहिले विषके वेगमें वमन कराकर शीतल जलसे स्नान करावे फिर सहत और घीके साथ विषनाशक औषधि देवे । दूसरे वेगमें पहिले वेगकी समान वमन कराकर विरेचन करावे । तीसरे वेगमें विषनाशक औषधियोंके क्वाथको मिलावे, नास देवे और नेत्रोंमें विषनाशक औषधियोंका अंजन लगावे । चौथे वेगमें घीके साथ औषधियोंको सेवन करावे । पांचवें वेगमें मुलहठीके क्वाथ और सहतके साथ सेवन करावे । छठे वेगमें अतीसारकी समान चिकित्सा करनी चाहिये। सातवें वेगमें तीक्ष्ण नस्य देवे तथा शिरमें कौवेके पांवोंके आकार चीरा देकर रुधिर और मांसमें औषधिको लगावे । इन सातों वेगोंमें औषधि देनेके पश्चात् नीचे लिखी यवागू घी और सहतके साथ शीतल करके देवे ॥ ३० ॥

यवागूः ।

कोषातक्योऽग्निकः पाठा सूर्य्यवल्ल्यमृताभयाः । शिरीषः किणिही शेलुर्गिरिह्वा रजनीद्वयम् ॥ पुनर्नवे हरेणुश्च त्रिकटुः सारिवे बला । एषां यवागूर्निःक्वाथे कृता हंति विषद्वयम् ॥ ३१ ॥

भाषा–कडवी तोरई, चीता, पाढ, हुलहुल, गिलोय, हरड, सिरस, चिरचिटा, लिहसोडा, कोयल, हलदी, दारुहलदी, पुनर्नवा, रेणुका, त्रिकुटा, अनंतमूल और खिरैटी इनके क्वाथमें यवागू सिद्ध करके सेवन करनेसे स्थावर और जंगम दोनों प्रकारका विष दूर होता है ॥ ३१ ॥

वमनसेचनादिक्रिया।

स्थावरेण विषेणार्त्तं नरं यत्नेन वामयेत्। वमनेन समो नास्ति तीक्ष्णं च कथितं यतः॥ अतः सर्वविषे युक्तः परिषेकस्तु शीतलः। औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याद्विशेषेण विषं पित्तं प्रकोपयेत्॥ वमितं सेचयेत्तस्मात् शीतलेन जलेन च। पाययेन्मधुसर्पिर्भ्यां विषघ्नं भेषजं द्रुतम्॥ भोक्तुमम्लरसं दद्यात् चर्वयेन्मरिचानि च। यस्य यस्य च दोषस्य पश्येल्लिङ्गानि भूरिशः॥ तस्य तस्यौषधैः कुर्य्यात् विपरीतगुणैः क्रियाम्॥ ३२॥

भाषा–स्थावर विषसे पीडित मनुष्यको यत्नपूर्वक वमन करावे कारण यह है कि वमनकी समान अधिक गुणकारक अन्य उपाय नहीं इसलिये सबसे पहिले विषपीडित मनुष्यको वमन करावे। वमनके पश्चात् शीतल जलसे सींचे। विष अत्यन्त उष्ण और तीक्ष्ण होनेके कारण पित्तको अतिशय कुपित करे है इसलिये वमनके अंतमें शीतल जलसे स्नान तथा सहत और घीके साथ विषनाशक औषधि सेवन कराना चाहिये। एवं नींबू आदिका खट्टा रस पिलावे और मिरचोंको चबावे और जिस जिस दोषके लक्षण दीखें उस उस दोषके विपरीत गुणकारक क्रिया करे॥ ३२॥

अन्नभक्षणलेपादिक्रिया।

शालयः षष्टिकाश्चैव कोरदूषाः प्रियंगवः। भोजनार्थे विषार्तानामूर्ध्वं चाधश्च शोधनम्॥ मूलत्वक्पत्रपुष्पाणि बीजं चेति शिरीषजः। गवां मूत्रेण संपिष्टं लेपाद्विषहरं परम्॥ ३३॥

भाषा–शालिधान, साठीधान, कोदों, कंगनी ये सब अन्न विषरोगीको भोजनके लिये देवे तथा वमन और विरेचन करावे। सिरसके जडकी छाल, सिरसके पत्ते, सिरसके फूल और सिरसके बीजोंको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे विषरोग दूर होता है॥ ३३॥

दूषीविषहरकाथः।

दूषीविषार्त्तं सुस्निग्धमूर्द्ध्वञ्चाधश्च शोधितम्। पाययेदगदं मुख्यमिदं दूषीविषापहम्॥ पिप्पली ध्यामकं मांसी लोध्रमेला सुवर्चिका। मरीचं वालकं चैला तथा कनकगैरिकम्॥ क्षौद्रयुक्तः कषायोऽयं दूषीविषमपोहति॥ ३४॥

भाषा-दूषीविषवाले रोगीको स्निग्ध द्रव्योंसे वमन और विरेचन करावे पश्चात् नीचे लिखी हुई मुख्य औषधि देवे । पीपल, रोहिष तृण, बालछड़, लोध, इलायची, सज्जी, मिरच, सुगंधवाला, छोटी इलायची और पीला गेरू इनके काथको सहतके साथ पान करे इससे दूषीविष दूर होता है ॥ ३४ ॥

अजितघृतम् ।

मधुकं तगरं कुष्ठं भद्रदारु हरेणवः । पुन्नागैलेलवालूनि नागपुष्पोत्पलं सिता ॥ विडंगं चन्दनं पत्रं प्रियंगु ध्यामकं तथा । हरिद्रे द्वे बृहत्यौ च सारिवे च स्थिरा सह ॥ कल्कैरेषां घृतं सिद्धमजेयमिति विश्रुतम् । विषाणि हंति सर्वाणि शीघ्रमेवाजितं क्वचित् ॥ ३५ ॥

भाषा-मुलहठी, तगर, कूट, देवदारु, रेणुका, पुन्नाग, इलायची, एलुवा, नागकेशर, कमल, चीनी, वायविडंग, चन्दन, तेजपात, फूलप्रियंगू, रोहिसतृण, हलदी, दारुहलदी, कटेरी, बडी कटेरी, दोनों प्रकारकी सारिवा, शालिपर्णी और पियाबांसा इन सब औषधियोंके द्वारा घृतको सिद्ध करके सेवन करनेसे शीघ्रही सर्व प्रकारके विष दूर होते हैं । इसको अजितघृत कहते हैं ॥ ३५ ॥

अजादुग्धपानादिक्रिया ।

अतिमात्रं यदा भुक्तं वमनं तस्य कारयेत् । दद्यात्तावदजादुग्धं यावद्वान्तिर्न जायते ॥ अजादुग्धं यदा कोष्ठे स्थिरीभवति देहिनः । विषवेगं ततो जीर्णं जानीयात्कुशलो भिषक् ॥ विषं हन्याद्रसः पीतो रजनीमेघनादयोः । सर्वाक्षी टंकणं वापि घृतेन विषहृत्परम् ॥ पुत्रजीवकमज्जा वा पीता निम्बकवारिणा । विषवेगं निहन्त्येव वृष्टिर्दावानलं यथा ॥ गोघृतपानाद्धरते विषं च गरलं च कर्कोटी । सकलविषोपविषघ्नी त्रिवृता च सुरभिजिह्वा च ॥ ३६ ॥

भाषा-जो कोई मनुष्य मात्रासे अधिक विषको खा लेवे उसको वमन करावे जबतक वमन न हो तबतक बकरीका दूध पिलावे । जिस समय बकरीका दूध कोठेमें स्थिर हो जाय उसी समय विष उतर जायगा । हलदी, चौलाई और सर्पाक्षीके रसको पीनेसे अथवा घीमें सुहागा मिलाकर खानेसे विष दूर होता है । पतिजियाकी मींगी-

की नींबूके रसमें उसेकर पीनेसे विषवेग शांत होता है। वांझककोडेकी जड़को घृत-के साथ सेवन करनेसे अथवा निसोत और गोजियाको सेवन करनेसे विषगार और उपविष दूर होता है ॥ ३६ ॥

अथ जंगमविषम्।

सर्वैरेवादितः सर्पैः शाखादुष्टस्य देहिनः। बध्नीयाद्गाढमुपरि दंशं तु चतुरंगुलम् ॥ प्लोतचर्मान्तवल्कानां मृदुनान्यतमेन च। न गच्छति विषं देहमरिष्टाभिर्निवारितम् ॥ ३७ ॥

भाषा-जो हाथ पांव आदिमें सांप काटे तो उस मनुष्यके उसी समय काटनेकी जगह चार अंगुल ऊपर नरम चमडे या कपडे अथवा नरम वृक्षकी छालसे किंवा रस्सीसे खूब खैंचकर बांध देवे। बांधनेसे फिर विष शरीरमें नहीं फैलता है ॥ ३७ ॥

आचूषणच्छेददाहादिक्रिया।

दहेद्दंशमथोत्कृत्य यत्र बंधो न जायते। आचूषणच्छेददाहाः सर्वत्रैव तु पूजिताः ॥ प्रतिपूर्य्य मुखं वस्त्रैर्हितमाचूषणं भवेत्। स दष्टव्योऽथवा सर्पो लोष्टश्चापि हि तत्क्षणात् ॥ मूलं तण्डुलवारिणा पिबति यः प्रत्यंगिरासम्भवं निष्पिष्टं शुचिभद्रयोगदिवसे तस्याऽहिभीतिः कुतः ॥ ३८ ॥

भाषा-जहां बंध न सके वहां चीरकर दाग देवे तथा सींग वा तूम्बीसे चूसे, चीरा देवे और दाग देवे अथवा कपडेको मुखमें भरके काटनेकी जगहको मुखसे चूसे वा जो सांप काटे उसी सांपको तत्काल पकडकर काट खाय अथवा काटनेके साथही मट्टीके ढेलेको काट खाय तो विष नहीं चढता है। सिरसकी जड़को चावलोंके जलमें पीसकर आषाढके महीनेमें शुभ दिनमें शुभ नक्षत्रमें पीनेसे सर्पका भय नहीं रहता ॥ ३८ ॥

नस्यपानादिविधिः।

कुलकमूलनस्येन कालदष्टोऽपि जीवति। पिण्डी तगरकं नेत्रे पुष्पेणोत्पाद्य योजितम् ॥ चालयत्यत्र नो चित्रं पुरुषं दष्टमृतं खलु। शिरीषपत्रस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम् ॥ भावितं सर्पदष्टानां नस्यपानाञ्जनैर्हितम्। वन्ध्याककोंटमूलं च छागमू-

त्रेण भावितम् ॥ नस्यं काञ्जिकसम्पिष्टं विषोपहतचेतसः । गृहधूमं हरिद्रे द्वे समूलं तण्डुलीयकम् ॥ अपि वासुकिना दष्टः पिबेद्दधि घृतप्लुतम् । श्लेष्मातकी कट्फलमातुलिङ्गश्वेता गिरिह्वा किणिही सिता च ॥ सतण्डुलीयोऽगद एष मुख्यो विषेषु दर्वीकरराजिलानाम् । निर्गुण्डीसहितं पानात् सद्यः फणिविषापहम् ॥ स्वरसेनैव मूलं च भावितं सिन्धुवारिजम् ॥ ३९ ॥

भाषा-पटोलकी जडको पीसकर नास देनेसे कालका काटा हुआभी जी जाता है । पिण्डीतगरकी जडको पुष्यनक्षत्रमें उखाडकर नेत्रोंमें लगानेसे सांपका काटा हुआ आराम होता है । शिरसके पत्तोंके स्वरसमें सहजनेके बीजोंको सात दिनतक भावना देकर नस्य, पान और अंजनमें प्रयोग करनेसे सांपका विष दूर होता है । वांझककोडेकी जडको बकरीके दूधमें भावना देकर कांजीमें पीसकर नास देनेसे सर्पका विष दूर होता है । घरका धूंआ, हलदी, दारुहलदी और जडसहित चौलाई इन सबोंको दही और घीके साथ सेवन करनेसे वासुकी सांपका विषभी दूर होता है । लिहसोडे, कायफल, बिजौरा, सफेद कोयल, कटभी, सफेद दूब और चौलाई इन सबोंको एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे दर्वीकर और राजिल सर्पका विष दूर होता है । निर्गुंडीकी जडको जलमें पीसकर सेवन करनेसे अथवा संभालूकी जडको संभालूके रसमें भावना देकर सेवन करनेसे सर्पका विष दूर होता है ॥ ३९ ॥

घृतचूर्णादिप्रकारः ।

सैन्धवं मरिचं तुल्यं निम्बबीजसमं कृतम् । मधुसर्पिर्युतं हन्ति विषं स्थावरजंगमम् ॥ सचतुर्मरिचः कर्षः चाङ्गेर्य्याः सह सर्पिषा । हन्ति पानप्रलेपाभ्यां चोग्रसर्पविषं भयम् ॥ पारावतामिषं शुण्ठी पुष्कराह्वं सितं हितम् । गरतृष्णारुचिश्वासकासहिकापहं परम् ॥ द्राक्षाश्वगंधा नगमृत्तिका च श्वेता च पिष्टा सदृशैश्च भागैः । देयो द्विभागः सुरसाच्छदस्य कपित्थबिल्वादपि दाडिमाच्च ॥ एषोऽगदः क्षौद्रयुतो निहन्ति विशेषतो मण्डलिनां विषाणि । प्रपौण्डरीकं सुरदारु मुस्ता कालानुसारी कटुरोहिणी च ॥ स्थौणेयकं ध्यामकगुग्गुली च पुन्नागतालीशसुवर्चि-

काश्च । कुटन्नटेलासितसिन्धुवारशैलेयकुष्ठं तगरप्रियंगुम्लोध्रा-
ञ्जनं काञ्चनगैरिकं च समानगं चन्दनसैंधवं च । सूक्ष्माणि चू-
र्णानि समानि कृत्वा शृंगे निदध्यान्मधुसंयुतानि ॥ एषोऽग-
दस्तार्क्ष्य इति प्रसिद्धो विषं निहन्यादपि तक्षकस्य । त्रिवृद्वि-
शाले मधुकं हरिद्रे मञ्जिष्ठवर्गो लवणाश्च सर्वे॥ कटुत्रिकं चैव वि-
चूर्णितानि शृंगे निदध्यान्मधुसंयुतानि । अयं गदो हंत्युपयुज्य-
मानः पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्ययोगैः ॥ आवार्य्यवीर्यो विषवेग-
हन्ता महागदो नाम महाप्रभावः ॥ ४० ॥

भाषा—सैंधानोन, काली मिरच और नीमके बीज इन सबोंको समान भाग लेकर सहत और घीमें मिलाकर सेवन करनेसे स्थावर और जंगम विष दूर होता है। एक तोले चाङ्गेरीके रसमें चार काली मिरचोंका चूर्ण डालकर घीके साथ पीनेसे अथवा प्रलेप करनेसे सांपका उग्र विष दूर होता है। कबूतरका मांस, सोंठ, पोहकरमूल और चन्दन इनका सेवन करनेसे गर, तृषा, अरुचि, श्वास, खांसी और हिचकी दूर होती है। दारु, असगंध, पर्वतकी मट्टी और सफेद कोयल ये सब समान भाग तथा तुलसीके पत्ते, कैथ, बेल और अनारके पत्ते ये सब दो दो भाग, इन सबोंको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर सेवन करनेसे विशेष करके मण्डलिसर्पका विष दूर होता है। पुण्डेरिया, देवदारु, नागरमोथा, कुटकी, थुनेर, रोहिसतृण, गूगल, पुन्नाग, तालीशपत्र, पपरी, केवटीमोथा, इलायची, सफेद संभालु, भूरिछरीला, कूठ, तगर, फूलप्रियंगू, लोध, निसोत, पीला गेरू, सफेद चन्दन, सैंधानोन ये सब समान भाग लेकर बारीक पीसकर चूर्ण करके सहतमें मिलाके गायके सींगमें भर देवे इसका सेवन करनेसे तक्षकका विषभी दूर हो जाता है। इसको तार्क्ष्यअगद कहते हैं। निसोत, इन्द्रायन, बडी इन्द्रायन, मुलहठी, हलदी, दारुहलदी, मजीठ, सम्पूर्ण निमक और त्रिकुटा इन सबोंको एकत्र बारीक पीसकर सहतमें मिलाकर गायके सींगमें भरके रख देवे। इस औषधिका पान, अंजन, अभ्यंग और नस्यकर्म्ममें प्रयोग करनेसे महाविषवेग दूर होता है। इसको महागद कहते हैं ॥ ४० ॥

दशाङ्गोऽभ्यङ्गो धूपश्च ।

बिल्वपुष्पत्वचो मांसी फलिनी नागकेशरम् । शिरीषं तगरं
कुष्ठं हरितालं मनःशिला ॥ एतानि समभागानि पेषयेत्सलि-

लेन तु। समभ्यंग्य ततो गात्रं सर्पदष्टार्त्तिदारणः॥ विषाणि भक्षयेदुग्रान् गरांश्च विविधान् हरेत्। कन्यासंवरणं गच्छेत् युद्धे देवासुरोपमः॥ राजद्वारेषु सर्वेषु धूपश्चैवापराजितः। बृहस्पतिरिति प्रोक्तो ब्रह्मणा निर्म्मितः स्वयम्॥ नाग्निर्दहति तद्वेश्म प्रभवन्ति न राक्षसाः। न म्रियन्ते तथा बाला दशाङ्गो यत्र तिष्ठति॥ वटं शुङ्गं समञ्जिष्ठं जीवकर्षभकौ सिता। काश्मर्य्यमुदकं चैव पानं मण्डलदष्टके॥ ४१॥

भाषा-बेलके फूल, दालचीनी, बालछड, फूलप्रियंगू, नागकेशर, सिरसके बीज, तगर, कूठ, हरिताल और मैनशिल ये सब समान भाग लेकर जलमें पीसकर शरीरमें मलनेसे अथवा इसकी धूप खेहनेसे अत्यन्त उग्र सांपका विष दूर होता है तथा नानाप्रकारके गरदोष दूर होते हैं। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य कन्यासंवरणमें, देवता और असुरोंके संग्राममें, राजद्वारमें और सब स्थलोंमें कदापि पराजित नहीं होता। यह दशांग धूप जिस घरमें रहती है उस घरमें न आग लगती है न राक्षस प्रवेश करते हैं और न बालक मरते हैं। बडके अंकुर, मजीठ, जीवक, ऋषभक, मिश्री और कुम्मेर इनको जलमें पीसकर पीनेसे मण्डल सर्पका विष दूर होता है॥ ४१॥

धूपांजनपानादिक्रिया।

कौन्ती कुष्टं नतं व्योषं मधुकातिविषा मधु। गृहधूम्रश्च पानेन घ्नन्ति सर्पभवं विषम्॥ मांसीचन्दनसिन्धूत्थकृष्णायष्ट्यूषणोत्पलैः। अंजनं स्यात् सगोपित्तं विषसुप्तस्य बोधनम्॥ नक्तमालफलं व्योषं बिल्वमूलं निशाद्वयम्। सौरसं पत्रमाजश्च मूत्रं बोधनमञ्जनम्॥ मयूरपित्तेन च तण्डुलीयकं काकाण्डयुक्तं प्रपिबेदनल्पम्। विषाणि च स्थावरजंगमानि सोपद्रवाण्यप्यचिरेण हन्ति॥ ४२॥

भाषा-मजीठ, कूठ, तगर, सोंठ, मिरच, पीपल, मुलहठी, अतीस और घरका धूंआ इन सबोंको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर पीनेसे सांपका विष दूर होता है। बालछड, चन्दन, सैंधानोन, पीपल, मुलहठी, सोंठ, कमल और गायका पित्त इनको एकत्र पीसकर अंजन लगानेसे विषकी बेहोसी दूर होकर चैतन्यता उत्पन्न

होती है । करंजके फल, त्रिकुटा, बेलकी जड, हलदी, दारुहलदी, तुलसीके पत्र इन सबोंको बकरीके मूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें अंजन लगानेसे विषकी बेहोसी दूर होती है । मोरका पित्त, चौलाई और कौवेका अंडा इनको एकत्र पीसकर पान करनेसे स्थावर और जंगम दोनों प्रकारके विष दूर होते हैं ॥ ४२ ॥

विषनाशकचंद्रोदयोगदः ।

चन्दनं च शिलाकुष्ठत्वक्पत्रैलाब्दसर्षपाः । मांसी पद्मकवत्सा-ऽसृक्‌ सुरभीमधुरोचना ॥ स्पृक्का हिंग्वंबुलामज्जशतपुष्पाप्रियं-गवः । पिष्ठा सर्वविषोन्मन्थो नाम्ना चन्द्रोदयोऽगदः ॥ ४३ ॥

भाषा—चन्दन, मैनशिल, कूठ, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागरमोथा, सरसों, बालछड, पद्माख, इन्द्रजौ, केशर, गोलोचन, असवरग, हींग, सुगंधवाला, लामजक, सौंफ, फूलप्रियंगू इन सबोंको एकत्र पीसकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारके विष दूर होते हैं । इसको चन्द्रोदयोगद कहते हैं ॥ ४३ ॥

विषहरसूर्योदयोगदः ।

श्यामेभपाटली कृष्णा मञ्जिष्ठा किणिही शिला । कोविदारोषणे चक्रं निशे दध्यपराजितम् ॥ बृहती मधुकं चैव गोमूत्रेण प्रपे-षयेत् । एष सूर्य्योदयो नाम्ना विषरक्षामयोऽगदः ॥ ४४ ॥

भाषा—प्रियंगू, नागकेशर, पाढल, पीपल, मजीठ, कटभी, मैनशिल, कोविदार, सोंठ, तगर, हलदी, दारुहलदी, दही, कोयल, कटाई और मुलहठी इन सबोंको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारकी विषकी बाधा दूर होती है । इसको सूर्य्योदयोगद कहते हैं ॥ ४४ ॥

अमृतघृतम् ।

अपामार्गस्य बीजानि शिरीषस्य तथैव च । द्वे मेदे काकमाची च गवां मूत्रेण पेषयेत् ॥ सर्पिरेतेषु संसिद्धं विषसंशमनं परम् । अमृतं नाम विख्यातमपि सञ्जीवयेन्मृतम् ॥ ४५ ॥

भाषा—चिरचिटेके बीज, सिरसके बीज, मेदा, महामेदा, मकोय इन सबोंको गोमूत्रमें पीसकर इसके द्वारा घृतको सिद्ध करे । इसको अमृत घृत कहते हैं । यह घी सर्व प्रकारके विषोंको दूर करे है तथा मृतककोभी जिला देता है ॥ ४५ ॥

नागदंतीघृतम् ।

नागदंती त्रिवृद्दन्ती स्नुक्पयः पलिकैः समैः । गवां मूत्राढके

सिद्धं सर्पिः सर्वविषापहम् ॥ सर्पकीटविषार्तानां गरार्तानां च शस्यते ॥ ४६ ॥

भाषा—नागदंती, निसोत, दंती, थूहरका दूध ये प्रत्येक चार चार तोले, गोमूत्र ४ सेर, गायका घी १ सेर, यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे। यह नागदन्ती घृत सर्व प्रकारके विषोंको दूर करे है तथा सांपका विष, कीटविष और गरविषको नष्ट करे है ॥ ४६ ॥

तण्डुलीयघृत ।

तण्डुलीयकमूलेन गृहधूमेन चैकतः ।
क्षीरेण सघृतं सिद्धं समस्तं विषरोगनुत् ॥ ४७ ॥

भाषा—चौलाईकी जड और घरका धूंआ प्रत्येकका कल्क दो दो तोले, गायका दूध आधसेर और गायका घी पावभर यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । यह सर्व प्रकारके विषविकारोंको दूर करे है ॥ ४७ ॥

अजेयघृत ।

मधुकं तगरं कुष्ठं भद्रदारु हरेणवः। पुन्नागमेलवालूकं नागपुष्पोत्पलं सिता ॥ विडंगं चन्दनं पत्रप्रियंगु ध्यामकं तथा । हरिद्रे द्वे बृहत्यौ च शारिवांशुमती बला ॥ कल्कैरेतैर्घृतं सिद्धमजेयमिति विश्रुतम् । विषाणि हन्ति सर्वाणि शीघ्रमेवाजितं क्वचित् ॥ ४८ ॥

भाषा—मुलहठी, तगर, कूठ, देवदारु, रेणुका, पुन्नाग, एलुवा, नागकेशर, कमल, मिश्री, वायविडंग, चन्दन, तेजपात, फूलप्रियंगू, रोहिसतृण, हलदी, दारुहलदी, कटेरी, कटाई, अनन्तमूल, शालिपर्णी, खिरेंटी इनके कल्कके द्वारा घृतको सिद्ध करे। इसको अजितघृत कहते हैं। यह अजितघृत सर्व प्रकारके विषोंको दूर करे है ॥ ४८ ॥

मृत्युपाशापहघृत ।

अभया रोचना कुष्ठमर्कपुष्पी तथोत्पलम् । नलवेतसमूलानि सरलं सुरसं वचाम्॥सपालिन्द्रीं समंजिष्ठामनन्तां सशतावरीम् । शृंगाटकं समंगा च पद्मकेशरमित्यपि ॥ कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् । सम्यक् पक्केऽवतीर्णे च शृतशीले

विनिक्षिपेत् ॥ सर्पिस्तुल्यं भिषक् क्षौद्रं कृतबंधं निधापयेत् । नाशयत्यञ्जनाभ्यंगपानबस्तिसुभोजने ॥ सर्पकीटाखुलूताभिर्दष्टानां विषमुत्परम् । मृत्युपाशहरं नाम घृतमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ ४९ ॥

भाषा गायका घी २ सेर, गायका दूध ८ सेर तथा कल्कके लिये इरड, गोरोचन, कूठ, अर्कपुष्पी, कमल, नलकी जड, वेतकी जड, सरस, तुलसी, वच, करिवालासाऊ, मजीठ, अनंतमूल, शतावर, सिंघाडे, वराहक्रांता और कमलकेशर आधसेर, यथाविधिसे घृतको पकावे। जब पककर शीतल हो जावे तब २ सेर सहत मिलावे। इस घृतको अंजन, अभ्यंग, पान, बस्ति और भोजनमें व्यवहार करनेसे सांप, बिच्छू, मूसा, लूतादिका विष दूर होता है। यह सर्व प्रकारके विषोंको हरनेवाला मृत्युपाशनाशक घृत है ॥ ४९ ॥

लूताविषहरकषायकल्कचूर्णादिकथनम् ।

रजनीद्वयमंजिष्ठापतंगगजकेशरैः । शीताम्बुपिष्टैरालेपः सद्यो लूतां विनाशयेत् ॥ कटभ्यर्जुनशैरीषशैलुक्षीरीद्रुमत्वचः । कषायकल्कचूर्णाः स्युः कीटलूताव्रणापहाः ॥ ५० ॥

भाषा–हलदी, दारुहलदी, मजीठ, पतंग और नागकेशर इनको शीतल जलमें पीसकर काटनेकी जगह लेप करनेसे तत्काल मकडीका विष दूर होता है। कटभी, अर्जुन, सिरस, बेल और क्षीरी (पाखर, बड, गूलर, पीपल, बेल या पीपल) वृक्षके छालके क्वाथ, कल्क तथा चूर्णको सेवन करनेसे मकडी आदिका विष दूर होता है ॥ ५० ॥

अथ लेपविधिः ।

चन्दनं पद्मकं कुष्ठं नतं चोशीरपाटले । निर्गुण्डी शारिवा शैलु- र्लूताविषहरोऽगदः ॥ चन्दनं पद्मकोशीरं शिरीषं सिन्धुवारिणा । क्षीरशुक्लानतं कुष्टं शारिवोदीच्यपाटलाः ॥ शैलुं वरी च पिष्टोऽयं लूतायाः विषनाशनः । फलिनी द्विनिशाक्षौद्रसर्पिर्भिः पद्मकाह्वयैः ॥ अशेषकीटलूतानामगदः सर्वकामिकः । करंजार्कपयोवाजिमारकैः सविषानलैः ॥ साक्षोटस्वरसैः सिद्धं तैलं लूताव्रणापहम् ॥ ५१ ॥

भाषा—चन्दन, पद्माख, कूठ, तगर, खस, पाडर, निर्गुण्डी, अनंतमूल और बेल इन सबोंको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे मकडीका विष दूर होता है । चन्दन, पद्माख, खस, सिरस, संभालू, क्षीरविदारी, तगर, कूठ, शारिवा, सुगंधशाला, पाडर, बेल और शतावर इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे मकडीका विष दूर होता है । फूलप्रियंगू, हलदी, दारुहलदी, पद्माख और सहत इनके द्वारा घृतको पकाकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कीटविष और मकडीका विष दूर होता है । करंज, आकका दूध, कनेर, अतीस, चीता और आखरोट इनके स्वरसके द्वारा तैलको पकाकर लेप करनेसे मकडीका किया व्रण दूर होता है ॥ ५१ ॥

आखुविषहरघृतपानादिकथनम् ।

शैरीषस्य च मूलं वा सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना । अंकोटकस्य वा मूलं बस्तमूत्रेण कल्कितम् ॥ पानालेपनयोरुक्तं सर्वाखुविषनाशनम् । विशालां कोलमूलं च तिलमूलं सिता मधु ॥ घृतेनाखुविषं हन्ति पीतमात्रं च दुस्तरम् । कुसुम्भपुष्पगोदन्तस्वर्णक्षीरी कपोतविट्॥दंती त्रिवृत्सैन्धवैला किणिही फाणितं तथा । क्षीरेणाखुविषं हन्ति पीता तिलकमंजरी ॥ त्रिकुटाद्यश्च हितो गोमयस्वरसोऽञ्जने । कपित्थगोमयरसो सक्षौद्रो लेह इष्यते ॥ गवाक्षी बिल्वकाकोली तिलमूलाः सशर्कराः । मध्वाज्यसंयुताः पीताः मूषिकाविषनाशनाः ॥ बिल्वकाकोलयोर्मूलं गिरिकर्ण्यास्तिलस्य च । एतेषां मधुसर्पिर्भ्यां पानमाखुविषापहम् ॥ तण्डुलीयकमूलेन सिद्धं सर्पिः पिबेन्नरः । मूषिकाणां विषं तेन नाशमायाति सत्वरम् ॥ ५२ ॥

भाषा—सिरसकी जडको सहतमें मिलाकर अथवा चावलोंके जलके साथ पान करनेसे या अंकोठकी जडको बकरीके मूत्रमें पीसकर पीनेसे वा लेप करनेसे सर्व प्रकारके मूसेका विष दूर होता है । इन्द्रायन, अंकोठकी जड, तिलकी जड, मिश्री और सहत इन सबोंको घीमें मिलाकर सेवन करनेसे महादुस्तर मूसेका विषभी दूर होता है । कसूमके फूल, गायके दांत, सत्यानासी, कटेरी (चोक), कबूतरकी विष्ठा, दंती, निसोत, सैंधानोन, इलायची, कटभी और राव इन सबोंको दूधमें मिलाकर पीनेसे मूसेका विष दूर होता है । एवं तिलकी बाल (घेंटी) को दूधमें पीसकर पीनेसे चूहेका विष दूर होता है । त्रिकुटेको गायके गोबरके रसमें पीस-

कर नेत्रोंमें अंजन लगानेसे तथा कैथका गूदा और सहत इनको गोबरके रसमें मिलाकर चाटनेसे मूसेका विष दूर होता है। गोरक्षककड़ी, बेल, काकोली, तिलकी जड और मिश्री इन सबोंको सहत और घीमें मिलाकर पीनेसे मूसेका विष दूर होता है। बेल, काकोलीकी जड, अपराजिता और तिल इन सबोंको सहत और घीमें मिलाकर पीनेसे चूहेका विष दूर होता है। चौलाईकी जडके कल्कके द्वारा घीको सिद्ध करके पीनेसे मूसेका विष दूर होता है ॥ ५२ ॥

अथालर्कविषनाशकपुराणघृतकषायादिकक्रिया ।

दंशस्त्वलर्कदष्टस्य दुग्धयुक्तेन सर्पिषा । प्रसिञ्चेदगदैस्तैस्तैः पुराणं च घृतं पिबेत् ॥ काकोदुम्बरमूलं तु धत्तूरफलकान्वितम् । पिबेत्तण्डुलतोयेन सारमेयविषापहम् ॥ जलवेतसवृक्षस्य मूलं कुष्ठं पचेज्जले । स क्वाथः शीतलः पेयः परं च विषनाशनः ५३

भाषा–कुत्तेके काटनेकी जगहको दूधमें घी मिलाकर उससे सींचे तथा पुराने घीका पान करे। कठूमरकी जड और धतूरेके फल इनको चावलोंके जलमें पीसकर पान करनेसे कुत्तेका विष दूर होता है। जलवेतकी जड़ और कूठको जलमें पकाकर शीतल करके पीनेसे कुत्तेका विष दूर होता है ॥ ५३ ॥

वृश्चिकविषहरघृतपानादिगुटिकाविशेषः ।

घृतेन सैन्धवं पीत्वा वृश्चिकस्य विषं जयेत् । अर्कक्षीरेण संपिष्टं लेपाद्बीजं पलाशजम् ॥ वृश्चिकार्त्तिं हरेत्कृष्णा सशिरीषफला तथा । मनोह्वा सैन्धवं हिंगु जातीपत्रं सनागरम् ॥ गोशकृद्रससंपिष्टं गुटिका वृश्चिकार्त्तिनुत् ॥ ५४ ॥

भाषा–सैंधानोनको घीमें मिलाकर पीनेसे बिच्छूका विष दूर होता है। ढाकके बीजोंको आकके दूधमें पीसकर लेप करनेसे वृश्चिकका विष दूर होता है। पीपल, सिरसके बीज, मैनशिल, सेंधानोन, हींग, चमेलीके पत्ते और सोंठ इन सबोंको गायके गोबरके रसमें पीसकर गोली बना लेवे। इसको सेवन करनेसे बिच्छूका विष दूर करता है ॥ ५४ ॥

कल्करसादियोगः ।

जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः । सुखोष्णो वृश्चिकार्त्तानां प्रलेपो मधुना सह ॥ कासमर्दकपत्रं च मूलं च कुशका-

शयोः । चर्वयित्वा च फूत्कारः कर्णे वृश्चिकजं हरेत् ॥ पारावत-शकृत्पथ्या तगरं विश्वभेषजम् । बीजपूररसोपेतः परमो वृश्चि-कागदः ॥ ५५ ॥

भाषा-जीरेको पीसकर घी और सैंधानोनमें मिलाकर मंदोष्ण लेप करनेसे बिच्छूका विष दूर होता है । कसौंदीके पत्ते, कुश और काशकी जड इन सबोंको मुखमें चाबकर कानमें फूकनेसे बिच्छूका विष दूर होता है । कबूतरकी विष्ठा, हरड, तगर और सोंठ इन सबोंको बिजौरे नींबूके रसमें पीसकर प्रयोग करनेसे बिच्छूका विष दूर होता है ॥ ५५ ॥

नखदंतविषहरलेपादिक्रिया ।

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपादिका । रजन्यौ गैरिको लेपो नखदंतविषापहः ॥ शमीनिम्बजरापत्रवल्कलैः कथितैर्जलैः । नखदन्तक्षतं पुसां नाशाय परिषेचयेत् ॥ मंजिष्ठापद्मकोशीरैर्धान्यकैः परिपेषितैः । सघृतैर्लेपनं दद्यात् नखदंतविषापहम् ॥ द्विनिशा गैरिकं लेपो नखदन्तविषापहः । गोजिह्वा मधुना लेपो नखदंतविषप्रणुत् ॥ ५६ ॥

भाषा-कायफल, अश्वकर्णसाल, गोभी, हंसपदी, हलदी, दारुहलदी और गेरु इनको एकत्र पीसकर प्रलेप करनेसे नख और दंतका विष दूर होता है । छोकर और नीमकी जड, पत्ते तथा छाल इनका काथ बनाकर नख दंतसे लगे हुए घावको सींचे । मजीठ, पद्माख, खस और धनिया इनको एकत्र पीसकर घी मिलाकर लेप करनेसे नखदंतका विष दूर होता है । हलदी, दारुहलदी और गेरु इनको पीसकर अथवा गोभीको पीसकर सहतमें मिलाकर लेप करनेसे नखदंतका विष दूर होता है ॥ ५६ ॥

कानखजूरीविषहरलेपयोगः ।

लेपः प्रदीप्ततैलेन खर्जूरविषनाशनः ।
हरिद्राद्वयलेपो वा सगैरिकमनःशिला ॥ ५७ ॥

भाषा-प्रदीप्त तेलका लेप करनेसे कानखजूरेका विष दूर होता है । अथवा दोनों हलदी, गेरु और मैनशिल इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे कानखजूरेका विष दूर होता है ॥ ५७ ॥

शतपदविषलेपः।

कुंकुमं तगरं शिग्रु पद्मकं रजनीद्वयम्।
अगदो जलपिष्टोयं शतपद्विषनाशनः॥ ५८॥

भाषा-केशर, तगर, सहजना, पद्माख, हलदी और दारुहलदी इन सबोंको एकत्र जलमें पीसकर लेप करनेसे छपकलीका विष दूर होता है॥ ५८॥

कीटविषनाशकगोघृतादिलेपः।

कीटघ्नतुलसीमूलं पीतं यष्टिसुकल्कितम्। मेघनादबृहन्मूलं तथा गव्येन सर्पिषा॥ क्षीरवृक्षत्वचालेपः कीटदष्टविषापहः। हिंगुकुष्ठनतव्योषपाठाजन्तुघ्नसैन्धवैः॥ सक्षारातिविषैस्तुल्यैर्लेपः कीटविषप्रणुत्॥ ५९॥

भाषा-वायविडंग, तुलसीकी जड, मुलहठी, चौलाईकी जड और गूलरकी छाल इन सबोंको पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे कीटविष दूर होता है। हींग, कूठ, तगर, त्रिकुटा, पाठ, वायविडंग, सैंधानोंन, जवाखार और अतीस इन सबोंको समान भाग लेकर एकत्र पीसकर लेप करनेसे कीटविष दूर होता है॥ ५९॥

मक्षिकादिविषनाशकलेपधूपादिः।

पिपीलिकाभिर्दष्टानां मक्षिकामशकैस्तथा। गवांमूत्रयुतो लेपः कृष्णवल्मीकमृत्कृतः॥ मरीचं नागरोपेतं सिन्धूत्थं परिपेषितम्। फणिज्झकरसे हन्यात् लेपनाद्वरटीविषम्॥ शतपुष्पासमायुक्तं सैन्धवं परिपेषितम्। सघृतं लेपनं दद्यात् मक्षिकाविषनाशनम्॥ केशरं तगरं शुंठी मरिचं च प्रलेपनात्। मक्षिकादंशजा पीडा नाशं याति ध्रुवं नृणाम्॥ स्नुह्यक्षीरपरिपिष्टेन बीजेन परिलेपनम्। शिरीषस्य व्रजत्यस्तं विषं दर्दुरजं क्षणात्॥ दुर्वारापि व्यथा क्षिप्रं मत्स्यदंशात्तु तत्क्षणात्। अंकोटपत्रधूपेन धूपिता तु प्रशाम्यति॥ कीटदष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्युर्जलौकसाम्॥ ६०॥

भाषा-कालीवांबीकी मट्टीको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे चेंटीका विष, मक्खीका विष और मच्छरका विष दूर होता है। काली मिरच, सोंठ और सैंधा-

नोन इन सबोंको समान भाग लेकर वनतुलसीके रसमें पीसकर लेप करनेसे ततैयाका विष दूर होता है । सौंफ और सैंधेनोनको पीसकर घीमें मिलाकर लेप करनेसे मक्खीका विष दूर होता है । नागकेशर, तगर, सोंठ और काली मिरच इन सबोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे मक्खीके काटनेकी पीडा दूर होती है । सिरसके बीजोंको थूहरके दूधमें पीसकर लेप करनेसे तत्काल मेंडकका विष दूर होता है तथा अत्यन्त मछलीके काटनेकी पीडा दूर होती है । अंकोलके पत्तोंकी धूप देनेसे मछलीका विष शांत होता है । जोंकके विषपर सम्पूर्ण कीटदष्टविषकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६० ॥

विषवज्रपातरसः ।

निशा च टंकश्च सजातिकोषं तुल्यं समांशे कुरु देवदाल्याः ।
रसेन पिष्टो विषवज्रपातो रसो भवेत्सर्वविषापहन्ता ॥ ६१ ॥

भाषा–हलदी, सुहागा और जायफल इन सबोंको समान भाग लेकर देवदालीके रसमें खरल करे । यह विषवज्रपातरस सर्व प्रकारके विषविकारोंको दूर करे है ॥६१॥

भीमरुद्ररसः ।

शिरीषपुष्पकुष्ठैला शिला सव्योषरेणुका । यष्टचर्कहिंगुश्वेताग्रा सिंधुवारकफञ्जिका ॥ सूतराजस्य तोलैकं गंधकस्य तथैव च । अभ्रात्कर्षं ततो देयं तोलैकं कान्तलोहतः ॥ परार्केनौवधेनैव भावयेच्च पृथक् पृथक् । विशालाबृहतीब्राह्मीसौगन्धिकसदाडिमैः ॥ मर्कट्याश्चात्मगुप्तायाः स्वरसेन पृथक् ततः । एकरक्तिप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ एकां वटीं भक्षयित्वा पिबेच्छीतजलं ततः । कुक्कुरस्य शृगालस्य विषं हन्ति सुदुर्जयम् ॥६२॥

भाषा–सिरसके फूल, कूठ, इलायची, मैनशिल, सोंठ, मिरच, पीपल, रेणुका, मुलहठी, हींग, आककी जड, सफेद वच, संभालू और भारंगीका चूर्ण प्रत्येक एक एक तोला, लोहा, पारा, गंधक और अभ्रक प्रत्येक एक एक तोला इन सब औषधियोंको एकत्र करके इन्द्रायन, बृहती, ब्राह्मी, सफेद कमोदिनी, अनार, चिरचिटा और कौंछ प्रत्येकके स्वरसमें एक एक बार भावना देकर एक एक रत्तीकी गोली बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली खाय और ऊपरसे शीतल जल पीवे । यह कुत्ते और गीदडके विषको दूर करे है ॥ ६२ ॥

इति विषरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ स्नायुरोगनिदानम् ।

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् । भित्त्वैव तं क्षते तत्र सोष्मा मांसं विशोष्य च ॥ कुर्यात्तन्तुनिभं सूत्रं वृत्तं सितद्युति बहिः । शनैः शनैः क्षतादेति छेदात्तत्कोपमावहेत् ॥ तत्पाताच्छोथशान्तिः स्यात्पुनः स्थानांतरे भवेत् । स स्नायुकः परिख्यातः क्रियोक्तात्र विसर्पवित् ॥ बाह्वोर्यदि प्रमादेन त्रुट्यते जंघयोरपि । संकोचं खञ्जतां चापि छिन्नो नूनं करोत्यसौ ॥ १ ॥

भाषा–हाथ पैर आदि शाखामें वातादिदोष कुपित होकर विसर्पकी समान सूजन उत्पन्न करे । पश्चात् उस स्थानकी गरमी सूजनको फोडकर स्नायुको सुखाकर तंतु अर्थात् डोरेकी समान सफेद जीव उत्पन्न करे । यह डोरा शनैः शनैः व्रणमेंसे निकलता है और जो बीचमेंसेही टूट जावे तो अत्यन्त पीडा करता है । जब सब निकल जाता है तब सूजन शांत हो जाती है । किसीके फिर दूसरे स्थानमें उत्पन्न होता है । उसको स्नायुरोग कहते हैं । प्रमादसे जो इसका तंतु अर्थात् नहरुवा बीचमेंसे टूट जावे तो हाथसे टुंडा और पैरोंसे लूला कर देता है॥१॥

इति स्नायुरोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ स्नायुरोगचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदप्रलेपादिप्रकारः ।

विसर्पभेषजं सर्वं स्नायुकेऽपि प्रयोजयेत् । स्नेहस्वेदप्रलेपादि कर्म कुर्य्यात् यथाक्रमम् ॥ स्वेदान् स्नायुकमत्युग्रं भेककाञ्जिकसाधितम् । हन्ति हिम्लकं बीजं पिष्टं तद्वत् प्रलेपनात् ॥ शोभाञ्जनमूलदलैः काञ्जिकपिष्टैश्च सलवणैर्लेपः । हन्ति स्नायुकरोगं यद्वा मोचत्वचो लेपः ॥ सप्तपर्णशिफाकल्कः पानलेपप्रयोगतः । त्र्यहात् स्नायुकरोगघ्नो दृष्टो वारसहस्रशः ॥ गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम् ।

पिवेत्स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ हिंगुवांशीजलो-
येन मूलं वा कारवेल्लजम् । घृतेनैरण्डमूलं वा पिवेत्स्नायुक-
शांतये ॥ २ ॥

भाषा-जो औषधि विसर्परोगमें कही है वही औषधि स्नायुरोगमेंभी देनी चाहिये । तथा क्रमसे स्नायुकरोगमें स्नेह, स्वेद और प्रलेपादि क्रियाप्रयोग करे । मेंडकको कांजीमें औटाकर बफारा देनेसे स्नायुके रोग आराम होते हैं । अथवा हिज्जलके बीजोंको पीसकर लेप करनेसे स्नायुकरोग दूर होता है । सहजनेकी जड और पत्तोंको कांजीमें पीसकर लवण मिलाकर लेप करनेसे अथवा केलेकी छालको पीसकर लेप करनेसे स्नायुकरोग दूर होता है । सतोनेकी जडको पीसकर पीनेसे अथवा लेप करनेसे तीन दिनमें स्नायुकरोग दूर होता है । प्रथम गायके घीको पीकर पश्चात् संभालूके पत्तोंका रस पीवे तो तीन दिनमें स्नायुक रोग दूर होता है । वंशलोचनके क्वाथमें हींग अथवा करेलेकी जडको पीसकर सेवन करनेसे वा अंडकी जडको घृतके साथ पीसकर सेवन करनेसे स्नायुकरोग दूर होता है ॥ २ ॥

इति स्नायुरोगचिकित्सा समाप्ता ।

अथ रसायनाधिकारः ।

रसायनलक्षणम् ।

यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् । दीर्घमायुर्धृतिं मेधा-
मारोग्यं तरुणं वयः ॥ प्रभां वर्णस्वरौदार्य्यं देहेन्द्रियबलप्रदम् ।
वाक्सिद्धिं प्रणतां कान्तिं लभतेऽन्याद्रसायनात् ॥ पूर्वे वयसि
मध्ये वा शुद्धकायः समाचरेत् । नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रा-
सायनो विधिः ॥ न भाति वाससी क्लिष्टे रङ्गयोग इवार्पितः ।
शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो द्विशः ॥ त्रिशः समस्तम-
थवा प्राक्पीतं स्थापयेद्वयः ॥ मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः
क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् । रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्पः
कल्कः प्रयोज्यः खलु शङ्खपुष्प्याः ॥ आयुःप्रदान्यामयनाश-

नानि बलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि । मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण च शंखपुष्पी ॥ माक्षिकेण तुगाक्षीरी पिप्पल्या लवणेन च । त्रिफला सितया वापि युक्तया सिद्धं रसायनम् ॥ सिन्धूत्थशर्कराशुंठीकणामधुगुडैः क्रमात् । वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा ॥ हन्यादेतानवश्यं मधुनि परिगता पूतना चाम्लपित्तम्॥पुनर्नवस्यार्द्धपलं नवस्य पिष्टं पिबेत् यः पयसार्द्धमासम् । मासद्वयं वा त्रिगुणं समां वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ ये मासमेकं स्वरसं पिबंति दिने दिने भृंगरजःसमुत्थम् । क्षीराशिनस्ते बलवीर्य्ययुक्ता समाः शतं जीवनमाप्नुवंति॥ शतावरीमुण्डतिकागुडूची सहस्तिकर्णा सहतालमूली । एतानि कृत्वा समभागयुक्तान्याज्येन किंवा मधुनावलिह्यात ॥ जरारुजामृत्युवियुक्तदेहो भवेन्नरो वीर्य्यबलादियुक्तः । विभाति देवप्रतिमः स नित्यं प्रभामयो भूरि विवृद्धिबुद्धिः ॥ पीताश्वगंधा पयसार्द्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा । वीर्य्यस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥ गुडूच्यपामार्गविडंगशंखिनी वचाभया शुण्ठिशतावरी समा । घृतेन मासं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने भृंगरजःसमुत्थम् ॥ क्षीराशिनस्ते बलवर्णयुक्ताः समाः शतं जीवितमाप्नुवंति ॥ हस्तिकर्णरजः खादेत् प्रातरुत्थाय सर्पिषा । यथेष्टाहाराचारोऽपि सहस्रायुर्भवेद् ध्रुवम् ॥ धात्री तिलान् भृंगरजोविमि[illegible] भक्षयेयुर्मनुजाः क्रमेण । ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च [illegible]धयो व्योमचरा भवेयुः ॥ वृद्धदारस्य मूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । शतावर्य्या रसेनैव सप्त वारांस्तु भावयेत् ॥ अक्षमात्रं तु तच्चूर्णं सर्पिषा सह योजयेत् । उपयुञ्जीत दुग्धेन वलीपलितनाशनम् ॥ आभां च सोमराजीं च समभागविचूर्णिताम् । नरः क्षीरेण

संपीत्वा सुकृशः स्थूलतां व्रजेत् ॥ देहकम्पे च शोषे च योगमेतत् प्रयोजयेत् । मासमात्रोपयोगेन मतिमाञ्जायते नरः ॥ मेधावी स्मृतिमांश्चैव वलीपलितनाशनः । अश्वगंधातसी शुंठी निर्गुण्डी मागधी तथा ॥ पङ्काऽपराजितश्चैवं समभागानि कारयेत् । कर्षैकं भक्षयेन्नित्यं पयसान्नं पिबेदनु ॥ सन्धिवातं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः । रसायनमिदं प्रोक्तं वलीपलितनाशनम् ॥ वृद्धदारकमूलं तु योजयेन्मधुसर्पिषा । सप्ताहात क्षीरभक्ताशी किन्नरैः सह गीयते॥ब्राह्मी वचाभया वासा पिप्पली मधुसंयुता । अस्यप्रयोगात्सप्ताहात् किन्नरैः सह गीयते ॥ पंचाङ्गमिन्द्राशनश्लक्ष्णचूर्णं पलाष्टकं सप्त सितापलानि । सितार्धमानं मधुकस्य चार्द्धं घृतं क्षिपेत् सर्वमिदं समिश्रम् ॥ कृत्वा नरो मासचतुष्टयं यत् पयोत्र भक्षी पयसा च भुंक्ते । विहाय रोगान् समलान्मनीषी जीवेच्चिरं यौवनसंस्थितश्रीः॥ नलदं कटुरोहिणी पयस्या मधुकं चन्दनसारिवोग्रगंधाः । त्रिफला कटुकत्रयं हरिद्रे सपटोलं लवणं चलैः सुपिष्टैः ॥ त्रिगुणेन रसेन शंखपुष्प्याः सपयस्कं घृतनल्वणं विपक्वम् । उपयुज्य भवेज्जडोऽपि वाग्मी श्रुतधारी प्रतिभानवानरोगः ॥ १ ॥

भाषा–जो औषधि जरा (वृद्धता) और व्याधि (रोग) को नष्ट करे उसको रसायन कहते हैं । यह रसायन दीर्घ आयु, धैर्य, मेधा, आरोग्यता, तरुणावस्था, प्रभा, वर्णकी सुन्दरता, स्वरकी सुन्दरता, शरीर और इन्द्रियोंमें बलकी वृद्धि, वचनकी सिद्धि, कां''और अत्यन्त बुद्धिको उत्पन्न करती है । इसको प्रथम अवस्थामें अथवा मध्यम अवस्थामें विरेचनादिसे शुद्ध होकर सेवन करे जैसे काले वस्त्रको रंगनेसे रंग नहीं चढता अर्थात् सुन्दरता नहीं आती, इसी प्रकार अशुद्ध शरीरवाले मनुष्यको रसायनविधि कुछभी फलदायक नहीं होती। शीतल जल, दूध, सहत और घी इन चारोंमेंसे एक किसीको अथवा दोको मिलाकर वा तीनको मिलाकर किंवा चारोंको एकत्र मिलाकर नित्य प्रातःकाल पीवे तो यह उत्तम रसायन अवस्थाको स्थापन करे है । प्रतिदिन प्रातःकाल ब्रह्ममंडूकीका स्वरस पीनेसे अथवा मुलहठीके चूर्णको दूधके साथ सेवन करनेसे या गिलोयके स्वरसका पान

करनेसे किंवा मूल और पुष्पसहित शंखपुष्पीके कल्कका सेवन करनेसे आयु बढती है, सम्पूर्ण रोग दूर होते हैं। बल और अग्नि बढती है, स्वर सुंदर होता है और मेधाकी वृद्धि होती है। विशेषकरके शंखपुष्पीही मेधाको बढाती है। सहतके साथ वंशलोचन, सेंधेनोनके साथ पीपलका चूर्ण और मिश्रीके साथ त्रिफलेका चूर्ण इन तीनों प्रयोगोंमेंसे जो अपनेको हितकारी हो उसको युक्तिके साथ सेवन करे यह प्रसिद्ध रसायन है। वर्षाऋतुमें हरडका चूर्ण सेंधेनोनके साथ, शरदतुमें मिश्रीके साथ, हेमन्तऋतुमें सोंठके चूर्णके साथ, शीतऋतुमें पीपलके चूर्णके साथ, वसन्तऋतुमें सहतके साथ और ग्रीष्मऋतुमें गुडके साथ सेवन करे यह उत्तम रसायन है। हरडको कुछ कुछ कूटकर बहुत दिनोंतक सहतमें रखकर सेवन करे तो ववासीर, श्वासादि और अम्लपित्तरोग दूर होता है। दो तोले नवीन पुनर्नवेकी जड दूधमें पीसकर अर्द्धमास वा एकमास अथवा दो महीने वा तीन महीने अथवा एक वर्षतक पीवे तो वृद्धमनुष्यभी फिरसे नवीन होता है। नित्य दूध पीनेवाला जो मनुष्य प्रतिदिनके हिसाबसे एक महीनेतक भांगरेका रस पान करता है वह अत्यन्त बल वीर्ययुक्त होकर सौ वर्षोंतक जीता है। सतावर, गोरखमुंडी, गिलोय, हस्तिकर्णपलाश और मुसली इन सबोंको एकत्र पीसकर सहत अथवा घीके साथ सेवन करनेसे जरा, मरण और रोगरहित होकर अत्यन्त वीर्य्य और बलसंयुक्त हो जाता है तथा देवताकी समान कांतियुक्त और अत्यन्त बुद्धिमान् हो जाता है। जो मनुष्य असगंधके चूर्णको दूध, घी, तैल अथवा गरम जलके साथ १५ दिनतक सेवन करता है उसके अत्यंत वीर्य्यकी वृद्धि और पुष्टि उत्पन्न होती है। जैसे नवीन खेतीको वर्षाका जल अत्यंत पुष्ट करता है। गिलोय, चिरचिटा, वायविडंग, शंखाहुली, बच, हरड, सोंठ और शतावरका चूर्ण घृतमें मिलाकर एक महीनेतक सेवन करनेसे अत्यंत बल, वीर्य्य, बुद्धियुक्त होकर सौ वर्षोंतक जीता है। हस्तिकर्णपलाशके बीजोंके चूर्णको घृतमें मिलाकर प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन सेवन करे तो अत्यंत आयुकी वृद्धि होती है। आमले, तिल और भांगरा इन सबोंको एकत्र पीसकर सेवन करे तो बाल काले, इन्द्रिय विमल और शरीर नीरोग हो जाता है। विधायरेके चूर्णको शतावरके रसमें सात वार भावना देकर घृतके साथ एक महीनेतक सेवन करे तो मेधा और स्मरणशक्तिकी वृद्धि होती है। तथा वली पलितरोगकाभी नाश होता है परंतु इस औषधिके ऊपर दूध अवश्य पीवे। बबूरके बीजोंका चूर्ण और बावचीका चूर्ण समान भाग लेकर प्रतिदिन दूधके साथ सेवन करनेसे कृश मनुष्य स्थूल हो जाता है। शरीरकंप और शोषरोगमें यह प्रयोग अत्यंत हितकारी है। इसको एक महीनेतक सेवन करनेसे मनुष्य अत्यंत बुद्धिमान् हो जाता है तथा अत्यन्त मेधावान्, स्मरणशक्तियुक्त और बली-

पलितरहित हो जाता है । असगंध, अलसी, सोंठ, निर्गुंडी, पीपल और कोयल ये सब समान भाग लेकर चूर्ण कर ले। इसमेंसे प्रतिदिन एक तोला खाय और ऊपरसे दूध पीवे । यह उत्तम रसायन असाध्य या साध्य संधिवातरोगको नष्ट करे है । तथा वलीपलितरोगोंको दूर करे है । विधायरेकी जडके चूर्णको सात दिनतक सहत और घीके साथ सेवन करे और ऊपरसे दूध पीवे तो किन्नरकी समान स्वर हो जाता है । ब्राह्मी, वच, हरड, अडूसा और पीपलके चूर्णको सहतके साथ सात दिनतक सेवन करनेसे किन्नरकी समान स्वर हो जाता है । भांगके पंचांगका वारीक चूर्ण आठ पल लेवे, मिश्री सात पल लेवे, सहत १४ तोले और घी सात तोले लेवे । सबोंको एकत्र मिलावे । प्रतिदिन इसमेंसे चार मासे खाय और दूधके साथ भोजन करे तथा दूध पीवे । इसके प्रभावसे मनुष्य सम्पूर्ण रोगोंसे रहित होकर यौवनरूपी लक्ष्मीसे संयुक्त हो बहुत कालतक जीता है । खस, कुटकी, दुद्धी, मुलहठी, चंदन, अनंतमूल, वच, त्रिफला, त्रिकुटा, हलदी, दारुहलदी, पटोलपात और सेंधानोन इन सबोंका कल्क दो दो तोले, शंखपुष्पीका स्वरस २ सेर, दूध २ सेर और घी आधसेर लेवे, सबोंको यथाविधिसे मिलाकर घृतको सिद्ध करे। इसका सेवन करनेसे जड मनुष्यभी उत्तम वाणीवाला, अनेक शास्त्रोंको धारण करनेवाला, कांतियुक्त और आरोग्य होता है ॥ १ ॥

अमृतभल्लातकः ।

भल्लातकानां पवनोद्धतानां वृन्ताच्युतानां च यदाढकं स्यात् । तच्चेष्टकाचूर्णकणैर्विघृष्य प्रक्षालयित्वा विसृजेत्प्रवाते ॥ शुष्कं पुनस्तद्विदलीकृतं च ततः पचेदप्सु चतुर्गुणासु । तत्पादशेषं परिपूतशीतं क्षीरेण तुल्येन पुनः पचेत्तम् ॥ तत्पादशेषं पुनरेव शीतं घृतेन तुल्येन पुनः पचेत्तम् । तदर्द्धया शर्करया विमिश्रं ततः खजेनोन्मथितं विधाय ॥ तत्सप्तरात्रादुपजातवीर्यं सुधामृतादप्यधिकत्वमेति । प्रातर्विशुद्धः कृतदेवकार्य्यो मात्रां च खादेत् सुशरीरयोग्याम् ॥ २ ॥

भाषा–पवनसे टूटे हुए और वृन्तरहित ऐसे भिलावे ८ सेर लेकर ईंटोंके चूर्णसे घिसकर धो लेवे, पश्चात् धूपमें सुखाकर उनके दो दो टुकडे कर लेवे, फिर चौगुने जलमें पकावे जब चौथा भाग जल शेष रह जाय तब उतारकर छान लेवे पश्चात् आठ सेर दूध मिलाकर पकावे जब चौथाई भाग शेष रहे तब उतार ले, फिर दो सेर घी मिला-

कर पकावे जब गाढा हो जाय तब एक सेर शर्करा मिलाके मथकर सात दिनतक रक्खा रहनेदेवे, इससे पूर्ण वीर्य्यवान्, अमृतकी समान हो जाता है। प्रातःकाल अपने इष्टदेवकी पूजा करके इसको शक्त्यनुसार भक्षण करे। इससे नाना प्रकारके रोग दूर होते हैं। यह अत्यंत उत्तम रसायन है ॥ २ ॥

अभ्रकरसायन।

अभ्रकं मारितं येन पारदं च वशीकृतम्। द्वारमुद्घाटितं तेन यमस्य धनदस्य च ॥ अभ्रकचूर्णं पलशतं गृहीत्वा लोहभाजने। पुनर्नवारसेनैव भाव्यमेकत्र चैकधा॥ त्रिफलाया रसैः पंच निम्बस्य द्वादशैव तु। अथ निश्चन्द्रिकां यावत् तावद्देयः पुटः क्रमात् ॥ नियोज्य गंधकं चैव पादांशेन तथा रसम्। विधिना जारितं लोहं रसं तुल्यं प्रदापयेत् ॥ रसेन्द्रमातृकातोयैर्भाव्यं तस्माच्च मर्दयेत्। घृतेन मधुना चापि पश्चादेतच्च भक्षयेत् ॥ रोगी वा त्रिफलापानेऽरोगी वा क्षीरपानतः। वातहा पित्तहा चैव कफहा कान्तिवर्द्धनः ॥ ३ ॥

भाषा-जिसने अभ्रकको मार लिया और पारेको वशमें कर लिया उस मनुष्यने यमराज और कुबेरका द्वार उखाड दिया। सौ पल अभ्रकका चूर्ण लोहेके पात्रमें रखकर पुनर्नवेके रसकी एक भावना देवे फिर त्रिफलेके रसकी ५ भावना देवे और नीमके रसकी १२ भावना देवे पश्चात् जबतक निश्चन्द्र न हो तबतक पुट देवे, फिर चौथाई भाग गंधक, चौथाई भाग पारा, विधिपूर्वक जारित किया लोहा मिलाकर रसेन्द्रमातृकारसमें भावना देवे, फिर घी और सहतके साथ इसको भक्षण करे ऊपरसे त्रिफलेका काथ अथवा दूध पीवे। यह औषध सर्व प्रकारके वातरोग, सब प्रकारके पित्तरोग तथा सब प्रकारके कफरोगोंको दूर करे है और कांतिजनक उत्तम रसायन है ॥ ३ ॥

पञ्चामृतरसः।

अथातः संप्रवक्ष्यामि रसं परमदुर्लभम्। पंचामृतमिदं ख्यातं सर्वरोगहरं परम् ॥ शास्त्रे सौख्यपदं नृणां भुवि रोगनिवारणम्। पथ्यापथ्यविनिर्मुक्तं विष्णुना परिकीर्तितम् ॥ सूतकांतरविव्योमशुद्धानां भस्मकं शुभम्। मारितं माक्षिकं चैव प्रत्येकं च

पलं पलम् ॥ गंधं पंचपलं दत्त्वा श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् । आ-र्द्रकस्य रसं दत्त्वा त्रिदिनं मर्दयेत्ततः ॥ क्वाथे तु दशमूलस्य व-ह्निमूलरसेन वा । युक्त्या तु क्वथितेनापि मर्दयेच्च दिनत्रयम् ॥ शोषयित्वा ततो घर्मे चूर्णयेत्तदनन्तरम् । त्रिवर्गत्रित्रयाम्भोद-तिन्दुतुम्बुरुवेणुकम् ॥ भार्ङ्गीभूनिम्बतिक्ता च जातीफलकशेरु-कम् । पलार्द्धमाने सर्वाणि प्रत्येकैकं भवन्ति हि ॥ निधाय श्लक्ष्णचूर्णानि रसेन सह मेलयेत् । काकमाच्याश्च निर्गुण्ड्या वर्षाभूमुंडिका तथा ॥ कषायेणार्द्रकाम्भोभिर्भावनां परिकल्प-येत् । कषायेण गुडूच्याश्च शिग्रुमूलरसेन वा ॥ ४ ॥

भाषा—अब इसके उपरांत परम दुर्लभ पंचामृतरसको कहते हैं। यह सर्वरोग-नाशक है, सर्व सुखदायक है और संसारके रोगोंको दूर करे है, इसमें पथ्यापथ्य-विधि प्रयोग करनी चाहिये । यह विष्णु भगवान्ने कहा है। पारा, कान्तलोह, तांबा, अभ्रक और सोनामक्खी प्रत्येककी भस्म चार चार तोले और शुद्ध गंधक वीस वीस तोले लेकर सबोंको एकत्र पीसकर बारीक चूर्ण कर ले इस चूर्णको अद-रखके रसमें तीन दिन खरल करे, फिर दशमूलके काथमें अथवा लाल चीतेके रस-में ३ दिन खरल कर धूपमें सुखा लेवे पश्चात् हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, चीता, नागरमोथा, तेंदु, तुम्बुरु, रेणुका, भारंगी, चिरायता, कुटकी, जायफल और कसेरु प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले मिला देवे पश्चात् इसको मकोय, संभालू, पुनर्नवा और गोरखमुंडीके रसमें, दशमूलके काथमें, धनियेके काथमें, सोंठके काथमें, अदरखके रसमें, गिलोयके काथमें, सहजनेकी जडके रसमें तथा फिर अदरखके रसमें एक एक बार भावना देकर झाऊबेरकी समान गोली बना लेवे । प्रतिदिन एक गोली वीस वीस काली मिरचोंके साथ खावे और इसपर तक्रके साथ भोजन करे ॥ ४ ॥

शुद्धपंचामृतरस ।

भस्मीभूतसुवर्णतारदिनकृत्कृष्णाभ्रसूतैः क्रमार्द्धधानां खलु भा-गवृद्धिरपि तत्कृत्वा शुभां कज्जलीम् । निर्गुण्डीदशमूलवह्नि-रजनीव्योषार्द्रकैर्भावितैर्गोलीकृत्य विशोष्य तन्निगदितः पंचा-मृतः स्याद्रसः ॥ ५ ॥

भाषा-सोनेकी भस्म, चांदीकी भस्म, तांबेकी भस्म, अभ्रककी भस्म, पारेकी भस्म और शुद्धगंधक ये सब क्रमसे एकसे एक अधिक लेकर कज्जली बनावे पश्चात् इस कज्जलीको संभालू, दशमूल, चीता, हलदी, त्रिकुटा और अदरखके रसकी भावना देकर गोली बनाय धूपमें सुखा देवे । यह पंचामृतरस सर्व प्रकारके रोगोंको दूर करे है ॥ ५ ॥

धातुवद्धरस ।

गंधकेन शिला वापि सीसको माक्षिकेण वा । अभ्रो लोहेन वा तद्वत् समभागेन पारदः ॥ सुभृष्टटंकणेनापि रसपादेन संयुतः । रसेन पारिजातस्य कारवेल्या रसेन वा ॥ द्रवन्त्यास्तण्डुलीयकं ह्येकाहं मर्दयेद्रसम् । अर्धं संचूर्ण्य मण्डूरं दिनान्तं परिमर्दयेत् ॥ तज्जलं भाजने क्षिप्त्वा सूर्यतापे निधापयेत् । जलादुत्सृज्य मृत्स्नां च पथ्यया सह मर्दयेत्॥पूर्वसूतस्य तं कल्कं लिम्पयेन्मृत्स्नया तथा । अंगुलोत्सेधमानेन ततः संवेष्टच मृण्मयैः ॥ विशोष्य तं धमेद्गाढं सार्धेकं घटिकावधि । तस्मादुद्धृत्य तं भित्त्वा शीतलाङ्गेन मूषिकाम् ॥ ६ ॥

भाषा-गंधक, मैनशील, सीसा, सोनामक्खी, अभ्रक और लोहा प्रत्येक एक एक भाग, पारा छः भाग, भूना सुहागा डेढ भाग, इन सबोंको एकत्र पीस पारिजातके रसमें, करेलेके रसमें और चौलाईके रसमें एक एक वार खरल करे, पश्चात् पारिजात, करेला, मूसाकर्णी और चौलाईके रसमें एक दिन मण्डूरको खरल करे फिर मण्डूरको सोरठकी मट्टीमें मिलाकर मूषा बना लेवे, पश्चात् पूर्वोक्त गंधकादि खरल की हुई औषधि इस मूषामें स्थापन कर एक अंगुल ऊंचा मृत्तिकाका लेप कर मृदु अग्निसे पकावे। स्वयं शीतल हो जाय तो चूर्ण कर ले। इसको त्रिकुटे और चीतेके चूर्णके साथ भक्षण करे । यह उत्तम रसायन सब रोगोंको दूर करे है ॥ ६ ॥

सुरसुन्दरी गुटिका ।

अभ्रकं माक्षिकं वज्रं कान्तं हेम समं समम् । सर्वाणि समभागानि सूतयुक्तानि कारयेत्॥गोलकं च ततः कृत्वा पक्वं निचुलवारिणा । ततस्तं पुटपाकेन स्तम्भयित्वा प्रयत्नतः ॥ ७ ॥

भाषा—अभ्रक, सोनामक्खी, हीरा, कान्त लोह और सोना ये सब समान भाग लेकर समान भाग पारेके साथ समुद्रफलके जलमें खरल कर गोला बना लेवे, पश्चात इस गोलेको मूषामें रख मूषाको मृत्तिकादिसे लेप कर मृदु अग्निसे पकावे, यह औषधि सर्व प्रकारके विषरोगोंको दूर करे है ॥ ७ ॥

सर्वतोभद्ररसः ।

सूतं कान्तमुपलगगनं ताप्यकं शुद्धतालं राजावर्त्तं सुरभिमधुकं मानसी चेति तुल्यम् । सर्वैस्तुल्यं दृषदि दलितं भंगतोयेन सर्वं गोलीभूतं भवति विमलः सर्वभद्राभिधानः ॥ ८ ॥

भाषा—पारा, कान्तलोह, पत्थर, अभ्रक, सोनामक्खी, हरिताल, राजावर्त्त, गूगल, मुलहठी और दुर्गपुष्पी ये सब समान भाग लेकर सबोंकी समान भांगरेके रसमें खरल कर गोली बना लेवे । यह औषधि गुल्मादि नाना प्रकारके रोगोंको दूर करे है तथा बलवीर्य्यको बढावे है ॥ ८ ॥

मृतजीवनी गुटिका ।

पारदं सारलोहं च कान्तलोहं समन्वितम् । माक्षिकस्यापि सत्वं च सत्वं गगनसंभवम् ॥ युतानि समभागानि मर्दयेच्च प्रयत्नतः । निचुलफलतोयेन गोलकं कारयेत्ततः ॥ नवांगुलप्रमाणेन मूषागर्भेऽथ पिण्डिका। निर्गुण्डी काकमाची च गोजिह्वा दुग्धिका तथा ॥ गृहकन्यां मधूकं च सैन्धवं पिण्डिकां ततः । स्वेदयेत्पुटयोगेन सा पिण्डी दृढतां व्रजेत्॥ ९ ॥

भाषा—पारा, सारलोह, कान्तलोह, सोनामक्खीका सत्व और अभ्रकका सत्व ये सब समान भाग लेकर जलवेतके रसमें खरल कर गोला बनावे, पश्चात् इस गोलेको नौअंगुलकी मूषाके गर्भमें स्थापन करे फिर संभालू, मकोय, गोजिया, दुद्धी, घीगुवार, मुलहठी और सैंधानोन ये सब एकत्र पीसकर पूर्वोक्त गोलेमें मिला देवे, मंद अग्निसे पुटपाक करे । इस औषधिको भक्षण करनेसे सर्व प्रकारके रोग दूर होते हैं ॥ ९ ॥

उदयभास्कररस ।

तोलैकं शुद्धसूतस्य गंधकस्य चतुर्गुणम्।कृत्वा कज्जलिकामादौ मर्दयेत्तदनन्तरम् ॥ पक्वं निचुलतोयेन यथा कल्कोपजायते । ततो द्वयस्य ताम्रस्य कृत्वा पात्राण्यतः परम् ॥ कज्जल्या सह

पत्राणि पक्वं निचुलवारिणा। प्लावयित्वा तु बहुधा स्थापयेदातपे खरे॥ तत्त क्षिप्त्वा चान्धमूषायां पुटपाकं समाचरेत्। चुल्लिका-मुद्धृतं मूषां कृत्वा त्रीणि प्रदापयेत्॥ पुटानि कुक्कुटाख्यानि सूतसंस्कारसिद्धये। सिद्धसूतं समादाय गुंजामानं प्रदापयेत्॥ चित्रकार्द्रकसिन्धूत्थैर्नागवल्ल्या दलेन वा। उपचारं तु निर्दिष्टं यथा प्राणेश्वरे रसे॥ १०॥

भाषा–शुद्धपारा १ तोला, शुद्धगंधक ४ तोले दोनोंकी कजली बनाकर खरल करे, पश्चात् पके समुद्रफलोंके रसमें इसका कल्क बनावे, फिर दुगुना तांबा लेकर पत्र बनावे, उन पत्रोंको कज्जलीके साथ बहुत वार पके समुद्रफलोंके रसमें रख पुटपाक करे, पश्चात् चूल्हेसे उतारकर कुक्कुटाख्य तीन पुट देवे। प्रतिदिन एक रत्तीभर चीते, अदरख, सैंधानोन वा पानके साथ खावे। उपचार प्राणेश्वरकी समान है। यह उदयभास्कररस नानाप्रकारके रोगोंको दूर करे है॥ १०॥

वारिसागररस।

शुद्धाभ्रकस्य गंधस्य रसस्य च ततः परम्। तोलकं कल्पयित्वा तु सुगंधस्य च संख्यया॥ निर्गुण्डी काकमाची च धत्तूरार्द्रकशिग्रुभिः। गिरिकर्णी जयंती च भृंगं च तिलपर्णिका॥ दंडोत्पली तथा जातीकन्दं च केशराजकम्। चित्रकं च महाराष्ट्रं तथान्या पिप्पली जरा॥ एतासामौषधीनां च व्योमगंधं तथा परम्। रसः प्रमर्दयेत्खल्वे क्रमेणानेन यत्नतः॥ ततो निरुन्धयेत्सम्यक् कृत्वा सम्पुटमध्यगम्। आरोप्य संपुटं चुल्यां काष्ठाग्निं ज्वालयेदधः॥ याममात्रं ततो ध्मात्वा स्वांगशीततां गतम्। संपुटं तं समाकर्षेत् सिद्धसूतं प्रयत्नतः॥ सिद्धसूतात्प्रदातव्याश्चित्रकेण समन्विताः। तिस्रो गुंजाश्चतस्रो वा सन्निपातेऽतिदारुणे॥ त्र्यूषणं जीरके द्वे च यवानीवचया सह। आर्द्रकं च तथा पंचलवणानि प्रयोजयेत्॥ क्षारत्रयं तथा सर्वं समभागं प्रकल्पयेत्। तत्सर्वमेकतः कृत्वा रसमेव विधिः परम्॥ श्वेता पुनर्नवा दंती वाजिगंधा त्रिकत्रयम्।

दशमूलीबलायुक्तैरेभिर्लोहः प्रसाधितः ॥ निहन्ति निहतं कार्श्यं अपि भृंगविटैरपि। नास्त्यनेन समो लोहः सर्वरोगान्तकारकः॥ ११॥

भाषा-अभ्रक, गंधक और पारा प्रत्येक एक एक तोला लेकर संभालू, मकोय, धतूरा, अदरख, सहजना, कोयल, जयंती, भांगरा, तिलवन, सहदेई, जातीकंद, कुकुरभांगरा, चीता, जलपीपल और पीपलामूल प्रत्येकके रसमें रख सम्पुटको चूल्हेपर स्थापन कर काठकी अग्निसे एक प्रहरतक पकावे, जब स्वांग शीतल हो जाय तब सिद्ध पारेको निकाल लेवे । प्रतिदिन एक रत्ती खाय, पश्चात् लाल चीता, त्रिकुटा, जीरा, अजवायन, वच, अदरख, पंचलवण, जवाखार, सज्जी और सुहागेकी खीलोंका चूर्ण सेवन करे । यह वारिसागर रस नाना प्रकारके रोगोंको दूर करे है । सफेद कोयल, पुनर्नवा, दंती, असगंध, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, चीता, नागरमोथा, दशमूल, खिरेटी, भांगरा और बिडलोन ये सब एक भाग और सबोंकी बराबर लोह लेवे । इस औषधिको यथानुपानके साथ सेवन करे तो सर्व प्रकारके रोग दूर होवें ॥ ११ ॥

सर्वतोभद्रलोह ।

विडंगसारो मेघाख्यो रक्तवह्निररुष्करः । हस्तिकर्णः सितार्कश्च तथा श्वेतपुनर्नवा ॥ बाकुचीमुण्डिका भृंगराजको वृद्धदारकः । गुडूच्यतिबला रास्ना तालमूली शतावरी ॥ पिण्डारोच्चटगजाः समूलः केशराजकः । पारदं च पृथक्कर्षं लोहस्य पलपंचकम्॥ पलानि पंच ताम्रस्य पलमेकं तु गुग्गुलोः । द्विपलं गंधकात्प्रोक्तं पट्कर्षाणि मनःशिला ॥ स्वर्णमाक्षिककर्षैकं पलं सार्द्धं शिलाजतोः । त्रिफलात्रिकटूनां च प्रत्येकं कार्षिकं द्वयम् ॥ सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य घृतेन मधुना सह । घृतभांडे समालोड्य भक्षयेत्क्रमयोगतः ॥ संज्ञया सर्वतोभद्रं निरत्ययमुदाहृतम् ॥ १२ ॥

भाषा-विडंगसार, नागरमोथा, लाल चीता, भिलावे, हस्तिकर्णपलाश, सफेद आक, सफेद पुनर्नवा, बावची, गोरखमुंडी, भांगरा, विधायरा, गिलोय, कंघी, रास्ना, मुसली, शतावर, पिण्डार, निर्विषीतृण, नागकेशर, मूली, कुकुरभांगरा और पारा प्रत्येक एक एक कर्ष, लोहा ५ पल, अभ्रक १ पल, गूगल १ पल, गंधक

२ पल, मैनशिल ६ कर्ष, सोनामक्खी १ कर्ष, शिलाजीत ६ तोले, त्रिफला २ कर्ष और त्रिकुटा २ कर्ष सबोंको एकत्र पीस बारीक चूर्णकर घृत और सहतमें मिला-के घीके बासनमें भरके रख देवे। इसको सेवन करनेसे अम्लपित्तादि नाना प्रकारके रोग दूर होते हैं। इसको सर्वतोभद्र लोह कहते हैं॥ १२॥

रसाभ्रगुटिका।

सहदेवी बला चैव सूर्य्यावर्त्तोऽथ मारिषः।अपामार्गोऽमृता चैव सम्यक् सम्पादयेद् भिषक्॥ एषां पलानि चत्वारि प्रत्येकं कुट्टयेत्ततः। अत ऊर्द्ध्वं च तद्दत्त्वा मण्डूरं यत्पुरातनम्॥ गोमूत्रेण पचेत्तावत् यावत् गोमूत्रशोषणम्।तस्मादुद्धृत्य तच्चूर्णं कुर्य्यात्पलचतुष्टयम्॥ त्रिकटु त्रिफला मुस्तगुडूची चित्रकं त्रिवृत्। दंती विडंगमेकैकं कर्षमेषां तु चूर्णयेत्॥ एकपत्रीकृतस्याथ वज्रकाभ्रस्य यत्पलम्। वाय्यन्नाम्भस्त्रिरात्रस्थं वारिपर्णीरसाप्लुतम्॥ आतपे शोषयेत्तीक्ष्णे दिनमेकं सुरक्षया। सूरणस्य रसैः पिष्ट्वा तत्र टंकणकस्य च॥ दत्त्वार्द्धौ माषकांस्तत्र पुटपाकेन पाचयेत्। मृण्मये सुदृढे पात्रे मृदुना गोमयाग्निना॥ रसाद्द्वादशमाषाश्च कर्षगन्धकतः पृथक्। रसे मण्डूकपर्ण्याश्च मूर्छितौ कज्जलीकृतौ॥ घृतस्य मधुनश्चापि पृथक् पलचतुष्टयम्। तत्सर्वमेकतः कृत्वा स्निग्धे भांडे निधापयेत्॥ ततोऽष्टौ माषकान् खादेदथवा द्वादशैव च। कर्षं वापि तथा कुर्य्यात् बुद्ध्या दोषबलाबलम्॥ दुग्धं चापि पिबेद्रोगी वह्नौ मंदभवे ततः। तप्तोदकानुपानं च सेवेच्च ग्रहणीगदे॥अजाक्षीरानुपानं च श्वासकासे प्रयोजयेत्॥ १३॥

भाषा-सहदेवी, खिरैटी, हुलहुल, मरसा, चिरचिटा और गिलोय प्रत्येक चार चार पल ले कूटकर आधेको तो एक हांडीमें रख देवे उसके ऊपर पुराना मण्डूर रखकर फिर ऊपरसे पूर्वोक्त आधा कूटा हुआ द्रव्य रख देवे, फिर गोमूत्र डालकर पकावे जब गोमूत्र जलकर सूख जाय तब निकाल कर चार चार पल चूर्ण कर के, फिर इस चूर्णमें त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, गिलोय, चीता, निसोत, दंती

और वायविडंग प्रत्येकका चूर्ण एक एक कर्ष मिला लेवे, पश्चात् एक पत्री किया हुआ वज्राभ्रक १ पल लेकर जलकुम्भीके रसमें तीन दिन भिगोकर एक दिन धूपमें सुखावे, फिर जमीकन्दके रसमें पीस इसमें ८ मासे सुहागा मिला दृढ मट्टीके पात्रमें मन्द मन्द उपलोंकी अग्निसे पुटपाक करे पश्चात् इसका चूर्ण कर पूर्वोक्त चूर्णके साथ मण्डूकपर्णीके रसमें मूर्छित की हुई कजली ४ तोले, घृत ४ पल और सहत ४ पल सबोंको मिलाकर एक चिकने घीके बासनमें भरके रख देवे, इसको दोष और बलानुसार सेवन करे । अनुपान मंदाग्निरोगमें दूध, संग्रहणीरोगमें गरम जल, श्वास और खांसीमें बकरीका दूध यह अर्शादि समस्त रोगोंको दूर करे है ॥१३॥

सर्वेश्वररस ।

चित्रकं माणकं चैव शूरणं घण्टकर्णकम्।ग्रन्थिकं त्रिफला व्योषं कट्फलं सपुनर्नवम् ॥ दण्डोत्पलं वृश्चिकाली रुदंती काकमाचिका । सूर्य्यावर्त्तत्रिवृद्दंती क्रुमिघ्नं कुष्ठमुस्तकम् ॥ शतपुष्पा वचा चव्यं पत्रं रास्ना च तोलकम् । माक्षिकार्णा च ताम्रार्णा पलं गंधकसूतयोः ॥ अभ्रकं द्विपलं ग्राह्यं पात्रे कृत्वा दृढोपमे । सर्वमेकत्र संमर्द्य द्विगुणं मृतमायसम् ॥ चूर्णं सर्वेश्वरं नाम सर्वामयनिबर्हणम् ॥ १४ ॥

भाषा—चीता, मालकंद, जमीकंद, घंटाकर्ण, पीपलामूल, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, कायफल, पुनर्नवा, दंडोत्पल, बिछाटी, रुदंती, मकोय, हुलहुल, निसोत, दंती, वायविडंग, कूठ, नागरमोथा, सोया, वच, चव्य, तेजपात और रास्ना प्रत्येकका चूर्ण एकएक तोला, सोनामक्खी, तांबा, पारा और गंधक प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, अभ्रकका चूर्ण आठ तोले और दुगुना लोहेका चूर्ण, सबोंको एकत्र कर उत्तम दृढपात्रमें मर्दन करे । यह सर्वेश्वररस सर्व प्रकारके रोगोंको दूर करे है ॥ १४ ॥

लक्ष्मीविलासरस ।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धं रसगंधके । कर्पूरस्य तदर्द्धं तु जातीकोषफले तथा ॥ वृद्धदारकबीजं च बीजमुन्मत्तकस्य च । त्रैलोक्यविजयाबीजं विदारीकंदमेव च ॥ नारायणी तथा नागबला चातिबला तथा । बीजं गोक्षुरकस्यापि ऐज्जलं बीजमेव च ॥ एतेषां कार्षिकं चूर्णं गृहीत्वा वारिणा पुनः । निष्पिष्य

वटिका कार्य्या त्रिगुंजाफलमानतः ॥ निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान् घोरान् सुदारुणान् । वातोत्थान् पैत्तिकांश्चापि नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥ अनुपानमिदं प्रोक्तं मांसं पिष्टं पयो दधि । वारितक्रसुधासीधुसेवनात्कामरूपधृक् ॥ १५ ॥

भाषा-कृष्णाभ्रक ४ तोले, पारे और गंधककी कजली ४ तोले, कपूर २ तोले, जायफल एवं जावित्रीका चूर्ण २ तोले, विधायरेका बीज, धतूरेका बीज, भांगका बीज, विदारीकंद, शतावर, गंगेरन, कंघी, गोखुरूके बीज और समुद्रफलके बीज प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले लेवे। सर्वोको एकत्र जलमें पीसकर तीन २ रत्तीकी गोलियां बना लेवे, प्रतिदिन एक गोली खाय तो नाना प्रकारके रोग दूर हों। अनुपान दूध, दही, पिष्टक, मांस, जल, तक्र, सीधु और सुरा है ॥ १५ ॥

शृंगाराभ्रक।

शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं द्विपलपरिमितं शाणमानं यदन्यत् कर्पूरं जातिकोषं सजलमिभकणा तेजपत्रं लवंगम् । मांसी तालीशचोचं करिकुसुमगदं धातकी चेति तुल्यं पथ्या धात्री बिभीतं त्रिकटुकपृथगस्त्वर्द्धशाणं द्विशाणम् ॥ एला जातीफलाख्यं क्षितितलविधिभा शुद्धगंधाश्वकोलं कोलार्द्धं पारदस्य प्रतिपदनिहतं पिष्टमेकत्र मिश्रम् । पानीयेनैव कार्य्याः परिमितचणकस्विन्नतुल्याश्च बध्याः प्रातः खाद्याश्चतस्रस्तदनु च कियत् शृंगबेरं सपत्रम्॥पानीयं पीतमन्ते ध्रुवमपहरति क्षिप्रमादौ विकारान्१६

भाषा-कृष्णाभ्रकका चूर्ण ८ तोले, कपूर, जायफल, सुगंधवाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, बालछड, तालीसपत्र, दालचीनी, नागकेशर, कूठ और धायके फूल प्रत्येकका चूर्ण चार चार मासे, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच, पीपल, प्रत्येकका चूर्ण दो २ मासे, इलायची और जावित्री प्रत्येकका चूर्ण आठ मासे, शुद्ध गंधक और शिलाजीत प्रत्येक एक एक तोला, एवं पारा (रससिन्दूर) छः मासे इन सबोंको एकत्र जलमें पीस चनेकी बराबर गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन प्रातःकाल एक गोली अदरख और पानके साथ सेवन करे और ऊपरसे जल पीवे। यह औषधि कासादि सम्पूर्ण रोगोंको दूर करे है। इसको सेवन करनेवाला मनुष्य मांस, मूंगादिका यूष, घी और सुपथ्यादिके साथ भोजन करे ॥ १६ ॥

अमृतसारगुटिका ।

फलत्रिकामृतामुस्तवृद्धदारविडंगकम् । वचानामेकशं चैव द्विपलं द्विपलं भवेत् ॥ कटुत्रिकं कणामूलं जलमूलकचित्रकैः। त्वगेलानागचूर्णानां प्रत्येकं च पलं पलम् ॥ सर्वं चूर्णमिदं श्लक्ष्णं पलानां पंचविंशतिः। द्विगुणेन गुडेनैव मोदकं परिकल्पयेत् ॥ शतत्रयं षष्ट्यधिकं प्रत्यहं भोजनोपरि । सुविशुद्धशरीरस्य शस्ते काले शुभे दिने ॥ एकैकं कृत्वा काले भक्षयेदमृतोपमम् । जलं वा अनुपातव्यं भोजनं सर्वकामिकम् ॥ मासे तु प्रथमे सर्वान् व्याधींश्च नाशयेद् ध्रुवम् । द्वितीये पुष्टिजननं तृतीये कनकप्रभः ॥ चतुर्थे शुक्रबहुलाः पंचमे तु महामतिः । षष्ठे नामसहस्राणां बलादेवातिरिच्यते ॥ सप्तमे वाजिवेगः स्यादष्टमे मंत्रसाधकः । सर्वज्ञो नवमे मासि दशमे पवनोपमः॥ स्त्रीजिदेकादशे मासे नाग्निना द्वादशे भवेत् । एवं संवत्सरं यावद्यः करोति पुमानिह ॥ वत्सराणां सहस्राणि जीवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥ १७ ॥

भाषा-हरड, बहेडा, आमला, गिलोय, नागरमोथा, विधायरा और वच प्रत्येकका चूर्ण आठ आठ तोले, सोंठ, मिरच, पीपल, पीपलामूल, सुगंधवाला, चीतेकी जड, दालचीनी, इलायची और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले और सबोंसे दुगुना गुड लेवे। सबोंको मिलाकर ३६० लड्डू बनावे । वमन विरेचनादिसे शुभ समय शुभ दिनमें नित्यप्रति एक लड्डू खाय और ऊपरसे जल पीवे । इस औषधिपर इच्छानुसार भोजन पान करे । इसको सेवन करनेसे पहिले महीनेमें सर्व प्रकारके रोग दूर होते हैं । दूसरे महीनेमें पुष्टि बढती है । तीसरे महीनेमें सुवर्णकी समान शरीरकी कांति होती है । चौथे महीनेमें शुक्रकी अधिकता होती है । पांचवें महीनेमें महाबुद्धिवान् होता है । छठे महीनेमें हाथीकी समान बली होता है । सातवें महीनेमें घोडेकी समान वेग होता है । आठवें महीनेमें मंत्रसिद्ध होती है । नवमें महीनेमें सर्वज्ञ होता है। दशवें महीनेमें पवनकी समान गति होती है । ग्यारहवें महीनेमें मैथुनके द्वारा स्त्रीको जीतता है । बारहवें महीनेमें अग्निकी समान तेजकी वृद्धि होती है । एक वर्षके पश्चात् बली और पलितादि रोगोंसे रहित होकर दीर्घायु होता है ॥ १७ ॥

शर्करावलेह ।

क्वाथे मधुरवर्गस्य प्रस्थे प्रस्थे तथैव च । पंचमूल्यास्तृणा-ख्यायाः सिताप्रस्थं विपाचयेत्॥दत्त्वार्द्धकुडवं सर्पिर्नारिकेलज-लस्य च । प्रस्थत्रयं विनिक्षिप्य दृढे पात्रे शनैः शनैः॥ सिद्धेऽ-वतारिते शीते चूर्णमेषां विनिक्षिपेत् । मुस्तैलापत्रधन्याकजी-रकाणां गुडत्वचः ॥ कारव्या वंशजायाश्च रोचनायास्तथैव च । शाणद्वयमिदं कृत्वा प्रत्येकं केशरस्य च ॥ खादेदग्निबलापेक्षी पथ्यभुक् मात्रया नरः॥स नाशयेत्सर्वरोगान् शर्करालेह उत्तमः १८॥

भाषा-मेदा, महामेदा, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती और मुलहठी इस मधुरवर्गका क्वाथ दो सेर, तृणपंचमूलका क्वाथ दो सेर, मिश्री दो सेर, घी आधसेर और नारियलका जल छः सेर सबोंको एकत्र पकावे। जब सिद्ध हो जाय तब उतार लेवे। शीतल होनेपर नागरमोथा, इलायची, तेज-पात, धनिया, जीरा, दालचीनी, सौंफ, वंशलोचन, गोलोचन और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण आठ आठ मासे मिला देवे, इसको अग्निका बलाबल देखकर खावे। यह शर्करावलेह पित्त वातादि नाना प्रकारके रोगोंको दूर करे है । इसपर पथ्य भोजन करे ॥ १८ ॥

शुक्रसंजीवनीयमोदक ।

विदारीकंदजं चूर्णं चतुर्दशपलोन्मितम् । शाखोटबीजद्विपलं लाजापलचतुष्टयम् ॥ सितापलशतं देयं क्षीरं दत्त्वा विपाचये-त् । जातीफलं त्रिजातं च सशठिग्रन्थिपर्णिभिः ॥ यवानिका तथा व्योषं प्रत्येकं चूर्णशुक्तिभिः । सिद्धे पाके क्षिपेत्सर्वं मोदकं शुक्रजीवनम् ॥ संवर्द्धयति वीर्य्यं च तेजोबलकरं परम् ॥ १९ ॥

भाषा-विदारीकन्दका चूर्ण १४ पल, सिहाढेके बीज २ पल, खीलें ४ पल, मिश्री १०० पल इन सबोंको १२८ पल दूधमें डालकर पकावे जब पक जाय तब जायफल, त्रिजातक, कचूर, गठिवन, अजवायन और त्रिकुटा प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिलाकर शुक्रसंजीवन नामवाले मोदक बना ले। यह मोदक शुक्र, तेज और बलको बढावे है ॥ १९ ॥

त्रिफलारसायन ।

त्रिफलायाः पलशतं चूर्णं भृंगरसाम्बुना । भावयेत्सप्तवारांस्तु च्छायाशुष्कं तु कारयेत् ॥ पादं गंधकचूर्णस्य तदर्द्धं पारदं क्षिपेत् । लिह्यान्मधुघृताभ्यां च मात्रया प्रत्यहं पुमान् ॥ जीर्णे भोज्ये ह्यनाहारे गुणानेतानवाप्नुयात् । प्रसन्नदृष्टिरव्याधि-र्जीवेद्वर्षशतत्रयम् ॥ २० ॥

भाषा-१०० पल त्रिफलेके चूर्णको भांगरेके रसमें सातवार भावना देकर छायामें सुखा देवे । पश्चात् इसमें २५ पल गंधक और १२॥ पल पारा मिला देवे । इसको प्रतिदिन सहत और घृतमें मिलाकर सेवन करे । भोजनके जीर्ण होनेमें अथवा भोजनके पहिले खाय । यह दृष्टिको प्रसन्न करै है, सम्पूर्ण रोगोंको हरे है और तीन सौ वर्षकी आयुको करे है ॥ २० ॥

जलपानम् ।

कासश्वासातिसारज्वरपिटककटीकोठकुष्ठप्रकारान्मूत्राघातोदरार्शःश्वयथुगलशिरःकर्णशूलाक्षिरोगान् । ये चान्ये वातपित्तक्षयजकफकृता व्याधयः संति जन्तोस्तांस्तानभ्यासयोगादपनयति पयः पीतमन्ते निशायाः ॥ विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं पिबति खलु नरो यो नासरंध्रेण वारि । स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्यो वलिपलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥ २१ ॥

भाषा-जो मनुष्य नित्य रात्रिके अंतमें विधिपूर्वक जलपान करे हैं उनके खांसी, श्वास, अतीसार, ज्वर, पिटक, कटिरोग, कोठरोग, कुष्ठरोग, मूत्राघात, उदररोग, बवासीर, सूजन, गलरोग, शिरोरोग, कर्णरोग, शूलरोग, नेत्ररोग, वात-पित्त, क्षय और कफसे उत्पन्न हुए ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं । जो मनुष्य मेघ-रहित रात्रिके अंतमें अर्थात् सूर्य्योदयसे पहिले नित्य उठकर नासिकाके द्वारा जल पीते हैं वे मतिपूर्ण, दृष्टिमें गरुडकी समान, वलीपलितहीन और सर्वरोगोंसे छूट जाते हैं ॥ २१ ॥

इति रसायनाधिकारः समाप्तः ।

अथ रसोपद्रवाः ।

नाभिमूले भवेच्छूलं निद्रालस्यं ज्वरोऽरुचिः । जाड्यं मलग्रहो दाहो रसाजीर्णे भवेन्नृणाम्॥रसाजीर्णमिति ज्ञात्वा ततः कुर्य्यात् प्रतिक्रियाम् । दिनत्रयं प्रयत्नेन क्रियमाणे रसायने ॥ कर्कोटिकन्दसम्भूतं कषायं त्रिदिनं पिबेत् । रसाजीर्णे पिबेद्वापि गोजलं रुचकान्वितम् ॥ विश्वसैंधवसंयुक्तं मातुलुंगस्य मूलकम् । अंगिनाम्नागकल्केन भुक्तो यदि भवेद्रसः ॥ नागदोषविशुद्ध्यर्थं गोमूत्रेण समन्वितम् । पटुयुक्तं पिबेन्मूलं कारवेल्ल्याभवं तथा ॥ एषां नागभवो दोषो नाशमायाति निश्चितम् । वंध्याककोंटकं पुष्पं गरुडी च ततः परम् ॥ असामान्यतमं मूलं क्षिप्त्वा गोजलमध्यतः।अत्यम्लकटुतिक्तैश्च सूतः स्रवति सेवितैः॥ अत्यम्लुलवणाहारैर्मन्दवीर्यो भवेद्रसः । सततं वर्जयेदेकाहारं च रससेवकः ॥ नश्यत्यग्निरनाहारात्सूतो नैवाक्रमेत्तनौ । रोगशांतिं तथा कर्त्तुं नैव शक्नोति पारदः ॥ विचित्रैर्भोजनैस्तस्माद्रसं समुपबृंहयेत् । निषिद्धं वर्जयेत्सर्वं रससेवाविधौ नरः ॥ रसस्रावकरं वर्ज्यं भोजने चातियत्नतः । अग्निमांद्यकरं तद्वद्वर्ज्यं चापि प्रयत्नतः ॥ वलीपलितनिर्मुक्तो मृत्युहीनो भवेन्नरः । जायते मन्मथाकारो नरोऽपि प्रमदारतः ॥ रसायने हि निर्दिष्टं प्रायशो रससेवने । बुद्धिं प्रजां बलं कान्तिं प्रभावेण यथा वह्निः ॥ नौषधं पारदादन्यन्न देवः केशवात्परः । न वैद्यादपरो बन्धुर्न दानादपरो विधिः ॥ आरोग्यं लघुता सौष्ठ्यं रुचिगुर्वन्नजीर्णता । रोगनाशश्च वृष्यश्च सततं रससेवनात् ॥ १ ॥

भाषा—नाभिशूल, निद्रा, आलस्य, ज्वर, अरुचि, जड़ता, मलबंध और दाह ये सब लक्षण होय तो रसाजीर्ण जानना । रसाजीर्णके उत्पन्न होतेही तत्काल उसका प्रतीकार करना चाहिये । ककोडेके कन्दका काथ तीन दिन पीनेसे अथवा

काले नोनको गोमूत्रके साथ पीनेसे रसाजीर्ण नष्ट होता है। सोंठका चूर्ण, सैंधानोनका चूर्ण और बिजोरेकी केशर तीनोंको एकत्र सेवन करनेसे रसाजीर्णरोग दूर होता है। मनुष्योंके नागदोषयुक्त पारेको सेवन करनेसे रसाजीर्ण होय तो नागदोषको दूर करनेके लिये सैंधेनोनका चूर्ण और करेलेकी जडके चूर्णके साथ गोमूत्रको सेवन करे, इससे नागदोष दूर होता है। वंध्या ककोडेके फूल और छिलहिंडकी जडको थोडेसे गोमूत्रमें पीसकर सेवन करनेसे नागदोष नष्ट होता है। अत्यन्त खट्टी, चरपरी और कडवी वस्तु खानेसे पारा झिरकर निकल जाता है तथा अत्यन्त खटाई और लवणके साथ आहार करनेसे पारा हीनवीर्य्य हो जाता है। इसका सेवन करनेवाला मनुष्य सदैव एक प्रकारका आहार त्याग देवे और एकबार प्रथम आहार न करनेसे जठराग्नि नष्ट होती है। पारा निज शक्तिको प्रकाशित नहीं करता और रोग नष्ट करनेकोभी समर्थ नहीं होता, इस कारण पारेको सेवन करनेवाला मनुष्य नाना प्रकारके आहारोंको सेवन करे। पारेको सेवन करनेवाला मनुष्य रसविधिमें सम्पूर्ण निषिद्ध विषय सदैव त्याग देवे। तथा आहारके द्रव्योंमें रसस्रावक और मंदाग्निजनक पदार्थ समस्त त्यागने चाहिये। विधिपूर्वक पारेका सेवन करनेसे वली (शरीरमें वलियोंका पडना) पलित (बिना समयके बालोंका धवल हो जाना) हीन, मृत्युके भयसे रहित और कामदेवकी समान स्त्रियोंमें मग्न रहता है। तथा बुद्धि, सन्तान, बल और कांति बढती है। जैसे संसारमें कृष्णकी समान दूसरा देव नहीं, वैद्यकी समान भाई नहीं, दानकी समान अन्यविधि नहीं उसी प्रकार पारेकी समान अन्य औषधि नहीं है। सदैव पारेका सेवन करनेसे आरोग्यता, शरीरमें लघुता, सुन्दरता, रुचि, गुरुपाकी अन्नोंका जीर्ण होना, रोगोंका नाश और वीर्यकी वृद्धि होती है॥ १॥

जलदोषप्रतीकारः।

भोजनादौ तु संभुक्ते शुंठिराज्यभयोत्थितम्। कल्कं तु सहते नित्यं नानादेशोद्भवं जलम्॥ महार्द्रकयवक्षारं पीत्वा चैवोष्णवारिणा। नानादेशोद्भवं चैव वारि दोषमपोहति॥ नागरंगफलचोचमातपे शोषितं तदनुचूर्णितमेकः। कर्षमात्रमुपयुज्य गुडेन वारिकर्म्म कुरुते न कदापि॥ २॥

भाषा—भोजनके पूर्व सोंठ और हरडके चूर्णको घीमें मिलाकर भक्षण करनेसे अनेक देशोंमें जलको पीनेसे उत्पन्न हुए रोग शांत होते हैं। विषांबिल और जवाखार इनको गरम जलके साथ पीनेसे नाना देशके जलको पीनेसे उत्पन्न हुए रोग शमन होते हैं। नारंगी और केलेकी फलीको सुखाकर चूर्ण करके प्रतिदिन एक

तोला प्रमाण गुडके साथ सेवन करनेसे किसी देशका जलभी कुछ विकार नहीं करता है ॥ २ ॥

इति रसोपद्रवजलदोषप्रतीकारः समाप्तः।

अथ वाजीकरणाधिकारः।

बलेन नारी परितोषमेति न हीनवीर्य्यस्य कदापि सौख्यम्। अतो बलार्थं रतिलंपटस्य वाजीविधानं प्रथमं विदध्ये ॥ येन नारीषु सामर्थ्यं वाजीवल्लभते नरः। व्रजेच्चाभ्यधिकं येन वाजीकरणमेव तत् ॥ वाजीनामप्रकाशत्वात्तच्च मैथुनसंज्ञकम्। वाजीकरणसंज्ञातिः पुंस्त्वमेव प्रचक्षते ॥ यद् द्रव्यं पुरुषं कुर्य्यात् वाजीव सुरतक्षमम्। तद्वाजीकरमाख्यातं मुनिभिर्भिषजां वरैः ॥ वक्ष्ये वाजीकरणं येन न मरणं भवत्यनंगस्य। काममृते न संततिवृद्धिरतः पूर्वमेवाह ॥ १ ॥

भाषा—बलवान् पुरुषके साथ मैथुन करनेसे स्त्री संतुष्ट अर्थात् सुखी होती है और हीनवीर्य्य (निर्बल) वाले पुरुषके साथ प्रसंग करनेसे कभीभी सुखी नहीं होती इस कारण कामी पुरुषोंके बलको बढानेके लिये प्रथम वाजीकरण विधि कहते हैं। जिसके द्वारा पुरुष स्त्रियोंमें घोडेकी समान रमण करनेकी शक्तिको प्राप्त होता है तथा वारंवार रमण करता है उसको वाजीकरण कहते हैं। वाजीशब्द प्रकाशकत्व होनेसे मैथुननामसे कहा जाता है इस कारण मैथुन करनेकी सामर्थ्य अर्थात् पुरुषार्थको वाजीकरण कहते हैं। जो द्रव्य पुरुषको घोडेकी समान मैथुन करनेकी शक्तिको देवे उसको वाजीकरण कहते हैं। जिसके द्वारा कामदेवका मरण न होवे अर्थात् कामदेव बढे ऐसे वाजीकरणको कहता हूं। क्योंकि विना कामदेवके सन्तान उत्पन्न नहीं होती इस कारण प्रथम कामदेव बढनेका उपाय कहते हैं ॥१॥

तत्रादौ नपुंसकत्वकथनम्।

क्लीवः स्यात्सुरताशक्तस्तद्भावः क्लैब्यमुच्यते। तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते ॥ तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते। ध्वजः पतत्यतो नृणां क्लैब्यं समुपजायते ॥ द्वेष्यस्त्रीसंप्रयोगाच्च

क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम् । कटुकाम्लैः सलवणैरतिमात्रोपसेवितैः ॥ पित्ताच्छुक्रक्षयो दृष्टः क्लैब्यं तस्मात्प्रजायते । अतिव्यवायशीलो यो न च वाजीक्रियारतः ॥ ध्वजभंगमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकः । महता मेढ्रयोगेन चतुर्थी क्लीबता भवेत् ॥ वीर्य्यवाहिशिराच्छेदान्मेहनाउन्नतिर्भवेत् । बलिनः क्षुब्धमनसो निरोधाद्ब्रह्मचर्य्यतः ॥ षष्ठं क्लैब्यं स्मृतं तत्तु शुक्रस्तम्भनिमित्तकम् । जन्मप्रभृति यत्क्लैब्यं सहजं तद्धि सप्तमम् ॥ असाध्यं सहजं क्लैब्यं मर्म्मच्छेदाच्च यद्भवेत् । साध्यानामवशिष्टानां कार्यो वाजीकरो विधिः ॥ २ ॥

भाषा–जो पुरुष स्त्रीके साथ मैथुन करनेमें असमर्थ हो अर्थात् मैथुनके समय जिसका लिंग नहीं उठे उसको क्लीब (नपुंसक) कहते हैं और उस क्लीबतायुक्तको क्लैब्य कहते हैं । वह क्लीब (नपुंसक) सात प्रकारका है । अब उसका पृथक् २ निदान कहते हैं । कामी पुरुषके चित्तको अप्रिय ऐसे जो भय, शोक, क्रोधादिक इनका सेवन करनेसे मन क्षोभित होकर लिंग शिथिल हो जाता है अर्थात् उठता नहीं तब मैथुन करनेकी शक्ति नहीं रहती उसको नपुंसक कहते हैं । जो मनुष्य स्त्रीप्रसंगसे द्वेष करे अर्थात् जिसे विषयवासना बुरी लगे उसको मानसक्लीब कहते हैं। चरपरे, खट्टे, नमकीन आदि गरम पदार्थोंका अधिक सेवन करनेसे पित्त अतिशय बढ़कर शुक्रको दूषित कर देता है तो वह मनुष्य नपुंसक हो जाता है उसको पित्तज नपुंसक कहते हैं । जो मनुष्य अधिकतर मैथुन करते हैं और वाजीकरण पदार्थ नहीं खाते उनके अधिक शुक्रक्षय होनेके कारण जो नपुंसकता होती है उसको ध्वजभंग कहते हैं। बहुत बड़े लिंगके होनेके कारण जो नपुंसकता होती है उसको चौथा क्लीब कहते हैं । वीर्य्य बहनेवाली नसोंके कट जानेसे लिंगकी चैतन्यता नष्ट हो जाती है अर्थात् खड़ा नहीं होता उसको पंचम क्लीब कहते हैं । बलवान् पुरुष मैथुन करनेके वेगको रोके तो वीर्य्य रुकनेके कारण जो नपुंसकता होती है उसको षष्ठ क्लीब कहते हैं । जो जन्मसेही नपुंसक होवे उसको सप्तम सहज क्लीब है । इन सब नपुंसकोंमें सहज और मर्म्मछेदी ये दो असाध्य हैं बाकीके सब साध्य हैं । पूर्वोक्त दोनोंको त्यागकर शेष साध्योंकी वाजीकरण विधिसे चिकित्सा करे ॥ २ ॥

१ मतमतान्तरसे नपुंसकके भेद अनेक हैं उन सबोंको ग्रंथ बढनेके भयसे यहां नहीं लिख सके । यदि देखनेकी इच्छा होय तो हमारे बनाये नपुंसकमीमांसाग्रन्थमें देखो ।

अशुद्धशुक्रलक्षण।

वातादिकुणपं ग्रन्थिक्षीणपूयमलाह्वयम्। प्रजासमर्थं रेतोस्त्रं स्वलिंगैदोषजं वदेत्॥ रक्तेन कुणपं श्लेष्मवाताद्या ग्रन्थिसम्भवम्। पूयाभं रक्तपित्ताभ्यां क्षीणं मारुतपित्ततः॥ कृच्छ्राण्येतानि साध्यानि त्रिदोषं मूत्रविण्निभम्। तेष्वन्याच्छुक्रदोषांस्तान् स्नेहस्वेदादिभिर्भवेत्॥ ३॥

भाषा-मनुष्योंका वीर्य्य वातादि दोषोंसे दूषित होकर दुर्गंधित, क्षीण, ग्रंथि, राधकी समान और मलकी सदृश हो जाता है तहां रुधिरसे दुर्गंधित, कफवातसे ग्रंथियुक्त, रक्तपित्तसे क्षीण और त्रिदोषसे मूत्र तथा मलकी समान होता है। त्रिदोषको छोडकर अन्यान्य सर्व प्रकारके शुक्रदोष स्नेह स्वेदादिसे आरोग्य होते हैं परंतु त्रिदोषजन्य शुक्रदोषसे कष्टसाध्य है॥ ३॥

अशुद्धशुक्रहरस्नेहचूर्णादिप्रकारः।

पिप्पलीलवणोपेतौ बस्ताण्डौ क्षीरसर्पिषा। साधितौ भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत्प्रमदाशतम्॥ बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान्। यः खादेत्स नरो गच्छेत् स्त्रीणां शतमपूर्ववत्॥ चूर्णं विदार्य्याः सुकृतं स्वरसेनैव भावितम्। सर्पिःक्षौद्रयुतो लीढ्वा दश गच्छेन्नरोऽगनाः॥ भूमिकूष्माण्डमूलचूर्णमस्यैव मूलरसेन भावितं रात्रौ लेह्यम्॥ एवमामलकचूर्णं स्वरसेनैव भावितम्। शर्करामधुसर्पिर्भ्यां युक्तं लीढ्वा पयः पिबेत्॥ एतेनाशीतिवर्षोपि युवेव परिहृष्यति। विदारीकन्दकल्कं तु घृतेन पयसा नरः॥ उदुम्बरसमं पीत्वा वृद्धोऽपि तरुणायते॥ गोक्षुरकः क्षुरकः शतमूलीवानरीनागबलाऽतिबलानाम्। चूर्णमिदं पयसा निशि पेयं यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति॥ ४॥

भाषा-बकरेके अंडकोषोंको घी और दूधमें पकाकर पीपल और सैंधानोन मिलाकर सेवन करनेसे सौ स्त्रियोंसे गमन करनेकी सामर्थ्यको प्राप्त होता है। जिस दूधमें अंडकोषोंको पकाया है उस दूधमें तिलोंको वारंवार भावना देकर भक्षण करनेसे १०० स्त्रियोंसे गमन करनेकी शक्ति होती है। विदारीकन्दके चूर्णको

विदारीकन्दके रसमें भावना देकर घृत और सहतके साथ सेवन करनेसे दश स्त्रियों-पर जानेकी शक्ति होती है। विदारीकन्दकी जडके चूर्णको विदारीकन्दकी जडके रसमें भावना देकर रात्रिमें शर्करा, घृत और सहतके साथ चाटे, ऊपरसे दूध पीवे अथवा आमलोंके चूर्णको आमलोंके रसमें भावना देकर शर्करा, घृत और सहतके साथ चाटे पश्चात् दूध पीवे तो ८० वर्षका वृद्धभी जवानकी समान होता है। विदारीकन्दकी जडको पीसकर घृत और दूधके साथ सेवन करे तो वृद्धमनुष्यभी तरुणताको प्राप्त होता है। गोखरु, तालमखाना, शतावर, कौंछ, गंगेरन और खिरेंटी इन सबोंका चूर्ण करके दूधके साथ रात्रिमें पीवे तो १०० स्त्रियोंसे रमण करनेको समर्थ होता है॥ ४॥

नारसिंहचूर्णम्।

शतावर्य्या रजःप्रस्थं प्रस्थं गोक्षुरकस्य च। वराह्या विंशतिपलं गुडूच्याः पंचविंशतिम्॥ भल्लातकानां द्वात्रिंशच्चित्रकस्य दशैव तु। तिलानां शोधितानां च प्रस्थं दद्यात् सुचूर्णितम्॥ त्र्यूषणस्य पलान्यष्टौ शर्करायास्तु सप्तभिः। माक्षिकं शर्करा-र्द्धेन माक्षिकार्द्धेन वै घृतम्॥ शतावरीसमं देयं विदारीकंदजं रजः। एतदेकीकृतं चूर्णं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत्॥ पलार्द्धमुप-युञ्जीत यथेष्टं चास्य भोजनम्। मासैकमुपयोगेन जरां हन्ति रुजापहम्॥ ५॥

भाषा–शतावरका चूर्ण दो सेर, गोखरुओंका चूर्ण दो सेर, वाराहीकन्दका चूर्ण ढाई सेर, गिलोयका चूर्ण तीन सेर चार तोले, भिलावेके बीजोंका चूर्ण चार सेर, चीतेका चूर्ण १। सेर, शुद्ध किये हुए तिलोंका चूर्ण दो सेर, त्रिकुटेका चूर्ण एक सेर, शर्करा ७ पल, सहत १४ तोले, घी ७ तोले और विदारीकन्दका चूर्ण दो सेर, सबोंको एकत्र करके एक चिकने वासनमें भरके रख देवे। इसमेंसे प्रतिदिन दो दो तोले खाय इसके ऊपर यथेष्ट भोजन करे। यह औषधि एक महीनेमें जरा और जरादिरोगोंको दूर करे है॥ ५॥

शतावरीघृत।

घृतं शतावरीगर्भं क्षीरे दशगुणे पचेत्। शर्करापिप्पलीक्षौद्र-युक्तं तद्वृष्यमुच्यते॥ यत्किंचिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृंहणं गुरु। हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद्वृष्यमुच्यते॥ यदि मासाद्रसं शुक्र-

मुग्रं वत निरर्थकम्। प्रायश्च्योतयते हि शुक्रं शय्यान्यत्र करोति तत्॥ नरो वीर्य्यकरान् रोगान् सम्यक् शुद्धनिरामयः। आसप्ततिं प्रकुर्वीत वर्षादूर्द्धं च षोडशात्॥ न तु वै षोडशाद्वर्षात् सप्ततेः परतो न च। आयुःकामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति॥ कल्याणोदग्रवयसो वाजीकरणसेवितः। सर्वेषु ऋतुषु बहुव्यवायो हि निवारितः॥ आयुष्मंतो मन्दजरा वपुर्वर्णबलान्विताः। स्थिरोपचितमांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयताः॥ त्रिभिस्त्रिभिरहोभिश्च सेवेत प्रमदां नरः। सर्वेषु ऋतुषु ग्रीष्मे पक्षात् पश्चात् व्रजेद्बुधः॥ योगान्संसेव्य वृष्यान्ससितमथ पयः शीतलं चाम्बु पीत्वा गच्छेन्नारीं सुरूपां स्मरशतमवलां कामुकः काममाद्ये। यामे हृष्टप्रहृष्टां व्यपगतसुरतः स्वं स्वपेन्नित्यनित्यां कान्तः कान्ताङ्गसंगादपहृतनरो धातुवैषम्यमेति॥ ग्लानिः कम्पोरुदौर्बल्यं धात्विन्द्रियबलक्षयः। क्षयवृद्ध्युपदंशाद्या रोगाश्चातीवदुर्जयाः॥ अनेन मरणं चास्याद्व्रजतः स्त्रियमन्यथा। शोपकासज्वराशांसि श्वासकासातिपाण्डुता॥ अतिव्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाक्षेपकादयः। असेवनान्मेहमेदोग्रन्थिरग्रेश्च मार्दवम्॥ त्यजेत्पूज्ये शुचिस्थाने लोकाध्यक्षं च मैथुनम्॥ ग्लानिः कम्पोऽरुचिः सादस्तदनु च कृशता क्षीणता चेन्द्रियाणां श्वासः शोषोपसंगो ज्वरगुदजरुजा क्षीणता चेन्द्रियाणाम्। जायन्ते दुर्निवारः पवनपरिभवः क्लीवता लिङ्गभंगो रम्या रम्याभियोगाद्व्रजत इव सदा वाजिकर्माच्युतस्य॥ तोयागरागशिशिरातपशीतवाताः ताम्बूलसोमकरशीतरसेक्षुभक्ष्याः। स्नानं च दुग्धमधुपूगफलानि निद्रा सेव्यानि कामुकजनैः सुरतावसाने॥ ६॥

भाषा—गायका घी दो सेर, दूध वीस सेर तथा कल्कके लिये शतावरका चूर्ण

आध सेर, यथाविधिसे घृतको सिद्ध करे । सिद्ध होनेपर शर्करा, पीपलका चूर्ण और सहत मिलाके इसका सेवन करे । इससे अत्यन्त वीर्य्यकी वृद्धि होती है । जो पदार्थ किंचित् मधुर, तृप्तिकारक, जीवन, पुष्टिकारक, भारी और मनको हर्षित करनेवाले हैं उनको वृष्य कहते हैं । मनुष्योंके महीनेकी अपेक्षा अधिक अर्थात् जितना एक महीनेमें होय उससे अधिक शुक्रस्राव होय तो उसके नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं । शुद्ध और रोगरहित मनुष्य १६ वर्षसे लेकर ७० वर्षकी अवस्थापर्य्यंत मैथुन करता है, परन्तु सोलह वर्षसे कम और सत्तर वर्षसे अधिक कदापि स्त्रीसंसर्ग न करे, । किसी ऋतुमेंभी अधिक स्त्रीप्रसंग नहीं करना चाहिये । आयुष्मान, जरासे रहित, सुन्दर शरीरवाला, बलवान् और हृष्टपुष्ट मनुष्योंको प्रत्येक ऋतुमें तीन तीन दिनके बाद और ग्रीष्मऋतुमें पन्द्रह दिनके पश्चात् मैथुन करना चाहिये । वीर्य्यजनक औषधियोंका सेवन कर पश्चात् मिश्रीके साथ दूध और शीतल जलको पीकर सुन्दर स्वरूपवाली स्त्रियोंके पास जावे । अत्यन्त मैथुन करनेसे ग्लानि, कम्प, घुटनोंमें दुर्बलता, धातु और इन्द्रियोंके बलका नाश, राजयक्ष्मा, उपदंश, शोष, खांसी, ज्वर, बवासीर, श्वास, पांडु और आक्षेपादि रोग उत्पन्न होते हैं । जो पुरुष सदैव मैथुन नहीं करते उनको प्रमेह, मेदवृद्धि, ग्रंथि और मंदाग्निरोग उत्पन्न होता है । पूज्य और पवित्रस्थानमें स्त्रीसंसर्ग करनेसे ग्लानि, कम्प, अरुचि, अवसाद, कृशता, शोष, श्वास, गरमी, बवासीर, धातुक्षीण, नपुंसकता और ध्वजभंगरोग उत्पन्न होता है । जल, अंगराग (चन्दन आदि शीतल पदार्थोंका लेप), शिशिर (बरफ आदि), शीतलच्छाया, शीतलपवन, ताम्बूल, चंद्रमाकी चांदनी, शीतल पदार्थ, ईखका रस, ईखके विकार (मिश्री, चीनी आदि), दूध, सहत, सुपारी और निद्रा ये सब मैथुनके अन्तमें अत्यन्त हितकारी हैं ॥ ६ ॥

श्रीमन्मदनमोदकः ।

त्रैलोक्यविजयापत्रं सबीजं घृतभर्जितम् । त्रिकटु त्रिफला शृंगी कुष्ठसैन्धवधान्यकम् ॥ शठी तालीशपत्रं च कट्फलं नागकेशरम् । यवानी चाजमोदा च यष्टीमधुकमेव च ॥ मेथी जीरकयुग्मं च गृहीत्वा भर्जितं कियत् । यावदेतानि चूर्णानि तावदेव तदौषधम् ॥ तावदेव सिता देया यावदायाति बन्धनम् । घृतेन मधुना मिश्रं मोदकं परिकल्पयेत् ॥ त्रिसुगंधिसमायुक्तं कर्पू-

रेणाधिवासयेत्। स्थापयेत् घृतभांडे तु श्रीमन्मदनमोदकम्॥
भक्षयेत्प्रातरुत्थाय वातश्लेष्मविनाशनम्॥ ७॥

भाषा-घीमें भूने हुए भांगके बीज और पत्ते, सोंठ, मिरच, पीपल, हरड, बहेडा, आमला, काकडासिंगी, कूठ, सैंधानोन, धनिया, कचूर, तालीशपत्र, कायफल, नागकेशर, अजवायन, अजमोद, मुलहठी, मेथी और भूना हुआ काला जीरा तथा सफेद जीरा प्रत्येकका चूर्ण एक एक भाग, सबोंकी समान बूरा तथा दालचीनी, तेजपात और छोटी इलायची एवं कपूर प्रत्येक एक भाग, यथानुसार घृत और सहत मिलाके लड्डू बनाकर घीके बासनमें भरके रख देवे। प्रतिदिन एक मोदक दूधके साथ खाय। यह श्रीमन्मोदक अत्यन्त कामवर्धक तथा वातश्लेष्मादि रोगोंको हरे है॥ ७॥

महामदनमोदक।

त्रैलोक्यविजयापत्रं सबीजं घृतभर्जितम्। समे शीतातपे लेपश्चूर्णयेदतिचिक्कणम्॥ शतावरीरजश्चैव विदारीकंदजं रजः। बलातिबलयोश्चैव मूलवल्कलजो रजः॥ गोक्षुरक्षुरयोर्बीजाद्रजो वानरिबीजतः। एतदेकीकृतं यावत् शतावर्य्यादिकं रजः॥ तस्माच्चतुर्गुणं कार्य्यं त्रैलोक्यविजयारजः। पयसाथ समे तस्मिन् गोलयेचूर्णसञ्चयः॥ गोलयित्वा सितां चैव शक्रचूर्णाच्चतुर्गुणाम्। पचेदवहितो वैद्यो मंदमन्देन वह्निना॥ ततः पाकक्रमं दृष्ट्वा भृष्ट्वा चैवाऽसितं तिलम्। बुद्धावत्तारितं दद्यात् मोदकार्थं भिषग्वरः॥ त्रिकटु त्रिसुगंधं च सैन्धवं सधनीयकम्। जातीकोपफलं चैव वालकं जीरकद्वयम्॥ शठीकुन्दुरुकोटिश्च मुस्ता मधुरिका मुरा। मांसी तालीसपत्रं च पत्रवारेन्द्रमेव च॥ ग्रन्थिपर्णं शिवा चैव तथैव शतपुष्पिका। चविका देवदारुश्च सप्रियंगु लवंगकम्॥ सरलः शैलजश्चैव सर्वमेतद्विचूर्णयेत्। अत्र घटालने युक्तं द्रव्यं तद्गंधवृद्धये॥ ढालयित्वा कृतं चूर्णं शक्रचूर्णस्य पादिकम्। सैन्धवं स्वादुता योग्यं देयं कटुकमेव च॥ ततः सुमिलितं कुर्य्यान्मोदकं परिकल्पयेत्। भूयस्त्रिजातके

चूर्णं चूर्णं त्र्यूषणजे तथा ॥ लोडयेन्मोदकानेतान् सिद्धार्थानथ सिद्धये । कांचने राजते पात्रे कांस्ये सम्पुटके न्यसेत् ॥ रजस्त्रिजातानारुतीर्य्य कर्पूरेणाधिवासयेत् । भक्षयेत्प्रातरुत्थाय महामदनमोदकम् ॥ ८ ॥

भाषा–घृतमें भूने हुए भांगके बीज और पत्ते दोनोंको बारीक पीसकर चूर्ण कर ले, फिर शतावर, विदारीकंद, खिरैटी, कंघी, गोखरू, तालमखाना और कौंछके बीज प्रत्येकका चूर्ण एक एक भाग घीमें भूने हुए भांगके बीज और पत्तोंका चूर्ण अट्ठाईस भाग, दूध समानभाग और बूरा भांगके चूर्णसे चौगुना, सबोंको मिलाकर मंद २ अग्निसे पकावे। जब पकते पकते गाढा हो जावे तब भूने हुए काले तिल, त्रिकुटा, त्रिसुगंधि, सैंधानोन, धनिया, जावित्री, जायफल, सुगंधवाला, सफेद जीरा, काला जीरा, कपूर, कुंदुरु, सौंफ, नागरमोथा, कपूरकचरी, तालीशपत्र, तेजपात, खिरैटी, गठिवन, हरड, सोया, चव्य, देवदारु, फूलप्रियंगू, लौंग, धूपसरल और भूरिछरीला इनका चूर्ण करके मिला देवे। पश्चात् इसको एक परातमें डालकर चौथाई भाग भांगका चूर्ण स्वादके योग्य सेंधवलवणका चूर्ण मिलाकर मोदक बना लेवे, फिर इन लड्डुओंको त्रिजातके चूर्णमें और त्रिकुटेके चूर्णमें लुटाकरके कपूरकी वासना देवे, पश्चात् सोने, चांदी या कांसीके पात्रमें भरके रख देवे। इसमेंसे प्रतिदिन एक मोदक खाय और ऊपरसे दूध पीवे तो अत्यन्त कामकी वृद्धि हो तथा कासश्वासादि सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

शतावरीमोदक ।

शतावर्य्याः श्वदंष्ट्रा च बला चातिबला तथा। मर्कटी क्षुद्रबीजश्च विदारीकंदजं रजः ॥ एतानि समभागानि पलिकानि विचूर्णयेत् । चूर्णाच्चतुर्गुणं देयं त्रैलोक्यविजयारजः ॥ सर्वमेकीकृतं यावत्तदर्द्धं माहिषं पयः । तावन्मात्रेण दातव्यं शतावर्य्या रसं तथा ॥ विदार्य्याः स्वरसप्रस्थं सितापलशतं न्यसेत् । गोलयित्वा सितां दत्त्वा पात्रे ताम्रमये दृढे ॥ पचेत्पाकविधिज्ञोऽपि मोदकः परिमोहितः । त्र्यूषणं त्रिफला शृंगी त्रिजातं सैन्धवं शठी ॥ धान्यकं वालकं मुस्तं द्विर्जीरं कुन्दुरुर्मुरा । काकोली क्षीरकाकोली द्राक्षा तुंगा मृगाण्डजम् ॥ जातीकोषफलं मांसी

तालाङ्कुरकशेरुकम्। शतपुष्पा चवी दारु ग्रन्थिकं सलवंगकम्॥ कुष्ठं यवानिका चात्मगुप्ता कट्फलमेथिका । मधुरीका च मधुकं तालीशं वरखर्जुरम्॥टंकणं च विचूर्ण्याथ प्रत्येकं कोलसम्मितम्।चूर्णार्द्धं शोधितं गंधं शुद्धं पादांशपारदम्॥कज्जलीकृत्य दत्त्वांतर्लोडयेत्रिसुगंधिना । यथाशक्त्या मोदकं च कर्पूरेणाधिवासयेत् ॥ उद्धृत्य स्निग्धभाण्डे तं प्रस्थाप्य च भिषग्वरैः । शिवं सम्पूज्य सगणं धन्वन्तरिमुनिं तथा ॥ कोलप्रमाणं कर्त्तव्यं क्षीरं चानुपिबेन्नरः । प्रातर्भोजनकाले वा सायंकालेऽपि भक्षयेत् ॥ प्रमदाशतं च भजते न च शुक्रक्षयं भवेत् । नातः परतरं किंचिद्विद्यते वाजिकर्म्मसु ॥ शतावरीमोदकं च वासुदेवेन निर्म्मितम् ॥ ९ ॥

भाषा–शतावर, गोखरू, खिरैटी, कंघी, कौंछ, मंदारके बीज और विदारीकंदका चूर्ण प्रत्येक चार चार तोले, इन सब औषधियोंसे चौगुना भांगके बीजोंका चूर्ण सब चूर्णसे आधा भैंसका दूध और शतावरका रस, विदारीकंदका स्वरस दो सेर, बूरा१०० पल इन सबोंको एकत्र करके तांबेके बासनमें पकावे । जब पकते पकते गाढा हो जाय तब त्रिकुटा, त्रिफला, काकडाशिंगी, त्रिजातक, सैंधानोन, कचूर, धनिया, सुगंधवाला, नागरमोथा, सफेद जीरा, काला जीरा, कुन्दुरू, कपूरकचरी, काकोली, क्षीरकाकोली, दाख, वंशलोचन, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, बालछड, ताडके अंकुर, कसेरू, सोया, चव्य, देवदारु, गाठिवन, लोंग, कूठ, अजवायन, कौंछके बीज, कायफल, मेथी, सोंफ, काच, कचलोन, मुलहठी, तालीशपत्र, पिण्ड खजूर और सुहागेकी खील प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला सर्व चूर्णसे आधा गंधक और गंधकसे चौथाई भाग पारेकी बनाई हुई कजली सबोंको मिलाकर एक एक तोलेके लड्डू बना लेवे पश्चात् इन लड्डुओंको त्रिसुगंधिके चूर्णमें लुटाकर कपूरकी वासना देवे । फिर एक उत्तम चिकने बासनमें भरके रख देवे, प्रतिदिन एक एक लड्डू खाय और ऊपरसे दूधका अनुपान करे । इसके प्रभावसे १०० स्त्रियोंके पास जा सक्ता है और वीर्यक्षय नहीं होता तथा कास श्वास और प्लीहादि रोग दूर होते हैं ॥ ९ ॥

रतिवल्लभमोदकः ।

शक्राशनस्य बीजानि चूर्णितानि पलाष्टकम् । कुडवं हविमश्चैव खण्डप्रस्थं प्रगृह्य च ॥ शतपुत्रीरसप्रस्थं प्रस्थं शक्राशनस्य च । गव्यमाजं पयः प्रस्थं दत्त्वा प्रस्थद्वयं पचेत् ॥ धात्री द्विजीरकं प्रस्थं त्वगेलापत्रकेशरम् । अतिबला चात्मगुप्ता तालांकुरकशेरुकम् ॥ शृंगाटकं त्रिकटुकं धन्याकं चित्रकं तथा । पथ्या द्राक्षा च काकोल्यौ खर्जूरस्तवकं तथा ॥ कटुका मधुकं कुष्ठं लवंगं सारसैन्धवम् । यवानिका चाजमोदा जीवन्ती गजपिप्पली ॥ प्रत्येकं कर्षमेकं च चूर्णितानि शुभानि च । मधुनः कुडवार्द्धं च पाकशेषे तथा क्षिपेत् ॥ मृगाण्डजं सकर्पूरं यथानाम विनिःक्षिपेत् । रतिवल्लभनामायं सेव्यमानो रसायनः १०

भाषा-भांगका चूर्ण एक सेर, घी एक सेर, बूरा दो सेर, शतावरका रस चार सेर, भांगका रस चार सेर, गायका दूध चार सेर, बकरीका दूध चार सेर, आमलोंका स्वरस चार सेर तथा दोनों जीरोंका क्वाथ चार सेर इन सबोंको मिलाकर पकावे जब पकते पकते गाढा हो जाय तब दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर, कंघी, कौंछ, तालके अंकुर, कसेरू, सिंघाडे, सोंठ, मिरच, पीपल, धनिया, लालचीता, हरड, दाख, काकोली, क्षीरकाकोली, पिण्ड खजूर, कूठ, मुलहठी, लौंग, वज्रक्षार, सेंधानोन, अजमोद, जीवन्ती और गजपीपल प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, सहत एक सेर और कस्तूरी तथा कुछ थोडासा कपूर सुगंधिके लिये मिला देवे। पश्चात् लड्डू बना लेवे। यह लड्डू अत्यन्त कामदेवको बढावे है और सर्वरोगनाशक है ॥ १० ॥

महारतिवल्लभमोदक ।

समूलपत्रशाखायास्तुलां शक्राशनस्य च । संरुद्धचोलूखले छित्त्वाऽपां द्रोणे हि तथा च वै ॥ क्वाथं पादावशिष्टं तु वस्त्रपूतं च कारयेत् । क्षीरप्रस्थं समादाय खण्डस्यार्द्धं शतं न्यसेत् ॥ शतावरीरसस्याष्टौ पिप्पल्याः कुडवं तथा । सर्वमेतत्समालोड्य घृतप्रस्थेन मेळयेत् ॥ औषधानां ततश्चूर्णं दापयेत्कलिकं पृथक् । त्रिकटु त्रिफला चव्यमेलात्वक्पत्रकेशरम् ॥ चित्रकं पिप्पलीमूलं

धान्यकाजाजिमेथिकाः। कुष्ठाब्दरेणुका व्योषभार्ङ्गीतालीशके-शरम्॥ तालमूली त्रिवृद्दंती श्रेयसी हिंगु पौष्करमूलवंगजाति-कोषं च यवानी कारवी तथा॥ शुभा जातीफलं चन्द्रं शृंगी चैव विदारिका। अष्टवर्ग च काकोलं श्लक्ष्णचूर्णं च कारयेत्॥ कुडवद्विपचेद्वद्या मोदकं कारयेत्ततः। अक्षमात्रं च जग्ध्वैनं शीतलं पाययेज्जलम्॥ नाशयेच्छुक्रदोषं च षण्ढं चैवातिदारु-णम्। श्रीकरं लाघवकरं मेधाबुद्धिप्रवर्धनम्॥ ११॥

भाषा—मूल, पत्र और शाखाओंसमेत भांगको लेकर ओखलीमें कूट ले, ऐसी कूटी हुई भांग ६। सेर लेकर ३२ सेर जलमें पकावे। जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतार कर कपडेमें छान लेवे, पश्चात् इसमें गायका दूध दो सेर, बूरा ६। सेर, शतावरका रस एक सेर, पीपलका काथ एक सेर और घी दो सेर मिलाकर पकावे, फिर पकते समय त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, लाल चीता, पीपरामूल, धनियां, जीरा, मेथी, कूठ, नागरमोथा, रेणुका, त्रिकुटा, भारंगी, तालीशपत्र, नागकेशर, मुसली, निसोत, दंती, गजपीपल, हींग, पोहकरमूल, लौंग, जावित्री, अजवायन, सौंफ, पीपल, जायफल, कपूर, काकडासिंगी, विदारीकन्द, अष्टवर्ग और शीतल चीनी प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिलाकर गुडकी समान पाक करे, फिर दो दो तोलेके लड्डू बना लेवे। प्रतिदिन एक लड्डू खाय ऊपरसे शीतल जल पीवे। यह महारतिवल्लभ मोदक शुक्रदोष और अत्यन्त दारुण षण्ढत्व दोषको हरे है। लक्ष्मीजनक, लाघवताकारक, मेधा और बुद्धिको बढावे है॥ ११॥

कामेश्वरमोदकः।

धात्री सैन्धवकुष्ठकट्फलकणाः शुंठी यवानीद्वयं यष्टीजीरकयुग्मधान्यकशठीशृंगीयवाः केशरम्। तालीशं त्रिसुगंधिकं समरिचं मेथीकं आख्यान्वितं चूर्णीकृत्य समो मनाक् फलयुतं भृष्टं च शक्राशनम्॥ सर्वैस्तुल्यमतः सितांशुविमलां दत्त्वा समं संक्षिपेत् माध्वीकं सघृतं प्रशस्तदिवसे कुर्याच्छुभान्मोदकान्। कर्पूरैरवचूर्णितानपि हितान्दत्त्वा च भृष्टान् तिलान् गोप्योऽयं क्षितिमंडलेषु सुधिया पाखण्डिनामग्रतः॥ अधिव्याधिहरं

क्षयक्षयकरं कुष्ठापहं बृंहणं स्त्रीणां तोयकरं सुखद्युतिकरं शुक्राग्निवृद्धिप्रदम् ॥ १२ ॥

भाषा-आमला, सेंधा नोन, कूठ, कायफल, पीपल, सोंठ, अजवायन, अजमोद, मुलहठी, जीरा, काला जीरा, धनिया, कचूर, काकड़ाशिंगी, जौ, नागकेशर, तालीशपत्र, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, काली मिरच, मेथी और सौंफ प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, भूनी हुई बीजोंसमेत भांगका चूर्ण सबकी बराबर तथा बूरा, सहत और घी सबकी बराबर एवं सुगंधिके लिये कपूर मात्रानुसार और काले तिलोंका चूर्ण सबोंको एकत्र पकाकर मोदक बना लेवे । इस कामेश्वरमोदकका सेवन करनेसे अत्यन्त कामकी वृद्धि होती है तथा सर्व प्रकारके रोगशोकादि दूर होते हैं ॥ १२ ॥

महाकामेश्वरमोदकः ।

चूर्णांशशोधितं चैव गगनं शुद्धमारितम् । तदर्धं शुद्धलोहं च लोहार्द्धं वंगभस्मकम् ॥ जातीकोषफलं चैव चूर्णांशं तत्र दापयेत् । त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चातुर्जातं ससैन्धवम् ॥ शृंगी जीरकयुग्मं च धन्याकं ग्रन्थिपर्णकम् । मांसी शतावरी कुष्ठं तुगा द्राक्षा लवंगकम् ॥ शालिपर्णी च कण्ठी च चित्रकं कुन्दुरुर्मुरा । पुनर्नवाश्वगंधाग्निपञ्चकं क्षुरबीजकम् ॥ सिता तिलं च धन्याकं मेथिका हरितालकम् । बलातिबलयोर्मूलं चव्यं च देवदारु च ॥ यवानी शतपुष्पा च मर्कटी बीजबिल्वकम् । काकोली क्षीरकाकोली तालाङ्कुरकशेरुकम् ॥ शृंगी लवणकं चैव कर्पूरं देवताडकम् । एतेषां समभागानां चूर्णं कुर्यात्प्रयत्नतः ॥ शोधितं विजयाचूर्णं सर्वचूर्णार्द्धसंयुतम् । शर्करां द्विगुणां दत्त्वा मोदकं परिकल्पयेत् ॥ मध्वाज्यमिश्रितं कृत्वा कर्षमेकं तु मोदकम् । खादेत्प्रतिदिनं चैव सर्वव्याधिविवर्जितम् ॥ महाकामेश्वरो ह्येष महादेवेन निर्मितः ॥ १३ ॥

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, चातुर्जातक, सेंधानोन, काकड़ाशिंगी, जीरा, काला जीरा, धनिया, गठिवन, बालछड़, शतावर, कूठ, वंशलोचन, दाख, लौंग, शालिपर्णी, कटेरी, चीता, कुन्दुरू, पुनर्नवा, कपूरकचरी, असगंधकी जड़,

पद्माख, गोखरूके बीज, मिश्री, तिल, धनिया, मेथी, रेणुका, खिरैटी, कंघी, चव्य, देवदारु, अजवायन, सोया, कौंछ, बेलगिरी, काकोली, क्षीरकाकोली, ताडके अंकुर, कसेरू, काकडाशिंगी, सैंधानोन, कपूर और देवताड इन सबोंका चूर्ण समान भाग सब चूर्णसे चौथाई भाग अभ्रककी भस्म, जायफल और जावित्रीका चूर्ण, अभ्रकसे आधा लोहेका भस्म, लोहेसे आधा वंगका भस्म और सब चूर्णसे आधा शुद्ध भांगका चूर्ण और इससे दुगुना बूरा लेवे । इनको एकत्र पकाकर सहत और घृत मिलाकर एक एक कर्ष प्रमाणके मोदक बना लेवे । प्रतिदिन एक मोदक खाय इससे सर्व प्रकारके रोग दूर होते हैं । यह महाकामेश्वर मोदक महादेवने निर्म्माण किया है ॥ १३ ॥

लघुकामेश्वरमोदकः ।

चूर्णांशं गगनं घनार्द्धविमलं कुष्ठं च गंधामृता मेथी मोचरसो विदारिमुसली गोक्षूरकं क्षूरकम् । भीरुश्चैव कशेरुकं यवनिका तालाङ्करं धान्यकं यष्टी नागबला बला मधुरिका जातीफलं सैन्धवम् ॥ भृंगी कर्कटशृंगकं त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं चातुर्जातपुनर्नवं गजकणा द्राक्षा शठी कट्फलम् । शाल्मल्यंघ्रिफलत्रिकं कपिभवं बीजं समं चूर्णयेत् चूर्णार्द्धा विजया सिता द्विगुणिता मध्वाज्यमिश्रं नयेत् ॥ कर्षार्द्धं गुडकं निधाय विधिना राजा सदा सेवयेत् पेया क्षीरसिता च वीर्य्यकरणे स्तम्भोऽप्ययं कामिनाम् । वामावश्यकरः सुखातिसुखदः सर्वांगनाद्रावकः क्षीणे पुष्टिकरः क्षयक्षयकरो नानामयध्वंसकः ॥ कासश्वासमहातिसारशमनो मंदानलो दीपको दृष्टः सिद्धिफलो रसायनवरः कामेश्वरो दुर्लभः ॥ १४ ॥

भाषा—कूठ, गंधक, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारीकन्द, मुसली, गोखरू, तालमखाना, शतावर, कसेरू, अजवायन, ताडके अंकुर, धनिया, मुलहठी, गंगेरन, खिरैटी, सौंफ, जायफल, सैंधानोन, अतीस, काकडाशिंगी, त्रिकुटा, जीरा, काला जीरा, चातुर्जातक, चीता, गजपीपल, दाख, कचूर, कायफल, सेमलकी जड, त्रिफला और कौंछके बीज प्रत्येकका चूर्ण समान भाग, सब चूर्णसे आधा भांगका चूर्ण, भांगके आधा अभ्रक और अभ्रकसे आधा रूपामक्खीका चूर्ण, सब चूर्णसे दुगुनी खांड और कुछ थोडासा सहत तथा घृत सबोंका मिलाकर एक एक मो-

लेके मोदक बना लेवे । प्रतिदिन एक मोदक खाय और ऊपरसे मिश्रीसंयुक्त दूधका अनुपान करे । इससे वीर्य्यस्तम्भन होता है, स्त्रियें वशीभूत हो जाती हैं, अत्यन्त सुख उपजता है, सर्व स्त्रियें द्रवीभूत होती हैं । यह क्षीण मनुष्योंको पुष्ट करे हैं, क्षयरोगको क्षय करे है, नाना प्रकारके रोगोंको नष्ट करे है तथा खांसी, श्वास और अतीसारादि रोगोंको दूर करे है, मंदाग्निको दीपन करे है । इसका फल बहुत बार देखा हुआ है । यह उत्तम कामेश्वर रसायन दुर्लभ है ॥ १४ ॥

बृहत्कामेश्वरमोदकः ।

निश्चन्द्रिकाभ्रं पलमात्रभागं लोहस्य वंगस्य तदर्द्धभागम् । जातीफलं कोषफलं च जीरा यवानिका चाथ पलप्रमाणम् ॥ कर्षं द्विभागं त्रिसुगंधिकुष्ठं मांसी मुरा कुन्दुरु देवदारु । चाम्पेयसिन्धूद्भववालचव्यं सौभाग्ययष्टि मधुग्रन्थिपर्णम् ॥ तालीशकर्पूरलवंगकान्ताकाकोलिकायुग्मकटुत्रिकं च । शैलेयपद्मं सरलं सपुष्पं हस्तीकणावत्सकबीजधान्यम् ॥ शृंगी शताह्वा त्रिफलाथ मेथी श्यामाद्वयं कृष्णतिलं कशेरु । शक्राशनं तत्सदृशं विभागं सिता च शुभ्रा द्विगुणा विधेया ॥ तत्पाकवेत्ता विधिवद्विधानं लब्ध्वाधिवासं नयनागरेण । मध्वाज्यमिश्रं वटकप्रमाणं खादेन्नरः कौण्डकमंगलेन ॥ सर्वामयानां शमनं विधेयं विशेषतः संग्रहकोष्ठदोषम् ॥ १५ ॥

भाषा-निश्चन्द्र अभ्रक ४ तोले, लोहा २ तोले, वंग दो तोले, जायफल, जावित्री, जीरा और अजवायन प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, छोटी इलायची, दालचीनी, तेजपात, कूठ, कपूरकचरी, कुन्दुरू, बालछड, देवदारु, सोनेके वरक, सेंधानोन, सुगंधवाला, चव्य, सुहागा, गठिवन, तालीशपत्र, कपूर, लौंग, फूलप्रियंगू, काकोली, क्षीरकाकोली, त्रिकुटा, भूरिछरीला, पद्माख, धूपसरल, गजपीपल, इन्द्रजौ, धनियां, काकडाशिंगी, सोया, हरड, बहेडा, आमला, मेथी, करियावासाऊ, नागरमोथा, काले तिल और कसेरू प्रत्येकका चूर्ण दो दो कर्ष, भांगका चूर्ण सबकी समान और सब चूर्णसे दुगुनी बूरा, सबोंको मिलाकर पाकको जाननेवाला वैद्य उत्तमरीतिसे पकावे फिर नागरमोथा और सोंठकी वासना देकर घृत और सहत मिलाकर बहेडेकी बराबर मोदक बनावे । प्रतिदिन एक मोदक खाय । इससे सर्व प्रकारके रोग दूर होते हैं और विशेषकरके यह कोष्ठदोषको दूर करे है ॥ १५ ॥

कामाग्निसंदीपनमोदकः।

कर्षौ रसो गंधकमभ्रकं च त्रिक्षारचित्रे लवणानि पञ्च। शठी यवानीद्वयकीटहारी तालीशपत्राण्यपरं द्विकर्षम् ॥ जीरं चतुर्जातलवंगजाती फलं च कर्षत्रयमेवमन्यत्। सवृद्धदारं कटुकत्रयं च तथा चतुःकर्षमिदं निबोध॥ धन्याकयष्टीमधुरी-कशेरुकर्षाः पृथक् पंचवरी विदारी। वरेभकर्णेभकणात्मगुप्ता फलं तथा गोक्षुरबीजयुक्तम् ॥ सबीजपत्रेन्द्ररजः समानं समा सिता क्षौद्रघृतं च तुल्यम्। कर्पैकमिन्दोरथ मोदकं तत् कामाग्निसन्दीपनमेतदुक्तम्॥ १६॥

भाषा—पारा, गंधक, अभ्रक, सज्जी, सुहागा, जवाखार, चीता, काला नोन, सैंधानोन, विरिया संचरनोन, सामुद्रलवण, कचूर, अजवायन, अजमोद, वायविडंग और तालीशपत्र प्रत्येक एक एक कर्ष, जीरा दो कर्ष, चतुर्जातक प्रत्येक दो दो कर्ष, लौंग दो कर्ष, जायफल दो कर्ष, विधायरा तीन कर्ष, त्रिकुटा प्रत्येक तीन कर्ष, धनियां, मुलहटी, सौंफ और कसेरू प्रत्येक चार चार कर्ष, शतावर, विदारीकन्द, हरड, बहेडा, आमला, हस्तिकर्ण पलाश, गजपीपल, कौंछके बीज और गोखरुके बीज प्रत्येक पांच पांच कर्ष, बीज और पत्तोंसमेत भांगका चूर्ण सबोंकी बराबर, सबकी समान बूरा, तथा घी और सहत प्रत्येक समान भाग, कपूर एक कर्ष, सबोंको एकत्र करके मोदक बना लेवे इन मोदकोंको सेवन करनेसे कास और यक्ष्मादिरोग दूर होते हैं। यह अत्यन्त कामाग्निको दीपन करे है॥ १६॥

आम्रखण्डः।

पक्वचूतरसद्रोणं पात्रं स्याच्छुद्धखण्डतः। घृतमर्द्धं ततो ग्राह्या चतुर्थांशं च नागरम्॥तदर्द्धं मरिचस्यापि तदर्द्धा पिप्पली स्मृता॥ तोयं खण्डसमं ग्राह्यं सर्वमेकत्र संस्थितम्॥ विपचेन्मृण्मये पात्रे यावद्दर्वीप्रलेपनम्। चूर्णान्येषां ततो दद्यात्पत्रं पलचतुष्टयम्॥ ग्रन्थिकं चित्रकं मुस्तं धन्याकं जीरकद्वयम्। त्र्यूषणं जाति-तालीशं चूर्णमेषां पृथक् पलम्॥ त्वगेलानागपुष्पाणां प्रत्येकं च पलं तथा। सिद्धशीतेन मधुना प्रस्थार्द्धं सर्वमेकतः॥ सन्धाय पिष्टवत्कृत्वा शुभे भाण्डे निधापयेत्। भोजनादग्रतः खादेत्

पलमेकं प्रमाणतः ॥ शतं वापि शतार्द्धं वा रमेत्स्त्रीणां पुमानिह । गच्छेत्कन्दर्पदर्पान्धो रागवेगाकुलां स्त्रियम् ॥ संसेव्य भेषजं ह्येतद्वन्ध्यायां जनयेत्सुतम् । वीरं सर्वगुणोपेतं शतायुश्च ह्यनामयम् ॥ कन्याप्रदायिनी चैव ददाति सुतमुत्तमम् । मृतवत्सा च या नारी या च गर्भोपघातिनी ॥ १७ ॥

भाषा-पके आमोंका स्वरस ३२ सेर, बूरा ४ सेर, घी १८ सेर, सोंठका चूर्ण ९ सेर, काली मिरचोंका चूर्ण ४॥ सेर, पीपलका चूर्ण २। सेर और जल ४ सेर इन सबोंको एकत्र करके एक उत्तम मट्टीके बासनमें पकावे । जब पकते पकते गाढा हो जावे तब तेजपातका चूर्ण ४ पल, गठिवन, लालचीतेकी जड, नागरमोथा, धनिया, जीरा, काला जीरा, सोंठ, मिरच, पीपल, जायफल और तालीशपत्र प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, दालचीनी, छोटी इलायची और नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिला देवे । शीतल होनेपर एक सेर सहत मिलाके सबोंको एक जीव कर चिकने बासनमें भरके रख देवे । प्रतिदिन भोजनसे प्रथम चार तोले खाय । इसके प्रभावसे मनुष्य सौ वा ५० स्त्रियोंमें रम रक्ता है तथा कन्दर्पकी समान कामान्ध होकर रागके वेगसे आकुल स्त्रियोंमें जाता है । वंध्या स्त्रियेंभी वीर सर्वगुणसम्पन्न, रोगरहित और १०० वर्षकी आयुवाले पुत्रको उत्पन्न करती हैं । जिन स्त्रियोंके अधिकतर कन्या उत्पन्न होती हैं तथा जिनके बालक नहीं जीते और जिसका गर्भ पतित हो जाता है उन स्त्रियोंके इसके प्रभावसे परमोत्तम सर्वगुणालंकृत और दीर्घायु पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १७ ॥

मदनसन्दीपनचूर्णम् ।

गोक्षुरः क्षुरको मेघो मर्कटी शतपुत्रिका । मधुकं क्षीरकाकोली तालमूल्यमृताम्बु च ॥ शाल्मली लोहगगने विदारी तालमस्तकम् । हस्तिकर्णो बला धात्री जातीफलकशेरुकम् ॥ शृंगाटको माषपर्णी भृंगराट् कुङ्कुमं वचा । शिलाजतु शिवाबीजं पारदं धातुमाक्षिकम् ॥ वटस्य कोमलाः पादा एला यष्टीकतण्डुला । रक्तशालिचगोधूममाषका यवकस्तथा ॥ एतच्चूर्णीकृतं सर्वं सितशर्करया समम् । बिडालपदकं खादेत् सर्पिषा मधुना सह ॥ शीतं पयोनुपानं च कामिनीं कामयेन्नरः। वीर्य्यहीनो भवेद्यस्तु जीर्णो व्याधिप्रपीडितः ॥ प्रमेही मूत्र-

कृच्छ्री च स्त्रीदोषात्पतितध्वजः । सोशीतिवार्षिको वृद्धो युवेव रमतेऽङ्गनाः ॥ पुत्रं च जनयेद्वीरमरोगं दीर्घजीविनम् । भेषजैर्विविधैः किं स्यादन्यैश्च शतसंख्यकैः॥ फलं न किंचित्तत्रास्ति केवलं गौरवं बहु । बालसस्यं यथा तोयैर्वर्द्धते च दिने दिने ॥ तथानेन नृणां देहः पुष्टो भवति नान्यथा । योत्ति मण्डलमात्रं तु स गच्छेत्प्रमदाशतम्॥ जगतस्तु हितार्थाय चूर्णं मदनदीपनम् १८॥

भाषा—गोखरू, तालमखानेके बीज, नागरमोथा, कौंछके बीज, शतावर, मुलहठी, क्षीरकाकोली, मुसली, गिलोय, सुगंधवाला, मोचरस, लोहा, अभ्रक, विदारीकंद, ताडके अंकुर, हस्तिकर्णपलाशके बीज, खिरैटी, आमले, जायफल, कशेरू, सिंहाडे, मखवन, भांगरा, केशर, वच, शिलाजीत, गंधक, पारा, सोनामक्खी, वडके कोमल पत्ते, इलायची, वायविडंग, मुलहठी, लाल शालिधानके चावल, गेहूं, उडद और जौ प्रत्येक औषधिका चूर्ण समान भाग और सबोंकी बराबर मिश्री लेवे । प्रतिदिन दो दो तोले प्रमाण सहत और घीमें मिलाकर खाय, ऊपरसे शीतल दूधका अनुपान करे । यह मदनसन्दीपन चूर्ण कामिनियोंको प्रसन्न करता है तथा इससे वीर्यहीन और रोगोंसे पीडित वृद्ध मनुष्यभी तरुण हो जाता है । प्रमेही, मूत्रकृच्छ्ररोगी, जिसका लिंग अत्यंत स्त्रीप्रसंग करनेसे शिथिल हो गया हो, वह अस्सी वर्षका वृद्धभी जवानकी तरह स्त्रियोंमें रमता है और इस चूर्णका सेवन करनेसे वीर, निरोगी और दीर्घायु पुत्र उत्पन्न होता है । नाना प्रकारकी सैकडों औषधियोंके सेवन करनेसे क्या फल होता है, केवल उनका गौरवही बडा है । जैसे बाल खेती जलसे दिन दिन बढती है इसी प्रकार इस चूर्णका सेवन करनेसे मनुष्योंका शरीर दिन प्रतिदिन पुष्ट होता है । इसको अडतालीस दिन नियमसे सेवन करे तो १०० स्त्रियोंमें मैथुन करनेकी शक्ति हो जाती है । यह मदनसन्दीपनचूर्ण संसारके उपकारके लिये अश्विनीकुमारोंने निर्म्माण किया है ॥ १८॥

बृहदश्वगंधाघृतम् ।

अश्वगंधापलशतं शुभदेशसमुत्थितम् । पुण्येहनि समाहृत्य साधयेत् लक्ष्णकुट्टितम्॥ द्रोणेऽम्भसि शनैः पक्त्वा यावत्पादावशेषितम् । सर्पिःप्रस्थं पचेत्तेन गव्यं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ कषायं छागमांसस्य दद्याच्छतद्वयस्य च । कल्कानि श्लक्ष्णचूर्णानि कर्षमात्राणि दापयेत् ॥ काकोलीयुग्ममृद्धी द्वे मेदे द्वे द्वे च जीर-

कम् । स्वयंगुप्तामृषभको एला मधुकमेव च ॥ मृद्वीकशूर्पपर्णौ च जीवन्ती च बला बला । नारायणी विदारी च दत्त्वा सम्यक् विपाचयेत् ॥ सितामाक्षिकयोः शीतो गृह्णीयात्कुडवे पृथक् । लिह्यात्पाणितलं भुक्त्वा परिहारविवर्जितम् ॥ क्षीणेन्द्रियनष्टशुक्रा वृद्धा बालास्तथाऽबलाः । हीनमांसाश्च ये केचित् प्राशयेदं मात्रया घृतम् ॥ १९ ॥

भाषा–घी २ सेर, दूध ८ सेर, काथके लिये उत्तम देशमें उत्पन्न हुई और शुभ दिनमें उखाडी हुई असगंध १२॥ सेर, जल ३२ सेर, शेष ८ सेर, बकरेके मांसका काथ २५ सेर तथा कल्कके लिये काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीरा, काला जीरा, कौंछके बीज, जीवक, ऋषभक, इलायची, मुलहठी, दाख, हस्तिकर्णपलाशके बीज, जीवन्ती, पीपल, खिरैटी, शतावर और विदारीकंद ये सब औषधी कूटी हुई प्रत्येक दो दो तोले, सबोंको मिलाकर यथाविधिसे घृतको पकावे, शीतल होनेपर एक सेर बूरा और एक सेर सहत मिला देवे । इसमेंसे प्रतिदिन दो दो तोले खाय और यथेष्ट भोजन करे । यह घृत क्षीण इन्द्रियवाले, नष्ट हो गया हो वीर्य्य जिनका, वृद्ध, बालक, निर्बल और हीनमांसवाले प्राणियोंको हितकारी है ॥ १९ ॥

यौवनघृतम् ।

सुरभिश्चाश्वगंधकक्कृताञ्जलीकटुकीरजनीसमं सिद्धम् । गोमहिषीघृततुल्यं तैलं संसाधितं विधिना ॥ कुरुते परिणतवयसां वनितानां सप्तरात्रेण । स्थिरविपुलतुंगकठिनं स्तनयुगलमस्य योगेन ॥ २० ॥

भाषा–गायका घी १ सेर, भैंसका घी १ सेर, तिलका तेल २ सेर, जल १६ सेर तथा कल्कके लिये दालचीनी, असगंध, छुईमुई, कुटकी और हलदी सब मिली हुई एक सेर, यथाविधिसे घृतको पकावे । इस औषधिका सेवन करनेसे अधिक उमरवाली स्त्रियोंकेभी स्तन सात दिनमें स्थिर और पुष्ट हो जाते हैं ॥ २० ॥

गुडकूष्माण्डः ।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् । प्रस्थं च तिलतैलस्य तस्मिन्तप्ते निधापयेत् ॥ त्वक्पत्रधान्यकव्योपजीवकैलाद्वयानलम् ।ग्रन्थिकं चव्यमातंगपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥

शृंगाटकं कशेरुं च प्रलम्बं तालमस्तकम् । चूर्णीकृतं पलमेकं गुडस्य तुलया पचेत् ॥ शीते भूते पलान्यष्टौ मधुनः सम्प्रदापयेत् ॥ २१ ॥

भाषा–उसीजे हुए और छीले हुए पेठेके टुकडे साडेबारह सेर, घी दो सेर, तिलका तेल दो सेर और गुड साडे बारह सेर सबोंको मिलाकर पकावे। जब पकते पकते गाढा हो जाय तब दालचीनी, तेजपात, धनिया, सोंठ, मिरच, पीपल, जविक, छोटी इलायची, बडी इलायची, चीता, पीपलमूल, चव्य, गजपीपल, सोंठ, सिंघाडे, कसेरू, ताडका मस्तक और ताडके अंकुर प्रत्येक चार चार तोले मिला देवे, शीतल होनेपर एक सेर सहत मिला देवे, फिर इसका सेवन करनेसे कफपित्तवातादि दोष नष्ट होते हैं ॥ २१ ॥

मेथीमोदकः ।

त्रिकटुत्रिफलामुस्तजीरकद्वयधान्यकम् । कट्फलं पौष्करं शृंगी यवानी सैन्धवं बिडम् ॥ तालीशकेशरं पत्रं त्वगेला च फलं तथा। यावन्त्येतानि चूर्णानि तावदेव च मेथिका ॥ संचूर्ण्य गुडकं कार्य्यं पुरातनगुडेन तु । घृतेन मधुना मिश्रं खादेदग्निबलं प्रति ॥ अग्निं च कुरुते दीप्तं मासमेकं महौषधम् । बलवर्णकरो ह्येष स्वरसंधानकारकः ॥ २२ ॥

भाषा–त्रिकुटा, त्रिफला, नागरमोथा, जीरा, काला जीरा, धनिया, कायफल, पोहकरमूल, काकडासिंगी, अजवायन, सैंधानोन, विरियासंचरनोन, तालीसपत्र, नागकेशर, तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायची और जायफल प्रत्येक एक एक भाग और मेथीका चूर्ण सबकी बराबर, इन सबोंको पुराने गुडमें मिलाकर मोदक बना लेवे, यह सहत और घीमें मिलाकर अग्निका बलाबल देखकर भक्षण करे, इससे एक महीनेमें अग्नि दीपन होती है । बल और वर्णकी वृद्धि होती है और स्वर उत्तम होता है ॥ २२ ॥

महासुगंधितैलम् ।

कर्पूरागुरुचोचबोलनलिकालाक्षाशठीधातकीपुष्पैः सप्तदलैलवालुसरलाशैलेयमांसीप्लवैः । एलाकुंकुमरोचनादमनकश्रीवासजातीफलैः कक्कोलकमुकाझटामदमुराकान्तालवंगामयैः ॥

तैलोशीरहरेणुकामलयजस्थौणेयचण्डानखैजोतीकोषकुलीरपक्षकनतैः स्पृक्कान्वितैः पालिकैः । लाक्षायोजनवल्लिलोध्रसलिले तैलं विपच्याढकं तेनाभ्यज्य तनुं जरन्नपि पुमान् कान्तः प्रियावल्लभः ॥ २३ ॥

भाषा–कपूर, अगर, दालचीनी, बोल, नलिका, लाख, कचूर, धायके फूल, सतवनकी छाल, एलुआ, धूपसरल, भूरिछरीला, वालछड, सुगंधतृण, इलायची, केशर, गोरोचन, दौना, राल, जायफल, शीतलचीनी, सुपारी, मुँई आमला, कस्तूरी, कपूरकचरी, फूलप्रियंगू, लौंग, कूठ, शिलारस, खस, रेणुका, लालचन्दन, गठिवन, चोरकद्रव्य, नखी, जाविन्नी, काकडाशिंगी, पद्माख, तगर और असवरग प्रत्येक कूटी हुई औषधि चार चार तोलं, तिलका तेल १६ सेर, लाखका क्वाथ, मजीठका क्वाथ और लोधका क्वाथ प्रत्येक सोलह २ सेर लेवे । सबोंको मिलाकर यथाविधिसे तैलको सिद्ध करे । इस तेलका मालिस करनेसे वृद्ध पुरुषभी स्त्रियोंको वल्लभ हो जाता है ॥ २३ ॥

तालकतैलम् ।

तिलतैलं पचेद्धीरो गोधामांससमन्वितम् । तैलेनानेन लिंगस्य श्रवणस्य कुचस्य च ॥ भगस्य च तथा वृद्धिर्मर्दनान्नात्र संशयः ॥ रसाञ्जनं हैमवती वयस्या चूर्णीकृतं शीतजलेन पीतम् । रजोविनाशं नियतं करोति शंकाद्रकागर्भसमागमस्य ॥ क्षिते वराङ्गे सति दुष्टरण्डा स्वप्नेऽपि वन्ध्या न हि गर्भशंकाम् ॥ २४ ॥

भाषा–हरिताल, असगंध, जौंक, सूकर और सांपकी कैंचली तथा गोधाका मांस इन सबोंके साथ तेलको पकाकर मर्दन करनेसे लिंग, कर्ण, स्तन और योनि बढ जाती है । रसौत, हरड और वचका चूर्ण करके शीतल जलके साथ पीवे तो रजस्राव निवारण होकर गर्भ रहनेकी शंका दूर होती है । ढाकके बीजोंका चूर्ण सहत और गायके घीमें मिलाकर ऋतुस्रावके समय योनिमें घिसनेसे व्यभिचारिणी और रण्डास्त्रियोंके स्वप्नमेंभी गर्भ नहीं रहता ॥ २४ ॥

हेमांगसुन्दररसः ।

शुद्धसूतं समं ग्राह्यं सुवर्णं गंधकं द्वयः । कज्जलीकृत्य यत्नेन शुल्वपात्रे भिषग्वरः ॥ राजिकास्वरसं दत्त्वा कृष्णोन्मत्तस्य

वै रसम् । दत्त्वा दत्त्वा प्रयत्नेन मर्दयेच्च त्रिभिर्दिनैः ॥ त्रिभिश्च सार्षपं तैलं दत्त्वा कल्कं विमर्दयेत् । शोषयेद्भानुभिर्भानोर्ज्वालं दद्याच्छनैः शनैः ॥ वालुकायंत्रयोगे तु उक्तो भेषजमध्यतः । तावज्ज्वालं प्रदातव्यं यावत्स्यादुष्णवालिका ॥ स्वांगशीतलतां ज्ञात्वा कर्षयेत्तं भिषग्वरः । ततो गुंजाप्रमाणेन मासं मासार्द्धकं पुनः ॥ ज्ञात्वा रोगशरीरं च योजनीयं बुधैः सदा । घृतेन मधुना सार्द्धं मर्दयित्वा तु खल्वके ॥ रसं वा भक्षयेत्पश्चात् आज्यं गव्यं गवां पयः । सामान्येन तु कर्त्तव्यं चित्रकार्द्रकसैन्धवैः ॥ रोगिणामनु पानीयं रसमाज्येन भोजनम् । सुस्निग्धं नातिमधुरं मांसश्चैव विहायसम् ॥ भक्ष्यं छागादिकं मांसं द्वैत्वायस्य तु भक्षणम् । एतेनापि विधानेन प्रातः प्रातर्निषेवयेत् ॥ साध्यासाध्येषु रोगेषु तथा व्याधिभयेषु च ॥ २८ ॥

भाषा–शुद्ध पारा, सोना, गंधक और लोहा ये सब समान भाग लेकर तांबेके पात्रमें खरल कर कजली करे । इस कजलीको राईके रसमें और धतूरेके रसमें तीन दिन खरल करके पश्चात् सरसोंके तेलमें तीन दिन खरल कर सूर्यकी तपनमें सुखावे, फिर वालुकायंत्रमें पकावे । जबतक वालू गरम न होय तबतक पकाता रहे, पश्चात् स्वांगशीतल होनेपर चूर्ण कर ले, इसको एक रत्तीसे लेकर एक मासा पर्य्यंत अथवा आधा मासा पर्यंत रोग और रोगीका बलाबल विचार कर सदैव सेवन करे । अनुपान घृत अथवा सहतमें खरल करके इस औषधिका सेवन करे । औषधि सेवन करनेके पश्चात् बकरीका दूध, गायका दूध अथवा गायका घी सेवन करे । अथवा चीते और अदरखका रस तथा सैंधेनोनका सेवन करे । इस औषधिके पश्चात् बकरीके दूधके साथ भोजन करे । आकाशमें उडनेवाले जीवोंका मांस और बकरे आदि पशुओंका मांस भक्षण करे । इस विधिसे प्रतिदिन प्रातःकाल इसका सेवन करे । इसके द्वारा वली पलितादि सम्पूर्ण साध्यासाध्य रोग दूर होते हैं ॥ २८ ॥

कनककन्दर्परसः ।

पूर्वसिद्धे रसे क्षिप्त्वा रसपादेन काञ्चनम् । विमर्द्यापि विधानेन सुपिष्टं च विनिःक्षिपेत् ॥ कान्तवैक्रान्तयोरेवं क्षिप्ते तत्र विधान-

तः। मधुरत्रयसंयुक्तं मासमात्रं दिने दिने ॥ लीढान्नपानं पातव्यं मन्दतप्तं गवां पयः। त्रिःसप्तदिवसैः क्षीणो भवेदक्षीणधातुकः॥ ऊर्ध्वलिंगः सदा तिष्ठेत् द्रावयेद्वनिताशतम्॥ २६॥

भाषा-पूर्वोक्त हेमांगसुन्दर रसमें चौथाई भाग सोनेका भस्म मिलाकर खरल करे, पश्चात् इसमें कांतलोहेकी भस्म और वैक्रान्तकी भस्म मिलाकर घृत, बूरा और सहतके साथ सेवन करे और ऊपरसे किंचित् गरम दूध पीवे तो इक्कीस दिनमें सम्पूर्ण ज्वरादिरोग दूर होवें, क्षीण, क्षीणधातुवाले पुष्ट हो जाते हैं और कामदेव अत्यन्त दीपन होता है॥ २६॥

ताम्रपर्पटी।

रसगन्धकताम्राणां चूर्णं कृत्वा समांशिकम्। पुटपाकविधौ पक्त्वा मधुनालोड्य संलिहेत्॥ सर्वरोगहरं चैतत्पर्पटाख्यं रसायनम्॥ २७॥

भाषा-पारा, गंधक और तांबा समान भाग लेकर पुटपाकविधिसे पकाकर सहतमें आलोडन करे। यह पर्पटाख्य रसायन सर्वरोगनाशक है॥ २७॥

ताम्ररसायनम्।

जीर्णं ताम्रं रसं चैव गन्धकं च सुचूर्णितम्। स्वर्णमाक्षिकमादाय धत्तूरकरसे पचेत्॥ यावत्पाकं तथा कृत्वा शास्त्रविन्मृदुवह्निना। त्रिफलापिण्डेनावेष्ट्य विधिवत्सर्पिषा पचेत्॥ विमर्द्य मधुसर्पिर्भ्यां नारिकेलं पिबेदनु। पाण्डुरोगं च कासं च ज्वरांश्च विषमांस्तथा॥ गुल्मप्लीहामयं चैव विनाशयति तत्क्षणात्॥ २८॥

भाषा-तांबा, पारा, गंधक और सोनामक्खी इनका चूर्ण करके धतूरेके रसमें मंद मंद अग्निसे पकावे, पश्चात् त्रिफलेसे वेष्टित कर विधिपूर्वक घृतके साथ पकावे। इस औषधिको घृत और सहतमें मिलाकर सेवन करे और ऊपरसे नारियलका दूध पीवे तो पांडुरोग, खांसी, विषमज्वर, गुल्म और प्लीहादिरोग दूर होते हैं॥२८॥

शिलाजतु।

हेमाद्याः सूर्य्यसन्तप्ताः स्रवन्ति गिरिधातवः। जत्वाभं मृदुमृत्स्नाभं यन्मलं तच्छिलाजतु॥ अनम्लं चाकषायं च कटुपाके

शिलाजतु । नात्युष्णशीतं धातुभ्यश्चतुर्भ्यस्तस्य सम्भवः ॥ हेम्नोऽथ रजतात्ताम्राद्वरं कृष्णायसादपि । मधुरं च सतिक्तं च जवापुष्पनिभं च यत् ॥ विपाके कटु शीतं च तत्सुवर्णस्य निःसृतम् । राजतं कटुकं श्वेतं शीतं स्वादु विपच्यते ॥ ताम्राद्बर्हिणकंठाभं तीक्ष्णोष्णं पच्यते कटु । यत्तु गुग्गुलुसंकाशं सतिक्तं लवणान्वितम् ॥ विपाके कटु शीतं च सर्वश्रेष्ठं तदायसम् । गोमूत्रगंधः सर्वेषां सर्वकर्म्मसु योगिका ॥ रसायनप्रयोगेषु पश्चिमस्तु विशिष्यते।यथाक्रमं वातपित्ते श्लेष्मपित्ते कफत्रिषु॥ विशेषेण प्रशस्यन्ते बला हेमादिधातुजाः ॥ काले रवितापाढ्ये कृष्णायसजं शिलाजतु प्रवरम् । त्रिफलारससंसक्तं त्र्यहं शुष्कं पुनः शुष्कम् ॥ दशमूलस्य गुडूच्या रसे वा वासायास्तथा पटोलस्य । मधुकरसे गोमूत्रे त्र्यहं त्र्यहं भावयेत् क्रमशः ॥ एकाहं क्षीरेण तु तत्परं भावयेत्पुनः शुष्कम् । सप्ताहं भाव्यं स्यात्काथैर्नेषां यथालाभम्॥ काकोल्यौ द्वे मेदे विदारियुग्मं शतावरी द्राक्षा । ऋद्धियुगर्षभकवीरामुण्डितिकांशुमत्यौ च ॥ रास्नापुष्करचित्रकदन्तीभकणाकलिंगचव्याब्दाः । कटुका शृंगी पाठा एतानि पलांशिकानि कार्य्याणि ॥ आभ्रेण साधितानां रसेन पादांशिकेन भाव्यानि । गिरिजस्यैवं भावितशुद्धस्य पलानि दश षट् द्विपलं च॥ विश्वाधात्रीमागधिकाककर्कटाख्यमरिचानाम् । चूर्णं पलं च विदार्य्यास्तालीशपलानि चत्वारि॥ षोडश सितापलानि चत्वारि घृतस्य माक्षिकस्याष्टौ । तिलतैलस्य द्विपलं चूर्णार्द्धपलानि पंचानाम् ॥ त्वक्क्षीरपत्रत्वग्नागैलाभिः मिश्रयित्वा तु तम् ॥ २९ ॥

भाषा-स्वर्ण, रूपादि पर्वतोंकी सम्पूर्ण धातु सूर्य्यकी धूपमें सन्तप्त होकर लाखकी समान और कोमल मिट्टीके समान मैलको छोडती है उसको शिलाजीत कहते हैं। यह शिलाजीत खट्टा और कषैला नहीं है, पचनेमें कटु, कुछ शीतल

और गरम है । यह सुवर्ण, रजत, तांबा और लोहा इन चार प्रकारकी धातुओंसे उत्पन्न होता है । जो शिलाजीत सुवर्णसे उत्पन्न होता है वह मधुर, कडवा, जवाके फूलकी समान वर्णवाला, पचनेमें कटु और शीतल है । जो शिलाजीत चांदीसे उत्पन्न होता है वह कटु, सफेद रंगका, शीतल और पचनेमें मधुर होता है । जो शिलाजीत तांबेसे उत्पन्न होता है वह मोरके कंठकी समान रंगका, तीक्ष्ण, गरम और कटुरसवाला होता है । जो शिलाजीत लोहेसे उत्पन्न होता है वह गुगलकी समान रंगवाला, कडवा, नमकीन, पचनेमें चरपरा और शीतल है, यह सबोंमें श्रेष्ठ है । गोमूत्रकी समान गंधवाले सर्व प्रकारके शिलाजीत सब कर्म्मोंमें लाने चाहिये, परन्तु रसायन कर्म्ममें लोहेसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत लेना चाहिये । सुवर्णसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत वातपित्तरोगमें, चांदीसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत पित्तकफरोगमें, तांबेसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत कफजरोगोंमें और लोहेसे उत्पन्न हुआ शिलाजीत सान्निपातिक रोगोंमें देना चाहिये । कृष्णलोहेसे उत्पन्न हुए शिलाजीतको ग्रीष्मऋतुमें संग्रह कर रक्खे, फिर उस शिलाजीतको त्रिफलेके क्वाथमें चार दिन भावना देकर धूपमें सुखावे, पश्चात् दशमूल, गिलोय, अडूसा, पटोल, मुलहठी और गोमूत्र इनके क्वाथमें या रसमें तीन दिन भावना देवे, पश्चात् दूधमें एक भावना देकर धूपमें सुखा लेवे, पश्चात् काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, विदारी, क्षीरविदारी, शतावर, दाख, ऋद्धि, वृद्धि, ऋषभक, घीगुवार, गोरखमुंडी, रास्ना, पोहकरमूल, लालचीता, दंती, गजपीपल, कूडा, चव्य, नागरमोथा, कुटकी, काकडाशिंगी और पाढ प्रत्येक चार चार तोले लेकर बत्तीस सेर जलमें पकावे, जब चौथाभाग शेष रहे तब उतारकर इसमें सात दिनतक भावना देवे, इस प्रकार शुद्ध किया हुआ और भावना दिया हुआ शिलाजीत १६ पल, सोंठ, आमले, पीपल, काकडाशिंगी और काली मिरच प्रत्येकका चूर्ण दो दो पल, विदारीकन्दका चूर्ण एक पल, तालीशपत्रका चूर्ण चार पल, बूरा १६ पल, घी ४ पल, सहत ८ पल, तिलका तेल २ पल और वंशलोचन, तेजपात, दालचीनी, नागकेशर एवं इलायची प्रत्येक दो दो तोले इन सबोंको मिलाकर दो दो तोलेकी गोली बनाकर धूपमें सुखा चमेलीके फूलोंमें वसाकर एक उत्तम बासनमें भरके रख देवे । प्रतिदिन एक गोली खाय और ऊपरसे दूध, उडद आदिका यूष, अनारका रस, सुरा, आसव, मधु, शीतल जलादिपान करे । इसके ऊपर यथेष्ट भोजन करे । इससे वात, कृमि, कासादि सर्व प्रकारके रोग नष्ट होते हैं ॥ २९ ॥

अष्टांगघृतम् ।

मण्डूकीं सजटां सशंखकुसुमां सब्रह्मसौवर्चलां श्वेतां वागुजिकां शतावरियुतां ब्राह्मीं गुडूचीं तथा । पिष्टांशैः पलिकैरिमानि वि-

धिवद्द्रव्याणि पच्यान्नरः सर्पिःप्रस्थमथाढकेन पयसा युक्तं पचेद्युक्तितः ॥ नाम्नाष्टाङ्गमिदं द्विवीव तु वियत्ख्यातं पिबेच्चामृतं साग्रं ग्रंथसहस्रमेकदिवसे नैवाखिलं धारयेत् ॥ ३० ॥

भाषा-उत्तम गायका घी २ सेर, गायका दूध ८ सेर तथा कल्कके लिये ड्रुलड्रुल, बालछड, शंखपुष्पी, ब्रह्मसुवर्चली, सफेद कोयल, वाबचीके बीज, शतावर, बडी शतावर, ब्रह्मी और गिलोय प्रत्येक चार चार तोले। यथाविधिसे घृतको पकाकर सेवन करनेसे अत्यन्त धारणाशक्ति, मधुरध्वनि और बृहस्पतिकी समान श्रुति हो जाती है ॥ ३० ॥

कामदीपकरसः ।

सितपुनर्नवामूलं शाल्मलीसत्वभावितम् । शाल्मलीसत्वनिर्य्यासं दद्यादत्र रसं समम् ॥ गंधकं तत्समं दत्त्वा भक्षयेत्तुर्यमानकम् । अनुपानं प्रकुर्वीत गवां क्षीरपलद्वयम् ॥ अयं चाण्डालिकायोगोऽप्यगम्यामपि गम्यते । निषेधान्निधनं याति करणात्कामदेववत् ॥ ३१ ॥

भाषा-सफेद पुनर्नवेकी जडका चूर्ण करके सेमलके रसमें भावना देवे, पश्चात् इसमें सेमलका सत्व और गंधक समानभाग मिलाकर गोली बनाकर भक्षण करे और दूधका अनुपान करे। इससे कामदेवकी समान रूपलावण्यतायुक्त और वीर्य्यवान् होता है ॥ ३१ ॥

कामदूतरसः ।

सूतं गंधं कान्तभस्मापि तुल्यं यामं नीरैः शाल्मलीसम्भवोत्थैः । गोलं कृत्वा वेष्टयित्वान्धमार्षैराढ्यं पक्त्वा काचकुप्यां निधाय ॥ भूकूष्माण्डं नागवल्लीं च पिष्ट्वा तोयं दद्याद्रात्रिमेकान्तयत्नात् ।सिद्धः सूतः कामदेवस्य वल्लं मध्वाज्याभ्यां योजयेत् तन्निसत्सम् ॥ खण्डं दुग्धं चानुपाने च दद्यात रात्रौ दुग्धं शक्रमाने च देयम् । तिक्तं रूक्षं वर्जयित्वातिचाम्लं पेयं नित्यं शाल्मलीक्षीरयुक्तम् ॥ खण्डं धात्री वानरीमूलदुग्धं पुष्टिं वीर्य्यं जायते तत्प्रभूतम् । कुर्य्यान्नित्यं रम्यकान्ताविनोदं कृत्वा दिव्यं कामदेवो रसोयम् ॥ ३२ ॥

भाषा-पारा, गंधक और कांतलोहेकी भस्म समान भाग लेकर सेमलके रसमें एक प्रहर खरल कर गोला बना घृतके साथ कांचकी कुप्पीमें भरके विदारीकन्द और पानोंके रसमें डालकर एक दिन पकावे। इस औषधिको घृत और सहतके साथ सेवन करे, पश्चात् दूध और बूराका अनुपान करे। इसपर तिक्त, रूक्ष और अत्यन्त खट्टे पदार्थ त्याग देवे। खांड, आमले और सेमल इनको दूधके साथ सेवन करे। इससे अत्यन्त वीर्य्य पुष्टि और रतिशक्ति बढती है ॥३२॥

पूर्णचन्द्ररसः ।

सूतं गंधं चाश्वगंधा गुडूची यष्टीस्तोयैरेकघस्रं विघृष्य। क्षुद्रं शंखं मौक्तिकं लोहकिट्टं भस्मीभूतं सूततुल्यं च दद्यात्॥ भूकूष्माण्डैरेकघस्रं विघृष्य गोलं कृत्वा भूधरे तं पुटेच्च। चूर्णं कृत्वा नागवल्लीरसेन दद्यादेवं मर्दयित्वा च निष्कम्॥मध्वाज्याभ्यां पूर्णचन्द्रो रसोयं पुष्टिं वीर्य्यं दीपनं चैव कुर्य्यात्। योज्यं प्रायः पित्तरोगे ग्रहिण्यामार्शोरोगे सेवयेद् घालयुक्तम्॥ स्त्रीणां तापे शाल्मलीनीरयुक्तं मात्रामानं कालदेशं विभज्य ॥ ३३ ॥

भाषा-पारा और गंधकको एक दिन असगंध, गिलोय और मुलहठीके क्वाथमें भावना देवे, पश्चात् इसमें पारेकी समान क्षुद्रशंख, मोती और मण्डूरको मिलाकर एक दिन बिदारीकन्दके रसमें खरल कर गोला बना भूधरयंत्रमें पुटपाक करके चूर्ण कर ले। फिर इसको पानोंके रसमें खरल कर सहत और घीके साथ सेवन करे तो पुष्टि, वीर्य्यकी वृद्धि हो, अग्नि दीपन हो, तथा पित्तरोग, संग्रहणी और बवासीर दूर होती है। यदि स्त्रियोंके सन्ताप होय तो इसको सेमलके रसके साथ सेवन करे ॥ ३३ ॥

बृहत्पूर्णचन्द्ररसः ।

द्विकर्षं शुद्धसूतं च गंधकं च द्विकार्षिकम्। लोहभस्मपलं चाभ्रं जारितं च पलांशिकम्॥ द्वितोलं रजतं चैव गंधभस्म द्विकार्षिकम्। सुवर्णं तोलकं चैव ताम्रं कांस्यं च तत्समम्॥ जातीफलं चन्द्रपुष्पमेला भृंगं च जीरकम्। कर्पूरं वनिता मुस्तं कर्षं कर्षं पृथक् पृथक्॥ सर्वं खल्वतले क्षिप्त्वा कन्यारसविमर्दितम्। भावयित्वा वरातोये कटुकानां रसैस्तथा॥ एरण्डपत्रैः संवेष्ट्य

धान्ये रात्रिंदिनोषितम्। उद्धृत्य मर्दयित्वा तु वटिकां चणसम्मिताम्॥ खादेच्च पर्णखंडेन संयुक्तां व्याधिनाशिनीम्। सर्वव्याधिविनाशश्च काशीनाथेन निर्म्मितः॥ ३४॥

भाषा–पारा २ कर्ष, गंधक २ कर्ष, लोहा ४ तोले, अभ्रक ४ तोले, चांदी २ तोले, वंग २ कर्ष, सोना १ तोला, तांबा १ तोला, कांसी १ तोला, जायफल, नागकेशर, इलायची, दालचीनी, जीरा, कपूर, प्रियंगू और नागरमोथा प्रत्येक एक एक कर्ष इनको एकत्र पीसकर घीगुवारके रसमें खरल करे, फिर त्रिफलेके काथमें एक दिन भावना देकर एक दिन त्रिकुटेके काथमें भावना देवे। पश्चात् इसको अंडके पत्तोंसे वेष्टित कर एक दिन धानोंके ढेरमें गाड देवे, फिर निकालकर चनेकी समान गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली पानके टुकडेमें रखकर खाय। इससे सर्व प्रकारके रोग दूर होते हैं॥ ३४॥

अभिनवकामदेवरसः।

तोलकैकं समादाय पृथग्गंधकसूतयोः। रक्तोत्पलदलांभोभिर्मर्दयेद्दिवसत्रयम्॥ मर्दयित्वा पुनर्देयं गंधं मासचतुष्टयम्। तस्यैव पत्रतोयेन पुनर्दत्त्वा च गंधकम्॥ शंखिन्याश्चापि तोयेन रुद्ध्वा काचघटे दृढे। ततस्तु वालुकायंत्रे पचेद्यामत्रयं ततः॥ काचकुप्याः समाकृष्य सिद्धसूतमतः परम्। खादेत्तु रक्तिकाः पंच रोगैराक्रांतमानवः॥ भोजनं पूर्ववद्देयं यत्नतः सततं भिषक्। दुर्बलं वपुरत्यर्थं मल्लवज्जायते नृणाम्॥ मासेनैकेन सूतेन्द्रः पित्तजान्नाशयेद्गदान्॥ ३५॥

भाषा–एक तोला पारा और एक तोला गंधक दोनोंको एकत्र लाल कमलके पत्तोंके रसमें तीन दिन खरल करे,पश्चात चार मासे गंधक मिलाकर फिर लाल कमलके पत्तोंके रसमें खरल करे। तदनंतर चार मासे गंधक मिलाकर शंखपुष्पीके रसमें खरल कर कांचकी कुपीमें भरके वालुकायंत्रमें तीन प्रहर पकावे। मात्रा ५ रत्तीकी है। इससे एक महीनेमें सर्व प्रकारके पित्तविकार दूर होते हैं और दुर्बल मनुष्यभी मल्लकी समान पुष्ट होते हैं। भोजन पूर्वरसकी समान जानना॥ ३५॥

मदनसुंदररसः।

माक्षिकं धातुमाक्षीकं लोहचूर्णं शिलाजतु। पारदं च विडं

चैव गन्धकं च समं समम् ॥ घृतेन भावयित्वा तु पात्रे कृत्वा तु चायसे । विडालपदमात्रं तु भक्षयेच्च पुनः पुनः ॥ मत्स्याण्डं तिलपिष्टं च घृतेन च परिप्लुतम् । क्षीरेणानुपिबेद्रात्रौ शर्करामधुमिश्रितम् ॥ मासमात्रं पिबेन्नित्यं वीर्य्यवृद्धचै दिने दिने । स पुमान्रमयेन्नारीमजस्रं चटको यथा ॥ ३६ ॥

भाषा-सोनामक्खी, रूपामक्खी, लोहेका चूर्ण, शिलाजीत, पारा, बिरिया संचरनोन और गंधक समान भाग लेकर लोहेके बासनमें घीकी वासना देवे । इसकी मात्रा दो कर्षकी है । इसपर मछलीके अंडे और तिलोंकी पिट्ठीको घृतमें मिलाकर खावे और रातको दूधमें शर्करा तथा सहत मिलाकर एक महीने पर्य्यंत सेवन करे । इससे प्रतिदिन वीर्य्यकी वृद्धि होती है । इसका नित्य सेवन करनेसे बारंबार मैथुन करनेकी इच्छा बढती है ॥ ३६ ॥

कामदीपकः ।

गंधकस्य तु तोलैकं कृत्वा वै तण्डुलाकृतिम् । दत्त्वा भृंगद्रवं रौद्रे भावयेद्दिनसप्तकम्॥तच्चूर्णं प्रक्षिपेत्तत्र प्रत्येकं मासकद्वयम् । जातीफलस्य कोपस्य तथा चन्द्रलवंगयोः ॥ ततः सगुडकं कृत्वा तस्य गुंजाचतुष्टयम् । अभ्यर्च्य भास्करं प्रातर्भक्षयेत्प्रत्यहं ततः ॥ आर्द्रकं सैन्धवोपेतं मरिचस्य च सप्तकम् । तच्चानुचर्वणं कृत्वा पिबेत् क्षीरपलद्वयम् ॥ अनेनैव प्रयोगेण स्थविरोऽपि युवायते ॥ ३७ ॥

भाषा-एक तोले गंधकको लेकर चावलोंकी समान छोटे छोटे टुकडे कर लेवे । पश्चात् भांगरेके रसमें सात दिन भावना देकर चूर्ण कर लेवे, फिर इस चूर्णमें जायफल, जावित्री, कपूर और लौंग प्रत्येक दो दो मासे मिलाकर चार चार रत्तीकी गोलियां बना लेवे । सूर्य्यदेवकी पूजा करके प्रतिदिन एक गोली खाय, ऊपरसे अदरख, सेंधानोन, सात काली मिरचोंका चूर्ण इनको चावे और दो पल दूध पीवे इसका सेवन करनेसे वृद्ध मनुष्यभी स्त्रीसंसर्गकी इच्छा करता है ॥ ३७ ॥

वसन्तकुसुमाकरः ।

पृथग्द्वौ हाटकं चन्द्रं त्रयो वंगाहिकान्तकम्।चत्वारि शुद्धमभ्रं च प्रवालं मौक्तिकं तथा ॥ भावना गव्यदुग्धेन भावनेक्षुरसेन च ।

वासालाक्षारसोदीच्यरम्भाकन्दप्रसूनकैः ॥ शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमोदकैः । पश्चान्मृगमदैर्भाव्यं सुगंधिरससम्भवैः ॥ गुंजाद्वयमिदं सेव्यं सितामध्वाज्यसंयुतम् । मेहघ्नं कान्तिदं चैव कामदं पुष्टिदं तथा ॥ ३८ ॥

भाषा-सोना २ भाग, चांदी २ भाग, वंग ३ भाग, कांतलोह २ भाग, अभ्रक ४ भाग, मोती ४ भाग, मूंगा ४ भाग इन सबोंको एकत्र पीसकर गायका दूध, ईखका रस, अडूसेका रस, लाखका रस, सुगंधवालेका रस, केलेके फूलोंका रस, मोचा, कमलके पत्तोंका रस, मालतीके फूलोंका रस और कस्तूरीका रस सब रसोंमें एक एक बार भावना देवे। प्रतिदिन दो रत्ती प्रमाण बूरा, सहत और घीमें मिलाकर सेवन करे । यह प्रमेहनाशक, कांतिजनक, कामको दीपन करनेवाला वसन्तकुसुमाकर अत्यन्त पुष्टिको उत्पन्न करे है ॥ ३८ ॥

कामकलाख्यरसः ।

मृतमुताभ्रकं स्वर्णं वाजिगंधामृतारसैः । मुसलीकदलीकन्दद्रवैस्तं मर्दयेद्दिनम् ॥ रुद्ध्वा लघ्वग्निना पच्यान्मर्द्यं पूर्वोक्तकैर्द्रवैः । पुटं देयं पुनर्मर्द्यमेवमष्टपुटैः पचेत् ॥ शाल्मलीजातनिर्य्यासैश्चतुर्मासं च भक्षयेत् । गोक्षीरैर्मर्कटीबीजैः पलार्द्धं पाययेदनुम् ॥ रसः कामकलाख्योऽयं रमते स्त्रीः सहस्रधा । सर्वांगोद्वर्त्तनं कुर्य्यात्सयवैः शाल्मलीरसैः ॥ ३९ ॥

भाषा-पारेकी भस्म, अभ्रककी भस्म और सोनेकी भस्म समान भाग लेकर असगंध, गिलोय, मुसली और केलेके कन्दके रसमें एक दिन खरल कर मृदु अग्निके द्वारा पुटपाक करे। फिर पूर्वोक्त रसोंमें खरल कर पुटपाक करे । इस प्रकार आठ वार पुटपाक करे। प्रतिदिन इसको चार मासे लेकर सेमलके रसके साथ सेवन करे, ऊपरसे वावचीके बीजोंके चूर्णको गायके दूधमें मिलाकर पीवे और सेमलके रसमें जौका चूर्ण मिलाकर उबटन करे । इस रसके प्रभावसे हजारवार स्त्रीके पास जानेकी सामर्थ्य हो जाती है ॥ ३९ ॥

पूर्णचन्द्ररसः ।

शाल्मलोत्थैर्द्रवैर्मर्द्यं पलैकं मृतगंधकम् । पृथक्खल्वे त्रिसप्ताहं तद्द्रवैर्मर्द्यं गन्धकम् ॥ एकीकृत्य घृतैश्चार्द्धं मर्दयेत्तच्च गोलकम् ।

यामद्वयं पचेदाज्ये वस्त्रे बद्धा तु पाचयेत् ॥ दिनैकं शाल्मली-द्रावैः पिण्डं यामद्वयं पचेत् । मर्दयित्वा पुनः पिण्डं नागवल्या च वेष्टयेत् ॥ निक्षिप्य काचकूप्यां च द्रवं दत्त्वा तु शाल्मलम् । पलैकपरिमाणं तु पचेद्यामद्वयं ततः ॥ वालुकायंत्रमध्ये तु द्रवे जीर्णे समुद्धरेत् । द्विगुञ्जं भक्षयेत्प्रातर्नागवल्लीदलान्तरे ॥ मुसलीं ससितां क्षीरैः पलैकं पाययेदनु । रसः पूर्णेन्दुनामायं सम्यग्वीर्य्यकरो भवेत् ॥ ४० ॥

भाषा-पारा और गंधक चार तोले लेकर सेमलके रसमें खरल करे और एक खरलमें अलग गंधकको इक्कीस दिनतक खरल करके पूर्वोक्तमें मिला देवे, पश्चात् घीमें मर्दन कर गोला बना दो पहर घीके साथ पकाकर पिण्डकी समान बना देवे। फिर उस पिण्डको वस्त्रमें बांधकर सेमलके रसमें एक दिन पकावे, तत्पश्चात् सेमलके रसमें फिर खरल कर फिर पानोंसे वेष्टित कर कांचकी कुप्पीमें भरके एक पल सेमलके रसके साथ दो प्रहरतक बालुकायंत्रमें पका लेवे । प्रतिदिन इसको दो रत्ती पानमें रखकर खाय और ऊपरसे मुसलीके चूर्णको दूधके साथ बूरा मिलाकर पीवे। इससे अत्यन्त वीर्य्यकी वृद्धि होती है तथा अत्यन्त स्त्रीसंसर्गकी इच्छा होती है ४०

मदनोदयरसः ।

शुद्धसूतं समं गन्धं रक्तोत्पलपलद्रवैः । यामं मर्द्य पुनर्गंधं पूर्वादर्द्धं विनिक्षिपेत् ॥ पंचगुंजासितासार्द्धं रसोऽयं मदनोदयः। समूलं शक्रबीजं च मुसलीशर्करासमम् ॥ गवां क्षीरेण तत्पेयं पलार्द्धमनुपानकम् । तैलपक्वं च चटकं खादेद्भोजनपूर्वतः ॥ भोजनान्ते पिबेत् क्षीरमनस्रं रसतेऽबलाम् ॥ ४१ ॥

भाषा-पारा और गंधक समान भाग लेकर लाल कमलके पत्तोंके रसमें एक प्रहरतक खरल करे, पश्चात् पूर्व गंधकसे आधा गंधक और लेकर मिला देवे । तीन तीन रत्तीकी गोलियां बना लेवे । इसको बूरामें मिलाकर खाय, पश्चात् जड़सहित भांग, मुसली और बूराको समान भाग एकत्र दूधके साथ सेवन करे । इस औषधिको खाकर भोजनके पूर्वमें तैलमें भूना हुआ चिड़ेका मांस और भोजनके अंतमें दूध पीवे ॥ ४१ ॥

वसन्ततिलकरसः ।

हेम्नो भस्मकतोलकं द्विगुणितं लौहास्त्रयः पारदाश्चत्वारो निय-

तं तु वंगयुगलं चैकीकृतं मर्दयेत्। मुक्ताविद्रुमयो रसेन समता गोक्षुरवासेक्षुणां सर्वं वन्यकरीषकेण सुदृढं तप्तं पचेत्सप्तधा॥ कस्तूरीघनसारमर्दितरसः पश्चात्सुसिद्धो भवेत् कासश्वास-सपित्तवातकफजित्पांडुक्षयादीन् हरेत्॥ ४२॥

भाषा-सोनेकी भस्म दो तोले, लोहेकी भस्म तीन तोले, पारेकी भस्म चार तोले, वंगकी भस्म दो तोले, मोतीकी भस्म दो तोले और मूंगेकी भस्म दो तोले इनको एकत्र गोखुरू, अडूसा और ईखके रसमें खरल कर अरनेउपलोंकी आंचसे सात बार पकाकर पश्चात् कपूर और कस्तूरीके साथ खरल करे। इसका यथायोग्य अनुपानके साथ सेवन करनेसे यह खांसी, श्वास, पित्त, वात, कफ, पांडु और क्षयादि रोगोंको क्षय करे है॥ ४२॥

धात्रीलोहः।

धात्रीफलस्य चूर्णं तु भावयेत्त्रिफलाजले। एकविंशतिवाराणि शोधयेच्च पुनः पुनः॥ पलैकं भक्षयेन्नित्यं सिता क्षीरं पिबेदनु। कामयेत्स्त्रीशतं नित्यं धात्रीलोहप्रभावतः॥ ४३॥

भाषा-आमलोंके चूर्णको त्रिफलेके क्वाथमें इकीसवार भावना देकर पश्चात् चौथाई भाग लोहा मिला लेवे, इसको सहत और घृत तथा बूरामें मिलाकर चार तोले खाय, पश्चात् दूधमें मिलाकर पीवे तो नित्य १०० स्त्रियोंसे विषय करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है॥ ४३॥

चन्द्रोदयरसः।

पलं मृदुस्वर्णदलं रसेंद्रात् पलाष्टकं षोडश गन्धकस्य। शोणैः सुकार्पासभवप्रसूनैः सर्वं विमर्द्याथ कुमारिकाद्भिः॥ तत्काचकुम्भे निहितं प्रगाढे मृत्कर्पटैस्तद्दिवसत्रयं च। पचेत्क्रमाग्नौ सिकताख्ययंत्रे ततो रसः पल्लवरागरम्यः॥ संगृह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूररजस्तथैव। जातीफलं सोषणमिन्द्रपुष्पं कस्तूरिकाया इह शाण एकः॥ चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य माषो भुक्तो हि वल्लीदलमध्यवर्ती। मदोन्मदानां प्रमदाशतानां गर्वादिकत्वं श्लथयत्यवश्यम्॥ ४४॥

भाषा-नरम सोनेके पत्र ४ तोले, शुद्ध पारा ८ पल और शुद्ध गंधक १६ पल तीनोंको एकत्र पीसकर नरमवाडीके रसमें और घीकारके रसमें खरल करके सुखा लेवे। फिर आतशी सीसीमें भर ऊपरसे मिट्टी चढाकर धूपमें सुखा लेवे, पश्चात् वालुकायंत्रमें रखकर तीन दिन क्रमसे मंद, मध्य और तेज अग्नि देवे, तो यह रस लालवर्ण हो जाता है। यह चन्द्रोदय रस चार तोले, भीमसेनी कपूर चार पल, जायफल, मिरच, लौंग और कस्तूरी प्रत्येक चार चार मासे इनको एकत्र पीसकर एक मासा पानमें रखकर खाय, इसके प्रभावसे मदोन्मत्त सैकडों स्त्रियोंके गर्वको इकला मनुष्य दूर कर देता है तथा सर्व प्रकारके वलीपलितादिरोग दूर होते हैं॥४४॥

शृंगाराभ्रकः ।

शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं द्विपलपरिमितं शाणमानं यदन्यत् कर्पूरं जातिकोषं सजलमिभकणा तेजपत्रं लवंगम् । मांसी तालीशचोचं गजकुसुमगदं धातकी चेति तुल्यं पथ्या धात्री बिभीतं त्रिकटु च पृथक् त्वर्द्धशाणं द्विशाणम् ॥ एला जातीफलाख्यं क्षितितलविधिना शुद्धगन्धाश्मतोलं तोलार्द्धं पारदं च प्रतिपदनिहतं पिष्टमेकत्र मिश्रम् । पानीयेनैव कार्य्याः परिणतचणकाः खिन्नतुल्याश्च वट्यः प्रातः खादेच्चतस्रस्तदनु च कियच्छृंगवेरं सपर्णम् ॥ पानीयं शीतमन्ते ध्रुवमपहरति क्षिप्रमादौ विकारान् दीर्घायुः काममूर्तिर्जितवलिपलितो मानवोऽस्य प्रसादात् ॥ ४५ ॥

भाषा-शुद्ध कृष्णाभ्रकका चूर्ण दो पल, कपूर, जावित्री, सुगंधवाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, बालछड, तालीशपत्र, दालचीनी, नागकेशर, कूठ और धायके फूल प्रत्येक चार चार मासे, हरड, बहेडा, आमला, सोंठ, मिरच और पीपल प्रत्येकका चूर्ण दो दो मासे, इलायची और जायफल प्रत्येकका चूर्ण आठ २ मासे, शुद्ध गंधक एक तोला और शुद्ध पारा आधा तोला सबोंको एकत्र पीसकर पानीमें भीजे हुए चनेकी बराबर गोली बना लवे। प्रतिदिन प्रभातके समय एक गोली खाय पश्चात् अदरख और पानको खाय तथा जल पीवे। इसके प्रसादसे कास, यक्ष्मा, शोथादि सर्व प्रकारके रोग नष्ट होकर शरीरकी कांति, लावण्यता, पुष्टि और बलवीर्यादिकी वृद्धि होती है ॥ ४५ ॥

अथ स्तम्भनप्रयोगाः ।

जातीफलं लवंगं च जातीपत्रं सकुंकुमम् । सूक्ष्मैला चाहिफेनं च *त्वाकारकरभं तथा ॥ प्रत्येकं कर्षमात्राणि कर्पूरं शाणमात्रकम् । नागवल्लीदलरसैर्वटी चणकसन्निभा ॥ वीर्य्यसंस्तम्भनी ज्ञेया बलवर्णाग्निदीपनी । आफिंगजातीफलयोः प्रत्येकं रक्तिकात्रयम् ॥ कर्पूरस्य च रक्त्येका सतच्छदसुमस्य च । पंचरक्तिप्रमाणं तु ग्राह्यमिंद्राशनस्य च ॥ माषकं च चतुर्ग्राह्यं मधुना लेह उत्तमः । धार्य्यं कदापि नो वीर्य्यं रमेत् स्त्रीणां शतानि च ॥ मेदसा क्षौद्रयुक्तेन वराहस्य प्रलेपितम् । सम्यङ्गलिंगं रतान्तेऽपि स्तब्धतां च न मुंचति ॥ सिद्धं कुसुम्भतैलं भूमिलताचूर्णमिश्रितं कुरुते । चरणाभ्यंगे पुंसां बीजस्तम्भं दृढं लिंगम् ॥ ४६ ॥

भाषा–जायफल, लौंग, जावित्री, केशर, छोटी इलायची, अफीम और अकरकरा प्रत्येक एक एक तोला एवं भीमसेनी कपूर तीन मासे लेवे, सबोंको एकत्र नागरपानोंके रसमें खरल करके चनेकी बराबर गोलियां बना लेवे । एक गोली खाय और ऊपरसे दूध पीवे पश्चात् मैथुन करे तो वीर्य्यस्तम्भन होता है तथा वटी बल और वर्णको करे है एवं अग्निको दीपन करे है । अफीम और जायफल प्रत्येक तीन तीन रत्ती, कपूर एक रत्ती, सतवनके फूल पांच रत्ती और भांग चार मासे लेवे इन सबोंको एकत्र पीसकर सहतमें मिलाकर गोली बना लेवे । जबतक गोलीको मुखमें धारण करे रहेगा तबतक वीर्य्य नहीं छूटेगा । चाहे सौ स्त्रियोंसेभी रमण करे । सूकरकी चरबीको सहतके साथ मिलाकर लिंगपर लेप करके मैथुन करनेसे वीर्य्यस्तम्भन होता है तथा मैथुनान्तमें लिंग नहीं बैठता । कसुमके तेलमें वनककोडेके चूर्णको (या केंचुवेके चूर्णको) पकाकर दोनों पांवोंमें मलनेसे मनुष्योंका वीर्य्यस्तम्भन और लिंग दृढ होता है ॥ ४६ ॥

आकारकरभचूर्णादिवटी ।

आकारकरभः शुंठी लवंगं कुंकुमं कणा । जातीफलं जातिपत्रं चन्दनं कार्षिकं पृथक्॥चूर्णयेदहिफेनं च तत्र दद्यात्पलोन्मितम् । सर्वमेकीकृतं माषमात्रं क्षौद्रेण भक्षयेत् ॥ शुक्रस्तम्भकरं पुंसामिह मानन्दकारकम् । नारीणां प्रीतिजननं सेवेत निशि

कामुकः ॥ जातीफलार्ककरहाटलवंगशुंठीकंकोलकुंकुमकणा-हरिचंदनानि । एतैः समानमहिफेनमनेन तुल्यां श्वेतां निधाय मधुना वटिकां विदध्यात् ॥ मासद्वयोन्मितमिमं निशि भक्षयित्वा मृष्टं पयस्तदनु माहिषमाशु पीत्वा । कुर्वंति कामुकजना न तु विंदुपातं चेतांसि चापि चकितानि कलावतीनाम् ॥ ४७ ॥

भाषा—अकरकरा, सोंठ, लौंग, केसर, पीपल, जायफल, जावित्री और चन्दन प्रत्येक एक एक तोला लेकर चूर्ण कर ले, फिर इस चूर्णको चार तोले अफीममें मिलाकर एक एक मासेकी गोली बना लेवे । एक गोली सहतके साथ खाकर मैथुन करे । इससे वीर्य्यस्तम्भन होता है तथा कामी और कामिनी दोनोंको आनंद होता है । इसको रात्रिमें सेवन करे । जायफल, अकरकरा, लौंग, सोंठ, कंकोल, केशर, पीपल और हरिचंदन इन सबोंको चूर्ण समान भाग और सबोंकी बराबर शुद्ध अफीम लेवे, सबोंको एकत्र मिलाकर मिश्री और सहतके योगसे दो दो मासेकी गोली बना लेवे । रात्रिके समय एक गोली खाय और ऊपरसे मिश्री मिला भैंसका दूध पीवे । इससे कामीपुरुषका वीर्य्यस्तम्भन होता है तथा कामिनी स्त्रीका चित्त चकित हो जाता है ॥ ४७ ॥

स्तम्भनवटिका ।

समुद्रशोषबीजानि भागैकं धूर्त्तबीजकम् । भागत्रयं जातिपत्री भागमेकं च तत्फलम्॥खुरासानी यवानी च भागत्रयसमन्विता। भागार्द्धमहिफेनं च महिषीक्षीरशोधितम् ॥ विजयाखसफलकाथैर्दशवारं विभावयेत् । धत्तूरबीजतैलेन मर्दयेत्तदनन्तरम् ॥ बदरास्थिप्रमाणेन वटिकाः संप्रकल्पयेत् । मदनानन्दजननी वीर्य्यस्तम्भकरी परम्॥उन्मत्तानां नर्त्तकीनामतिगर्वहरा कलौ । भागैको मृगनाभिश्च प्रत्येकं कुंकुमं तथा ॥ जातीफलं लवंगं च प्रत्येकं भागयुग्मकम् । चतुर्भागाहिफेनं च विजयाभागयुग्मकम् ॥ भक्षयेन्मधुना सार्द्धं रमते कामिनीशतम् । चणकाभा वटी कार्य्या वीर्य्यस्तम्भकरी मता ॥ ४८ ॥

भाषा-समुद्रशोषके बीज एक भाग, धतूरेके बीज एक भाग, जावित्री तीन भाग, जायफल एक भाग, खुरासानी अजवायन तीन भाग और भैंसके दूधमें शुद्ध की हुई अफीम आधा भाग लेवे। सबोंको एकत्र पीसकर भांग और खसखसके काथकी दश भावना देवे फिर धतूरेके बीजोंके तेलमें खरल करके बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियां बना लेवे। इनको सेवन करनेसे अत्यन्त मदनका आनंद बढ़ता है तथा वीर्य्यस्तम्भन होता है। एवं मदोन्मत्त और कामातुर स्त्रियोंके गर्वको दूर करे है। कस्तूरी एक भाग, केशर एक भाग, जायफल दो भाग, लौंग दो भाग, अफीम चार भाग और भांग दो भाग लेवे, सबोंको एकत्र पीसकर चनेकी बराबर गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली सहतके साथ सेवन करे तो अत्यंत कामदेव बढ़ता है तथा अनेक स्त्रियोंके साथ मैथुन करनेसेभी वीर्य्य स्खलित नहीं होता ॥ ४८ ॥

सिन्दूरयोगः।

सिन्दूरं कनकबीजं विजयाक्षुरबीजकैः। जातीफलं जातिपत्री कटुशिग्रुमफेनकम् ॥ समुद्रशोषसंयुक्तं लवंगं च तथैव च। भावयेत् विजयाक्वाथैश्छायाशुष्कां वटीं कृताम् ॥ खादेच्च रक्तिकां नित्यं शुक्रस्तम्भः प्रजायते ॥ ४९ ॥

भाषा-रससिंदूर, काले धतूरेके बीज, भांगके बीज, तालमखाना, जायफल, जावित्री, कड़वे सहजनेकी छाल, अफीम, समुद्रशोष और लौंग इनको एकत्र पीसकर भांगके काथमें भावना देकर एक एक रत्तीकी गोली बनाकर छायामें सुखा देवे। नित्य एक गोली खाकर मैथुन करे तो वीर्य्य अत्यंत स्तम्भन हो जाता है ॥ ४९ ॥

अब्धिशोषादियोगः।

अब्धिशोषं च सिद्धार्थाश्चतुर्वल्लमितान् पृथक् । अर्द्धशिष्टं च तद् दुग्धं सायंकाले पिबेन्नरः ॥ बिंदुपातेन कुरुते वाजीकरणमुत्तमम् । करवीरजटालेपं यः करोति नरो मणौ ॥ वीर्य्यस्तम्भं स लभते कर्णाटीसुरतेष्वपि । अहिफेनं दुग्धशुद्धं रक्तिकात्रितयोन्मितम् ॥ बिन्दुवेगं ध्रुवं धत्ते सितया निशि भक्षितम् ॥ ५० ॥

भाषा-समुद्रशोष और सफेद सरसों प्रत्येक एक एक मासा लेकर भैंसके दूधमें पकावे। जब पकते २ दूध गाढा होकर आधा शेष रह जाय तो उतार लेवे। इसको सायंकाल पीकर विषय करे तो वीर्य्यस्तम्भन होता है। यह उत्तम वाजीकरण है।

कनेरकी छालको जलमें पीसकर सुपारीको बचाकर लिंगपर लेप करे पश्चात् धोकर विषय करे तो अत्यंत वीर्य्यस्तम्भन होता है। अफीमको दूधमें शुद्ध करके रात्रिमें तीन रत्ती प्रमाण खावे और ऊपरसे दूध पीवे पश्चात् मैथुन करे तो अत्यंत वीर्य्य-स्तम्भन होता है ॥ ५० ॥

रेतःस्तम्भकपारदः।

शुद्धं सूतमिषुप्रतोलकमितं गंधं तथा शुद्धिमत् पंचाक्षं परिगृह्य संयुतमुखां शुक्तिं समुद्धाह्य ताम्। तत्कीटं परिहृत्य शुक्तिजठरादतः क्षिपेद्गंधकं प्रोक्तस्यार्धमथांतरे विनिहितं सूतं समस्तं ततः ॥ सूतस्योपरि शेषगंधकरजः संक्षिप्य तन्मध्यगं सूतं शुक्तिकधान्यतोपरि गयासंमुद्य मृद्वस्त्रकैः। तां शुक्तिं परिशोष्य सूर्य्यकिरणात्संदीयतेग्निस्तुषैर्धान्यानां गजसंज्ञके वरपुटे तत्स्वांगसंशीतलम्॥ संचूर्ण्याशुकगालितं किल भवेत् गुञ्जोन्मितं पुष्टिकृद्रेतस्तम्भनकृत्पयोनु च पिबेत्सायं सितासंयुतम् ॥ ५१ ॥

भाषा-शुद्ध पारा ५ तोले और शुद्ध गंधक ५ तोले लेवे। प्रथम गंधकका चूर्ण करके कीडेरहित मुखमूंदी सीपमें आधा चूर्ण भर देवे, फिर उसमें पारा भरकर ऊपरसे सब गंधकका चूर्ण भरकर उस सीपके ऊपर कपरोटी करे। फिर उसको धूपमें सुखाकर धान्यके तुषोंके गजपुटमें रखकर फूंक देवे। जब स्वयं शीतल हो जाय तब निकालकर पीस लेवे, फिर बारीक कपडेमें छान लेवे। प्रतिदिन एक रत्ती प्रमाण खाय। यह अत्यन्त पुष्टिको करे है और वीर्य्यको स्तम्भन करे है। उसपर संध्यासमय मिश्री मिला दूध पीवे ॥ ५१ ॥

विजयाघृतम्।

गोदुग्धे विजयाकल्कं संसिद्धं गोघृतं नवम्। रतिवर्धनकूष्माण्ड-खण्डादौ तद्विनिःक्षिपेत् ॥ नातः परतरं वृष्यं शुक्रस्तम्भकरं भवेत् ॥ ५२ ॥

भाषा-भांगको गायके दूधमें पीसकर घी मिलाकर पकावे जब अच्छे प्रकारसे घृत सिद्ध हो जाय तब उसमें पेठेके टुकडे डालकर पकावे। इसकी समान वृष्य और वीर्य्यस्तम्भक दूसरी औषधि नहीं है ॥ ५२ ॥

वीर्य्यस्तम्भनयोगः।

सदहिफेनविमर्दितपारदे कनकबीजरसेन विमर्दिते। समसिताविजये यदि भक्षते न रजनी न दिवा न दिवाकरः॥खसफलशुंठीकाथः षोडशशेषेण गुडेन निशि पीतः। कुरुते रतेन पुंसो रेतःपतनं विनाम्लेन॥ खसतिलपलमेकं शुंठीकर्षं सितापलद्वन्द्वम्। एतच्चूर्णं पयसा पीतो रयं ध्रुवं धत्ते॥ कर्पूरं टंकणं सूतं तुल्यं मुनिरसं मधु। संमर्द्य लेपयेल्लिंगं स्थित्वा यामं तथैव च॥ ततः प्रक्षाल्य रमयेद्वनितानां शतं सुखम्। वीर्य्यस्तम्भकरं पुंसां सम्यङ्नागार्जुनोदितम्॥ ९३॥

भाषा—अफीम और पारेको धतूरेके फलोंके रसमें खरल करके एक एक रत्तीकी गोलियां बना लेवे। प्रतिदिन एक गोली चीनी और भांगके साथ सेवन करे तो वीर्य्य काष्ठकी समान कठिन हो जाता है। पोस्त और सोंठका षोडशांश काथ बनाकर उसमें गुड मिलाकर रात्रिमें पीकर विषय करे तो जबतक खटाई न खावेगा तबतक वीर्य्य स्खलित नहीं होगा। खसखस और तिल प्रत्येक चार चार तोले, सोंठ एक तोला और मिश्री आठ तोले इन सबोंको एकत्र पीसकर दूधके साथ पान करे। इससे वीर्य्यस्तम्भन होता है। कपूर, सुहागा और पारा इनको एकत्र अगस्तियाके रसमें खरल करके सहत मिलाकर लिंगपर लेप करे पश्चात् एक प्रहरके बाद धो डाले फिर मैथुन करे तो सैकडों स्त्रियोंसे विषय करनेसेभी वीर्य्य स्खलित नहीं होता है॥ ९३॥

सौगतगुटिका।

पारदगंधकचम्पककेसरसुरकुंकुमकरहाटाः। अजमोदांबुधिशोषो जातीपत्रं च जातिफलम्॥ प्रत्येकं भागैकं भागद्वितयं च शुद्धमहिफेनम्। तेन बदरसदृशगुटिका कार्य्या मधुनाथ भक्षयेदेकाम्॥ यामेतीते ललनां सविधे स्थित्वा यवानिकाकर्षम्। तैलाद्रं भुंजीयादनुपानं चैतदेतस्य॥ लिंगं कठिनतरं स्याद्वीर्य्यं संस्तम्भयेद्यामम्। एषा सौगतगुटिका सत्यं सत्यं च शुक्ररोधकरी॥ ९४॥

भाषा-पारा, गंधक, नागकेशर, लौंग, केशर, अकरकरा, अजमोद, समुद्रशोषके बीज, जावित्री और जायफल प्रत्येक एक एक भाग और अफीम दो भाग लेवे। सबोंको एकत्र खरल करके सहतमें मिलाकर बेरकी गुठलीकी समान गोलियां बना लेवे। एक गोली सहतके साथ खाय, पश्चात् एक प्रहरके बाद तिलके तेलके साथ एक तोला प्रमाण अजवायनको भक्षण करे। इस प्रकार करनेसे लिंग कठिन और बलवान् होकर वीर्यस्तम्भन होता है। यह सौगतगुटिका निश्चय वीर्य्यको स्तंभन करती है ॥ ५४ ॥

अन्ययोगः ।

टंकं पतंगचूर्णस्य जातीपत्रस्य टंकणम् । अर्द्धं वाप्यथ वा सर्वं चूर्णं खादेद्यथाबलम् ॥ पिबेदनु पयः स्वल्पं वीर्य्यस्तम्भं करोति हि । महायोगोऽयमुदितः शुक्रस्तम्भकरः परः ॥ ५५ ॥

भाषा-पतंगका चूर्ण ४ मासे और जावित्रीका चूर्ण ४ मासे इन दोनोंको एकत्र मिलाकर अग्निका बलाबल विचारकर इसमेंसे आधा या सब शक्तिके प्रमाण भक्षण करे और ऊपरसे कुछ थोडासा भैंसका दूध पीवे। यह अत्यंत शुक्रको स्तम्भन करे है ॥ ५५ ॥

अथ स्थूलीकरणम् ।

लघुसूक्ष्मेन लिंगेन नैव तुष्यंति योषितः। अतस्तत्प्रीतये वक्ष्ये स्थूलीकरणमुत्तमम् ॥ सकुष्ठमातंगबलावलानां वचाश्वगंधागजपिप्पलीनाम् । तुरंगशत्रोर्नवनीतयोगाल्लेपेन लिंगं मुशलत्वमेति ॥ क्षौद्रं क्षुद्रातगरमरिचैः पिप्पलीसैंधवाभ्यां प्रत्यक्पुष्पीयवतिलगुडश्वेतसिद्धार्थमाषैः । श्लक्ष्णीभूतैर्भवति मिलितं वाजिगंधासनाथैः श्रोणिश्रोत्रस्तनयुगशिरःशेफसां वृद्धिकारी ॥ जातीरसशिलाकुष्ठव्योषटंकणचूर्णकैः । तिलतैलयुतैर्लेपाल्लिंगवृद्धिः प्रजायते ॥ कासीसतुरगगंधाशाबरगजपिप्पलीविपक्वेन । तैलेन यांति वृद्धिं स्तनकर्णवरांगलिंगानि॥ ५६ ॥

भाषा-छोटे और पतले लिंगसे मैथुनके समय स्त्रियें संतुष्ट नहीं होतीं इस कारण कामी पुरुषोंके आनंदके लिये लिंगस्थूलीकरण कहते हैं । कूठ, गंगेरन, खिरैंटी, वच, असगंध, गजपीपल और कनेरकी जड इनको एकत्र पीसकर नैनीघीमें मिलाकर लिंगपर लेप करनेसे लिंग मूसलकी समान स्थूल होता है । कटेरी,

काली मिरच, पीपल, सैंधानोन, चिरचिटेकी जड, केशर, जौ, तिल, गुड, सफेद सरसों, उडद और असगंध इनको एकत्र बारीक पीसकर सहतमें मिलाकर लेप करे । इससे कमर, कान, स्तन, शिर और लिंगकी वृद्धि होती है । चमेलीका रस, मैनशिल, कूठ, सोंठ, मिरच, पीपल और सुहागा इनको एकत्र पीसकर तिलके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे लिंग स्थूल होता है । हीराकसीस, असगंध, लोध और गजपीपल इनको तिलके तेलमें पकाकर लगानेसे स्तन, कान, योनि और लिंगकी वृद्धि होती है ॥ ५६ ॥

स्थूलीकरणलेपः ।

बृहतीसितसिद्धार्थकवच्यातुरगगंधकासहितैः । एभिः प्रलेपितं स्यात् पुरुषवरांगं हयस्येव ॥ महिषीनवनीतवचागजकृष्णाकुमवाजिगंधाभिः । लेपः श्रवणपयोधरध्वज उच्चैः स्थूलकृद्भवति ॥ घृतमधुयुक्तं तैलं बृहतीफलमात्मगुप्ता च । एभिर्वरांगवृद्धिः सप्तदिनं ताम्रभांडपर्युषितैः ॥ अश्वगंधापामार्गबृहतीसारिशालिलान् । कुटजस्य च बीजानि तथा वै राजसर्षपान् ॥ समभागानि कृत्वा तान् क्षीरेणाज्येन पेषयेत् । तं समुद्वर्त्तितं लिंगं तेनातिस्थूलतां व्रजेत् ॥ साज्यकुष्ठसमायुक्तं बृहतीफलमिश्रितम् । शतावरीमूलयुतमश्वगंधासमन्वितम् ॥ तिलतैलं च यत्नेन सम्यक् मृद्वग्निना पचेत् । तेन लिंगं समाभ्यक्तं यावदिच्छां प्रवर्त्तते॥क्षौद्रेण सह संपिष्टं पुण्डरीकस्य केशरम् । तानेव लेपितं यावत् तावत् लिंगं स्थिरं भवेत् ॥ संसाधितं दाडिमवल्कलैर्यत् क्षुद्राफलारुष्करचूर्णयुक्तैः । अभ्यंजनात्सर्षपसम्भवं यत् तैलं नृणां लिंगविवर्द्धनं स्यात्॥ टंकणं च महाराष्ट्री जम्बूशूकरतैलकम् । मधुना सह लेपेन लिंगं स्यात मुसलोपमम् ॥ माहिषीनवनीतं च मुसलीचूर्णमिश्रितम् । धान्यराशिस्थितं भांडे सप्ताहाच्च समुद्धरेत् ॥ तेन प्रलेपयेल्लिंगं यामैकाद्वर्त्तते ध्रुवम् । मुसली सतिला भक्ष्या लिंगवृद्धिकरी मता ॥ मांसी च त्वक्फलं कुष्ठं अश्वगंधा शतावरी । तैलपक्वप्रलेपेन लिंगस्थौल्यकरं

ध्रुवम् ॥ कृष्णापराजितामूलं पुष्ये खदिरकीलकैः । कृष्णसूत्रैः कटिं बध्वा ऊर्ध्वलिंगं करोति सः ॥ तिलसर्षपयोश्चूर्णं सप्तपर्णस्य भस्मना । जलशूकं क्रमाल्लेपो लिंगं स्यान्मुसलोपमम् ॥ यष्टीमधुकचूर्णं च शूकं सर्षपमेव च । बृहतीफलतोयेन लिंपयेल्लिंगवृद्धये ॥ निर्मलं लिंगमालिप्य गोमयेन पुनः पुनः । सिक्तं जलेन शीतेन वर्द्धते यावदिच्छति ॥ अश्वगंधा वचा कुष्ठं बृहती श्वेतसर्षपम् । एतेन वर्द्धते लिंगं नारीणां च पयोधरौ ॥ तिलसर्षपयोश्चूर्णं सप्तपर्णस्य भस्म च । घृतयुक् सूर्यसंतप्तं लिंगवृद्धिकरं किल ॥ मांसीपत्रं सकर्पूरं संलिप्य मधुना सह । एतेन लिंगवृद्धिः स्यात् स्त्रीणां चापि महारतिः ॥ बृहतीफलतोयं च चूर्णं च लवणस्य च । जलशूकं समं लिंपेल्लिंगं स्यान्मुसलोपमम् ॥ तैलेन सार्षपैः सार्धमालिंपेद्दाडिमत्वचम् । लिंगकर्णस्तनानां च वृद्धिहेतुरिदं किल ॥ गोरोचनाश्रकमदसमांशं मधुना सह । पेषयित्वा समं लिंपेल्लिंगं मुसलवद्भवेत् ॥ ८७ ॥

भाषा–कटाई, सफेद सरसों, वच और असगंध इनको एकत्र पीसकर लिंगपर लेप करनेसे घोड़ेके लिंगकी समान लिंग हो जाता है । वच, गजपीपल, कूठ और असगंध इनको एकत्र पीसकर भैंसके नैनी घीमें मिलाकर लेप करनेसे कान, स्तन और लिंग बढता है और मोटा होता है । घी, सहत, तिलका तेल, कटाईके फल और कौंछके बीज इनको एकत्र पकाकर तांबेके वासनमें भरके सात दिनतक रखा रहने देवे, फिर इसका लिंगपर लेप करनेसे लिंग अत्यंत स्थूल हो जाता है । असगंध, चिरचिटा, कटाई, अनंतमूल, काले तिल, इन्द्रजौ और राई इन सबोंको समान भाग लेकर दूध और घीमें पीसकर लिंगपर लेप करनेसे लिंग अत्यंत स्थूल होता है । घी, कूठ, कटाईके फल, शतावर, असगंध और तिलका तेल इनको समान भाग लेकर मंद मंद अग्निसे पकाकर तेलको सिद्ध करे । इस तेलका लेप करनेसे इच्छानुसार लिंग बढता है । कमलकी केसर (अन्यमते पुंडरीकवृक्षकी केसर) को सहतमें पीसकर लिंगपर लेप करनेसे जबतक लेपको न धोवेगा तबतक लिंग खडा रहेगा । अनारकी छाल, कटेरीके फल और मिलावेका चूर्ण इनको सरसोंके तेलमें पकाकर लिंगपर लेप करनेसे लिंग स्थूल होता है । सुहागा,

...टी, गीदड या सूअरका तेल और सहत इनको एकत्र करके लेप करनेसे लिंग मूसलकी समान होता है। काली मुसलीके चूर्णको भैंसके नैनी घीमें मिलाकर बासनमें करके धानोंके ढेरमें गाड देवे, इस प्रकार सात दिनतक गडा रहने देवे फिर निकालकर लेप करे तो एक प्रहरमें लिंग स्थूल हो जाता है। काले तिल और काली मुसलीके चूर्णको चीनीमें मिलाकर दूधके साथ सेवन करनेसे लिंग बढता है। बालछड, बहेडा, कूठ, असगंधु और शतावर इनको तिलके तेलमें पकाकर लेप ...नेसे लिंग स्थूल होता है। पुष्यनक्षत्रमें खैरकी कीलसे काली अपराजिताकी जडको उखाडकर काले डोरेसे कमरमें बांधनेसे सदैव लिंग खडा रहता है कदापि नहीं बैठता है। तिल और सरसोंके चूर्णको सतवनकी भस्म और सिवारमें मिलाकर लेप करनेसे लिंग मूसलकी समान मोटा हो जाता है। मुलहटीका चूर्ण, सिवार और सरसों इनको कटाईके फलके रसमें खरल करके लिंगपर लेप करनेसे लिंग स्थूल होता है। लिंगपर वारंवार गोबरका लेप करके वारंवार शीतल जलसे धो...ो जितना चाहो उतनाही बडा बडा हो जाता है। असगंध, वच, कूठ, कटाई ...सफेद सरसों इन सबोंको एकत्र पीसकर लेप करनेसे लिंग और स्त्रीके स्तन ...ते हैं। तिल और सरसोंके चूर्णको सतवनकी भस्मके साथ घीमें मिलाकर ...र्यकी धूपमें गरम करके लिंगपर लेप करनेसे लिंग बढता है। बालछड, तेजपात ...और कपूरको सहतमें पीसकर लिंगपर लेप करनेसे लिंग अत्यन्त बढता है तथा स्त्रियोंमें महा आनन्द उत्पन्न होता है। सैंधानोन और सिवारको समान भाग लेकर कटाईके फलोंके रसमें खरल करके लिंगपर लेप करनेसे लिंग मूसलकी समान हो जाता है। अनारकी छालके चूर्णको तेलमें मिलाकर लेप करनेसे लिंग, कर्ण और स्तन बढते हैं। गोरोचन, अभ्रककी भस्म और कस्तूरी इन तीनोंको समान भाग लेकर सहतमें पीसकर लेप करनेसे लिंग मूसलकी समान स्थूल होता है ॥ ५७ ॥

वज्रवल्लीलेपः।

किमत्र चित्रं हि वज्रवल्लीवचाश्वगंधाजलशूकचूर्णम्। हेमप्रकाशं बृहतीफलं च क्रमेण कुर्य्यान्मुसलप्रमाणम् ॥ भल्लातकं वालकमम्बु जिन्याः पत्राणि कृष्णां लवणं च तुल्यम्। दग्धा पटांतः स्वरसं निदध्यात् पक्वस्य तस्मिन् बृहतीफलस्य ॥ शैवालचूर्णेन युतं सुगाढमाज्येन यत् प्रतिमुहुर्मृदितं महिष्याः। तल्लिंगमुन्मदननिष्ठुरदाक्षिणात्यकांतारतोत्सवसहस्रसहत्वमेति ॥ ५८ ॥

भाषा–तिधारी कांडवेल (तिधारी थूहर); वच, असगंध, सिवार, कनक

धतूरेके बीज और कटाईके फल इनको एकत्र पीसकर लेप करनेसे लिंग मूसल समान मोटा होता है । भिलावा, सुगंधवाला, कमलिनीके पत्ते (पुरैनपात) काला नोन इनके पुटके द्वारा भस्म कर लेवे, फिर उस राखको कटेरीके पके फल रसमें और सिवारके चूर्णमें तथा घीमें मिला लेवे । प्रथम लिंगपर भैंसके गोबर लेप करके धो डाले फिर उक्त औषधिका लेप करे । इससे लिंग क्रम से अत्यन्त स्थूल हो जाता है तथा अनेक स्त्रियोंके साथ विषय करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ ९८ ॥

भल्लातकभस्मलेपः ।

भल्लातकास्थिजलशूकमथाब्जपत्रं अंतर्विदह्य मतिमान्सह सैन्धवेन । एतद्विरूढबृहतीफलतोयपिष्टमालेपयेन्महिषविड्विमलीकृतेंगे॥स्थूलं महत्खरतुरंगमतुल्यमाशु शेफं करोत्यभिमतं न हि संशयोस्ति । शैवालसैन्धवसरोरुहिणीदलानि भल्लातकानि च फलानि च कंटकार्य्याः ॥ हैयंगवीनमपि माहिषमश्वगंधाकंदः सुधीः प्रनिदधीत दिनानि सप्त। तैरुद्धतैस्तदनु यन्महिषीमलेन चोद्वर्त्य लिंगमुपलिप्य तमादरेण ॥ तस्याग्रतः खरतुरंगमतंगजानां लिंगानि लाघवपदं परमं प्रयाति । उन्मत्तकस्वरसपेषितवाजिगंधाकंदोपगूढमहिषीनवनीतमादो ॥ धार्यं फले वृषभवाहनवल्लभस्य निःशेषबीजरहिते कतिचिद्दिनानि । उद्वर्तितं तदनु यन्महिषीपुरीषैर्धत्तूरकाम्बुनवनीतविलेपितं च। तत्साधनं निधुवनप्रणयोद्धतानां नारीवरांगदलनक्षमतां दधाति॥ भल्लातकबृहतीफलदाडिमफलकल्कसाधितं साधु । कटुतैलमर्दनवशात्कुरुते लिंगं हि वाजिलिंगाभम् ॥ अश्वगंधा वरी कुष्ठं मांसी सिंहीफलान्वितम् । चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत् ॥ स्तनलिंगकर्णपालीवर्द्धनं म्रक्षणादपि ॥ ९९ ॥

भाषा–भिलावेकी गिरी, सिवार, कमलिनीके पत्ते और सेंधानोन इन सबोंको एक हांडीमें भरके चूल्हेपर चढा नीचे आग जलाकर भस्म कर लेवे । इस भस्मको कटाईके फलोंके स्वरसमें मिला लेवे । प्रथम भैंसके गोबरको लिंगपर लेप कर

डाले पश्चात् इस औषधिको लगावे तो लिंग घोडे और गधेकी समान स्थूल होता है । सिवार, सैंधानोन, कमलिनीके पत्ते, भिलावेकी मज्जा, कटेरीके फल, हैयंगवीन (तत्कालका नैनीघी) और असगंध इन सबोंको एकत्र करके एक मट्टीके बासनमें भरके उस बासनको सात दिनतक पृथिवीमें गाड देवे, पश्चात् निकाल लेवे । प्रथम लिंगपर भैंसके गोबरका लेप करके धो डाले पश्चात् उक्त औषधिका लेप करे तो लिंग गधे घोडे और हाथीके लिंगकी समान कठिन और मोटा होता है । धतूरेके रसमें असगंधको पीसकर भैंसके नैनीघीमें मिलाकर बीजरहित धतूरेके फलमें भर देवे, कुछ दिनोंके बाद निकाल लेवे, प्रथम लिंगपर भैंसके गोबरका प कर धो डाले, फिर धतूरेके रसमें नैनीघी मिलाकर प्रलेप करे पश्चात् इस औषधिको लगावे तो लिंग बलवान् होता है और मैथुनके समय मदोन्मत्त स्त्रियोंके वेको दूर करे है । सरसोंका तेल ४ सेर, जल १६ सेर और कल्कके लिये भिलावे, कटाईके फल और अनार ये सब एक सेर, यथाविधिसे तेलको पकाकर लिंगपर मर्दन करनेसे लिंग अश्वकी समान होता है । तिलका तेल ४ सेर, दूध १६ सेर तथा कल्कके लिये असगंध, शतावर, कूट, बालछड और बृहतीके फल सब एक सेर यथाविधिसे तेलको सिद्ध कर मर्दन करनेसे स्तन, लिंग और कर्णपाली बढती है ॥ ५९ ॥

अथ द्रावणमाह ।

मनःशिला वचा कुष्ठं सैन्धवं च पुनस्तथा । मधुना लेपयेल्लिंगं द्रावयेत्कामिनीजनम् ॥ टंकणं मधुना युक्तं सुपिष्टं धारयेद्बुधः । तेन लेपेन गुह्यस्य नारीणां द्रावणं ध्रुवम् ॥ मूलं च काकमाच्याश्च पुष्येणोद्धृत्य यत्नतः । ताम्बूलेन समं स्त्रीणां द्रावणं भक्षणादपि ॥ शैलजं कटुतैलं च नवनीतं च माहिषम् । एतेन मर्दयेल्लिंगं मर्दनादश्ववद्भवेत् ॥ तथा पुनश्चाश्वगंधा जटामांसी कुष्ठं चैव । माहिषनवनीतं च लेपाद्ध्वजविवर्द्धनम् ॥ ६० ॥

भाषा-मैनशिल, वच, कूट और सैंधेनोनको एकत्र सहतमें पीसकर लिंगपर लेप करके मैथुन करनेसे शीघ्रही स्त्रीकी योनि द्रावित होती है । सुहागेको सहतमें पीसकर मुखमें रख लेवे और कुछ थोडासा स्त्रियोंके गुप्त देशमें प्रलेप कर देवे तो मैथुन करतेही स्त्रियोंकी योनि द्रावित हो जाती है । मकोयकी जडको पुष्यनक्षत्रमें उखाडकर पानके साथ स्त्रियोंको खिलावे तो निश्चय स्त्रियोंकी

योनि द्रावित हो जाती है । भूरिछरीला, कडवा तेल और भैंसके नैनीघीको लिंगपर मलनेसे अथवा असगंध, बालछड, कूठ और भैंसका माखन इनको एकत्र पीसकर लिंगपर प्रलेप करनेसे लिंग घोडेकी समान हो जाता है ॥ ६० ॥

तत्रादौ वशीकरणम् ।

माहिषं नवनीतं च कुष्ठं च मधुयष्टिका । सौभाग्यं भगलेपेन दासवच्च भवेत्पतिः॥ निम्बकाष्ठस्य धूपेन धूपयित्वा भगं स्त्रियः। सुभगाः स्युः पतिस्तासां दासवद्व्रजते ध्रुवम् ॥ सत्यं स्वार्त्तव-शोणितभावितगोरोचनारचिततिलका । नारी यं यं पश्यति पुरुषं तं तं वशीकुरुते ॥ यदि सहदेवामूलं ग्रहणे संगृह्य रोचना-पिष्टम् । तत्कृततिलका नारी गुरुकुलमपि विकलतां नयति ॥ चतुर्दशीभूमिजवारयोगे विलुप्तसंपुष्पितसर्षपं यः । संपिष्ट हस्तौ परिलिप्य यस्याः संदर्शयेत्सा तदनु न जीवेत् ॥ रतिकाले निजं शुक्रं गृहीत्वा वामपाणिना । वामं कान्तापदं लिप्त्वा भवेत्तस्याः प्रियो ध्रुवम् ॥ गोरोचना सवीर्य्यं च मूलं दण्डोत्पलस्य च । ताम्बूलं भक्षिते देयं प्रमदारसकारकम् ॥ कर्णचक्षुर्मलं चैव तथा दन्तमलं पुनः। स्वरेतसा तु संपिष्टं भक्षणाद्वनितावशम् ॥ गोरोचना प्रियंगुश्च कुनटी नागकेशरम् । पुण्ये चाञ्जनयोगेन नरनारीवशं भवेत् ॥ ६१ ॥

भाषा-भैंसका नैनी घी, कूठ और मुलहठी इनको एकत्र पीसकर योनिपर लेप करके अथवा नीमकी लकडियोंकी भगमें धूप देकर पतिके साथ विषय करे तो इससे निश्चय स्त्रीके वशमें पति होता है । स्त्री अपने आर्त्तवमें गोरोचनको भावना देकर मस्तकपर तिलक लगाकर जिस जिस मनुष्यको देखे वही वही मनुष्य निश्चय वशीभूत हो जाता है । सहदेईकी जडको ग्रहणके समय उखाड गोरोचनके साथ पीसकर उससे कपालपर तिलक लगानेसे सम्पूर्ण मनुष्य वशमें हो जाते हैं । मंगलवारी चौदशके दिन फूली हुई सरसोंको पीस लेप करके जिस स्त्रीको देखे वह स्त्री निश्चय उस मनुष्यके वशमें हो जाती है । मैथुनके समय पति अपने वीर्य्यके बांये हाथमें लेकर स्त्रीके बांये पैरमें लेपकर देवे तो वह स्त्री निश्चय पतिपरायण

हो जाती है। गोरोचन, अपना वीर्य और दण्डोत्पलकी जड इनको एकत्र पीसकर पानमें रखकर स्त्रीको खानेको देवे तो निश्चय वशीभूत हो जाती है। कानका मैल, नेत्रका मैल और दांतोंका मैल वीर्यमें पीसकर जिस स्त्रीको खुलावे वह तत्काल वशमें होती है। गोरोचन, फूलप्रियंगू, मैनशिल और नागकेशर इन सबोंको एकत्र पीसकर अंजन लगानेसे नर नारी दोनों वशीभूत हो जाते हैं ॥ ६१॥

अथ पुष्पनिवारणम्।

धात्र्यंजनामयाचूर्णं तोयपीतं रजो हरेत्। शेलुच्छदसिद्धपिष्टभक्षणं च तदर्थकृत् ॥ यावन्त्यबला चम्पकं वारिणा पिबति। न भवति कुसुमं तस्या नियतं तावन्ति वर्षाणि ॥ वेणुतरुबीजकल्कं कुरुते क्षारगुडयुतो मिलितः। अपगतकुसुमां कुरुते घनतुंगकुचामपि प्रमदाम् ॥ ६२ ॥

भाषा–आमलोंका चूर्ण, हरडका चूर्ण और रसौतका चूर्ण एकत्र जलके साथ पीनेसे अथवा लिहसोडेके पत्तोंमें पिट्टी मिलाकर भक्षण करे तो स्त्रियोंका रज बंद होता है। स्त्री जितने दिनोंतक चम्पाके फूलोंको पीसकर पीती है उतनेही वर्ष उनके पुष्प प्रकाशित नहीं होता है। वेणुवृक्षके बीजोंकी छालके क्षारको गुडके साथ भक्षण करे तो स्त्रियोंका पुष्प प्रकाशित होता है और दोनों स्तन पुष्ट होते हैं ॥ ६२ ॥

विविधयोगाः।

फलं कदम्बस्य समाक्षिकं च तुल्योदकेन त्रिदिनं सवृद्धा। स्नावावसाने नियमेन पीत्वा वंध्यामवश्यं कुरुते हठेन ॥ त्रैहायनं या गुडमत्ति नित्यं पलप्रमाणं वनितार्द्धमासम्। जीवांतने निश्चितमेति तस्या वंध्यात्वमुक्तं कविपुंगवेन ॥ गृंजनस्य च बीजानि तिलकारविके अपि। गुडेन भुक्तमेतत्तु गर्भं पातयति ध्रुवम् ॥ ६३ ॥

भाषा–कदंबके फलको सहत और तृतियेके पानीमें मिलाकर रजोधर्मके समय पीनेसे स्त्री अवश्य वंध्या होती है। प्रतिदिन तीनबार चार चार तोले गुड पन्द्रह दिन खाय तो स्त्री अवश्य वंध्या हो जाती है कदापि गर्भको नहीं धारण करती। गाजरके बीज, काले तिल और कलौंजी इनको गुडमें मिलाकर खावे तो गर्भ पतित हो जाता है ॥ ६३ ॥

संकोचनविधिः।

मोचरससूक्ष्मचूर्णं क्षिप्तं योनौ स्थितं प्रहरम्। शतवारं सूताया अपि योनिः सूक्ष्मरन्ध्रा स्यात् ॥ बब्बूलकुसुमं लोध्रं दाडिमीमूलवल्कलम्। चूर्णीकृत्य क्षिपेद्योनौ योनिसंकोचनं परम् ॥ माजूफलं च त्रिफला खदिरोन्मत्तनी तथा। पटपूतं च सौराष्ट्री पूगं चैव समं समम् ॥ जलेन गुटिकां कृत्वा योनौ स्थाप्या घटीद्वयम्। पिष्ट्वा गोपवधूदुग्धेनांगनास्तनलेपनम् ॥ कृत्वाप्नोति कुचौ स्तब्धौ चोन्नतौ पतितावपि ॥ हरितालभाग एको रालचूर्णं क्रमाद्विगुणम्। श्लक्ष्णचूर्णं कृत्वा जलेन लेपात्कचा न स्युः ॥ तालं रालाचूर्णमेकाद्विचतुर्भागमम्बुना पिष्टम्। अग्निवशात्पक्कमेतल्लेपो लोमान्क्षणाद्धतो न स्युः ॥ माजूफलं कणा नीली सैंधवैः सारनालकैः। पिष्टैः शिरोरुहा लिप्ताः श्यामवर्णा भवन्ति हि ॥ चूर्णं मुराकेशरकुष्ठकानां प्रातर्दिनांते परिलेढि या स्त्री। अथार्द्धमासेन मुखस्य वासः कर्पूरतुल्यो भवति प्रकामम् ॥ या कुष्ठचूर्णं मधुना घृतेन पिकाख्यबीजान्वितमत्ति नित्यम्। मासैकमात्रेण मुखं तदायं गंधायते केतकिपुष्पतुल्यम् ॥ ६४ ॥

भाषा–मोचरसको बारीक पीसकर योनिमें एक प्रहरतक रक्खे तो सौ ब प्रसूत हुई स्त्रीकी योनि छोटी हो जाती है। बबूलके फूल, लोध और अना छाल इनको एकत्र पीसकर पोटली बांधकर योनिमें रखे तो योनि बहुत सकु जाती है। माजूफल, त्रिफला, खैरसार, धायके फूल, फटकरी और सुपारी इ सबोंको समान भाग लेकर जलमें पीसकर गोली बना ले, इस गोलीको योनि धारण करनेसे योनि सकुच जाती है। अनन्तमूलको दूधमें पीसकर स्तनों लेप करे तो ढीले और गिरे हुए स्तन दृढ, कठिन और ऊंचे उठ आते हैं। ए भाग हरिताल और दो भाग राल दोनोंको एकत्र जलमें पीसकर लेप करनेसे ल गिर जाते हैं। हरिताल एक भाग, राल दो भाग और चूना चार भाग इन एकत्र जलमें पीसकर अग्निसे पकाकर लेप करनेसे बाल तत्काल गिर जाते हैं माजूफल, पीपल, नीमके पत्ते और सैंधानोन इनको कांजीमें पीसकर बालों

लगानेसे बाल तत्काल काले हो जाते हैं। कपूरकचरी, केशर और कूठ इनको एकत्र पीसकर सवेरे सामको पन्द्रह दिनतक खाय तो मुखमें कपूरकी समान सुगंध आने लगती है। कूठ और तालमखानेके चूर्णको घी सहतमें मिलाकर एक महीनेतक खाय तो मुखमें केतकीके फूलकी समान सुगंध आने लगती है ॥ ६४ ॥

इति वाजीकरणाधिकारः समाप्तः ।

इति
भाषाटीकासहितः
धन्वन्तरिः
समाप्तः ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण-मुंबई.

वैद्यकग्रन्थाः ।

५४९ हारीतसंहिता भाषाटीकासहित	३–०	०–८
५५० अष्टाङ्गहृदय (वाग्भट) भाषाटीका अत्युत्तम वैद्यकग्रन्थ सम्पूर्ण बडाक्षर	१०–०	१–०
५५१ तथा बारीकनया छापा	८–०	१–०
५५२ बृहन्निघण्टुरत्नाकर प्रथमभाग.	३–०	०–६
५५३ बृहन्निघण्टुरत्नाकर द्वितीयभाग	३–०	०–६
५५४ बृहन्निघण्टुरत्नाकर तृतीयभाग	३–८	०–८
५५५ बृहन्निघण्टुरत्नाकर चतुर्थभाग	२–८	०–५
५५६ बृहन्निघण्टुरत्नाकर पंचम भाग छपके तयार है	६–०	०–१०
५५७ बृहन्निघण्टुरत्नाकर छठा भाग तैयार है	५–०	०–१०
५५८ रसराजसुन्दर भाषाटीकासह	३–४	०–८
५५९ पथ्यापथ्यभाषाटीका....	०–१२	०–१॥
५६० शार्ङ्गधर निदान भाषाटीकासह पं० दत्तराम चौबे कृत	३–०	०–६
५६१ अमृतसागर कोशसहित हिन्दी भाषामें नवीन	२–८	०–८
५६२ तथा रफ़	२–४	०–६
५६३ अमृतसागर मारवाडी भाषा	२–०	०–६
५६४ चिकित्साखण्ड भाषाटीका प्रथमभाग	४–०	०–८
५६५ चिकित्साक्रमकल्पवल्ली संस्कृत काशिनाथकृत.	२–८	०–८
५६६ माधवनिदान भाषाटीका उत्तम	२–०	०–४
५६७ माधवनिदान ,, रफ	१–८	०–३
५६८ अंजननिदान भाषाटीका अन्वय सहित	०–८	०–१
५६९ वैद्यरहस्य भाषाटीकासह	२–०	०–५
५७० सूर्य्योचंद्रोदय भाषाटीका (व्यंजन बनानेका ग्रंथ)	१–८	०–४
५७१ चरकसंहिता मूल भाषाटीका	१०–०	०–०
५७२ संतानमंजरी भाषाटीका	०–२	०–॥
५७३ स्त्रीपुरुषसंजीवन भाषाटीका	०–८	०–१
५७४ पशुचिकित्सा रोगनिदान, दवासहित भाषामें	०–६	०–१
५७५ आजीर्णतिमिरभास्कर भाषाटीका	०–५	०–॥
५७७ वैद्यवल्लभ पद्योंमें	०–६	०–१
५७८ नाडीज्ञानप्रकाश भाषाटीका अतिसुलभ	०–२	०–॥
५७९ योगचिंतामणी बडी	१–०	०–४
५८० औषधीकल्पलता इसमें औषधियोंके कल्पविधीहै	०–८	०–१
५८१ भावप्रकाश भा० टी० अति उत्तम	८–०	१–०
५८२ वैद्यविनोद भाषाटीकासह अपूर्व ग्रन्थ है.	१–८	०–४
५८३ पाकरत्नाकर मथुराका	०–८	०–१
५८४ ज्वरतिमिरनाशक भाषाटीका	१–०	०–२
५८५ योगतरङ्गिणी बहोतही उत्तम	२–०	०–४
५८६ वीरसिंहावलोकन ज्योतिषशास्त्रादिकर्मविपाकचिकित्सा नवीन टाईपमें अतिउत्तम	१–१२	०–४

५८७ योगचिन्तामणि भाषाटीका	१–४	०–४
५८८ तथा रफ़	१–०	०–३
५८९ लोलिम्बराज वैद्यजीवन संस्कृतटीका और भाषाटीका	१–०	०–२
५९० नाडीदर्पण नाडी देखनेमें अत्यन्त उत्कृष्ट ग्रन्थ	०–६	०–१
५९१ राजवल्लभ निघण्टु भाषाटीका	१–८	०–२
५९२ अनुपानदर्पण भाषाटीका सहित	०–१०	०–२
५९३ बालबोधपाकावली	०–२	०–॥
५९४ कूटमुद्गराख्यसटीक	०–३	०–॥
५९५ कालज्ञान भाषाटीका	०–२॥	०–॥
५९६ ज्ञानभैषज्यमञ्जरी भाषाटीकासह	०–३	०–॥
५९७ रसमञ्जरी भा० टी०	–१०	०–२
५९८ चिकित्साधातुसार भाषा	०–६	०–१
५९९ वैद्यक देवप्रकाश लघु	०–२	०–॥
६०० रसराजमहोदधि भाषा (वैद्यक) यूनानी हिकमत और यूनानीदवा और फकीरोंकी जडी बूटी और सन्तोंकी पुस्तकसे संग्रह है	०–१२	०–२
६०१ रसराजमहोदधि दूसराभाग (उपरोक्तसर्वालंकारों समेतछपकर तैयार है)	०–१२	०–२
६०२ वैद्यकल्पद्रुम भा०टी०	५–०	०–१०
६०३ मदनपालनिघंटु भाषाटीका ग्लेज	२–४	०–४
६०४ ,, रफ	२–०	०–४
६०५ चिकित्सा चक्रवर्तीभाषा	१–०	०–२
६०६ चिकित्सारत्नभाषा	०–३	०–॥
६०७ नपुंसकसंजीविनी प्रथम भाग	०–६	०–॥
६०८ ,, दूसरा भाग	०–६	०–॥
६०९ शालिहोत्र सूर्यकृत (घोडोंके शुभाशुभ लक्षण और उनके रोगोंकी औषधी) वार्त्तिकमें	०–६	०–१
६१० रसरत्नाकर भाषाटीकासमेत	५–०	०–१०
६११ तिब्बअकबर (हिकमतका सर्वोत्तमग्रन्थ)	७–०	०–१२
६१२ बृहन्निघंटु रत्नाकर–सप्तम अष्टम भाग अर्थात् "शालग्राम निघंटुभूषण" (अनेक देशदेशांतरीय संस्कृत, हिन्दी, बंगला, महाराष्ट्री, गौर्जरी, द्राविडी तैलंगी, औत्कली, इंग्लिश, लैटिन, फारसी, अरबी भाषाओंमें सर्व औषधोंके नाम और गुणोंका वर्णन औषधियोंके चित्रोंसमेत	८–०	१–०
६१३ हंसराजनिदान भाषाटीका....	१–०	०–३
६१४ वैद्यकपरिभाषाप्रदीप भा०टी० (वैद्योपयोगी-औषधियोंकी योजनामें तौल, मान, और बदला, तथा वर्ग, चूर्णआदिकोंकी योजनाका वर्णन)	०–१२	०–१॥
६१५ वैद्यरत्न भा०टी० (सर्वरोगोंकी चिकित्सा उत्तमप्रकारसे वर्णन किया है)	०–१४	०–२

